मुद्रक—

दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

ऋग्वेद विषय-सूची

पञ्चमाष्टके पञ्चमोध्यायः

सप्तमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः

(एकषष्टितमसूक्तादारभ्य)

सू० [६१]—मित्र और वरुण। परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों को उपदेश। उनके प्रति सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (२) उत्तम जीवन व्यतीत करने का उपदेश। (३) राज्य में प्रजापालक, दुष्टवारक मित्र, वरुण दोनों वर्गों के कर्त्तव्य। (४) मित्र, वरुण का महान् सामर्थ्य। (५) दोनों विद्वानों के वचन, उत्तम ज्ञान से पूर्ण हों। (पृ० १–४)

सू० [६२]—(१–३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। सब का भार अपने पर ले, समान रूप से देखे, उत्तम कर्म करे। किरणोंवत् सज्जनों सहित उदय को प्राप्त हो। (३) विद्वान् स्नेही, शासक जन प्रजाओं को नाना सुखजनक सम्पदाओं से पूर्ण करें। (४) आकाश-भूमि-वत् माता पिता का कर्त्तव्य। प्रजा का हित। (५) बाहुओंवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) विद्वान् शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ४–७)

सू० [६३]—(१–५) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। (२) यन्त्रचक्र में लगे अश्व या एंजिनवत् वा राशिचक्र के बीच स्थित सूर्यवत् विद्वान् का सर्वसंचालन। (४) सर्वप्रेरक सूर्यवत् ज्ञानी से प्रेरित जनों की सदर्थ-प्राप्ति। (५) सूर्यवत् सन्मार्ग में गति, मित्र और वरुण का आदर। (पृ० ७–११)

भुज्यु को समुद्र से पार करने का गृहस्थ वर-वधूपरक स्पष्टीकरण। (पृ० ३३–३८)

सू० [७०]—गृहाश्रम की श्रेष्ठता। परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। वर और राजा के समान कर्त्तव्य। (४–७) वर-वधू दोनो को उत्तम उपदेश। (५) ज्ञान प्राप्त्यर्थ प्रेरणा। (पृ० ३८–४१)

सू० [७१]—'अश्वी' उत्तम स्त्री पुरुषो के कर्त्तव्य। रात्रि-सूर्यवत् स्त्री-पुरुषो के व्यवहार-निदर्शन। (२) विद्वान् स्त्री-पुरुषो, शिक्षकों के कर्तव्य। (३) रथवत् गृहस्थसंचालन का आदर्श। (४) रथ की पुरुष से तुलना। उत्तम स्त्री पुरुषो के कर्तव्य। 'नासत्य' का स्पष्टार्थ। (पृ० ४२–४५)

सू० [७२]—विद्वान् स्त्री-पुरुषो के कर्तव्य। (पृ० ४५–४७)

सू० [७३]—उत्तम स्त्री-पुरुषो का वर्णन। उन के कर्तव्य और उपदेश। (पृ० ४८–४९)

सू० [७४]—अश्वी, सभापति, सेनापति, वा राजा-रानी। उन के कर्तव्य। (२) उत्तम नायकों, स्त्री-पुरुषो के कर्तव्य। (३) उत्तम नृपालो का वर्णन। (पृ० ४९–५२)

सू० [७५]—उषा के नाना दृष्टान्तों से उत्तम स्त्री वा वधू के कर्त्तव्यों का उपदेश। (४) पत्नी के कर्त्तव्य। (५) पक्षान्तर में सभा, सेनादि का वर्णन,। (६) उत्तम विवाह-विधि द्वारा स्त्री को स्वीकार करके पुत्रोत्पादन का उपदेश। गृहस्थों के कर्त्तव्य। पुरुषो के कर्त्तव्य। (८) स्त्रियों के कर्त्तव्य। (पृ० ५२–५६)

सू० [७६]—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। सविता प्रभु। पक्षान्तर मे गृहपति सविता। (२) दिन-रात्रि विज्ञान के साथ साथ सूर्य उषा के दृष्टान्त से वर-वधू के कर्त्तव्यों का वर्णन। (४)

सौभाग्यवान् पुरुषों का लक्षण । (५) सत्पुरुष विदुषी स्त्री को उपदेश । (७) उसके कर्त्तव्य । (पृ० ५७–६१)

सू० [७७]—सूर्य, उषा के विज्ञान के साथ २ परमेश्वर का वर्णन और गृहपत्नी युवति के कर्त्तव्य । (२) दिनों की नायिका उषावत् परमेश्वरी शक्ति और उत्तम युवति, नायिका के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) सौभाग्यवती का लक्षण । (४) स्त्री और राजशक्ति का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (६) गृहपत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ६१–६५)

सू० [७८]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य । (२) अग्नि-उषा व विद्वान्-विदुषी के कर्त्तव्य । स्त्रियों का सत्-आचार । (४) सौभाग्यवती का वर्णन । (५) उन का स्नेहयुक्त होने का कर्त्तव्य । (पृ० ६५–६७)

सू० [७९]—उषावत् गुणप्रकाशक वधू के कर्त्तव्य । (२) नव-वधुओं के उज्ज्वल दीपकों और सूर्यकिरणों के तुल्य कर्त्तव्य । पति-पत्नी का शरीर मे दो बाहुओं के तुल्य कर्त्तव्य । (३) पत्नी घर की रानी । (४) मेघ-विद्युत् वत् पुरुष-स्त्री की स्थिति । (५) स्त्री को उत्तम ज्ञान और वचन वाली होने का उपदेश । (पृ० ६७–७०)

सू० [८०]—उषावत् वधू के कर्त्तव्य । गर्भिणी के गर्भ पर उत्तम संस्कार डालने का उपदेश । साथ ही सृष्ट्युन्मुख प्रकृति का वर्णन । (२) पत्नी के गृहोचित शिष्टाचारों का वर्णन । पक्षान्तर मे उषा, सेना का वर्णन । (पृ० ७०–७२)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८१]—उषा के दृष्टान्त मे गृहपत्नी विदुषी के कर्त्तव्य । (२) उषावत् तेजस्विनी स्त्री का रानी स्वरूप । (४) विदुषी स्त्री का मातृपद । माता के कर्त्तव्य । (पृ० ७२–७५)

सू० [८२]—इन्द्र-वरुण, शत्रुहन्ता श्रेष्ठ पुरुष का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (२) इन्द्र-वरुण का स्वरूप एक वसुपति दूसरा प्रजापति। सम्राट् और साम्राज्य। (३) उन के कर्त्तव्य। नाना मार्ग निर्माण, और प्रजा की समृद्धि वृद्धि। (५) आधिदैविक दृष्टान्त से इन्द्र-वरुण का रहस्य। सूर्य-मेघवत् कोश और दण्ड के अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (६) इन्द्र, वरुण, दण्डकर्त्ता और दण्डपति। (७) पाप, दुराचार, पीडा, संताप से रहित उनका शासन। (८) दोनों प्रजा के बन्धु हों। (९) दोनों अग्रयोद्धा (१०) और प्रजा को उत्तम बलदाता हों। (पृ० ७५–८१)

सू० [८३]—इन्द्र, वरुण, वायु, विद्युत् वत् शत्रुहन्ता और शत्रुवारक अध्यक्षों के कर्त्तव्य। कृषकों वत् सैन्यों के कर्त्तव्य। (२) संग्राम के दो नायक इन्द्र, वरुण। (३) युद्ध आदि संकट के विकट अवसरों में उन के कर्त्तव्य। (४) भेदनीति और सदुपाय का उपदेश। (५) प्रजा की त्राण की प्रार्थना। उन दोनों का महान् सामर्थ्य। दश राजा, सुदास, तृत्सु उनका रहस्य, सभा-सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ८१–८८)

सू० [८४]—स्त्री पुरुषवत् प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध। (२) सम्पन्न राष्ट्र में प्रजा का कर्त्तव्य। उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ८६–८८)

सू० [८५]—इन्द्र, वरुण—उत्तम शासक तथा वायु जल और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन। इन्द्र, वरुण राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ८०–९१)

सू० [८६]—वरुण, परमेश्वर का वर्णन। परमेश्वर की भक्तिपूर्वक प्रार्थनोपासना। (३) बन्धन की जिज्ञासा। मोक्ष की प्रार्थना। (४) पाप-मोचन की प्रार्थना। (५) बन्धन-मोचन की प्रार्थना।

(६) दुःख मार्ग में जाने के कारणों की विवेचना। (७) सन्मार्ग पर नायक प्रभु (पृ० ९१-९५)

सू० [८७]—वरुण परमेश्वर के महान् दर्शनीय कार्य। प्रभु परमेश्वर का व्यवस्थित शासन। (४) प्रभु की व्यवस्था में विद्वान् का कर्त्तव्य। (५) जगत्स्रष्टा की अद्‌भुत सृष्टि। (६) परमेश्वर का वर्णन। (७) दयालु प्रभु। (पृ० ९५-१००)

सू० [८८]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। निष्पक्षपात प्रभु। (२) श्लेष से अन्नवत् प्रभु का वर्णन। (३) शिष्य-गुरु, भक्त-उपास्य के स्नेह की पति पत्नी के स्नेह से समता। (४) वाणी रूप प्रभु का निष्ठ भक्त को तारना। शिष्य के लिये तीर्थ गुरु किस प्रकार है। (५) भक्त उपास्य का सखाभाव। (६) हम पापी हो कर ईश्वर के दिये धन का भोग न करें। (७) कर्मबन्धन को काटने हारा प्रभु। कर्म बन्धन के छेदन का प्रकार। (पृ० १००-१०२)

सू० [८९]—देह-बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना। (२) दुःखी जीव की विनीत प्रार्थना। (४) भवतृष्णा से मोचन की प्रार्थना। (पृ० १०४-१०५)

सू० [९०]—बलवान् सेनापति के कर्त्तव्य। (३) सभापति के कर्त्तव्य। प्रजाजन स्त्री-पुरुषों के भव्य कर्त्तव्य। (४) विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) स्वामियों, शासकों के कर्त्तव्य। (६) ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य। (पृ० १०५-१०९)

सू० [९१]—बलवान् का स्थापन। (२) बलवानों के कर्त्तव्य। (४-६) विद्युत्-वायुवत् दो नायकों के कर्त्तव्य। (पृ० १००-११२)

सू० [९२]—वायुवत्, विवेकी विद्वान् - निर्णायक के कर्त्तव्य।

सप्तमोऽध्याय.

अष्टमं मण्डलम्

अष्टमोऽध्यायः

सू० [५]—उषा और अश्वियुगल । गृहलक्ष्मी उषा देवी । जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को गृहस्थोचित उपदेश । वीर विद्वान् एवं राजा और अमात्य-राजावत युगल जनों के कर्त्तव्य । (३७, ३८, ३९) वैद्य प्रभु के दान और उसकी अध्यात्म व्याख्या । (पृ० २१५–२२८)

सू० [६]—पर्जन्यवत् ज्ञानप्रद प्रभु की उपासना । (२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) वीर पुरुषवत् ईश्वर का अद्भुत कर्म । (६) सूर्य, वायु, विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य । (७–९) विद्वानों के गुण और कर्त्तव्य । (१०) प्रभु से प्रार्थनाएं । (१२–१३) गुरुवत् प्रभु । (१४) पापनिवारणार्थ दण्ड-प्रयोग का उपदेश । (१५) अपरिमेय सब से बड़ा प्रभु । (१६) प्रसुप्त प्रकृति का ईश्वर से सम्बन्ध । (१७) तम दूर करने की सूर्यवत् प्रभु से प्रार्थना । (१९) गौओं के तुल्य ऋषियों का प्रभु के प्रति भाव । (२०) सर्व-शक्तिप्रद प्रभु । (२१) पिता प्रभु । प्रभु और राजा से अनेक स्तुति प्रार्थनाएं । (४६) सर्वोत्तम सुख प्रभु का है । 'तिरिन्दिर' का रहस्य । (४७) समदर्शी को बड़ा लाभ । (पृ० २२८–२४५)

सू० [७]—मरुद्गण । वायुओं के तुल्य बलवान् वीरों और विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश । (३–७) मेघ और वृष्टि लाने वाले वायुगण का वर्णन । उन की तुलना से सज्जनों, वीरों के कर्त्तव्य । (पृ० २४५–२६०)

सू० [८]—अश्वी अर्थात् जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । राष्ट्र में राजा और सचिव जनों के कर्त्तव्य । (६–१५) ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जनों के कर्त्तव्य । (पृ० २६०–२७०)

सू० [९]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में (१०) राजा और सेनापति के कर्त्तव्य । (१६–१८) उत्तम देवी विदुषी के

गुण और कर्त्तव्यों का वर्णन। शिक्षा, आतिथ्य और ज्ञानप्राप्ति सम्बन्धी अनेक उपदेश। (पृ० २७०–२७९)

सू० [१०]—जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषों के कर्त्तव्य। वेग से जाने वाले साधनों से सम्पन्न पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० २७९–२८१)

सू० [११]—व्रतपा अग्नि। राजा, विद्वान् व अग्रणी नायक आचार्य के कर्त्तव्य। सर्वशासक तेजोमय प्रभु का वर्णन। (पृ० २८१–२८४)

षष्ठोऽष्टकः



प्रथमोऽध्यायः

सू० [१२]—विश्वस्रष्टा की स्तुति। (२) राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० २८५–२९८)

सू० [१३]—परमेश्वर की स्तुति। पक्षान्तर मे राजा के कर्त्तव्यो का निदर्शन। (पृ० २९८–३१०)

सू० [१४]—ईश्वर से ऐश्वर्यादि की प्रार्थनाएं। (२) गोपति होने की प्रार्थना। (३) सर्व सम्पदा के दाता प्रभु। यज्ञमय प्रभु की महिमा। (७) उदारचेता प्रभु। (८) गुरुवत् प्रभु। (९) प्रभु के स्थायी कार्य। (१०) आनन्द-सागर प्रभु। (११) मङ्गलकारी प्रभु। (१२) 'अपां-फेन' से नमुचि के नाश का रहस्य। (१३–१५) दुष्टों के नाश का उपदेश। (पृ० ३१०–३१५)

सू० [१५]—सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपासना। (२) सर्व-धारक प्रभु। (३) जगत् का एक अद्वितीय शासक। (४) सर्व-शक्तिमान् जगत-कर्त्ता। (५) प्रकाशों का दाता। (७) बुद्धिमय प्रभु का बल, ऐश्वर्य और ज्ञान। (८) उसका महान् ऐश्वर्य। (१०)

उत्पादक, पालक प्रभु । (११) सर्वविघ्नहारी प्रभु । (१४) सर्वोपरि सर्वोपास्य । (पृ० ३१५–३२०)

सू० [१६]—परमेश्वर का स्तवन । (३) ज्येष्ठराज प्रभु । (५) सर्वाध्यक्ष का वर्णन । (६) सर्वैश्वर्य स्वामी का वर्णन । स्तुति-योग्य प्रभु के गुणों का वर्णन । (पृ० ३२०–३२४)

सू० [१७]—प्रभु की स्तुति । उस का हृदय मे आह्वान और धारण । (५) गुरु का शिष्य को दीक्षित करना । उसको वेदोपदेश । आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य । वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन । विघ्नविनाशक परमेश्वर । (९) जगत् का स्वामी । (१०–१५) उपास्य उपासक मे गुरु शिष्य का सा भाव । (१२) शक्तिशाली प्रभुवत् राजा । (१४) वास्तोष्पति शासक इन्द्र । (पृ० ३२४–३२०)

सू० [१८]—विद्वानो से उत्तम ज्ञान की याचना । आदित्य विद्वानों का वर्णन । (४–७) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (८) चिकित्सको के कर्त्तव्य । (८–९) रोगनाशक पदार्थ अग्नि वायु और सूर्य । (१०) विद्वानों से अज्ञान और पापनाश की प्रार्थना । (२०–२२) विद्वानो से नाना कल्याण-प्रार्थनाएं । (पृ० ३२०–३२७)

सू० [१९]—प्रभु-स्तुति का उपदेश । (२) अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक की स्तुति और आदर करो । अग्नि के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन (५–६) उपासक यज्ञकर्त्ता को सत्फल की प्राप्ति । (७) सेनापति के कर्त्तव्य । प्रकारान्तर से स्वामी, राजा और प्रभु का वर्णन । (१० अग्रणी वीर नायक के कर्त्तव्य । (११) विद्वान् का वर्णन । उस संस्कार का विधान । (१४) नेता के कर्त्तव्य । (१८) यज्ञ आदि द्वार उपासको को उत्तम फल । (१९) दान आदि का फल । (२०) नाय- प्रभु से प्रार्थना । (२१) प्रभु की स्तुति । (२२) आहुत अग्निव

विद्वान् का रूप। (२३) अग्नि विद्युत वा सूर्य के तुल्य नायक, विद्वान् प्रभु का रूप और उस के कर्त्तव्य। उत्तम यज्ञकर्त्ता का सदाचारमय लक्षण। (२५) उपास्य-उपासक की अनन्यता की भावना। (२६) पाप के निमित्त भगवान् का परित्याग न हो, स्तोता वा शास्ता मूर्ख और पापी न हो। (२७) पितावत् प्रभु। भगवान् की भक्ति। (३०) सखा प्रभु। (३१) प्रभु के अग्निरूप की व्याख्या। (३२) सम्राट् प्रभु। (३३) परम अग्नि प्रभु। (३४) आदित्य विद्वानों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (३६-३७) पौरुकुत्स्य का दान। पुरुकुत्स सेनापति। उसका वर्णन। अध्यात्म रहस्य। (पृ० २३७-२५२)

सू० [२०]—मरुतों अर्थात् वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। वायु और जल लाने वाले वायु-प्रवाहों के वर्णन। (२२) उत्तम अध्यक्ष मरुद्-गण। (२५) देह में मरुद्गण प्राणगण। (पृ० २५३-२६४)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२१]—स्वामी के अद्भुत गुणों का वर्णन। आत्मा, प्रभु और विद्वान् का वर्णन। (४) बन्धुमान् प्रभु की शरण। (५) आश्रय वृक्षवत् प्रभु का आश्रय। (६) ईश-विनय के प्रयोजन। सर्व-प्रद प्रभु। (१०) प्रभु का परमैश्वर्य। (११) सदा सहयोगी और सहायक प्रभु। (१२) प्रभु या राजा की सहायता से दुष्टों को दण्डित करने का संकल्प। (१४) व्यसनी, धनाभिमानी का प्रभु मित्र नहीं। भक्तों का पिता प्रभु। (१५) भक्तों की चरम इच्छा। (१६) न्यायप्रद प्रभु। (१७) प्रभु का सरस्वती-रूप। (१८) मेघवत् दाता, महाराज प्रभु। (पृ० २६५-२७२)

सू० [२२]—सेनापति और वैद्यवत् स्त्री-पुरुषों का वर्णन। (२) गृहस्थ रथ का वर्णन। (४) गृहस्थ-रथ के दो चक्र। (५)

तृतीयोऽध्याय

पक्षान्तर में आचार्य और आत्मा का वर्णन। (१२) माता के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। बड़े भारी पालक प्रभु की स्तुति। (१३-१५) नियन्ता सर्वविजयी सखा। बडा दानी है। (१६) उत्कीर्ण जन। (१७) उपास्य का स्तवन। (१८) स्तुति योग्य के लक्षण। बन्धन-मोचक प्रभु। (१६-२०) जीव को कर्मफल भोग का उपदेश। (२१) राजा को वा उत्साही को आदेश उपदेश। (२६-२९) वलवान् इन्द्र के लक्षण। (२७-३०) विद्वानों को उपदेश। (पृ० ४४१-४५०)

सू० [३३]—उत्तम प्रजाओ के जलधारावत् कर्त्तव्य। (२) प्रभु ईश्वर की उपासना। (३) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों क वर्णन। (५-६) पुरुपोत्तम के लक्षण। प्रभु के गुण-स्तवन। (१०) समस्त सुखवर्पी प्रभु। (११) वीर योद्धा रथीवत् प्रभु का वर्णन। (१२) वलवान् विद्वान् पुरुपो के कर्त्तव्य। (१७-१९) उत्तम स्त्री के कर्त्तव्य। (पृ० ४५१-४५८)

सू० [३४]—ज्ञानवान्, ज्ञानेच्छुक पुरुपों को उपदेश। उनके कर्त्तव्य। (१३) राजा के प्रति प्रजा की याचना। (पृ० ४५९-४६५)

सू० [३५]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुपों के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति और उन्नत होने के उपदेश। रथी-सारथी, राजा-सचिव आदिवत् उनके कर्त्तव्य। (४) उपा-सूर्यवत् उनके कर्त्तव्य। (७) हारिद्रव नाम जलपक्षी, वा वनमहिप के दृष्टान्त से उन के कर्त्तव्य। (८) दो हंसों के समान उनके कर्त्तव्य। (६) दो श्येनों के तुल्य उनके कर्त्तव्य। (१०-१२) पान, तृप्ति, गमन, प्रजा, धन आदि धारण, विजय, रक्षा और शत्रुहनन का उपदेश। (१३-१५) धर्मवान्, तेजस्वी, ज्ञानी, सत्यवान् पुरुपों के सत्संगी होकर जीवनभर व्यतीत करने का उपदेश। (१६-१८) ज्ञानवृद्धि, कर्मवृद्धि, रक्षोहनन, दुष्टनाशन, क्षत्रविजय, गोवृद्धि, प्रजावृद्धि का उपदेश। (१९-२२) वेद-श्रवण, सन्तानोत्पत्ति, यज्ञ,

देहसयंम का उपदेश । (३३) परस्पर आदर करो । (३४) अन्न-पञ्च द्वारा सन्तुष्ट होवो । (पृ० ४६५–४७३)

सू० [३६]—ऐश्वर्यवान् विद्वान् वा राजा के कर्त्तव्य । प्रभु की उपासना और उससे प्रार्थना । (पृ० ४७३–४७६)

सू० [३७]—माध्यंदिन के समान प्रजापालक राजा का व्यवहार । एकराट् राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ४७६–४७९)

सू० [३८]—इन्द्र अर्थात् विद्युत् और अग्नि के तुल्य विद्वानों राजा और अमात्यों के कर्त्तव्य । उनके तुल्य परस्पर सहायको और विद्वानो के कर्त्तव्य । (पृ ४७९-४८२)

सू० [३९]—अग्नि, ज्ञानी और अग्रणी नेता पुरुष के कर्त्तव्य । उसके ज्ञान-प्रकाश द्वारा क्रम से विघ्नो और दुष्टो का नाश । (६–१०) देहाग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य । (पृ० ४८३–४८९)

सू० [४०]—इन्द्र, अग्नि, वायु, आग के समान विद्वानों के ज्ञान और तेजस्वी नायक के तेज, पराक्रम से दुष्टों का नाश । (३) इन्द्र और अग्नि दो अध्यक्षो का वर्णन । उनके आदर का उपदेश । (५) विद्युत् और अग्नितत्वो को वश करने का उपदेश । (६) दुष्ट के धनादान और वश करने की आज्ञा । (७) दुष्टों के नाश का उपदेश । (८) सूर्य, अग्निवत् व्रतपालकों के कर्त्तव्य । (१०–१२) सूर्यादि के तेज से रोगो के तुल्य दुष्टों का नाश । (पृ० ४८९–४९५)

सू० [४१]—श्रेष्ठ पुरुषों के आदर का उपदेश । राजा के कर्त्तव्य । (२) राजा के नाशार्थ उद्योग, पालक पुरुषों का नियोजन । (३) राजा का सैन्य-रक्षण । राष्ट्रस्थापन । (४) देह में प्राणों वा राजा का प्रजाओं को पालन करने का कर्त्तव्य । (५) सूर्यवत् लोकधारण के तुल्य राष्ट्रधारण । (६) चक्र में नाभि के तुल्य प्रभु वा विद्वान् के कर्त्तव्य । गोशाला मे पशुओं के तुल्य इन्द्रियो का संयम । (७) सर्वो-परि वरुण । (८) समुद्रवत् राजा । (९) त्रिलोकाधिपति वरुण

परमेश्वर। राजा के सात अश्वोंवत् प्रभु का सब स्थावर जंगमों पर शासन। (१०) सर्वशासक की अद्भुत शक्तियां। (पृ० ४९५–५००)

सू० [४२]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। सर्वोपास्य प्रभु। नौकावत् वेदवाणी का आश्रय लेने का उपदेश। (४-६) स्त्री पुरुषों को उपदेश। (पृ० ५००–५०२)

सू० [४३]—प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति। (३) सर्व पापनाशन प्रभु, अग्नि। (४) अग्निवत् प्रभु की विभूतियां। इसी प्रकार स्वतन्त्र जीवगण की सत्ता का वर्णन। (५) नाना स्वतन्त्र जीवों का अग्नियों के तुल्य निरूपण। (६) साधक जीव के मार्ग की बाधाएं। (७) अग्नि से जीवनधारी आत्मा की तुलना। (८) पुनः उत्पन्न होने वाले जीव की अग्नि से तुलना। (९) अग्निवत् जीव का जन्म। (१०) अग्नि-ज्वाला के तुल्य गर्भ मे स्थिर जीव की वृद्धि। (११) जीव और परम-आत्मा का स्वरूप। (१२) प्रकाशमय, दुःखनाशन, पापनिवारक प्रभु की उपासना। (१४) उसके प्रकाशित होने का प्रकार। (१५) सहस्र-ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (१६) भ्रातृवत् शुद्धहृदय प्रभु। (१७) मातृवत् प्रभु का वरण। (१८) मुख्य प्राणवत् प्रभु। (१९) सर्वाध्यक्ष प्रभु। (२०–२१) समदर्शी प्रभु। (२२) प्रकाशस्वरूप प्रभु। (२३) द्वेषनाशक प्रभु। (२४) साक्षी, अध्यक्ष प्रभु। (२५) सब को भयप्रद सर्वसञ्चालक प्रभु। (२६) दण्ड दाता प्रभु। (२७) अग्निवत् प्रभु। (२८) आत्मा के तीन रूप। (३२) बलवान् दुष्टनाशक प्रभु। (३३) अविनाशी ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु। (पृ० ५०२–५१४)

सू० [४४]—अग्नि - परिचर्या के तुल्य गुरु और प्रभु की उपासना। (४) अग्नि और सूर्यवत् ऊर्ध्व रेता तेजस्वी का वर्णन। अग्नि की प्रभु से श्लिष्ट समताएं। (६–७) स्तुत्य अग्नि, विद्वान् और प्रभु। (८) यज्ञ का नेता अग्नि। (११) विजिगीषु तेजस्वी नायक अग्नि।

चतुर्थोऽध्यायः

सोम से ज्ञान की प्रार्थना। सोम तेजस्वी प्रभु से दीर्घ जीवन की याचना। (९) सोम का व्रत पालन। (१०) सोम, राजा से प्रार्थना। (११) सोम अभिषिक्त राजा। (१२) सोम, व्यापक प्रभु की परिचर्या। (१४) विद्वानों से प्रार्थना। (पृ० ५५३–५६०)

वालखिल्यम्

सू० [४९]—ज्ञानप्रद, सर्वदाता, सर्वरक्षक प्रभु की स्तुति। (२) मेघ वा पर्वत से क्षरते जलों के तुल्य प्रभु के ऐश्वर्य। (३) जलाशय के जलों के तुल्य उसके पूरक ऐश्वर्य। (४) मधुवत् उसके मधुर सुख। (५) गोरसों के तुल्य सुखद उसके दान। ऐसे प्रभु की उपासना का उपदेश। (७) राजा से प्रजा की प्रार्थनाएं। (पृ० ५६०–५६४)

सू० [५०]—इन्द्र परमेश्वर की स्तुति का उपदेश। प्रभु का अपार ऐश्वर्य। (३) प्रभु और उपासक जन। (पृ० ५६४–५६८)

सू० [५१]—उत्तम राजा का वर्णन। (३–४) ज्ञानमय प्रभु एवं उपदेश से ज्ञान की याचना। (४) इन्द्र-प्रभु विषयक उपदेश। सप्तशीर्षा अश्व। (५) प्रभु का ज्ञान। इस एक जन्म में करने की प्रार्थना। (६–८) दाता प्रभु से याचना। सर्वस्वामी और स्तुत्य प्रभु। (पृ० ५६४–५७२)

सू० [५२]—शक्तिशाली, राजा, विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन। (३) इन्द्र का स्वरूप। महान् शासक परमेश्वर इन्द्र। उसकी स्तुति प्रार्थनाएं।

सू० [५४]—परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनाए। (पृ० ५७९–५८२)

सू० [५५]—प्रस्कण्व की दानस्तुति। परमेश्वर के जीव जनों पर अपार दान। (पृ० ५८२–५८४)

सू० [५६ —]तेजस्वी परम पुरुष का विशाल बल और ऐश्वर्य। (२) वेदज्ञान का दाता प्रभु। विद्वानों को अनेकविध दान। (पृ० ५८४–५८६)

प्रभु वा शासक का सर्वोपरि पद। (३) सर्वोपरि ज्ञानप्रद गुरु, परमेश्वर। (६) सर्वाश्रय परमेश्वर। (७) सर्वपूज्य स्वामी ईश्वर। (८) जगत् का प्रवर्त्तक ईश्वर। (९) सुखार्थी जीव का प्रभु के आनन्द की ओर झुकाव। (१२) त्यागी जनों से प्रार्थना। (पृ० ६१४–६१८)

सू० [६४]—परमेश्वर की स्तुति। (२) महान् प्रभु। (३) सर्वप्रभु राजा। (४) सर्वोपरि ईश्वर। (५) विद्वान् के कर्त्तव्य। (७) सर्वोपास्य, अज्ञेय प्रभु। (८–१०) प्रभु के विरल भक्त। (११–१२) राजा का अभिषेक-रहस्य। (पृ० ६१८–६२२)

सू० [६५]—सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति और उपासना। (पृ० ६२२–६२५)

सू० [६६]—परमेश्वर की स्तुति। (२) सर्वोपरि बलशाली प्रभु। (३) गोरूप वाणियों के आवरण को दूर करने वाला इन्द्र प्रभु। (४) सन्मार्ग-प्रवर्त्तक जगन्निर्माता प्रभु। (६) सर्वोत्तम दाता प्रभु। (७) नित्य (८) सिंहवत् वा चन्द्रवत् प्रभु और राजा का वर्णन। (९) प्रकृति से जगत् का स्रष्टा सर्वोपरि श्रवणीय है। (१०) अपार बली प्रभु। (११) भोजनवत् नियमानुसार भक्ति का विधान। (१३) सर्वोपरि दयालु प्रभु (१३–१४) मोक्ष की याचना (। १५) अभय-आश्वासन। (पृ ६२६–६३२)

सू० [६७]—आदित्य सदृश तेजस्वी, धनवान् बलशाली लोगों के कर्त्तव्य। (२) वे प्रजा को पाप से मुक्त करें और प्रजा का पालन करें। (७) उत्तम शासक स्वयं अपराध से रहित हो। (९) प्रजा को नाश होने से बचावें। (१०–११) विदुषी माता के कर्त्तव्य। (१२) उग्रपुत्रा माता भूमि। (१३) उरुव्रजा, उरूची वैश्य सभा। (१३–२१) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। पृ० ६३२–६३८)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [६८]—ईश्वराराधना, उसकी स्तुति और प्रार्थना। सृष्टिकर्त्ता का पुनः पुनः मनन। (२) विश्व का विस्तारक परमेश्वर। (३) बलशाली। (४–५) राजा का वर्णन। (६) सर्वलोक पति प्रभु। (७) प्रजाओं का स्वामी प्रभु। (८) अपार शक्तिशाली प्रभु। (९–१२) उसकी स्तुति और प्रार्थनाएं। (१४) आत्मा के ६ नर ६ इन्द्रिय गण। (१५) अश्वमेध-राष्ट्र-शासनवत् देहव्यवस्था। (१६) राष्ट्र में उत्तम वीरों की नियुक्ति। ६ सेनापतियो की नियुक्ति। वधूमान् अश्वो का रहस्य। अध्यात्म व्याख्या। देह मे वाणीवत् राष्ट्र में राजसभा का रूप। (१९) नियुक्त जनों को उपदेश कि कोई भी निन्दनीय कर्म न करें। (पृ० ६२८–६४४)

सू० [६९]—राष्ट्र के प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (३–४) प्रजाओं द्वारा उत्तम शासक की स्थापना। (६) वेदवाणियों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर मधुर रसवत् रूप। प्राप्त पद सखावत् प्रभु का मोक्ष सुख का पद। सखा प्रभु। (८) प्रभु की अर्चना का उपदेश। (९) विद्वान् का प्रजाजनों को उपदेश। (१०) गौओंवत् प्रजाओं का रूप। राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। वरण योग्य राजा वरुण। (१२) वरुण आचार्यवत्। उत्तम नायकवत् भवबन्धन मोचक प्रभु। (१४) पक्व ओदन के तुल्य शिष्य का गुरु से ज्ञान ग्रहण। राजकुमार के रथारोहणवत्। राष्ट्रशासन पद का आरोहण, और जीव का ब्रह्मपद-आरोहण। (१६) गृहपति का गृहस्थ रथ पर आरोहण। राजा-राष्ट्र का 'दम्पति भाव'। (१७) राजतन्त्रवत् अध्यात्मस्वराट् की उपासना। खेती करने के तुल्य देह से कर्मफल प्राप्ति। (पृ० ६४५–६५२)

सू० [७०]—सर्वोपरि नायक शासक का वर्णन। प्रभु परमेश्वर की गुण-स्तुति। (५) पक्षान्तर में वीर पराक्रमी शासक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (१०) पितावत् प्रभु। दुष्ट दमनकारी वा राजा।

विशाल गृह के तुल्य राजा की स्थिरता। उत्तम सञ्चालक। (५) दानार्थियो का एक मात्र शरण। विद्यार्थियों का शरण गुरु। (६) विद्यादान पुनर्जीवन है। (७) दयाशील शासक का रूप। (८) राजा वा शासक सत् प्रजा को भय का कारण न हो। प्रजा को उद्विग्न न करे और हृदय को पीड़ित न करे। (९) दुष्टों को दूर करे। (पृ० ७००-७०३)

सू० [८०]—राजावत्दयालु प्रभु का वर्णन। उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य। (५-६) राजावत् प्रभु से प्रार्थनाएं। (७) राजा वा प्रभु की दुर्ग से तुलना। (९) प्रभु का तुरीय पद। सर्वानन्दप्रद उपास्य प्रभु। (पृ० ७०३-७०६)

सू० [८१]—प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं। प्रभु (२) सर्वैश्वर्यवान्। (३) वेरोक दानशील उद्यमार्थ प्रेरक प्रभु। (७) स्नेही प्रभु। सर्व मनोरथ-पूरक प्रभु। (पृ० ७०६-७०९)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८२]—धनसम्पन्न व्यापारी वर्ग के कर्त्तव्य। (२) राज की राष्ट्र-पालनार्थ शासकों की नियुक्ति। (३) अन्न सर्वोत्तम भोजन (४) अशत्रु राजा। (५-९) अन्नादिवत् ऐश्वर्यादिक। ऐश्वर्य आ का पात्र राजा। उस के अधिकार और कर्त्तव्य। (पृ० ७०९-७१२)

सू० [८३]—विद्वान् तेजस्वी, व्यवहारकुशल विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१२-७१४)

सू० [८४]—अग्रणी नायक के गुण और कर्त्तव्य। (२) नायक की दीपक वा अग्निवत् दो प्रकार की स्थिति। (६) नायक वा प्रभु के प्रति अधीनों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१४-७१७)

सू० [८५]—विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१७-७२०)

सू० [८६]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ७२०-७२२)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [९८]—जगत् के पालक परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ७८०–७८४)

सू० [९९]—राजा प्रजा के व्यवहारों के साथ परमेश्वर के गुण का वर्णन। (पृ० ७८४–७८७)

सू० [१००]—जीवों के कर्मफल - भोगार्थ परमेश्वर की शरण प्राप्ति। (४) परमेश्वर का साक्षात् स्वरूप वर्णन। (६) परमेश्वर का ज्ञानी जनों के प्रति अनुग्रह। भक्तों के प्रति उपदेश। (७) जीवों को प्रभु ने स्वतन्त्र क्यों किया। (८) ज्ञानी की आयसी नगरीवत् देह-बन्धनों से मुक्ति। (९–१०) प्रभुवाणी का वर्णन। (पृ० ७८६–७९३)

सू० [१०१]—(१) शमसाधना। (२) दो नायकोंवत् मेघ और वायु। राष्ट्र के न्याय और सैन्य-विभाग के अध्यक्षों का वर्णन। (प्रजा की राजा से विशेष याचनाएं। (६) शासकों के कर्त्तव्य। (७) विद्याभिलाषी जनों के कर्त्तव्य। (११–१४) महान् प्रभु का वर्णन। (१४–१६) गौ, वाणी और भूमि की महिमा का वर्णन। (पृ० ७९३–८००)

सू० [१०२]—गृहस्वामी के कर्त्तव्य। अग्नि आचार्य का वर्णन। अग्नि परमेश्वर का वर्णन। उसकी स्तुति, सर्वरक्षक, सर्वकर्त्ता शिल्पी के तुल्य प्रभु। सर्व प्रकाशक, परम सुखदायक प्रभु की स्तुति, भक्ति और उपासना। (प्र० ८०१–८०९)

सू० [१०३]—परम गुरु की उपासना। सूर्य, पृथ्वी और परमेश्वर-प्रकृति के कार्यों का वर्णन। (३) कृषि-फलवत् प्राप्ति। (४) भक्तों पर प्रभु की कृपा। (११) सर्वशासक प्रभु का वर्णन। वही सर्वोपास्य है। (पृ० ८०९–८१५)

इत्यष्टमं मण्डलम्

शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
४	३	अमृता	अनृता
२२	१०	पातम्	यातम्
३२	२०	समुद्र मे (भुज्युम्)	समुद्र में (जहुः) त्याग देते है उस (भुज्युम्)
५५	२०	देखी जावे	देखे जावे
७२	१६	अश्व गो	अश्व गौ
९५	१७	तुझे	हमे
१७१	२	करती	करता
२८३	६	वहुत सेनानो	वहुत से नामों
३७०	१७	रेवन्त	रेवन्तं
३६८	१३	शम् आ	सम् आ
३९४	२५	हहय	हृद्य
४८१	१३	विद्युत्	विद्युत्
५५३	१७	(परिवोवित्तरस्य)	(वरिवोवित्तरस्य)
५६७	१०	(मनुष्यः)	(मनुषः)
६०७	५	(रथीतम)	(रथीतमः)
६१४	१४	स्तव	सव
६५५	२	॥ ७ ॥	॥ ४ ॥
६५८	२२	युक्त करे	मुक्त करे
६८३	१४	पाले	वाले
६९३	८	पत्र	पात्र
७०२	२१	तृप्त	लुप्त
७१६	२०	(पृष्ट सं०) ७१६, ७१९, ७१८, ७१७, ७२०	पृष्ट सं० ७१६, ७१७ ७१८, ७१९, ७२०
७६६	१९	२१ सौ	२१ सो
७६८	७	जजान	(जजान)
८१०	२२	भ्रमपूर्वक	भयपूर्वक

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता



अथ पञ्चमेऽष्टके पञ्चमेऽध्याये तृतीयो वर्गः ।

सप्तमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके ।

[६१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रा वरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१॥

भा०—हे (वरुण) एक दूसरे का वरण करने वाले एवं सबसे वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (सूर्यः चक्षुः ततन्वान्) सूर्य जिस प्रकार आंख की शक्ति को बढ़ाता है उसी प्रकार (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक परमेश्वर और विद्वान् पुरुष (देवयोः) ज्ञान के इच्छुक (वां) आप दोनों की (प्रतीकं) उत्तम प्रतीति या ज्ञान के देने वाले (चक्षुः) प्रकाशक प्रज्ञानेत्र को (ततन्वान्) अधिक विस्तृत करता हुआ (एति) प्राप्त हो । (यः) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों और पदार्थों को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता और सब पदार्थों का

उपदेश करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (मन्युम्) मनन करने योग्य उत्तम ज्ञान भी (आ चिकेत) प्रदान करता है। अर्थात् परमेश्वर ही मनुष्यों में सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश देता है। इसी प्रकार तेजस्वी विद्वान् भी मनुष्यों में ज्ञान का दान करे।

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सब के स्नेही और सब से वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञानों और धनों की आप दोनों (सु-क्रतू) उत्तम कर्मवान् होकर (अवाथ) रक्षा करते हो और (यत्) जिसके (क्रत्वा न) यज्ञवत् कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (शरदः पृणैथे) जीवन के समस्त वर्षों को सुखपूर्वक व्यतीत करते हो। (सः विप्रः) वह विद्वान् पुरुष (ऋतावा) न्याय और सत्य ज्ञान से युक्त और (दीर्घ-श्रुत्) दीर्घ काल तक वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रवण करने वाला, बहुश्रुत होकर (वां) आप लोगों के प्रति (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानों को (इयर्त्ति) उपदेश प्रवचन आदि करे। *

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) 'मित्र' प्रजाजनों को मृत्यु आदि के कष्टों से बचाने वाले और 'वरुण' और उनके दुखों को दूर करने वाले दोनों प्रकार के वर्गों ! हे (सु-दानू) उत्तम ज्ञान सुखादि के दाता आप दोनों (उरोः पृथिव्याः) विशाल पृथिवी और (बृहतः) बड़े भारी (ऋष्वात्) महान् (दिवः) प्रकाशयुक्त सूर्य से (स्पशः) नाना प्रकार के ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (प्र प्र दधाथे) प्राप्त किया करो। (ओषधीषु) ओषधियों

* अत्रयावन्महर्षिदयानन्दभाष्यमुपलभ्यत।

और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अनिमिषं) विना प्रमाद के, विना नयन झंपके (ऋधक्) सत्य के बल से (रक्षमाणा) प्रजाओं की रक्षा करते हुए भी (यतः) यत्नशील (स्पशः प्र दधाथे) उत्तम गुप्तचरों और अध्यक्षों को अच्छी प्रकार नियुक्त करो ।

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रस्य) प्राणवत् वा जल व सर्वप्रिय, सर्वस्नेही, शान्तिदायक और (वरुणस्य) दुःखों और अज्ञानों के वारण करने वाले जन के (धाम) तेज और स्थान की (शंस) प्रशंसा कर । जिसके (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से (शुष्मः) शत्रुशोषक, बलवान् पुरुष या जिसका महान् सामर्थ्य (रोदसी बद्बधे) सूर्य के समान आकाश पृथिवीवत् (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली सेना और राष्ट्र-सभा दोनों को सुप्रबद्ध कर व्यवस्थित करता है । अयज्वनाम्) यज्ञ, सत्संगादि से रहित लोगों के (मासः) महीनों पर महीने (अवीराः) वीर पुत्रादि रहित वा विना विशेष विद्याध्ययन ज्ञान प्राप्ति के ही (अयन्) व्यतीत होते हैं और (यज्ञमन्मा) पूज्य प्रभु का मनन, आचार्य, गुरु और राजादि के मान्य करने वा सत्संगादि ज्ञान प्राप्त करने वाला जन (वृजनं) अपने ज्ञान और बल को (प्र तिराते) खूब बढ़ाने में समर्थ होता है ।

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अमूरा) अमूढ, मोह में न पड़ने वालो ! हे (विश्वा) विविध विद्या मे प्रवेश करने हारो ! हे (वृषणौ) बलवान्, सुखों की वर्षा करने वाले मेघ सूर्यवत् उपकारी स्त्री पुरुषो ! (इमाः) ये (वां) आप लोगों की ऐसी सरल उत्तम वाणियां हैं (यासु) जिनमें (चित्रं) अद्भुत और (यक्षम्) विशेष स्तुति योग्य (न न ददृशे) कुछ नहीं दिखाई

देता ऐसा नहीं, प्रत्युत आपकी वाणियों में सर्वत्र अद्भुत और ग्राह्य, स्तुत्य पदार्थ ही विद्यमान है। (जनानां) मनुष्यों के बीच में (द्रुहः) द्रोही पुरुष ही (अमृता) असत्य २ बातों को (सचन्ते) सेवन करते हैं, वे हरेक बातों का उलटा मतलब लगाया करते हैं। वस्तुतः (वां) आप लोगों के (निण्यानि) छुपे हुए रहस्य मर्म (अचिते न अभूवन्) अज्ञानी पुरुष के लिये नहीं प्रकट होते हैं। अर्थात् उत्तम स्त्री पुरुषों के वचन सरल और स्पष्ट होने चाहिये। द्रोही लोग उनका कुछ का कुछ ही झूठ मतलब लगाते हैं अज्ञानी लोग उनकी यथार्थता नहीं जानते।

सम्ु वां य॒ज्ञं म॑हयं॒ नमो॑भिर्हु॒वे वां मित्रावरुणा स॒बाधः॑ ।
प्र वां॒ मन्मा॑न्यृ॒चसे॒ नवा॑नि कृ॒तानि॒ ब्रह्म॑ जुजुषन्नि॒मानि॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सर्वस्नेही और सबसे गुरु आदि रूप से वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो! (स-बाधः) विशेष अज्ञानादि की बाधा वा पीड़ा से युक्त होकर (वां यज्ञं) आप लोगों के सत्संग की मैं (नमोभिः) अति विनययुक्त वचनों से (महयम्) स्तुति करता हूँ और (वां हुवे) आप दोनों की भी स्तुति करता हूं। (वाम्) आप लोगों के (नवानि) नये से नये स्तुत्य (कृतानि) सम्पादित किये (इमानि ब्रह्म) ये नाना अन्नादि, धन और उपदिष्ट (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानादि को लोग (ऋचसे) सेवन करने के लिये (जुजुषन्) प्रेमपूर्वक प्राप्त करें।

इ॒यं दे॑व पु॒रोहि॑तिर्यु॒वभ्यां॑ य॒ज्ञेषु॑ मित्रावरुणावकारि ।
विश्वा॑नि दु॒र्गा पि॑पृतं ति॒रो नो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ।७।३।

भा०—व्याख्या देखो सू० ६० । म० १२ ॥ इति तृतीयो वर्गः ॥

[६२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३ सूर्यः । ४–६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्‌ृच सूक्तम् ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

भा०—(बृहत् सूर्यः पुरु अर्चीषि उत् अश्रेत्) बड़ा भारी सूर्य जिस प्रकार बहुत से किरणो और तेजों को अपने मे धारण करता है इसी प्रकार (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (बृहत्) बडा होकर (मानुषाणाम्) मनुष्यो के (विश्वा जनिम) समस्त जन-संघो को (उत् अश्रेत्) अपने ऊपर धारण करे, उनका भार अपने कन्धे ले । और (पुरु अर्चींषि) बहुत से सत्कारों को भी (उत् अश्रेत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे । वह सूर्य-वत् (रोचमानः) तेजस्वी एवं सबको प्रिय लगता हुआ (दिवा) कान्ति, न्याय, व्यवहार आदि से (समः) सब के प्रति समान (ददृशे) दीखे । वह (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (कृतः) सम्पन्न होकर (कर्तृभिः) उत्तम कार्यकर्त्ताओं द्वारा (सु-कृतः) उत्तम कार्य करने में समर्थ (भूत्) हो ।

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः पुरः प्रति उद्गच्छति) सूर्य शुक्र किरण समूहो से पूर्व दिशा में प्रति दिन उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू भी (एतशेभिः) उन अश्वों से (एभिः स्तोमैः) इन स्तुत्य जन संघों सहित वा (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः) शुक्र, शुद्ध, ज्ञानदायक, स्तुति-योग्य मन्त्रसमूहों सहित (प्रति) प्रतिदिन (नः पुरः) हमारे समक्ष उदय को प्राप्त हो । वा (नः पुरः) प्रति (उद् गाः) हमारे नगरो के प्रति आ । और (नः) हमारे में से (मित्राय) स्नेहवान् (वरुणाय) दुःखों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यम्णे) न्यायकारी, दुष्ट जनों के नियन्ता और

(अग्नये) अग्रणी नेता जन के हित (नः) हम (अनागसः) निरपराध जनों को (प्र वोचः) उत्तम उपदेश कर।

वि नः॑ सह॒स्रं शु॒रुधो॑ रदन्त्वृ॒तावा॑नो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निः।
यच्छ॑न्तु च॒न्द्रा उ॑प॒मं नो॑ अ॒र्कमा नः॒ कामं॑ पूपुरन्तु॒ स्तवा॑नाः ३

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ जन (मित्रः) स्नेहवान् पुरुष (अग्निः) अग्निवत् ज्ञानों का प्रकाशक विद्वान् ये सब (ऋतावानः) सत्य ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य को धारण करने वाले (सहस्रं शुरुधः) हजारों शोक दुःखादि के रोकने वाली सुख सम्पदाओं को (नः) हमें (वि रदन्तु) विशेष रूप से प्रदान करें। वे (चन्द्राः) आह्लादकारी जन (नः) हमे (उपमं) उत्तम (अर्कं) ज्ञान और अन्न (यच्छन्तु) प्रदान करें। वे (स्तवानाः) स्तुति या उपदेश करते हुए, (नः कामं) हमारे अभिलाषा को (पूपुरन्तु) पूर्ण करें।

द्यावा॑भूमी अदिते॒ त्रासी॑थां नो॒ ये वां॑ ज॒ज्ञुः सु॒जनि॑मान ऋष्वे।
मा हेळे॑ भूम॒ वरु॑णस्य वा॒योर्मा॑ मि॒त्रस्य॑ प्रि॒यत॑मस्य नृ॒णाम् ॥४॥

भा०—हे (द्यावाभूमी) आकाश और पृथिवी के समान ज्ञान-प्रकाश और आश्रय देने वाले (अदिते) अदीन, माता पिता जनो! आप दोनों (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो। हे (ऋष्वे) गुणों मे महान् आप दोनो (ये) जो (सु-जनिमानः) उत्तम जन्म प्राप्त होकर (वां) तुम दोनों को (जज्ञुः) उत्तम पूज्य करके जानते है वे आप दोनों हमारी रक्षा करें। हम लोग (वरुणस्य हेडे मा भूम) श्रेष्ठ पुरुष के क्रोध या अनादर के पात्र न हों। (नृणाम्) सर्वसाधारण मनुष्यो के और (प्रियतमस्य मित्रस्य) प्रियतम मित्र के और (वायो.) वायु के समान उपकारक बलवान् पुरुष के भी क्रोध या अनादर मे (मा भूम) न रहे।

प्र बा॒हवा॑ सिसृतं जी॒वसे॑ न॒ आ नो॒ गव्यू॑तिमुक्षतं घृ॒तेन॑।
आ नो॒ जने॑ श्रवयतं युवाना श्रु॒तं मे॑ मित्रावरुणा॒ हवे॒मा ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सूर्य और मेघ वा वायुजल के समान उपकारक स्त्री पुरुष वर्गो ! आप लोग (बाहवा) दो बाहुओं के समान (नः जीवसे) हमारे जीवन के सुख के लिये (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ो । (नः गव्यूतिम्) हमारे मार्ग को (घृतेन) जल से (आ उक्षतम्) सेचन करो । (युवाना) आप दोनो युवक गण (नः) हमे (जने) मनुष्यों के बीच में (आ श्रवयतम्) प्रसिद्ध करो । (मे इमा हवा) मेरे ये उत्तम वचन (श्रुतं) श्रवण करो ।

नू मि॒त्रो वरु॑णो अ॒र्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधन्तु ।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ६।४

भा०—(नु) अवश्य, शीघ्र ही (मित्रः) स्नेहवान् और मरने से बचाने वाला सर्वमित्र विद्वान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष और (अर्यमा) न्यायकारी, दुष्टों का दमन करने हारा पुरुष (नः) हमारे (त्मने) अपने लिये (नः तोकाय) हमारे पुत्र के लिये भी (वरिवः) उत्तम धन, और सेवाकार्य (दधन्तु) प्रदान करे । जिससे (नः) हमारे (विश्वा) सब कार्य (सुगा) सुगम और (सु-पथानि) उत्तम मार्ग युक्त (सन्तु) हों । हे विद्वान् जनो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमारी सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—५ सूर्यः । ५, ६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्टच सूक्तम् ॥

उद्वे॑ति सु॒भगो॑ वि॒श्वच॑क्षा॒ः साधा॑रण॒ः सूर्यो॒ मानु॑षाणाम् ।
चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य दे॒वश्चर्मे॑व॒ यः स॒मवि॑व्य॒क्तमां॑सि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (सूर्यः) सूर्य (देवः) प्रकाशयुक्त होकर (तमांसि चर्म इव) अन्धकारों को चर्म के समान (सम् अविव्यक्)

एक साथ ही छिन्न भिन्न कर देता है और (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्यों के प्रति एक समान प्रकाशित (विश्व-चक्षाः उद् एति उ) होकर सबको दिखाता हुआ उदित होता है और (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः) मित्र, दिन और वरुण रात्रि दोनों का भी प्रकाशक होता है उसी प्रकार (सु-भगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी, (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्यों के प्रति एक समान और (विश्व-चक्षाः) सबका द्रष्टा, सबका मार्गदर्शी विद्वान् वा राजा भी (मित्रस्य) अपने स्नेही और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का भी (चक्षुः) नेत्र के समान मार्गदर्शक हो। वह (देवः) विद्वान् (तमांसि) अज्ञान शोकादि अन्धकारों को (चर्म इव सम् अविव्यक्) चर्म के समान एक साथ ही अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करे। राजा शत्रु दल को छिन्न भिन्न करे।

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (एतशः) वेगवान् गतिप्रद अश्व वा यन्त्र (धूर्षु युक्तः) यन्त्रों के धुराओं मे जुता या जुड़ा हुआ (समानं चक्रम्) सब यन्त्राङ्गों मे समान रूप से गति देने वाले चक्र को (परि आववृत्सन्) घुमाता है, और जिस प्रकार (एतशः) तेजोयुक्त, सूर्य (धूर्षु-युक्तः सन्) नाना ग्रहो के धारण करने वाले केन्द्रस्थलो मे स्थित होकर (समानं चक्रं परि आ ववृत्सन्) सब ग्रहो के चक्र को एक समान नीति से अपने गिर्द घुमाता रहता है और जिस प्रकार (जनानां महान् केतुः) सब जन्तुओं का ज्ञापक, (सूर्यस्य = सूर्यः स्यः) वह सूर्य (अर्णवः) जल का देने वाला है (जनानां प्रसवीता) सबको प्रेरित करने वाला होकर (उद् एति उ) अवश्य नियम से उदय होता है उसी प्रकार (एतशः) ज्ञानी, शुक्लकर्मा पुरुष भी (धूर्षु युक्तः) कार्य-भारों को धारण करने के पदों पर नियुक्त होकर (वहति) कार्य-भार को उठावे

और (समान चक्रं) एक समान राजचक्र को भी (परि आ विवृत्सन्) यथार्थ रीति से चलावे। (स्यः सूर्यः) वह सूर्य के समान वा (अर्णवः) समुद्र के समान तेजस्वी, गम्भीर और (जनानां) मनुष्यो के बीच मे (केतुः) ध्वजा के समान ऊंचा, (महान्) गुणो मे बड़ा और (केतुः) स्वयं ज्ञानी, अन्यो को जनाने वाला, वह (प्रसवीता) उत्तम मार्ग में चलाने हारा पुरुप (उत् एति उ) उत्तम पद को प्राप्त हो। उसी प्रकार नायक स्वप्रकाशकस्वरूप होने से 'एतश' सर्वप्रकाशक होने से 'सूर्य' है वह समस्त ब्रह्माण्ड-काल-चक्र को चलाता, सबका उत्पादक ज्ञानवान्, महान् है। (सूर्यस्य) सूर्यः। विभक्तिव्यत्यय इति सायणः। सूर्यः स्यः इति वा पदच्छेदः। उभयत्र विभक्तेर्लुक् आदेशः।

विभ्राजमान उपसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।
एप मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (देव॰ सविता) प्रकाशमान् सूर्य, (उषसाम् उपस्थात्) उषाओं मे से (विभ्राजमानः) विशेष रूप से चमकता हुआ, (रेभैः) शब्दकारी वायुओं, स्तुतिकर्त्ता जीवों से (अनुमद्यमानः) वार २ स्तुति किया जाकर (उदेति) उदय को प्राप्त होता है वह (समानं धाम न प्रमिनाति) सबके प्रति प्राप्त होने वाले तेज को नष्ट नहीं करता, सबको समान रूप से प्रकाश देता है उसी प्रकार (यः) जो महापुरुष, (समानं धाम) अपने एक समान, अनुरूप तेज, नाम स्थान, पद को (न प्र-मि-नाति) नष्ट नहीं करता तो भी (उपसाम्) प्रभात वेलाओं के समान उत्तम अनुराग से युक्त प्रजाओं के बीच में (रेभैः) उत्तम विद्वानों द्वारा (अनु-मद्यमानः) प्रतिदिन स्तुति एवं उपदेश किया जाकर (उद् एति) निरन्तर विद्या प्रकाश तथा बल दीप्ति से उदय को प्राप्त होता, उन्नति के पदपर गति करता है, (एपः) वह (मे) मेरा (देव) ज्ञानदाता पुरुप वा ऐश्वर्यप्रद राजा (सविता) उत्पादक पितावत् (चच्छन्द)

गृहवत् शरण दे। (२) इसी प्रकार प्रकाशस्वरूप प्रभु सबसे स्तुत या उपदिष्ट होकर हमारे हृदय में उदित हो।

दि॒वो रु॒क्म उ॑रु॒चक्षा॒ उदे॑ति दू॒रेअ॑र्थस्त॒रणि॒र्भ्राज॑मानः।
नू॒नं जना॒ः सूर्ये॑ण॒ प्रसू॑ता॒ अय॒न्नर्था॑नि कृ॒णव॒न्नपां॑सि ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (दिवः रुक्म) विशाल आकाश में सुवर्ण के आभरण के समान देदीप्यमान (उरु-चक्षाः) बड़े २ विशाल आकाश और लोकों को प्रकाशित करता हुआ (तरणिः) आकाश पार करने वाला, (भ्राजमानः) चमकता हुआ (दूरे-अर्थः) दूर २ तक स्वयं प्रकाश फैलाता हुआ (उदेति) उदय होता है। और (जनाः) मनुष्य जन्तुगण (सूर्येण प्रसूताः) सूर्य द्वारा प्रेरित होकर (अर्थानि अयन्) प्राप्तव्य पदार्थों को प्राप्त करते और (अपांसि कृणवन्) नाना कर्म करते है। उसी प्रकार (तरणिः) नौका के समान प्रजाजनों, जीवों को समस्त दुःखो से पार करने वाला, (भ्राजमानः) प्रकाशमान् तेजस्वी, (दूरे अर्थः) दूर २ तक जाने वाला, उत्साही दूर देश से भी धन को प्राप्त करने वाला, (उरु चक्षा) विशाल चक्षु, बहुदर्शी पुरुष (दिवः रुक्म) कामनावान् प्रजा के बीच सुशोभित, उनको प्रिय लगने वाला होता है। और (जनाः) सब जन, ऐसे (सूर्येण) सूर्यवत् ज्ञान और तेज से युक्त पुरुष से (प्रसूताः) प्रेरित, उत्पादित, और शिक्षित होकर (अर्थानि अयन्) अपने प्राप्य पदार्थों को प्राप्त हों और (अपांसि कृणवन्) नाना कर्म करते है। (२) परमात्मा सबको भवसागर से पार उतारने से 'तरणि' (दूरे-अर्थः) सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा है, उसी से (प्रसूताः) उत्पादित सब जन अपने अभिलाषित फल पाते और कर्म करते है।

यत्रा॑ च॒क्रुर॒मृता॑ गा॒तुम॑स्मै श्ये॒नो न दीय॒न्नन्वे॑ति॒ पाथः॑।
प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते विधेम॒ नमो॑भिर्मित्रावरु॒णोत ह॒व्यैः ॥ ५ ॥

भा०—पूर्व आधी ऋचा का सूर्य देवता है। (दीयन् श्येनः न)

वेग से गति करता हुआ बाज पक्षी जिस प्रकार (पाथः अन्वेति) अन्तरिक्ष मार्ग में अपने शिकार के पीछे २ वेग से जाता है उसी प्रकार (श्येनः) प्रशस्त मार्ग से जाने वाला, सुचरित विद्वान् पुरुष (दीयन्) सन्मार्ग पर गति करता हुआ उस (पाथ) सन्मार्ग का (अनु एति) सदा अनुगमन करे। (यत्र) जिससे जाते हुए (अमृताः) अमर आत्मा, दीर्घायुयुक्त, जन (अस्मै) इसको (गातुं चक्रु) ज्ञान का उपदेश करते हैं।

उत्तरार्ध ऋचा के देवता मित्र और वरुण हैं। हे (मित्रावरुणा) दिन रात्रि के तुल्य स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ गुरुजनो! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय होने पर (हव्यैः नमोभिः) देने और स्वीकार करने योग्य उत्तम अन्नों और विनयादि सत्कार युक्त वचनो से (वां) आप दोनो की (प्रति विधेम) प्रति दिन सेवा करें अथवा, (वां प्रति उदिते सूरे नमोभिः हव्यैः विधेम) आप दोनों के प्रति उत्तम रीति से प्राप्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के आने पर उसकी उत्तम वचनों, अन्नों से सेवा करे।

नू मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधन्तु।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥६।५

भा०—व्याख्या देखो सू० ६२। मं० ६ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

दि॒वि क्षय॑न्ता॒ रज॑सः पृथि॒व्यां प्र वां॑ घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिजो॑ ददीरन्।
ह॒व्यं नो॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सु॒जा॑तो॒ राजा॑ सु॒क्षत्रो॒ वरु॑णो जुषन्त ॥१॥

भा०—(अर्यमा) अर्यमा सूर्य जिस प्रकार (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हुए और मेघों को

और सूर्य की किरण (घृतस्य निर्णिजः) जल और तेज के नाना शुद्ध रूपों को (प्र ददीरन्) अच्छी प्रकार से देते, प्रकट करते है। उसी प्रकार (दिवि) ज्ञान, व्यवहार और विजिगीषा में विद्यमान (रजसः) प्रजाजनों और (पृथिव्यां क्षयन्ता) पृथिवी में ऐश्वर्यवान् होकर रहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही एवं श्रेष्ठ जनो! (वां) आप लोगों को (निः-निज रजसः) शुद्ध पवित्र आत्मा वाले उत्तम जन (घृतस्य प्र ददीरन्) तेजोयुक्त ज्ञानप्रकाश का प्रदान करें। (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) दुष्ट शत्रुओं का नियन्ता, (सु-जातः) उत्तम पूज्य पद पर प्रसिद्ध, (राजा) देदीप्यमान, तेजस्वी (सु-क्षत्रः वरुणः) उत्तम बल, धन का स्वामी, स्वयं वरणीय श्रेष्ठ राजा ये सब (नः हव्यं) हमारा दिया पदार्थ (जुषन्त) सेवन करें अर्थात् ये सब लोग प्रजा को मनमाना न लूटें खसोटें प्रत्युत सर्वसाधारण प्रजाजन जितना प्रेमपूर्वक दे उसका ही उपभोग करें।

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

भा०—हे (राजाना) राजा रानी वा राजा सेनापति के समान प्रजाओं के बीच चमकने वाले, (महः ऋतस्य गोपा) बड़े भारी धनैश्वर्य और ज्ञान के रक्षक, (सिन्धु-पती) वेग से जाने वाले अश्वों, समुद्रवत् विशाल प्रजाजनों और सैन्यों तथा प्राणों के पालक, (क्षत्रिया) वीर, बलशाली होकर तुम दोनों (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। हे (जीर-दानू) जलप्रद मेघ और वायु के समान संसार को वेग, जीवन, और प्राण के देने वाले! (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो! जिस प्रकार वायु और मेघ वा विद्युत् और सूर्य दोनों ही (दिवः वृष्टिम् इन्वतः) आकाश से वृष्टि को लाते है, और (दिवः इडाम् इन्वतम्) भूमि से अन्न को उत्पन्न करते है इसी प्रकार आप उक्त दोनों भी (दिवः) व्यापार आदि से (वृष्टिम् अव इन्वतम्) धन समृद्धि की वृद्धि प्राप्त

कराओ (उत) और (नः) हमे (इडां अप इन्वतम्) उत्तम वाणी और अन्न सम्पदा प्राप्त कराओ ।

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु । ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् (वरुणः) वरण करने योग्य (देवः) दानशील (अर्यः) स्वामी, (नः) हमे (तत्) वे सब जन (साधिष्ठेभि॰ पथिभिः) अति उत्तम २ मार्गों से (प्र-यन्तु) अच्छी प्रकार ले जावे, चलावे । (आत्) अनन्तर (यथा) यथोचित रीति से (नः) हम में से (सु-दासे) उत्तम दानशील के हितार्थ (अरिः) स्वामी राजा (नः ब्रवत्) हमें उपदेश करे । हम सब (देव-गोपाः) विद्वानो से सुरक्षित और विद्वानो की रक्षा करते हुए (इषा मदेम) अन्न से खूब तृप्त प्रसन्न हो ।

यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च । उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥४॥

भा०—(मित्रावरुणा राजाना घृतेन उक्षाथां) मित्र, वरुण, वायु, मेघ वा विद्युत् और सूर्य, दोनों जिस प्रकार दीप्ति युक्त होकर जल और तेज का वर्षण करते और (सु-क्षितीः तर्पयेथाम्) उत्तम भूमियों को खूब तृप्त करते हैं उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और दुःखों के वारक (राजाना) तेजस्वी राजा जनो ! आप दोनो (घृतेन) जल और तेज से (सु-क्षिती) उत्तम भूमियों और प्रजाओं को (उक्षेथाम्) सींचो, उनको पुष्ट करो । (ता) वे आप दोनों प्रजाजनों को (तर्पयेथाम्) खूब तृप्त करे । और (यः) जो प्रजाजन (वां गर्त्तं) आप दोनों के रथ, सभाभवन और कृषि, स्तुति, उपदेश आदि भी (मनसा तक्षत्) ज्ञानपूर्वक करे. (ऊर्ध्वाम्) ऊपर जाने योग्य (धीतिम्) कर्म (कृणवत्) करे (धारयत् च) वहां ही स्थापित करे, आप दोनों (एतम्) उसको भी तृप्त, प्रसन्न करो ।

एषः स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥६॥

भा०—(वायवे शुक्रः न) वायु के लिये जिस प्रकार (शुक्रः) शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, उसी प्रकार हे (वरुण) श्रेष्ठजन! हे (मित्र) स्नेहयुक्त जन (तुभ्यम्) तेरे लिये (एषः) यह (स्तोम) स्तुति वचन और (सोमः) यह ऐश्वर्य भी (शुक्रः) कान्तियुक्त होकर विद्यार्थी के समान तेरी वृद्धि को (अयामि) प्राप्त हो। आप दोनो (धियः अविष्टं) उत्तम कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) बहुत से ज्ञान को धारण करने वाली उत्तम बुद्धियो वा ज्ञानो का उपदेश करो। (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) आप हमे सदा उत्तम सुख कारक उपायों से पालन किया करें। इति षष्ठो वर्गः॥

[६५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु॥१॥

भा०—(ययोः) जिनका (अक्षितम्) कभी नाश न होने वाला, (असुर्यम्) प्राणों मे रमण करने वाले, 'असुर' अर्थात् जीवो के हित कारक, (ज्येष्ठं) सबसे श्रेष्ठ बल (विश्वस्य) सबको (जिगत्नु) जीतने वाला, सबसे अधिक है वे दोनो (यामन्) राज्यादि शासन, राज्यप्रबन्ध के कार्य में (आचिता) आदर प्राप्त करने योग्य हों। (सूरे उदिते) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (उदिते) उदय होने वा सर्वोपरि प्रधान पद प्राप्त कर लेने पर मैं (वाम्) आप दोनो नर नारी वर्गों और राजा प्रजा वर्गों में से (पूत-दक्षं) पवित्र बल और आचारवान् (मित्रं) सर्व

स्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (सूक्तैः) उत्तम वचनों से मैं प्रजाजन (प्रति हुवे) प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करूं। अर्थात् तेजस्वी राजा के अधीन रहकर भी प्रजा अति वलशाली, प्रजास्नेही, सर्वविजयी वलवान् पुरुषों का सदा आदर करती रहे।

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र या देश मे हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही, प्राण वायुवत् प्रिय और वरण योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (द्यावा) सूर्य और भूमिवत् विद्वान् और अविद्वान् जन और (अहा च) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुष सभी (वां पीपयन्) आप दोनो को पुष्ट करते है उसी देश मे हम भी (अश्याम) नाना सुख समृद्धि प्राप्त करे। वे मित्र और वरुण दोनो ही (देवानाम्) विद्वान् मनुष्यों के बीच, प्राणो में प्राण उदान के समान (असुरा) वलवान् जीवनधारक, (तौ अर्या) वे दोनों ही स्वामी स्वामिनी के समान गृहपालक और (ता) वे दोनो ही (नः क्षितीः) हमारी भूमियो और मानव प्रजाओ को (ऊर्जयन्तीः) उत्तम अन्न और वल सम्पादन करने वाला (करतम्) बनावे।

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर के मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे को रक्षकवत् चुनने वाले राजा प्रजा, स्वामी-भृत्य, स्त्री पुरुष जनो ! (ता) वे आप दोनों (भूरि पाशा) वहुत से वन्धनों से सुवद्ध होकर (अनृतस्य) असत्याचरण को पार कराने के लिये (सेतू) वन्धे पुल के समान होओ। और (रिपवे मर्त्याय) शत्रुभूत पापी पुरुष के नाश के लिये आप दोनों (दुर्-अत्ये तू) दुःख से अतिक्रमण करने योग्य अलंघनीय शासन वाले होओ। (वाम्) आप दोनो के (ऋतस्य पथा) सत्याचरण के मार्ग

से चलकर हम भी (नावा आपः न) नाव से जलों के समान (दुरिता तरेम) सब दुःखों, पापों को पार कर जावें।

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रावरुणा) सूर्य मेघ वा वायु मेघ के समान सर्वप्रिय सर्वश्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (हव्य-जुष्टिं) प्रेम से स्वीकार करने योग्य अन्न आदि को प्रेम से स्वीकार करो। (घृतैः गव्यूतिम्) जलों से भूमि भाग के समान (इडाभिः) उत्तम वाणियों से वाणी के उत्तम पात्रों को (उक्षतम्) सेचन करो, उनमें ज्ञान की वृद्धि करो। आप दोनों (वाम्) अपने (दिव्यस्य) ज्ञान से पूर्ण, प्रकाश युक्त (चारोः) उत्तम (उद्नः) जलवत् शान्तिदायक वचन का (वरम्) श्रेष्ठ प्रयोग (जनाय) समस्त प्रजाजन के हितार्थ (प्रति) प्रतिदिन (आ पृणीतम्) किया करो।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥७

भा०—व्याख्या देखो सू० ६४। मं० ५॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[६६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—३, १७—१९ मित्रावरुणौ। ४—१३ आदित्याः। १४—१६ सूर्यो देवता॥ छन्दः—१, २, ४, ९ निचृद्गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ५, ६, ७, १८, १९ आर्षी गायत्री। १७ पादनिचृद् गायत्री। ८ स्वराड् गायत्री। १० निचृद् बृहती। ११ स्वराड् बृहती। १३, १५ आर्षी भुरिग् बृहती। १४ आर्षीविराड्बृहती। १६ पुर उष्णिक्॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः।
नमस्वान्तुविजातयोः॥ १ ॥

भा०—(तुवि-जातयोः) बहुत सी विद्याओं मे प्रसिद्ध एवं स्नातक वा प्रवीण, (मित्रयोः) परस्पर स्नेही और परस्पर (वरुणयोः) गुरु शिष्य रूप से वरण करने वाले दोनो का (नमस्वान्) उत्तम विनययुक्त व्यवहार वाला, बलशाली (शूष्यः) अति सुखकारी, (स्तोमः) स्तुति योग्य उपदेश, बल-वीर्य और अधिकार (नः एतु) हमे प्राप्त हो। अथवा (नः मित्रयोः वरुणयोः) हम लोगो मे से परस्पर मित्र, परस्पर वरण करने वाले, बहुत से गुणों और विद्याओ मे प्रसिद्ध स्त्री पुरुषो को (शूष्यः एतु) सुखकारी स्तुत्य पद प्राप्त हो।

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा॥२॥

भा०—(देवाः) विद्वान् मनुष्य (या) जिन दोनो को (धारयन्त) व्रत आदि धारण कराते है वे आप दोनो (सु-दक्षा) उत्तम कर्म-कुशल (दक्ष-पितरा) बल वीर्य के पालक, (प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी होकर (असुर्याय) बलवान् पुरुषों मे श्रेष्ठ उच्च पद के योग्य होते है। अर्थात् तेजस्वी, उत्तम बलवान्, वीर्य पालक ब्रह्मचारी उनको ही देव, विद्वान् गण (असुर्याय) बलवान् योग्य प्रधान पद के ग्रहण के लिये व्रतादि धारण करावें।

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम्। मित्र साधयतं धियः॥३॥

भा०—(ता) वे दोनों और (नः) हमारे (स्तिपा) संघो की रक्षा करने वाले और (तनूपा) शरीरों की रक्षा करने वाले हो। हे (वरुण) श्रेष्ठ, वरणीय जन! हे (मित्र) स्नेहवन्! विद्वन् आप लोग (जरितॄणाम्) उपदेष्टा विद्वान् पुरुषों की (धियः) कर्मों, उत्तम बुद्धियों और विचारो को (साधयतम्) सिद्ध, सफल करो। ष्ट्यै संघाते। स्तयो संघान्नान् पातः इति स्तिपा॥

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः॥४॥

भा०—(उदिते सूरे) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के उदय होने

पर (यत्) जो (अनागाः) अपराधादि से रहित (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) सबका प्रेरक शासक और (भगः) ऐश्वर्यवान् है वह (अद्य) आज के समान सदा ही (सुवाति) हम पर शासन करे।

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमे ((अंहः) पाप कर्म से (अतिपिप्रति) पार करते है ऐसे (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान का उपदेश करने वाले विद्वान् धर्मात्मा पुरुषो ! आप लोगो से प्रार्थना है कि (यामन्) राज्य के नियन्त्रण और शत्रु पर चढाई के कार्य मे (सः) वह (क्षयः) शत्रुओं का नाशकारी पुरुष (नु) निश्चय से (नः क्षयः) हमारे गृह के समान ही (सुप्रावीः अस्तु नु) हमारी उत्तम रीति से रक्षा करने हारा भी हो। (यामन्) विवाह बन्धन का कार्य हो चुकने पर (स क्षयः) वह ऐश्वर्य युक्त, बसने वाला गृहपति (सु-प्रावीः प्र अस्तु) उत्तम गृहरक्षक होकर रहे। इत्यष्टमो वर्गः ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥६॥

भा०—(स्व-राजः) स्वयं अपने तेज से प्रकाशित होने वाले (स्व-राजः) धनैश्वर्य से चमकने वाले, धनों और स्वराष्ट्र निज-भृत्य मित्र बन्धु प्रजाजनो के राजा और (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्री, सभा वा सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, (ये) जो (अदब्धस्य) अखण्डित (व्रतस्य) कर्म को करने में (ईशते) समर्थ होते है वे (महा-राजानः) बड़े ऐश्वर्य के राजा, स्वामी, तेजस्वी होते है।

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ७

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से (सूरे प्रति उदिते) सूर्य के समान तेजस्वी होकर प्रत्येक के उत्तम पद पर प्राप्त होजाने

पर प्रत्येक को मैं (मित्रम्) सर्वस्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (अर्यमणम्) न्यायपूर्वक सबका स्वामिवत् नियन्ता और (रिशादसम्) दुष्टों का नाशक कहकर (गृणीषे) स्तुति करूं ।

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ८

भा०—हे (विप्राः) विद्वान् लोगो ! (अवृकाय) अचौर, अदाम्भिक निश्छल और (अवृकाय) जिसका ज्ञान का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ ऐसे पुरुष के लिये उसके (शवसे) ज्ञान और बल वृद्धि के लिये (राया) ऐश्वर्य के साथ २ (हिरण्यया) हित और रमणीय, मनोहारिणी (इयं मतिः) यह उत्तम बुद्धि वा ज्ञान (मेध-सातये) उत्तम अन्न, यज्ञ फलादि के प्राप्त करने के लिये सदा बनी रहे ।

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ९

भा०—हे (देव वरुण) सुखदाता, जगत्प्रकाशक ! सर्व दुःखवारक ! हे (मित्र) सर्वप्रिय ! हम (ते स्याम) तेरे ही होकर रहे । (सूरिभिः सह) वे विद्वानों के साथ मिलकर (ते) तेरी (इषं) इच्छा और (स्वः च) तेरे ज्ञान, प्रकाश, आनन्द और सुख को भी (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें ।

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥९॥

भा०—(ये) जो (त्रीणि विदथानि) तीनों प्रकार के ज्ञान, कर्म, यज्ञ और प्राप्तव्य पदार्थों और तीनों प्रकार के ज्ञातव्य वेदों को और (विश्वानि) तीनों विश्वों को (धीतिभिः) कर्मों, बुद्धियों, वाणियों और अध्ययन, स्मरण आदि द्वारा और (परिभूतिभि) उत्तम सामर्थ्यों से (येमुः) अपने वश करते हैं वे (बहवः) बहुत से (सूर-चक्षसः) सूर्य के समान सब पदार्थों के ज्ञानोपदेष्टा, सर्वप्रकाशक (अग्निजिह्वाः)

अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक वाणी के बोलने वाले (ऋतवृधः) सत्य ज्ञान के बढाने वाले हों। इति नवमो वर्गः ॥

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (शरदं) वर्ष, (मासम्) मास और (अहः अक्तुम्) दिन रात्र, (आत्) भी (ऋचं) स्तुति योग्य वेद मन्त्रों से अर्चना योग्य (यज्ञम्) उपास्य परमेश्वर वा यज्ञ को अथवा (यज्ञम्, ऋचं) यज्ञयोग्य, उपास्य, वेद-वेद्य प्रभु की (वि दधुः) विविध प्रकार से उपासना करते, वेद को विविध प्रकार से धारण करते हैं वे (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वस्नेही (अर्यमा) न्यायकारी शत्रु-नियन्ता जन (राजानः) राजाओं के समान तेजस्वी होकर (अनाप्यं) अन्यों से प्राप्त न होने योग्य वा बन्धु जनों से न विभाग करने योग्य (क्षत्रं) धन, ज्ञानमय वेद को (आशत) प्राप्त करते हैं ।

तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥ १२ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य, (मित्रः) स्नेहयुक्त (अर्यमा) स्वामिवत् वशी हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप सब लोग (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (रथ्यः) महारथियों के समान होकर (यत्) जिस ज्ञान को (ओहते) धारण करते हो हम (उदिते सूरे) सूर्य उदय होने पर (वः तत्) आप लोगों के उस ज्ञानैश्वर्य की (अद्य) आज (मनामहे) याचना करते हैं ।

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥ १३ ॥

भा०—(ये च) और जो (सूरयः) विद्वान् लोग (ऋतवानः) यज्ञ, तेज, सत्य ज्ञान का सेवन करने और अन्यों को देने वाले (ऋत-

जाताः) सत्य ज्ञान में प्रसिद्ध (ऋत-वृधः) सत्य को बढ़ाने वाले, (घोरासः) तेजस्वी, (अनृत-द्विषः) असत्य व्यवहार के द्वेषी, सत्य का कभी विरोध न करने वाले हैं हे (नरः) नायकवत् उत्तम पुरुषो ! (तेषां वः) उन आप लोगों के (सुच्छर्दिस्तमे) उत्तम रक्षा-गृह से युक्त (सुम्ने) सुखप्रद शरण में सदा (स्याम) रहें ।

उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः प्रतिह्वरे) आकाश में प्रत्यक्ष प्रतीयमान चक्राकार वृत्त मार्ग में (त्यत् दर्शतं वपुः उत् एति उ) वह दर्शनीय रूप वाला सूर्यमण्डल उदय होता है । और (यत्) जो (ईम्) सब तरफ़ से (आशु) वेग से गतिमान् (देवः) तेजस्वी, प्रकाशप्रद, (एतशः) शुक्ल वर्ण होकर (विश्वस्मै चक्षसे अरं) समस्त संसार को दिखाने के लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार (त्यत्) वह (दर्शतं वपुः) दर्शनीय शरीराकृति धारण करने वाला तेजस्वी पुरुष (प्रतिह्वरे) प्रत्येक कुटिल व्यवहार के ऊपर (दिवः) अपने तेज के कारण (उत् एति उ) उत्तम होकर विराजता है, उस पर शासन करता है, (यत्) जो (ईम्) सब ओर (आशुः) शीघ्रकारी, अश्व के समान बलवान् , (देवः) विद्वान् (एतशः) शुक्लकर्मा, सदाचारी होकर (विश्वस्मै चक्षसे) सबको ज्ञान-मार्ग दिखाने और सत् उपदेश करने के लिये (अरं वहति) बहुत अधिक ज्ञान और बलको, रथ को उत्तम अश्व के समान अपने कन्धे उठाकर चलाने में समर्थ होता है ।

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(जगत तस्थुषः) जंगम और स्थावर (शीर्ष्णः-शीर्ष्णः) प्रत्येक शिर के (पतिम्) पालक (सूर्यम्) सबके प्रेरक को (विश्वं रजः

समया) समस्त प्राकृतिक संसार के बीच में (सप्त हरितः) सातों दिशाओं के वासी प्रजाजन (स्वसारः) उत्तम भगिनियों के समान स्वयं उसकी शरण आकर (रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर लेजाते हैं। जिससे वह (सुविताय) उत्तम मार्ग से ले चले। इसी प्रकार सातों (स्वसारः सु-असारः) उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र फेंकने वाली (हरितः) नर-वीर सेनाएं उस तेजस्वी को सन्मार्ग पर चलने के लिये स्थावर, जंगम, अर्थात् स्थिर चल सम्पदा और प्रजा के प्रत्येक शिष्य के स्वामी को सब लोकों के बीच रथ में जुड़े अश्वों के समान धारण करती हैं।

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६ ॥

भा०—(तत्) वह (देव-हितं) समस्त विद्वानों और इन्द्रियों, प्राणों के बीच (हितम्) विद्यमान, सर्व कल्याणकारी (शुक्रम्) शुद्ध, सूर्यवत् तेजस्वी (उत्-चरत्) उत्तम पद को प्राप्त करे और हम उसके अनुग्रह से (शरदः शतं पश्येम) सौ बरस तक देखें। (शरदः शतं जीवेम) सौ बरस तक जीवें। इति दशमो वर्गः ॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥

भा०—हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ जन ! आप और (मित्रः च) सर्व स्नेही, आप दोनों (सोमपीतये) ओषधि रसवत् राष्ट्र-शरीर की रक्षा और उपभोग के लिये (काव्येभिः) विद्वान् कवि जनों की वाणियों द्वारा (अदाभ्याः) अहिंसाकारी, स्वयं भी अहिंसा व्रतचारी, होकर दोनों (आयातं) आइये और (द्युमत्) ऐश्वर्य से पूर्ण देश को प्राप्त करो।

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा। पिबतं सोममातुजी १८

भा०—हे (वरुण मित्रः च) वरुण और मित्र, रात्रि दिन के तुल्य, आप स्त्री पुरुषों ! (अद्रुहा) परस्पर द्रोह न करते हुए (आतुजी) शत्रुओं का

नाश और प्रजाओं का पालन करते हुए (दिवः धामभिः) सूर्य के प्रकाशमय तेजो से प्रभावित होकर (सोमं पिबतु) ऐश्वर्य को प्राप्त हो।

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा।
पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥ ११ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) दिन रात्रि वा सदा परस्पर स्नेही और परस्पर के वरण करने वाले (ऋत-वृधा) सत्य से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले होकर (सोमन् पातम्) प्रजावर्ग और शिष्यवर्ग सबको (पातं) पालन करो। और आप दोनों (नरा) उत्तम स्त्री पुरुष (आहुतिम्) जुषाणा) आदरपूर्वक दिये दान को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते हुए, (आ पातम्) हमें प्राप्त हूजिये ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

[६७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्षी त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि॥१॥

भा०—हे (नृपती) राजा रानी के समान, सब मनुष्यों के पालक सबके नायक प्राणों के पालक! हे (धिष्ण्यौ) स्तुति योग्य! उत्तम आसन के योग्य वा उत्तम बुद्धि सम्पन्न स्त्री पुरुषो! (यः) जो (दूतः न) दूत, संदेश-हर के समान (वां) आप दोनों को (अजीगः) सचेत करता, जगाता है, ज्ञान देकर प्रबुद्ध करता है वह मैं विद्वान् जन (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (हविष्मता) उत्तम ग्रहण योग्य भावों से युक्त, (यज्ञियेन) पूज्य सत्संग योग्य (मनसा) मन वा ज्ञान से (जरध्यै) उपदेश करने के लिये (सूनु पितरा न) माता पिताओं के प्रति बालक के

समान (रथम्) रमणीय वचन और उत्तम व्यवहार का (अच्छ विवक्मि) उपदेश करता हूं।

अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥

भा०—(समिधानः) अच्छी प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि, यज्ञाग्नि, ज्ञानाग्नि, और सूर्य, एवं अग्निवत् तेजस्वी ज्ञानी विद्वान् (अस्मे अशोचि) हमारे हितार्थ चमकता है। (तमसः अन्ताः चित्) अन्धकार अज्ञान के परले सिरे तक (उपो अदृश्रन्) स्पष्ट दिखाई देते हैं। (दिवः दुहितुः उषसः) देदीप्यमान सूर्य की कन्या के समान उषा से ही (पुरस्तात् श्रिये) पूर्व दिशा की शोभा के लिये जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार (दिवः दुहितुः) ज्ञानप्रकाश का दोहन करने वाले, (उषसः) पापों और अज्ञान के दग्ध करने वाले मातृवत् गुरु से (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ शिष्यरूप पुत्र (पुरस्तात्) आगे शोभा के लिये ही (केतु. अचेति) पूर्ण ज्ञानवान् होकर प्रबुद्ध होता है। इसी प्रकार अध्यात्म में—(दिव· दुहितुः) प्रकाशस्वरूप आत्मा की पुत्री के समान जो (उषसः) कान्तिमती विशेष प्रज्ञा है उसकी (पुरस्तात् श्रिये) और अधिक शोभा वृद्धि के लिये (केतुः) ज्ञानवान् आत्मा (अचेति) ज्ञान का विषय होता है। विशेष प्रज्ञा के उदय के अनन्तर प्रकाशरूप आत्मा का साक्षात् होता है।

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान्।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्व रूप इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, नर नारी वर्गो! हे (नासत्या) कभी भी असत्य भाषण और असत्य व्यवहार न करने वाले जनो! वा (न-असत्-यो) कभी असत् अर्थात् कुमार्ग पर पैर न रखने वाले जनो! (सुहोता) उत्तम ज्ञान

देने वाला, (वि वक्तान्) विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (स्तोमैः) उत्तम वेद मन्त्रो और उपदेशों से (नूनम्) अवश्य (वां) तुम दोनों को (अभि सिषक्ति) अपने साथ एक सूत्र मे बांधता है, आप दोनो (वसुमता रथेन) धन अन्नादि सामग्री से सम्पन्न रथ से यात्री जिस प्रकार उत्तम २ मार्गों से सुख से देशान्तर चला जाता है उसी प्रकार (वसु-मता) अन्तेवासि शिष्यों से युक्त, (रथेन) रथ, उपदेष्टा, वा स्थिर भाव के विद्यमान, (स्वर्विदा) ज्ञान के प्रकाश और उपदेश को स्वय प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने वाले आचार्य की सहायता से (पूर्वीभि) पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, (पथ्याभिः) हितकारी धर्म युक्त मार्गों से (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो।

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि॥४॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! (नूनम्) अवश्य मैं (युवाकु·) तुम दोनो को हृदय से चाहता हुआ, (वसूयुः) नाना अन्तेवासी शिष्य ब्रह्मचारियों की कामना करता हुआ आचार्य (सुते) उत्तम ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त कराने के निमित्त (अवोः) व्रत नियम ब्रह्मचर्यादि का पालन करने वाले आप दोनो मे से (वां) तुम दोनो को (माध्वी) मधु अर्थात् मधुर, ऋग्वेद, मधु विद्या, उपनिषत् ज्ञान, और 'मधु' आनन्दप्रद अन्नादि के योग्य जानकर (हुवे) प्राप्त करूं। (स्थविरास·) ज्ञानवृद्ध (अश्वाः) नाना विद्याविचक्षण पुरुष (वां) तुम दोनों को उत्तम अश्वों के समान (आ वहन्तु) आगे सन्मार्ग पर ले चलें। आप लोग (अस्मे) हमारे (सु-सुता) उत्तम रीति से बनाये, (मधूनि) ज्ञानो और अन्नों का (पिबाथः) उपभोग और पालन करो। मधु के समान नाना ज्ञानवृद्ध पुरुषों के सत्संग से एकत्र करने योग्य

होने से ज्ञान और नाना गृहस्थों से भिक्षा रूप में संग्रह करने योग्य अन्न 'मधु' है। ब्रह्मचारी वर्गों का उसको संग्रह करना 'मधुकरी' वृत्ति है।

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्। विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः॥५॥१२॥

भा०—हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय और विद्या की अभिलाषा करने वाले शिष्य, शिष्याजनो ! आप दोनों (मे) मेरी (प्राची) उत्तम, ज्ञान से युक्त, पूज्य (अमृध्राम्) कभी नाश न होने वाली और (वसूयुं) धनैश्वर्य से युक्त (धियं) बुद्धि और कर्म को (सातये) प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करो। उसी प्रकार हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय ज्ञान देने वाले गुरु गुरुआनी जनो ! आप दोनों (वाज-सातये) मुझ शिष्य को देने के लिये अपनी (प्राचीम्) अति उत्कृष्ट, पूज्य, (वसू-युं) वसु, शिष्य को प्राप्त होने वाली (अमृध्रा) अविनाशी, शिष्य को कष्ट न देने वाली (धियं) बुद्धि और वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। आप दोनों (वाजे) संग्राम और ज्ञान प्राप्त करने के अवसर मे (विश्वाः पुरन्धी) समस्त प्रजाओं के समान बहुत ज्ञानधारक बुद्धियों, वाणियों की (आ अविष्टं) सब प्रकार से रक्षा करो। आप दोनो (शची-पती) वाणी और शक्ति के पालक होकर (नः) हमे (शचीभिः) अपनी वाणियो से (ताः) वे नाना बुद्धिये (शक्तं) देकर हमे शक्तियुक्त करो। इति द्वादशो वर्गः॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु। आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम॥६॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप लोग (आसु धीषु) इन कर्मों और ज्ञान बुद्धियो के बीच, (नः अविष्टं) हमारी रक्षा करो। और (नः) हमारा (रेतः) वीर्य, (प्रजावत्) प्रजा उत्पन्न करने वाला, और (अह्रयम्) कभी नष्ट न होने वाला, अमोघ (अस्तु) हो। हम लोग (तोके तनये) पुत्र पौत्रादि के निमित्त (वां) आप

दोनो की (तूतुजानाः) रक्षा करते हुए, (सु-रत्नासः) उत्तम ऐश्वर्यों और गुणो से युक्त होकर (देव-वीतिं) विद्वानों की संगति को (आ गमेम) प्राप्त हो ।

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

भा०—हे (माध्वी) मधुर अन्न वा अन्न और ज्ञान का मधुवत् सञ्चय करने और सेवा करने वाले विद्याध्ययनशील जनो ! (एषः स्य.) यह वह (निधिः) ज्ञानैश्वर्यों का खजाना, विद्याओ का अगाध सागर गुरुजन (पूर्वंगत्वा इव) पूर्वंगामी आदर्श पुरुप के समान (वां सख्ये) आप दोनों के मित्र भाव मे (हितः) स्थापित है, वह (अस्मे) हम प्रजाजनो के हितार्थ (रातः) आप लोगो के हितार्थ आप लोगों को और हमको भी दे दिया गया है । आप लोग (मानुषीपु विक्षु) मनुष्य प्रजाओ में (हव्यं अश्नन्ता) उत्तम अन्नादि का उपभोग करते हुए (अहेडता मनसा) क्रोध और अपमान से रहित चित्त होकर (अर्वाक् यातम्) हमारे पास आया करें । अध्यात्म मे—अन्न भोक्ता प्राणापान 'माध्वी' है । उनके सख्य में पूर्वगन्ता आत्मा सबको प्राप्त है ।

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे (भुरणा) समस्त प्रजाओ का भरण पोपण करने वाले, जितेन्द्रिय नर नारियो ! (एकस्मिन्) एक ही (समाने) एक समान आदर से युक्त (योगे) परस्पर के मिलने पर (वां रथः) आप दोनों के रथ के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारा उपदेष्टा पुरुप (सप्त स्रवतः) प्रवाह से निकलने वाली सातों छन्दोमय वाणियों को (परि गात्) प्राप्त करे, करावे । (ये) जो (वां) आप दोनों के (धूर्षु) धुराओं में लगे, धुरन्धर विद्वान् (तरणयः) वेगवान् अश्वो के समान वेग से संकटो से

पार उतारने वाले विद्वान् जन (त्वां वहन्ति) आप दोनों को सन्मार्ग पर ले जाते हैं वे (सुभ्वः) उत्तम सुखजनक, उत्तम सामर्थ्यवान्, (देव-युक्ताः) विद्वानों से नियुक्त होकर (न वायन्ति) कभी सत्पथ से विचलित नहीं होते। अध्यात्म में—एक ही योग में (रथः) रन्ता, आत्मा (सप्त स्रवतः) मुखगत सात प्राणों पर वश करता है, प्राणगण सुख, शक्ति से युक्त होकर (न वायन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं हो, यदि वे विद्वानों द्वारा ज्ञान-पूर्वक सन्मार्ग में चलाये जावें।

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि॥९॥

भा०—हे जितेन्द्रिय नर नारियो ! (ये) जो लोग (राया) अपने ऐश्वर्य के बल से, (मघ-देयं) दातव्य, ऐश्वर्य, (जुनन्ति) प्रदान करते हैं उन (मघवद्भ्यः) उत्तम दातव्य ज्ञान-धन शाली पुरुषों के उपकार के लिये आप लोग (असश्चता हि भूतम्) दुर्व्यसनों में असक्त होकर रहो। (ये) जो लोग (अश्व्या) अश्वों से युक्त और (गव्या) गौवों से समृद्ध (मघानि) नाना धनों को (पृञ्चन्तः) प्राप्त करते हुए (सूनृताभिः) उत्तम वाणियों और अन्नों से (बन्धुं) अपने बन्धुजन को (प्र तिरन्ते) अच्छी प्रकार बढ़ाते हैं उनके लिये भी आप लोग विषयादि में न फसकर सदा सेवा में तत्पर रहो।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥१३

भा०—हे (अश्विना) सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों को प्राप्त करने वाले स्त्री पुरुषो ! हे अश्वादि सैन्यों के स्वामियो ! आप लोग (युवाना) दोनों युवा युवति होकर (मे) मुझ विद्वान् के (हवम् आ शृणुतम्) ग्राह्य उपदेश को आदरपूर्वक श्रवण किया करो। आप लोग (इरावत् वर्त्तिः) जल अन्न से युक्त मार्ग के समान, गृह को और (इरावत् वर्त्तिः) उत्तम प्रेरणा

से युक्त व्यवहार को (आ यासिष्टं नु) अवश्य प्राप्त होओ । (रत्नानि धत्तम्) उत्तम रत्नों के तुल्य रम्य गुणों को धारण करो । (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (जरतं च) प्राप्त होकर विद्या का लाभ किया करो । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभि नः सदा पात) उत्तम सुखदायक साधनों से हमारी रक्षा करें । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[६८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ८ साम्नी त्रिष्टुप् । २, ३, ५ साम्नी निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७ साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप् । निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम्

**आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥**

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी, रथी सारथीवत् इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (दस्रा) दुःखों का नाश करने में तत्पर होकर (युवाकोः) तुम दोनों को चाहने वाले मुझ विद्वान् की (गिर) उपदेश वाणियों को (जुजुषाणा) प्रेम से सेवन करते हुए (शुभ्रा) उत्तम गुणों, आभरणों से सुशोभित और (सु-अश्वा) उत्तम अश्वारूढ वीरवत्, उत्तम अश्ववत्, उत्तम विद्या में गतिशील, सुदृढ़ शरीर होकर (आ यातम्) आओ । (नः) हमारे (प्रति-भृता) एवज़ में दिये भरण पोषणार्थ (हव्यानि) उत्तम अन्नों का (वीतम्) भोजन करो । इसी प्रकार गृहस्थी लोग नवशिक्षित, स्नातक स्नातिकाओं और नवविवाहितों का आदर किया करें ।

**प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥**

भा०—हे विद्वान्, स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों को (मद्यानि) उत्तम आनन्द देने वाले (अन्धांसि) जीवन धारण कराने वाले उत्तम

अन्न (प्र अस्थुः) आपके लिये अच्छी प्रकार रक्खे है आप दोनों (मे) मेरे (हविष) उत्तम अन्न को (वीतये) खाने के लिये (अरं गन्तं) अवश्य आइये । (अर्यः) शत्रु के (हवनानि) आह्वानों को (तिर.) तिरस्कार करके (नः हवनानि) हमारे उत्तम वचनों को (श्रुतं) श्रवण करो । इस प्रकार उत्तम स्त्री पुरुषों का भोजन, वचनादि से सत्कार करना चाहिये ।

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान्, जितेन्द्रिय पुरुषो ! (रथः) उपदेश (मनोजवाः) मन को प्रेरणा करने वाला (शत-ऊतिः) सैकड़ों ज्ञानों से युक्त और सैकड़ो संकटों से बचाने वाला होकर (वां) आप दोनो के (रजांसि) तेजों को सूर्य के समान, राजस आवरणों को (तिरः इयर्त्ति) दूर करता है । हे (सूर्यावसू) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु जनो, विद्याओं के प्रकाशक गुरु जनों के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वास करने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी जनो ! वह सदा (अस्मभ्यं इयानः) हमारे हितार्थ आता हुआ भी हमारे राजस आवरणों को भी (तिरः) दूर करे । (२) हे (सूर्यावसू) सूर्य और सूर्यावत् पति पत्नी होकर गृहस्थ मे बसने वाले वर वधू जनो ! (अस्मभ्यं इयानः) हमारे तक पहुंचने के लिये आता हुआ आप दोनों का रथ (शत-ऊतिः) सैकड़ो मील तक या प्रति घंटा १०० मील जाने वाला और (मनोजवाः) मन के संकल्पमात्र से वेग से जाने वाला वा मन के समान तीव्रगति से जाने वाला होकर (रजासि तिर. इयर्त्ति) धूलि समूह को इधर उधर फेंकता है । (३) हे स्त्री पुरुषो ! (वां रथ.) आप दोनो का रमण साधन 'देह', रमणकर्त्ता आत्मा, (शत-ऊतिः) शत वर्ष तक सुरक्षित रहकर अनेक ज्ञान प्राप्त करके (रजांसि तिरः इयर्त्ति) राजस आवरणों या पार्थिव भौतिक अंशों को दूर करता है, हे सूर्यवत्

तपस्या का अभ्यास करने वाले जनो, ऐसा देह और रथ (अस्मभ्यं इयानः) हमें भी प्राप्त हो ।

रथः—रहतेर्गतिकर्मणः । स्थिरतेर्वा विपरीतस्य । रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठति इति वा । रपतेर्वा । रसतेर्वा । निरु० ९ । २ । १ ॥

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्यां ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

भा०—(देवयाः) विद्वानों और विद्याभिलाषी जनों को अन्नों और ज्ञानों का दान करने वाला, उनका पूजा सत्कार करने वाला पुरुष (अयं ह) वह है (यत्) जो (अद्रिः) मेघ के समान उदार होकर (सोम-सुत्) उत्तम अन्न ओषधियों के रसवत् ज्ञान को देने वाला होकर के (ऊर्ध्वः) उत्तम पद पर स्थित होकर (युवभ्याम्) तुम दोनो के लाभ के लिये (विवक्ति) विविध प्रकार से स्तुति वचन और उपदेश कहे । (विप्रः) विद्वान् पुरुष (वल्गू) उत्तम वाणिये बोलने वाले आप दोनों को (हव्यैः) दान योग्य उत्तम ज्ञानों और अन्नादि पदार्थों से (ववृतीत) उनका आदर सत्कार व्यवहार करे ।

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (वाम्) आप दोनों का (प्रियः सन्) प्रिय होकर (महिष्वन्तं) बहुत उत्तम परिणाम जनक (ओमानं) उत्तम ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य (दधते) स्वयं धारता और आप दोनों को धारण कराता है, उस (अत्रये) त्रिविध तापों से रहित, और तीन ऋणों से मुक्त विद्वान् पुरुष के लिये (यद् वा चित्रं भोजनं नु अस्ति) जो आपका नाना प्रकार का भोजन है वह (नि युयोतम्) अवश्य पृथक् करो । उपकारी, चतुर्थाश्रमी, ज्ञानप्रद परिव्राजक के अर्थ पति पत्नी अपने भोजन का उत्तमांश अवश्य पृथक् रख दिया करें । उससे वे अतिथि यज्ञ किया करें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम वेगवान् रथों, यन्त्रों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आप लोग (हविर्दे) उत्तम अन्न, भूति और उत्तम साधनों के देने वाले (जुरते) वृद्ध, मान्य (च्यवानाय) जाने को उद्यत पुरुष के हितार्थ (प्रतीत्यम्) प्रत्येक देश में पहुंचने योग्य (इतःऊति) इधर उधर से रक्षायुक्त, (वर्पः) उत्तम रूपयुक्त रथादि (अधि धत्थः) प्रदान करते रहो (वां त्यत्) आप दोनों का वही (प्रतीत्यं भूत्) प्रसिद्धि कर कर्म है । (२) उत्तम जितेन्द्रिय शिष्य शिष्याएं वृद्ध गुरुजनों के हितार्थ इस लोक में रक्षाकारी सन्ततिमय रूप को धारण करते हैं वही उनका उत्तम कर्म है । (३) विद्वान् शिल्पी जन वृद्धादि, गमनोत्सुक, भाड़ा देने के लिये वेग से जाने वाले रथादि को बनाते हैं । अध्यात्म में—'जुरत् च्यवान' यह देह है । अन्न से प्राणों में बल देता है, उसको ये प्राण अपान ही उत्तम रूप और कान्ति धारण कराते हैं ।

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्पदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, विद्वान् पुरुषो ! हे रथी सारथी-वत् उत्तम साधनसम्पन्न जनो ! (दुरेवासः) दुष्ट कामनायुक्त (सखायः) मित्र लोग जिसको (मध्ये समुद्रे) कष्टों के बीच समुद्र में (भुज्युम्) भुजा का अवलम्बन चाहने वाले (त्यं) उस पुरुष को आप लोग (निः पर्पद् ईं) अवश्य ही पारकर दिया करो (यः) जो (अरावा) विचारा नीरव, मूक, और (युवाकुः) तुम दोनों को चाहता और तुम दोनों को पुकारता हो । तुम्हारी सहायता की याचना करता हो ।

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः॥८॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम वेगयुक्त अश्वो और यन्त्रो की विद्या को जानने वाले शिल्पज्ञ स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (जसमानाय) प्रजा का नाश करने वाले, (वृकाय) चोर स्वभाव के, दम्भी पुरुष के लिये (चित्) अवश्य (शक्तम्) शक्त, सामर्थ्यवान् बनो । उसको दमन करने मे समर्थ होओ । और (हूयमाना) आदर से बुलाये गये आप दोनो (शयवे) शान्ति सुख के इच्छुक पुरुष के हितार्थ (श्रुतम्) उसकी प्रार्थनादि श्रवण करो । (यौ) जो आप दोनों (शक्ती) शक्ति से और (शचीभिः) वाणियों द्वारा (अपः न) जल जिस प्रकार नदी को पूर्ण करते है उसी प्रकार (स्तर्य) आच्छादन, भरण पोषण और आश्रय देने योग्य (अघ्न्याम्) न मारने योग्य, गौ के समान रक्षा योग्य कन्या, स्त्री, भूमि और प्रजा को (अपिन्वतम्) पुष्ट करो, पालो ।

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९।१५॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! (उपसां अग्रे यथा सु-मन्मा कारुः जरते) प्रभात वेलाओं के आगे, उनके आगमन के पूर्व जिस प्रकार उत्तम विचारवान्, स्तुतिकर्त्ता, भक्त पुरुष स्तुति करता है उसी प्रकार (सु-मन्मा) उत्तम ज्ञानवान्, (बुधानः) स्वयं बोधवान् और अन्यों को बोध प्रदान करता हुआ (कारुः) मन्त्रों का व्याख्यान करने वाला विद्वान् पुरुष (एषः स्यः) वही है जो (सूक्तैः) उत्तम मन्त्र गणों से (उपसाम् अग्रे) ज्ञान की कामना करने वाले शिष्य जनों के समक्ष (जरते) विद्या का उपदेश करता है । (अघ्न्या पयोभिः) गौ जिस प्रकार दुग्धों से पालक को बढाती है उसी प्रकार (अघ्न्या) कभी न नाश होने वाली वेदवाणी, प्रभुशक्ति वा आत्मशक्ति (तं) उसको (इषा वर्धत्) उत्तम इच्छा, शक्ति से बढाती है । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूय) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमे सदा उत्तम साधनो से पालन करो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[६९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनो देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३ आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (रथः हिरण्ययः) लोह सुवर्णादि धातु का बना उत्तम रथ (वृषभिः अश्वैः याति) बलवान् अश्वो या वेगवान् बैलो से चलता है, वह (घृतवर्तनिः) जल से सिचे मार्ग पर चलने हारा और (पविभिः रुचानः) चक्रधाराओं से सुशोभित और (इषां वोढा) अभिलषित अन्नादि सामग्री का वहन करने वाला, और (वाजिनीवान्) उत्तम बलवती शक्ति से युक्त होकर (नृ-पतिः) मनुष्यो का रक्षक होता है इसी प्रकार (वाजिनीवान्) उत्तम बलवती सेना, उत्तम ज्ञान ऐश्वर्य से सम्पन्न वाणी और भूमि का स्वामी, (नृ-पतिः) मनुष्यो का पालक राजा, (रथः) रमणीय स्वभाव वाला, उत्तम विद्या का उपदेष्टा, प्रजा को रमाने हारा (हिरण्ययः) हितैषी और सुखप्रद, (बद्बधानः) दुष्टों को बाधा, और बन्धनादि करता हुआ, (वृषभिः अश्वैः) उत्तम बलवान्, विद्याओं में पारंगत वीर पुरुषो सहित (रोदसी वा) सूर्य भूमिवत् सम्बद्ध आप दोनों राज प्रजावर्गों और गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (आ यातु) प्राप्त हो । वह (घृत-वर्त्तनिः) तेजो युक्त स्निग्ध मार्ग से जाने वाला उत्तम व्यवहारवान् और (पविभिः रुचानः) पवित्र आचरणों से युक्त, उत्तम हथियारो से सुशोभित गृहस्थ (इषां वोढा) अभिलषित दाराओं से विवाह करने हारा हो और राजा (इषां वोढा) सेनाओं को अपने ज़िम्मे लेकर चलने हारा हो ।

स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२॥

भा०—जिस प्रकार रथ (त्रि-वन्धुर') सारथि आदि के बैठने के योग्य तीन स्थानों से युक्त, होता है जिनसे (कुत्र चित् यामं दधाता) कहीं भी जाना चाहते हुए रथि सारथी जा सकते है उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (स') वह विद्वान् और वीर पुरुष (भूमा) महान् सामर्थ्य से युक्त, (पञ्च अभि) पांचों जनों के समक्ष ज्ञान और बल का विस्तार करता हुआ (त्रि-वन्धुरः) तीनों वेदों को धारण करने वाला, और तीन प्रकार के बल का आश्रय, होकर (मनसा) ज्ञान और प्रबल चित्त से युक्त होकर (अभि यातु) आगे आवे । (येन) जिसकी सहायता से आप दोनों विद्वान् स्त्री पुरुष राजा रानी, (देवयन्तीः विशः) कामना युक्त प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होते और (कुत्र चित्) जहां चाहे कहीं भी (यामं दधाना) गमन प्रयाण, परस्पर वैवाहिक बन्धन और राज्य प्रबन्ध को धारण करते हुए (गच्छथः) प्राप्त होते हो ।

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (रथः वर्त्तनिभ्यां दिवः अन्तान् बाधते) रथ चक्र धाराओं से भूमि के प्रान्त भागों को पीड़ित करता है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राज-प्रजाजनो ! हे रथी सारथिवत् सहयोगियो ! (वां) आप दोनों में (रथ.) वेगवान् रम्य व्यवहारवान् वा स्थिर दृढ़ पुरुष (वध्वा) अपनी सहयोगिनी वधू वा कार्य भार को वहन करने वाली शक्ति के साथ (यादमानः) यत्नवान् होता हुआ (वर्त्तनिभ्याम्) अपने ऐहिक और पारमार्थिक व्यवहारों या देवयान पितृयाण मार्गों से (दिवः अन्तान् बाधते) ज्ञान के सिद्धान्तों का अवगाहन करे । हे (स्वश्वा) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों से युक्त ! हे (दस्रा) अज्ञानादि नाशक जनो ! आप दोनों (यशसा) यश से यशस्वी होकर (अर्वाग् यातम्) आगे बढ़ो और (मधुमन्तं निधिं) मधुर ज्ञानों से युक्त, वेदमय निधि या ख़ज़ाने का (पिबाथः) पालन और उपभोग करो ।

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनो में (सूरः दुहितः) सूर्य की कान्ति वाली उषा के समान सुन्दरी (योषा) पुरुष को प्रेमपूर्वक सेवन करने की अभिलाषा वाली स्त्री (परि-तक्म्यायाम्) कामाग्नि युक्त, यौवन दशा मे, वा 'तक्म्या' उष्ण रजोधर्म की दशा के उपरान्त (श्रियं) आश्रय योग्य सेवनीय पुरुष को (परि वृणीत) स्वीकार करे। आप दोनो (शचीभिः) उत्तम कर्मो और वाणियो से (देवयन्तम्) विद्वान्वत् अपने प्रिय कामनावान् सहयोगी को अवश्य (अवथः) प्राप्त हुआ करो। और (वां घ्रंसम्) आप दोनों मे अति तेजस्वी पुरुष को ही (ओमना) रक्षण योग्य बल सहित (वयः) उत्तम, दीर्घायु और अन्न बलादि भी (परि गात्) प्राप्त हो।

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (रथिरा) रथ पर विराजमान रथी सारथी के समान सहयोगी स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनो मे से (यः) जो प्रत्येक (रथः) स्थिर भाव से रहने वाला और गृहस्थ मे रमण करने वाला, दूसरे को सुख देने वाला हो वह (उस्राः वस्ते) किरणों को सूर्य के समान उज्ज्वल वस्त्रो को धारण किया करे। वही (युजानः) जुड़े रथ के समान स्वयं भी (युजानः) संयुक्त होकर ग्रन्थि जोडकर (वर्त्तिः परियाति) गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हो। वा (वर्त्तिः परियाति) वेदि मे फेरे फिरे, परिक्रमा करे। (उषसः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, कन्या की (व्युष्टौ) विशेष विवाह की कामना होने पर (तेन) उस पुरुष से ही (न) हमे (शं योः) शान्ति सुख और दुःख का नाश हो। हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ मे, अर्थात् परस्पर की संगति और

दान-प्रतिदानमय सद्-व्यवहार में आप दोनो (नि वहतम्) निश्चय से एक दूसरे का भार अपने ऊपर धारण करो और विवाहित होकर रहो।

नरा॑ गौ॒रेव॑ वि॒द्युतं॑ तृषा॒णास्माक॑म॒द्य सव॒नोप॑ यातम्।
पु॒रु॒त्रा हि वां॑ म॒तिभि॒र्हव॑न्ते॒ मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्देव॒यन्तः॑ ॥६॥

भा०—(गौरा इव तृषाणा सवना) जिस प्रकार प्यासे दो मृग जलों को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! हे नर नारी जनो ! (अस्माकं) हम में से (गौरा) विद्या वाणी में निष्णात होकर (विद्युतम् उप यातम्) विशेष कान्ति को प्राप्त करो और (तृषाणा) कामनावान् या अत्युत्सुक होकर (अद्य) आज (सवना) यज्ञों, ऐश्वर्यों और पुत्र प्रसवादि गृहोचित कार्यों को (उप यातम्) प्राप्त होओ। विद्वान् पुरुष (वां) आप दोनों को (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (हवन्ते हि) स्तुति करते हैं। (अन्ये) दूसरे विपरीत भाव वाले शत्रुजन (देवयन्तः) द्यूतक्रीड़ा या व्यवहार करते हुए (वाम् मा नियमन्) आप दोनो को न बांध लें, न फंसालें।

यु॒वं भु॒ज्युमव॑विद्धं समु॒द्र उदू॑हथु॒रर्ण॑सो॒ अस्रि॑धानैः।
प॒त॒त्रिभि॑रश्र॒मैर॑व्य॒थिभि॑र्दं॒सना॑भिरश्विना पा॒रय॑न्ता ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रे अवविद्धं भुज्युम् यथा अश्विना अस्रिधानैः पतत्रिभिः अर्णसः पारयतः) समुद्र में फसे नाना भोग्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यापारी को जिस प्रकार वेगयुक्त नौका यन्त्रादि के अध्यक्ष जन पतवारों से जल से पार करते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय एवं अश्व अर्थात् विद्यापारंगत आचार्य के उत्तम शिष्यो ! एवं (अश्विना) रथी सारथिवत् एक ही गृहस्थ रथ में स्थित (युवम्) आप दोनों (समुद्रे अवविद्धं) उत्तम उत्साह युक्त कामनामय समुद्र में अवपीड़ित, (भुज्युम्) एक दूसरे की भुजा का अवलम्बन चाहने वाले या

सांसारिक भोग वा संसार मे रक्षा चाहने वाले सहचर को (अर्णसः) पितृ-ऋण से (अस्रिधानैः) नाश न होने वाले और (अश्रमैः) न थकने वाले, (अव्यथिभिः) कभी पीड़ित न होने और अन्यों को पीड़ा न देने वाले (पतत्रिभिः) गमन करने योग्य तीन आश्रमो से और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों से (पारयन्ता) पार करते हुए (उत् ऊहथुः) उत्तम मार्ग से ले जाओ।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥१६॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६७। मन्त्र १०॥ इति षोडशो वर्गः॥

[७०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥१॥

भा०—गृहाश्रम की श्रेष्ठता। हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे वरण करने योग्य उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषो! आप दोनो (नः) हमे (आगतम्) प्राप्त होओ। (वां) आप दोनो का (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (तत्स्थानम्) वह स्थान, गृहस्थाश्रम (प्र अवाचि) बडा उत्तम कहा जाता है, (यत्) जिसमे (वाजी) बलवान् पुरुष (शुन-पृष्ठः) सुखप्रद पीठ वाले अश्व के समान (शुन-पृष्ठः) समस्त सुखो का आश्रय होकर (अस्थात्) रहता है और आप दोनों पति पत्नी भी (ध्रुवसे) स्थिर होकर रहने के लिये (योनिम् सेदथुः) एक ही गृह मे विराजते हो।

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः॥२॥

भा०—(दुरोणे घर्म) जहां तक कोई व्यक्ति बढ नहीं सकता ऐसे ऊंचे आकाश देश मे तेजस्वी सूर्य के समान (मनुष) मनुष्य (दुरोणे) घर मे और राजा राज्य वा राष्ट्र मे उच्च पद पर विराज कर (अतापि) खूब तप करे । इसी प्रकार ब्रह्मचारी (घर्मः) ज्ञान जल से सिक्त होकर, स्नातक होकर (मनुपः दुरोणे) मननशील आचार्य के गुरु-गृह मे अग्नि के समान (अतापि) तप करे । राजा राष्ट्र मे उच्चपद पर विराज कर सूर्यवत् तपे और दुष्टो को पीड़ित करे और उस समय (वां) तुम दोनों को (चनिष्ठा) अति श्रेष्ठ व गुरुवचनमय (सुमतिः) शुभमति (सिपक्ति) अवश्य प्राप्त हो । (एतग्वा चित्) अश्व के समान एक गृहस्थ रथ मे नियुक्त आप दोनों (सुयुजा) उत्तम सहयोगी जनो को (युजानः) जोड़ता हुआ, सत्कर्म मे नियुक्त करता हुआ (यः) जो (समुद्रान् सरितः) समुद्रों को नदियों के समान, वा नदी समुद्रो को मेघ के समान (पिपर्त्ति) पूर्ण करे वह उत्तम ज्ञानी गुरुजन सूर्यवत् तेजस्वी हो ।

यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वो के स्वामी, एवं इन्द्रियों के स्वामी, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (दिवः ओषधीषु) सूर्य के ताप को धारण करने वाली (विक्षु) प्रजाओ में दिन रात्रि के समान आप दोनों भी (दिवः) इस पृथिवी के (यह्वीषु) बड़ी २ (ओषधीषु) ताप, शत्रु संतापक तेज को धारण करने वाली सेनाओं और (यह्वीषु विक्षु) 'यह्व' अर्थात् सन्तानवत् पालन करने योग्य प्रजाओ के बीच मे (यानि) जितने भी (स्थानानि) मान आदर के पद है उन सब पदो पर आप लोग (पर्वतस्य मूर्धनि) पर्वत के शिरोभाग पर सूर्यवत तेजस्वी होकर (सदन्ता) विराजते हुए, (दाशुषे जनाय) करादि व वस्त्र भूषणादि दे देने वाले (जनाय) प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वहन्ता) कार्य भार को अपने

कन्धों पर लेते हुए (दधाथे) धारण करो । (२) इसी प्रकार युवा युवति भी तेजस्वी प्रजाओं में उत्तम स्थान प्राप्त करें, वे प्रजा की उत्पत्ति के लिये विवाह करें ।

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥४॥

भा०—हे (देवा) विद्वान् व्यवहारज्ञ, एवं परस्पर के इच्छुक तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (ओषधीषु) ओषधियों मे और (अप्सु) जलों में भी (यत्) जो ओषधियां और जलवत् द्रव पदार्थ, (ऋषीणां योग्या) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के वा प्राणो के पोषण योग्य हों उनकी ही आप दोनों (चनिष्टं) कामना किया करो और उनको ही (अश्नवैथे) प्राप्त कर खाया पिया करो । आप दोनों (पुरूणि रत्ना) बहुत से रत्न और रम्य गुणों को (दधतौ) धारण करते हुए (अस्मे) हमारे आगे (पूर्वाणि) पूर्व के प्रसिद्ध (युगानि) पति पत्नी के अनुकरणीय जोड़े का (अनु) अनुकरण करके (नि चख्यथुः) आदर्श रूप से होकर बतलाओ ।

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, युगल जनो ! आप दोनों (चित्) ही (ऋषीणां) मन्त्रों का साक्षात् दर्शन करने वाले विद्वान् पुरुषो के साक्षात् किये हुए (पुरूणि) बहुत से (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रो को (शुश्रुवांसा) श्रवण मनन करते हुए (अभि चक्षाथे) उनके तत्त्व ज्ञान का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया करो । आप लोग (जनाय) मनुष्य मात्र के उपकार के लिये (वरम्) उत्तम उद्देश्य को (प्रति यातम्) लक्ष्य करके चलो । (वरम् प्र यातम्) उत्तम ज्ञान और उत्तम फल प्राप्त करो, (वरम् आ यातम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और स्थान को ही

आओ। (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (वाम्) आप दोनो की (चनिष्ठा) अति उत्तम, प्रशंसनीय (सुमतिः भस्तु) शुभमति हो।

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३भवाति।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम्॥ ६॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, सदा सत्य व्यवहार के पालक और नासिकावत् मुख्य स्थान पर विराजमान स्त्री पुरुषो! (यः) जो (यज्ञः) पूजा सत्संग योग्य (हविष्मान्) उत्तम ज्ञान अन्न से सम्पन्न (कृत-ब्रह्मा) वेदाध्ययन मे कृतश्रम और धनादि मे समृद्ध (वां) आप दोनों के प्रति (समर्यः) नाना पुरुषों सहित (भवति) होता है आप दोनो ऐसे (वरम्) वरण करने योग्य (वसिष्ठं) सर्वोत्तम 'वसु', विद्वान् वा राजा को (उप आ यातम्) प्राप्त होओ, उसके पास और उसी के गृह पर आया जाया करो। हे स्त्री पुरुषो! (युवभ्याम्) आप दोनों के हितार्थ ही (इमा ब्रह्माणि) ये नाना वेदोक्त ज्ञान, अन्न नाना धन (ऋच्यन्ते) ऋचाओ के रूप मे प्रकट होते है, आदरपूर्वक प्रस्तुत किये जाते हैं।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।१७।४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (इयं) यह (मनीषा) मन की उत्तम इच्छा, बुद्धि और (इयं गीः) यह उत्तम वाणी है। आप दोनो (इमा) इस (सु वृक्ति) उत्तम स्तुति उपदेश योग्य वाणी को (वृषणा) बलवान् होकर (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन करें। (इमा ब्रह्माणि) ये वेद-वचन, धन और अन्न (युवयूनि) आप दोनों के ही हितार्थ हैं। (यूयं) हे विद्वान् लोगो! आप सब लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम २ साधनो से हमारी रक्षा किया करो। इति सप्तदशं सूक्तम्॥ इति चतुर्थोऽनुवाक.॥

[७१]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्ऋच सूक्तम् ॥

अप॒ स्वसु॑रु॒षसो॒ नग्जि॑हीते रि॒णक्ति॑ कृ॒ष्णीर॑रु॒षाय॒ पन्था॑म् ।
अश्वा॑मघा॒ गोम॑घा वां हुवेम॒ दिवा॒ नक्तं॒ शरु॑म॒स्मद्यु॑योतम् ॥१॥

भा०—(नक् उपसः अप जिहीते) जिस प्रकार उषाकाल से रात्रि हट कर दूर चली जाती है उसी प्रकार (उषसः) प्रभात वेला के तुल्य कान्ति-युक्त पति की याचना करने वाली (स्वसुः = स्व-सुः) स्वयं अपने वरण योग्य पति को प्राप्त करने वाली वरवर्णिनी कन्या से (नक्) उससे सम्बन्धी जन उसके माता पिता भाई आदि (अप जिहीते) दूर होजाते है । वह माता पिता से छूटकर पति की होकर रहती है । (कृष्णी) कृष्णवर्णा रात्रि जिस प्रकार (अरुषाय पन्थाम् ऋणक्ति) तेजस्वी सूर्य के लिये मार्ग छोडती और आप नष्ट होजाती है उसी प्रकार (कृष्णीः) हृदय को आकर्षण करने वाली मनोरमा स्त्री (अरुषाय) तेजस्वी, पुरुष के लाभ के लिये ही (पन्थाम्) मार्ग (रिणक्ति) रिक्त करती है । आप आगे २ चलती और पीछे पति को लेकर चलती है । हे स्त्री पुरुषो ! हे (अश्वामघा गोमघा) अश्वों और गौओ आदि धन से समृद्ध स्त्री पुरुषो ! हम लोग (वाम् हुवेम)आप लोगों से प्रार्थना करते है कि आप लोग (अस्मत्) हमसे (शरुम्) हिंसाकारी को (युयोतम्) दूर करो ।

उ॒पा॒याते॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॒ रथे॑न वा॒मम॑श्विना॒ वह॑न्ता ।
यु॒यु॒तम॒स्मदनि॑रा॒ममी॑वां॒ दिवा॒ नक्तं॑ माध्वी॒ त्रासी॑थां नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा विद्वान् अध्यापक और आचारशिक्षक गुरुजनो ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अपने को आप लोगो के प्रति समर्पण कर देने वाले के हितार्थ (उप आयातम्)

समीप आइये और (रथेन वामम् वहन्ता) रथ या गाड़ी आदि साधन से जिस प्रकार उत्तम धन सम्पदा लाई जाती है उसी प्रकार आप लोग (रथेन) उत्तम उपदेश से (वामम्) सुन्दर श्रवण करने योग्य ज्ञान को (वहन्ता) प्राप्त कराते हुए (अस्मत्) हमसे (अनिराम्) अन्नादि के दारिद्र्य, (अनिराम्) 'इरा' अर्थात् विद्योपदेशमय वाणी के अभाव को तथा (अमीवाम्) रोग-दुःखजनक दशा को (युयुतम्) दूर करो। और (दिवा-नक्तम्) दिन और रात (माध्वी) सदा मधुर प्रसन्न चित्त रहकर वा 'मधु' अन्न जल वा ज्ञान से युक्त होकर (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो।

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार रथ को बलवान् अश्व चलाते है और (ऋत-युग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं, वसुमन्तं रथं वहन्ति) ज्ञान पूर्वक लगे अश्वों से, सिली रासों वाले और धनादि सम्पन्न रथको लेजाते है उसी प्रकार हे (अश्विना) विद्या में व्यापक विद्वान् स्त्री पुरुषों के स्वामी जनो ! (वां) आप दोनों के (रथं) रमणीय गृहस्थोचित कर्त्तव्य तथा उपदेश आदि को (अवम-स्यां व्युष्टौ) आगामी समीपतम प्रभात वेला मे (सुम्नायवः) सुखा-भिलाषी (वृषण·) बलवान् पुरुष (वर्त्तयन्तु) सम्पादित करें। और आप दोनों अपने (स्यूम-गभस्तिम्) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त, सुप्रबद्ध (वसुमन्तं रथ) उत्तम बसने वाले वा वसु ब्रह्मचारियो से वा सुखैश्वर्य से युक्त इस गृहस्थाश्रम रूप रथ को (ऋतयुग्भि·) सत्य के बल से जुटे हुए, (अश्वै·) विद्वानों की सहायता से (वहेथाम्) धारण करो, सन्मार्ग पर ले चलो।

यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४॥

भा०—हे (नृपती) मनुष्य पति पत्नी ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार (रथः वोढा, त्रि-वन्धुरः) रथ अपने में मनुष्यों को उठाकर लेजाने से 'वोढा' और तीन दण्डों से बने पीढ़े से युक्त होता है, उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (वां) आप दोनों में से (रथः) रम्यस्वभाव का वा स्थिर होकर (वोढा) गृहस्थ के भार सहन करने वाला, विवाह करने हारा (त्रि-वन्धुरः) तीन ऋणों से बद्ध, (वसु-मान्) ऐश्वर्यवान् , (उम्र यामा) सूर्यवत् तेजस्वी होकर जाने हारा है और (यत् वां) जो तुम दोनों में से (विश्व-प्स्न्यः) विशेष उत्तम रूपवान् होकर (अधि जिगाति) प्राप्त होता है हे (नासत्या) कभी असत्य धारण न करने हारे स्त्री पुरुषो ! (एना) उस व्यक्ति के बल से ही (न॰ आ उपयातम्) हमें प्राप्त होओ।

युवं च्यवा॑नं ज॒रसो॑ऽमुमुक्तं॒ नि पे॒दव॑ ऊहथुरा॒शुमश्व॑म् ।
निरंह॑स॒स्तम॑सः स्पर्त॒मत्रिं॒ नि जा॑हु॒षं शि॑थि॒रे धा॑तम॒न्तः ॥ ५॥

भा०—हे विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) अश्ववत् वेग युक्त रथों, अश्वों, वाहनों और विद्यावान् पुरुषों के स्वामी जनो ! सभा-सेनापतियो ! (युवं) आप दोनों (च्यवानं) सन्मार्ग से जाने वाले पुरुष को (जरसः) वृद्धावस्था वा आयु के नाश से (अमुमुक्तम्) दूर करो। (पेदवे) दूर देश में जाने वाले के लिये (आशुम् अश्वम्) शीघ्र गामी अश्ववत् दूरयायी साधन को (नि ऊहथुः) निरन्तर चलाओ। और (अत्रिम्) तीनों प्रकार के दोषों से रहित वा इस लोक में विद्य मान पुरुष को (अंहसः) पाप और (तमस॰) अज्ञान अन्धकार में (निः स्पर्त्तम्) पार करो, (जाहुषम्) त्यागी निःसंग, निस्वार्थी पुरुष को (शिथिरे) शिथिल राष्ट्र में (अन्तः नि धातम्) भीतर के केन्द्र स्थान पर नियुक्त करो।

इ॒यं म॑नी॒षा इ॒यम॑श्विना॒ गीरि॒मां सु॑वृ॒क्तिं वृ॑षणा जुषेथाम् ।
इ॒मा ब्रह्मा॑णि युव॒यून्य॑ग्मन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ सदा॑ नः ।६।१८।

भा०—व्याख्या देखो सू० ७० । मं० ७ ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना १

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजने वाले प्रतिष्ठित जनो ! आप दोनों (गोमता) उत्तम बैलों वाले वा (अश्ववता रथेन) घोड़ो वाले (पुरु-चन्द्रेण) बहुत धनादि सम्पन्न वा बहुतों को आह्लादित करने वाले (रथेन) रथ से (आ यातम्) आओ । (विश्वा नियुतः) सब उत्तम प्रजाएं, सेनाएं वा नियुक्त भृत्यादि प्रजाएं (वाम् अभि सचन्ते) आप दोनो की ही, सेवा करती हैं । आप दोनों (स्पार्हया) स्पृहा करने योग्य, मनोहर (श्रिया) शोभा से और (तन्वा) उत्तम स्वस्थ शरीर से (शुभाना) शोभित होकर हमे प्राप्त होओ ।

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने हारे विद्वान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! आप लोग (देवेभिः) विद्वान् पुरुषो के साथ और (स-जोषसा) प्रीति से सेवने योग्य (रथेन) रथ से, वा स्थिर, रम्य व्यवहार से (नः आयातम्) हमे प्राप्त होओ। (युवोः हि नः) आप दोनों के (पित्र्याणि सख्या) पिता पितामहादि से चले आये सौहार्द भाव हमारे साथ बने रहे । (युवोः न बन्धुः समानः) हमारे और तुम्हारे बन्धु भी समान हो (उत) और आप दोनो (तस्य) उस बन्धु को (वित्तम्) भली प्रकार जानें ।

अज्ञान और दुःख के (पारम् अतारिष्म) पार हो जायें। हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (गीः) उत्तम विद्वान् पुरुष (पुरुदंसा) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाले, (पुरुतमा) बहुतों में उत्तम, (पुरुजा) सब के आगे अग्रणीवत् चलने वाले, (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से विशेष आप दोनों की (हवते) प्रशंसा करता है।

न्यु॑ प्रि॒यो मनु॑षः सादि॒ होता॒ नास॑त्या॒ यो यज॑ते॒ वन्द॑ते च।
अ॒श्नी॒तं मध्वो॑ अश्विना उपा॒क आ वां॑ वोचे वि॒दथे॑षु॒ प्रय॑स्वान् २

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख, सत्यनिष्ठ, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (प्रियः) प्रिय (मनुषः) मननशील, (होता) ज्ञान का देने वाला, पुरुष (यजते) यज्ञ करता, (वन्दते च) भगवान् की स्तुति करता या ज्ञान देता, सत्संग करता और प्रणाम और उपदेशादि करता है और जो (विदथेषु) यज्ञों और संग्रामो में (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (वाम् आ वोचे) तुम दोनो की अभ्यर्थना करता है आप उसके (उपाके) समीप (मध्वः अश्नीतं) मधु, ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करो।

अहे॑म य॒ज्ञं प॒थामु॑रा॒णा इ॒मां सु॑वृ॒क्तिं वृ॑षणा जुषेथाम्।
श्रु॒ष्टी॒वेव॒ प्रेषि॑तो वामबोधि॒ प्रति॒ स्तोमै॒र्जर॑माणो॒ वसि॑ष्ठः॥ ३॥

भा०—हम लोग (यज्ञम् उराणाः) बहुत २ यज्ञ करते हुए (पथा) अपने जीवन के मार्ग की (अहेम) वृद्धि करें। हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग इस (सुवृक्तिम्) सुखदायिनी सुमति का (जुषेथा) प्रेम पूर्वक सेवन करो। (जरमाणः वसिष्ठः) उपदेश करने हारा सर्वोत्तम वसु, पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) नाना उपदेश योग्य वचनों से (प्रेषितः श्रुष्टीवा इव) भेजे दूत के समान, (प्रेषितः) उत्तम इच्छा से युक्त (श्रुष्टीवा) श्रुति वचनो का ज्ञाता होकर (वाम् प्रति अबोधि) आप दोनों को ज्ञानवान् करे।

उप॒ त्या वह्नी॑ गमतो॒ विशं॑ नो रक्षो॒हणा॒ सम्भृ॑ता वी॒ळुपा॑णी ।
समन्धां॒स्यग्मत मत्स॒राणि॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा ग॑तं शि॒वेन॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (रक्षोहणा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो का नाश करने वाले. (संभृता) अच्छी प्रकार परिपुष्ट, (वीडु-पाणी) बलवान् हाथो वाले होकर (त्या) वे दोनो आप (वह्नी) कार्य-भार को वा गृहस्थ को अच्छी प्रकार उठाने मे अश्वो के समान दृढ़, अग्नियो के समान तेजस्वी होकर एवं विवाहित होकर (नः विशं उप गमतः) हमारे प्रजा वर्ग मे प्राप्त होवो । (नः) हमारे (मत्सराणि) उत्तम, तृप्ति-कारक (अन्धांसि) अन्नों को (सम अग्मत) प्रेमपूर्वक मिलकर प्राप्त करो । (शिवेन) कल्याणकारक, सुखप्रद रूप से (नः आगतं) हमे प्राप्त होवो, (न मा मर्धिष्टं) हमे पीड़ा मत दो ।

आ प॒श्चाता॑न्नासत्या पु॒रस्ता॒दाश्वि॑ना यातमध॒रादुद॑क्तात् । आ वि॒श्वतः॒ पाञ्च॑जन्येन रा॒या यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ।५।२०

भा०—व्याख्या देखो सू० ७२। मं० ५ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती ॥ षडृच सूक्तम् ॥

इ॒मा उ॑ वां॒ दिवि॑ष्टय उ॒स्रा ह॑वन्ते अश्विना ।
अ॒यं वा॑म॒ह्वेऽव॑से शचीवसू॒ विशं॑विशं॒ हि गच्छ॑थः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, अश्व अर्थात् राष्ट्र, और अश्वादि-सैन्य के स्वामी, सेनापति सभापति जनो, राजदम्पति युगल ! आप दोनों (उस्रा) उत्तम पदार्थों को देने वाले, ऊर्ध्व पदकी ओर जाने वाले, एवं गृह और राष्ट्र में स्वयं बसने और अन्यो को बसाने वाले, तेजस्वी (वां) आप दोनो को (इमा दिविष्टय.) उत्तम ज्ञान, व्यवहार और कान्ति चाहने

वाली प्रजाएं (हवन्ते) बुलाती हैं। और (अयं) यह विद्वान् वर्ग भी हे (शचीवसू) शक्ति और वाणी के धनी युगलो ! (वां) आप दोनों को (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (अह्वे) पुकारता और प्रार्थना करता है, आप दोनों (विशं विशं हि) प्रत्येक प्रजावर्ग में (गच्छथः) जाया करो।

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक जनो, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (सूनृतावते) उत्तम सत्य वाणी, और अन्नसम्पत्ति से युक्त मनुष्य के हितार्थ (चित्रं) अद्भुत, आश्चर्यकारक, और नाना प्रकार का (भोजनं) पालन करने का सामर्थ्य और भोगयोग्य उत्तम ऐश्वर्य (ददथुः) प्रदान करो, और (अर्वाक् रथं चोदेथां) अपने रमणीय व्यवहार, उत्तम उपदेश को रथ के समान आगे प्रेरित करो, उसको (समनसा नियच्छतम्) परस्पर एक चित्त होकर नियम में रक्खो और एक दूसरे के प्रति प्रदान करो। और (सोम्यं मधु) 'सोम' अर्थात् ओषधिरस में मिले मधु के समान अति गुणकारी, रोगनाशक, अन्न के समान पुष्टिकारक, (सोम्यं मधु) सोम अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्यानुरूप मधुर भोगों तथा सोम जीव, वा प्रभु के 'सोम' प्राण, वीर्य, 'सोम' पुत्र शिष्यादि तदनुरूप मधुर सुख का (पिबतम्) उपभोग करो और अन्यों को भी उस सुख का अनुभव कराओ।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे उत्तम नायको ! हे (जेन्यावसू) बसने वाले अन्य सब प्रजा वर्गों, गृहस्थों और ऐश्वर्यों, समीप बसने वाले शिष्यों, पर विजय करने वाले, उन सब से उत्कृष्ट आप

लोग (आ यातम्) आदर पूर्वक आइये । (उप भूषतम्) समीप होइये, विराजिये (मध्वः पिबतं) गुरु-गृह से मधुमय ज्ञानरस, वेद को, (दुग्धं पयः) दुहे हुए पुष्टिकारक दूध के समान (पिबतम्) पान करिये । हे (वृषणा) मेघ के समान ज्ञान-सुखों की वर्षा करने वालो, हे बलवान् पुरुषो ! (नः मा मर्धिष्टम्) हमारा नाश न करो, हमे मत मारो ।

अश्वा॑सो॒ ये वा॒मुप॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हं यु॒वां दीय॑न्ति॒ बिभ्र॑तः ।
म॒क्षु॒युभि॑र्नरा॒ हये॑भिरश्विना॒ दे॑वा यातमस्म॒यू ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वो, इन्द्रियों और विद्वानों के स्वामी जनो ! हे (नरा) नायकवत् स्त्री पुरुषवर्गों ! (ये) जो (वाम्) आप लोगों के (अश्वासः) अश्व, वेग से जाने वाले साधन वा विद्यावान् पुरुष (युवां बिभ्रतः) आप दोनों को धारण करते हुए, (दाशुषः गृहं) उस देने वाले प्रभु के घर तक (दीयन्ति) पहुंचा देते है उनही (मक्षूयुभिः हवेभिः) शीघ्रकारी अश्वों, साधनों वा विद्वानों से हे (देवा) स्त्री पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! आप (अस्मयू) हमें चाहते हुए (यातम्) आओ जाओ, जीवन यात्रा करो ।

अधा॑ ह॒ यन्तो॑ अ॒श्विना॒ पृक्षः॑ सचन्त सू॒रयः॑ ।
ता यं॑सतो म॒घव॑द्भ्यो ध्रु॒वं यशश्छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॒ नास॑त्या ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् एक आश्रम रूप रथ पर स्थित, आचार्य शिष्य, स्त्री पुरुष तथा विद्वान् और सामान्य जनो ! (अध ह) निश्चय से (यन्तः सूरयः) जाते हुए, आगे बढ़ते हुए, विद्वान्, परिव्राजक जन (पृक्षः सचन्त) सर्वत्र अन्न और स्नेह सम्पर्क को प्राप्त करते है । हे (नासत्या) सत्पुरुषों के प्रति कभी असत्य, असभ्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मभ्यम् मघवद्भ्यः) हम ऐश्वर्य और पूज्य ज्ञान वाले पुरुषों को (ध्रुवं) स्थिर

(यशः) यश और अन्न, और (छर्दिः) आवास के लिये घर (यंसत) प्रदान करो ।

प्र ये य॒युर॑वृ॒कासो॒ रथा॑ इव नृपा॒तारो॒ जना॑नाम् ।
उ॒त स्वेन॒ शव॑सा शूशुवु॒र्नर॑ उ॒त क्षि॑यन्ति सुक्षि॒तिम् ॥६॥२१॥

भा०—(ये) जो (अवृकासः) चोर-स्वभाव से रहित, सत्यनिष्ठ, निश्छल (रथाः) रथों के समान (स्वेन शवसा) अपने ज्ञान सामर्थ्य और प्रबल पराक्रम से (प्र ययुः) आगे जाते है और जो (नरः) नेता जन (शुशुवुः) खूब बढ़ते है, उन्नति को प्राप्त होते है (उत) और (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि को (क्षियन्ति) प्राप्त कर उसमे रहते और उसको ऐश्वर्य युक्त करते है वे ही (जनानां नृपातारः) सब मनुष्यों को पालन करने मे समर्थ, नृपति होते है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[७५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१॒षा आ॑वो दि॒वि॒जा ऋ॒तेना॑विष्कृण्वा॒ना म॑हि॒मान॒मागा॑त् ।
अप॒ द्रुह॒स्तम॑ आव॒रजु॑ष्टमङ्गि॒रस्त॑मा प॒थ्या॑ अजीगः ॥ १ ॥

भा०—(दिविजाः उषाः) सूर्य के आश्रय रह कर प्रकट होने वाली प्रभात वेला जिस प्रकार (आपः) विशेपरूप से खिलती (ऋतेन महिमानम् आविष्कृण्वाना आगात्) तेज से महान् स्वरूप को प्रकट करती हुई आती है, (तमः अप आवः) अन्धकार को दूर करती और (पथ्याः अजीगः) मार्गों वा मार्गवर्त्ती प्रजाओ को जगाती, प्रकाशित कर देती है, उसी प्रकार (दिवि-जाः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के अधीन जन्म लाभ करके वा (दिवि-जाः) उत्तम शुभ कामना मे विद्यमान (उषाः) कान्तियुक्त

युवति (वि आवः) अपने विविध गुणो को प्रकट करे, वह (ऋतेन) सत्य व्यवहार, ज्ञान से अपने (महिमानम्) महान्, आदरणीय मातृ-सामर्थ्य को (आवि. कृण्वाना) प्रकट करती हुई, (आगात्) आवे। (अजुष्टम्) न सेवन करने योग्य (तम) अज्ञान, शोकादि को अन्धकारवत् और (द्रुहः) द्रोह, अप्रीति के भावो को भी (अप आव.) दूर करे। वह (अङ्गिरस्तमा) प्राणो मे भी सर्वश्रेष्ठ, प्राणवत् अतिप्रियतमा वा ज्ञानवती विदुषी होकर (पथ्या.) उत्तम पथ योग्य, धार्मिक, शिष्टाचारो को (अजीगः) जागृत करे।

म॒हे नो॑ अ॒द्य सु॑वि॒ताय॑ बोध्युषो॑ म॒हे सौभ॑गाय॒ प्र य॑न्धि।
चि॒त्रं र॒यिं य॒शसं॑ धेह्य॒स्मे देवि॒ मर्ते॑षु मानुषि श्रव॒स्युम् ॥ २ ॥

भा०—हे (मानुषि देवि) मननशील, मनुष्य जाति के शुभ गुणों से युक्त स्त्रि! तू (नः) हमे (अद्य) आज, (महे सुविताय) बड़े भारी सुख प्राप्त कराने के लिये (बोधि) हो। हे (उष) प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त एवं पति को प्रेम से चाहने वाली स्त्रि! तू भी (महे सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य प्राप्त करने के लिये (प्र यन्धि) उत्तम रीति से विवाह के बधन में बंध। (अस्मे) हमारे (चित्रं रयिं) आश्चर्यकर नाना एवं संग्रह योग्य ऐश्वर्य और (मर्तेषु) मनुष्यों के बीच (यशसं) यशस्वी (श्रवस्युम्) ज्ञानी पुत्र (धेहि) धारण कर।

ए॒ते त्ये भा॒नवो॑ दर्श॒ताया॑श्चि॒त्रा उ॒षसो॑ अ॒मृता॑स॒ आगुः॑।
ज॒नय॑न्तो॒ दैव्या॑नि व्र॒तान्या॑पृ॒णन्तो॑ अ॒न्तरि॑क्षा॒ व्य॑स्थुः ॥ ३ ॥

भा०—(दर्शता. उषस. भानवः) दर्शनीय उषा वेला के किरण जिस प्रकार आते हैं, वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्त. अन्तरिक्षा वि तिष्ठन्ति) देव, सूर्य वा किरणों के योग्य प्रकाशादि कार्यों को करते हुए अन्तरिक्ष में विराजते हैं, उसी प्रकार (दर्शताया.) रूप गुणादि में दर्शनीय, अति मनोहर (उषस.) पति की कामना करने वाली, कान्तिमती कन्या वा विदुषी

स्त्री से ही (त्ये) वे नाना (एते) ये (अमृतासः भानवः) कभी नाश न होने वाले, दीर्घायु, (चित्राः) आश्चर्यकारी बलवान् वीर्यवान् होकर (आगुः) हमे प्राप्त होते है। वे (दैव्यानि) देव, विद्वान् पुरुषो मे करने योग्य (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्मों को (जनयन्तः) प्रकट करते हुए, (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष मे वायु के समान (आ पृणन्तः) सबको पालन पूर्ण, तृप्त, सन्तुष्ट करते हुए (वि अस्थुः) विविध रूपों मे विराजे। उत्तम स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्र दीर्घजीवी, तेजस्वी, देव, व्रतपालक और सुखकारी हों।

एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

भा०—(एषा) यह (स्या) वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् उषा काल के समान तेजस्वी पुरुष की कामनाओ को पूर्ण करने मे समर्थ (पराकात् युजाना) दूर देश से विवाह बन्धन में संयुक्त होकर विदुषी स्त्री शासक शक्ति के समान (सद्यः) अति शीघ्र ही अपने गुणो से (पञ्च क्षितीः) पांचो प्रकार के निवासियों, पञ्चजनो को (परि जिगाति) मात करती है, सबको अपने वश करती है। वह (जनानां) मनुष्यों वा जन्म लेने वाली प्रजाओ के (वयुना) ज्ञानो और कर्मों को न्यायपूर्वक (अभि पश्यन्ती) देखती हुई और (भुवनस्य) भुवन, जन समूह का (पत्नी) पालन करने वाली हो।

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम्।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य की (योषा) स्त्री (उषा) प्रभात वेला (वह्निभिः) यज्ञाग्नियों से (गृणाना) स्तुति की जाती हुई, (जरयन्ती) रात्रि का नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों की भगवत्-स्तुति मे युक्त होती है उसी प्रकार (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष

की (योषा) स्त्री, (उषा) कान्ति से युक्त होकर (वह्निभिः) विवाह करने के योग्य उत्सुक पुरुषों द्वारा (गृणाना) स्तुति की जाती है। वह ज्ञानधारक विद्वान् पुरुषों से उपदेश की जावे। वह (मघोनी) उषावत् पूज्य धन से युक्त, (वाजिनीवती) बलयुक्त और ज्ञानयुक्त क्रिया करने वाली (जरयन्ती) अपने गुणों से अवगुणों, अज्ञान शोक मोहादि को नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों द्वारा उपदेश प्राप्त कर (उच्छति) अपने गुणों का प्रकाश करे। (२) सूर्यवत तेजस्वी पुरुष की शक्ति, सेना और सभामयी है। वह बल, विजय युक्त होने से 'वाजिनी', नाना धन सम्पन्न होने से 'चित्रा-मघा' वह सब बसने वाले प्रजाजनों की स्वामिनी है, ऋषिगण, मन्त्रद्रष्टा ज्ञानी पुरुष उसको उपदेश करते, वह शत्रुओं का नाश करती, दुष्टों को सन्तप्त, पीड़ित करने से 'उषा', राज कार्य भार वहन करने वाले तेजस्वी पुरुषों से प्रशस्त है।

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वांश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥

भा०—(अश्वाः) अश्वों के समान दृढ, बलवान् अंग वाले, (चित्राः) पूजनीय, अद्भुत २ आश्चर्यजनक बलविद्या और गुणों से सम्पन्न, (अरुषासः) रोषरहित, सौम्य स्वभाव वाले तेजस्वी, (उषसः) स्वयं भी उत्तम काम्य पदार्थों की कामना करने वाले पुरुष (द्युतानां) कान्तिमती, (उषसम्) कामनावान् उत्तम वधू का (वहन्तः) विवाह द्वारा ग्रहण करते हुए (प्रति अदृश्रन्) नित्य देखी जावें। वह वधू (शुभ्रा) उत्तम आभूषणों से सुभूषित, शुभगुणों से युक्त, वधू (विश्वपिशा) नाना रूप के (रथेन) रथों मे (याति) जावे। और (विधते जनाय) विशेष प्रेम से धारण करने वाले प्रिय, पुरुष के लिये (रत्नं दधाति) देह पर उत्तम रत्न, गृह मे उत्तम धन, जीवन मे उत्तम व्यवहार, मन में उत्तम गुण, गर्भ में उत्तम पुत्र-रत्न (दधाति) धारण करे।

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृळ्हानि दददुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥

भा०—वह (सत्येभिः) सत्य गुणों, कर्मों और व्यवहारवान् (महद्भिः) बड़े, गुणवानों से (महती) पूज्य, (देवेभिः) उत्तम गुणों और विद्वानों और (यजत्रैः) पूजनीय, दानशील पुरुषों के साथ (सत्या) सत्य शील-वती, सभ्य, (महती) गुणो मे महान्, (यजता) दानशील (देवी) विदुषी कन्या सत्संग लाभ करे । वह (दृढानि) दृढ़ संकटो को भी (रुजत्) नाश करती हुई (ददद्) सुख प्रदान करे । (गावः) वृषभ, जिस प्रकार (उस्त्रियाणां मध्ये उषसं वावशन्त) गौवो के बीच मे से कामनावती कपिला गौ को ही चाहते है उसी प्रकार (गावः) विद्वान् एवं बलवान् जन भी (उस्त्रियाणाम्) घर बसाने की इच्छुक कन्याओं मे से भी (उषस) अपने प्रति विशेष कामनावान् वधू के प्रति (प्रति वावशन्त) कामना करे ।

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।२२

भा०—हे (उषः) कान्तिमति, प्रिय, कामना वाली ज्ञानवती विदुषि वधू ! तू (नः) हमारे (गोमत्) गौओं से युक्त, (वीरवत्) वीर पुत्रों से युक्त (रत्नं) उत्तम धन, उत्तम रम्य व्यवहार, पतिसंगादि गृहस्थोचित कर्म, पुत्र आदि (धेहि) धारण कर । तू (अस्मे) हमारे हितार्थ, (अश्वा-वत्) अश्वों से युक्त और (पुरु-भोजः) बहुतों को पालने और बहुतों मे भोगने योग्य ऐश्वर्य को भी (धेहि) धारण कर । (नः बर्हिः) हमारा यज्ञ और वृद्धिशील राष्ट्र, पद (Position) आदि (पुरुषता) पुरुषों मे (निदे मा कः) निन्दा करने योग्य मत बना । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमे सदा उत्तम साधनो से पालन करो । उषा सूक्तो के प्रायः सब मन्त्र राजशक्ति और विशोका प्रज्ञा, तथा परमेश्वरी शक्ति युक्त पदार्थों में भी लगते है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उदु॒ ज्योति॑र॒मृतं॑ वि॒श्वज॑न्यं वि॒श्वान॑रः सवि॒ता दे॒वो अ॑श्रेत् ।
क्रत्वा॑ दे॒वाना॑मजनिष्ट॒ चक्षु॑रा॒विर॑क॒र्भुव॑नं॒ विश्व॑मु॒षाः ॥ १ ॥

भा०—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन करते है । (सविता) समस्त संसार का उत्पादक, (देवः) सब सुखो का दाता, सूर्यादि लोको का प्रकाशक, (विश्वानरः) समस्त विश्व का और समस्त जीवो का नायक, सञ्चालक परमेश्वर (विश्व-जन्यम्) समस्त जनो के हितकारी, सब जनो में विद्यमान, समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले, (अमृतं) अमृत, अविनाशी, (ज्योतिः) परम प्रकाशमय ज्योति को (उत् अश्रेत् उ) सर्वोपरि होकर धारण करता है । वह (क्रत्वा) समस्त विश्व का बनाने वाला, अथवा (क्रत्वा) कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (देवानां) समस्त पृथिवी, सूर्यादि लोकों और विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सब को आंखवत् देखने वाला, अथवा (देवानां चक्षुः क्रत्वा) विद्वानों के ज्ञान दिखाने वाले ज्ञानमय वेद का कर्त्ता, (उषाः) सब पापों का दाहक, उषाकाल के समान कान्तियुक्त, (भुवनं) समस्त भुवन को (आविः अकः) प्रकट करता है । गृहस्थ पक्ष में—(सविता देवः विश्वानरः) प्रजोत्पादक विद्वान् सबका नायकवत् होकर (विश्व-जन्यं) आत्मा के देह के उत्पादक (अमृतं ज्योति उत् अश्रेत्) अमृत, चिन्मय, अविनाशी ज्योतिः रूप, वीर्यमय तेज, ज्ञानमय प्रकाश को उत्तम रीति से धारण करे । वह ज्ञान, और कर्म से मनुष्यों का चक्षुवत मार्गदर्शी हो, उसी प्रकार (उषाः) विदुषी स्त्री (भुवनं आवि अक) लोक को उषावत् ब्रह्माण्ड के समान अपने गृह को प्रकाशित करे ।

उसी प्रकार सत्यज्ञानी, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् सहयोग का सुख पाते है ज
माता पिता होकर सन्तान वा वीर्यरूप गूढ ज्योति को प्राप्त करते है, सत्य
मन्त्र होकर (उपासं अजनयन्) कामनायुक्त वधू को प्राप्त कर उससे
उत्तम सन्तान उत्पन्न करते है ।

स॒मा॒न ऊ॒र्वे अधि॒ सङ्ग॑तासः॒ सं जा॑नते॒ न य॑तन्ते मि॒थस्ते ।
ते दे॒वानां॒ न मि॑नन्ति व्र॒तान्यम॑र्धन्तो॒ वसु॑भि॒र्याद॑मानाः ॥५॥

भा०—जो पुरुष (समाने) एक समान (ऊर्वे) समूह या वर्ग में (अधि) एक अध्यक्ष के अधीन (संगतासः) एकत्र मिलकर (स जानते) सम्यक् ज्ञान और परिचय कर लेते है (ते) वे (मिथः) परस्पर का हिंसन या नाश करने की (न यतन्ते) चेष्टा नहीं करते । (ते) वे (देवानां व्रतानि) विद्वानो के कार्यों का (न मिनन्ति) नाश नहीं करते । और वे (वसुभिः) धनो द्वारा (यादमानाः) यत्नवान् होते हुए (अमर्धन्तः) और हिंसा न करते हुए संगत होकर जीवन व्यतीत करते है ।

प्रति॑ त्वा॒ स्तोमै॑रीळते॒ वसि॑ष्ठा उष॒र्बुधः॑ सुभगे तुष्टु॒वांसः॑ ।
गवां॑ ने॒त्री वाज॑पत्नी न उच्छोषः॑ सुजाते प्रथ॒मा ज॑रस्व ॥६॥

भा०—हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवति ! विदुषि ! (तुष्टुवांसः) स्तुति करने हारे, (उषर्बुधः) प्रभात वेलामें जागने वाले (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, विद्वान् गृहस्थ, ब्रह्मचारी गण, (त्वा) तेरी (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनो से (इडते) स्तुति करते है । हे (उषः) पापनाशिके ! तू (वाजपत्नी) ऐश्वर्य और ज्ञान का पालन करने वाली (गवां नेत्री) गौओं के समान सौम्य वाणियों को प्रस्तुत करने वाली होकर (नः) हमारे बीच (उच्छ) गुणो और ज्ञान का प्रकाश कर । हे (सु-जाते) उत्तम माता पिता की उत्तम पुत्रि ! तू (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ गिनी जाकर (जरस्व) अपने प्रिय पुरुष के गुणों का वर्णन कर ।

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥२३॥

भा०—(एषा) वह (उषा) कान्तिमती, वधू (राधसः नेत्री) धन को प्राप्त कराने वाली और वह (सूनृतानां नेत्री) अन्नों उत्तम ज्ञानमय वचनों और सत्य विद्याओं को प्राप्त कराने वाली होकर (उच्छन्ती) स्वयं उत्तम गुणों का प्रकाश करती हुई (वसिष्ठैः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारियों और सन्तान के उत्तम माता पिताओं द्वारा (रिभ्यते) स्तुति की जाती है, वह (अस्मे) हमारे (दीर्घ-श्रुतं) दीर्घ काल तक श्रवण किये जाने योग्य (रयिम्) ज्ञान ऐश्वर्य को (दधाना) धारण करने वाली हो। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखकारी साधनों से पालन करो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[७७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवताः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्॥ षड्ऋचं सूक्तम्॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि॥१॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला (उप रुरुचे) पतिवत् सूर्य के समीप स्त्रीवत् शोभित होती है। वह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) समस्त जीव संसार को निद्रा से उठकर विचरने के लिये प्रेरित करती है। (समिधे) प्रकाश करने के लिये (अग्निः अभूत) सूर्य रूप अग्नि प्रकट होता है, (मानुषाणां) मनुष्यों के लिये (तमांसि बाधमाना ज्योतींषि) अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाशों को (अकः) प्रकट करता है, उसी प्रकार वह परमेश्वरी शक्ति भी (युवतिः योषा न) युवति स्त्री के समान (विश्वं जीवं) समस्त विश्व को और समस्त जीव संसार

को (चराथै प्रसुवन्ती) नाना कर्म फलो के उपभोग के लिये उत्पन्न कर हुई (उप उ रुरुचे) सर्वत्र शोभा दे, (अग्निः) वह परमेश्वर अ के समान प्रकाशस्वरूप (समिधे) ज्ञान प्रकाश करने के लिये (अभूत हो । और वही (मानुषाणाम्) मनुष्यों के हृदय के (तमांसि अज्ञानान्धकारों को (बाधमाना) दूर करता हुआ (ज्योतिः) वेदम ज्ञानद्योतक प्रकाशो को (अकः) उपदेश करता है । (२) इसी प्रका गृहपत्नी, युवति स्त्री जीव बालकको उसको कर्म भोग और स्वतः सुखप्रा के लिये उत्पन्न करती है । 'अग्नि' रूप तेजस्वी विद्वान् विवाहाग्निव प्रज्वलित होता है, वह सब के अज्ञानो को दूर करने वाले विद्याप्रकाशं को प्रकट करता है ।

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् । हिरण्यवर्णा सुदृशीकसन्दृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

भा०—(अह्नां नेत्री) उषा, प्रभात वेला जिस प्रकार दिनों की प्रा रम्भक नायिका, (गवां माता) सूर्य की किरणो को अपने मे से माता के समान पैदा करती है, वह (हिरण्य-वर्णा) सुवर्ण के समान चमकती हुई (सुदृशीक-सन्दृग्) आंखो को सब पदार्थ अच्छी प्रकार दिखला देती है, वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष होती हुई, (स-प्रथा) विस्तृत होकर (रुशद् वासः बिभ्रती) मानो चमकीला वस्त्र पहने (विश्वं शुक्रम् अश्वैत) समस्त संसार को दीप्तियुक्त कर चमका देती और बढ़ती है उसी प्रकार परमेश्वरी शक्ति और नव वधू माता भी (अह्नां) न नाश होने वाले, नित्य, जीवों, न मरने योग्य बालक जीवों की (नेत्री) नायिका, प्राप्त कराने वाली, (गवां) लोकों, वाणियों और गौ आदि पशुओं की भी (माता) माता के समान पालन करने वाली । (सुदृशीक सदृग) दर्शनीय सम्यक् दृष्टि से युक्त, निष्पक्षपात, सौम्यनयनी, (हिरण्य-वर्णा) उज्ज्वल, हित रमणीय वर्ण वाली हो । वह (प्रतीची) प्रत्येक की दृष्टि

पूजनीय, (रुशद्-वासः) उज्ज्वल वस्त्रादि को (बिभ्रती) धारण करती हुई, (सप्रथा) समान रूप से विख्यात होकर (उत्-अस्थात्) उत्तम स्थिति प्राप्त करे और (शुक्रम् अश्वैत्) शुद्धरूप, शुद्ध आचरण और वीर्योत्पन्न सन्तति की वृद्धि करे ।

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) उषा, प्रभात वेला की सूर्य की कान्ति (रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) किरणो से विशेष प्रकाशित दिखाई देती है, वह (चित्रामघा विश्वम् अनु प्रभूता) समस्त विश्व मे प्रकट होती, चित्र विचित्र वर्ण युक्त प्रकाशो से मानों पूज्य धन युक्त होती है । वह (सुभगा) उत्तम भद्रवर्ण युक्त होकर (देवानां चक्षुः) मनुष्यो की आंखों को (श्वेतं वहन्ती) श्वेत प्रकाश देती हुई, और (सुदृशीकम् श्वेतं अश्वम् नयन्ती) उत्तम दर्शनीय, श्वेत, व्यापक प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त कराती है उसी प्रकार (उषा) पति की कामना से युक्त नववधू, (सु भगा) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, सौभाग्यवती, (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सौम्य दृष्टि करती हुई और (श्वेतम्) शुद्ध चरित्रवान् (सु-दृशीकम्) उत्तम दर्शनीय, (अश्वम्) अश्ववत् सुदृढ़ शरीर वाले विद्यावेत्ता पुरुष के प्रति अपनी चक्षु को (नयन्ती) पहुंचाती हुई, उसे प्रेम से वरण करती हुई, (चित्रा-मघा) उत्तम नाना प्रकार के पूज्य धनों से युक्त और (रश्मिभिः व्यक्ता) किरण-कान्तियों से सुशोभित, (विश्वम् अनु प्रभूता) सबके समक्ष प्रकट होकर (अदर्शि) दीखे ।

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघोनि) ऐश्वर्य, धन की स्वामिनि राजशक्ते ! हे विदुषि ! तू (अन्ति-वामा) अपने समीप नाना प्रकार के भोग्य पदार्थों

और उत्तम ऐश्वर्यों को रखती हुई (अमित्रम् दूरे) शत्रु को दूर करती हुई (उच्छ) अपने आप चमक। तू (उर्वीं) बड़ी भूमि और विशाल (गव्यूतिम्) मार्ग को (नः) हमारे लिये (अभयं कृधि) भय से रहित कर। (द्वेषः यवय) हमारे में से द्वेष भावों और द्वेष करने वालों को दूर कर। (वसूनि आभर) नाना ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा, (गृणते) स्तुति, उपदेश करने वाले पुरुष को (राधः चोदय) ऐश्वर्य प्रदान कर। (२) इसी प्रकार स्त्री भी, समीप रहकर भोगने योग्य, एवं नाना धन समीप रखने वाली होने से 'अन्तिवामा', (अमित्रम्) स्नेहरहित पुरुष से दूर रहे, संसार के बड़े भारी मार्ग को भयरहित करे, द्वेष को दूर करे, धनों का संग्रह करे, उपदेष्टा विद्वान् को धन प्रदान करे।

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः॥ ५॥

भा०—हे (उषः देवि) प्रभात वेला के समान शुभगुणों से युक्त विदुषि ! तू (श्रेष्ठेभिः) अति उत्तम किरणों के समान श्रेष्ठ गुणों से (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। तू (नः) हमें (आयु प्रतिरन्ती) दीर्घ जीवन प्रदान करती हुई, और हे (विश्ववारे) विश्व अर्थात् हृदय में प्रविष्ट पतिद्वारा एकमात्र वरण करने योग्य ! (नः) हमारी (इषं) अन्न और (गोमत् अश्वावत् रथवत् च) गौओं, अश्वों और रथों से समृद्ध (राधः) धन समृद्धि को (दधती) धारण करती हुई, स्वामिनी होकर (वि भाहि) विशेष रूप से चमक।

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः।
सास्मासु धारयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६।२४

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति ! हे (सुजाते) शुभ गुणों सहित, उत्तम जन्म वाली ! हे (दिव दुहित) तेजस्वी सूर्यवत् विद्वान् और वीर पुरुष की पुत्रि ! एवं पति की नाना

कामनाओं को पूर्ण करने हारि ! (वसिष्ठाः) उत्तम २ वसु, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, पिता जन (यां त्वा वर्धयन्ति) जिस तुझ को बढ़ाते है, तेरी मान, आदर, प्रतिष्ठा करते है (सा) वह तू (अस्मासु) हमारे बीच (ऋष्वं) बड़े भारी (बृहन्तं) महान् (रयिम्) ऐश्वर्य को (धाः) धारण कर और हममे भी धारण करा । हे विद्वान् लोगो ! (यूयम्) तुम लोग (नः सदा स्वस्तिभि. पात) हमारी सदा उत्तम उपायो से रक्षा करो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[७८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति॑ के॒तवः॑ प्रथ॒मा अ॑दृश्रन्नू॒र्ध्वा अ॑स्या अ॒ञ्जयो॒ वि श्र॑यन्ते ।
उषो॑ अ॒र्वाचा॑ बृह॒ता रथे॑न॒ ज्योति॑ष्मता वा॒मम॒स्मभ्यं॑ वक्षि ॥१॥

भा०—(अस्याः) उस उत्तम विदुषी स्त्री के (प्रथमाः केतवः) सर्वश्रेष्ठ ज्ञापक गुण रश्मिवत् (प्रति अदृश्रन्) प्रत्यक्ष दिखाई दे। (अस्याः) इसके (अञ्जयः) उत्तम गुण प्रकाशवत् (वि-श्रयन्ते) विविध प्रकार से प्रकट होते हैं। हे (उषः) कान्तिमति! उषा के समान सुन्दरि ! तू (ज्योतिष्मता) तेजस्वी, ज्ञानी (बृहता) बड़े (अर्वाचा) अश्व से जाने वाले (रथेन) रथ के समान दृढ़ एवं रम्य, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पति के साथ मिलकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वामम् वक्षि) उत्तम ऐश्वर्य, सुखादि धारण कर, हमे भी सुख प्रदान कर ।

प्रति॑ षीम॒ग्निर्ज॑रते॒ समि॑द्धः॒ प्रति॒ विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्गृ॒णन्तः॑ ।
उ॒षा या॑ति॒ ज्योति॑षा॒ बाध॑माना॒ विश्वा॒ तमां॑सि दुरि॒ताप॑ दे॒वी २

भा०—(उषा ज्योतिषा विश्वा तमांसि अप बाधमाना याति) उषा अर्थात् प्रभात की सौरी प्रभा जिस प्रकार प्रकाश से सब अन्धकारों को दूर करती हुई व्यापती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी स्त्री (ज्योतिषा)

अपने तेजःप्रभाव से (विश्वा दुरिता) सब प्रकार के दुःखों और दुष्ट आचारों को (अप बाधमाना) दूर करती हुई (याति) प्राप्त होती है। (समिद्धः अग्निः) प्रातः प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् (सीम् प्रति जरते) सब प्रकार से और सर्वत्र उपदेश करे, और (मतिभि) ज्ञानों से युक्त (विप्रासः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष भी (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (प्रति जरन्ते) प्रश्न किये जाने पर उत्तर द्वारा उपदेश करते है।

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

भा०—(एताः त्याः) ये वे (विभातीः उषसः) चमकती उषाओं, प्रभातिक सूर्य की कान्तियों के सदृश उज्ज्वल, (ज्योतिः यच्छन्ती.) कान्ति प्रदान करती हुई नव वधुएं (प्रति अदृश्रन्) दीखें। वे (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी (यज्ञम्) पूजनीय (अग्निम्) अग्रणी नायक को (अजीजनन्) अपने पीछे आता प्रकट करती है। (अजुष्टम्) न सेवन करने योग्य (तमः) शोक आदि दुःख (अपाचीनं अगात्) दूर चला जाता, अर्थात् उनके आने पर घर २ खुशियां विराजती है।

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम्।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमायमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान कान्तिमती (मघोनी) बड़ी ऐश्वर्य की स्वामिनी, सौभाग्यवती, सुभगा (अचेति) जानी जाती है। उसको (विभातीम्) विविध प्रकार से चमकती (उषसम्) प्रभात वेला के समान ही अनुरागवती को (विश्वे पश्यन्ति) सब देखते हैं। (यम्) जिसको (अश्वासः) बहुत विद्याओं मे निष्णात जन अश्वों के समान उत्तम सहयोगी होकर सन्मार्ग पर लेजाते है उस (रथम्) रथवत् सुदृढ़ शरीर वाले, और (स्वधया) अपने आपको वा अपने सर्वस्व को

धारण करने वाली स्त्री के साथ (युज्यमानम्) योग प्राप्त करने वाले (रथम्) रमणकारी, पति को (आ अस्थात्) प्राप्त करे अपना आश्रय बनावे ।

प्रति॑ त्वा॒द्य सु॒मन॑सो बुधन्ता॒स्माका॑सो म॒घवा॑नो व॒यं च॑ ।
ति॒ल्वि॒ला॒यध्व॑मु॒षसो॒ विभा॒तीर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॑ः॒ सदा॑ नः॥५।२५

भा०—हे विदुषि ! (सु-मनसः) उत्तम चित्तवाले (अस्माकासः) हमारे सम्बन्धी जन और (मघ-वानः) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् और (वयं च) हम लोग सभी (अद्य) आज के दिन (त्वा प्रति बुधन्त) तेरे साथ उत्तम परिचय प्राप्त करें । हे (विभातीः उषसः) उज्ज्वल रूप से चमकने वाली प्रभात वेलाओं के समान कुलवधुओ ! आप लोग (तिल्विलायध्वम्) तिलों से सुशोभित भूमि के समान स्नेह की उत्पादक भूमि के समान होवो । (यूयं) आप सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखप्रद शान्तिजनक उपायों से पालन करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[७९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१॒षा आ॑वः प॒थ्या॒३॒जना॑नां॒ पञ्च॑ क्षि॒तीर्मानु॑षीर्बो॒धय॑न्ती ।
सु॒स॒न्दृग्भि॑रु॒क्षभि॑र्भा॒नुम॑श्रे॒द्वि सूर्यो॒ रोद॑सी॒ चक्ष॑सावः ॥ १ ॥

भा०—(जनानां पथ्या) मनुष्यों को अपने प्रकाश से सत्पथ बतलाने वाली (उषा) प्रभात वेला के समान (पथ्या) धर्म-पथ बतलाने में हितकारिणी, और (पथ्या) संग आदि से रोग, शोकादि दूर करने वाली वधू (वि-आवः) विविध गुणों का प्रकाश करे । वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मनुष्यों के पांचों प्रकार के प्रजाजनों को ज्ञान बोध कराती हुई, (सु-सं-दृग्भिः) उत्तम सम्यग् दर्शन युक्त, (उक्षभिः) पुरुष-पुंगवों

द्वारा (भानुम् अश्रेत्) विशेष दीप्ति को धारण करे। और (सूर्यः) आकाश और भूमि को प्रकाश से सूर्य के समान पुरुष (रोदसी) माता पिता दोनों के कुलों को (चक्षसा) सम्यग् दृष्टि से, (वि-आवः) विशेष रूप से उज्ज्वल करता है।

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू॥२॥

भा०—(उषस॰) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (दिवः अन्तेषु) आकाश के प्रान्त भागों मे (अक्तून् वि अञ्जते) रात्रि-भागो या प्रकाशो को प्रकट करती है उसी प्रकार (उषसः) कामनायुक्त नववधुएं (अन्तेषु) प्रान्त भागों मे विद्यमान (विशः न) राजा की प्रजाओ के समान (दिवः अन्तेषु) दिन के अन्त में रात्रि के कालों मे (अक्तून्) अपने विशेष उज्ज्वल गृह के दीपको को प्रकाशित करती है। और (युक्ताः यतन्ते) नियुक्त भृत्यजनों के समान नववधुएं भी (युक्ताः) पति की आज्ञा मे रहकर (यतन्ते) गृह कार्य करती है। हे नववधू ! जिस प्रकार (गावः तमः आवर्त्तयन्ति) किरणे अन्धकार को दूर कर देती है और (ज्योतिः यच्छन्ति) प्रकाश देती है, वे (सूर्यस्य बाहू इव) सूर्य की बाहुओ के समान होते है उसी प्रकार हे नववधू ! (ते) तेरी (गावः) वाणियां भी (तमः सम् आ वर्त्तयन्ति) शोकादि दुःख को अच्छी प्रकार दूर करे और (ज्योतिः) प्रकाशवत् स्फूर्त्ति, उत्साह को प्रदान करें। हे (उषः) नववधू ! तू भी (सविता इव) प्रजा-उत्पादक पति के समान ही होकर (बाहू) एक शरीर मे दो बाहुओं के समान तुम दोनों मिल कर रहो।

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि॥३॥

भा०—यदि (उषा) उषा के समान कान्तिमती कन्या (इन्द्र तमा)

अति अधिक ऐश्वर्यवती, रानी के समान सम्पन्न और (मघोनी) उत्तम धनैश्वर्य से युक्त (अभूत्) हो तो वह (सुविताय) और भी अधिक ऐश्वर्य प्राप्ति करने वा (सुविताय) जगत् का उत्तम कल्याण करने के लिये ही (श्रवांसि) नाना अन्न, यशो और धनो को (अजीजनत्) और भी उत्पन्न करे। वह (दिवः दुहिता) तेजस्वी सूर्य की पुत्रीवत् प्रभा के समान उज्ज्वल कान्तियुक्त (दिवः दुहिता) कामनावान् पति के मनोरथो को पूर्ण करने वाली वा (दिवः) व्यवहारों, व्यापारादि तथा ज्ञान विज्ञानो का दोहन करने वाली, वार्त्ताचतुर वा ज्ञानवती स्त्री (अंगिरस्तमा) अति विदुषी होकर भी (सुकृते) शुभ कर्म, पुण्यादि की वृद्धि के लिये ही (वसूनि) समस्त नाना ऐश्वर्यों को (दधाति) धारण करे।

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार 'उषस्' अर्थात् अति कान्तियुक्त विद्युत् को (वृषभस्य रवेण) वर्षणशील मेघ के घोर गर्जन के साथ ही (जज्ञुः) जानते है, और वह (दृढस्य अद्रेः दुरः वि और्णोत्) दृढ़ मेघ या पर्वतादि के भी जलावरोधक मार्गो को खोल देती है उसी प्रकार हे विदुषि! वधू! (यां त्वा) जिस तुझको (वृषभस्य) उत्तम पुरुष के (रवेण) उपदेश या नाम शब्द से लोग (जज्ञुः) जान लेते है और जो वह तू (दृढस्य अद्रेः) दृढ 'अद्रि' अर्थात् पर्वतवत् विशाल भवन के (दुरः) नाना द्वारों को (वि और्णो) उद्घाटन कर, तू बड़े गृहपति की स्वामिनी हो। और (यावत्) जितना तू (गृणाना) स्तुतियुक्त होकर (स्तोतृभ्यः अरदः) स्तोता, विद्वानों को देवे (तावत् राध) उतना ही धन (अस्मभ्यं) हमें भी प्रदान कर। अर्थात् स्त्री विद्वानों और बन्धु बान्धवो का बराबर सत्कार किया करे।

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥२६॥

भा०—हे विदुषि! सौभाग्यवति! तू (देवं-देवं) प्रत्येक विद्वान् पुरुष को (राधसे) प्रदान योग्य धन को (चोदयन्ती) स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति (सूनृता) उत्तम वचन देती, कहती हुई, (वि उच्छन्ती) विशेष गुणो को प्रकट करती हुई (नः सनये) हमे दान देने के लिये (धियः धाः) नाना लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प किया कर। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (यूयं न. स्वस्तिभिः सदा पात) आप लोग हमारी नाना उत्तम २ उपायो से सदा रक्षा किया करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

[८०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ तृच सूक्तम्॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा॥१॥

भा०—जिस प्रकार (रजसी समन्ते) आकाश और भूमि के प्रान्त भागो तक (वि-वर्तयन्ती) व्यापती हुई और (विश्वा भुवना आविष्कृण्वती) समस्त पदार्थों को प्रकट करती हुई (प्रति उषसं) प्रत्येक प्रभात वेला को प्राप्त कर (विप्रासः) विद्वान् लोग (स्तोमेभि गीर्भि) स्तुतियुक्त मन्त्रों, सूक्तो और वाणियो से (अबुध्रन्) विशेष ज्ञान प्राप्त करते और अन्यो को ज्ञान प्रदान करते है उसी प्रकार (वसिष्ठा) उत्तम वसु, ब्रह्मचारी वा पितावत् (प्रथमा.) प्रथम कोटि के, उत्तम, वा विस्तृत ज्ञान वाले (विप्रासः) विद्वान् पुरुष, (समन्ते) समीपस्थ (रजसी) मातृ पितृ पक्ष के बन्धुजनों को वा (समन्ते) अति समीपस्थ (रजसी) गर्भ में

प्राप्त शुक्र और रज दोनों के अंशों को (विवर्त्तयन्ती) विशेष या विविध रूपों में व्यापारयुक्त करती हुई और (विश्वा भुवनानि) सब गर्भगत भ्रूण के नाना रूपों को प्रकट करती हुई (उसे) सन्तान की इच्छुक माता को (प्रति) लक्ष्य कर (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों और व्यवहारों और (गीर्भिः) वेद वाणियों से (अबुध्रन्) उसको ज्ञान प्रदान करें, जिससे सन्तति का पोषण उत्तम और उस पर संस्कार भी उत्तम पड़े। जो दशा गर्भग्रहण-समर्थ एवं पति-संगता उपात्तगर्भा युवति की होती है वही दशा ब्रह्म बीज को अपने में धारण करने वाली हिरण्य-गर्भा प्रकृति की होती है। इस मन्त्र में उस प्रकृति को 'उषा' कहा है। उस दशा में युक्त प्रकृति को वसिष्ठ विप्र, ब्रह्मचारी ऋषि गण वेद के नाना सूक्तों तथा मन्त्रों से जानते हैं। वह प्रकृति भी (समन्ते रजसी विवर्त्तयन्ती) संयुक्त दो सत् तत्व वा अविकृत प्रकृति और अविक्रिय ब्रह्म दोनों को (रजसी) राजसभाव, में (वि-वर्तयन्ती) विविध विकृतियों में बदलती हुई और (भुवनानि विश्वा आविष्कृण्वन्तीम्) समस्त लोकों को प्रकट करती हुई उसको जानते हैं।

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला, (ज्योतिषा तम.) प्रकाश से अन्धकार को दूर करती, (नव्यम् आयु. दधाना) सब प्राणियों को नया जीवन देती, जगाती, (अग्रे) सूर्य के आगे आती फिर सूर्य, यज्ञ और यज्ञाग्नि को प्रबुद्ध कराती है उसी प्रकार (उषा स्या युवति) वह यह युवति, वधू, (नव्यम् आयुः दधाना) अपनी नयी आयु धारण करती हुई (ज्योतिषा) अपनी कान्ति से (गूढ्वीतम.) गहरे शोक मोहादि को दूर करके (अबोधि) जागे और पति को जागृत करे। वह (अह्रयाणा) लज्जा वा निद्रा को त्यागकर (युवति) नवयुवति गृहिणी, (अग्रे एति)

आगे आवे (सूर्यम्) सूर्यवत् अपने पति को (प्राचिकितत्) जगावे, (यज्ञम् अग्निम्) और बाद वही यज्ञ अर्थात् पूज्य देव परमेश्वर और अग्निहोत्र की अग्नि को भी जागृत करे ।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः । घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३।२७।५

भा०—(अश्वावतीः) उत्तम अश्वो अर्थात् विद्यादि मे निष्णात उत्तम पुरुषों से युक्त, (गोमतीः) उत्तम वेदवाणियो से युक्त, (वीरवतीः) उत्तम पुत्रो से युक्त, (भद्राः) कल्याण देने वाली (उषासः) पति पुत्रादि को चाहने वाली देवियां (नः सदम् उच्छन्तु) हमे और हमारे घरों को सदा प्रकाशित करे । वे सदा (घृतं दुहानाः) घृतवत् स्नेह, जल आदि पुष्टिकारक पदार्थों की (दुहानाः) वृद्धि करती हुई स्वयं भी (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) सुख तृप्त, सन्तुष्ट, एवं हृष्ट पुष्ट होकर रहे । हे उत्तम देवियो ! (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप सब हमारी सदा उत्तम साधनों और शान्तिदायक यज्ञादि से रक्षा करो । इसी प्रकार राष्ट्र मे सेनायें, शत्रुओं और दुष्टो को दग्ध करने से उषाएं है और प्रजाएं राजा की प्रिय होने से उषाएं है । वे अश्वगों, भूमि, वीर पुरुषों से युक्त, ऐश्वर्यवान् हो के तेज को बढाती हुई सब प्रकार से प्रसन्न, तृप्त हों । इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्याय ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । २ भुरिग्बृहती । ३ आर्षी बृहती । ४,६ आर्षी भुरिग् बृहती, निचृद् बृहती ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु१॒च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः ।
अपो॒ महि॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान

प्रकाश से जगत् को पूर्ण करने वाली, प्रकाश की देने वाली उषा (आयती) आती हुई, और (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (प्रति अदर्शि उ) सब को स्पष्ट दिखाई देती है, वह (महि तमः) बड़े अन्धकार को (अपो-व्ययति उ) दूर करती है, और (चक्षसे) सब को दिखलाने के लिये (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है उसी प्रकार (सूनरी) उत्तम नायिका विदुषी स्त्री, (दिव. दुहिता) सब कामनाओं और व्यवहारों को पूर्ण, सफल करने वाली, (आयती) आती हुई, (उच्छन्ती) अपने गुणों को प्रकट करती हुई, (प्रति अदर्शि) प्रतिदिन दिखाई दे। वह (चक्षसे) सम्यग् दर्शन करने और अन्यों को उपदेश करने के लिये (महि तमः अपो व्ययति) बहुत अन्धकार अज्ञान को दूर करे और (ज्योतिः कृणोति) ज्ञान प्रकाश का सम्पादन करे।

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अर्चिवत्) तेज से युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र रूप (सूर्यः) सूर्य भी (उस्रियाः सचा उत्सृजते) किरणों को एक साथ ऊपर फेंकता है, हे (उष) उषा! (तव इत् सूर्यस्य उषि) तेरे और सूर्य के उषा काल में जिस प्रकार (भक्तेन सं गमेमहि) हम भजन करने योग्य प्रभु से संगति लाभ करें, उसी प्रकार हे (उषः) कान्तिमति, उत्तम विदुषि नववधु! जब (उत् यत्) उगता हुआ (अर्चिवत्) अन्यों के आदर सत्कार योग्य (नक्षत्रम्) नक्षत्र के समान (नक्षत्रं) व्यापक राज्य के पालने में समर्थ बल हो और (सचा) साथ ही (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (उस्रियाः) उन्नतिशील प्रजाओं को किरणों के समान (उत्सृजते) उन्नति की ओर ले जाता है, तब (तव इत् वि-उषि, सूर्यस्य च वि-उषि) तेरी और तेरे पति तेजस्वी पुरुष की विशेष इच्छा और प्रताप होने पर (भक्तेन सं गमेमहि) हम उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यादि का लाभ करें।

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, हे (उषः) तेजस्विनि ! पापी पुरुषों को भस्म कर देने वाली ! हम लोग (जीराः) अति शीघ्रकारी होकर (त्वा प्रति) तुझे (अभुत्स्महि) ऐसा जानते है कि हे (वनन्वति) उत्तम सेव्य धन की स्वामिनि ! (या) जो तू (पुरु स्पार्हं) बहुत अधिक, चाहने योग्य ऐश्वर्य (वहसि) धारण करती है वह तू (रत्न न) रमणीयवत् और (मयः) सुखकारी पदार्थ (दाशुषे) दान देने वाले के लिये ही (वहसि) धारण करती है ।

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

भा०—(या) जो तू हे (देवि) दानशीले ! कमनीयकान्ते ! हे (महि) पूजनीये ! जिस प्रकार उषा (प्रख्यै) सब पदार्थों को बतलाने और (दृशे) देखने के लिये (स्वः उच्छन्ती) स्वयं प्रकट होती हुई, सूर्य को प्रकट कर देती है उसी प्रकार तू भी (उच्छन्ती) गुणों को प्रकाशित करती हुई (प्रख्यै) उत्तम ख्याति लाभ करने और (दृशे) दर्शन करने के लिये (मंहना) अपने पूज्य व्यवहार से ही (स्वः) आदित्यवत् तेजस्वी पुरुष, या पुत्र को भी (कृणोषि) उत्पन्न करती है । (रत्नभाजः) पुत्रादिरत्न को धारण करने वाली तुझ से ही हम (ईमहे) अन्नादि याचना करें और (वयम्) हम लोग (मातुः सूनवः न) माता के पुत्रों के समान (स्याम) तेरे कृपापात्र बने रहें ।

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) पापों को जला देने हारी ! हे कान्तिमति विदुषि !

हे प्रभुशक्ते ! तु हमें (तत्) वह (चित्रम्) अद्भुत, सञ्चय योग्य, (राधः) ऐश्वर्य (आ भर) प्रदान कर (यत् दीर्घ-श्रुत्तमम्) जो सब से अधिक दीर्घ काल तक श्रवण करने योग्य हो। हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री उषावत् तेजस्वी पिता की कन्ये ! एवं तेजस्वी पुरुष की कामना पूर्ण करने हारी ! एवं दूर देश में विवाहिता होकर हितकारिणि ! (यत् ते मर्त्त भोजनम्) जो तेरा मनुष्यों को पालन करने वाला सामर्थ्य है (तत्) वह तू हमें (रास्व) प्रदान कर, (भुनजामहै) हम उसी का भोग करें।

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे (सूनृतावति) उत्तम ऋत ज्ञान और धन की स्वामिनि ! तू (सूरिभ्य) विद्वान् पुरुषों के लिये (अमृतम्) कभी नाश न होने वाला, अमृतमय (श्रवः) श्रवणयोग्य ज्ञान और आयुप्रद अन्न तथा (वसुत्वनं) ऐश्वर्ययुक्त कीर्त्ति, और (गोमत वाजान्) भूमिसम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (मघोनः) ऐश्वर्य वालो को भी (चोदयित्री) अपने अधीन चलाती हुई (स्रिधः) हिंसक दुष्टों को (अप उच्छत्) दूर कर। यहां प्रभुशक्ति का वर्णन स्पष्ट है। इति प्रथमो वर्गः ॥

[८२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९ निचृज्जगती। ३ साम्नी भुरिग् जगती। ४, ५, १० आर्षी विराड् जगती। ८ विराड् जगती॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, शत्रु के हनन करनेहारे ! हे (वरुण) वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ ! (युवम्) आप दोनों (अध्वराय)

हिंसा से रहित (नः) हमारे (विशे जनाय) प्रजाजन को (महि शर्म) बड़ा भारी सुख शरण (यच्छतम्) प्रदान करो। (दीर्घ-प्रयज्युम्) दीर्घ काल से उत्तम संगति वाले, एवं चिरकाल से कर, वृत्ति, आदि देने वाले पुरुष की (यः) जो अति (वनुष्यति) मर्यादा का अतिक्रमण करके हिंसा करे या उससे अपने अधिकार से अधिक मांगे उसको और (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि और दुष्ट कर्म करने वालो को (वयं) हम (पृतनासु) संग्रामो या मनुष्यो के बीच मे (जयेम विजय करे, उन्हे नीचा कर हम उनसे ऊंचे हो।

सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः॥२॥

भा०—इन्द्र और वरुण का स्वरूप स्वयं वेद कहता है। (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण दोनों (महान्तौ) गुणों और बलो मे महान् सामर्थ्यवान् और दोनों (महावसू) बड़े भारी वसु अर्थात् धन और अधीन बसे प्रजा के स्वामी है। अर्थात् एक अपार धन का स्वामी है और दूसरा अनेक बसे प्रजाजनों का स्वामी है। एक के पास धनबल दूसरे के पास जनबल है अर्थात् एक कोशवान् और दूसरा दण्डवान्, एक अर्थपति दूसरा बलाध्यक्ष है। (वाम्) आप दोनों मे से (अन्यः सम्राट्) एक तो 'सम्राट्' और (अन्यः स्वराट्) दूसरा 'स्वराट्' (उच्यते) कहलाता है। अच्छी प्रकार देदीप्यमान होने से सम्राट् और 'स्व' धन और 'स्व' अपने जन से राजावत् प्रकाशमान होने से 'स्वराट्' है। (वाम्) आप दोनों के (परमे) सर्वोत्कृष्ट (वि-ओमनि) विशेष रक्षण और प्रजा को तृप्त, सन्तुष्ट वा अनुरक्त कर देने के प्रधान पदाधिकार के अधीन रहते हुए (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, वीर और व्यवहारवान मनुष्य (ओजः सं दधुः) अपना पराक्रम या तेज एक साथ संयोजित करें और (बलं सं दधुः) अपना बल एक साथ लगावें।

अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः॥३॥

भा०—आप दोनो (अपां) प्राप्त अधीनस्थ प्रजाओ के यातायात के लिये (खानि) जलो के मार्गों के समान ही नाना मार्ग (अनु अतृन्तम्) उनके अनुकूल रूप से बनाते हो, और (दिवि) शासन और व्यवहार क्षेत्र मे (प्रभुम्) अधिक सामर्थ्यवान् (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (ऐरयतम्) प्रेरित करते हो। (अस्य) इस (मायिनः) प्रज्ञावान् और शिल्पशक्ति के स्वामी के (मदे) प्रसन्न, तृप्त वा सन्तुष्ट रहने पर ही (इन्द्रा वरुणा) पूर्व कथित इन्द्र और वरुण, अर्थ और बल के अध्यक्ष जन (अपितः) अरक्षित प्रजाओ को भी (अपिन्वतम्) सींचते बढाते और (धिय. पिन्वतम्) नाना कर्मों और शिल्पो को भी सींचते, पुष्ट करते है।

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रा वरुणा सुहवा हवामहे॥४॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र ऐश्वर्यवन्! हे (वरुण) शत्रु जनों और दुष्टों और विघ्नो को दूर हटाने वाले दोनो अध्यक्ष जनो! (वह्नय.) नाना कार्यों को अपने ऊपर वहन करने वाले प्रधान तेजस्वी पुरुष (युत्सु) युद्धों और (पृतनासु) सेनाओं और मनुष्य प्रजाओं के बीच मे (युवाम्) तुम दोनों को (हवन्ते) बुलाते हैं। और (मित-ज्ञव) मित ज्ञान वाले वा ज्ञानी वा विनय से गोडे सिकोड कर बैठने वाले, सभ्य, वा परिमित, कदम बढाने वाले जन (क्षेमस्य प्रसवे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिये (युवाम्) आप दोनों को ही याद करते है। (कारव.) क्रिया कुशल, शिल्पी जन और वेद मन्त्रों के द्रष्टा हम विद्वान् जन (उभयस्य वस्व ईशाना) ऐहिक और पारमार्थिक वा चर और अचर

दोनों प्रकार के धन के स्वामी आप दोनों (सु हवा) सुख से पुकारे जाने योग्य, शुभ नाम वाले, सुगृहीतनामधेय वा सुखदाताओ को (हवामहे) पुकारते है। आप दोनो को हम अपना प्रमुख बनावे।

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते॥५॥२॥

भा०—आधिदैविक दृष्टान्तों से इन्द्र वरुण का रहस्य। जिस प्रकार (मित्रः) प्राणवत् प्रिय, सबका मित्र सूर्य (वरुणं) आकाश को आच्छादन करने वाले मेघ को (क्षेमेण दुवस्यति) प्रजा के पालन-सामर्थ्य अन्न जलादि से युक्त करता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) प्रबल वायु (मरुद्भिः) मध्यस्थानीय अन्तरिक्षस्थ वायुओं से (शुभम् ईयते) जल को प्राप्त कराता है और इस प्रकार वे दोनों सूर्य और वायु या विद्युत् (मज्मना) अपने बल से (भुवनस्य इमा विश्वा जातानि) संसार के इन समस्त प्राणियों को (चक्रथु) उत्पन्न करते है इसी प्रकार (यत् इन्द्रा वरुणा) जो इन्द्र और वरुण ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष जन (मज्मना) अपने धन और सैन्य बल से (इमानि विश्वा जातानि) इन समस्त जनों को (चक्रथुः) अपने अधीन करते और सुखपूर्वक समृद्ध करते है, वे कैसे करते है? (मित्रः) सबको मरने या नाश होने से बचाने वाला, सर्वस्नेही, न्यायाध्यक्ष ब्राह्मण वर्ग (वरुणं) दुष्टों के वारण करने वाले दण्डवान् पुरुष को (क्षेमेण) प्रजा के योग क्षेम या रक्षा या प्राप्त धन के सामर्थ्य से (दुवस्यति) युक्त करता है उसको प्रजा की रक्षा और अन्नादि से पालन का सर्वाधिकार सौंपता है और (अन्यः) दूसरा (उग्र) अति बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) वीर, शत्रुमारक सुभटों से युक्त होकर (शुभम् ईयते) सुशोभित पद को प्राप्त करता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

म॒हे शु॒ल्काय॒ वरु॑णस्य॒ नु त्वि॒ष ओजो॑ मिमाते ध्रु॒वम॑स्य॒ यत्स्वम्।
अजा॑मिम॒न्यः श्न॒थय॑न्त॒मात॑िरद्द॒भ्रेभि॑र॒न्यः प्र वृ॑णोति॒ भूय॑सः

भा०—(अस्य वरुणस्य) इस 'वरुण' का (यत्) जो (ध्रुवम् ...न्) स्थिर धन सम्पदा है उस (महे शुल्काय) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि करने और (त्विषे) तेज की वृद्धि करने के लिये (नु) भी 'इन्द्र और वरुण' दोनों ही (ओजः) बल और पराक्रम करते हैं। कैसा पराक्रम करते हैं कि—(अन्यः) एक तो (श्नथयन्तम् अजामिम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (आ अतिरत्) सब ओर से नाश करता है और (अन्यः) दूसरा (अल्पेभिः) हिंसाकारी साधनों शस्त्रास्त्रों से (भूयसः प्र वृणोति) बहुत से शत्रुओं को आच्छादित करता, घेरता और उनको दूर से ही वारण करता है। अर्थात् एक का कर्म है आक्रमणकारी को दण्ड देना, दूसरे का कर्म है दूर से ही उसको वारण करना। 'आ अतिरत् इति इन्द्रः प्रवृणोति इति वरुणः। इति वेदोक्तनिर्वचनम्।'

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुर्तश्चन।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्रुतिः॥७॥

भा०—हे (देवा) दानशील, हे तेजस्वी, हे विजय की कामना करने वाले (इन्द्रा-वरुणा) शत्रुहन्ता और विघ्ननिवारक अध्यक्ष जनो! आप दोनों (यस्य मर्तस्य अध्वरं) राष्ट्र या मनुष्य प्रजा वर्ग के 'अध्वर' अर्थात् हिंसा से रहित प्रजा पालन के कार्य या यज्ञ को (गच्छथः) जाते हो और (वीथः) जिसके यज्ञ की रक्षा करते हो (तम् मर्तम्) उस मनुष्य तक (न अंहः नशते) न पाप पहुंचता है (न दुरितानि) न बुरे, कष्टदायी फल प्राप्त होते हैं, (कुतः चन न तपः) न किसी से या किसी प्रकार उसे सन्ताप या पीड़ा होती है, (तं न परिह्रुतिः नशते) और न उसको किसी की कुटिल चाल ही सताती है।

अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम्॥८॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारक श्रेष्ठ जनो!

हे (नरा) उत्तम नायको ! (यदि) यदि आप दोनों (मे जुजोषथः) मुझ से प्रेम करते हो तो (मे हवं शृणुतम्) मेरा वचन श्रवण करो। और (दैव्येन) देव, विद्वान् और वीर पुरुषों से बने और मनुष्यों के हितकारी (अवसा) रक्षा आदि सहित (अर्वाङ् आगतम्) हमारे समीप आओ। (युवोः) आप दोनों का (हि) निश्चय से (यत्) जो (सख्यम्) मित्रता और (मार्डीकम् आप्यम्) अति सुखकारी बन्धुता है आप दोनों उस मित्र और बन्धुता का हमें (नि यच्छतम्) प्रदान करो।

अ॒स्माक॒मिन्द्रा॑वरुणा॒ भरे॑भरे पुरोयो॒धा भ॑वत कृष्ट्योजसा।
यद्वां॒ हव॑न्त उ॒भये॒ अध॑ स्पृ॒धि नर॑स्तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तिषु॑॥

भा०—हे (कृष्ट्योजसा इन्द्रावरुणा) 'कृष्टि' अर्थात् शत्रु के कर्षण, पीड़ा करने वाली सेनाओं, पराक्रम करने वाले इन्द्र और वरुण, शत्रुहन्ता और, शत्रुवारक अध्यक्षजनो ! आप दोनो (अस्माक भरे भरे) हमारे प्रत्येक संग्राम में (पुरोयोधा भवतम्) आगे रहकर लड़ने वाले होवें। (यत्) जो (नरः) मनुष्य (उभये) सबल और निर्बल दोनों ही (तोकस्य तनयस्य सातिषु) पुत्र पौत्र तक के सेवन करने योग्य स्थायी भूमि आदि सम्पदा को प्राप्त करने के निमित्त (स्पृधि) परस्पर वृद्धि में (वां हवन्ते) तुम दोनों को आश्रय रूप से प्राप्त करते है।

अ॒स्मे इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा द्यु॒म्नं य॑च्छन्तु॒ महि॒ शर्म॑ स॒प्रथः॑।
अ॒व॒ध्रं ज्योति॒रदि॑तेर्ऋता॒वृधो॑ दे॒वस्य॒ श्लोकं॑ सवि॒तुर्म॑नामहे १०।३

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् जलप्रदाता, सूर्यवत् तेजस्वी (वरुण) मेघवत् उदार, वरण करने योग्य, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्त्रण करने में कुशल पुरुष (अस्मे) हमें (महि द्युम्नं) बड़ा ऐश्वर्य और (सप्रथः शर्म) विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि (यच्छन्तु) प्रदान करें। ये सब (ऋत-वृधः) सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाते [illegible] होकर (अदिते) अखण्ड शासन

कर्त्ता, प्रजा के माता पिता एवं पुत्रवत् प्रिय पालक के (अवध्रं) न नाश होने वाले (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप का प्रदान करे। हम भी उसी (देवस्य) सर्वदाता (सवितुः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु की (श्लोकं) वाणी वेद तथा आज्ञा का (मनामहे) आदर से मान तथा मनन करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[८३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ९ विराड् जगती। २, ४, ६ निचृज्जगती। ५ आर्ची जगती। ७, ८, १० आर्षी जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार प्राचा पूर्व दिशा से (आप्यं पश्यमानासः) 'आपः' जलों के आगमन के लक्षण देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि के कर्षणादि के इच्छुक (पृथु-पर्शवः) बड़े हल, फावड़े आदि लेकर भूमि खोदने के लिये जाते हैं उसी प्रकार हे (नरा) उत्तम नायक जनो ! (प्राचा) सम्मुख से परस्पर (आप्यं) बन्धुभाव वा प्राप्तव्य लक्ष्य को (पश्यमानासः) देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि के विजय की कामना करते हुए (पृथु-पर्शवः) बड़े २ परशु आदि शस्त्रास्त्र हाथ में लिये (ययुः) आगे बढ़ें। जिस प्रकार वायु और विद्युत् दोनों (वृत्रा हतम्) मेघस्थ जलों पर आघात करते हैं उसी प्रकार (युवां) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रुहनन और शत्रु वारण करने वालो ! आप दोनों (दासा) विनाशकारी और (आर्याणि) 'अरि' अर्थात् शत्रु-पक्ष के (वृत्रा) बढ़ते हुए शत्रु-सैन्यों को (हतम्) मारो और (दासा च) भृत्यादि तथा (आर्याणि) 'आर्य' स्वामी वा वैश्यों के उपयोगी (वृत्रा) नाना धनों को भी (हतम्) प्राप्त करो। हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! तुम

दोनों (सु-दासम्) उत्तम दानशील, धनी तथा उत्तम भृत्य आदि की भी (अवसा अवतम्) रक्षादि साधनों द्वारा रक्षा करो।

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम्।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम्॥२॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम मे (कृत-ध्वजः नरः) झण्डे हाथ मे लिये नाना नायक जन (सम् अयन्त) एक साथ प्रयाण करते है और (यस्मिन् आजा) जिस संग्राम मे (किं चन प्रियं भवति) शायद कुछ ही प्रिय होता हो अर्थात् (कि च प्रियं न भवति) कुछ भी प्रिय नहीं होता, (यत्र) जहां (स्वर्दृशः) सूर्यवत् तीव्र तीक्ष्ण दृष्टि वाले तेजस्वी पुरुष मे (भुवना) समस्त लोक, प्राणी (भयन्ते) भय करते है (तत्र) ऐसे संग्राम के अवसरो मे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, वरुण नाम पदाधिकारी जन (नः अधि वोचतम्) हम लोगों के अध्यक्ष होकर आज्ञा, शासन आदि किया करे।

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम्॥३॥

भा०—जब (भूम्याः अन्ताः) भूमि के प्रान्त भाग (ध्वसिराः सम् अदृक्षन्त) सब नष्ट भ्रष्ट दिखाई देवें (दिवि घोषः आरुहत) आकाश या पृथ्वी भर मे बड़ा कोलाहल गूंज रहा हो और (अरातयः) शत्रु लोग (जनानाम् उप) राष्ट्रवासी मनुष्यों के पास तक और (माम् उप अस्थुः) मुझ प्रजा वर्ग तक आ पहुंचे ऐसी दशा मे भी हे (इन्द्रा-वरुणा) शत्रु के नाशक और वारक जनो (हवन-श्रुता) आह्वान पुकार सुनने वाले आप दोनों दयार्द्र-भाव होकर (अवसा आगतम्) रक्षा सामर्थ्य सहित प्राप्त होओ। अथवा—भूमि के अन्त दिगन्त पराजित दीखें, आकाश भूमि भर मे (घोषः) जयघोष उठे। (जनानाम् अरातयः) राष्ट्रवासी जनों मे विद्यमान अराति, दुष्ट, दूसरो का लेकर न देने वाले आगामी

लोग मेरे पास उपस्थित हों, पकड़ कर हाज़िर किये जावें, तब हे (हवन-श्रुता) जनता की पुकार, उनके वचनों का श्रवण करते हुए (अवसा) न्याय रक्षा द्वारा (अर्वाक् आ गतम्) आप दोनों सब के सन्मुख आओ।

इन्द्रा॑वरुणा व॒धना॑भिरप्र॒ति भे॒दं व॒न्वन्ता॒ प्र सु॒दास॑मावतम्।
ब्रह्मा॑ण्येषां शृणुतं॒ हवी॑मनि स॒त्या तृत्सू॑नामभव॒त्पुरो॑हितिः॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रु का हनन करने और वारण करने वाले वीर पुरुष वर्गो! आप दोनों (वधनाभिः) शत्रु को दण्ड देने और नाश करने वाली नीतियों से और सेनाओं से (अप्रति) अप्रत्यक्ष रूप से (भेदं) शत्रु को छिन्न भिन्न और फूट फाट (वन्वन्ता) करते हुए वा (भेदं वन्वन्ता) राष्ट्र भेदकशत्रु को नाश करते हुए (सु-दासम्) शुभ दानशील, उत्तम भृत्यादि से युक्त राजा की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो। (हवीमनि) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने योग्य संग्राम में (एषां) इन विद्वान् प्रजाजनों के (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञान-वचनों को (शृणुतं) श्रवण करो। (तृत्सूनां) शत्रुओं को मार गिराने वाले इन वीर सैन्यों की और संशयोच्छेदी विद्वानों की (पुरोहितिः) सबसे आगे स्थिति और अग्रासन पदपर विराजना (सत्या अभवत्) सत्य, सफल और सज्जनों के लिये हितकारी हो।

इन्द्रा॑वरुणाव॒भ्या त॑पन्ति मा॒घान्य॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तयः।
यु॒वं हि वस्व॑ उ॒भय॑स्य॒ राज॒थोऽध॑ स्मा नोऽवतं॒ पार्ये॑ दि॒वि॥५॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र, शत्रुहन्तः ऐश्वर्यवन्! हे वरुण शत्रुओं के वारक एवं प्रजा द्वारा वरणीय! (अर्यः) शत्रु के किये (अधानि) पापाचार और (वनुषाम्) हिंसक जनों या मांग कर ले लेने वालों में से भी (अरातय) दूसरों का सर्वस्व या अधिकार हर कर न देने वाले जन ही (मा) मुझ राष्ट्र वासी जन को (अभि आ तपन्ति) सब ओर से सताया करते हैं। (युव हि) आप दोनों निश्चय से (उभयस्य) मुझ प्रजाजन और मुझे सताने वाले (वस्व.) राष्ट्र में बसने वाले दोनों के

ऊपर (राजथः) राजावत् शासन करो (अध) इसलिये आप दोनों (पार्ये दिवि) पालन करने वाले शासन व्यवहार के पद पर स्थित होकर (नः अवतं स्म) हमारी रक्षा किया करो।

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

भा०—(यत्र) जिन संग्रामों में (दशभिः राजभिः) दसों राजाओं वा तेजस्वी पुरुषों से (नि बाधितम्) अति पीड़ित (सुदासं) उत्तम दानशील पुरुष को (तृत्सुभिः) शत्रु को काट गिरा देने वाले वीर भटों के साथ (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो उन (आजिषु) युद्धों में (इन्द्रं च) ऐश्वर्यवान् और (वरुणं च) श्रेष्ठ (युवां) आप दोनों को (वस्वः सातये) धनैश्वर्यादि के लाभ के लिये (उभयासः) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के लोग (हवन्ते) पुकारते है, दोनों आप से न्याय देने की प्रार्थना करते है।

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥ ७ ॥

भा०—(अयज्यवः) दान न देने वाले, परस्पर सत्संग देव-पूजा और संगति न करने वाले (दश राजानः) दस तेजस्वी पुरुष भी (सम् इताः) एक साथ आकर (सुदासम् न युयुधुः) उत्तम दानशील तथा उत्तम रीति से शत्रु का नाश करने में कुशल राजा के साथ युद्ध नहीं कर सकते। (अद्मसदाम्) एक समान अन्न के आश्रय पर स्थित (नृणाम) मनुष्यों की (उपस्तुतिं) समीप २ बैठ कर की हुई प्रार्थना भी (सत्या) सत् फलजनक होती है। (एषाम्) इनके (देव-हूतिषु) विजेता वीरों को आह्वान करने योग्य अवसरों, यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर (देवाः) विद्वान् और वीर पुरुष (अभवन्) सहायक होते है।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्। श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥

भा०—(परियत्ताय) सब तरफ से नियन्त्रित, (दाश-राज्ञे) दशों राजाओ के बीच प्रबल होकर विद्यमान (सुदासे) उत्तम दानशील राजा को हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् हे शत्रुवारणकारी मनुष्य वर्गो ! वा अध्यक्ष जनो! (अशिक्षतम्) आप दोनो ज्ञान, बल प्रदान करो (यत्र) जिसके अधीन (श्वित्यञ्चः) श्विति अर्थात् उज्वल यश या समृद्धि को प्राप्त (कपर्दिनः) उत्तम जटाजूट वाले वा उत्तम धन सम्पन्न और (धीवन्तः) बुद्धिमान् और कर्मकुशल (तृत्सवः) शत्रु नाशकारी, संशयछेदी, त्रिविध ऐश्वयो के स्वामी लोग (नमसा) आदर पूर्वक अन्न और वज्र शस्त्रादि सहित (असपन्त) समवाय बनाकर रहते है। [कपर्दिनः—कपर्द.—जटा-जूट अथवा कपर्दः धनम्। कौड़ी इत्युपलक्षणम्। तद्वन्तः] पैसे वाले। अर्थात् जिसके अधीन धनाढ्य, कीर्तिमान, समृद्ध, बुद्धिमान और वीर पुरुष सब एकत्र हो जायं उसी प्रकार उत्तम वृत्तिदाता, राजा 'इन्द्र वरुण' पदाध्यक्ष बलैश्वर्य दे। अध्यात्म मे—देह में दश प्राण, दश इन्द्रियगण दश राजा हैं, वे दस स्थानों पर पृथक् विद्यमान है। परस्पर उनका कोई सीधा सम्बन्ध या संगति नही होने से 'अयज्यु' हैं। एक ही साथ वे हमे प्राप्त (सम्-इता.) है। आत्मा 'सुदास' है प्राण अपान इन्द्र-वरुण हैं। सुखप्रद ज्ञान तन्तु गण तृत्सु हैं। वे सुखपूर्वक होने से 'कपर्दि' है। वे 'नमसा धिया' अन्न और बुद्धि के बल से आत्मा के अधीन रहते हैं।

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा। हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ९

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन् वा शत्रुहन्तः ! हे वरुण ! दुष्ट और दुष्ट स्वभावो को वारण करने हारे ! आप दोनों मे से (अन्यः)

एक तो (समिथेषु) संग्राम और उपकारक कामों वा यज्ञों में (वृत्राणि जिघ्नते) बढ़ते, विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता है और (अन्यः) दूसरा विद्वान् आचार्य—(सदा व्रतानि अभि रक्षते) सदा व्रतों की रक्षा करता है। हम लोग (सुवृक्तिभिः) उत्तम, आदरपूर्वक वरण क्रियाओं और स्तुतियों से (वां हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं, अपनाते हैं और धन, मान आदि प्रदान करते है। हे इन्द्र ! हे वरुण ! सेना-सभाध्यक्षो ! (अस्ये) हमे आप दोनों (शर्म यच्छतम्) सुख प्रदान करो। 'सुवृक्ति.'— अत्र ककारोपजनश्छान्दसः ॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥५॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ८२। म० १० ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[८४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवन् हे 'वरुण' सर्वश्रेष्ठ ! (राजानौ वां) दीप्तियुक्त राजावत् शासन करने वाले आप दोनों को मैं (हव्येभिः नमोभिः) अन्नों और शस्त्रों तथा उत्तम वचनों और आदर युक्त विनय कार्यों से (ववृत्यां) वरण करता हूं। (विषु-रूपा घृताची) बहुत प्रकार की तेजस्विनी वा स्नेहयुक्त प्रजा (वां) आप दोनों का (बाह्वोः प्रदधाना) अपनी बाहुओं के समान शत्रुओं को बाधन या पीडा देने वाले प्रधान पदों पर स्थापित करती हुई, पुरुष को स्त्री के समान (परिजिगाति) सब प्रकार से प्राप्त होवे। जैसे स्त्री (विषुरूपा)

विशेष सुन्दरी, (घृताची) घृताक्त, अंगप्रत्यंग स्नातानुलिप्त होकर पुरुष को (बाह्वोः प्रदधाना) अपने बाहुपाशो मे लेती हुई उसे (त्मना) स्वयं आत्मा से (परि जिगाति) सब प्रकार अपनाती है उसी प्रकार से प्रजा भी अनुरक्त होकर उक्त इन्द्र-वरुण दोनों को बाहुवत् सैन्यादि के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर सर्वात्मना अपनावे । घृताचीबाहुविपुरूपादि पदानि श्लिष्टानि ।

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

भा०—(द्यौ) जो आप दोनों (अरज्जुभिः) विना रस्सियो के (सेतृभिः) बन्धन करने वाले राज नियमो और व्रत बन्धनो से (सिनीथः) बांध लेते हो (युवो) उन आप दोनो का (राष्ट्रम्) राष्ट्र (बृहत्) बड़ा होकर (द्यौः) सूर्य के समान देदीप्यमान होकर (इन्वति) सुख समृद्धि से सब को प्रसन्न करता है । (वरुणस्य हेडः) श्रेष्ठ जन का हमारे प्रति अनादर या क्रोध का भाव (नः परि वृज्याः) हम से दूर रहे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष राजा वा सेनापति (नः) हम प्रजाजन के लिये (उरुं लोकं कृणवत्) रहने के लिये विशाल लोक करे, नाना भूमियो को बसने योग्य बनावे ।

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३॥

भा०—हे विद्वान्, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ और दुःखादि वारण करने वाले जनो ! आप दोनों (नः विदथेषु) हमारे गृहों मे (चारुं यज्ञं कृतं) उत्तम यज्ञ सम्पादन करो । और (सूरिषु) विद्वानो के निमित्त (प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतम्) उत्तम २ धन प्रदान करो । (नः) हमें (देवजूत. रयिः) विद्वानो से उपदेश किया और उनके सेवन योग्य धनैश्वर्य (नः उपो

एतु) हमें सदा प्राप्त हो । आप दोनों (स्पार्हाभि॰) चाहने योग्य उत्तम रक्षाओं द्वारा (प्र तिरेतम्) बढ़ाओ ।

अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रा वरुणा) हे ऐश्वर्यवन् ! हे वरण करने योग्य ! आप दोनों (अस्मे) हमे (पुरु-क्षुम्) बहुत से अन्नसम्पदा से युक्त और (वसुमन्तं) बहुत सुवर्णादि ऐश्वर्य से युक्त (विश्ववारं) सब से वरने योग्य सब कष्टों को दूर करने मे समर्थ (रयि) ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो । (यः) जो (आदित्यः) सूर्य के समान तेजस्वी और 'अदिति' अखण्ड शासन नीति मे कुशल और 'अदिति' भूमिका पुत्रवत् प्रिय वा शासक होकर (अनृता) प्रजा के 'ऋत' अर्थात् वेद से विपरीत और असत्य व्यवहारो को (प्र मिनाति) नष्ट करता है वह (शूरः) शूरवीर पुरुष (अमिता वसूनि दयते) अमित धन-सम्पत्ति देता और उसकी रक्षा करता है ।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥६॥

भा०—(मे) मेरी (इय गीः) यह वाणी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान, शत्रुनाशक और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (अष्ट) लक्ष्य करके हो। वह (तूतुजाना) ज्ञान का बराबर प्रदान करती हुई (तनये तोके) पुत्र पौत्रादि तक को (प्र अवत्) प्राप्त हो। (वयम्) हम (सु रत्नास) शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए (देववीति गमेम) विद्वानों के ज्ञान प्रकाश, रक्षा और उनकी सत्कामना को (गमेम) प्राप्त करें। हे विद्वान् लोगो ! (यूय नः सदा स्वस्तिभि॰ पात) आप लोग हमें सदा उत्तम आशीर्वादों और सुखजनक उपायों से रक्षा करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[८५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! वरुण ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ जन ! मैं (इन्द्राय वरुणाय) इन्द्र और वरुण, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये (सोमं जुह्वत्) ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (वाम्) आप दोनो की (अरक्षसं मनीषाम्) दुष्ट पुरुषों के संग से रहित बुद्धि को (पुनीपे) पवित्र करूं। राजा और सेनापति को प्रजा पर्याप्त धन देकर उसके चित्त से प्रजा को लूटने खसोटने की राक्षसी प्रवृत्ति को दूर करे। (घृत-प्रतीकाम्) स्नेह से सब को उत्तम प्रतीत होने वाली (उपसं देवी) शत्रु को दग्ध करने और विजय की कामना करने वाली उस मन की प्रज्ञा को मैं स्वच्छ करूं। (ता) वे दोनों (अभीके यामन्) युद्धप्रयाण काल में (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करे, आधिदैविक पक्ष में इन्द्र वायु, वरुण जल इनको पवित्र करने के लिये मैं यजमान पुरुष 'सोम' ओषधि समूह को अग्नि में आहुति देकर, हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों की दुष्ट संग से रहित बुद्धि को पवित्र करू। घृत से प्रदीप्त दाह करने वाली 'उषाः' अग्नि शिखा के समान उज्ज्वल करू। आप दोनों (अभीके यामन् उरुष्यताम्) परस्पर समीप के प्रेम-विवाहबन्धन में बंधकर परस्पर की रक्षा करो।

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

भा०—(अत्र) इस (देव-हूये) मनुष्यों के परस्पर स्पर्धा और ललकार के अवसर रूप संग्राम में लोग (स्पर्धन्ते उ वा) परस्पर

स्पर्द्धा करते है तब (येषु ध्वजेषु) जिन ध्वजाओं पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती विजुलियों के समान हमारे शस्त्र पड़ते है हे (इन्द्रा वरुणा) शत्रुहन्तः हे शत्रुवारक ! (युवं) तुम दोनों (तान् अमित्रान्) उन शत्रुओ को (हतम्) मारो और (विषूचः पराच शर्वा) विरुद्ध पक्ष के शत्रुओ को शत्रुहिसक शस्त्रसेना से दूर मार भगा ।

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥३॥

भा०—(स्व यशसः) अपने धनैश्वर्य के द्वारा यश प्राप्त करने वाली (देवीः) दानशील, (देवता) मानुष प्रजाएं (सदः सु) सभा-भवनों वा उत्तम २ पदो पर (इन्द्रं वरुणं धु) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुष को अच्छी प्रकार मान-आदरपूर्वक स्थापित करें । उन दोनो मे से (एक.) एक इन्द्र नाम अध्यक्ष (प्रविक्ता.) अच्छी प्रकार सुविभक्त (कृष्टीः धारयति) बल वान् हलाकर्षित भूमियों को वृषभ या मेघ के समान प्रजाओं को धारण करता है और (अन्यः) दूसरा वरुण शत्रुवारक अध्यक्ष (अप्रतीनि वृत्राणि) अप्रत्यक्ष शत्रुओं को भी दण्डित करे । अर्थात् इन्द्र, वरुण दोनो मे से एक का काम प्रजा को विभक्त कर शासनव्यवस्था करना और दूसरे का काम दुष्टों का दमन करना है । १ दीवानी, २. फौजदारी विभाग ।

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, अखण्ड राजनीति और भूमि के हितैषी जनो ! (यः) जो (होता) दानशील पुरुष (शवसा) अपने बल से तुम दोनोंके प्रति (नमस्वान्) उत्तम अन्नादि सत्कार से युक्त होता है (सः) वह (सु-क्रतुः) शुभ कर्म करने हारा और (ऋतचित् अस्तु) सत्य ज्ञान और पुण्य ज्ञान को उपार्जन करने वाला हो । और जो (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (वां आववर्त्तत्) तुम दोनों को प्राप्त

होता है, वह (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (सुविताय इत् आत्) सुख प्राप्त करने मे समर्थ (हविष्मान्) उत्तम अन्नसम्पन्न हो। इसी प्रकार जो आहुतिदाता ज्ञान और बल से अन्नवान् होकर उत्तम यज्ञ का कर्त्ता और (ऋत-चित्) वेद द्वारा यज्ञचयन करता है सूर्य, वायु और वेद से हविष्मान् हो उत्तम फल प्राप्त करने मे समर्थ और यत्नशील होता है।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ५। ४ ॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[८६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ७ विराट् त्रिष्टुप्। ६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥

भा०—वरुण परमेश्वर का स्वरूप। (अस्य महिना) इस के महान् सामर्थ्य से (जनूंषि) जन्म लेने वाले समस्त प्राणि वर्ग (धीरा) बुद्धि और कर्म द्वारा प्रेरित होते हैं। (यः) जो (चित्) पूजनीय (उर्वी रोदसी) विशाल सूर्य या आकाश और भूमि दोनो लोकों को (तस्तम्भ) थामे हुए है, वह ही (बृहन्तं) बड़े भारी (ऋष्वं) महान् (नाकम्) सुखस्वरूप परमानन्द को (प्र नुनुदे) प्रदान करता है, वही बड़े भारी सूर्य को भी चलाता है। वह ही (भूम नक्षत्रं च) बहुत से नक्षत्र गण को (पप्रथत्) विस्तृत करता है।

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२॥

भा०—(उत) और (स्वया तन्वा) मैं अपने इस देह से (तत्) उसकी (कदा) कब (संवेद) स्तुति करूं, उसके साथ साक्षात् संवाद करूं और (कदा नु) कब मैं (वरुणे अन्तः) उस वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के हृदय में भीतर, वरणीय पति के बीच वधू के समान (भुवानि) एक हो सकूंगा। वह प्रभु, नाथ (अहृणानः) मेरे प्रति अनादर वा कोप से रहित होकर (मे हव्यं) मेरे स्तुतिवचन भेंट को (कि जुषेत) क्यों कर प्रेम से स्वीकार करेगा। और मैं (कदा) कब (सुमनाः) शुभ चित्त होकर उस (मृडीकं) परम सुखप्रद, दयालु आनन्दमय को (अभि ख्यम्) साक्षात् करूंगा।

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम्।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य! सर्वश्रेष्ठ प्रभो! मैं (दिदृक्षु) दर्शन करने का अभिलाषी होकर (तद् एनः पृच्छे) तुझ से वह पाप पूछता हूं जिसके कारण मैं यहां बंधा हूं। मैं (उप उ एमि) जिज्ञासु दर्शनाभिलाषी होकर तेरे समीप आया हूं। और मैं (चिकितुष) ज्ञानी पुरुषों से भी (वि पृच्छम्) विविध प्रकार से पूछता रहा हूं। (कवयः चित् ये समानम् इत् आहुः) पूज्य विद्वान् गण सभी मुझे एक समान ही उपदेश करते रहे हैं कि निश्चय से (अयं वरुणः) यह वरुण, सर्वश्रेष्ठ प्रभु ही (तुभ्यं हृणीते) तुझ पर रुष्ट है, तेरा आदर नहीं करता।

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम्।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! दुष्टों के वारण करने हारे प्रभो! (किम् आगः आस) वह क्या अपराध है? (यत्) जिसके कारण (ज्येष्ठं स्तोतारं) अपने बडे से बड़े उत्तम स्तुतिकर्त्ता (सखायं) स्नेही मित्र को भी (जिघांससि) दण्ड सा देना चाहता है। हे (दूळभ) दु...

हे न नाश होने हारे अविनाशिन् ! हे दूरभ ! सदा दूर २ विद्यमान ! हे अन्न-पते, जीवन के स्वामिन् ! (मे तत् प्रवोचः) मुझे वह उपाय बतला जिस-से (अनेनाः) निष्पाप होकर (नमसा) भक्तिभाव से विनीत होकर (तुरः) अति शीघ्र चलकर (त्वा अव इयाम्) तुझ तक पहुंच जाऊं। तुझे भली प्रकार जान जाऊं।

अव॑ द्रु॒ग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा॒ नोऽव॒ या व॒यं च॑कृ॒मा त॒नूभि॑ः ।
अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम् ॥५॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! प्रकाशस्वरूप स्वामिन् ! प्रभो ! तू (नः) हमारे (पित्र्या) पालक माता पिता वा गुरुजनो के दोष के कारण प्राप्त हुए (द्रुग्धानि) तेरे प्रति किये द्रोह आदि अपराधों को (अव सृज) हम से दूर कर। और (वयं) जिन अपराधों को हम (तनूभिः चकृम) इन देहों से करते रहे हैं उनको भी (अव सृज) हम से दूर कर। (तायु न पशु-तृपं) चोरी करने की नियत से पशु को घासादि खिलाने वाले सन्देह मात्र में बांध लिये गये चोर के समान बन्धन में बंधे मुझ (पशु-तृपं) अपने इन्द्रियरूप पशुओं को भोग विलासों से तृप्त करते हुए (तायुं) तेरे ऐश्वर्य को तेरे विना पूछे भोगने वाले चोरवत् मुझ (वसिष्ठं) अति उत्तम 'वसु' तुझमें ही वसने वाले तेरे भक्त को तू (दाम्नः वत्स न) रस्से से बछडे के समान दयालु पशुपालकवत् (अव सृज) मुझे बन्धन से मुक्त कर।

न स स्वो दक्षो॑ वरुण॒ ध्रुति॒ः सा सुरा॑ म॒न्युर्वि॒भीद॑को॒ अचि॑त्तिः ।
अस्ति॒ ज्याया॒न्कनी॑यस उपा॒रे स्वप्न॑श्च॒नेदनृ॑तस्य प्रयो॒ता ॥६॥

भा०—हे (वरुण) न्यायानुसार सुख दुःख, ऐश्वर्य-अनैश्वर्यादि के विभाजक ! न्यायकारिन् ! प्रभो ! (अनृतस्य) 'ऋत' अर्थात् सत्य, ज्ञानमय, विवेकरहित, असत्य और अविवेकमय दशा को (प्रयोता) ला

देने वाला (सः स्वः दक्षः न) केवल वह अपना कर्म ही नहीं है प्रत्यु और बहुत से कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जीव सत्य सुखों से रहि अनृत, पाप दुःखादि मार्ग में जाता है। वे कारण कौन २ से हैं ? जैं (१) अपने किये काम तो हैं ही, या (सः स्वः दक्षः) वह स्वयं स्वस्वरू कर्मकर्त्ता आत्मा। (२) (सा ध्रुतिः सुरा) वह द्रुतगति से जाने वाले जल के समान आत्मा की 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने की ध्रुति प्रवृत्ति अर्थात् रजोगुणी काम भी एक कारण है। (३) (विभीदकः मन्युः) वह मन्यु क्रोध जिससे सब प्राणि भय खाते हैं वह भी एक कारण है। (४) (अचित्तिः) चेतना, ज्ञान का न रहना, मोह भी एक कारण है। (५) (कनीयसः उप-आरे) छोटे, अल्पशक्ति वाले जीव के समीप (स्वप्नः चन इत्) अज्ञान में सोते के समान (ज्यायान् अस्ति) बड़ा भी अज्ञानी ही रहता है वह भी उसका बडा माता पिता, भाई बन्धु आदि भी स्वयं अज्ञान वा पाप में मूढ रहने से दूसरे को मार्ग दिखाने में असमर्थ होता, उसके साथ २ छोटा भी संग दोष से उसी ओर जाता है। कोई भी (अनृतस्य प्रयोता न) असत्य, अज्ञान को दूर करने वाला नहीं होता। अथवा—(अनृतस्य प्रयोता) अज्ञान पापादि का दूर करने वाला (नः सः स्वो दक्षः) न अपना कोई कुशल बन्धु, जन या कर्म है, (न सा ध्रुतिः) न वह दृढता, स्थिरता है कि मैं पाप में न गिरूं, (न सुरा) न वह उत्तम प्रवृत्ति है जो पाप से परे रक्खे, (न मन्युः) न ज्ञान है, (न विभीदकः) न कोई असत्य से भय दिलाने वाला प्रत्यक्ष कारण है, तो है क्या ? केवल (अचित्ति) अज्ञान ही है। और हे प्रभो ! अब केवल एक सहारा है वह तो (कनीयस उप आरे) इस छोटे से अल्प शक्ति जीव के समीप (स्वप्न = सु-अप्न) उत्तम रूपवान्, कर्मवान् (ज्यायान्) ज्येष्ठ भाई के समान एकमात्र महान् तू परमेश्वर (इत् अस्ति) ही है जो (अनृतस्य प्रयोता) उसके इस सत्य रहित अविवेक को दूर भगाने में समर्थ है।

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

भा०—(अहं) मैं (अनागा.) पाप से रहित होकर (भूर्णये) पालक (देवाय) सर्व सुखदाता, सर्व प्रकाशक परमेश्वर के लिये (मीढुषः दासः न) सर्वदाता स्वामी के दास के समान (अरं कराणि) बहुत कुछ सेवा करूं। वह (देवः) दानशील प्रकाशस्वरूप प्रभु (अर्यः) सब का स्वामी (अचित.) अज्ञानी जनो को (अचेतयत्) सदा ज्ञान प्रदान करता और वह (कवि-तरः) सब से अधिक विद्वान् होकर (गृत्सं) अपने स्तुतिकर्त्ता भक्त को (राये जुनाति) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग पर ले जाता है ।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥८

भा०—हे (वरुण) सब कष्टों को वारण करने हारे ! हे (स्वधावः) सब जीवों के स्वामिन् ! हे अन्नपते ! (अयं सः स्तोम.) यह वह स्तुति वचनादि सब (तुभ्यम्) तेरी ही स्तुति के लिये (हृदि चित् उप-श्रितः अस्तु) हृदय में पूजार्थ स्थिर रहे । वह (नः क्षेमे शं उ अस्तु) हमारे धन प्राप्ति काल में तुझे शान्तिदायक ही हो। हे (सदा यूयं नः पात स्वस्तिभिः) विद्वान् जनो ! आप लोग हमें सदा उत्तम आशीर्वचनों और सुखोपायों से रक्षा किया करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

भा०—(वरुणः) सर्वव्यापक परमेश्वर ही (सूर्याय) सूर्य के गमन करने के (पथः) मार्गों को (रदत्) बनाता है। और वही (समुद्रिया) समुद्र की ओर जाने वाले (नदीनां अर्णांसि) नदियों के जलों को बहाता है। (सर्गः न सृष्टः अर्वतीः ऋतायन्) बरसा हुआ जल नीची बहती नदियो को स्वभावतः जाता है उसी प्रकार (सर्गः) समस्त जगत् का बनाने वाला (सृष्टः) समस्त जगत् का स्वामी (अर्वतीः) अधीन समस्त महती शक्तियो और प्रकृति की विकृतियों को (ऋतायन्) ज्ञानपूर्वक सञ्चालित करता हुआ (अहभ्यः महीः अवनीः चकार) दिनों से रात्रियों को पृथक् करता है। अथवा वह (अहभ्यः) न नाश होने वाले जीवो के लिये (महीः अवनीः) बड़ी २ रक्षाकारिणी शक्तियों तथा बड़ी २ पालक अन्नादि द्वारा तृप्तिदायक भूमियों को कर्मफल के भोगार्थ (चकार) बनाता है।

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥२॥

भा०—हे (वरुण) सर्वव्यापक प्रभो ! (वातः रजः) जिस प्रकार महान् वायु धूलि को (आ नवीनोत्) सब तरफ उड़ा देता, प्रेरित करता है। उसी प्रकार (वातः) बलशाली, गतिमान् (ते आत्मा) तेरा व्यापक सामर्थ्य ही (रजः) ब्रह्माण्डों में फैले धूलि कणवत् समस्त लोकों को (आ नवीनोत्) सब ओर संञ्चालित करता है। इसी प्रकार (ते आत्मा वातः) तेरा आत्मा जीव भूत प्राण वायु देह में (रजः आ नवीनोत्) रक्तप्रवाह को सब ओर प्रेरित करता है। (यवसे पशुः न ससवान् भूर्णिः) घास, भूसा आदि पर पलने वाला पशु जिस प्रकार अन्नादि से लादा जाकर स्वामी के भरण पोषण करने में समर्थ होता है उसी प्रकार यह (वातः) वायु वा (ते आत्मा) तेरा महान् सामर्थ्य ही (ससवान्) अन्नादि भोग्य ऐश्वर्य से समृद्ध होकर

(भूर्णिः) समस्त विश्व का भरण पोषण करने मे समर्थ होता है । (इमे बृहती मही रोदसी अन्तः) इन बड़ी, विशाल, सुख देने वाले आकाश-भूमि या सूर्य-भूमि दोनो के बीच मे (ते) तेरे (विश्वा) समस्त (प्रियाणि) प्रिय लगने वाले (धाम) तेज और विश्व को धारण करने वाले वा जीवों के आधारभूत लोक वा नाना सामर्थ्य विद्यमान है ।

परि॒ स्पशो॒ वरु॑णस्य॒ स्मदि॑ष्टा उ॒भे प॑श्यन्ति॒ रोद॑सी सु॒मेके॑ ।
ऋ॒तावा॑नः क॒वयो॑ य॒ज्ञधी॑राः॒ प्रचे॑तसो॒ य इ॒षय॑न्त॒ मन्म॑ ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) जिस प्रकार दुष्टो के निवारक राजा के 'स्पश्'—गुप्तचर सिपाही उत्तम अभिप्रायवान् होकर (उभे सु-मेके पश्यन्ति) ऊपर से देखने मे अच्छे दोनो ही प्रकार के अच्छे और बुरे शास्य शासक वर्गों को देखते हैं इसी प्रकार (ये) जो (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान की (इषयन्त) अन्नवत् चाहना करते और औरो को अन्नवत् प्रदान करना चाहते है वे (ऋतावानः) सत्य ज्ञानमय वा वेदमय तप का सेवन करते हुए, (यज्ञ-धीराः) यज्ञ, त्यागयुक्त कर्म को करते और उसका अन्यों को उपदेश करते हुए वा, 'यज्ञ', परमोपास्य प्रभु की ओर अपनी बुद्धि और मन को प्रेरते और उसी को सर्वात्मना धारण करते हुए, (वरुणस्य स्पशः) उस प्रभु के मानो सिपाहियों के समान उसकी बनाई सृष्टि और उसके नियम व्यवस्थाओं का साक्षात् करने वाले, वा उस प्रभु का सदा हुक्म बजाने मे तत्पर प्रभु के सेवक, (स्मदिष्टाः) उत्तम आचारवान्, एक साथ समान इष्ट, याग वा समान एक साथ उत्तम लक्ष्य रख कर कार्य करने वाले होकर (उभे) दोनों इन (सु-मेके) सुखप्रद मेघादि से युक्त (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान (सुमेके) शुभ वीर्यसेचन मे समर्थ उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता को ही सृष्टि का कारण उत्पादन (परि पश्यन्ति) देखते है ।

उ॒वाच॑ मे॒ वरु॑णो॒ मेधि॑राय॒ त्रिः स॒प्त नामाघ्न्या॑ बिभर्ति ।
वि॒द्वान्प॒दस्य॒ गुह्या॒ न वो॑चद्यु॒गाय॒ विप्र॒ उप॑राय॒ शिक्ष॑न् ॥ ४ ॥

भा०—(मे मेधिराय) मुझ बुद्धिमान् पुरुष को (वरुणः) सर्व वरणीय श्रेष्ठ प्रभु (उवाच) उपदेश करता है कि (अघ्न्या) कभी नाश न होने वाली, परमेश्वरी या प्रकृति शक्ति (त्रिः सप्त नाम) तीन, सात अर्थात् २१ स्वरूपों को (बिभर्त्ति) धारण करती है । (विप्र विद्वान्) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् पुरुष (उपराय) समीप स्थित (युगाय) मनोयोग से विद्या ग्रहण करने वाले शिष्य को (शिक्षन्) उपदेश देता हुआ (पदस्य) परमप्राप्य ब्रह्म पद के (गुह्या न) परम रहस्यों का रहस्य बातों के समान ही (वोचत्) उपदेश करे ।

'त्रिः-सप्त नाम'—ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के २१ स्वरूप 'ये त्रिषप्ताः०' (अथर्व० १ । १ । १ ॥) इस मन्त्र के भाष्य में स्पष्ट कहे हैं । पञ्च तन्मात्रा, पञ्च, स्थूलभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन । यद्वा, यहां त्रिः । सप्त । दो पद पृथक् रहे । अतः—इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति, महि विश्रुति एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ यजु० ८ । ४२ ॥ वेद ने ये १० नाम अघ्न्या के कहे हैं । यहां वे ही (त्रिः = ३ + सप्त ७ = १०) नाम अभीष्ट हैं । 'त्रि' इत्यस्य प्रथमैकवचने त्रिः॥ अथवा सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने सुः । त्रिः त्रयः, सप्त च मिलित्वा दश नामानि ।

ति॒स्रो द्यावो॒ निहि॑ता अ॒न्तर॑स्मिन्ति॒स्रो भूमी॒रुप॑राः॒ षड्वि॑धानाः ।
गृत्सो॒ राजा॒ वरु॑णश्चक्र ए॒तं दि॒वि प्रे॒ङ्खं हि॑र॒ण्ययं॑ शु॒भे कम् ॥५॥

भा०—(तिस्रः द्यावः) तीनों लोक, भूमि, अन्तरिक्ष और उच्चतम आकाश में (अस्मिन् अन्तः निहिताः) इस सब के आच्छादक वरुण परमेश्वर के ही भीतर स्थित हैं । और (तिस्रः भूमीः) तीनों भूमियां (उपराः) एक दूसरे के समीप स्थित (षड् विधानाः) छः छः प्रकार के ऋतु आदि

विधानों सहित वे भी उसके ही भीतर है। (गृत्सः) समस्त ज्ञान का उपदेष्टा (राजा) सर्वोपरि शासक (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब से गुरु रूप से वरण करने योग्य प्रभु ही (दिवि) आकाश में (प्रेङ्खं) उत्तम गति से जाने वाले (एतं) उस (हिरण्मयम्) तेजोमय सूर्य को, अन्तरिक्ष मे उत्तम गतिमान्, हित, रमणीय रूप वायु को और भूमि तेजोमय अग्नि को (शुभे) दीप्ति, जल और कान्ति के लिये (चक्रे) बनाता है। कं पादपूरण.।

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद्द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥६॥

भा०—(द्यौ. इव सिन्धुं) सूर्य जिस प्रकार अकेला समस्त आकाश मे व्यापता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी (द्यौः) तेजस्वरूप, (वरुणः) सर्वव्यापक होकर सिन्धुं अतिवेग से जाने वाले प्रकृति के बने जगत्-प्रवाह को (अव स्थात्) व्यवस्थित करता है। वह (द्रप्सः न श्वेत.) जल विन्दुवत् श्वेत, स्वच्छ एवं रसस्वरूप कान्तिमय है। वह (मृगः) सिंहवत् बलवान् वा, (मृगः) ज्ञानी जनो द्वारा खोजने योग्य और (मृगः) अति शुद्ध, पावन स्वरूप, (तुविष्मान्) अति बलशाली, सर्व शक्तिमान् है। वह (गंभीर-शंसः) गंभीर समुद्र के समान अगाध और प्रशंसा करने योग्य, वेदमय गम्भीर ज्ञान का उपदेष्टा, (रजसः विमानः) इस समस्त लोक समूह का विशेष निर्माता और ज्ञाता है, वह (सुपार-क्षत्रः) सुख से सर्वपालक बलैश्वर्यवान्, (अस्य सतः राजाः) इस सत्, व्यक्त संसार का राजावत् शासक है।

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥९॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आगः चक्रुषे चित्) पाप, अपराध करने वाले के भले के लिये ही (मृडयाति) उस पर दया करता है,

उस (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ प्रभु के अधीन हम (अनागाः स्याम) निष्पाप होकर रहे। हम उस (अदितेः) अखण्ड शासक प्रभु के (व्रतानि अनु) व्रतो, नियमो के अनुकूल (ऋधन्तः) समृद्ध होते है। हे विद्वान् जनो! आप लोग (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमे उत्तम आशीर्वचनो से सदा पालन करो। इति नवमो वर्गः॥

[८८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम्॥ १॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (ईम्) इस (अर्वाञ्चं) अभिमुख आये (यजत्रं) दानशील, आत्मसमर्पक और सत्संगति करने वाले पुरुष को (सहस्रमघं) सहस्रो धनों से सम्पन्न, (वृषणं) बलवान्, मेघवत् उदार और (बृहन्तम् करते) बड़ा बना देता है उस (वरुणाय) सर्व-श्रेष्ठ, सब को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (मीढुषे) ऐश्वर्यों की प्रजाजनों पर मेघवत् निष्पक्षपात होकर वृष्टि करने वाले, सब के सेचक और वर्धक परमेश्वर के निमित्त (प्रेष्ठां) अति उत्तम, प्रिय (मतिं) स्तुति और बुद्धि का (प्र भरस्व) प्रयोग कर।

अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात्॥२॥

भा०—(अध नु) और मैं (अस्य) इस (अग्नेः) तेजोमय (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के विषय मे (जगन्वान्) ज्ञान प्राप्त कर और उसकी शरण मे प्राप्त होकर उसके (सं-दृशम्) सम्यक् दर्शन रूप (अनीकं) तेज को (मंसि) मनन करता हूं। (यद्) जिस प्रकार (अश्मन् अन्

वपुः दृशये निनीयात्) पत्थर या शिला, चक्की आदि मे पिसा अन्न या कुटी ओषधि, या (अश्मन् अन्धः) मेघ के आधार पर उत्पन्न अन्न शरीर को उत्तम दर्शन योग्य बना देते है उसी प्रकार (यत्) जो (अधिपाः) सर्वोपरिपालक (स्व) सुखकारी वा सूर्यवत् तेजस्वी है वह (अन्धः) अन्नवत् प्राणो का धारक होकर (दृशये) साक्षात् करने के लिये (मा) मुझे (वपुः) उत्तम रूप, शरीर आदि (निनीयात्) प्राप्त कराता है। अर्थात् प्रभु हमे शरीर भी इसीलिये देता है कि हम उससे साधना करके भगवान् के सुखमय, प्राणप्रद रूप को प्राप्त करने की साधना करे।

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्॥ ३॥

भा०—(अहं) मैं और (वरुणः च) सर्व श्रेष्ठ वरण करने योग्य स्वामी, दोनो दो मित्रो के समान वा पति पत्नीवत् (यत् नावम् आ रहाव) जब नाव पर चढ़े (यत् समुद्रम् मध्यम् ईरयाव) और जब समुद्र के बीच उसको चलावें (यत् अधि अपां) जब जलो के ऊपर (स्नुभिः चराव) गमनशील यानो से विचरे तो (शुभे) अपनी शोभा और (कम्) सुख प्राप्त करने के लिये (प्रेङ्खे) झूले पर (प्रेङ्खयावहे) हम दोनों झूले। शिष्य और गुरुभक्त और उपास्य दोनो वाणी या स्तुति रूप नौका पर चढते है, आनन्द सागर की ओर बढते है। (स्नुभिः) नाना साधनो से (अपां अधि) प्राणो के ऊपर वश करते है (प्रेङ्खे) परम उत्तम गन्तव्य पद पर शोभा व कल्याण के निमित्त उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः॥४॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य आचार्य (वसिष्ठं) अधीन

वस कर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, उत्तम शिष्य को (नावि) ज्ञान सागर से पार उतारने वाली वेदमयी वाणी रूप नौका के बीच मे (ह) अवश्य ही (आधात्) स्थापित करे। वह स्वयं (स्वपाः) उत्तम कर्मशील, सदाचारी होकर (महोभिः) बड़े २ गुणो से (वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम ब्रह्मचारी को वेद मन्त्रार्थों को यथार्थ रूप मे देखने मे समर्थ विद्वान् बना देवे। (विप्रः) विविध विद्याओं से शिष्य को पूर्ण करने वाला आचार्य (अन्हां सु-दिनत्वे) दिनों को शुभ, मङ्गलकारी बनाने के लिये (यात् द्यावा नु यात् उषसः नु) आये दिनो और आयी रातो मे भी (स्तोतारं ततनन्) अध्ययनशील शिष्य को और अधिक विस्तृतज्ञान-वान् करता रहे।

क्व१त्यानि॑ नौ स॒ख्या ब॑भूवु॒: सचा॑वहे॒ यद॑वृ॒कं पु॒रा चि॑त् ।
बृ॒हन्तं॒ मानं॑ वरुण स्वधाव: स॒हस्र॑द्वारं जगमा गृ॒हं ते॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वरण) वरणीय श्रेष्ठतम ! हे (स्वधावः) प्राणपते ! (नौ) हम दोनों के (त्यानि सख्यानि) वे नाना प्रकार के सख्य, मित्रता के भाव (क्व बभूवुः) कहां हुए, (यत्) जो हम दोनो (पुराचित्) मानो पूर्वकाल से (अवृकं) परस्पर चोरी का भाव न रखते हुए (सचावहे) परस्पर मिलकर रहें। हे (वरुण) वरण योग्य ! नाथ ! हे (स्वधाव) और अमृत के स्वामिन् ! हम (बृहन्तं) महान् (मानं) परिमाण वाले (सहस्रद्वारं) सहस्रों द्वार वाले (गृहं जगाम) घर को प्राप्त हो। भक्त उपास्य का पतिपत्नीवत् सख्य प्रदर्शित है। यह जीवो के लिये जगत बहुत भारी सहस्रों द्वारवाला प्रभु का बनाया गृह है, मुमुक्षु के लिए (मानं) ज्ञानमय महान् 'गृह', ग्रहण योग्य आश्रय, मोक्षपद प्रभु गृह है उसे प्राप्त करें। इसी प्रकार प्रजा के प्रति राजा भी पूर्व परिचित मित्रों सा वर्त्ते वे अव्याज, वृकाचार कुटिलतादि से रहित होकर विचरे, प्रजाएं राजा के सहस्रद्वार विशाल गृहवत् राष्ट्र को प्राप्त हों।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! राजन् ! तू (नित्यः) सदा का (आपिः) बन्धु (प्रियः) प्रिय (सन्) होकर हमे सदा प्राप्त है उस (त्वाम्) तेरे प्रति भी (ते सखा) तेरा मित्र यह जीव (आगांसि कृणवत्) नाना अपराध करता है । हे (यक्षिन्) यक्ष 'अर्थात' पूजा करने वाले भक्त प्रजाजनों के स्वामिन् ! हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य का (एनस्वन्तः) पापी होकर (मा भुजेम) भोग न करें । तू (विप्रः) मेधावी गुरु के समान (स्तुवते) स्तुतिशील को (वरूथं यन्धि) वरण करने और दुःखों, अज्ञानों के दूर करने योग्य उत्तम गृह, सुख, ज्ञान और बल प्रदान कर ।

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥१०॥

भा०—परमेश्वर जीवों के कर्म बन्धन किस प्रकार काटता है ? हम लोग (आसु ध्रुवासु क्षितिषु) इन नाना धारण करने योग्य, सुव्यवस्थित, कर्म और भोग-भूमियों में (क्षियन्तः) निवास करते हुए वा (क्षियन्तः) ऐश्वर्ययुक्त वा क्षीण होते हुए कभी ऊर्ध्वगति और कभी नीच गति प्राप्त करते हुए, (अदितेः उपस्थात्) भूमि से जिस प्रकार (अवः वन्वानाः) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार (अदितेः उपस्थात् अवः वन्वाना) सूर्य से कान्ति दीप्ति प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (अदितेः) अखण्ड स्वरूप परमेश्वर से हम (अवः) परम रक्षा, सुख, प्रेम (वन्वानाः) प्राप्त करते रहें । तब वह (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (अस्मत् पाशं) हम से उस पाश को (वि मुमोचत्) छुड़ाता है । (नः यूयं सदा स्वस्तिभिः पात) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमारी सदा उत्तम सत् उपायों से रक्षा किया करो । इति दशमो वर्गः ॥

[८९]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१—४ आर्षी गायत्री । ५ पाद-
निचृज्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (वरुण) सब दुःखों को दूर करने हारे ! सब से उत्तम पद के लिये वरने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ ! हे (राजन्) देदीप्यमान ! हे (सुक्षत्र) उत्तम धन, ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न ! (अहम्) मैं (मृन्मयं गृहम्) मट्टी के बने गृह के तुल्य कच्चे इस (मृन्मयं = मृत्–मयं) मृत्यु से आक्रान्त शव तुल्य, अवश्य ग्रहण करने योग्य वा आत्मा को पकडे हुए इस देह को (मोषु गमम्) अब कभी न प्राप्त करू तो अच्छा हो । हे प्रभो ! (मृड) सब को सुखी करने हारे दयालो ! तू (मृडय) सुखी कर, हम पर दया कर । प्रजा भी राजा से यही चाहे कि वे मट्टी के घरों में न रह कर पक्के मकानों में रहें और समृद्ध और सुखी हों ।

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥२॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् शान्तिदायक पुरुषों तथा पर्वतवत् दृढ़ शस्त्रधर पुरुषों के स्वामिन् ! प्रभो ! राजन् ! (यत्) जब भी मैं (प्रस्फुरन् इव) तडपता हुआ सा, (दृतिः न ध्मातः) मशक या कुप्पे के समान फूला हुआ, विताडित फूंक से भरे चर्मवाद्य के समान रोता गाता हुआ (एमि) तेरी शरण आऊं, हे (सुक्षत्र) सुबल ! सुधन ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, तू दया कर ।

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥३॥

भा०—हे (समह) उत्तम पूज्य ! ऐश्वर्यवन् ! (दीनता) दीन दीन के कारण मैं (क्रत्वः) सत् कर्म और सत् ज्ञान के (प्रतीपं) विरुद्ध विपरीत चला गया हूं और (शुचे) बडा शोक करता हूं । अथवा हे

(शुचे) शुद्ध पवित्र स्वरूप प्रभो ! (दीनता) दैन्यभाव (समह = सम्-अह) अवश्य (क्रत्वः प्रतीपं जगम) कर्मशील या उद्योगी पुरुष या उद्योग से विपरीत दिशा मे जाता है । हे (सु-क्षत्र) उत्तम धन और वलशालिन् ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, हम पर कृपा कर ।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुक्षत्र) उत्तम वल ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (अपां मध्ये तस्थिवासं) जलो के वीच मे खड़े (जरितारं) रोगादि से जीर्ण होते हुए पुरुष को जैसे (तृष्णा अविदत्) प्यास सताती है उसी प्रकार हे प्रभो ! (जरितारं) तेरी स्तुति करने वाले (अपां मध्ये तस्थिवांसं) आप्त पुरुषो के वीच या प्राणो के वीच मे रहने वाले मुझ को भी (तृष्णा) भूख प्यास के समान विषय भोगादि की लालसा प्राप्त है, हे प्रभो ! हे (मृड, मृडय) सव को सुखी करने हारे ! तू मुझे सुखी कर ।

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याः३श्चरामसि । अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ।५।११।५॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! (दैव्ये जने) विद्वान् सत्पुरुष के हितकारी जन के ऊपर या उनके वीच रहकर हम (मनुष्या·) मनुष्य (यत् किं च) जो कुछ भी हम (इदं अभिद्रोहं) इस प्रकार का द्रोह आदि (चरामसि) करते है और (अचित्ती) विना ज्ञान के (यत् तव धर्मा युयोपिम) जो तेरे वनाये धर्मो या नियमो को उल्लंघन करते है, हे (देव) प्रभो ! राजन् ! (तस्माद् एनसः) उस अपराध या पाप से (नः मा रीरिष·) हमे मत दु·खित कर । ऐसी व्यवस्था कर कि हम उससे भविष्य में दुःख न पावे । अर्थात् हम मे से द्रोह के भाव और उपेक्षा, अज्ञान को दूरकर । जिससे न पाप हो न दण्ड मिले इत्येकादशो वर्ग· ॥

[९०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—४ वायुः । ५—७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वी॑र॒या शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तासः॑ ।
वह॑ वायो नि॒युतो॑ या॒ह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! इन्द्र ! हे वायुवत् बलवान् वीर सेनापते ! (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, ईमानदार (वीरया = वीराः) वीर (मधुमन्तः) बलवान्, मधुरप्रकृति, (सुतासः) अपने योग्य पदों पर अभिषिक्त पुरुष (अध्वर्युभिः) प्रजा की हिंसा पीड़ा न चाहने वाले सौम्यवृत्ति विद्वानों सहित (वाम् प्र दद्रिरे) तुम दोनों को प्राप्त होते है। हे (वायो) वायुवत् सर्वोपकारिन् बलवन् ! तू (नियुतः) नियुक्त वा सहस्रों अश्वादि सेनाओं को (वह) सन्मार्ग पर ले चल, और (सुतस्य अन्धसः) ऐश्वर्य से समृद्ध, उत्पन्न अन्न को भी (याहि) प्राप्त कर और (मदाय) तृप्ति के लिये उसका (पिब) उपभोग कर ॥

ई॒शा॒नाय॒ प्रहु॑तिं॒ यस्त॒ आन॑ट् शुचिं॒ सोमं॑ शुचिपा॒स्तुभ्यं॑ वायो ।
कृ॒णोषि॒ तं मर्त्ये॑षु प्रश॒स्तं जा॒तोजा॑तो जायते वा॒ज्य॑स्य ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन् ! हे विद्वन् ! (यः) जो (शुचि पाः) शुद्ध आचार, शुद्ध व्यवहार का पालन करने वाला पुरुष (ते ईशानाय) तुझ सर्वैश्वर्यवान् का (शुचि सोमं) शुद्ध अन्नादि, शुद्ध ऐश्वर्य, और (प्रहुतिं) सर्वोत्तम दान (आनट्) प्राप्त कराता है, (तं) उसको तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (प्रशस्तं कृणोषि) प्रशस्त, कर्मकुशल एवं उत्तम मान योग्य बना देता है और वह (जात-जात) उत्तम रूप प्रकट हो २ कर (अस्य) इस प्रजाजन के बीच (वाजी) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान और बलवान् (जायते) हो जाता है ।

राये नु यं ज॒ज्ञतू रोद॑सी॒मे राये दे॒वी धि॒षणा॑ धाति दे॒वम्।
अध॑ वा॒युं नि॒युत॑: सश्चत॒ स्वा उ॒त श्वे॒तं वसु॑धितिं निरे॒के॥३॥

भा०—(इमे रोदसी) आकाश और भूमि के समान माता और पिता, राजसभा और प्रजासभा दोनों मिलकर (राये) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (नु) ही (यं) जिसको (जज्ञतु.) उत्पन्न करते और (यं देवम्) जिस विजिगीषु को (धिषणा देवी) सर्वोपरि विद्यमान विद्वत्सभा भी (राये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (धाति) स्थापित करती है उस (वायुं) शत्रुओं को प्रबल वायुवत् मूल से उखाड़ देने मे समर्थ पुरुष को (स्वाः) उसके अपनी (नियुतः) लक्षों सेनाएं और प्रजाएं (सश्चत) प्राप्त होती है (उत) और उसी (श्वेतं) समृद्ध, एवं शुद्धाचारवान् को (निरे के) सर्वातिशायी पद पर (वसु-धितिम्) ऐश्वर्य की ख्याति रखने वाला जान कर प्राप्त होते है ।

उ॒च्छन्नु॒षस॑: सु॒दिना॑ अरि॒प्रा उ॒रु ज्योति॑र्विविदु॒र्दीध्या॑नाः।
ग॒व्यं चि॑दू॒र्वमु॒शिजो॒ वि व॑व्रु॒स्तेषा॒मनु॑ प्र॒दिव॑: सस्रु॒राप॑: ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) उषाएं, प्रभात वेलाए वा सूर्य की दाहक कान्तिये (सु-दिनाः उच्छन्) उत्तम दिन वाली होकर प्रकट होती है, (अरि-प्रा.) पाप रहित (दीध्याना.) देदीप्यमान, (उरु ज्योतिः विविदु.) बहुत बडे विशाल प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त करती (उशिजः) कान्तियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम् विवव्रुः) रश्मियों के वडे धन को फैलाती है (अनु प्रदिव' आपः सस्रुः) अनन्तर आकाश से मेघ जल बरसते है इसी प्रकार (उषस.) उषावत् जीवन के प्रारम्भ भाग मे वर्त्तमान नर नारीगण (सु-दिना) शुभ दिन युक्त होकर (उच्छन्) अपने गुण प्रकट करे। और वे (दीध्याना') ईश्वर का ध्यान करते हुए (उरु ज्योति.) बड़ी भारी ज्ञानमय ज्योति को (विविदुः) प्राप्त करें। वे (उशिजः) कामनावान् वा प्रीतियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम्) वेदवाणी के धन को

(विवब्रुः) विविध प्रकार से विवरण करें, उसकी व्याख्या और रहस्योद्घाटन करें। (तेषाम् अनु) उनके पीछे २ ही (प्र-दिवः) उत्तम फल की कामना करने वाली (आपः) आप्त प्रजाएं (सस्रुः) चलें।

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति। इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

भा०—(ते) वे पूर्वोक्त ज्ञानवान्, विद्वान् लोग (सत्येन मनसा) सत्य चित्त और सत्य यथार्थ ज्ञान से (दीध्यानाः) चमकते हुए वा सत्य चित्त से ध्यान करते हुए (स्वेन युक्तासः) अपने आत्मसामर्थ्य और ऐश्वर्य से युक्त होकर (दीध्यानाः) चमकते हुए वा अपने आत्मयोग का अभ्यास करते, (दीध्यानाः) प्रभु का ध्यान करते हुए (युक्तासः) नियुक्त, योगी होकर (स्वेन क्रतुना) अपने ज्ञान और बल से ही (वहन्ति) रथ को अश्वों के समान देह को धारण करते हैं। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन्! सत्यदर्शिन्! बलवन्! ज्ञानवन्! (ईशानयो वाम्) स्वामी, शासक रूप आप दोनों (वीरवाहं रथं) वीरों को धारण करने वाले रथवत् रमणीय उपदेश वा स्थिर पद वा राष्ट्र को (वहन्ति) धारण करते और सञ्चालित करते हैं और वे (पृक्षः) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (अभि सचन्ते) परस्पर समवाय बनाकर रहते हैं। वा (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्न, वृत्ति को प्राप्त करते हैं।

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः। इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (ईशानासः) ऐश्वर्यवान् और शासन अधिकार से युक्त होकर (नः) हमारे सर्वस्व धन, राष्ट्र और सुखादि को (गोभिः) गौओं और भूमियों, (अश्वेभिः) घोड़ों (वसुभिः) राष्ट्रवासी प्रजाओं और (हिरण्यैः) सुवर्णादि धातुओं, और हित रमणीय साधनों से (वि-[illegible]

आयु:) पूर्ण जीवन (दधते) धारण करते है, या हमे प्रदान करते है हे (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् बलवान् प्रधान नायक पुरुषो ! वे (सूरयः) विद्वान् पुरुष (अर्वद्भिः वीरैः) शत्रुओ को नाश करने हारे वीर पुरुषो द्वारा (पृतनासु) संग्रामो मे (सह्युः) विजय करे ।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥१२॥

भा०—हम लोग (अर्वन्तः) शत्रुओ का नाश करते हुए वीर पुरुषो और रथ के अश्वो के समान बलवान् (श्रवसः भिक्षमाणा.) श्रवण करने योग्य ज्ञान की, योग्य गुरुओ और अन्न की गृहस्थो से याचना करते हुए, (वसिष्ठा·) उत्तम वसु, ब्रह्मचारी होकर (सु-अवसे) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं (वाजयन्तः) ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए (इन्द्रवायू हुवेम) ऐश्वर्यवान् और बलवान् एवं ज्ञानदर्शी और ज्ञान के इच्छुक जनो को प्राप्त करे, उनको आदरपूर्वक बुलावें। (यूयं) आप लोग (न. सदा स्वस्तिभिः पात) हमे उत्तम आशिषों और स्वस्ति विधायक मन्त्रो और साधनो से (पात) रक्षा करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[९१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३ वायुः । २, ४—७ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । २,५,६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (नमसा) विनयपूर्वक वृद्ध जनो के प्रति नमस्कार या शत्रु को नमाने वाले बल से (पुरा) पहले (वृधास) बढने हारे (अनवद्यास) अनिन्दिताचरण करने वाले, (देवा·) विद्या,

या आजीविका प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है। अथवा (इदं हि) यह ही (वां) आप दोनो (मध्वः) शत्रु को पीड़ित करने वाले बल का (अग्रम्) श्रेष्ठ भाग (प्रभृतम्) खूब परिपुष्ट हो, और आगे २ बढने वाला हो, (अध) और (प्रीणाना) प्रसन्न एवं प्रजा को प्रसन्न करते हुए (अस्मे वि मुमुक्तम्) हमें विविध बन्धनों से मुक्त करो।

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते।
आभिर्यातं सुविदत्राभिर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) विद्युत्, पवन के समान तेजस्वी और बल- शाली पुरुषो ! (याः) जो (वां) आप दोनों के (शतं) सैकड़ों और (याः सहस्रं) जो हज़ारों (नियुतः) अश्वों के सैन्यगण (विश्व वाराः) सब शत्रुओं के वारण करने में समर्थ होकर (सचन्ते) समवाय बनाकर रहते हैं (आभिः) इन (सु-विदत्राभिः) उत्तम ऐश्वर्य लाभ कराने या उत्तम ज्ञान शिक्षा से युक्त सुशिक्षित सेनाओं से आप दोनों (अर्वाक् यातं) आगे बढो। हे (नरा) नायक पुरुषो ! आप दोनों (प्रति- भृतस्य) वेतन द्वारा परिपुष्ट (मध्वः) सैन्य बल की (पातम्) सदा रक्षा करो।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ९० । ७ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३—५ वायुः । २ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥

भा०—हे (शुचिपाः) 'शुचि' अर्थात् शुद्ध चरित्रवन् ! निष्पाप, निर्दोष, निरपराध, ईमानदार की रक्षा करने वाले ! हे (वायो) तुप और अन्नो को पृथक् २ करनेवाले वायु के समान सत्य और असत्य का विवेक करने हारे विद्वन् ! तू (नः उप आ भूष) हमें सदा प्राप्त हो, हमे सुशोभित कर । हे (विश्ववार) सब से वरण करने योग्य ! सब पापो के वारक ! (ते सहस्रं नियुतः) तेरे अधीन सहस्रों नियुक्त आज्ञा पालक है । हे (देव) विद्वन् ! तू (यस्य पूर्वपेयं) जिसके पूर्व पालन करने योग्य अंश को (दधिषे) धारण करता है मैं उसी (मद्यम्) तृप्तिकारक, हर्षजनक (अन्धः), उत्तम अन्न को (ते उपो अयामि) तेरे लिये प्राप्त कराऊं।

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥२॥

भा०—(यत्) जिस (मध्वः) शत्रुपीड़क बल और मधुर ऐश्वर्य के (अग्रियं) प्रमुख पद तथा श्रेष्ठ भाग को (देवयन्तः) शुभगुणों और उत्तम फलों की आकांक्षा करने वाले (अध्वर्यवः) प्रजा की हिंसा से रहित राष्ट्र-पालक के कर्त्ताजन (वां प्र भरन्ति) आप दोनो के लिये प्राप्त कराते है, उस (सोमम्) ऐश्वर्य या बल वीर्य को (इन्द्राय वायवे) विद्युत्, पवन, सूर्य वायुवत् तेजस्वी और बलवान् पुरुष के (पिबध्यै) उपभोग और रक्षा के लिये (अध्वरेषु) यज्ञादि उपकारक कार्यों, यज्ञों मे (वीरः सोता) वृद्ध विद्वान् ऐश्वर्योत्पादक वा शासक, (प्र अस्थात्) प्राप्त करे और उस पर शासन करे।

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! बलवन् ! (याभिः नियुद्भिः) जिन अश्वादि सेनाओ सहित (दुरोणे) गृहवत् राष्ट्र मे विद्यमान (दाश्वा-

सम्) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (अच्छ प्र यासि) भली प्रकार प्राप्त होता है उन द्वारा ही तू (नः) हमें (सुभोजसं रयिम्) उत्तम भोग्य पदार्थों और उत्तम रक्षा साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य को (नि युवस्व) प्रदान कर और (वीरं) वीरजन, (गव्यं राध.) गवादि सम्पदा और (अश्व्यं च राधः) अश्वो से बनी सम्पदा भी (नि युवस्व) प्रदान कर ।

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम स सह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ४

भा०—(ये) जो वायवः) बलवान् पुरुष (इन्द्र-मादनास) आत्मा प्राणो के समान शत्रुहन्ता, प्रजा को प्रसन्न करने मे समर्थ जो (आदेवासः) अपने सब ओर विद्वान् और विजयाभिलाषी व्यवहारज्ञ पुरुषो को रखते है और (अर्य.) शत्रु के (नितोशनासः) मारने वाले हों ऐसे (सूरिभिः) शासक नायको और विद्वानो के द्वारा हम लोग (वृत्राणि घ्नन्तः) विघ्नकारक दुष्टो, शत्रुओं का नाश और धनों को प्राप्त करते हुए (युधा) युद्ध द्वारा (नृभिः अमित्रान् सासह्वांसः) वीर पुरुषों द्वारा शत्रुओं को पराजय करने वाले होवें ।

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।५।१४

भा०—हे (वायो) बलवान् वीरजन ! तू (शतिनीभिः) सौ २ भटों के स्वामी, नायकों तथा हजार २ के भटों के स्वामी, नायकों वाली (नियुद्भिः) अश्व सेनाओं सहित (नः यज्ञ उप याहि) हमारे यज्ञ, राज्य को प्राप्त हो । (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस ऐश्वर्ययुक्त शासन में तू अति प्रसन्न हो और अन्यों को भी प्रसन्न कर । हे विद्वानो ! वीर पुरुषो ! आप लोग (स्वस्तिभिः न सदा पात) उत्तम उपदेशवचनों और कल्याणकारी उपायों से हमारी सदा रक्षा किया करें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[९३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्र-हणा) विघ्ननाशक वा धन अन्नादि को प्राप्त करने वाले माता पिता (नव-जातं शुचिं) नये उत्पन्न उत्तम शुद्ध बालक को (जुषेताम्) प्रेम करते और (श्रेष्ठा वाजं उशते दत्तः) उसके पालक माता पिता बुभुक्षित को अन्न देते है उसी प्रकार हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ऐश्वर्यवन् और अग्निवत् तेजस्विन् अग्रणी नायको ! आप दोनों (वृत्र-हणा) अपने बढ़ते शत्रुओ का नाश करने वाले होकर (शुचिम्) शुद्ध पवित्र व्यवहार वाले (नव-जातम्) नये ही अपने अधीन प्राप्त, (स्तोमं) स्तुतियोग्य प्रजा के अधिकार (अद्य) आज के समान सदा ही (जुषेताम्) प्रेम और उत्साह से प्राप्त करे। (ता) वे दोनों (धेष्ठा) प्रजा तथा बलवान् सैन्य, सभादि के अधिकार को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होकर (सद्यः) शीघ्र ही (उशते) कामना वाले जन को (वाजं) उसका अभिलषित धन, अन्न, बल, ज्ञान आदि प्रदान करे। (उभाहि वां) आप दोनो को ही मैं (सु हवा) सुख से, आदर पूजा सहित बुलाने योग्य सुगृहीतनामधेय (जोहवीमि) स्वीकार करता हूं, आप को आदरपूर्वक बुलाऊं, निमन्त्रित करूं। माता पिता दोनों ही इन्द्र और दोनों ही अग्नि है। वे सन्तान के बाधक कारणों को नाश करने वाले होने से 'वृत्रहन्' होकर नवजात शिशु को निर्दोष और स्तुत्य रूप से प्राप्त करते हैं।

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥२॥

भा०—(ता) वे दोनों (सानसी) सब से सेवा करने योग्य, सब के शरणीय, सब के दान देने वाले और (शवसाना) बलपूर्वक ऐश्वर्य का भोग करने वाले, (साकं-वृधा) एक साथ वृद्धि को प्राप्त और (शवसा) बल से (शूशुवांसा) बढ़ते (भूतम्) रहो। और (भूरेः शवसस्य) बहुत से अन्न और (रायः) दान देने योग्य धन पर (क्षयन्तौ) ऐश्वर्य, प्रभुत्व करते हुए (भूरेः) बहुत बड़े (स्थविरस्य) चिरस्थायी (घृष्वेः) शत्रु-नाशक (वाजस्य) बल, सैन्य को (पृक्तम्) अपने साथ मिलाये रक्खो।

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो (नरः) मनुष्य (वाजिनः) बलवान्, संग्राम-चतुर और ऐश्वर्यवान् और (प्रमतिम् इच्छमानाः) उत्तम बुद्धि और उत्कृष्ट ज्ञान को चाहने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों द्वारा (विदथं उपो अगुः) उत्तम ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम संग्राम को प्राप्त करते हैं (ते) वे (नरः) उत्तम जन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि, विद्युत् अग्नि, और आचार्य और अध्यापक और सभापति सेनापति इन २ को (जोहुवतः) अपना प्रमुख स्वीकार करते हुए, उन के प्रति अपने को सौंपते हुए (काष्ठां अर्वन्तः) दूर २ देश की सीमा का अश्व के समान वेग से आगे बढ़ते हुए (काष्ठा) काष्ठा, अर्थात् 'क' परम सुखमय 'आस्था' स्थिति को (नक्षमाणा) प्राप्त करते हुए (विदथं उपो गुः) प्राप्तव्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं। विद्वान् गुरुओं को प्राप्त कर ज्ञानी लोग काष्ठा = गाष्ठा, अर्थात् वेद वाणियों में परम स्थिति को प्राप्त करके (विदथं उपो अगुः) प्राप्य परम धर्म तत्त्व, सुख या ज्ञान को पाते हैं। सभा सेनापति के अधीन जन 'काष्ठा' अर्थात् राष्ट्र या भूमि की चरम सीमा तक पहुंच जाते हैं तब वे सार्वभौम राज्य का शासन करते हैं।

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

भा०—(विप्रः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (प्र मतिम्) उत्तम कोटि का ज्ञान (इच्छमानः) प्राप्त करना चाहता हुआ, (पूर्व-भाजम्) पूर्व के विद्वानो से सेवित, एवं शिष्यो के प्रति उपदिष्ट, (यशसं) यशोजनक (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य की (इट्टे) याचना करे। और (इन्द्राग्नी) आचार का शिक्षक आचार्य, ज्ञान का दाता विद्वान् दोनों वीर नायकों के समान (वृत्र-हणा) दुष्ट विघ्नों को नाश करने वाले (सु-वज्रा) पापादि के भली प्रकार वर्जन करने वाले उपदेश और ज्ञान रूप वज्र से युक्त होकर (नव्येभिः देष्णैः) नये से नये उपदेष्टव्य ज्ञानो द्वारा (नः प्र तिरतम्) हमे बढ़ावें ।

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥१५॥

भा०—(यत्) जब (मही) बडी २ (मिथती) एक दूसरे को मारती और ललकारती हुई (तनू-रुचा) अपने विस्तृत शरीर के तेज से (स्पर्धमाने) एक दूसरे से वढ़ने के निमित्त स्पर्धा कराने वाली दो स्त्रियो या वरवधू के समान परस्पर स्पर्द्धा करती हुई दो सेनाएं (शूर-साता) वीरों के संग्राम में (सं-यतेते) परस्पर विजय का यत्न करती हैं उनमें, हे इन्द्र अग्नि ! वीरों और अग्रणी नायक जनो ! आप दोनों (विदथे) संग्राम मे (देवयुभि) दानशील, वृत्तिदाता राजा के प्रिय पक्ष वाले वीर पुरुषो के साथ मिलकर (अदेवयुं) राजा के अप्रिय, शत्रु जन को (सोमसुता जनेन) ऐश्वर्य अन्नादि के उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के साथ मिलकर (सत्रा हतम्) विघ्नकारी शत्रुओं को एक साथ मारो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! अग्रणी नायक जनो ! आप दोनो (नः) हमारी (इमाम्) इस (सोम सुतिम्) अन्न ओषधि आदि के द्वारा किये यज्ञ को (सौमनसाय) उत्तम मन बनाये रखने के लिये (सु-आ-यातम्) आदरपूर्वक आइये । (नू चित् हि) आप लोग कभी भी (अस्मान् परि मन्नाथे) हमें त्याग कर अन्य को न माने । मैं प्रजाजन (वां) आप दोनों को (वाजैः शश्वद्भिः) बहुत अन्नों और ऐश्वर्यों से (आ ववृतीय) आदरपूर्वक सम्मान करूं ।

सो अ॑ग्न एना नम॑सा समि॑द्धोऽच्छा॑ मि॒त्रं वरु॑ण॒मिन्द्रं॑ वोचेः ।
यत्सी॒माग॑श्चकृ॒मा तत्सु मृ॑ळ॒ तद॒र्य॒मादि॑तिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) मुख के समान अग्रणी, प्रमुख पुरुष ! (सः वह तू (एना नमसा) इस आदरयुक्त वचन और (नमसा) विनयकारी दुष्टों के नमाने वाले बल से (सम्-इद्धः) खूब अग्निवत् तेजस्वी होकर (मित्रं वरुणं इन्द्रं) स्नेहवान् श्रेष्ठ, और ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अच्छ वोचेः) भली प्रकार कह कि (सीम्) हम (यत्) जो भी (आगः चकृम) अपराध या पाप करें तू (तत्) उसे (सु) भली प्रकार (मृड) दयादृष्टि से न्यायपूर्वक देख । (तत्) उसको (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायकारी पुरुष और (अदितिः) कभी सद्व्यवस्था को न टूटने देने वाला, दृढ़, सत्य नीतिमान् व्यवस्थापक पुरुष हम प्रजाजनों के उस अपराध को (शिश्रथन्तु) प्रजा में से निर्मूल कर दे ।

ए॒ता अ॑ग्न आशुषा॒णास॑ इ॒ष्टीर्यु॒वोः सचा॒भ्य॑श्याम॒ वाजा॑न् ।
मेन्द्रो॑ नो॒ विष्णु॑र्म॒रुतः॒ परि॑ ख्यन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ८ ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी जन ! हम लोग (एताः) इन (इष्टीः) देने योग्य करादि अंशों को (आशुषाणाः) अति शीघ्र देते हुए, (युवोः) तुम दोनों के (वाजान्) बलों, ऐश्वर्यों को (सचा अभि अश्याम) एक साथ मिलकर भोग करें । (इन्द्रः विष्णुः) ऐश्वर्यवान जन और व्यापक

अधिकार वाले शासक तथा (मरुत.) वलवान् शत्रुनाशक वीर पुरुष और विद्वान् जन (नः परिख्यन्) हमे कभी उपेक्षा न करे। हमारी कभी निन्दा वा त्याग न करे। (यूयं नः स्वस्तिभि' सदा पात) आप लोग हमारी सदा उत्तम २ उपायो से रक्षा करे। इति षोडशो वर्ग. ॥

[९४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ८, १० आर्षी निचृद् गायत्री। २, ४, ५, ६, ७, ९, ११ आर्षी गायत्री। १२ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादर्श सूक्तम् ॥

इयं वा॑मस्य मन्म॑न इन्द्रा॑ग्नी पू॒र्व्यस्तु॑तिः। अ॒भ्राद्वृ॒ष्टिरि॑वाजनि १

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे (अग्ने) अंग मे झुकने हारे, विनयशील शिष्य जनो ! (इयं) यह (पूर्व्य-स्तुतिः) पूर्व पुरुषों मे प्राप्त उत्तम ज्ञानोपदेश (अस्य मन्मनः) इस ज्ञानवान् पुरुष का (वाम्) आप दोनो के प्रति (अभ्रात् वृष्टिः इव) मेघ से वृष्टि के समान (अजनि) प्रकट हुआ करे।

शृ॒णु॒तं ज॑रि॒तुर्हव॒मिन्द्रा॑ग्नी वन॑तं॒ गिरः॑। ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ २

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य और विनयशील पुरुषो ! आप दोनों ही, (जरितु) उपदेष्टा, जन के (हवम्) ग्राह्य उपदेश का श्रवण करो। (गिर') उत्तम वेद वाणियो और (गिरः) उपदेष्टा जनो की (वनतम्) याचना और सेवा किया करो। (ईशाना धिय.) अधिक समर्थ होकर सत्कर्मों और सद्-बुद्धियों को (पिप्यतम्) बढाओ, अधिक दूर तक फैलाओ।

मा पा॑प॒त्वाय॑ नो न॒रेन्द्रा॑ग्नी माभिश॑स्तये। मा नो॑ रीरधतं नि॒दे ३

भा०—हे (नरा इन्द्राग्नी) उत्तम नायको ! हे इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्य-वन् ! विद्यावान् ! नायक नायिका, जनो ! आप लोग (नः) हमें (पाप-

त्वाय) पाप कर्म के लिये (मा रीरधतम्) कभी मत अपने अधीन रक्खो। (अभि शस्तये मा रीरधतम्) शत्रु द्वारा हमें पीड़ित करने के लिये भी अधीन मत रख, (निदे) निन्दित कर्म करने के लिये वा निन्दा करने वाले के लाभ के लिये भी हमें अपने या किसी अन्य के अधीन मत रख। कोई भी प्रजा किसी भी शासक के अधीन रहकर इन तीन प्रयोजनों को पूरा न होने दे ? पापाचार की वृद्धि, शत्रु द्वारा अपना नाश और निन्दक व्यक्ति का लाभ। यदि शासक प्रजा को अपने अधीन रख कर प्रजा में पाप, प्रजा की हानि और निन्दकों का लाभ करता है तो प्रजा को अपने भीतर इन्द्र और अग्नि अर्थात् ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् बलवान्, तेजस्वी पुरुषों के दलों में धर्माचार, प्रजा की रक्षा और स्वात्माभिमान को जागृत कर उनको खड़ा कर स्वतन्त्र होने का प्रयास करना चाहिये।

इन्द्रे॑ अ॒ग्ना नमो॑ बृ॒हत्सु॑वृ॒क्तिमेर॑यामहे। धि॒या धेना॑ अव॒स्यवः॑ ४

भा०—हम लोग (अवस्यवः) ज्ञान, रक्षा, प्राणतृप्ति, ऐश्वर्यादि की कामना करते हुए (इन्द्रे अग्नौ) अपने बीच विद्यमान, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता और अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष वर्गों में (बृहत नमः) बड़ाभारी आदर, और शस्त्र बल और (सु-वृक्तिम्) शुभ वर्त्ताव, उत्तम स्तुति और शत्रु पापादि को वर्जन करने का बल, और (धिया) बुद्धि और कर्म के द्वारा (धेना) वाणियों को (आ ईरयामहे) प्रेरित करें।

ता हि शश्व॑न्त॒ ईळ॑त इ॒त्था विप्रा॑स ऊ॒तये॑।
स॒बाधो॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (शश्वन्त विप्रासः) बहुत से विद्वान् पुरुष (सबाध) पीड़ित होकर दुःख पीड़ा आदि की चर्चा संदेशादि लेकर (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये और (वाजसातये) संग्राम करने के लिये (ता हि ईळते) उन दोनों पूर्वोक्त इन्द्र, अग्नि को आदर रूप से चाहते हैं।

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—हम (विपन्यवः) विविध व्यवहारों वाले और (प्रयस्वन्तः) उत्तम २ प्रयास वा उद्योग करने वाले और अन्यों को (सनिष्यवः) वृत्ति देने वाले जन भी मिलकर (ता वां) उन आप दोनों इन्द्र, अग्नि जनों को ही (मेध साता) अन्नलाभ, यज्ञ और संग्राम के लिये (गीर्भिः) नाना वाणियों से (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं। अर्थात् व्यवहारकुशल व्यापारी, प्रयासी, श्रमी और वृत्तिदाता सत्ताधारी सभी मिलकर यज्ञ, संग्राम और अन्न के लिये उनको ही पुकारें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥

भा०—हे (चर्षणी-सहा) मनुष्यों के बीच शत्रुओं का पराजय करने वाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी नायको ! आप दोनों (अस्मभ्यं)हमारी (अवसा) रक्षा के सहित (आ गतम्) आओ। जिससे (नः) हम पर (दुःशंसः) दुष्ट वचन बोलने वाला, कठोरभाषी, दुर्वादी पुरुष (मा ईशत) शासन न करे। वह हमारे बीच में शक्ति और अधिकार प्राप्त न करे ।

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्र णङ्मर्त्यस्य ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् दुष्टों के पीडक ! हे सूर्याग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक जनो ! आप दोनों (नः शर्म यच्छतम्) हमें सुख प्रदान करो । (कस्य) किसी भी (अररुषः मर्त्यस्य) अति रोषकारी, क्रोधान्ध मनुष्य की (धूर्त्तिः) हिंसाकारिणी-चेष्टा (नः मा प्र णङ्) हम तक न पहुंचे ।

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि॥९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! हम (यत्) जो भी और जिस प्रकार का भी (वाम् ईमहे) आप दोनो से मांगते है (तत्) वह (गोमत्) गौओं, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि बहुमूल्य पदार्थ और (अश्वावद्) अश्वों से सम्पन्न (वसु) धन (वनेमहि) प्राप्त करे और उसका भोग करें।

यत्सोम॒ आ सु॒ते नर॑ इन्द्रा॒ग्नी अजो॑हवुः । सप्तीव॑न्ता सप॒र्यव॑ः १०

भा०—हे (सप्तीवन्ता) उत्तम अश्वो के स्वामी (इन्द्राग्नी) विद्युत्, अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक और शत्रुसंतापक नायक जनो! (यत्) जब (सोमे सुते) पुत्रवत् प्रिय 'सोम' अर्थात् ओषधि अन्नादिवत् भोग्य सम्पन्न राष्ट्र में (नरः) नायक लोग (सपर्यवः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (आ अजोहवुः) आदरपूर्वक बुलाते है।

उ॒क्थेभि॑र्वृत्र॒हन्त॑मा॒ या म॑न्दा॒ना चि॒दा गि॒रा ।
आ॒ङ्गू॒षैरा॒विवा॑सतः ॥ ११ ॥

भा०—(या) जो आप दोनो (वृत्रहन्तमा) दुष्टो को अच्छी प्रकार दण्ड देने वाले, (उक्थेभिः) उत्तम वेद-वचनो और (आमन्दाना) सब को प्रसन्न करते हुए (गिरा चित्) वेद वाणी से और (आगूषैः) उत्तम स्तुति-वचनों और उपदेशों से (आ विवासतः) सर्वत्र ज्ञानप्रकाश करते है।

तावि॒द्दुःशंसं॒ मर्त्यं॒ दुर्वि॑द्वांसं रक्ष॒स्विन॑म् ।
आ॒भो॒गं हन्म॑ना हत॒मु॒द॒धिं हन्म॑ना हतम् ॥ १२ ॥ १८ ॥

भा०—(तौ इद्) वे दोनो ही (दुःशंसं) दुर्वचन, कठोर भाषण करने वाले (दुर्विद्वांसं) दुर्गुणी विद्यावान, (रक्षस्विनम्) अन्यों के कार्यों मे विघ्न करने वाले के सहायक (आभोगं) चारो तरफ़ से भोग विलास से मग्न, भोगप्रिय, (मर्त्यं) मनुष्य को (हन्मना) हननकारी साधन, हथियार से (हतम्) दण्ड दो। और (उदधिम्) पानी को धारण

करने वाले घट या तालाब के समान उसको भी (हन्मना हतम्) शस्त्र द्वारा नाश करो। जिस प्रकार घट या जलाशय को दण्डे या फावड़े से तोड या खोदकर उसका जल ले निकाल कर उसे खाली कर दिया जाता है उसी प्रकार दुर्वचनी, दुराचारी, दुष्टसंगी पुरुष को भी मार २ कर. उसका सर्वस्व हर लेना चाहिये। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[९५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, २, ४—६ सरस्वती। ३ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप्। ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः।
प्र वावधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

भा०—पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य—जिस प्रकार (सिन्धुः) बहने वाली नदी (क्षोदसा सस्रे) पानी से बहती है, (आयसीः पूः) लोहे के बने प्रकोट के समान नगर की रक्षा करती, (रथ्या इव) रथ मे लगे अश्वो के समान (प्र बाबधाना) मार्ग मे आये वृक्षलतादि को उखाडती हुई, (अन्याः अपः च प्रबाबधाना) अन्य सब जल-धाराओ को बांधती हुई सब से मुख्य होकर (याति) आगे बढ़ती है उसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्री (धायसा) पुष्टिकारक बालक को पिलाने योग्य दूध (क्षोदसा) और अन्न से (प्रसस्रे) प्रेम से प्रवाहित होती है। वह (धरुणम्) गृहस्थ को धारण करने वाली और सबका आश्रय हो, वह (आयसी पूः) लोहे के प्रकोट के समान, दृढ एवं (आ-यसी) सब प्रकार से परिश्रम करने वाली और (पूः) प्रवचनों और परिवार के पालन करने वाली हो। वह (रथ्या इव) रथ मे लगने योग्य अश्वो के समान दृढ़ होकर और वह (महिना) अपने सामर्थ्य से (विश्वाः अन्याः अपः) अन्य आप्त जनो को (सिन्धुः)

(वृक्षं न शरणं) वृक्ष के समान शरण देने वाले (उप स्थेयाम) तेरे निकट उपस्थित हों, तेरी शरण होवें।

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥१९

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति! विदुषि! हे (सुभगे) उत्तम भाग्यशालिन्! (अयम् वसिष्ठः) यह उत्तम ब्रह्मचारी पुरुष (ते) तेरे लिये (ऋतस्य द्वारौ) सत्य ज्ञान, अन्न और धन के दोनों द्वारों को प्रकट करता है। हे (शुभ्रे) हे शुभ चरित्र, रूप, उज्ज्वलगुणों वाली! हे सुशोभिते! तू (स्तुवते) गुणों को प्रशंसा करने वाले अपने गुणग्राही जन को (वाजान्) अन्न, ऐश्वर्यादि (रासि) प्रदान कर। हे विद्वान् लोगो! (यूयं स्वस्तिभिः नः पात) आप लोग उत्तम २ आशीर्वादों, शुभ कर्मों द्वारा हमें पाप कर्मों से बचाओ।

इस सूक्त में सरस्वती, सरस्वान् देवता है। उत्तम ज्ञान का परम भण्डार परमेश्वर है इससे सरस्वती सरस्वान् नाम परमेश्वर के हैं। (१) परमेश्वर सब विश्व को धारण करने वाला सर्वाश्रय होने से 'धरुण' है। पालक होने से 'पूः' है। महान् व्यापक होने से 'सिन्धु' है। सर्वत्र रक्षाकारी पोषक रूप से व्याप्त है, सब कष्टों को दूर करता है। (२) वह एक अद्वितीय, स्वच्छ, विमल, (गिरिभ्यः) उपदेष्टा गुरुजनों से हमें उपदेश द्वारा प्राप्त होता है। वह प्रकाश, अन्न सब को देता, सबको चेतना या ज्ञान देता है। (३) सब सञ्चालक सूर्यादि शक्तियों में व्यापक होने से 'नर्य' सर्वत्र व्यापक होने से 'शिशु' सर्वप्रबन्धक होने से 'वृषा', सबको धारण करने, सुखवर्षक होने से 'वृषभ' है, वही सबको ऐश्वर्य देता है, उसको प्राप्त करने के लिये योगी अपने कर्म मन, आत्मा को शुद्ध करें। (४) सर्वैश्वर्यवान् होने से प्रभु 'सुभग' (मितज्ञुभिः) गोडे सिकोडने या घुटने टेक बैठने वाले (नमस्यैः) भक्त जनों से उपासित होकर वह ऐश्वर्य, योग

से सब अन्य आत्माओं से अधिक है। (५) वह प्रभु हमारी स्तुति स्वीकार करे और हम उसकी शरण, सुखमयी छाया में विश्राम लें।

[९६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ सरस्वती। ४—६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्षी भुरिग्बृहती। ३ निचृत् पङ्क्तिः। ४, ५ निचृद्गायत्री। ६ आर्षी गायत्री ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभि: स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) उत्तम विद्वन्! तू (रोदसी) भूमि और सूर्य दोनों में नायक और (नदीनाम् असुर्या) नदियों में अति बलवती नदी के समान समृद्ध प्रजाओं में सबसे बलशाली, प्रभु की (बृहत् उ गायिषे) बहुत बहुत स्तुति कर। और (सुवृक्तिभिः) स्तुति और (स्तोमैः) वेद के सूक्तों से और स्तुत्य यज्ञादि कर्मों में से (सरस्वतीम् इत् महय) उस महाप्रवाह की, जो अनादि काल से सबको ज्ञान, शक्ति, प्राण सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह संसार में बहा रहा है (महय) पूजा कर।

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस (ते) तेरे (महिना) महान् सामर्थ्य से (पूरवः) मनुष्य गण (उभे) दोनों को (अधि क्षियन्ति) प्राप्त करते हैं हे (शुभ्रे) अति उज्ज्वल स्वरूप वाली सरस्वति! परमेश्वरि! ज्ञानमयि! (सा) वह तू (मरुत्सखा) विद्वानों की मित्र (अवित्री) समस्त संसार की रक्षा करने वाली वा स्नेहमयी होकर (नः बोधि) हमें ज्ञान दे और (मघोना) ऐश्वर्यवान् जनों को (राधः चोद) धनादि प्रदान कर।

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

भा०—(भद्रा सरस्वती) सबका कल्याण करने वाली वह परमेश्वरी (वाजिनी-वती) बलयुक्त क्रिया और ऐश्वर्य, अन्नादियुक्त भूमि सूर्यादि की स्वामिनी, ज्ञानादियुक्त विद्वानों की स्वामिनी और (अकव-अरी) कभी कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाली होकर सबके लिये (भद्रम् कृणवत्) भला ही भला, कल्याण ही कल्याण करती है। वही (चेतति) सब को ज्ञान प्रदान करती है। वह (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (गृणाना) स्तुति की जाती है। और (वसिष्ठवत्) सब मे सर्वोत्तम रूप से बसने वाले, जगन्निवासिनी के समान (स्तुवाना) स्तुति की जाती है।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे॥४॥

भा०—हम लोग (जनीयन्त.) भार्या रूप उत्तम संतति जनक क्षेत्र की कामना करने वाले, (पुत्रीयन्त') पुत्रों की कामना करने वाले, (अग्रवः नु) आगे बढ़ने वाले और (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (सरस्वन्त) उत्तम ज्ञानवान् प्रभु को (हवामहे) प्राप्त होने, पुकारते और उसी से याचना करते हैं।

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः। तेभिर्नोऽविता भव ५

भा०—हे (सरस्वः) उत्तम ज्ञान और बलशालिन्! (ते) तेरे (ये) जो (मधुमन्तः) मधुर आनन्द, जल, अन्नादि युक्त और (घृतश्चुत.) प्रकाश, स्नेह और जलप्रदान करने वाले (ऊर्मयः) उत्तम तरङ्गवत उत्कृष्ट मार्ग मे जाने वाले विद्वान्, सूर्य, पवन, मेघादि हैं (तेभि.) उनसे तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो।

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(यः) जो (विश्व-दर्शतः) समस्त जीवों के दर्शन करने योग्य, सूर्य के समान तेजस्वी है। उस (सरस्वतः) उत्तम ज्ञानवान्, शक्ति-मान् प्रभु के (पीपिवांसं) सब के परिपोषक, (स्तनं) स्तन के समान सबको बालकवत् पोषण करने वाले, या मेघवत् सब के प्रति वेदोपदेश देने वाले वेदमय शब्द वा प्रभु का हम (भक्षीमहि) भजन, सेवन करें और उसी की दी (प्रजाम्, इषम्) प्रजा, उत्तम सन्तान अन्न तथा प्रेरणा और सदिच्छा का सेवन करे। अथवा उस सर्व शक्तिमान् प्रभु की उत्तम सूर्यादि उत्पादक प्रकृति 'प्रजा' है, और उसका सञ्चालक शक्ति 'इष्' है, हम उसका भजन सेवन कर सुखी हों। इति विंशो वर्गः॥

[९७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १ इन्द्रः। २, ४—८ बृहस्पतिः। ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती। १० इन्द्राबृहस्पती देवते॥ छन्दः—१ आर्षी त्रिष्टुप्। २,४,७ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च॥ १॥

भा०—परमेश्वर इन्द्र! (यत्र) जिस (यज्ञे) सर्वोपास्य, सर्वप्रद प्रभु परमेश्वर के आश्रय (देवयवः) दिव्य शक्तियों की कामना करने, वा देव, उपास्य, वा सर्व सुखदाता के भक्ति करने वाले प्रभुप्रेमी जन (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमिपर के (नृ-सदने) मनुष्यों के रहने के प्रत्येक स्थान मे (मदन्ति) हर्ष आनन्द लाभ करते हैं। (च) और (वयः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (मदाय) मोक्षानन्द प्राप्त करने के लिये ही (यत्र) जिस प्रभु के आश्रय में स्थिर होकर (प्रथमं गमन्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिये ही मैं (सवनानि) समस्त उपासनाएं (सुन्वे) करूं।

आ दैव्या॑ वृणीमहेऽवां॑सि बृह॒स्पति॑र्नो मह॒ आ स॑खायः।
यथा॑ भवे॑म मी॒ळ्हुषे॒ अना॑गा॒ यो नो॑ दा॒ता प॑रा॒वतः॑ पि॒तेव॑ ॥२॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (पिता इव) पिता के समान (परावतः) दूर २ से वा परम पद से (दाता) सब सुख ऐश्वर्यादि देने हारा है। वह (बृहस्पतिः) बड़े, ब्रह्माण्ड का पालक है (नः) हमे (आ महे) सब प्रकार से देता है। हे (सखायः) मित्रो! हम उस (मीढुषे) मेघवत् ऐश्वर्य सुखों के वर्षाने वाले, महा दानी, प्रभु के प्रति (यथा) जिस प्रकार हो (अनागाः भवेम) निरपराध और निष्पाप हों, इसीलिये हम (दैव्यानि अवांसि) सर्वप्रद, सर्वप्रकाशक उसी प्रभु के दिये बलों, तृप्तिकारक अन्नादि ऐश्वर्यों और उसी की रक्षाओं को (आ वृणीमहे) अपने लिये चाहते हैं।

तमु॒ ज्येष्ठं॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ सु॒शेवं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ गृणीषे।
इन्द्रं॒ श्लोको॒ महि॒ दैव्यः॑ सिषक्तु॒ यो ब्रह्म॑णो दे॒वकृ॑तस्य॒ राजा॑ ॥३॥

भा०—(यः) जो (देव-कृतस्य) परमेश्वर के दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि वा जीवों के लिये बनाये हुए (ब्रह्मणः) महान् ब्रह्माण्ड का (राजा) स्वामी है उस (महि) महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को ही (दैव्यः) विद्वानों की देवोचित (श्लोकः) स्तुति और (दैव्यः श्लोकः) देव, प्रभु परमेश्वर से प्राप्त 'श्लोक' अर्थात् वेदवाणी, (सिषक्तु) प्राप्त होती है, वह उसी का वर्णन करती, वह उसीको अपना लक्ष्य करती है। (तम् उ ज्येष्ठं) उसी सर्वश्रेष्ठ, सब से महान् (सु-शेवं) उत्तम सुखदाता, आनन्दकन्द (ब्रह्मणः पतिम्) ब्रह्माण्ड, प्रकृति और वेद के पालक प्रभु की मैं (हविर्भिः) उत्तम वचनों से या अन्नौषधि आदि की आहुतियों सहित (गृणीषे) स्तुति करूं।

स आ नो॒ योनिं॑ सदतु॒ प्रेष्ठो॒ बृह॒स्पति॑र्वि॒श्ववा॑रो॒ यो अस्ति॑।
कामो॑ रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य॒ तं दा॒त्पर्ष॑न्नो॒ अति॑ स॒श्चतो॒ अरि॑ष्टान् ॥४॥

भा०—(यः) जो (विश्व-वारः) सबसे वरण करने योग्य है और जो सब संकटों, पापों को दूर करने हारा है (सः) वह (प्रेष्ठः) प्रियतम, सबसे महान्, (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह (नः) हमारे (योनिं) प्राप्त होने या एकत्र मिलने के स्थान, हृदय-देश मे, सेवक के गृह पर स्वामी के समान (आ सदतु) अनुग्रह कर प्राप्त हो। वही परमेश्वर हमारी जो (सुवीर्यस्य रायः कामः) उत्तम बलयुक्त ऐश्वर्य की अभिलाषा है (तं) उस अभिलाषा को (दात्) पूर्ण करता और (सश्चतः) प्राप्त होने वाले (अरिष्टान्) मृत्य लक्षणों से भी (अति-पर्षत्) पार करता और उनको दूर करता है। अथवा (सश्चतः नः अरिष्टान् अति पर्षत्) शरणागत आये हम लोगो को विना पीड़ा, विघ्नादि से पीडित हुए हमें संसार संकट से पार कर देता है, मुक्ति सुख प्रदान करता है।

तमा नो॑ अ॒र्कम॒मृता॑य॒ जुष्ट॑मि॒मे धा॑सुर॒मृता॑सः पुरा॒जाः ।
शुचि॑क्रन्दं यज॒तं प॒स्त्या॑नां॒ बृह॒स्पति॑मन॒र्वाणं॑ हुवेम ॥५॥२१॥

भा०—(नः) हमारे (पुराजाः) पूर्व काल मे नाना जन्मों मे उत्पन्न (इमे) ये (अमृतासः) अविनाशी जीवगण (अमृताय) दीर्घ जीवन के लिये (अर्कम्) अन्न के समान (अमृताय) अमृत, मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये (जुष्टं) प्रेम से सेवनीय (अर्कं) अर्चना योग्य (तम्) इसी प्रभु परमेश्वर को (धासुः) धारण करें। और (पस्त्यानां) गृहो, वा गृहस्थों के समान देह रूप गृहों मे रखने वाले जीवों के (यजतम्) उपासनीय, (शुचि-क्रन्दं) गुरु वा न्यायकर्त्ता के समान शुद्ध, निर्दोष वचन कहने वाले, (अनर्वाणम्) अन्य अश्वादि की अपेक्षा न करने वाले स्वयंगामी रथवत् (अनर्वाणं) निरपेक्ष, स्वयं जगत् के सञ्चालक, अहिंसक (बृहस्पतिम्) बडे २ सूर्यादि के भी पालक प्रभु को हम (हुवेम) स्तुति करें. उसी को दुःख मे याद करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीळवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

भा०—(सहवाहः अश्वाः यथा बृहस्पति वहन्ति) एक साथ चलने वाले अश्व, या अश्वारोही, जिस प्रकार बड़े सैन्य के स्वामी को अपने ऊपर धारण करते है उसी प्रकार (यस्य) जिस परमेश्वर का (सधस्थं) साथ रहना ही (नीडवत्) गृह के समान आश्रय देने वाला और (सहः चित्) सब दुःखों को सहन करा देने मे समर्थ बल है और जिसका (रूपं नभः न) रूप आकाश वा सूर्य के समान व्यापक और (अरुपं) अति उज्वल तेजोमय है, (तं) उस प्रभु को, (वसानाः) इस जगत् मे रहने वाले, या उसी की भक्ति में रहने वाले, (शग्मासः) सुखी, आनन्दमग्न, शक्तिमान्, (अरुपासः) उज्ज्वल रूपयुक्त, तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशमान (अश्वाः) विद्या विज्ञान मे निष्णात पुरुष वा अति वेग से जाने वाले सूर्यादि लोक (सह-वाहः) एक साथ मिलकर-संसार यात्रा करते हुए, वा (सह-वाहः) एक साथ विश्व को धारण करते हुए, (बृहस्पति वहन्ति) उस महान् ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को अपने ऊपर धारण करते हैं।

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

भा०—(सः हि) वह प्रभु निश्चय से (शुचिः) अति पवित्र, (शतपत्रः) शतदल कमल के समान उज्वल, निस्सङ्ग, वा (शत-पत्रः) सैकड़ों ऐश्वर्यों से पूर्ण है (सः शुन्ध्युः) वह सब को शुद्ध करने वाला, परमपावन, (हिरण्य-वाशीः) हित और रमणीय वेदमयी वाणी, से युक्त, (इषिरः) सब के चाहने योग्य, (स्वःसाः) सुख, का देने वाला है । (सः सु-आवेशः) वह उत्तम रीति से समस्त विश्व मे व्यापक, (ऋष्वः) सब से महान्, (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति, आत्मा नाम वाले जीवों के लिये (पुरु आसुतिं) बहुत सा अन्न आदि ऐश्वर्य (करिष्ठः)

उत्पन्न करने वाला है, सब से बडा अन्नदाता, वही (बृहस्पतिः) महान् जगत् का बड़ा पालक, बृहस्पति, है। इसी प्रकार राजा, या बड़े राष्ट्र का स्वामी भी हो। वह (शुचिः) ईमानदार, काम, धर्म, अर्थ आदि सब उपधाओं से शुद्ध हो (शतपत्रः) सैकडो रथो का स्वामी, (शुन्ध्युः) शत्रु, दुष्टादि राज्य के कण्टकों का शोधक, (हिरण्य-वाशीः) लोह आदि के चमकते शस्त्रास्त्रों वाला, (इषिरः) सेना का सञ्चालक, (स्वर्षाः) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता, (सु-आवेशः) सुखपूर्वक राष्ट्र मे प्रविष्ट, सु-स्थिर, (ऋण्व·) महान्(सखिभ्यः पुरु आसुति करिष्ठः) मित्र वर्गों के लिये नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला हो।

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

भा०—(देवी) नाना सुखों और ऐश्वर्यों के देने वाले (रोदसी) भूमि और आकाश, (देवस्य महित्वा) सर्वप्रकाशक, सर्वदाता प्रभु के महान् सामर्थ्य से (जनित्री) जगत् को उत्पन्न करने वाले है। वे दोनो (बृहस्पतिं) महान् जगत् के पालक प्रभु की महिमा को ही (ववृधतुः) बढा रहे हैं। हे (सखाय) मित्रो ! आप लोग (दक्षाय्याय) महान् सामर्थ्य के स्वामी को (दक्षत) बढ़ाओ, और जिस प्रकार (सुतरा सुगाधा ब्रह्मणे करत्) उत्तम, सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा अन्न को उत्पन्न करने के लिये सहाय करती है उसी प्रकार (सुतरा) दु·खसागर से सुखपूर्वक तरा देने वाली अति उत्तम, (सु-गाधा) उत्तम वेद वाणी, (ब्रह्मणे) उत्तम महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये हमे ज्ञानोपदेश (करत्) करे।

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्मज्ञान वेद और वडे राष्ट्र के पालक !

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जीव ! (वां) आप दोनों की (इन्द्राय वज्रिणे) शक्तिशाली आत्मा की (इयं) यह (सुवृक्तिः) उत्तम स्तुति (अकारि) की जाती है । आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम बुद्धियों, कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) नाना कर्म करने वाले वा देह को पुरवत् धारण करने वाले जीवों को उत्तम उपदेश करो । (वनुषां) कर्म फल सेवन करने वाले जीवों के (अरातीः) सुखादि न देने वाले, बाधक (अर्य) शत्रुओं को (जजस्तम्) नाश करो ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥२२॥

भा०—हे (बृहस्पते) महान् विश्व के पालक ! हे (इन्द्र च) जीवात्मन् ! (युवम्) आप दोनों, (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः) आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के (ईशाथे) प्रभु हो । आप दोनों (स्तुवते कीरये चित्) स्तुतिशील, विद्वान् को (रयि धत्तम्) ऐश्वर्य प्रदान करो । हे विद्वान् जनो ! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप लोग हमारी सदा कल्याणकारी आशिषों और उपायों से रक्षा करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[९८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—६ इन्द्रः । ७ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

भा०—हे (अध्वर्यव) यज्ञ के इच्छुक प्रजापीड़न, और प्रजाहिंसन को न चाहने वाले दयाशील प्रजाजनो ! आप लोग (क्षितीनाम) मनुष्यों में (वृषभाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (अरुणं) रुचिकर, कभी न रुकने वाले, (दुग्धम्) दूध के समान, सम्पन्न भूमि भागों से प्राप्त (अंशुम)

अन्नादि, का अंशभाग करवत् (जुहोतन) प्रदान करो। (सुत-सोमम् इच्छन्) अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहता हुआ, (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (गौरात्) भूमि मे रमण करने वाले, प्रजाजन से (अव-पानं वेदोथान्) अपने अधीन प्रजा पालन करने का वेतन प्राप्त करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) सदा प्राप्त हो। (२) यज्ञ मे याज्ञिक लोग भूमियों पर बरसने वाले मेघ के लिये शुद्ध दूध और ओषधियों की आहुति दें तब 'इन्द्र' अर्थात् सूर्य ओषधि-उत्पादक 'अवपान' अर्थात् जल को किरणों द्वारा (गौरात्) पृथ्वी पर के जलाशय समुद्रादि से प्राप्त करने लगता है।

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान्॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू, (प्र-दिवि) उत्तम तेज होने पर (चारु अन्नं दधिषे) उत्तम अन्न को पुष्ट करता है, (दिवे-दिवे) दिनों दिन (अस्य) जलपान के समान (अस्य पीतिम् इत् वक्षि) इस राष्ट्र के पालन और उपभोग की कामना कर, उस के पालन कार्य को अपने ऊपर धारण कर। (उत) और (हृदा उत मनसा) हृदय और मन से, प्रेम और ज्ञान से राष्ट्र को (जुषाणः) सेवन करता और (उशन्) नित्य चाहता हुआ (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) प्राप्त ऐश्वर्यों और सोम्य वीरों की रक्षा कर। (२) सूर्य भी अति तेजस्विता के बल पर अन्न की रक्षा करता है, प्रति दिन जल का पान करता हुआ वनस्पतियों का पालन पोषण करता है।

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥ ३॥

भा०—विजिगीषु राजा का कर्त्तव्य। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु-हन्! राजन्! तू (जज्ञानः) प्रकट होकर ही (सहसे) शत्रुविजयी

बल को बढ़ाने के लिये (सोमं) ऐश्वर्यमय राष्ट्र को (पपाथ) पालन कर और (माता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाली भूमि माता (ते महिमानम्) तेरे महान् सामर्थ्य को (प्र उवाच) उत्तम रीति से कहे। हे (इन्द्र) सेनानायक ! तू (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष को भी (युधा) युद्ध साधनों से (अ पप्राथ) विस्तृत कर और (देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) विजयेच्छुक सैनिकों और प्रजाजनो के लिये बहुत धन उत्पन्न कर।

(२) सूर्य या विद्युत् ओषधि की रक्षा करता है; भूमि भी उसके महान् सामर्थ्य को बतलाती है, (युधा) प्रहारकारी विद्युत् से आकाश को पूर्ण करता, अन्न की कामना करने वाले मनुष्यो के लिये अन्न उत्पन्न करता है।

यद्योधया॑ मह॒तो मन्य॑माना॒न्त्साक्षा॑म॒ तान्बा॒हुभि॒ः शाश॑दानान्।
यद्वा॒ नृभि॒र्वृत॑ इन्द्राभि॒युध्या॒स्तं त्वया॒जिं सौ॑श्रव॒सं ज॑येम ॥४॥

भा०—(यत्) जब तू (महत) बड़े २ (मन्यमानान्) अभिमानशील शत्रुओं को (योधया) हम से लड़ा, और हम (शाशदानान) मारते हुए (तान्) उनको (बाहुभिः) बाहुओं से (साक्षाम) पराजित करें। (वा) और (यत्) जब हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नृभि वृत) मनुष्यो या वीर नायकों से घिर कर (अभियुध्याः) शत्रुओं का मुकाबला करे तब हम (त्वया) तेरे बल से (त) उस (सौश्रवसं आजिं) उत्तम यश कीर्त्ति-जनक संग्राम का विजय करें। इसी प्रकार सूर्य या विद्युत् बडे २ मेघ को प्रहार करता है तो हम बाधक कारण पवनादि से छिन्न भिन्न मेघों को संघीभूत करें, जब पवनों सहित विद्युत मेघ का आघात करे तो हम (सौश्रवसं) उत्तम अन्नप्रद वर्षा को प्राप्त करते हैं।

इन्द्र॑स्य वोचं॒ प्रथ॑मा कृ॒तानि॒ प्र नूत॑ना म॒घवा॒ या च॒कार॑।
य॒दिददे॑वी॒रस॑हिष्ट मा॒या अथा॑भव॒त्केव॑लः॒ सोमो॑ अस्य ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) इन्द्र, शत्रुहन्ता सेनापति के (प्रथमा) प्रथम, मुख्य (कृतानि) कर्त्तव्यों को मैं (प्र-वोचम्) उपदेश करता हूं (मघवा) ऐश्वर्यवान् धनवान् (या) जिन २ (नूतना) अति प्रशस्त, नये २ कार्यों को भी (चकार) करे, उनका भी (प्र वोचं) अच्छी प्रकार वर्णन करूं। (यत्) जब वह (अदेवीः मायाः) अमानुषी, दुष्ट पुरुषों के विचित्र २ कपट-कृत्यों को भी पराजित करे (अथ) अनन्तर (सोमः) यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र (केवलः) केवल (अस्य अभवत्) उसी के ही अधीन हो जाता है।

तवे॒दं विश्व॑म॒भित॑ः पश॒व्यं१॒॑ यत्पश्य॑सि॒ चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य।
गवा॑मसि॒ गोप॑ति॒रेक॑ इन्द्र भक्षी॒महि॑ ते॒ प्रय॑तस्य॒ वस्व॑ः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद प्रभो ! राजन् ! (यत्) जो तू (सूर्यस्य चक्षसा) सूर्य के प्रकाश से (पश्यसि) देखता है, उसको प्रकाशित करता है, इसलिये (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (अभितः) सब तरफ (तव) तेरे ही (पशव्यं) 'पशव्य' अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य है। अथवा (इदं ते विश्वं पशव्यं) यह तेरा समस्त विश्व दर्शनीय है या पशु अर्थात् द्रष्टा, जीवों के भोगने योग्य है। अर्थात् तुझ द्रष्टा के ही अनुरूप है। तू (गवाम् गोपतिः असि) सब वाणियों, भूमियों और सूर्यादि लोकों का गौओं के पालक के समान स्वामी है। (प्रयतस्य) सर्वोत्कृष्ट नियन्ता और सञ्चालक तेरे ही दिये (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करें अथवा (वस्व प्रयतस्य ते भक्षीमहि) सब में बसने वाले सर्वोत्कृष्ट यत्नवान् वा नियन्ता तेरा ही हम भजन करें।

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च॒ वस्वो॑ दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य।
ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः॥७।२३

भा०—व्याख्या देखो सू० ९७। १०॥ इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[९९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३, ७ विष्णुः । ४—६ इन्द्राविष्णू देवते ॥ छन्दः—
१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१॥

भा०—हे (वृधाना) सब से बड़े ! वा हे समस्त जगत् के बढ़ाने हारे ! हे (विष्णो) सर्वव्यापक ! (तन्वा) अति विस्तृत या जगत् को फैलाने वाले (मात्रया) समस्त जगत् की बनाने वाली प्रकृति से भी (परः) उत्कृष्ट (ते) तेरे (महित्वम्) महिमा को कोई भी (न अनु अश्नुवन्ति) पा नहीं सकते, नहीं पहुंच सकते । हे (देव) सर्वप्रकाशक! (पृथिव्या ते) समस्त संसार को विस्तारित करने वाले तेरे ही बनाये इन (उभे) दोनों (रजसी) सूर्य पृथिवी वा आकाश और भूमि दोनों लोकों को (विद्म) जानते हैं । और तू (अस्य) इस से भी (परम्) उत्कृष्ट तत्व को (वित्से) प्राप्त है और जानता है ।

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक जगदीश्वर (न जायमानः) न उत्पन्न होता हुआ और (नः जातः) न उत्पन्न हुआ कोई (ते महिम्नः) तेरे महान् सामर्थ्य के (परम् अन्तम्) परली सीमा को (आप) प्राप्त कर सका है । हे (देव) सर्वप्रकाशक ! तू (बृहन्तं) बड़े भारी, (ऋष्वं) महान् (नाकम्) सब दुःखों से रहित, परम मोक्ष धाम और महान आकाश को भी (उत् अस्तभ्नाः) उठा रहा है । और (पृथिव्याः) पृथिवी की (प्राचीं ककुभं) प्राची दिशा को जैसे सूर्य प्रकाशित करता है उसी प्रकार

तू ही (पृथिव्याः) जगत् मात्र को विस्तारित करने वाली सर्वाश्रय प्रकृति को (प्राची ककुभम्) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृतिभाव को (दाधर्थ) धारण कराता है। 'ककुप्'—ककुभिनी भवति, ककुप् कुब्जं कुजतेः उब्जतेर्वा। निरु० ७।३।५॥ कुजि स्तेयकरणार्थः। उब्जिरार्जवीभावे। आर्जवीभावः प्रवृत्तिः प्रह्वता वा॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तं सू॑यव॒सिनी॒ मनु॑षे दश॒स्या।
व्य॑स्तभ्ना॒ रोद॑सी विष्ण॒वेते॒ दा॒धर्थ॑ पृ॒थि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॑ ॥३॥

भा०—हे (द्यावापृथिव्यौ) आकाश और भूमि वा सूर्य और भूमि! तुम दोनों (इरा-वती) जलो, अन्नो से युक्त तथा (धेनुमती) रस पान कराने वाली, गौ, वाणी तथा किरणो से युक्त, और (मनुषे) मनुष्य के लिये (सु-यवसनी) उत्तम अन्न वाली और (दशस्या) नाना सुख भोग देने वाली (भूतम्) होवो। हे (विष्णो) व्यापक प्रभो ! तू (एते रोदसी) इन दोनों पृथ्वी और आकाश को (वि अस्तभ्नाः) विशेष प्रकार से थामे है। और तू (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) सब ओर से (मयूखैः) किरणों से वा चारों ओर लगी खूटियों से जैसे, (दाधर्थ) धारण किये हुए है।

उ॒रुं य॒ज्ञाय॑ चक्रथुरु लो॒कं ज॒नय॑न्ता॒ सूर्य॑मु॒षास॑म॒ग्निम्।
दास॑स्य चिद्वृषशि॒प्रस्य॑ मा॒या ज॒घ्नथु॑र्नरा पृत॒नाज्ये॑षु ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नायको ! हे स्त्री पुरुषो ! हे (इन्द्र-विष्णू) विद्युत् विविध जल-धारा को वर्षाने हारे सूर्य वा पवन के समान लोकोपकारक जनो ! जिस प्रकार विद्युत् तथा मेघ का वर्षाने वाले तुम दोनों मिलकर (सूर्यम्) सूर्य, (उषासम्) और उसकी दग्ध करने वाली ताप शक्ति और अग्नि तत्व को (जनयन्ता) उत्पन्न करते हुए (यज्ञाय) 'यज्ञ' अर्थात् तत्वों के परस्पर मिलने के लिये, (उरुं लोकं चक्रथुः) विशाल स्थान अन्तरिक्ष को उपयोगी बनाते हैं और (वृषशिप्रस्य दासस्य)

बर्षते मेघ के स्वरूप वाले जलप्रद मेघ की (मायाः) नाना रचनाओं को (पृतनाज्येषु) जलों के निमित्त आघात करते हैं उसी प्रकार आप दोनों, (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, और (उषासम्) उषा के समान कान्तियुक्त विदुषी और (अग्निम्) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रकट करते हुए (यज्ञाय) परस्पर दान प्रतिदान, सोमजन, सत्संगादि के लिये (उरुं लोकं चक्रथुः उ) विशाल स्थान, भवन गृहादि बनाओ। और (पृतनाज्येषु) संग्रामों मे (वृष-शिप्रस्य) बलवान् प्रमुख नेता वाले (दासस्य) प्रजानाशक शत्रु जन की (मायाः) सब कुटिल चालो का (जघ्नथु) नाश करो।

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् हे विष्णो ! व्यापक शक्तिशालिन् ! आप दोनों (शम्बरस्य) शान्ति, प्रजा सुख के नाशक शत्रु के (नव नवति च पुरः) ९९ नगरियों या प्रकारों को (श्नथिष्टम्) नाश करो। (असुरस्य) बलवान् शत्रु के (अप्रति) बेजोड़, (शतं सहस्रं च वर्चिनः वीरान्) सौ, हज़ार बलवान् तेजस्वी वीरों को भी (साकं हथः) एक साथ दण्डित करो।

इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्त ! (इयं) यह (बृहती) बड़ी, (मनीषा) मन की प्रेरक शक्ति, प्रज्ञा, (उरुक्रमा) बड़े पराक्रम वाले, (बृहन्ता) बड़े सामर्थ्यवान् (वां) आप दोनों को (तवसा) बल से (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई (विदथेषु) संग्रामों के अवसरों में (स्तोमं ररे) उत्तम सामर्थ्य को प्रदान करती है। आप दोनों (वृजनेषु) शत्रुओं को दूर करने में सम

प्रयाणकारी बलों से (इषः पिन्वतम्) अन्नादि तथा, तीव्र प्रेरणाओं को प्रदान करो।

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥२४

भा०—हे (विष्णो) विविध प्रकार से व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे हुए या विशेष नियमों में बद्ध ! (ते) तेरा (आसः) स्थापन (वषट्) सत्कारपूर्वक (आकृणोमि) करता हूं। हे (शिपिविष्ट) नाना तेजो, पराक्रमों से युक्त ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (मे) मुझ राष्ट्र जन का (तत् हव्यम् जुषस्व) वह नाना प्रकार ग्राह्य उपायन, भेटादि स्वीकार कर (त्वा) तुझे (मे) मेरे (सुस्तुतयः गिरः) उत्तम स्तुति करने में पटु विद्वान् जन (वर्धन्तु) बढ़ावें। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (सदा स्वस्तिभिः नः पात) सदा उत्तम २ शान्ति और सुखप्रद साधनों से हमारी रक्षा करो। विष्णुः—अथ यद्विषितो भवति। विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा। निरु० १२। १९॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१००]

वसिष्ठ ऋषिः॥ विष्णुर्देवता॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ आर्षी त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत्।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात्॥ १॥

भा०—(यः) जो (मर्तः) मनुष्य, (सनिष्यन्) दान देने की इच्छा से (दयते) दान देता और दया करता है वही (उरु-गायाय) बहुतों से, अति स्तुतियोग्य (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के निमित्त ही (दाशत्) दान करे। (यः) जो मनुष्य (सत्राचा मनसा) सत्यनिष्ठ मन से (प्र यजाते) अच्छी प्रकार यज्ञ, दान करता वा परम देव की पूजा करता

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७।२५।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ९९। ७॥ इति पञ्चविंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[१०१]

वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः॥ पर्जन्यो देवता॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप्। २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वृषभः) बरसता मेघ (रोरवीति) गर्जता है (ज्योतिरग्राः वाचः वदति) प्रथम विद्युत् ज्योति को चमका कर बाद में गर्जना करता है और (ऊधः मधुदोघम् दुह्रे) अन्तरिक्ष से जल को दोहता है, और (ओषधीनां गर्भं कृण्वन्) ओषधियों को गर्भित करता है। उसी प्रकार हे विद्वन्! तू (ज्योतिरग्राः) उत्तम ज्ञान ज्योतियों से युक्त वा अग्र भाग में प्राण व रूप ज्योति से युक्त (तिस्रः वाचः) तीनों उन वेद वाणियों, गद्य, यजुष, छन्द, ऋग् और (गीति साम) को (प्र वद) अच्छी प्रकार उपदेश कर (याः) जिनसे (वृषभः) मनुष्यों में श्रेष्ठ, और मेघवत् गंभीर वाणी का उपदेष्टा जन (एतत् ऊधः) इस ऊर्ध्व स्थित ज्ञान को (मधु-दोघम्) मधुर ऋङ्मय ज्ञान रस को (दुह्रे) दोहन करता है (स) वह (ओषधीनां) ओषधियों, अन्नादि के ग्रहण करने वाले (वत्सं) छोटे बच्चे के समान बालक को अपना (वत्सं कृण्वन्) समीपस्थ अन्तेवासी शिष्य बना कर (सद्यः) अति शीघ्र ही (जातः) स्वयं प्रकट होकर (रोरवीति) उपदेश करता है।

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥२॥

भा०—(ओषधीनां वर्धनः) ओषधियों को बढ़ाने वाला, (अपां वर्धनः) जलों का बढ़ाने वाला, मेघवत् सूर्यवत् (देवः) प्रकाश, जल का देने वाला (विश्वस्य जगतः ईशे) सब जगत् का स्वामिवत् है। वह (त्रिवर्तु ज्योतिः यंसत्) तीनों ऋतुओं मे सुखप्रद प्रकाश देता है उसी प्रकार (यः) जो (देव.) सर्वसुखदाता प्रभु (ओषधीनां वर्धनः) उष्णता को धारण करने वाले जीवों को बढ़ाने वाला, (यः) जो (अपां वर्धनः) जलस्थ, जलचारी जीवों को बढ़ाने वाला और (यः) जो (विश्वस्य जगतः) समस्त जगत् का (ईशे) स्वामी है। (सः) वह प्रभु परमेश्वर (अस्मे) हमें (सु-अभिष्टिः) सुख से चाहने योग्य (त्रिवर्तु ज्योतिः) त्रिविध ज्ञान देने वाला वेदमय प्रकाश और (त्रि-धातु) तीन धातु सुवर्णादि से बने (शरणं) गृह और तीन धातु वात, पित्त कफ से बने शरण-योग्य देह और सुख तथा (त्रिवर्तु) तीनों कालों में वर्त्तने वाला, नित्य (यंसत्) प्रदान करे।

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

भा०—(त्वत्) मेघ का एकरूप (स्तरीः) न प्रसवने वाली गौ के समान होता है, (सूते त्वत्) और उसका एक रूप सूती गौ के समान जल धाराएं उत्पन्न करता है। (एषः यथावशं तन्वं चक्रे) वह सूर्य की कान्ति के अनुसार अपना व्यापक रूप बना लेता है। वह (पितु' पयः प्रतिगृभ्णाति) सूर्य रूप पिता से जल को ग्रहण करता और (तेन) उससे (माता) पृथिवी भी जल ग्रहण करती है। (तेन) उस जल से (पिता वर्धते) सूर्य महिमा मे बढ़ता और (तेन पुत्र वर्धते) उसी जल से पुत्रवत् ओषधि वनस्पति तथा जीवादि भी बढ़ते हैं। उसी प्रकार हे प्रभो ! (त्वत्) तेरा एक रूप

(स्तरीः भवति उ) सर्वाच्छादक सर्वरक्षक होता है और (त्वत्) दूसरा
रूप (सूते उ) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है। (यथावशं) जितनी
इच्छा होती है उतना ही (एषः) वह परमेश्वर (तन्वं) अपना विस्तृत
संसार (चक्रे) बना ले सकता है। (माता) जिस प्रकार माता (पितुः)
पिता से (पयः प्रतिगृभ्णाति) वीर्य ग्रहण कर गर्भ धारण करती है और
उससे (पिता पुत्रः वर्धते) पिता का वंश और प्रिय पुत्र भी बढ़ता है।
उसी प्रकार (पितुः) सर्वपालक तुझ पिता से ही (माता) सर्वनिर्मात्री
प्रकृति (पयः) वीर्य, बल, शक्ति को (प्रति गृभ्णाति) प्रति सर्ग
ग्रहण करती है और (तेन) उससे ही (पिता) सर्वपालक प्रभु की
महिमा (वर्धते) बढ़ती है या (तेन) उस शक्ति से ही (पिता)
पालक प्रभु (वर्धते) जगत् को गढ़ता है और (तेन पुत्रः) उससे ही
पुत्रवत् जीवजगत् भी (वर्धते) बढ़ता, वृद्धि को प्राप्त करता है।

यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (विश्वानि भुवनानि) समस्त
लोक, समस्त उत्पन्न प्राणी, (तस्थुः) स्थिर हैं, (यस्मिन् तिस्रः द्यावः)
जिसके आश्रय पर तीनों लोक पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य स्थित हैं।
(यस्मिन्) जिसका आश्रय लेकर (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकार
से गति करते हैं, पृथिवी से वाष्प बनकर ऊपर उठते हैं, मेघ से जल बन
कर नीचे आते हैं और समुद्र से वायु के बलपर भूमिपर आते हैं। अथवा
(आपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु जिसके आश्रय पर (त्रेधा सस्रुः) तीन
प्रकार की गति करते हैं–संयोग, विभाग और चक्र गति। और (यस्मिन)
जिसके आश्रय (त्रयः कोशास) तीन कोश (मध्वः उपसेचनासः)
जल बरसाने वाले मेघों के समान मधुर आनन्द की वर्षा करने वाले होकर
(विरप्शम् अभितः) उस महान् के चारों ओर (श्चोतन्ति) गति करते हैं।

अध्यात्म मे तीन कोश–विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय। सूर्य मे तीन कोश–क्रोमोस्फ़ीयर फ़ोटोस्फ़ीयर, और उद्रजन। यह सब उसी महान् प्रभु परमेश्वर के ही अधीन अद्भुत कर्म हो रहे है।

इ॒दं वचः॑ प॒र्जन्या॑य स्व॒राजे॑ हृ॒दो अ॑स्त्वन्त॑रं॒ तज्जु॑जोषत्।
म॒यो॒भुवो॑ वृ॒ष्टयः॑ सन्त्व॒स्मे सु॑पिप्प॒ला ओष॑धीर्दे॒वगो॑पाः॥ ५॥

भा०—(इदं वचः) यह वचन (स्वराजे) स्वप्रकाशस्वरूप, (पर्जन्याय) सब रसों के देने वाले, सब के उत्पादक प्रभु परमेश्वर के लिये (हृदः अन्तरं अस्तु) हृदय के भीतर हो। (तत्) उस स्तुति-वचन को वह प्रभु (जुजोषत्) स्वीकार करे (अस्मे) हमारे सुख के लिये (मयः-भुवः वृष्टयः सन्तु) सुख के देने वाली वृष्टियां सदा हों। और (सुपिप्पला) उत्तम फलयुक्त (देव-गोपाः) मेघद्वारा रक्षित (ओषधीः) ओषधिये भी (मयः-भुवः सन्तु) सुखकारी हो।

पर्जन्यः—पर्जन्यस्तृपेः। आद्यन्त विपरीतस्य। तर्पयिता जन्यः। परो जेता वा। जनयिता वा। प्रार्जयिता वा रसानाम्।

स रे॑तो॒धा वृ॑ष॒भः शश्व॑तीनां॒ तस्मि॑न्ना॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च।
तन्म॑ ऋ॒तं पा॑तु श॒तशा॑रदाय यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ६।१

भा०—(सः) वह प्रभु परमेश्वर (रेतोधाः) प्रकृति देवी में विश्व को उत्पन्न करने वाले परम बीज, रेतस, तेज को आधान करने वाला (शश्वतीना वृषभः) मेघ के समान सब सुखों का वर्षक, बहुत सी गौओं के बीच सांड के समान समस्त पृथिवियों मे जीवों का बीज वपन करने वाला है, (तस्मिन्) उसके ही आश्रय (जगत' तस्थुपः च आत्मा) जंगम और स्थावर संसार का आत्मा या सत्ता विद्यमान है। (तत् ऋतं) वह सत्यज्ञानमय परमेश्वर (मे शतशारदाय पातु) मेरे जीवन को सौ वर्षों तक पालन करे। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं स्वस्तिभिः न. सदा पात)

आप लोग उत्तम कल्याणकारक उपायों से हमारी सदा रक्षा करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०२]

वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ याजुषी विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्व्यृच सूक्तम् ॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।
स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (दिवः पुत्राय) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र व (मीढुषे) सेचन करने मे समर्थ, वर्षाशील (पर्जन्याय) जलों के दाता मेघ के सदृश (दिवः पुत्राय) ज्ञान प्रकाश से बहुतों की रक्षा करने वाले, (मीढुषे) हृदय में आनन्द के सेचक, (पर्जन्याय) सब रसों के दाता, सब के उत्पादक, प्रभु परमेश्वर के लिये (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति, ज्ञान करो। (सः) वह (नः) हमें (यवसम्) अन्नादि देना (इच्छतु) चाहे।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (ओषधीनाम्) मेघ के समान ओषधियों, (गवाम्) गौओं, (अर्वताम्) अश्वों, और (पुरुषीणाम्) मानव स्त्रियों के (गर्भम् कृणोति) गर्भ उत्पन्न करता है, वही (पर्जन्य) सब का सब से उत्तम उत्पादक परमेश्वर है। पर्जन्य—परो जनयिता। (निरु०)

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तम ।
इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥ २ ॥

भा०—जो परमेश्वर (नः) हमारे (आस्ये) मुख में (इळाम्) वाणी को (संयतं) अच्छी प्रकार सुनियन्त्रित (करत्) करता है (नः)

इत) उसी प्रभु परमेश्वर के गुणगान करने के लिये (आस्ये) अपने मुख में (मधुमत्-तमम्) अत्यन्त मधुर गुण से युक्त (हविः) वचन का (जुहोत) धारण करो और अन्यों को प्रदान करो। इसी प्रकार जो प्रभु मेघ के समान (नः इडां सयतं करत्) हमें नियम से अन्न देता है उसी के लिये मधुर अन्नादि की (आस्ये) छिन्न भिन्न करके दूर २ तक फैला देने वाले अग्नि में (हविः) मधुर अन्नादि चरु प्रदान करो। उसी प्रभु के लिये अपने मुख में भी मधुर अन्न का ही ग्रहण करो। मलिन पदार्थ मांसादि का नहीं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१०३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मण्डूका देवताः ॥ छन्दः—१ आर्षी अनुष्टुप्। २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ दृच सूक्तम् ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (संवत्सरं शशयानाः) एक वर्ष पड़े रहने वाले (मण्डूकाः) जलवासी मेंढक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं प्र अवादिषुः) मेघ ने प्रदान की वाणी को खूब ऊंचे २ बोलते हैं उसी प्रकार (व्रत-चारिणः) नियम, व्रत का आचरण करने वाले (संवत्सरं शशयानाः) वर्ष भर तीक्ष्ण तप करते हुए (ब्राह्मणाः) 'ब्रह्म', वेद के जानने वाले, वेदज्ञ, वेदाभ्यासी, विद्वान् जन (मण्डूकाः) ज्ञान, आनन्द में मग्न होकर (पर्जन्य-जिन्वितां) सर्वोत्पादक प्रभु की दी हुई (वाचं) वेद वाणी का (प्र अवादिषुः) उत्तम रीति से प्रवचन किया करें।

'मण्डूका' मज्जूका मज्जनात्। मदतेर्वा मोदतिकर्मणः। मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणः। मण्डतेरिति वैयाकरणाः। मण्ड एषामोक इति वा। मण्डो मदेर्वा। मुदेर्वा। (निरु० ९। ६)

दि॒व्या आपो॑ अ॒भि यदे॑न॒माय॒न्दृतिं॒ न शुष्कं॑ सर॒सी शया॑नम् ।
गवा॒मह॒ न मा॒युर्व॒त्सिनी॑नां म॒ण्डूका॑नां व॒ग्नुरत्रा॒ समे॑ति ॥ २ ॥

भा०—(दृतिं शुष्कं न) सूखे चमड़े के पात्र के समान (सरसि शयानं) तालाब मे पड़े (एनम्) इस मण्डूक को (दिव्या आपः) आकाश के जल (यद् अभि आयन्) जब प्राप्त होते है तब (मण्डूकानां वग्नु) मेडकों का शब्द (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछड़े वाली गौओं के शब्द के समान ही (सम् एति) आता है इसी प्रकार (शुष्कं दृति न) सूखे चर्मपात्र के समान (सरसि) प्रशस्त ज्ञानमार्ग मे (शयानम्) तीक्ष्ण तप करते हुए (एनम् प्रति अभि) इस ब्राह्मण वर्ग को (दिव्या आपः) ज्ञानमय परमेश्वर से प्राप्त होने वाली ज्ञान वाणियां वा ज्ञानी आप्त पुरुष, वर्षा जल के समान ही (आयन्) प्राप्त होते है तब (मण्डूकाना) आनन्द वा ज्ञान मे गहरे मग्न विद्वानों का (वग्नुः) उत्तम उपदेश और (वत्सिनीनाम्) नियम से ब्रह्मचर्यवास करने वाले शिष्यों से युक्त (गवाम् मायुः) वेदवाणियों की ध्वनि भी (अत्र) इस लोक मे (सम् एति) अच्छी प्रकार सुनाई देती है । यदि परमेश्वर से प्राप्त वेद ज्ञान न हो तो यहां, इस लोक में ज्ञानवाणियां और विद्वानो के उपदेश भी सुनाई न दे ।

शशयानाः, शयानम्—शिञ् निशाने ।

यदी॑मेना॑ँ उश॒तो अ॒भ्यव॑र्षीत्तृ॒ष्याव॑तः प्रा॒वृष्याग॑तायाम् ।
अ॒क्ख॒ली॒कृत्या॑ पि॒तरं॒ न पु॒त्रो अ॒न्यो अ॒न्यमुप॒ वद॑न्तमेति ॥३॥

भा०—(उशतः) वर्षा को चाहने वाले और (तृष्यावतः एनान्) प्यासे इनके प्रति (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा काल आजाने पर (ईम् अवर्षीत्) मेघ वर्षता है, (पुत्रः पितरं न) पिता के प्रति पुत्र के समान (वदन्तम् अन्यम् अन्य उप एति) बोलते एक मेंढक के पास दूसरा भी आजाता है उसी प्रकार (आगतायां प्रावृषि) वर्षाकाल आनेपर (यद् ईम्) जब भी (उशतः) विद्या की कामना करने वाले और (तृष्या-

वतः एनान्) ज्ञान की पिपासा से युक्त इन शिष्यों के प्रति विद्वान् पुरुष मेघ के समान (अभि अवर्षीत्) ज्ञान की वर्षा करता है तब (वदन्तम् अन्यम् उप) उपदेश करते हुए एक के पास (अन्यः) दूसरा शिष्य (पुत्रः पितरं न) पिता के पास पुत्र के समान ही (अक्खलीकृत्य) विनम्र होकर (उप एति) आता है और उसकी शुश्रूषा कर ज्ञान प्राप्त करता है।

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिक्रन्पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम् ४

भा०—जिस प्रकार (अपां प्रसर्गे) जलों के खूब होजाने पर (यत् अमन्दिषाताम्) जब दो मेंडक बहुत प्रसन्न होजाते (अन्यः अन्यम् अनुगृभ्णाति एक दूसरे को पकड़ लेता है, (कनिष्कन् मंडूकः पृश्निः हरितेन वाचं सम्पृङ्क्ते) पीला कूदता मेंडक हरे मेंडक से अपनी आवाज़ मिलाता है उसी प्रकार (यत्) जब (अपां प्रसर्गे) आप्त वेदज्ञानों के प्रदान करने के लिये गुरु शिष्य दोनों (अमन्दिषाताम्) अति प्रसन्न हो जाते हैं (एनोः) इन पूर्वोक्त गुरु और शिष्य दोनों में से (अन्यः) एक गुरु, आचार्य (अन्यम्) दूसरे को (अनुगृभ्णाति) अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करता है और (यत्) जो (अभिवृष्टः) अभिषेचित विद्याव्रत स्नातक (मण्डूकः) अति हर्षवान् हो (कनिक्रन्) अन्यों को विद्या प्रदान करता है तब (पृश्निः) वेद का विद्वान् या प्रश्न करने योग्य विद्वान् (हरितेन) ज्ञान ग्रहण करने वाले शिष्य से (वाचम् संपृङ्क्ते) अपनी वाणी का सम्पर्क कराता है, उसको अपना ज्ञान वादानुवादपूर्वक प्रदान करता है।

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (एषाम्) इन विद्वानों में से (अन्यः एक विद्वान् शिष्य (शिक्षमाणः) शिक्षा पाकर (अन्यस्य शाक्तस्य) दूसरे

शक्तिमान्, अधिक विद्या, तप आदि से सम्पन्न गुरु की सिखाई (वाचम् वदति) वाणी को कहता है और (यत्) जब (अप्सु अधि) प्राप्त शिष्यों वा प्रजाओं के बीच इन विद्वानों में (सुवाचः) उत्तम वाणी के बोलने हारे आप लोग (वदथन) उपदेश करते हैं (तत्) तब (एषां) इनका (सर्वं) समस्त (पर्व) पालन योग्य व्रत, ब्रह्मचर्यादि वा (पर्व) पालन योग्य ज्ञानकाण्ड, अध्ययन वेदादि (समृधा इव) समृद्ध उत्सवादि के समान हो जाता है। इति तृतीयो वर्गः॥

गोमा॑युरेको॑ अ॒जमा॑युरेकः॒ पृश्नि॑रे॒को हरि॑त॒ एक॑ एषाम्।
स॒मा॒नं नाम॑ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः पुरु॒त्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः॥६॥

भा०—(एषाम्) इन विद्वान् ब्राह्मणों में से (एकः) एक (गो-मायुः) वेद वाणियों को उत्तम रीति से प्रवचन करने मे समर्थ होता है। (एकः अज-मायुः) एक विद्वान् अजन्मा, आत्मा और परमेश्वर के विषय मे प्रवचन-उपदेश करने में समर्थ होता है। (एक पृश्निः) एक प्रश्नोत्तर करने और उनका समाधान करने मे कुशल होता है। (एक हरितः) इनमें से एक ज्ञानों को ग्रहण करने में कुशल होता है। ये सब (समानं) एक समान (नाम) 'ब्राह्मण' नाम धारण करते हुए भी (वि-रूपाः) विविध रूप विद्याओं को धारण करते हैं। वे (वदन्तः) उपदेश-प्रवचन करते हुए (पुरुत्रा वाचं पिपिशुः) नाना प्रकार से वाणी को प्रकट करते हैं।

ब्रा॒ह्म॒णासो॑ अतिरा॒त्रे न सोमे॒ सरो॒ न पू॒र्णम॒भितो॒ वद॑न्तः।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तदहः॒ परि॑ ष्ठ॒ यन्म॑ण्डूकाः प्रावृ॒षीणं॑ ब॒भूव॑॥ ७॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार जब (संवत्सरस्य) वर्ष के बीच (प्रावृषीणं अहः बभूव) वर्षाकाल का दिन होता है, (तत् अहः) उस दिन (मण्डूकाः) मेंडक (पूर्णं सरः अभितो वदन्तः परि तिष्ठन्ति) भरे तालाब के चारों ओर बोलते हुए विराजते हैं। उसी प्रकार (अतिरात्रे) अति-रात्र सोमयाग की रात्रि को अतिक्रमण कर व्रतधारी (सोमे) सोम ज्ञान

शिष्य के निमित्त (न) भी (ब्राह्मणासः) विद्वान् वेदज्ञ लोगो! आप लोग (पूर्णं सरः अभितः वदन्तः) पूर्ण ब्रह्म या वेद ज्ञान का उपदेश करते हुए (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्ष के उस दिन (परि स्थ) सब एक घेर सा बना कर बैठा करो।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ८

भा०—(सोमिनः ब्राह्मणासः) सोमयाग करने वाले वा अपने अधीन सोम, ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले विद्वान् ब्रह्मवेत्ता लोग (परिवत्सरीणम्) वर्ष भर (ब्रह्म कृण्वन्तः) वेद का उपदेश करते हुए (वाचम् अक्रत) उत्तम प्रवचन करें। (अध्वर्यवः) यज्ञ-कर्त्ता (घर्मिणः) सूर्यवत् तेजस्वी या घर्म, प्रवर्ग्येष्टि करने हारे (सिष्विदानाः) स्वेद युक्त होकर भी (केचित्) कुछ विद्वान् लोग (गुह्या न) गुहा मे बैठे तपस्वियों के समान (गुह्याः) गुहा, बुद्धि ज्ञान या हृदय-गुहा में ही रमण करते हुए (आविर्भवन्ति) प्रकट होते हैं या (न आविर्भवन्ति) नहीं प्रकट होते है। वे गुप्त प्रभाव से ही रहते हैं।

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥

भा०—(संवत्सरे) वर्ष मे (तप्ताः घर्माः) तपे घाम अर्थात् सूर्य के तेज (आगताया प्रावृषि) वर्षाकाल आने पर (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार से जलों को व्याप लेते हैं, मेघ रूप से प्रकट करते है वे (द्वादशस्य) बारह मास के बने वर्षा के (देव-हिति) जलप्रद मेघ की (जुगुपुः) रक्षा करते, और (नरः) नायक वायुगण (ऋतुं न प्रमिनन्ति) वर्षा ऋतु को नष्ट नहीं होने देते उसी प्रकार (संवत्सरे) एक वर्ष में (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा के आनेपर (तप्ताः) तप से संतप्त, (घर्माः) तेजस्वी पुरुष भी (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार के अध्याय, काण्डादि

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! राजन्! हे (सोम) धर्म का अनुशासन करने वाले विद्वान् जनो! आप लोग (दुष्कृतः) दुष्ट और दुःखदायी कामना करने वाले दुष्ट पुरुषों को (वव्रे अन्तः) चारों ओर से घिरे कैद, कारागारादि स्थान के भीतर वा कूए, गढ़े के भीतर और (अनारम्भणे तमसि) अवलम्बन रहित, निराधार ऐसे अन्धेरे में (प्रविध्यतम्) रखकर दण्डित करो जहां कुछ भी सूझ न पड़े। (यथा) जिसमें (अतः) वहां से (पुनः एकः चन) फिर एक भी कोई (न उत् अयत्) उठ के ऊपर न आवे। (वाम्) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (मन्युमत् शवः) क्रोध से परिपूर्ण वल पराक्रम (सहसे अस्तु) दुष्टों का पराजय करने के लिये सदा वना रहे।

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।
उत्तक्षतं स्वर्यं१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथ ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान्, हे उत्तम विद्यावान् दोनों जनो! आप दोनों (अघ-शंसाय) पाप की चर्चा करने वाले पुरुष को दण्ड देने के लिये (दिवः) सूर्य और (पृथिव्या) पृथिवी से (वध वर्तयम) दण्ड किया करो, और उसके लिये (तर्हणम्) नाशकारी (स्वर्यं) सन्तापजनक और घोर नादकारी (पर्वतेभ्य) मेघों से आने वाले विद्युत तत्त्व को (उत् तक्षतम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो। (येन) जिससे (वावृधानं रक्षः) बढ़ते दुष्ट जन को भी (निजूर्वथ) खूब दण्डित कर सको।

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) राजन्! हे शासक जन! (युवम्) आप दोनों (अग्नि-तप्तेभिः) अग्नि से तपे हुए (अश्म-हन्मभिः) मेघ वा [illegible]

के समान वा ओले के समान आघात करने वाले (तपुर्वधेभिः) दुष्टों के नाशकारी अस्त्रों, नालीकादि गुलिका वाणों से (दिवः परि) आकाश से दूर से ही मार कर (अत्रिणः) प्रजा के नाशक, भक्षक दुष्ट पुरुष के (पर्शाने) दोनों पासों के वल समुदाय को (नि विध्यतम्) खूब छिन्न भिन्न करो। जिससे वह (निःस्वरम्) विना आवाज़ किये, चुपचाप, विना कष्ट पहुंचाये (यन्तु) चला जावे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रा॑सोमा॒ परि॑ वां भूतु वि॒श्वत॑ इ॒यं क॒क्ष्याश्वे॑व वा॒जिना॑।
यां वां॒ होत्रां॑ परिहि॒नोमि॑ मे॒धये॒मा ब्रह्मा॑णि नृ॒पती॑व जिन्वतम्॥६॥

भा०—(कक्ष्या वाजिना अश्वा-इव) जिस प्रकार वेग वाले, वलवान् अश्वों को वगलवन्द की रस्सी चारो ओर से वांधती है हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य ! हे सोम ! सौम्य भावयुक्त शिष्य ! (वां) आप दोनों को (इयं मतिः) यह ज्ञान वा वाणी (कक्ष्या) अवगाहन करने योग्य, गंभीर, (विश्वतः परिभूतु) सब प्रकार से और सब ओर से प्राप्त हो। (वां) आप दोनों की (यां) जिस (होत्रां) ग्रहण करने योग्य उत्तम वाणी को (मेधया) उत्तम धारणावती बुद्धि द्वारा (परि हिनोमि) मैं वटाऊं या प्राप्त करूं (इमा ब्रह्माणि) और इन वेद वचनों को वा धनों को (नृपती इव) राजाओं के समान (जिन्वतम्) प्राप्त करो और उपभोग करो।

प्रति॑ स्मरेथां तु॒जय॑द्भि॒रेवै॑र्ह॒तं द्रु॒हो र॒क्षसो॑ भङ्गु॒राव॑तः।
इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृते॒ मा सु॒गं भू॒द्यो नः॑ क॒दा चि॑दभि॒दास॑ति द्रु॒हा॥७॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान् ! ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों ! (तुजयद्भिः) शत्रुओं का नाश करने वाले (एवैः) प्रयाणशील भटों, सैन्यों तथा अज्ञाननाशक ज्ञानों से (प्रति स्मरेथाम्) प्रत्येक स्थान पर प्रयाण करो और प्रत्येक वस्तु का स्मरण करो। (भङ्गुरावतः) नगर गृहादि को तोड़ने वाले तथा व्रतादि का नाश करने वाले, (द्रुहः रक्षसः)

द्रोहशील विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और दुष्ट भावों को (हतम्) दण्ड दो और नाश करो। (यः) जो (नः) हमे (कदाचित्) कभी भी (द्रुहा) द्रोह या द्वेष से (अभिदासति) नाश करता वा हमे अपना दासवत् बना लेता है, ऐसे (दुष्कृते) दुराचारी पुरुष को (सुगं मा भूत्) कभी भी सुख प्राप्त नही होता। इसी प्रकार (दुष्कृते सुगं मा भूत्) दुष्कर्म के वदले सुख कभी प्राप्त नही होता।

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे दुष्टो के नाशकारिन्! (यः) जो (पाकेन) परिपक्व = दृढ, सत्ययुक्त (मनसा) ज्ञान वा चित्त से अथवा (पाकेन = वाकेन,) उत्तम सत्य वचन और (मनसा) उत्तम ज्ञान सहित (चरन्तम्) आचारण करने वाले (मा) मुझ पर (अनृतेभिः वचोभिः) असत्य वचनों द्वारा (अभि-चष्टे) आक्षेप करता है वह (असन्) असत्य का (वक्ता) कहने वाला (काशिनः संगृभीताः आपः इव) मुट्ठी में लिये जलों के समान (असन् अस्तु) नहींसा होकर नीचे गिर पड़े, छिन्न भिन्न होकर नष्ट होजाय।

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥

भा०—(ये) जो लोग (एवैः) अपने बुरे अभिप्रायों या कुटिल चालों से (पाक-शंसं) परिपक्व, दृढ सत्य वचन कहने वाले को (विहरन्ते) विरुद्ध मार्ग में ले जाते है (वा) अथवा, जो (स्वधाभिः) अपने बल, अन्न, गृह वेतनादि के बल से वा वेतनभोगी पुरुषों द्वारा (भद्रं दूषयन्ति) भले आदमी को दूषित करते है उस पर दोषारोप करते है (सोम) शासक राजा और विद्वान् न्यायाधीश (तान्) उनको (वा) भी (अहये प्रददातु) हिंसक, सर्पादि जन्तु के काटने वा सर्पवत् कुटिलाचार करने

लिये ही दण्ड दे। (वा) अथवा, (तान्) ऐसे पुरुषो का (निः-ऋतेः) अति दुःखदायी जन्तु सिंह, रीछ आदि वा पीड़क के (उपस्थे) समीप (आ दधातु) रक्खे।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्। रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी अग्निवत् तेजस्विन्! (यः) जो दुष्ट पुरुष (नः) हमारे (पित्वः रसं) अन्न के रस, सारभाग को (दिप्सति) नाश करना चाहता है, और (य.) जो हमारे (अश्वानां) घोड़ों, (गवां) गौओं, बैलो और (तनूनां) शरीरो के (रसं) सारवान् बलयुक्त परिपुष्ट अंग को नाश करना चाहता है वह (रिपुः) शत्रु, पापी (स्तेनः) चोर, (स्तेयकृत्) चोरी करने वाला, पुरुष (दभ्रम् एतु) हिंसा, पीड़ा वा मृत्यु दण्ड को प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) शरीर और (तना च) धन, पुत्रादि से (नि हीयताम्) वञ्चित किया जाय।

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः। प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥ ११ ॥

भा०—और हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो! (यः च) जो (नः) हमे (दिवाः) दिन के समय और या (नक्तम्) रात के समय (दिप्सति) हानि पहुंचाता, हमें नाश करना चाहता है (सः) वह (तन्वा तना च) शरीर और अपने पुत्रादि से भी (परः अस्तु) दूर, वियुक्त हो। वह (विश्वा) समस्त (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियो या लोकों से (अधः अस्तु) नीचे रहे, गढ़े मे या नीची कोटि में रक्खा जावे। (अस्य यशः) उसका यश, कीर्त्ति, बल (प्रति शुष्यतु) प्रतिदिन सूखता जाय।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

भा०—(चिकितुषे) जानने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (स च असत् च) सत्य और असत्य दोनों ही (सुविज्ञानं) बहुत अच प्रकार जानने योग्य होते हैं, विद्वान् सत्य और असत्य दोनो को सुगम से ही जान लेता है, क्योंकि (सत् च असत् च वचसी) सत्य और अस दोनों वचन (पस्पृधाते) परस्पर स्पर्द्धा करते है। दोनो एक दूसरे विरोधी होते है। ज्ञानी पुरुष के लिये विरोध का देखलेना कठिन न होता। (तयोः) उन दोनों मे (यत् सत्यं) जो भी सत्य है वो (यत रत् ऋजीयः) जो भी अधिक ऋजु धर्मानुकूल होता है (तद् इत्) उ की ही, (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् रक्षा करता है और (अस हन्ति) असत् को दण्ड और विनष्ट करता है।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्

हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३।

भा०—(सोमः) उत्तम शासक जन (वृजिनं) पाप और असत्य को (न वै उ हिनोति) कभी वृद्धि न दे। और (मिथुया धारयन्तं) असत्य पक्ष को धारण करने वाले (क्षत्रियम्) बलशाली पुरुष को भी (न हिनोति) न बढ़ने दे। (रक्षः) दुष्ट पुरुष को (हन्ति) दण्ड अवश्य दे, और (असद् वदन्तम् हन्ति) असत्यवादी को भी दण्ड दे। (उभौ) वे दोनों भी (इन्द्रस्य प्रसितौ) दुष्टों के भयकारी पुरुष के उत्तम बन्धन में (शयाते) डाले जायँ।

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।

किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् १४

भा०—(यदि वा) और यदि (अहम्) मैं (अनृतदेव) असत्य बात का प्रकाश करने वाला हूं अर्थात् ऋत, सत्यानुकूल देन लेन, व्यवहार करने वाला नहीं हूं, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अथवा मैं (देवान् अपि) विद्वान् पुरुषों को (मोघं) झूठ मूठ व्यर्थ ही (ऊहे) नाना प्रश्न,

वा तर्क वितर्क करता हूं, हे (जातवेदः) विद्वन् ! ज्ञानवन् ! (अस्मभ्यम्) विचार करो कि हमारे सुधार के लिये (किम् हृणीषे) क्या २ क्रोध कर हमे किस २ प्रकार दण्डित करो। क्योंकि (द्रोघ-वाचः) द्रोह या परस्पर द्वेष की बात कहने वाले (ते) वे नाना लोग भी अवश्य (निर्ऋथं) अति दुःख और धन, सत्य, अन्न ऐश्वर्यादि से रहित कष्टमय जीवन को (सचन्ताम्) प्राप्त हो।

अ॒द्या मु॑रीय॒ यदि॑ यातु॒धानो॒ अस्मि॒ यदि॒ वायु॑स्त॒तप॒ पूरु॑षस्य।
अधा॒ स वी॒रैर्द॒शभि॒र्वि यू॑या॒ यो मा॒ मोघं॒ यातु॑धा॒नेत्याह॑॥१५॥७॥

भा०—(यदि) यदि मैं (यातुधानः) अन्यों को पीड़ा, यातना देने वाला, (अस्मि) होऊं और (यदि वा) जो मै (पूरुषस्य) मनुष्य के (आयुः) जीवन को (ततप) पीड़ित करूं, मानव जीवन के संताप का कारण बनूं तो मैं (अद्य मुरीय) आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊं। अर्थात् अन्य को पीडा देने और मनुष्य जीवन को हानि पहुंचाने वाले को अति शीघ्र मृत्यु-दण्ड हो। (अद्य) और (यः) जो (मोघं) व्यर्थ, विना प्रयोजन के (मा) मुझे (यातुधान इति आहः) पीड़ादायक, क्रूर ऐसा कहे (सः) वह तू (दशभिः वीरैः) दशों प्रकार के प्राणों से (वि यूयाः) वियुक्त हो। इति सप्तमो वर्गः॥

यो माया॑तुं॒ यातु॑धा॒नेत्याह॒ यो वा॑ र॒क्षाः शुचि॑र॒स्मीत्याह॑।
इन्द्र॒स्तं ह॑न्तु मह॒ता व॒धेन॒ विश्व॑स्य ज॒न्तोर॑ध॒मस्प॑दीष्ट ॥१६॥

भा०—(यः) जो (अयातुं मा) अन्य को पीडा न देने वाले अहिंसक को (यातुधान इति आह) पीडा देने वाला, हिंसक ऐसा बतलावे (वा) और (यः) जो (रक्षाः) स्वयं दुष्ट पुरुष होकर (शुचि अस्मि इति आह) मै निर्दोष हूं, ऐसा अपने को बतलावे (इन्द्रः) राजा (तं) उसको (महता वधेन) बड़े भारी शस्त्र से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य जन्तोः) समस्त पापियो से (अधमः) अधम, नीचा (पदीष्ट) समझा जावे।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥

भा०—(या) जो स्त्री, (खर्गला इव) उल्लुनी के समान (द्रुहा) पति से द्रोह करके अपने (तन्वं गूहमाना) शरीर को छिपाकर (नक्तम्) रात के समय (प्र अप जिगाति) घर छोड़ कर जाती है (सा) वह (अनन्तां वव्रान्) खूब गहरे गढों को (अव पदीष्ट) प्राप्त हो । इस प्रकार (ग्रावाणः) क्षत्रिय लोग (उपब्दैः) गर्जनाओं और घोषणाओं सहित (रक्षसः घ्नन्तु) दुष्ट पुरुषों को विनष्ट करें ।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो (ये) जो (नक्तभि) रातों के समय आप लोग (वयः भूत्वी) तेजस्वी, प्रकाशयुक्त होकर (पतयन्ति) नगर के स्वामी के समान रक्षा करते हैं (ये वा) और जो आप लोग (अध्वरे) हिंसारहित, एवं दुष्टों से अहिंसनीय (देवे) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (रिपः) पापों और दुष्ट पुरुषों को (दधिरे) पकड़ते हो वे आप लोग (विक्षु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वम्) विशेष २ पदों पर विराजमान होवें । और (वि इच्छत) विविध ऐश्वर्यों की कामना करो । (रक्षसः वि गृभायत) दुष्ट पुरुषों को विविध प्रकार से कैद करो । और उनको (सं पिनष्टन) अच्छी प्रकार दबाओ, पीसो, दण्डित करो, कुचलो । अथवा—हे बलवान् पुरुषो ! आप लोग उन दुष्टों को दण्डित करो जो (वयः भूत्वी) प्रजा के नाशक होकर (नक्तभिः पत यन्ति) रात में छुपे प्रजा वा मालिक के समान शासन करते और [illegible] धन के स्वामी बन जाना चाहते हैं । और जो (देवे) विद्वानों, [illegible] प्रद प्रजा और राजा पर और (अध्वरे) यज्ञ में (रिपः दधिरे) पाप कर्म आचरण करते हैं ।

प्र वर्तय दि॒वो अश्मा॑नमिन्द्र॒ सोम॑शितं मघव॒न्त्सं शि॑शाधि।
प्राक्ता॒दपा॑क्तादध॒रादुद॑क्ताद॒भि ज॑हि र॒क्षसः॒ पर्व॑तेन ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (दिवः अश्मानम्) आकाश से पड़ने वाले ओलों के समान (दिवः) तेजोयुक्त-आग्नेय अस्त्र से (अश्मानम्) शत्रुनाशक गोली आदि कठिन वस्तु (प्र वर्त्तय) फेंक। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम-शितम्) ऐश्वर्य और उत्तम शासक से तीव्र हुए शत्रु और प्रजाजन दोनों को (सं शिशाधि) अच्छी प्रकार शासन कर। (प्राक्तात्, अपाक्तात्, उदक्तात्, अधरात्) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे, दक्षिण से भी (पर्वतेन) दृढ़ पोरु वाले दण्ड से, पशु के समान (रक्षसः जहि) दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर।

ए॒त उ॒ त्ये प॑तयन्ति॒ श्वया॑तव॒ इन्द्रं॑ दिप्सन्ति दि॒प्सवोऽदा॑भ्यम्।
शिशी॑ते श॒क्रः पिशु॑नेभ्यो व॒धं नू॒नं सृ॑जद॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ २०।८

भा० -(एते उ त्ये) ये वे बहुत से (श्व-यातवः) कुत्ते के समान चाल चलने और अन्यों को पागल कुत्ते के समान विना प्रयोजन काटने और अन्यों के प्रति परुष भाषण कहने और गुर्रा २ कर डराने वाले लोग ही (पतयन्ति) मालिक से बन कर बैठ जाना चाहते और प्रजा के धन को हर लेना चाहा करते हैं (दिप्सवः) हिंसाकारी लोग ही (अदाभ्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति) अहिंसनीय ऐश्वर्यवान् राजा को भी मारना चाहा करते हैं। (शक्रः) शक्तिशाली राजा (पिशुनेभ्यः) क्षुद्र पुरुषों को दमन करने के लिये (वधं शिशीते) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने शस्त्र बल को सदा तेज़ करता रहे। (नूनं) अवश्य ही वह (यातुमद्भ्यः) प्रजा को पीडा देने वाले दुष्ट पुरुषों को दमन करने के लिये (अशनि) विद्युत्वत् आघातकारी शस्त्र (सृजत) बनावे और उन पर छोड़े। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्रो॑ यातू॒नाम॑भवत्पराश॒रो ह॑वि॒र्मथी॑नाम॒भ्या॒३॒॑विवा॑सताम्।
अ॒सीदु॑ श॒क्रः प॑र॒शुर्यथा॒ वनं॒ पात्रे॑व भि॒न्दन्त्स॒त ए॑ति र॒क्षसः॑॥२१॥

भा०—(इन्द्रः) राजा, ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (हविर्मथीनां) प्रजाओं के अन्न, यज्ञों के चरु और राज्य के कर आदि को बलात् हरने वाले (यातूनां) प्रजाओं के पीड़ादायी मनुष्यों और (अभि आ विवासताम्) अभिमुख आकर आक्रमण करने वाले पुरुषों को (परा-शरः) दूर तक मार मारने वाला (आ भवत्) हो । (परशुः यथा वनं) जिस प्रकार फरसा, वन को काट गिराता है, (पात्रा इव) जिस प्रकार पत्थर वर्त्तनों को तोड डालता है उसी प्रकार (शक्रः) शक्तिशाली राजा (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (परशुः) कुल्हाड़ा सा होकर (अभि एति) प्राप्त हो और (रक्षसः सतः भिन्दन् एति) उन दुष्टों को भेद नीति से तोड़ता फोड़ता हुआ प्राप्त हो ।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! (उलूक-यातुम्) बड़े उल्लू के समान चाल चलने और उसके समान छिप कर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करने और उनको भयभीत करने वाले को, (शुशुलूक-यातुम्) छोटे उल्लू के समान अति कर्कश बोल कर डराने और प्रजा के ारीब जनों को पीडित करने वाले को, (श्व-यातुम्) कुत्ते के समान भौंक कर, बकबकर, कठोर वचन कह कर, डरा धमका कर प्रजा के जनों को पीडा देने वाले, (कोक-यातुम्) उलूक के तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देने वाले (सुपर्ण-यातुम्) बाज़ के समान झपटने वाले (उत) और (गृध्र यातुम्) गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोच कर खाने ाले (रक्ष) दुष्ट जनों को (दृषदा इव) सिलबट्टे या चक्की के पाटों के समान पीस डालने वाले (प्र मृण) दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल ।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

भा०—(रक्षः) दुष्ट पुरुष (नः) हम तक (मा अभि नट्) न पहुंचे । (यातुमा-वताम्) पीड़ा देने वाले जनों के (मिथुना) जो [illegible]

पुरुष (या किमीदिना) जो निकम्मे वा क्षुद्र कोटि का स्वार्थमय स्नेह करने वाले हैं वे (अप उच्छतु) दूर हो। (पृथिवी) पृथिवीवत् सर्वाश्रय, विस्तृत शक्ति (नः पार्थिवात् अंहसः पातु) हमे पृथिवी से होने वाले पाप या कष्ट से बचावे। और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अस्मान्) हमे (दिव्यात् अंहस· पातु) आकाश की ओर से आने वाले कष्ट से बचावे।

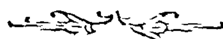
इन्द्र॒ ज॒हि पुमां॑सं यातु॒धान॑मु॒त स्त्रियं॑ मा॒यया॒ शाश॑दानाम्।
विग्री॑वासो॒ मूर॑देवा ऋदन्तु॒ मा ते दृ॑शन्त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यातुधानं पुमांसं) पीड़ा देने वाले पुरुष को और (मायया शाशदानाम्) माया मे प्रजा का नाश करने वाली (स्त्रियं उत) स्त्री को भी (जहि) दण्डित कर। (मूर-देवाः) मूढ़ होकर विषयों मे क्रीडा करने वाले, या मारने वाली मौत की पीड़ा देने वाले दुष्ट लोग (वि-ग्रीवासः) विना गर्दन के होकर (ऋदन्तु) नष्ट हो। (ते) वे (उत्-चरन्तं) उगते हुए (सूर्यं माद्दशन्) सूर्य को भी न देख पावे।

प्रति॑ चक्ष्व॒ वि च॒क्ष्वेन्द्र॑श्च सोम जागृतम्।
रक्षो॑भ्यो व॒धम॑स्यतम॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ ॥ २५ ॥ ९ ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे शासनकर्त्ता! तुम और (इन्द्रः च) शत्रुहन्ता सेनापति दोनों ही (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार को देखो और (वि-चक्ष्व) विविध प्रकार से देखो (जागृतम्) तुम दोनों सदा जागते रहो, सावधान रहो। (रक्षोभ्यः वधम् अस्यत) दुष्टों के नाश करने के लिये उन पर शस्त्र का प्रहार करो। और (यातुमद्भ्य अशनिम् अस्यत) अन्यो को पीडा देने वा हमारे नगरादि पर चढ़ाई, युद्ध प्रयाण करने वाली सेना के स्वामियों पर विद्युत् के तुल्य आघातकारी अस्त्र का प्रयोग करो। इति नवमो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः।

॥ इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥



अथाष्टमं मण्डलम्

[१]

प्रगाथो घौरः काण्वो वा । ३—२९ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । ३०—३३ आसङ्गः प्लायोगिः । ३४ शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य पत्नी ऋषिः ॥ देवताः—१—२९ इन्द्रः । ३०—३३ आसङ्गस्य दानस्तुतिः । ३४ आसङ्गः ॥ छन्दः—१ उपरिष्टाद् बृहती । २ आर्षी भुरिग् बृहती । ३, ७, १०, १४, १८, २१ विराड् बृहती । ४ आर्षी स्वराड् बृहती । ५, ८, १५, १७, १९, २२, २५, ३१ निचृद् बृहती । ६, ९, ११, १२, २०, २४, २६, २७ आर्षी बृहती । १३ शङ्कुमती बृहती । १६, २३, ३०, ३२ आर्ची भुरिग्बृहती । २८ आसुरी स्वराड् निचृद् बृहती । २९ बृहती । ३३ त्रिष्टुप् । ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

चतुस्त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

मा चि॑द॒न्यद्वि शं॑सत॒ सखा॑यो॒ मा रि॑षण्यत ।
इन्द्र॒मित्स्तो॑ता॒ वृष॑णं॒ सचा॑ सु॒ते मुहु॑रु॒क्था च॑ शंसत ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! (अन्यत) और किसी को (मा चित् शंसत) कभी पूज्य, उपास्य मत कहो और किसी की उपासना मत करो । (मा रिषण्यत) हिंसा कर्म मत करो । (वृषणं) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्वशक्तिमान्, जगत् के प्रबन्ध करने वाले, व्यवस्थापक (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के स्वामी की (इत) ही (स्तोत) स्तुति किया करो । (सुते) इस उत्पन्न जगत में (सचा) एक साथ बैठ कर (मुहु) बार २ (उक्था च) नाना स्तुति-वचन (शंसत) करो ।

अ॒व॒क्र॒क्षिणं॑ वृष॒भं य॑था॒जुरं॒ गां न च॑र्षणी॒सह॑म् ।
वि॒द्वेष॑णं सं॒वन॑नोभयङ्क॒रं मंहि॑ष्ठमुभया॒विन॑म् ॥ २ ॥

भा०—(अव-क्रक्षिणं गां न) हल शकट आदि के खैंचने वाले बैल के समान (अव-क्रक्षिणं) अपने अधीन जगत् भर को चलाने वाले (यथा वृषभं) मेघ के समान सुखों के वर्षक वृषभ के समान अति बलशाली, (अजुरं) अविनाशशील, सदा बलयुक्त, (चर्षणी-सहम्) सब मनुष्यों से ऊपर, (वि-द्वेषणं) द्वेष के भावों से विवर्जित, (सं-वनना) अच्छी प्रकार से सेवा वा भक्ति करने योग्य (मंहिष्ठम्) अति दानशील (उभयं-करम्) अनुग्रह वा दण्ड अथवा दोनों लोकों में कल्याण करने वाले, (उभयाविनम्) दोनों लोकों में कर्म और भोग दोनों योनियों मे विद्यमान जीवों की रक्षा करने वाले परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति किया करो ।

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत् त्वा चित् हि) जिस तुझ पूज्य परमेश्वर को ही (इमे नाना जना) ये नाना जन (ऊतये) अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये (हवन्ते) पुकारते, तेरी प्रार्थना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) उस तेरा (इदं ब्रह्म) यह वेद-ज्ञान (विश्वा अहा) सब दिनों ही (अस्माकं वर्धनं भूतु) हमें बढ़ाने वाला होवे ।

वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (विपश्चित) नाना विद्वान् जन (वि तर्तूर्यन्ते) विशेष रूप से तेरे ही अनुग्रह से इस संसार से पार हो जाते हैं । (जनानाम्) मनुष्यों को (विपः) कंपाने वाला और तू ही (अर्य) उन पर अनुग्रह करने वाला स्वामी है । तू (पुरु रूपम्) बहुत प्रकार से (उप क्रमस्व) हमे प्राप्त हो, और (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (नेदिष्ठं वाज भर) अति समीप प्राप्य आत्मिक ऐश्वर्य और बल, एवं ज्ञान प्रदान कर ।

मृहे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अविनाशी शक्तिमन् ! (त्वाम्) तुझ को (महे चन शुल्काय) बड़े भारी मूल्य या आर्थिक लाभ के लिये भी (न परा देयाम्) कभी त्याग न करूं । हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन् ! हे (शत मघ) सैकड़ो ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! मै तुझे (सहस्राय) हजारों के लिये भी (न) नहीं त्यागूं । (अयुताय न) दस हजार के लिये भी न त्यागूं (शताय न) सैकड़ों के लिये भी न त्यागूं । इति दशमो वर्गः ॥

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! तू (मे) मुझे (अभुञ्जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता और (भ्रातु) भाई से भी (वस्यान् असि) अधिक श्रेष्ठ एवं सम्पन्न है । हे (वसो) सब में वसने हारे अन्तर्यामिन् ! तू और (माता च) मेरी माता दोनों (समौ) बराबर है । दोनों ही (छदयथः) मुझे आच्छादित करते हो । मेरे लिये छदि अर्थात् शरण देने वाले गृह के समान हो । और (वसुत्वनाय) मुझे बसाने और (राधसे) धनैश्वर्य देने के लिये भी (समौ) माता और तू दोनों बराबर हो ।

क्वे यथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुरन्दर) देह रूप पुरों का नाश करने वाले ! हे देह-बन्धन से छुडाने वाले ! प्रभो ! (क इयथ) तू कहां गया है ? (क [illegible] असि) तू कहां है ? (ते) तेरे लिये (मन) मेरा मन (पुरुत्रा चित् हि) बहुत २ स्थानों पर जाता है । हे (युध्म) दुष्टों से [illegible]

हारे ! हे (खजकृत्) इन्द्रियो के बीच प्रकट होने वाले! प्राण शक्तियों को प्रकट करने हारे आत्मन् ! वा (खजकृत्) आकाश मे प्रकट जगत् के रचयितः ! तू (अलर्षि) सर्वत्र व्यापता है । (गायत्राः) गान करने वाले विद्वान् और वेदमन्त्र (ते) तेरा ही (प्र अगासिषुः) उत्तम रूप से गान और वर्णन करते है । (२) राजा युद्ध करने से 'युध्म' और संग्राम करने से 'खजकृत्' है ।

प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार वीर सेनापति वा राजा, (वावातुः) हिंसक वा प्रबल शत्रु के भी (पुरंदरः) नगरियों को तोड फोड़ देने में समर्थ होकर (वज्री) बलवान् होकर (बर्हिः उप आसदं) राष्ट्र-प्रजा के ऊपर अध्यक्षासन पर बैठने के लिये (यासत्) प्रयास या उद्योग करता है और (पुरः भिनत) शत्रु के नगरो को तोड डालता है उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (वावातुः) निरन्तर सांसारिक भोगों को सेवन करने वाले जीव के भी (पुरन्दरः) देहबन्धन का नाश करता है, और वह जीव (याभिः) जिन देहपुरी रूप साधनों से, (कण्वस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (बर्हिः उप आसदम्) महान् यज्ञ मे भी उपासना करने के लिये (यासत्) यत्न करता है, उसी से वह (वज्री) वीर्यवान् आत्मा भी (पुरः भिनत्) देह पुरियों को वीर सेनापति के तुल्य छिन्न भिन्न करता है ।

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते ! (ते) तेरे (ये) जो (दशग्विन) दश गतियो से जाने वाले, या दश गौओ या, भूमियों या भटो के स्वामी, (शतिनः) सौ ग्रामो, या सौ भटों पर के नायक (सहस्रिणः) हजार भूमियो, या भटो के स्वामी, अथवा (शतिनः) सौ संख्या वेतन

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी, सू
नाना बलों के स्वामिन् ! हम (निष्ट्या इव मा भूम) नीचों, हीन, निर्ग
पुरुषों के समान न हों । (त्वत्) तुझ से पृथक् (अरणाः इव) र
या जीवन के आनन्द से रहित भी (मा भूम) न हों । (प्र-जहित
वनानि न) परित्यक्त, विना देख भाल के वनों या उपवनों के सम
असुन्दर, कण्टकाकीर्ण भी (मा भूम) न हों । प्रत्युत (दुरोषासः) अन्यों
दग्ध न हो सकने योग्य, वा उत्तम दुर्ग अर्थात् गृहों में रहने वाले हो
(अमन्महि) तेरा मनन और मान आदर करें ।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों, शत्रुओं के नाशक प्रभो ! राजन
हम सदा (अनाशवः) अति शीघ्रता न करते हुए, धैर्यवान् और (अ
ग्रासः च) अतीक्ष्ण स्वभाव के, सौम्य होकर (ते) तेरा (स्तोमं) स्व
रूप और गुणों का (अमन्महि) मनन करें और तेरी स्तुति करें ।
(शूर) शूरवीर ! शत्रुनाशक ! (ते) तेरे (महता राधसा) बड़े भा
ऐश्वर्य से (सकृत्) एक बार तो (स्तोम अनु मुदीमहि) हम ते
स्तुति के अनुकूल रहकर खूब अवश्य प्रसन्न हों ।

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५॥१२॥

भा०—हे राजन ! स्वामिन् ! (यदि) यदि तू (मम स्तोम) मे
स्तुतियुक्त वचन को (श्रवत) श्रवण करे तो (अस्माकम) हम [illegible]
के बीच (इन्दव) ऐश्वर्यवान जन और (तिरः ससृवांस) तिर [illegible]
दूर तक जाने वाले (आशव) वेग से जाने वाले (तुग्र्यावृध) [illegible]

के नाशक सैन्य बलो के हितो को बढ़ाने वाले या सैन्यों से बढ़ने वाले वीर पुरुष भी (पवित्रं) पवित्राचार वाले, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुझ प्रभुको (मन्दन्तु) प्रसन्न करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ त्व॑१द्य स॒धस्तु॑तिं वा॒वातुः॒ सख्यु॒रा ग॑हि।
उप॑स्तुतिर्म॒घोनां॒ प्र त्वा॑वत्वधा॑ ते वश्मि सुष्टु॒तिम् ॥ १६ ॥

भा०—(अद्य) आज, तू (वावातुः) सेवा करने वाले, भक्त और (सख्युः) मित्र को (सधस्तुतिम्) एक साथ की स्तुति को (आ गहि) प्राप्त हो। (मघोना) ऐश्वर्यवानो की (उपस्तुतिः) उपमा द्वारा की स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तुझे प्राप्त हो। (अध) और मैं (ते) तेरी (सु-स्तुतिम्) सब से उत्तम स्तुति करना (वश्मि) चाहता हूं। परमेश्वर की स्तुति राजा, ऐश्वर्यवान्, स्वामी आदिरूप से या उपगन्ता, मित्र रूप से भी की जाती है।

सोता॒ हि सोम॒मद्रि॑भि॒रेमे॑नम॒प्सु धा॑वत।
ग॒व्या वस्त्रे॑व वा॒सय॑न्त॒ इन्नरो॒ निर्धु॑क्षन्व॒क्षणा॑भ्यः ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो (अद्रिभिः) जिस प्रकार मेघों से जल बरसता और 'सोम' ओषधि वर्ग उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अद्रिभिः) शस्त्र बलो से (सोमं सोत) ऐश्वर्य को उत्पन्न करो। (अद्रिभिः सोमं सोत) मेघवत् कलशो से अभिषेक योग्य का अभिषेक करो। (ईम् एनम्) इस ऐश्वर्य को (अप्सु) प्रजाओ मे (आ धावत) प्राप्त कराओ। हे (नर) वीर नायक जनो! जिस प्रकार वायुगण आकाश मे मेघों को तन्तुओ के कपड़ो की तरह फैला देते है और जल को (वक्षणाभ्यः) नदियो की वृद्धि के लिये मेघो को दोह देते है उसी प्रकार तुम लोग भी वस्त्रों के समान (गव्या वासयन्त) गोधनों को बसाओ, गौओ के रेवट भूमि पर जगह २ जाजमो के समान बिछे हो। उन (वक्षणाभ्यः) दूध वहन करने वाली गौओ से (निः धुक्षन्) खूब दूध दोहा करो।

भा०—(हिरण्यये रथे) सुवर्ण या लोह जटित रथ मे जुते (केशिन हरयः) अयाल वाले अश्व जिस प्रकार रथस्वामी को ले जाते है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! (सहस्रं) हजार २ और (शतम्) सौ सौ (ब्रह्मयुजः) अन्न, वेतनादि पर नियुक्त (केशिन) उत्तम केशो से युक्त, तेजस्वी (हरयः) मनुष्य (युक्ता) सावधान चित्त होकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्यमय राज्य के पालन करने के लिये (हिरण्यये रथे) हित और सुन्दर रमण योग्य इस राष्ट्र मे (त्वा) तुझे (आ वहन्तु) आदर पूर्वक अपने ऊपर धारण करे ।

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५॥१४॥

भा०—(रथे हरी) रथ मे दो अश्वो के समान (हिरण्यये) ऐश्वर्य युक्त (रथे) रमण योग्य, राष्ट्र मे (मयूरशेप्या) मयूर के चिन्ह के समान शिर पर मान आदर सूचक कलगी धारण करने वाले, (हरी) उत्तम दो पुरुष (शिति-पृष्ठा) श्वेत शुद्ध रूप वाले, निर्दोष होकर (त्वा) तुझ को (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न के समान (विवक्षणस्य) विविध प्रकार से धारण करने योग्य राष्ट्र मे स्वामी के महान कार्य के (पीतये) प्राप्ति, उपभोग और पालन करने के लिये (वहताम) तुम को अपने ऊपर धारण करें । (२) अध्यात्म में हिरण्यय रथ देह, इन्द्र, आत्मा अश्व प्राण-अपान है । विविध प्रकार से वचन या उपदेश का विषय मधुर अन्न, म[illegible] विद्या, ब्रह्म ज्ञान है । वे उसको प्राप्त करावे । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

भा०—हे (गिर्वण) वाणियो के देने हारे आचार्य ! [illegible] द्वारा स्तुत्य ! राजन् ! तू (पूर्वपा-इव) पूर्व काल के अनुसार पालक [illegible]

समान, (अस्य सुतस्य) इस अधीन शिष्य वा प्रजाजन का पुत्र वा ऐश्वर्य के समान (पिब) पालन कर । (परिष्कृतस्य) अच्छी प्रकार बनाये (रसिनः) रसयुक्त अन्न का (आसुतिः) बना पदार्थ जिस प्रकार हर्षजनक होता है उसी प्रकार (परिष्कृतस्य) सजे सजाये, विद्यादि गुणो से अलङ्कृत (रसिन) बलवान् पुरुष की (इयम्) यह (आ-सुतिः) अभिषेक क्रिया भी, (चारु) सबको अच्छी प्रकार लगने वाली होकर (मदाय) सब के आनन्द के लिये (पत्यते) पालकवत् आचरण करती है । उसको सब का पति, स्वामी बना देती है ॥

य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो (एकः) एक, अकेला ही, अन्य सहायकों की अपेक्षा किये बिना ही (दंसना) कर्म सामर्थ्य से (महान् अस्ति) महान् है और जो (व्रतैः महान्) व्रतों, कर्त्तव्य पालनों द्वारा (उग्रः) उग्र है (सः) वह (शिप्री) उत्तम शिरोमुकुट वाला, उत्तम मुख नासिका वाला, सुमुख पुरुष (अभिगमत्) हमें प्राप्त हो । (न सः योषत्) वह हम से पृथक् न हो । वह (हवं गमत्) स्तुति को प्राप्त हो । वह (न परि वर्जति) हमारा त्याग न करे । (२) परमेश्वर सर्वप्रभु कर्मों से महान् ज्ञानवान्, साक्षात् स्तुति के योग्य हो । वह हमारे सदा साथ रहे ।

त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (शुष्णस्य) प्रजा के शोषण करने वाले शत्रु या दुष्ट पुरुष के (चरिष्ण्वं) अस्थिर या प्रजा के ऐश्वर्य [illegible] (पुरं) नगरवत् गढ़े या छावनी को (वधैः सं पिणक्) दण्डों और [illegible] चूर्ण २ कर नष्ट कर दे । और (अध द्विता) तू

(हव्यः भुवः) स्तुतियों को प्राप्त करे तो (अध द्विता अनु चरः) अनन्तर दोनों प्रकार की कान्तियों या तेजो को प्राप्त कर अर्थात् शत्रुदमन और प्रजापालन दोनो कार्यों मे तुझे कीर्त्तिया प्राप्त हो। तू सूर्यवत् प्रखर, प्रचण्ड और चन्द्रवत् प्रजाजन-मनोरंजक कान्तियों को धारण कर। (२) प्रभु परमेश्वर (वधैः शुष्णस्य) दण्डो से दु'खित जीव इस भोग के साधन जंगम देह को नाश करे। स्तुत्य प्रभु कान्तियों और ज्ञानो को प्रकट करे।

मम॑ त्वा॒ सूर॒ उदि॑ते॒ मम॑ म॒ध्यन्दि॑ने दि॒वः ।
मम॑ प्रपि॒त्वे अ॑पिशर्व॒रे व॑सवा स्तोमा॑सो अवृत्सत ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) सबको वसाने वाले राजन् ! हे प्रभो ! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय काल मे, (दिवः मध्यन्दिने) दिन के मध्याह्न काल में और (प्रपित्वे) दिन के समाप्ति काल मे और (अपिशर्वरे) रात्रि के अन्धकारमय काल मे (मम) मेरे (स्तोमासः) नाना स्तुति-वचन (त्वा अवृत्सत) तुझे ही लक्ष्य करके निकले।

स्तु॒हि स्तु॒हीदे॒ते घा॑ ते॒ मंहि॑ष्ठासो म॒घोना॑म् ।
नि॒न्दि॒ताश्व॑: प्रप॒थी प॑रम॒ज्या म॒घस्य॑ मेध्यातिथे ॥ ३० ॥ १५ ॥

भा०—(घ) निश्चय से हे (मेध्यातिथे) सत्संग करने योग्य, पूज्य अतिथे ! विद्वन् ! (मघोनां) पूज्य ज्ञानादि के धनी गुरु जनों का (स्तुहि स्तुहि इत्) तू अवश्य बार २ स्तुति किया ही कर, क्योंकि (ते) वे पूज्य जन (मघस्य) उत्तम धन के, ज्ञानादि के (मंहिष्ठास) उत्तम दाता हैं। और (निन्दिताश्व) निन्दित अश्वों वाला, दुष्टेन्द्रिय, अजितेन्द्रिय पुरुष (प्रपथी) सन्मार्ग का उल्लंघन करने वाला और (परमज्या) परम श्रेष्ठ पुरुषों के मान, आयु की हानि करने वाला होता है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सदा ही परमेश्वर या गुरुजनों की स्तुति करे जिससे विनयशील और जितेन्द्रिय हो। अन्यथा अविनीत जन अजितेन्द्रिय, कुमार्गी, गुरुद्रोही होजाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ यद॒श्वान्वन॑न्वतः श्र॒द्धया॒हं रथे॑ रु॒हम् ।
उ॒त वा॒मस्य॒ वसु॑नश्चिकेतति॒ यो अस्ति॒ याद्वः॑ प॒शुः ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जब मैं उत्तम सारथी या रथारोही के समान (वनन्वतः) विषयों को संभोग करने वाले (अश्वान्) इन्द्रियरूप विषय भोक्ता 'अश्वों' को (आ) सब ओर से रोक लेता हूं तब मैं (श्रद्धया) सत्य धारण के बल से (रथे) इस देह रूप रथ पर भी (रुहम्) चढ़ सकता हूं अथवा (श्रद्धया) सत्यज्ञान के बलपर मैं (रथे) रसस्वरूप, परम रमणीय प्रभु के आनन्द में भी (रुहम्) प्राप्त होऊं। (याद्वः पशु) मनुष्यों के हितकारी पशु के समान ही (यः) जो मनुष्य (याद्वः) यत्नवान् मनुष्यों के बीच कुशल, (पशुः) सम्यक् तत्वदर्शी है वही (वामस्य) सर्वोत्तम, सुन्दर (वसुनः) परमैश्वर्य का (चिकेतति) जानने हारा है।

य ऋ॒ज्रा मह्यं॑ माम॒हे स॒ह त्व॒चा हि॑र॒ण्यया॑ ।
ए॒ष विश्वा॑न्य॒भ्य॑स्तु॒ सौभ॑गासं॒ङ्गस्य॑ स्व॒नद्र॑थः ॥ ३२ ॥

भा०—(य) जो आत्मा (हिरण्यया त्वचा) सुवर्णादि की बनी सुनहरी पोशाक के समान अति उज्ज्वल प्रकाशमय, ज्योतिर्मय रूप से (मह्यं) मुझे (ऋज्रा) सरल धार्मिक व्यवहारों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (मामहे) प्रदान करता है (एष) वह (आसङ्गस्य) सङ्ग रहित आत्मा का सबको सत्कार्यों में लगाने हारे का (स्वनत्-रथ) उत्तम प्राण धारण करने वाला रमणसाधन रथ, देह (विश्वानि सौभगानि) समस्त सुखैश्वर्यों को (अभि-अस्तु) साक्षात् करे। 'आसङ्ग':—सङ्गरहितः। असङ्ग एव आसङ्ग ।

अध॒ प्लायो॑गि॒रति॑ दासद॒न्याना॑स॒ङ्गो अ॑ग्ने द॒शभिः॑ स॒हस्रैः॑ ।
अधो॒क्षणो॒ दश॒ मह्यं॒ रुश॑न्तो न॒ळा इ॑व॒ सर॑सो॒ निर॑तिष्ठन् ॥ ३३ ॥

भा०—(अध) और जिस प्रकार (दशभि सहस्रैः अन्यान् अति

दासत्) विजयी दसों हज़ारों सेना भटों से शत्रुओं को पराजय कर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार (प्रायोगिः = प्रायोगिः) प्रयोग कुशल वा प्रयस् = उत्तम उद्यम से और ज्ञानपूर्वक जाने हारा (आसङ्ग) उत्तम सत्संगी, वा असंग पुरुष (दशभिः) दश (सहस्रैः) बलवान् इन्द्रियों के साथ (अति दासत्) सब को अपने वश कर लेता है। हे (अग्ने) सर्व प्रकाशक प्रभो ! (अध) तब (दश उक्षणः) दसों देह के उठाने वाले प्राण गण (मह्यं) मेरी सहायता के लिये (सरस नडा. इव) तालाब के तट पर खड़े नड़ों के समान (नडाः = नराः) वीर पुरुषों के समान ही (निर् अतिष्ठन्) निकल खड़े होते हैं। वे मेरे सदा सहायक होते हैं।

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि ॥३४॥१६॥

भा०—(अस्य) इस आत्मा का (स्थूरम्) स्थूल देह भी (अनु) इसके अनुरूप ही (पुरस्तात्) आगे (ददृशे) दीखता है। वह स्वयं (अनस्थ) अस्थि आदि देहावयवों से भी रहित, (ऊरुः) जंघा के समान शरीर का आश्रय होकर भी (अवरम्बमाणः) देह का आश्रय ले रहा होता है। (शश्वती) सदा तनी (नारी) नर, आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि (अभिचक्ष्य) आत्मा का साक्षात् करके (आह) कहती है हे (अर्य) स्वामिन् ! तू ही (सु-भद्रम्) शुभ, उत्तम सुखदायी (भोजनं) भोग के साधन देह को (बिभर्षि) धारण करता और पालता पोषता है। इति षोडशो वर्गः ॥

[५]

३०, ३२, ३६, ४२ आर्षी निचृद्गायत्री । ७, ८, १०, ३४, ४० आर्षी विराड् गायत्री । ४१ पादनिचृद् गायत्री । २८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् ॥

चत्वारिंशदृच सूक्तम् ॥

इ॒दं व॑सो सु॒तमन्धः॒ पिबा॒ सुपू॑र्णमु॒दर॑म् ।
अना॑भयिन्ररि॒मा ते॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजा को बसाने वाले राजन्! वा प्रत्येक मे बसने वाले आत्मन्! तू (अन्धः) अन्न के समान (सु-पूर्णम्-उदरम्) अच्छी प्रकार पेट भर कर (सुतम् पिब) अन्न जलवत् उत्पन्न ऐश्वर्य का भोग कर। हे (वसो) गृहस्थ पिता तू (सुतम्) पुत्र को (सुपूर्णम् उदरम् अन्ध पिब) पेट भरकर अन्न खिलाकर पाल। हे (अनाभयिन्) न भय करनेहारे! (ते) तुझे हम वह ऐश्वर्य (ररिम) प्रदान करे।

नृभि॑र्धू॒तः सु॒तो अश्नै॒रव्यो॒ वारैः॒ परि॑पूतः ।
अश्वो॒ न नि॒क्तो न॒दीषु॑ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अश्नै सुतः) प्रस्तरों द्वारा अभिपुत सोमरस (नृभि धूत) ऋत्विजों द्वारा कंपित या हिला २ कर (अव्यः वारैः परिपूत) भेड़ के बने बालों ने छनता है उसी प्रकार (अश्नैः) शस्त्र बलो ने (सुत) अभिषिक्त राजा (नृभि धूतः) नायक पुरुषों द्वारा [illegible] और (अव्य) रक्षा करने योग्य राष्ट्र के (वारै) उत्तम ऐश्वर्यों वा [illegible] सैन्यो से (परिपूत) पवित्र, परिगत राजा (नदीषु निक्तः अश्व) नदियो मे नहाये अश्व के समान (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं के बीच (निक्त) अभिषिक्त हो।

तं ते॒ यवं॒ यथा॒ गोभिः॑ स्वा॒दुम॑कर्म श्री॒णन्तः॑ ।
इन्द्र॑ त्वा॒ रिमन्त्स॑धमादे॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (यवं) जौ के बने भोजन को (गोभिः श्रीणन्त) गाय के दूधो से मिलाते हुए या उसे दूधों के साथ पकाते हुए

भोजन को (स्वादुम् अकर्म) स्वादु बना लेते है (ते) तेरे (यवं) शत्रु को नाश करने वाले सैन्य बल को (गोभिः) भूमियों से उत्पन्न अर्थों द्वारा (श्रीणन्तः) परिपक्क, दृढ़ करते हुए राष्ट्र के बल को (स्वादुम्) सुख से भोग करने योग्य (अकर्म) करें। उसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन्! ऐश्वर्यप्रद! (अस्मिन् सधमादे) इस एक साथ हर्षित होने योग्य अवसर मे (त्वा) तुझ को हम (गोभिः श्रीणन्तः) उत्तम वाणियों से संगत करते हुए (स्वादुम् = स्व-आदुम्) निज ऐश्वर्य का भोक्ता (अकर्म) बनाते है।

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।
अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च ॥ ४ ॥

भा०—(एकः इन्द्रः इत्) एक, अद्वितीय, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही (सोम-पाः) ओषधि वर्ग के पालक मेघ या सूर्य के समान समस्त ऐश्वर्य का पालक है। वही (एकः इन्द्रः) एक, अकेला, अन्यों की सहायता की अपेक्षा न करता हुआ 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु (सुत-पाः) उत्पन्न ऐश्वर्य का भोक्ता, (सु-तपाः) शत्रु को अच्छी प्रकार पीड़ित करने वाला, तपस्वी है। वह (विश्वायुः) समस्त प्रजा का जीवन स्वरूप, समस्त मनुष्यों का स्वामी, सब को प्राप्त है। वही (देवान् मर्त्यान् च अन्तः) सब दिव्य पदार्थों, विद्वानों और मरणधर्मा प्राणियों के भीतर रह कर उनका (सोम पाः) शिष्यवत् पालक, ऐश्वर्यवान् और उनका पुत्रवत् पालक है।

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् ।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(उरु-व्यचसं) महान् राष्ट्र मे विशेष प्रसिद्ध (सुहार्दम्) उत्तम हृदय वाले (यं) जिसको (न शुक्रः) न देह मे बलवीर्यवर्धक अति तेजोवर्धक द्रव्य और (न दुराशीः) न दुर्भावना, और (न तृप्राः) न

तृप्त, अति धनी जन ही (अपस्पृण्वते) द्वेष कर सकते हैं । वह बल का स्वामी, सब का प्रिय और मित्र है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते ।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

भा०—(व्राः न मृगं) घेरने वाले जन जैसे मृग या सिंह को (गोभिः मृगयन्ते) हांकों से ढूंढते हैं उसी प्रकार (यत्) जिस को (अस्मत् अन्ये) हम से दूसरे भी (गोभिः) स्तुति वाणियों से (मृगयन्ते) खोजते फिरते हैं वे उसको (धेनुभिः) वाणियों, स्तुतियों द्वारा ही (अभि त्सरन्ति) प्राप्त होते हैं ।

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुतपाव्नः) यज्ञ में सोमपायी इन्द्र के लिये (सोमाः त्रय सुताः) सोम तीनवार सवन किया जाता है उसी प्रकार (स्वे क्षये) अपने निवास योग्य राष्ट्र में (सुतपाव्नः) गृह में सुतों के समान राष्ट्र में प्रजा को पालन करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक, (देवस्य) दानशील राजा के लिये (त्रयः सोमाः) तीनों प्रकार के ऐश्वर्य जन, धन, मनन बल, (सुतासः) अच्छी प्रकार तैयार (सन्तु) होने चाहियें ।

त्रयः कोशासश्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः ।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥

भा०—(समाने) एक समान, (भार्मन् अधि) भरण पोषण करने योग्य राष्ट्र या कुल के अध्यक्ष पद पर स्थित राजा के (त्रयः कोशासः) तीनों कोश और (तिस्रः) तीनों प्रकार की (सुपूर्णाः) खूब पूर्ण, सुस-[illegible] [illegible] (चम्वः) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं वा सेनाएं भी (श्चोतन्ति) उसे ऐश्वर्य प्रदान करती हैं । तीन कोश—जनकोश राष्ट्र, धनकोश खजाना,

और मन्त्रकोश राजविद्वत्सभा वा सचिव परिषत् और तीन चमू , प्रजागण और शासक वर्ग । (२) भरणीय, पोष्य देह मे तीन कोश विज्ञानमय मनोमय, आनन्दमय, तीन चमू , कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, सभी आनन्द ज्ञान, कर्म और फल प्रदान करती है।

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः ।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (पुरु-निः-ष्ठाः) बहुतो मे स्थिर होकर, (क्षीरैः) शुद्ध जलो से (मध्यतः) सब के बीच (आशीर्तः) आसेवित होकर और (दध्ना) राष्ट्र को धारण करने वाले बल से (शूरस्य) शूरवीर पुरुष को भी (मन्दिष्ठः) आनन्दित, प्रसन्न करने वाला होकर (शुचिः असि) शुद्ध, पवित्रहृदय, धार्मिक हो । अभिषेकों का अभिप्राय राजा को राग-द्वेष, पक्षपात, लोभ, क्रोधादि से पवित्र करना ही है ।

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन ! (इमे) ये (सोमा) सोम्य गण जन और (अस्मे सुतास) हमारे पुत्रादि (शुक्राः) आशु-कार्यकारी, शुद्ध तेजस्वी, (तीव्रा) वेगवान होकर (ते) तेरा (आशिरं याचन्ते) आश्रय मांगते है । वा हमारे उत्पन्न ऐश्वर्य के रक्षक भी आश्रय मांगते है । (२) वे (सोमाः) जीव पुत्रवत पालनीय, शुद्ध पवित्र होकर प्रभु का आश्रय मांगते है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (हि) क्योंकि (त्वा) तुझ को (रेवन्तं) ऐश्वर्यवान् धन का स्वामी (शृणोमि) श्रवण करता हूं । जिस प्रकार (पुरोडाशम्) स्थालि के सिद्धान्न [illegible]

और जिस प्रकार ओषधि अन्नादि का सूर्य परिपाक करता है उसी प्रकार तू (तान्) उन पूर्वोक्त शुद्धाचारवान् पुरुषो को और (आशिरम्) आश्रय करने और देने योग्य (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र तथा (इदं) उस (पुरोडाशम्) आगे आदर पूर्वक देने योग्य की (श्रीणिहि) सेवा कर । और उनको तप द्वारा दृढ बना ।

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥

भा०—(दुर्मदासः न) दुष्ट मद से युक्त पुरुष जिस प्रकार (हृत्सु पीतास.) हृदयो तक पीकर, बेसुध होकर (युद्धयन्ते) परस्पर लड़ते है इसी प्रकार (सुरायाम्) सुख देने वाली, राज्यलक्ष्मीवत् सुख मे रमण करने योग्य आनन्द की दशा मे भी (हृत्सु पीतासः) हृदयो मे आनन्द रस का पान, अनुभव कर लेने वाले विद्वान् जन (युध्यन्ते) अपने अन्त शत्रु, काम क्रोधादि से युद्ध करते है वा शत्रुओ पर प्रहार करते है और (नग्नाः) वेद वाणियो को त्याग न करने वाले विद्वान् वा (नग्ना.) स्त्री आदि के संग से रहित ब्रह्मचारी वा मूकभाव से मन ही मन मुग्ध हो (ऊधः न) मातृस्तनवत् वा मेघवत् सुखवर्षी उस सर्वोपरि प्रभु की (जरन्ते) स्तुति किया करते है ।

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः ।
प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (त्वावत) तेरे जैसे (मघोन.) उत्तम ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्यादि के स्वामी, (रेवत) धन के स्वामी के गुणों का (स्तोता) स्तुति करने वाला पुरुष भी (रेवान् इत् स्यात्) धनाढ्य ही हो जाता है ।

उक्थं चन शस्यमानमगोरुरिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीयमानम् ॥ १४ ॥

भा०—(अरि) व्यापक, स्वामी प्रभु (अगो) वाणीरहित, मूक

जन के भी (शस्यमानम् उक्थं चन) न कहे गये स्तुति के वचन को (आचिकेत) भली प्रकार जान लेता है उसी प्रकार (न गायमानं गायत्र च) न गाये गये गायत्र स्तोम, गान योग्य गीत को भी जानता है। भगवान् मूक की भी कही या अनुक्त वाणी को सुनता है।

मा न॑ इन्द्र पीयत्नवे॒ मा शर्ध॑ते॒ परा॑ दाः।
शिक्षा॑ शचीवः॒ शची॑भिः ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! तू (नः) हमे (पीयत्नवे) हिंसक, क्रूर पुरुष के लाभ के लिये (मा परा दाः) मत त्याग और (शर्धते मा परा दाः) हमे अपमानित करने वाले के लिये मत त्याग। हे (शचीवः) वाणी और शक्ति के स्वामिन्! तू (न) हमे (शचीभिः) शक्तियों और वाणियों से हिंसक और अपमानजनक पुरुष के दण्ड करने के लिये (शिक्ष) शिक्षा या बल दे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

व॒यमु॑ त्वा त॒दिद॑र्था इन्द्र॑ त्वा॒यन्तः॒ सखा॑यः।
कण्वा॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले स्वामिन्! (वयम् कण्वाः) हम विद्वान् लोग (तदिदर्था) उस, इस पारमार्थिक, ऐहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाले, (सखायः) तेरे मित्र होकर (त्वायन्तः) तुझे सदा चाहते हुए वा (त्वा यन्तः) तुझे प्राप्त होकर (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (जरन्ते) तेरी स्तुति करते हैं।

न घे॑म॒न्यदा प॑पन॒ वज्रि॑न्न॒पसो॒ नवि॑ष्टौ।
तवेदु॒ स्तोमं॑ चिकेत ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन्! (अपसः) कर्म करने वाले! तेरी (नविष्टौ) उत्तम से उत्तम पूजा के अवसर पर मैं (अन्यत् न घ ईम् आ पपन) और कुछ नहीं स्तुति करता, मैं (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमं चिकेत) स्तुति करना जानूं।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ १८ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्, शुभ कामना वाले जन (सुन्वन्तं) यज्ञ-कर्म और ईश्वर स्तुति करने वाले तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं। वे (स्वप्नाय) सोने वाले को (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते, वा वे (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) आलस्य से प्रेम नहीं करते। (अतन्द्राः) आलस्यरहित पुरुष भी (प्रमादम् यन्ति) प्रमाद को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये आलस्य से प्रेम न करो। अथवा—(अतन्द्राः) तन्द्रा, आलस्य से रहित लोग ही (प्र-मादम् यन्ति) उत्तम कोटि का आनन्द प्राप्त करते हैं।

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्य१स्मान्।
महाँइव युवजानिः ॥ १९ ॥

भा०—हे स्वामिन्! (युवजानिः इव महान्) जिस प्रकार युवति स्त्री का पति (वाजेभि) उत्तम २ नाना ऐश्वर्यों सहित आगे २ बढ़ता है और कोई लज्जा अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी (महान्) गुणो में महान् होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ उ सु-प्र याहि) आ और सुखपूर्वक, आदर सहित जा (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (मा हृणीथा) लज्जा, संकोच, तिरस्कार और क्रोध मत कर।

मो ष्व१द्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत्।
अश्रीर इव जामाता ॥ २० ॥ २० ॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (दुर्हणावान्) अति दुःसह पीडा देने वाला प्रभु (अद्य) आज, (अस्मत्) हम से दूर रहकर (मो सु सायं करत्) कभी सारा दिन व्यतीत कर सायंकाल न कर दे। (अश्रीरः इव जामाता) शोभा, लक्ष्मीरूप, सौभाग्यादि से रहित जंवाई जिस प्रकार दिन भर व्यतीत करके रात्रि काल में आता है, जिससे उसके दुर्लक्षणादि

जन के भी (शस्यमानम् उक्थं चन) न कहे गये स्तुति के वचन को (आचिकेत) भली प्रकार जान लेता है उसी प्रकार (न गायमानं गायत्रं च) न गाये गये गायत्र स्तोम, गान योग्य गीत को भी जानता है। भगवान् मूक की भी कही या अनुक्त वाणी को सुनता है।

मा न॑ इन्द्र पीय॒त्नवे॒ मा शर्ध॑ते॒ परा॑ दाः।
शिक्षा॑ शचीवः॒ शची॑भिः ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! तू (नः) हमें (पीयत्नवे) हिंसक, क्रूर पुरुष के लाभ के लिये (मा परा दाः) मत त्याग और (शर्धते मा परा दाः) हमें अपमानित करने वाले के लिये मत त्याग। हे (शचीवः) वाणी और शक्ति के स्वामिन्! तू (नः) हमें (शचीभिः) शक्तियों और वाणियों से हिंसक और अपमानजनक पुरुष के दण्ड करने के लिये (शिक्ष) शिक्षा या बल दे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

व॒यमु॑ त्वा त॒दिद॑र्था॒ इन्द्र॑ त्वा॒यन्तः॒ सखा॑यः।
कण्वा॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले स्वामिन्! (वयम् कण्वा) हम विद्वान् लोग (तदिदर्थाः) उस, इस पारमार्थिक, ऐहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाले, (सखायः) तेरे मित्र होकर (त्वायन्त) तुझे सदा चाहते हुए वा (त्वा यन्तः) तुझे प्राप्त होकर (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (जरन्ते) तेरी स्तुति करते हैं।

न घे॑म॒न्यदा प॑पन॒ वज्रि॑न्न॒पसो॒ नवि॑ष्टौ।
तवेदु॒ स्तोमं॑ चिकेत ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन्! (अपसः) कर्म करने वाले तेरी (नविष्टौ) उत्तम से उत्तम पूजा के अवसर पर मैं (अन्यत् न घ आ पपन) और कुछ नहीं स्तुति करता, मैं (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमं चिकेत) स्तुति करना जानूं।

इ॒च्छन्ति॑ दे॒वाः सु॒न्वन्तं॒ न स्वप्ना॑य स्पृहयन्ति ।
यन्ति॑ प्र॒माद॒मत॑न्द्राः ॥ १८ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्, शुभ कामना वाले जन (सुन्वन्तं) यज्ञ-कर्म और ईश्वर स्तुति करने वाले तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं। वे (स्वप्नाय) सोने वाले को (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते, वा वे (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) आलस्य से प्रेम नहीं करते। (अतन्द्राः) आलस्यरहित पुरुष भी (प्रमादम् यन्ति) प्रमाद को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये आलस्य से प्रेम न करो। अथवा—(अतन्द्राः)तन्द्रा, आलस्य से रहित लोग ही (प्र-मादम् यन्ति) उत्तम कोटि का आनन्द प्राप्त करते हैं।

ओ षु प्र या॑हि॒ वाजे॑भि॒र्मा हृ॑णीथा अ॒भ्य१॒॑स्मान् ।
म॒हाँ इ॑व॒ युव॑जानिः ॥ १९ ॥

भा०—हे स्वामिन्! (युवजानिः इव महान्) जिस प्रकार युवति स्त्री का पति (वाजेभिः) उत्तम २ नाना ऐश्वर्यों सहित आगे २ बढ़ता है और कोई लज्जा अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी (महान्) गुणों में महान् होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ उ सु-प्र याहि) आ और सुखपूर्वक, आदर सहित जा (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (मा हृणीथा) लज्जा, संकोच, तिस्कार और क्रोध मत कर।

मो ष्व१॒॑द्य दु॒र्हणा॑वान्त्सा॒यं क॑रदा॒रे अ॒स्मत् ।
अ॒श्री॒र इ॑व॒ जामा॑ता ॥ २० ॥ २० ॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (दुर्हणावान्) अति दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु (अद्य) आज, (अस्मत्) हम से दूर रहकर (मो सु सायं करत्) कभी सारा दिन व्यतीत कर सायंकाल न कर दे। (अश्रीरः इव जामाता) शोभा, लक्ष्मीरूप, सौभाग्यादि से रहित जंवाई जिस प्रकार दिन भर व्यतीत करके रात्रि काल में आता है, जिससे उसके दुर्लक्षणादि

प्रकट न हों। उसी प्रकार हे स्वामिन्! तेरा भी विरह असह्य है। वह तू भी आते २ विलम्ब न कर, शीघ्र दर्शन दो। प्रभो! तुम अपने उत्तम रूप गुणो सहित शीघ्र दर्शन दो। इति विंशो वर्गः॥

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम्।
त्रिषु जातस्य मनांसि॥ २१॥

भा०—(अस्य वीरस्य) इस वीर के समान, विशेष बल से युक्त, विविध विद्याओं के उपदेष्टा, स्वामी की (भूरि-दावरी) बहुत से सुखैश्वर्य देने वाली (सु-मतिम्) कल्याणकारी ज्ञान, बुद्धि और वाणी को (विद्म हि) अवश्य जाने। (त्रिषु) तीनों लोकों और तीनों वेदों मे (जातस्य) प्रसिद्ध, तीनों मे विशेष ज्ञाता के (मनांसि) ज्ञानों को भी (विद्म) जाने।

आ तू षिञ्च कण्ववन्तं न घा विद्म शवसानात्।
यशस्तरं शतमूतेः॥ २२॥

भा०—हे विद्वन्! हे ऐश्वर्यवन्! तू (कण्ववन्त) विद्वान् पुरुषों से युक्त जन को (आ सिञ्च) वृक्ष वनस्पतिवत् सींच, उसे बढा। (शतम्-ऊते) सैकड़ों ज्ञानों और रक्षाओं से सम्पन्न (शवसानात) बलवान शक्तिशाली से अधिक (यशस्तर) बलवान् और यशस्वी दूसरे को (न घ विद्म) नहीं जानते।

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय।
भरा पिबन्नर्याय॥ २३॥

भा०—हे (सोतः) ईश्वर के उपासक! यज्ञकर्त्तः! तू (वीराय) विविध ज्ञानवृद्धियों की प्रेरणा करने वाले, (शक्राय) शक्तिशाली, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् और (नर्याय) सब मनुष्यों के हितकारक स्वामी के लिये (ज्येष्ठेन) उसको सर्वश्रेष्ठ रूप से ज्ञान कर सबसे और [illegible]

(सोमं भर) ऐश्वर्यादि वा अपने आत्मा को भी उसके अर्पण कर। वह (पिबत्) उसका पालन करे।

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (अव्यथिषु) अन्यों को पीड़ा न देने वाले अहिंसक जनों में सबसे अधिक (वेदिष्ठ) वेदनावान् दयालु है, वह (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों और (स्तोतृभ्यः) उपदेशकों के लिये (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) अश्वों और गौओं से सम्पन्न ऐश्वर्य (वेदिष्ठः) सबसे अधिक प्रदान करता है।

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोतार) विद्वान् जनो ! हे यज्ञकर्त्ता जनो, हे ऐश्वर्य, अन्नादि के उत्पादक प्रजा जनो ! आप लोग (मद्याय) आनन्द हर्ष के योग्य (वीराय) वीर (शूराय) शूर पुरुष के लिये (पन्यं-पन्यं सोमं) स्तुत्य एवं सर्वोत्तम अन्न ऐश्वर्यादि प्राप्त कराओ। इत्येकविंशो वर्गः ॥

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्।
नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥

भा०—(अस्मत्) हम से दूर रहकर भी (वृत्रहा) विघ्नों, विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक राजा (पाता) राष्ट्र का पालक होकर राष्ट्र को (सुतम्) पुत्रवत् जान कर (आ घ गमत्) अवश्य आवे। वह (शतम्-ऊतिः) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न होकर (नियमते) राष्ट्र की व्यवस्था करता है। (२) इसी प्रकार प्रभु पुत्रवत् उत्पन्न संसार का पालक होकर हमको प्राप्त है, हम अज्ञानियों से दूर है। तो भी वह सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न हो जगत् को नियमों से बांध रहा है।

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥

भा०—(ब्रह्म-युजा) बृहद् राष्ट्र के पालक पद पर नियुक्त बड़े वेतनादि पर सहोयोगी हो (हरी) विद्वान् स्त्री पुरुष (इस) इस राष्ट्र मे (शग्मा) सुखदायक होकर (सखायम्) मित्रवत् इन्द्र को (आ वक्षतः) अपने ऊपर धारण करते है। और (गीर्भिः श्रुतं) वाणियो से विख्यात बहुश्रुत (गिर्वणसम्) वाणियों को स्वीकारने और देने वाले उसको वे दोनो धारण करते है।

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) तेजस्विन् ! हे (ऋषीव.) ऋषियो, द्रष्टाओं इन्द्रियों के भी स्वामिन् ! हे (शचीव.) शक्तियो और वाणियो के स्वामिन् ! (सोमाः) ये अन्नादि ओषधि रसवत् जगत के उत्पन्न पदार्थ अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द और ये जीवगण (स्वादवः) सुखकारी है, और (सु-आदवः) सुख की कामना करते (सोमा. श्रीता.) समस्त रस परस्पर मिल गये है। समस्त जीवगण रस से तृप्त हो गये है। (आ याहि आ याहि) हे प्रभो ! तू आ, तू आ। (न) अभी (अयम) यह (सध मादम्) साथ मिलकर हर्ष उत्पन्न करने वाले को (अच्छ) भली प्रकार साक्षात् कर।

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्त. ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन ! (या स्तुत·) जो स्तुतियां (त्वा कारिणं) तुझ कर्त्ता को बढाती है जो पुरुष (महे राधसे) बडे ऐश्वर्य और (नृम्णाय) ज्ञान के लिये (वृधन्त) बढते हुए (त्वा कारिण)

तुत्र कर्त्ता को प्राप्त कर लेते है वे (स्तुतः दधिरे) उन स्तुतियों को धारण करते हैं।

गिर॑श्च॒ यास्ते॑ गिर्वाह उ॒क्था च॒ तुभ्यं॒ तानि॑ ।
स॒त्रा द॑धिरे॒ शवां॑सि ॥ ३० ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वाहः) वाणियों को मनुष्यों को देने वाले, और हे वाणियों द्वारा हृदय मे धारण करने योग्य ! (याः च गिरः) जो वाणियां और (यानि च उक्थानि) जो उत्तम वेद-वचन (ते) तेरे लिये प्रयुक्त होते है पूर्वोक्त विद्वान् जन उन वाणियों और (तानि) उत्तम वचनों और (शवांसि) नाना बलो को भी (तुभ्यं) तेरी स्तुति के लिये ही (सत्रा दधिरे) सदा धारण करे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

ए॒वेदे॒ष तु॑विकू॒र्मिर्वाजाँ॒ एको॒ वज्र॑हस्तः ।
स॒नादमृ॑क्तो दयते ॥ ३१ ॥

भा०—(एव इत्) निश्चय से ही, (एषः) यह (तुवि-कूर्मिः) बहुत से लोकों को बनाने हारा (एकः) अकेला, (वज्रहस्तः) अपने हाथ मे समस्त शक्तियो को लेने वाला, (सनात्) सनातन से प्रसिद्ध (अमृक्तः) अविनाशी प्रभु ही (वाजान् दयते) समस्त ऐश्वर्यों और सुखों, ज्ञानों को प्रदान करता है।

हन्ता॑ वृ॒त्रं दक्षि॑णे॒नेन्द्रः॑ पु॒रू पु॑रुहू॒तः ।
म॒हान्म॒हीभिः॒ शची॑भिः ॥ ३२ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, दुष्टो का नाश करने वाला, (पुरुहूत) बहुतों द्वारा स्तुति करने योग्य है । वह (दक्षिणेन) अति प्रबल ज्ञान और सामर्थ्य से (वृत्र) अज्ञान को और अन्धकारवत (हन्ता) नाश करता है । वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों और पूज्य वाणियो से गुरुवत् (महान्) महान् है ।

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्यांसि च।
अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रभु परमेश्वर के आश्रय (विश्वाः चर्षणयः) समस्त मनुष्य (उत च्यौत्ना) समस्त बल, और (ज्यांसि) श्रेष्ठ विजय के सामर्थ्य है उसी (मघोनः) ऐश्वर्य के स्वामी के (अनुः घ इत्) अनुकूल रहने वाला पुरुष ही (मन्दी) अति सुखी, तृप्त, आनन्दवान् होता है।

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे।
वाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अति शृण्वे) सब से सब शक्ति वैभवों मे अधिक सुना जाता है, जो (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानों को भी (वाजदावा) नाना ऐश्वर्य देने वाला है (एषः) वह ही (एतानि) ये सब पृथिवी सूर्यादि (चकार) बनाता है।

प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति।
इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥ २३ ॥

भा०—वह (प्र-भर्ता) सब से उत्कृष्ट, प्रजा का भरण पोषण करने वाला प्रभु, (अपाकात्) कच्चे मार्ग से रथ को सारथि के समान (यम) जिस (गव्यन्तं) स्तुति वाणी के इच्छुक या भूमि आदि के इच्छुक (रथम) रमणकारी भक्तजन की (अवति) रक्षा करता है (सः हि) वही (इनः) स्वामी होकर (वसु वोढा) ऐश्वर्य धारण करने और उसका उत्तम उपयोग करने वाला होता है।

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः।
सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

भा०—वह (वृत्र हन्ता) आवरणकारी अज्ञान, विघ्नकारी दुष्ट [illegible] नाश करने वाला, (शूर) शूरवीर सेनापति व तुल्य प्रभु ([illegible])

मेधावी, बड़ा बुद्धिशाली, विविध ज्ञानों का दाता है, वही (नृभिः) उत्तम पुरुषों और (अर्वद्भिः) ज्ञान-साधनों से (सनिता) नाना सुखों का देने हारा है। वह (विधन्तम्) सेवा करने वाले का (सत्यः अविता) सच्चा रक्षक है।

यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा।
यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा॥ ३७॥

भा०—जिस प्रकार (सोमैः) जलों से सूर्य व्यक्त जगत् को सचमुच तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (सोमैः) नाना ऐश्वर्यों, प्रेरक सामर्थ्यों और बलों से (सत्य-मद्वा भूत्) सत्य ज्ञान और व्यक्त जगत् में एकमात्र रमण करने वाला और जो (सोमैः) ज्ञानी पुरुषों वा ऐश्वर्यों से सत्य रूप से स्तुति करने योग्य वा सचमुच सब को प्रसन्न करने वाला होता है, हे (प्रियमेधाः) यज्ञप्रिय जनो! (एनं इन्द्रं) इस इन्द्र, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (सत्राचा मनसा) सत्य से युक्त एवं तद्गत चित्त से (यजध्वम्) उपासना करो।

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम्।
कण्वासो गात वाजिनम्॥ ३८॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषो! आप लोग (गाथ-श्रवसं) जिसका यश और श्रोतव्य ज्ञान वा स्वरूप गान करने योग्य है, उस (सत्-पति) सज्जनों और सत् पदार्थों के पालक, (श्रवः-काम) श्रवणीय अभिलाषा वा संकल्प वाले, (पुरु-त्मानम्) इन्द्रियों के बीच आत्मा के समान बहुत जनों के बीच आत्मावत् प्रिय (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् प्रभु की (गात) स्तुति करो।

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान्।
ये अस्मिन्काममश्रियन्॥ ३९॥

भा०—(यः) जो (ऋते) सत्य ज्ञानमय, परम प्राप्तव्य प्रभु में

या सत्य ज्ञान के बल पर (पदेभ्य) प्राप्त होने वाले (नृभ्यः) मनुष्यों का (सखा शचीवान्) शक्तिशाली मित्र होकर (गाः दात्) वाणियों को प्रदान करता है, और (ये) जो (अस्मिन्) इस में (कामम्) अपना समस्त अभिलाषाओं को (अश्रियन्) धरते और प्राप्त कर लेते हैं उनका भी वह मित्र है।

इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्।
मेषो भूतो॒३भि यन्नयः ॥ ४० ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार हे (अद्रिवः) सर्वशक्तिमन् (धीवन्तम्) बुद्धिमान्, ध्यान धारणा युक्त, (काण्वं) विद्वान्, (मेध्यातिथिम्) व्यापक प्रभु वा अतिथि के उपासक संस्कार करने वाले के प्रति तू (मेष) सब सुखों का देने वाला मेघवत् (भूतः) होकर (अभि यन्) प्रत्यक्ष होकर (अयः) प्राप्त होता है।

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्।
अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥

भा०—हे (विभिन्दो) विविध दुःखों और अज्ञानों के नाशक ! प्रभो ! तू (ददत्) ज्ञान, ऐश्वर्यादि दान करता हुआ (अस्मै) इस अपने उपासक को (अयुता) अपृथक् भूत, एकत्र सम्मिलित (चत्वारि) चारों प्राप्तव्य पुरुषार्थों को (शिक्ष) प्रदान कर, उनकी शिक्षा दे। (परः) और भी अधिक (सहस्रा) बलवान् (अष्टा) सात मुख्य प्राण और आठवीं वाणी को भी प्रदान कर।

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या।
जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥ २४ ॥

भा०—(उत) और (त्ये) उन (पयः-वृधा) माता पिता के समान दूध और ज्ञान से बालकवत् हमें बढ़ाने वाले (रणस्य माकी) सब रमण पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (नप्त्या) सदा परस्पर सम्बद्ध, प्रेम और

प्रकृति दोनो को (जनित्वनाय) जीवो और जगत् के उत्पन्न करने के लिये (सु मामहे) उत्तम रीति से पूज्य रूप से जाने। 'माकी' निर्मान्त्र्यौ॥ सा०॥ इति चतुर्विशो वर्गः॥

[३]

मेध्यातिथि काण्व ऋषिः॥ देवताः—१—२० इन्द्रः। २१—२४ पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुति॥ छन्दः—१ कुकुम्मती बृहती। ३, ५, ७, ९, १९ निचृद् बृहती। ८ स्वराड् बृहती। १५, २४ बृहती। १७ पथ्या बृहती। २, १०, १४ सतः पङ्क्तिः। ४, १२, १६, १८ निचृत् पङ्क्तिः। ६ भुरिक् पंक्ति। २० विराट् पङ्क्तिः। १३ अनुष्टुप्। ११, २१ भुरिगनुष्टुप्। २२ विराड् गायत्री। २३ निचृद् गायत्री॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३स्माँ अवन्तु ते धियः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (गोमतः) वाणी से युक्त प्रार्थी वा इन्द्रियों से युक्त (रसिनः) रस, बल या सुख के अभिलाषी (सुतस्य) उत्पन्न जीव का (पिब) पालन कर। (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। तू (सधमाद्यः) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने हारा होकर गुरुवत् (नः) हमारा (आपिः) आप्त बन्धु होकर हमे (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (बोधि) ज्ञान प्रदान कर। और (ते धियः) तेरे कर्म, बुद्धिया और प्रार्थनाएं, स्तुतियां (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय॥ २॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! (वयं) हम (वाजिनः) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी होकर भी (ते) तेरी (सु-मतौ) उत्तम बुद्धि और ज्ञान के अधीन (भूयाम) रहे। तू (नः) हमें (अभि मातये) अभिमानी पुरुष

के स्वार्थ के लिये (मा स्तः) मत पीड़ित कर। तू (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखदायक प्रबन्धो मे (आ यमय) बांध और (चित्राभिः अभिष्टिभिः) अद्भुत २ मनोकामनाओ से (अस्मान् अवतात्) हमे युक्त कर और हमारी रक्षा कर।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वार्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुतो को बसाने हारे! बहुत प्रकार के धनो के स्वामिन्! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) नाना वाणिया हो (इमा उ त्वा) वे सब भी तुझ को (वर्धन्तु) बढावे। और (पावक-वर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी तथा पवित्र करने वाले शरीर और वाणी वाले (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (विपश्चित) विद्वान् पुरुष (स्तोमै) स्तुतियो से (त्वा अभि-अनूषत) तुझे साक्षात् स्तवन करें।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह स्वामी, प्रभु (सहस्रं) सहस्रो वार वा सहस्रो (ऋषिभिः) ज्ञानदर्शी तत्वज्ञानी पुरुषो से (सहस्कृत) बल युक्त किया जाकर (समुद्रः इव) समुद्र के समान, (पप्रथे) विस्तार को प्राप्त होता है। (स. अस्य) वह इसका (सत्य' महिमा) सच्चा महान् सामर्थ्य है जो (विप्र-राज्ये) विद्वानो के शासन मे (यज्ञेषु) यज्ञ, सत्संगादि मे (शव) उसके बल और ज्ञान की (गृणे) चर्चा और स्तुति की जाती है।

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(देव-तातये) विद्वानों से किये जाने वाले यज्ञादि उत्तम कार्य वा स्वयं (देव-तातये) देव अर्थात याचकों के हित के लिये (प्र-

हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (हवामहे) बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति) यज्ञ प्रवृत्त होने पर भी हम (वनिनः) दानशील होकर (इन्द्रं हवामहे) परमैश्वर्यप्रद प्रभु की स्तुति करते है। (समीके) युद्ध के अवसर पर (वनिनः) ऐश्वर्यवान् वा शत्रुहिंसक होकर भी हम (इन्द्रं) शत्रुहन्ता सेनापति स्वामी को स्वीकार करते हैं, (धनस्य सातये) धन के लाभ के लिये हम उस ऐश्वर्यप्रद की ही स्तुति-प्रार्थना करते है।

इन्द्रो॑ म॒ह्ना रोद॑सी पप्रथ॒च्छव॒ इन्द्रः॒ सूर्य॑मरोचयत् ।
इन्द्रे॑ ह॒ विश्वा॒ भुव॑नानि॒ येमिर॒ इन्द्रे॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वः ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि को (पप्रथत्) विस्तारित करता है। वह (इन्द्र) सर्वैश्वर्यवान् (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है। (इन्द्रे ह) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के अधीन ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन (येमिरे) सुव्यवस्थित हैं। (इन्द्रे) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के अधीन ही (सुवानासः) उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त मेघ, सूर्य, चन्द्रादि सब लोक और शुभकर्म करने वाले विद्वान् रहते हैं।

अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तय॒ इन्द्र॒ स्तोमे॑भिरा॒यवः॑ ।
स॒मी॒ची॒नास॑ ऋ॒भवः॒ सम॑स्वरन्रु॒द्रा गृ॑णन्त॒ पूर्व्य॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु वा दुष्टजनों के नाश करने और उनके भयभीत करने और भगाने हारे स्वामिन्! (आयव) मनुष्य लोग (पूर्वपीतये) सब से पहले आदरपूर्वक राष्ट्र के उपभोग और पालन करने के लिये (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर ही (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से (समीचीनाः) शुद्ध उत्तम भाव से युक्त होकर (ऋभवः) तेजस्वी और धन, ज्ञान में सम्पन्न जन भी (सम् अस्वरन्) मिलकर तेरी स्तुति और प्रार्थना करते हैं। (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले वीरगण और प्रजा की पीड़ाओं को दूर करने वाले तथा (रुद्राः) गर्जते, बरसने मेघ सूर्यादि वा उपदेष्टा

विद्वान् जन भी (पूर्व्यम् गृणन्त) सब से पूर्व विद्यमान सर्वश्रेष्ठ तेरी ही स्तुति करते हैं। तुझ को ही सर्व प्रथम कारण बतलाते हैं।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥ ८॥

भा०—(सुतस्य) इस उत्पन्न जगत् के (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में ही (अस्य) इस जीव गण के (इत्) भी (वृष्ण्यं शवः) बलयुक्त सुखप्रद ज्ञान और बल को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वावृधे) बढाता है। (आयवः) ज्ञानी मनुष्य (अद्य) आज भी (अस्य तम् महिमानम्) इसके इस महिमा, महान् सामर्थ्य का (पूर्वथा अनु स्तुवन्ति पूर्ववत् नित्यप्रति स्तुति किया करते हैं।

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! प्रभो! (त्वा) तुझ से मैं (तत) वह (सुवीर्यं) उत्तम बल (तत् ब्रह्म) वह ज्ञान, धन और बड़ा ऐश्वर्य (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान और सञ्चय के निमित्त (यामि) मांगता हूं (येन) जिससे (यतिभ्यः) यत्नवान्, (यतिभ्यः) जितेन्द्रिय पुरुषों और (भृगवे) तेजस्वी, परिपक्व बुद्धि और पुष्ट वाणी वाले के उपकार के लिये (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त (प्रस्कण्वम्) उत्कृष्ट मेधावी पुरुष की (आविथ) रक्षा करता है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे॥ १०॥ २६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (येन) जिस बल से तू (समुद्रम्) समुद्र को (मही अपः) भूमियों और जलों को (असृजः) रचता है (ते) तेरा (तत्) वह (शवः) ज्ञान और बल (वृष्णि) सब सुखः

को देने वाला है। (यम्) जिसके अनुकूल (क्षोणीः अनु चक्रदे) सब भूमि, सब मनुष्य चलते और उसकी स्तुति करते है (सः अस्य महिमा) वह उसकी महिमा है। (सद्यः न संनशे) शीघ्र ही उसको नहीं जाना जा सकता ?

शग्धी न॑ इन्द्र॒ यत्त्वा॑ र॒यिं यामि॑ सु॒वीर्य॑म् ।
शग्धि॒ वाजा॑य प्रथ॒मं सिषा॑सते श॒ग्धि स्तोमा॑य पूर्व्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यत् रयिम्) जिस ऐश्वर्य को और (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को मैं तुझ से (यामि) याचना करता हू। तू वह (नः शग्धि) हमें प्रदान करके समर्थ कर। (प्रथमम्) सब से प्रथम, सर्वोत्तम पुरुष को (वाजाय) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (शग्धि) समर्थ कर। हे (पूर्व्य) पूर्व के जनों में सर्वोत्तम ! हे पूर्ण ! तू (सिषासते) भजन सेवन करने की इच्छा वाले (स्तोमाय) स्तुतिकर्त्ता जन के भले के लिये (शग्धि) सब को समर्थ कर या सब कुछ करने मे समर्थ है।

शग्धी नो॑ अ॒स्य यद्ध॑ पौ॒रमावि॑थ॒ धिय॑ इन्द्र॒ सिषा॑सतः ।
शग्धि॒ यथा॒ रुश॑मं॒ श्याव॑कं॒ कृप॒मिन्द्र॒ प्राव॒ः स्व॑र्णरम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! (धियः सिषासतः) नाना कर्मों और स्तुतियों का सेवन करने वाले के (पौरम्) पुरवासी जन को (यत ह) जिससे तू (आविथ) रक्षा करता है और उनको तृप्त करता है (अस्य) इस ऐश्वर्य को (नः शग्धि) तू हमें भी प्रदान कर। और (यथा) जिस प्रकार (रुशम) रोगों के शान्तिकारक (श्यावकम्) विद्वान्, (कृपम्) कृपालु (स्व-र्णरम्) सुखप्रद नायक वीर एवं तेजस्वी पुरुष की (आव) रक्षा करता है उसी प्रकार हमें भी (शग्धि) समर्थ, शक्तिमान् बना।

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नहीन्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १३ ॥

भा०—(अतसीनां) निरन्तर एक देह से दूसरे देह मे विचरने वाले जीवों में से (कः) कौन सा (तुरः) अति शीघ्रकारी (नव्यः) नया, अपूर्व ऐसा (मर्त्यः) मनुष्य है जो (अस्य) इस प्रभु के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य का (गृणीत) उपदेश या वर्णन कर सके। (इन्द्रियं) 'इन्द्र' के ही महान् ऐश्वर्य वा इन्द्र, प्रभु के बनाये जगत् को ही (स्वः) परम सुख (गृणन्तः) कहते हुए जीवगण (अस्य) इस के महान् सामर्थ्य का पार (नही नु आनशुः) कभी भी नहीं पा सकते।

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वत कदु स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देवत) देव ! दातः ! प्रकाशस्वरूप ! (ऋतयन्तः) सत्य ज्ञान और सत्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले तुझे (कद् उ स्तुवन्ते) कौन २ स्तुति करते है (कः) कौन (ऋषिः) साक्षात् तत्वदर्शी (विप्र) विद्वान् जन (आ ऊहते) सर्व प्रकार से प्रार्थना कर सकता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) प्रकाशस्वरूप ! सर्वप्रकाशक ! तू (सुन्वत) उपासना करने वाले के (हवं) स्तुति-वचन और आह्वान को (कदा आगम) कब प्राप्त होता और (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता उपासक के समीप (कत् उ आ गमः) तू कब प्राप्त होता है ?

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५॥२७॥

भा०—(वाजयन्तः रथा इव) संग्राम करने वाले रथ वा रथ से वीर जन (अक्षित-ऊतयः) अक्षय बल से युक्त होकर (सत्राजितः) सह साथ शत्रुओं को जीतने वाले होते और (धनसा) धन को प्राप्त कर

है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्ये) वे (मधु-मत्-माः) अति उत्तम, रीति से गुरु से सञ्चित नाना विद्या मधु को धारण करने वाले (स्तोमासः) स्तुतिकर्त्ता और (गिरः) उपदेष्टा लोग और स्तुति की मधुर वाणियां भी (सत्रा-जितः) सत्य के बल पर सर्वत्र विजयी, (धन-सा) ऐश्वर्य के भागी और दानी, (अक्षितोतयः) अक्षय तृप्ति-युक्त वा अक्षुण्ण मार्ग वाले होकर (वाजयन्तः) ज्ञानैश्वर्य के अभिलाषी होकर (उत् ईरते) ऊपर को उठते है ।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

भा०—(सूर्याः इव) सूर्यो वा सूर्य-किरणो के समान तेजस्वी, (कण्वाः) विद्वान् जनों के (इव) समान ही (भृगवः) पापो को भूनने वाले वा वाग्मी जन, (विश्वम् इत् धीतम्) समस्त विश्वमय ध्यान करने योग्य प्रभु को (आनशुः) प्राप्त होते हैं या (धीतम् विश्वम् आनशुः) ध्यान करके ज्ञान द्वारा विश्व को जान लेते है । और (स्तोमेभिः महयन्तः) स्तुतियों से पूजा करते हुए (प्रिय-मेधासः) यज्ञप्रिय, सत्संग-प्रिय अन्नार्थी जन सभी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (अस्वरन्) स्तुति करते हैं ।

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्-तम) विघ्नों और वारण करने योग्य व्यसनों के नाशक स्वामिन् ! तू (परावत) दूर २ देश से ही (हरी युक्ष्व हि) स्त्री पुरुषों को परस्पर जोड़ा कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और राष्ट्र की रक्षा के लिये (अर्वाचीनः) सदा आगे बढ़ कर या सुशिक्षित सैन्यों से युक्त होकर हे (उग्र) बलवन् ! तू (ऋष्वेभिः) बड़े २ पुरुषों या विद्वानों द्वारा दिये उपदेश से हमें (आगहि) प्राप्त हो।

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे दीप्तिमन् ! प्रकाशस्वरूप ! सब जगत् को देखने हारे ! हे (गिर्वण) वाणियों से स्तुति करने और वाणियो को धारने हारे ! (इमे हि ते कारवः) ये सब तेरे स्तुतिकर्त्ता (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मेध-सातये) सत्संग, यज्ञ, दान को प्राप्त करने के लिये, (वावशुः) तुझ ईश्वर को सदा चाहते हैं । (स त्व) वह तू (वेनः न) अभिलाषी के समान ही (नः हवम् शृणुधि) हमारी पुकार सुन ।

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! राजन् ! (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बड़ी २ धनुर्धर सेनाओं की प्रतिष्ठा के लिये तू (वृत्रं निर् अस्फुरः) धन को विनाश मत कर, उसकी रक्षा कर और विघ्नकारी शत्रु का नाश कर । (अर्बुदस्य) अत्यन्त अधिक ज्ञानी (मृगयस्य) शुद्ध वा स्वामी प्रभु के अन्वेषक, (मायिनः) बुद्धिमान् (पर्वतस्य) मेघ तुल्य सब के पालक पुरुष की (गाः निर् अजः) वाणियों को हृदय से निकाल वा ग्रहण कर । अथवा (मायिनः) मायावी (अर्बुदस्य) हिंसाकारी (मृगयस्य) सिंहवत् दुष्ट स्वभाव की (गाः) चालों को (निर् अज) दूर कर और (पर्वतस्य) पर्वतवत् दुर्गम स्थान के (गाः) मार्गों को (निः) निकाल, बना ।

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ २० ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे प्रकाशक ! जो तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष भाग से (महाम् अहिम्) बड़े भारी आघातकारी मेघ वा अन्धकार को दूर कर देता है, तब तू (पौंस्य कृषे) मनुष्यों के हितकर आ-

बल को प्रकट करता है। उस समय (अग्नयः निर् रुरुचुः) अग्नियें खूब प्रज्वलित होती है (सूर्यः निर्) सूर्य खूब प्रकाशित होता है। और (इन्द्रियः रस) इन्द्र, आत्मा से सेवन करने योग्य ओषधि आदि रसवत् आत्मिक आनन्द भी खूब प्रकट होता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

भा०—परमेश्वर का स्वरूप—(यम्) जिसको लक्ष्य करके (इन्द्रः) आचार्य और (मरुतः) विद्वान्गण तथा आत्मा और प्राण (मे दुः) मुझे ज्ञान प्रदान करते हैं और परमेश्वर (पाकस्थामा) परिपक्व बल वाला (कौरयाण.) क्रियावान्, समस्त पदार्थों में व्यापक, सब को चलाने वाला वा कर्त्ता जीवों का प्राशस्त्य है। मैं उसको (विश्वेषां) सब के बीच में (त्मना शोभिष्टम्) आत्मा रूप से अति शोभावान् (दिवि धावमानम् उप इव) अति समीप आकाश में गति करते सूर्य के समान सदा समीप विद्यमान ही देखता हूं।

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।
अदाद्रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥

भा०—दृढ, बलशाली, सर्वनियन्ता प्रभु ने मुझे (सुधुरं) सुख से धारण करने योग्य (कक्ष्य प्राम्) कक्षाओं, कोखों में पूर्ण (रोहित) निरन्तर बढ़ने वाला वा तेजस्वी आत्मा वा शरीर (अदात्) प्रदान करता है, वह (रायः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है और वह (विबोधनम् अदात्) विविध ज्ञानों के साधन, मन, इन्द्रिय आदि देता है, विशेष ज्ञान भी प्रदान करता है।

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥

भा०—(तुग्र्यं वयः न) बलवान्, शत्रुहिंसक, गृह स्वामी को वेग-

वान् अश्व जिस प्रकार (अस्तं) घर की ओर लेजाते है इसी प्रकार (यम्मै जिस प्रभु के दर्शन के लिये (अन्ये दश वह्नयः) और दस अग्निवत् तेजस्वी शरीर को गाडी के समान उठाने वाले दश प्राण (धुरं प्रति वहन्ति) धारक आत्मा के अधीन रह कर उसको उठाते है ।

आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४॥२९

भा०—मैं (रोहितस्य) वृद्धिशील, तेजस्वी, शरीर मे उत्पन्न होने वाले जीव को (दातारम्) देने वाले (पाकस्थामानम्) दृढ़ बलशाली, (भोजम्) पालक प्रभु को ही (तुरीयम् इत् अब्रवम्) तुरीय, चतुर्थ परम पद के नाम से कहता हू । वही (आत्मा) आत्मा, चेतन है, वह (पितुः) अन्नवत् जीवनाधार है । वह (तनूः) देहवत् प्रिय जगत का विस्तार करने वाला है । वह (वासः) वस्त्रवत् आच्छादक, रक्षक और सर्वत्र वसने वाला सर्वव्यापक है । वही (ओजः दाः) देह मे आत्मावत् समस्त बल पराक्रम का दाता और (अभ्यञ्जनम्) तैलादि स्निग्ध पदार्थ के समान सर्वत्र कान्ति, स्नेह और प्रकाश देने वाला है । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४]

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (प्राग्, अपाक्, उदङ् न्यग् वा) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण या ऊंचे नीचे, (नृभिः हूयसे) मनुष्यों द्वारा पुकारा और स्तुति किया जाता है हे (प्र-शर्ध) उत्तम बलशालिन् ! हे (सिम) सर्वश्रेष्ठ ! तू सचमुच (तुर्वशे) चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले मनुष्य संघ के बीच मे भी (पुरु नृ-सूतः) बहुत प्रकार के मनुष्यों से प्रेरित वा प्रार्थित और उपासित (असि) होता है।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

भा०—(यद् वा) और जो तू (रुमे) उपदेष्टा, (रुशमे) अन्यों की पीडा शान्त करनेवाले रक्षक, (श्यावके) इधर उधर जाने वाले व्यापारी और (कृपे) दयनीय, सामर्थ्यवान् श्रमी, सभी जनवर्ग मे (सचा) एक साथ ही सबको (मादयसे) प्रसन्न करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! और (स्तोम-वाहसः) स्तुतिधारक, (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ब्रह्मभिः त्वा यच्छन्ति) वेदमन्त्रों से तुझे यज्ञ द्वारा अपने को अर्पित करते हैं वह तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (गौरः) गौओं में रति, अनुरागादि करने वाला वृषभ पशु वा गौर नाम मृग, (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतम्) जल से भरे (इरिणम्) जलाशय को (अवः एति) प्राप्त होता है उसी प्रकार (गौर) 'गो' इन्द्रियों मे रमण करने वाला जीव, (तृष्यन्) तृष्णायुक्त होकर (अपा) जलादि के विकाररूप रुधिरादि से (कृत) बने (इरिणम्) 'इरा' अन्न के विकार से बने देह को (अव एति) प्राप्त होता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमारे (आपित्वे) बन्धुभाव को (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र ही

(आ गहि) प्राप्त हो । और (कण्वेषु) विद्वान् जनों के बीच मे (सचा) साथ रहकर (सु-पिब) अच्छी प्रकार मोक्ष-आनन्द रस का पान कर । इसी प्रकार 'गो' भूमियो मे रमण करने वाला राजा जल से युक्त (इरिण) अन्नादि युक्त प्रदेश को अर्थतृपित होकर प्राप्त करे । वह विद्वानो को प्राप्त हो, उनके बीच मे रहकर राष्ट्र-ऐश्वर्य का उत्तम रीति से भोग और पालन करे ।

मन्द॑न्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्द॑वो राधोदेया॑य सुन्व॒ते ।
आमुष्या॒ सोम॑मपिबश्च॒मू सु॒तं ज्येष्ठं॒ तद्द॑धिषे॒ सहः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) दुष्टो के नाश करने वाले प्रभो राजन् ! (इन्दवः) ऐश्वर्य युक्त जीवगण (त्वा मन्दन्तु) तुझे प्राप्त होकर प्रसन्न हों । (सुन्वते) सेवन, ईश्वरोपासना करने वाले तथा (राधो-देयाय) आराधना का उपहार देने वाले पुरुष के (सोमम्) ज्ञानसम्पन्न, (चमू-सुतम्) उत्तम माता पिता के बीच उत्पन्न जीव को पुत्रवत् (आ-मुष्य) स्वीकार कर, गुरुवत् (अपिबः) पालन कर । तू ही (तत्) उस (सहः) परम बल को (दधिषे) धारण करने हारा है । (२) राजा को सब प्रजाजन प्रसन्न करें । वह धनप्रद प्रजाजन के हितार्थ चमू अर्थात् सैन्यो द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को बल से प्राप्त कर उसका पालन और उपभोग करे, सर्वोपरि विजयी बल को धारण करे ।

प्र च॑क्रे॒ सह॑सा॒ सहो॑ ब॒भञ्ज॑ म॒न्युमोज॑सा ।
विश्वे॑ त इन्द्र पृतना॒यवो॑ यह्वो॒ नि वृ॒क्षा इ॑व येमिरे ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—वह शत्रुहन्ता स्वामी (सहसा) बल से (सहः) शत्रुओं का पराजय (प्र चक्रे) अच्छी प्रकार करे और (ओजसा) पराक्रम से (मन्युम् बभञ्ज) शत्रु के क्रोध और अभिमान को तोड डाले, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (यह्वो) महान ! (ते) तेरे अधीन (विश्वे) सब (पृतनायव) सेनाबल और सामान्य प्रजास्थ मनुष्यों के स्वामी नायक गण

(वृक्षाः इव) वृक्षों के समान भूमि को घेर कर (नि येमिरे) भूमि या राज्य का प्रबन्ध करे। 'पृतना' इति मनुष्य नाम नि०। इति त्रिंशो वर्गः॥

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम्।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः॥ ६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरी (उप-स्तुतिम्) स्तुति, गुणानुवाद को (आनड्) प्राप्त करता है, वह (सहस्रेण इव) अनेक, बलशाली (यवीयुधा) शत्रुनाशक प्रहारक बल से (सचते) सम्पन्न होता है, वह (सु-वीर्ये) उत्तम वीर्य बल के आश्रय पर (पुत्र) अपने पुत्र, प्रजा को (प्रावर्गं) शत्रु को निवारण करने मे समर्थ (कृणुत) बनाता है, और (नमः-उक्तिभिः) विनय युक्त वचनो से (दाश्नोति) दान करता है।

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥ ७॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! हम (उग्रस्य) उग्र, अति बलवान् (तव) तेरे (सख्ये) मित्रभाव मे रहकर (मा भेम) कभी न डरे, (मा श्रमिष्म) कभी न थकें। (वृष्णः ते) उत्तम प्रबन्धक और सुखों के वर्षक तेरे (कृतं) किये (महत्) बड़े भारी (अभि-चक्ष्यं) प्रत्यक्ष दर्शनीय कार्य को तथा (यदुम्) यत्नशील (तुर्वशम्) धर्मार्थ काम मोक्षादि के अभिलाषी मानव जन को (पश्येम) देखें।

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥ ८॥

भा०—जिस प्रकार (दान. न वृषा) सब सुख देने वाला, बल-वीर्यवान् नेता पुरुष (सव्याम् स्फिग्यं) वाम भाग में रखने वा प्रजोत्पादन योग्य अर्धाङ्गिनी को (अनु वावसे) प्राप्त कर उसके अनुकूल होकर रहता, उसको आच्छादन करता है और वह भी (अस्य न रोषति)

उससे रुष्ट नहीं होती न उसको रुष्ट करती है, उसी प्रकार (वृषा) प्रबन्ध करने में कुशल, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान् (दानः) दानशील, एवं दुष्टों को नाश करने वाला पुरुष (सन्याम्) ऐश्वर्य से सम्पन्न वा शासन योग्य (स्फिग्यं) प्रतिष्ठा योग्य प्रजाजन को (अनु ववसे) उसके अनुकूल रहकर बसावे, उसकी रक्षा करे। वह प्रजागण (अस्य न रोषति) उसे रोष न दिलावे न उसके प्रति रोष करे। हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! (धेनवः) गौओं के समान वाणियां और भूमियां (सारघेण मध्वा) मधु के समान मधुर दुग्ध, अन्न और ज्ञान से (सम्पृक्ताः) युक्त हैं। तू (तूयम्) शीघ्र ही (आ इहि) आ प्राप्त हो और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ पिब) आदर पूर्वक ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

अश्वी र॒थी सु॑रू॒प इद्गोमाँ॒ इदि॑न्द्र ते॒ सखा॑।
श्वा॒त्रभा॑जा॒ वय॑सा सचते॒ सदा॑ च॒न्द्रो या॑ति स॒भामुप॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! (ते) तेरा (सखा) मित्र (अश्वी) अश्वों का स्वामी, (रथी) रथों का स्वामी (सु-रूपः) उत्तम रूपवान् (गोमान्) उत्तम इन्द्रियों, वाणियों, भूमियों का स्वामी (इद्) ही हो जाता है। वह (श्वात्र-भाजा वयसा) धनादि से समृद्ध अन्न बल आयु से (सदा सचते) सदा युक्त होता और (चन्द्र) सबको सुखी करने वाला होकर (सभाम् उप याति) सभा को प्राप्त होता है। वह सभापति वा सभासद् बनता है। प्रभु का मित्र जीव, भक्त, उत्तम मन, देह, रूप वाणी आदि से युक्त होता और सुगन्द ऐश्वर्ययुक्त ज्ञान से सम्पन्न होता और आह्लादयुक्त होकर 'सभाम' प्रभु के समान शुद्ध कान्ति को प्राप्त करता है।

ऋश्यो॒ न तृष्य॑न्नव॒पान॒मा ग॑हि॒ पिबा॒ सोमं॒ वशाँ॒ अनु॑।
नि॒मेघ॑मानो मघवन्दि॒वेदि॑व॒ ओजि॑ष्ठं दधिषे॒ सहः॑ ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम पूजित धनों के स्वामिन् ! (तृष्यन् ऋष्यः न) पियासा मृग जिस प्रकार (अवपानम् आगच्छति) जलाशय या घाट को प्राप्त होता और (वशान् अनु पिबति) यथेच्छ पान करता है उसी प्रकार तू भी (ऋष्यः) दर्शनीय एवं महान् (तृष्यन्) अर्थ-ऐश्वर्य के लिये तृष्णायुक्त (न) के समान होकर (अव-पानम्) अपने अधीन पालन करने योग्य राष्ट्र को (आ गहि) प्राप्त कर । (वशान् अनु) अपनी अभिलाषाओं के वा अपने इष्ट अधीन जनों के अनुकूल (सोमं) राष्ट्रैश्वर्य का (पिब) पालन और उपभोग कर । तू (दिवे-दिवे) दिनो दिन (नि-मेघमानः) नियम से प्रजा पर सुखों का वर्षण करता हुआ मेघवत् उदार होकर (ओजिष्ठं सहः) अति पराक्रम युक्त, शत्रुपराजयकारी सैन्य बल को (दधिषे) धारण कर ।

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के 'ध्वर' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि को न चाहने वाले सेनापते ! (त्वं) तू (द्रवय) शत्रु को दूर भगा वा प्रजापालनार्थ नहरादि को वहा । क्योंकि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सोमं) राष्ट्र को (पिपासति) पालन करना चाहता है । वह (नूनं) निश्चय से (वृषणा हरी) बलवान् अश्वों को (उप युयुजे) रथ में जोडता है और वह (वृषणा हरी) बलवान्, वीर्यवान् स्त्री पुरुषों का (उप युयुजे) परस्पर सम्बन्ध करे और उनका राष्ट्र के कार्य मे उपयोग करे और इस प्रकार वह (वृत्रहा) बढते शत्रु तथा विघ्नों को नाश करता हुआ (आजगाम च) आवे और आगे बढे ।

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन् ! (यत्र) जिस राष्ट्र वा उच्चपद में (सोमस्य)

तू ऐश्वर्य से (तृम्पसि) तृप्त होता है (सः) वह राष्ट्रवासी प्रजाजन (दाशुरिः) कर आदि देने वाला होकर (स्वयं चित्) अपने आप ही (मन्यते) सब राष्ट्र कार्य को समझता है। (ते) तेरे लिये (इदं) यह समस्त (अन्नं) अन्न (युज्यं) और सहयोगी बल (सम्-उक्षितम्) अच्छी प्रकार सींचा जावे। (तस्य) उसको तू (आ इहि) प्राप्त कर और (प्र द्रव) अन्नादि के लिये जल धाराएं प्रद्रवित कर, नहरें चला और (प्र द्रव) वेग से शत्रु पर आक्रमण कर। और (पिब) राष्ट्र का पालन और उपभोग कर।

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजाओं के विनाश को न चाहने वाले राष्ट्र के उत्तम पुरुषो ! आप लोग (रथेष्ठाय इन्द्राय) रथ पर स्थित शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य (सोतन) उत्पन्न करो। उसे अभिषेक द्वारा ऐश्वर्य का स्वामी बनाओ। (ब्रध्नस्य अधि) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार (दाशु-अध्वरम् सुन्वन्तः) वृष्टि अन्नादि देने वाले सूर्य के जीवनप्रद जलप्रदान रूप यज्ञ को देते हुए (अद्रयः) मेघगण (वि चक्षते) दिखाई देते हैं उसी प्रकार (ब्रध्नस्य अधि) मूल आधार राष्ट्र के ऊपर (दाशु-अध्वरम्) ऐश्वर्यप्रद राजा के प्रजापालक यज्ञ को (सुन्वन्तः) करते हुए (अद्रयः) शस्त्र-बल के अध्यक्ष जन (वि चक्षते) विविध प्रकार से दीखें, वा विशेष २ आज्ञाएं करें।

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वावाता वृषणा हरी ब्रध्नं इन्द्रम् उप वक्षतः) वेग से जाने वाले वृष्टिकारक वायु और मेघ आकाश में 'इन्द्र' विद्युत् को अपने में धारण करते हैं और जिस प्रकार (ब्रध्नं वृषणा हरी

वावाता अध्नं इन्द्रम् सु उप वक्षतः) बलवान् वेगवान् दो अश्व प्रबन्ध-कुशल ऐश्वर्य पति राजा को नाना राष्ट्र कार्यों मे दूर २ तक ढो ले जाते है उसी प्रकार (अध्नं इन्द्रम्) राष्ट्र के उत्तम प्रबन्धक, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (वावाता) वायुवत् वेग से जाने और शत्रु का नाश करने मे समर्थ (वृषणा) बलवान्, मेघवत् उदार (हरी) दोनो विद्वानो के वर्ग (अप-सु) राष्ट्र के नाना कार्यों मे (उप वक्षतः) धारण करे वा समीप जाकर अपने उत्तम वचन कहा करें। हे इन्द्र ऐश्वर्यवन्! (अर्वाञ्चं) शत्रुनाशक सैन्य गण से युक्त (त्वा) तुझ को (अध्वर-श्रियः ससयः) शत्रुओ से न पराजित होने वालो की शोभा को धारण करने वाले वा युद्ध यज्ञ की शोभा धारण करने वाले, वेग से जाने वाले वीरगण (सवना इत् उप वहन्तु) नाना ऐश्वर्य अधिकार तुझे प्राप्त करावें।

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम्।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥३२॥

भा०—हम (युज्याय) मित्रभाव के लिये वा उत्तम पद पर नियुक्त करने के लिये (पूषणं) पोषक (पुरु-वसु) बहुत से ऐश्वर्य और राष्ट्र मे बसे जनों के स्वामी को (वृणीमहे) वरण करें। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हे (पुरु-हूत) बहुत से मनुष्यों से स्वीकृत! हे (वि-मोचन) दुःखों और बन्धनों से छुडाने हारे! (सः) वह तू (नः) हमें (तुजे) शत्रु के नाश करने और प्रजा को शरण देने तथा (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि करने के लिये (धिया) बुद्धिपूर्वक (शिक्ष) शक्त बना, उत्तम शिक्षा दे।

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्त्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥ १६ ॥

भा०—(भुरिजो इव क्षुरम्) दोनों बाहुओ मे पकड़ कर जिस प्रकार छुरे को तेज करते हैं उस प्रकार हे राजन्! हे (विमोचन) कष्टों

और बन्धनों से छुड़ाने हारे ! तू (भुरिजोः) दोनों पालनशील बाहुओं मे सुरक्षित कर (नः) हमे (सं शिशीहि) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर, उत्तम रूप से शासित और प्रखर शक्ति वाला बना । और (रायः रास्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर । (त्वं) तू (यं) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य वर्ग को या शत्रु को मारने वाले सैन्य को (हिनोषि) अपने अधीन सञ्चालित करता है, हे राजन् ! (त्वे) तेरे अधीन (नः) हमारा (उस्त्रियं) गवादि पशुसम्पदा से युक्त, (तत् वसु) वही राष्ट्र मे बसा धन (सुवेदम्) सुख से प्राप्त करने योग्य, सर्वोत्तम है । राजा के शस्त्र-बल और प्रजाजन ही सर्वोत्तम धन है । वह स्वर्णादिक को प्रजा से उत्तम न समझे, न उसके लिये प्रजा का नाश करे ।

वेमि॑ त्वा पूषन्नृञ्जसे॒ वेमि॒ स्तोत॑व आघृणे ।

न तस्य॑ वेम्यर॑णं॒ हि तद्व॑सो स्तु॒षे प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करनेहारे ! (ऋञ्जसे) उत्तम रीति मे कार्य करने के लिये मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझे (वेमि) चाहता हूं । हे (आ-घृणे) सब ओर से प्रदीप्त, सूर्यवत् तेजस्विन् ! (स्तोतवे) स्तुति करने के लिये भी (त्वा वेमि) तुझे ही चाहता हूं । हे (वसो) सबको बसाने और सब मे बसने वाले प्रभो ! (अरणं हि तत्) क्योंकि वह रमणीय या सुखजनक नहीं है इसलिये (तस्य न वेमि) उसको मैं चाहना भी न करूं । (पज्राय) विद्वान् (साम्ने) सबके लिये समान रूप से आदर योग्य, सबके प्रति समान व्यवहार करने वाले श्रेष्ठ पुरुष को मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं ।

'साम'—साम्ना समानयन्, तस्मात्साम्नः सामत्वम् । तै० २।७।८।१॥ समेत्य साम प्राजनतान् तस्मात्साम्नः सामत्वम् । जै० उ० १।५१।२॥ सम् अस् सयन्ति तस्मात्साम । जै० उ० १।३३।६।७॥ समा उ ह वा अस्मिन् छन्दांसि साम्यात् ॥ सा० १।१।५॥ तद् यदेष सर्वैं लोकैः समस्तस्मादेष

एव साम ॥ जै० ३०१।१२।५॥ साम इति छन्दोगाः उपासते । एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम् । श० १०।५।२।२०॥ यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते सः सामन् भवति । असामान्य इति ह निन्दन्ति । ऐ० ३।२३॥ तद्यत् सा च अमश्च तत्साम अभवत् ॥ जै० ३०१।५३।५॥ यद्वै तत्सा च अमश्च समवदतां तत्साम अभवत् । गो० उ० ३।२०॥

(१) जिसे सब आदर से मिलकर लावे (२) सब मिलकर बनावें या करें, (३) सब मिलकर चले, (४) जिसमे या जिसके अधीन सब समान हो, (५) जो सबके बराबर हो, जिसमे सब समान हो, (६) जो सबसे श्रेष्ठ हो, (७) वह प्रजा और उसका सहवर्त्ती राजा दोनों मिलकर संवाद करते है वह 'साम' है ।

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान ! तेजस्विन् ! हे अमर्त्य ! साधारण मनुष्यो मे विशेष ! (कच्चित्) जब कभी भी (गाव) गौवें (यवसम्) चारे का लक्ष्य कर (परा) दूर भी हों तो भी (रेक्ण) वह धन (नित्यं) स्थिर बना रहे, उसे कोई न हरे । हे (पूषन्) पोषक स्वामिन् ! तू (अस्माकम् अविता) हमारा रक्षक और (शिव) कल्याणकारक (भव) हो । और तू (वाजसातये) ऐश्वर्य के संविभाग बल को प्राप्त करने के लिये (मंहिष्ठ) अति दानशील और सर्वपूज्य (भव) हो ।

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

भा०—(दिविष्टिषु) उत्तम दान देने और उत्तम इच्छाओं, अभिलाषाओं वाले (रातिषु) दानशील, (तुर्वशेषु) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्यों के ऊपर (कुरुंगस्य) कर्म करने वाले सनम्र जीवों को

और बन्धनों से छुड़ाने हारे ! तू (भुरिजोः) दोनो पालनशील बाहुओ मे सुरक्षित कर (नः) हमे (सं शिशीहि) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर, उत्तम रूप से शासित और प्रखर शक्ति वाला बना । और (रायः रास्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर । (त्वं) तू (यं) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य वर्ग को या शत्रु को मारने वाले सैन्य को (हिनोषि) अपने अधीन सञ्चालित करता है, हे राजन् ! (त्वे) तेरे अधीन (नः) हमारा (उस्त्रियं) गवादि पशुसम्पदा से युक्त, (तत् वसु) वही राष्ट्र मे बसा धन (सुवेदम्) सुख से प्राप्त करने योग्य, सर्वोत्तम है । राजा के शस्त्र-बल और प्रजाजन ही सर्वोत्तम धन है । वह स्वर्णादिक को प्रजा से उत्तम न समझे, न उसके लिये प्रजा का नाश करे ।

वेमि॑ त्वा पूषन्नृ॒ञ्जसे॑ वेमि॒ स्तोत॑व आघृणे ।
न तस्य॑ वेम्यर॑णं॒ हि तद्व॑सो स्तु॒षे प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करनेहारे ! (ऋञ्जसे) उत्तम रीति से कार्य करने के लिये मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझे (वेमि) चाहता हूं । हे (आ-घृणे) सब ओर से प्रदीप्त, सूर्यवत् तेजस्विन् ! (स्तोतवे) स्तुति करने के लिये भी (त्वा वेमि) तुझे ही चाहता हूं । हे (वसो) सबको बसाने और सब मे बसने वाले प्रभो ! (अरणं हि तत्) क्योंकि वह रमणीय या सुखजनक नहीं है इसलिये (तस्य न वेमि) उसकी मैं चाहना भी न करूं । (पज्राय) विद्वान् (साम्ने) सबके लिये समान रूप से आदर योग्य, सबके प्रति समान व्यवहार करने वाले श्रेष्ठ पुरुष की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं ।

'साम'—साम्ना समानयन्, तत्साम्नः सामत्वम् । तै० २।२।८।७॥ समेत्य साम प्राजनताम् तत्साम्नः सामत्वम् । जै० उ० १।५१।२॥ तद् यत् सयन्ति तस्मात्साम । जै० उ० १।३३।६।७॥ समा उ ह वा अस्मिन् छन्दांसि साम्यात् ॥ सा० १।१।५॥ तद् यदेष सर्वैः लोकैः समस्तस्मादेष

एव साम ॥ जै० ३०।१२।५॥ साम इति छन्दोगाः उपासते। एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम्। श० १०।४।२।२०॥ यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते सः सामन् भवति। असामान्य इति ह निन्दन्ति।ऐ० ३।२३॥ तद्यत् सा च अमश्च तत्साम अभवत् ॥ जै० ३०।५३।५॥ यद्वै तत्सा च अमश्च समवदतां तत्साम अभवत्। गो० उ० ३।२०॥

(१) जिसे सब आदर से मिलकर लावे (२) सब मिलकर बनावें या करें, (३) सब मिलकर चलें, (४) जिसमे या जिसके अधीन सब समान हों, (५) जो सबके बराबर हो, जिसमे सब समान हो, (६) जो सबसे श्रेष्ठ हो, (७) वह प्रजा और उसका सहवर्त्ती राजा दोनों मिलकर संवाद करते है वह 'साम' है।

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान! तेजस्विन्! हे अमर्त्य! साधारण मनुष्यों मे विशेष! (कच्चित्) जब कभी भी (गाव) गौवें (यवसम्) चारे का लक्ष्य कर (परा) दूर भी हों तो भी (रेक्णः) वह धन (नित्यं) स्थिर बना रहे, उसे कोई न हरे। हे (पूषन्) पोषक स्वामिन्! तू (अस्माकम् अविता) हमारा रक्षक और (शिवः) कल्याणकारक (भव) हो। और तू (वाजसातये) ऐश्वर्य के सविभाग बल को प्राप्त करने के लिये (महिष्ठ) अति दानशील और सर्वपूज्य (भव) हो।

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

भा०—(दिविष्टिषु) उत्तम दान देने और उत्तम इच्छाओं, अभिलाषाओं वाले (रातिषु) दानशील, (तुर्वशेषु) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्यों के ऊपर (कुरुंगस्य) कर्म करने वाले समस्त जीवों को

भी प्राप्त उनमे भी व्यापक (राज्ञः) दीप्तियुक्त, स्वयंप्रकाश, (त्वेपस्य) कान्तिमान् , तीक्ष्ण, (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शताश्वं) अश्वों सूर्यादि से, वा भोक्ता जीवों से सम्पन्न (स्थूरं राधः) बड़े भारी ऐश्वर्य को देखकर हम (अमन्महि) उसका मनन करें, मान आदर करे ।

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

भा०—(वाजिनः) ऐश्वर्यवान् (काण्वस्य) विद्वान् राजा के (गवां) वेग से जाने वाले अश्वो के (षष्टिं सहस्रा) ६०००० साठ २ हजार के (यूथानि) समूह (अभि-द्युभिः) तेजस्वी (प्रिय-मेधैः) यज्ञ के प्रिय, विद्वानो, शत्रुहिंसन के प्रिय (धीभिः) बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा (सातानि) अच्छी प्रकार विभक्त हों । उनको (ऋषिः) उत्तम द्रष्टा निरीक्षक पुरुष (अनु निर् अजे) प्रति दिन पूरी तरह से सञ्चालित करे । (२) इसी प्रकार (वाजिनः कण्वस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और बलशाली मेधवान् प्रभु की (निर्मजाम् गवां षष्टिं सहस्रा यूथानि) अति शुद्ध गौ, अर्थात् वाणियों के ६० हज़ार के समूह (अभि-द्युभिः प्रियमेधैः) सब प्रकार से ज्ञान-प्रकाशों से युक्त यज्ञप्रिय विद्वानों द्वारा (सातानि) विभक्त किये जावें । और उनको (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि वा उत्तम शिष्य (अनु निर् अजे) अनुकूल रूप से पूर्ण, यथार्थ ज्ञान करे ।

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥ २१ ॥ ३३ ॥ ७ ॥

भा०—(वृक्षाः चित्) वृक्ष जिस प्रकार वायु का झकोरा लगने पर मर्मर ध्वनि करते है, वे जिस प्रकार (मेहना) वृष्टियुक्त (गां भजन्त) भूमि का सेवन करते हैं और (मेहना अश्वं भजन्त) वृष्टिकारक आशु-गामी वायु का सेवन करते है उसी प्रकार (मे) मुझ स्वामी को (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (वृक्षाः चित्) भूमि को वश करके बैठे हुए भूपति

लोग भी (अराणुः) हर्षध्वनि करते है । वे (गां) उत्तम भूमि को (भजन्त) प्राप्त करते तथा (मेहना अश्वं भजन्त) उत्तम अश्वादि सैन्य को प्राप्त करते है । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः । इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः

[५]

ब्रह्मातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—३७ अश्विनौ । ३७—३९ चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ५, ११, १२, १४, १८, २१, २२, २९, ३२, ३३, निचृद् गायत्री । २—४, ६—१०, १५—१७, १९, २०, २४, २५, २७, २८, ३०, ३४, ३६ गायत्री । १३, २३, ३१, ३५ विराट् गायत्री । १३, २६ आर्ची स्वराड् गायत्री । ३७, ३८ निचृद् बृहती । ३९ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ एकोनचत्वारिंशदृच सूक्तम् ॥

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् ।
वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण, कान्तियुक्त रूप वाली उषा (दूरात् सती) दूर रहकर भी (इह एव) यहां ही, समीप विद्यमान के समान ही (अशिश्वितत्) जगत् भर को श्वेत कर देती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं) कान्ति को (वि अतनत्) विस्तारित करती है उसी प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त, स्वस्थ नवयुवति (दूरात् सती) दूर देश में रहती हुई भी, सती सच्चरित्र स्त्री (इह एव) जैसे यहां हो ऐसे गृहवत् ही (अशिश्वितत्) अपने चरित्र से जगत् को शुभ्र कर देती है और (विश्वधा) सब प्रकार से (भानुं वि अतनत्) अपनी कीर्त्ति दीप्ति को फैलाती है ।

> प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तय ।
> स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ मनु० ९।२६॥

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।
सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय वा दुष्टों वा शरीरस्थ दोषों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो ! मुख्य नायको, प्राण उदानवत् हे (अश्विना) दो अश्वों पर चढ़े नायकों के समान अश्वो, इन्द्रियो और मन के स्वामी जितेन्द्रिय, जितमनस्क जनो ! (नृवत्) दो नायको के समान आप दोनो (मनः-युजा) मन रूप सारथि या अश्व की शक्ति से युक्त (पृथु-पाजसा) अधिक बलशाली (रथेन) दृढ़ रथदेह से युक्त होकर (उषसम् सचेथे) अपने चाहने वाले को प्राप्त होओ । (२) दो वीर नायक शत्रुपीड़क सेना को प्राप्त करें । (३) प्राण उदान मनोयोग युक्त रथ अर्थात् व्यापार से अर्थात् योगाभ्यासवश विशोका रूप उषा को प्राप्त करावें ।

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोभा अदृक्षत ।
वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न बल और ऐश्वर्य से युक्त प्रजा, सेना भूमि और यागादि क्रिया से उत्पन्न धन के स्वामी स्त्रीपुरुषो ! (युवाभ्या) आप दोनो के लिये (स्तोभाः) उत्तम स्तुतिवचन (प्रति अदृक्षत) प्रत्येक कार्य में दीखें । (यथा दूत.) दूत के समान मै (वाचं ओहिषे) वाणी को धारण करता हूं ।

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष दोनो (पुरुप्रिया) बहुत को प्रिय, (पुरुमन्द्रा) बहुतों को प्रसन्न करने वाले और (पुरूवसू) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये

हों। उन दोनों को (कण्वासः) विद्वान् उपदेष्टा लोग (स्तुषे) उपदेश करने के लिये हो।

मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती।
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (महिष्ठा) अति पूज्य (वाज-सातमा) ज्ञान, अन्न बल के देने वालो मे उत्तम (इषयन्ता) उत्तम अन्न की कामना करने वाले (शुभः पती) उत्तम कल्याण कर्म और शुद्ध जल को पालन वा पान करने वाले स्वयं पति पत्नी (दाशुषः गृहम्) ज्ञानादि देने वाले के गृह को (गन्तारा) जाने वाले होओ। इति प्रथमो वर्गः॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम्।
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनो उत्तम विद्वान् और उत्तम विजिगीषु वा विद्यादि के अभिलाषी शिष्यो के स्वामी (दाशुषे) ज्ञानदाता गुरु, आचार्य वा धनप्रद स्वामी की (सु-मेधाम्) उत्तम बुद्धियुक्त (अवितारिणीम्) विनाश न होने देने वाली (गव्यूतिम्) वाणियों के सम्मिश्रण होने की यज्ञ क्रिया वा नीति को गोचर भूमि के समान ही (घृतैः उक्षतम्) स्नेह और घृतादि पवित्र पदार्थों वा (घृतै) जलो से सींचो, बढाओ, उन्नत करो।

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः।
यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वो और इन्द्रियों के स्वामी जनो ! आप दोनो (नः) हमारे (द्रवत् तूयम्) शीघ्र शीघ्र ही (नः) हमारे (स्तोमम् उप) स्तुत्य उपदेश को प्राप्त करने के लिये (श्येनेभि) उत्तम गति वाले सदाचारी, (आशुभि) शीघ्रगामी और (अश्वेभि) अश्वोवत् प्राण वृत्तियो से (उप यातम्) प्राप्त होओ।

असमे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा रथी सारथिवत् राजा और सचिव जनो ! आप दोनों (असमे) हमारे लिये (शतवन्तं) सौ और (सहस्रिणं) हजार संख्यायुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (आवहतम्) प्राप्त कराओ । वह ऐश्वर्य (पुरु-क्षुं) बहुतो को अन्न देने और बसाने मे समर्थ और (विश्व-धायसम्) सबका पालक पोषक हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्भिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (नरौ) नायक जनो ! अमात्य राजा वा स्त्री पुरुषो (मनीषिणः) मनस्वी ज्ञानी लोग (वां) आप दोनो को (पुरुत्र चित् हि बहुत से कार्यों मे (वि-ह्वयन्ते) विशेष रूप से आदर पूर्वक बुलावे । आप दोनों (वाघद्भिः) भार वहन करने मे समर्थ अश्वो के समान क्षमता युक्त विद्वान् पुरुषो सहित (आ गतम्) आओ ।

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा और अमात्य, सेना-सभा के अध्यक्ष जनो ! (युवां) आप दोनो को (वृक्त-बर्हिषः) जैसे कुशा को काट लाने वाले यज्ञशील पुरुषो के समान (वृक्त-बर्हिषः) आगे बढ़ते शत्रुओं को काट गिराने वाले (हविष्मन्तः) अन्नादि उत्तम समृद्धिमान् (अरंकृतः) अत्यन्त उद्योग से कार्य करने वाले, कर्मण्य जन (हवन्ते) बुलाते है वा तुम को अपना प्रधान स्वीकार करते है ।

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्य, राष्ट्र और विद्यादि मे नि[illegible]

विद्वानो के स्वामी जनो ! (अस्माकम्) हमारा (अयं) यह (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके किया (स्तोमः) स्तुति योग्य उपदेश वचन एवं व्यवहार (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (अन्तमः) अति समीप और (वाहिष्ठः) अति सुख प्राप्त कराने वाला और रथ के समान जीवन को सुख से यापन करा देने वाला (भूतु) हो ।

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे ।
ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत्, जितेन्द्रिय, विद्यावान् एवं अश्वों, राष्ट्रादि के स्वामी जनो ! जिस प्रकार (रथचर्षणे आहितः दृतिः) रथ को खैंचने के स्थान पर जल की मशक लटकी रहती है और रथस्थ पुरुष (मधुनः पिबतः) जल का पान और अन्न का भोजन करते है उसी प्रकार (रथ-चर्षणे) रमण योग्य गृहस्थ वा राष्ट्र कार्य के उठाने के समय भी (वां) आप दोनों के लिये (मधुनः) मधुर अन्न, जल तथा ऐश्वर्य का (यः) जो (दृतिः) पात्र (आहितः) आदर पूर्वक प्रस्तुत किया जावे (ततः) उससे (पिबतम्) जल अन्नादि का अवश्य उपभोग करो । अथवा—(यः मधुनः) जो 'मधु' अर्थात् शत्रु का दमन या पीड़क करने में समर्थ (दृतिः) शत्रु को काट गिराने मे समर्थ शस्त्रास्त्र सैन्य (आहितः) राष्ट्र के सब ओर स्थापित हो (ततः) उसके बल पर (पिबतम्) राष्ट्र का पालन और उपभोग करो ।

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।
वहतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाजिनी' अर्थात् ज्ञानयुक्त बुद्धि, बल युक्त सेना और ऐश्वर्य युक्त समृद्धि, भूमि आदि के ऐश्वर्य के स्वामी ! आप दोनों (तेन) उस पूर्वोक्त मधु से पूर्ण पात्र वा शत्रुकर्षक बल से (नः) हमारे (पश्वे) पशुओं की रक्षा (तोकाय) सन्तानों के पालन

और बलों की रक्षा के लिये (सोभरिम्) उत्तम रीति से उनके पालक की रक्षा करो।

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥ २७ ॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् शासकों को राष्ट्र में बसाने वाले वा उनको अपना धन समझने वाले प्रधान पुरुषो ! (गृणन्तः) आप दोनों के प्रति उपदेश करते हुए हम प्रजाजन (वाम्) आप दोनों के (एतावत्) इतना (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य वा (अतो वा भूयः) इससे भी अधिक की (ईमहे) याचना करते हैं।

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (अश्विना) 'अश्व' अर्थात् वेग से जाने वाले रथ विमान विद्युत, अग्नि, जल आदि के स्वामी, तत्सम्बन्धी कार्यकुशल विद्वान् एवं शिल्पी जनो ! पुरुषो ! आप दोनों (हिरण्यबन्धुरम्) सुवर्ण, लोह आदि धातु से सुन्दर, कान्तियुक्त (हिरण्याभीशुम्) उत्तम लोहादि धातु से बनी रोक-थाम वाले (दिवि-स्पृशम्) आकाश और भूमि दोनों को स्पर्श करने वाले दोनों यथेच्छ जाने वाले, (रथं स्थाथः हि) रथपर विराजा करो।

हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! (वां) तुम दोनों के (ईषा) रथ के अग्र दण्ड (रभिः) दृढ और (हिरण्ययी) सुवर्णादि उत्तम धातु के बने हों और (अक्ष. हिरण्ययः) अक्ष भी लोह के दृढ बने हों। (उभा) दोनों (चक्रा) चक्र भी (हिरण्यया) लोह से बने, दृढ हों।

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम्।
उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (वाजनीवसू) बलवती सेना और अन्नसम्पदा वाली भूमि के स्वामी जनो! (तेन) इस प्रकार के पूर्वोक्त रथ से (परावतः चित्) दूर देश से भी (नः आगतम्) आप लोग हमारे पास आया करो, (इमाम्) इस (मम सु-स्तुतिम्) मेरी उत्तम स्तुति, वचन, उपदेशादि श्रवण किया करो। इति षष्ठो वर्गः॥

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना।
इषो दासीरमर्त्या॥ ३१॥

भा०—हे (अमर्त्या) असाधारण मनुष्यो! आप दोनों (पराकात्) दूर देश से प्राप्त होने वाली (इषः आ वहेथे) अन्नादि सामग्रियों को लाया करो। और (पूर्वीः) पूर्व प्राप्त अन्नों को (अश्नन्ता) भोग करते हुए (दासीः) भृत्यादि प्रजा को भी नयी अन्न सामग्री लाते रहो। उसी प्रकार (पराकात्) दूर देशों तक भी (इषः) तीव्र (दासीः वहेथे) शत्रुनाशक सेनाएं रक्खो।

आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना।
पुरुश्चन्द्रा नासत्या॥ ३२॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का आचारण न करने वाले एवं सत्य ही की व्यवस्था करने वाले (अश्विना) राष्ट्र, बल के स्वामी जनो! आप दोनों (पुरु-चन्द्रा) बहुत से प्रजावर्गों को आह्लादित करने वाले तथा बहुत से सुवर्णादि धनों के स्वामी होओ और (नः) हमें (द्युम्नैः) यशो, धनो, (श्रवोभिः) अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों और प्रशंसाओं (राया) और ऐश्वर्य सहित (न आ उप यातम्) हमारे पास आया करो।

एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः।
अच्छा स्वध्वरं जनम्॥ ३३॥

भा०—(एह) इस राष्ट्र में (प्रुषित-प्सव) स्निग्ध और उत्तम रीति

से परिपक्क भोजन करने वाले, (पर्णिनः) उत्तम रथों और वाहनों के स्वामी (वयः) पक्षिवत् शीघ्रगामी, तेजस्वी विद्वान् पुरुष घोड़ों के समान, नियुक्त होकर (वां) आप दोनों ही (सु-अध्वरं जनं) उत्तम यज्ञयुक्त प्रजावर्ग को (अच्छ आ हवन्त) भली प्रकार रथवत् धारण करें।

रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह।
न चक्रमभि बाधते ॥ ३४ ॥

भा०—(यः इषा सह वर्तते) जो अन्नादि तथा सैन्य से सम्पन्न है तुम दोनों के (अनु-गायसं) अनुगमन करने योग्य व प्रशंसनीय (रथम्) रमणीय राष्ट्र को (रथं चक्रं) रथ को चक्र के समान (चक्रं) चक्रवत् पर-सैन्य अथवा कर्मकर्तृगण (न अभि बाधते) नहीं पीड़ित करे।

हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः।
धीजवना नासत्या ॥ ३५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिका मे स्थित प्राणों के समान राष्ट्र मे विद्यमान प्रमुख स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (धी-जवना) कर्म और बुद्धि मे तीव्र वेग से युक्त होकर (द्रवत् पाणिभिः अश्वैः रथेन) वेगयुक्त चरणों वाले अश्वों से युक्त रथ के समान ही (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः) शीघ्र कर्मकारी, कुशल, सिद्ध हस्त विद्वानों से सुसज्जित (हिरण्येन रथेन) सुवर्णादि से सन्नद्ध उत्तम राष्ट्र सहित हमें प्राप्त होओ। इति सप्तमो वर्गः ॥

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू।
ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों को धनवत् पालन करने वाले राजा सचिव जनो ! (युवं) आप दोनों (मृगं) सिंहवत् बलवान, (जागृवांसं) जागरणशील, सदा सावधान, पुरुष को (स्वदथः) उत्तम ऐश्वर्य तथा उत्तम पुष्टिकारक भोजन प्रदान करो। इस प्रकार वे

सेनादि के स्वामी लोग (नः) हमे (इषा) बलवती सेना सहित (रयिम् पृक्षम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ ।

ता मे॑ अश्विना सनी॒नां वि॑द्या॒तं नवा॑नाम् ।
यथा॑ चि॒च्चैद्यः॑ क॒शुः श॒तमुष्ट्रा॑नां॒ दद॑त्स॒हस्रा॒ दश॒ गोना॑म् ॥३७॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (ता)वे आप दोनों (मे) मुझ विद्वान् वा राष्ट्र के (नवानाम्) नये नये (सनीनां) योग्य ऐश्वर्यों और ज्ञानों का सदा (विद्यातम्) ज्ञान करते,जनाते वा प्राप्त कराते रहो। (यथा चित्) जिससे (चैद्यः कशुः) विद्वानों में उत्तम ज्ञानदर्शी और तेजस्वी पुरुष (उष्ट्राना) राष्ट्र मे बसने और शत्रु को दग्ध करने वाले (शतम्) सैकड़ों प्रजाओं वा वीरों तथा (गोनाम् दशसहस्रा) दस सहस्र भूमियों को भी (ददत्) प्रदान करे ।

यो मे॒ हिर॑ण्यसन्दृशो॒ दश॒ राज्ञो॒ अमं॑हत ।
अ॒ध॒स्प॒दा इच्चैद्य॑स्य कृ॒ष्टय॑श्चर्म॒म्ना अ॒भितो॒ जना॑ः ॥ ३८ ॥

भा०—(यः) जो बड़ा राजा वा प्रभु (मे) मुझे (हिरण्य-संदृशः) सुवर्ण या सूर्य के समान दीखने वाले वा हित और रमणीय तत्व ज्ञान को देखने वाले सम्यक् दर्शी (दश राज्ञः) दसों तेजस्वी, राजसभासदों को (मे) मेरे हितार्थ (अमंहत) राष्ट्र को प्रदान करता है उस (चैद्यस्य) ज्ञानी, विद्वानों में सर्वोत्तम पुरुष के (अधःपदाः) अधीन (कृष्टयः) कृषक, शत्रुपीडक जन, खड्ग और (अभितः) उसके चारों ओर (चर्मम्ना जनाः) चर्म, खड्ग आदि का अभ्यास करने वाले वीर पुरुष (इत्) अवश्य रहते हैं। (२) इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर सब विद्वान् ज्ञानी जीवों में व्यापक होने से 'चैद्य' है सब जीव कृष्ट भूमियें अन्न सम्पदादिवत् उत्पन्न होने वाले होने से 'कृष्टि', जन्म लेने से 'जन' और चर्मवेष्टित देह को बार २ लेने से वा चर्मवेष्टित देह से कर्मों और ज्ञानों का पुनः २ अभ्यास करने वाले होने से जीव 'चर्मम्न' हैं। वे उसके ही अधीन रहते हैं। वह प्रभु मुझ

जीवगण को दस हित रमणीय ज्ञानप्रद दस तेजोयुक्त प्राणों, इन्द्रियों व प्रदान करता है।

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः।
अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः॥ ३९॥ ८॥ १॥

भा०—(येन पथा) जिस मार्ग से (इमे चेदयः) ये विद्वान् जन (यन्ति) गमन करते हैं (एना पथा) उस मार्ग से (माकिः गात्) कोई जा नहीं सकता। उनका मार्ग सुगम नहीं होता। (अन्यः) दूसरा कोई (भूरिदावत्-तरः जनः) बहुत धनादि देने वाला और (सूरिः) विद्वान् भी (नः ओहते) इतना कार्य भारादि उठाने में समर्थ नहीं होता है। इत्यष्टमो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[६]

वत्सः काण्व ऋषिः॥ १—४५ इन्द्रः। ४६—४८ तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिर्देवताः॥ छन्दः—१—१३, १५—१७, १९, २५—२७, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ४२ गायत्री। १४, १८, २३, ३३, ३४, ३६, ३७, ३९—४१, ४३, ४४, ४८ निचृद् गायत्री। २० आर्ची स्वराट् गायत्री। २४, ४७ पादनिचृद् गायत्री। २१, २२, २८, ३१, ४५, ४६ आर्षी विराड् गायत्री॥

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥ १॥

भा०—(यः इन्द्रः) जो ऐश्वर्यों का देने वाला परमेश्वर (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि करने वाले मेघ के समान (इन्द्रः) अन्न जलवत् नाना उत्तम फलों का देने वाला (पर्जन्यः) सर्वोत्कृष्ट विजयी, सब सुखों रसों का दाता, वह प्रभु (ओजसा महान्) बल पराक्रम से महान् है। वह (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों और वैदिक सूक्तोपदेशों से गुरुवत् (वत्सस्य) अधीन

मे वसने वाले शिष्यवत् प्रभु में ही निवास करने वाले एवं बालकवत् प्रिय भक्त की (वावृधे) सब प्रकार से वृद्धि करता है।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो! (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय (पिप्रतः) जगत् को पूर्ण करने वाले तेरी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (यत्) जो (वह्नयः) सूर्यादि और जगत् में अग्निवत् ज्ञान प्रकाश के धारण करने वाले विद्वान् लोग (प्र भरन्त) अच्छी प्रकार प्रजा का भरण पोषण करते हैं वे ही (ऋतस्य वाहसा) सत्य ज्ञान को धारण करने से (विप्राः) सच्चे विप्र और विद्वान् हैं।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (कण्वाः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों से तथा अधिकारों, पदों से (यज्ञस्य) परस्पर मिलकर करने योग्य देवपूजा, संगतिकरण भावना, दान आदि सत्कर्मों का (साधनम्) साधक, निमित्त (अक्रत) बना लेते हैं तब वे (आयुधम्) सब संकटों को पराजित करने वाले आयुध के समान उस प्रभु को ही वे (जामि ब्रुवते) अपना बन्धु कहने लगते हैं। वे उसी को सब से बड़ा बल, सब से बड़ा अस्त्र मानते हैं। अथवा जब वे प्रभु को ही सर्वोपास्य जान लेते हैं तब वे आयुध शस्त्रादि को भी (जामि ब्रुवते) व्यर्थ बतलाया करते हैं। ईश्वर पर किया विश्वास ही उनका एकमात्र शस्त्र होता है।

सर्मस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥

भा०—(समुद्रायेव सिन्धवः) नदियें जिस प्रकार समुद्र को

प्राप्त होने के लिये (नमन्तः) उसकी ओर ही झुक जाती है उसी प्रकार (विश्वाः विशः कृष्टयः) समस्त प्रजाएं, शत्रु कर्षण करने वाली सेनाये और कृषक जन (अस्य मन्यवे) इस प्रभु के ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उसी के समक्ष (सं नमन्त) मिलकर झुकती है। (२) इसी प्रकार प्रबल राजा के (मन्यवे) क्रोध के आगे समस्त प्रजाएं झुकती है।

ओज॒स्तद॑स्य तित्विष उ॒भे यत्स॒मव॑र्तयत्।
इन्द्र॒श्चर्मे॑व॒ रोद॑सी॥ ५॥ ९॥

भा०—(इन्द्रः चर्म इव) जिस प्रकार शत्रुहन्ता वीर पुरुष रक्षा साधन ढाल और शत्रुछेदन के साधन खड्ग को (सम अवर्त्तयत्) अच्छी प्रकार चलाता है तब (अस्य ओजः तित्विषे) उसका पराक्रम खूब चमकता है, उसी प्रकार (यत्) जब (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु (चर्म इव) खड्ग ढाल के समान ही (रोदसी उभे सम् अवर्त्तयत्) प्रजा और शासक वर्ग दोनों को एक साथ संचालित करता है (तत्) तभी (अस्य) उस प्रभु का (ओजः तित्विपे) पराक्रम, बल, तेज अधिक चमकता, प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाशवत् दृष्टिगोचर होता है। इति नवमो वर्गः॥

वि चि॑द्वृ॒त्रस्य॒ दोध॑तो॒ वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा।
शिरो॑ बिभेद वृ॒ष्णिना॑॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् वा वायु (वृत्रस्य शिरः) मेघ के ऊपर के भाग को (वृष्णिना वज्रेण) वृष्टिकारी विद्युत् प्रहार से (वि विभेद) छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार वह ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रस्य) बढ़ते शत्रु के (शिरः) प्रमुख सैन्य को (वृष्णिना) बलवान्, शस्त्रादि वर्षक (वज्रेण) शत्रुनिवारक (शतपर्वणा) सैकड़ों खंड वाले वा अनेक पालन साधनों से युक्त (वज्रेण) सैन्य बल से (दोधतः वृत्रस्य) हृदय में भय, कंपकंपी पैदा करने वाले त्रासकारी शत्रुगण के (शिर वि बिभेद) शिर या प्रमुख अंग को छिन्न भिन्न करे। (२) उसी प्रकार गुरु, प्रभु

शान्ति वर्षक (शतपर्वणा) सौ पर्व, अध्याय अनुवाकादि विच्छेदो से युक्त ज्ञानमय वेद से अज्ञानकारी वृत्र का नाश करता है।

इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः।
अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हम (अग्रेषु) अग्रगण्य विद्वानो के अधीन रहकर (विपाम्) वेदवाणियों मे से (इमाः) इन (धीतयः) नाना स्तुतियों और धारण करने योग्य वाणी या कर्मों को (अभि प्र नोनुमः) साक्षात् कर अच्छी प्रकार अभ्यास करें, पढें और अन्यो के प्रति कहे। वे (अग्नेः शोचिः न) अग्नि की ज्वाला के समान (दिद्युतः) प्रकाश करने वाली हैं। 'विपा' इति वाङ्नाम।

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः।
कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (धीतयः) संकल्प वा कर्म (गुहा सतीः) बुद्धि मे विद्यमान रहकर (त्मना) आत्मा के सामर्थ्य से (प्र शोचन्त) प्रकाशित होते है उनको (कण्वा.) हम विद्वान् जन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (धारया) वाणी से (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार प्रकट करते है।

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम्।
प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के दाता! हम (तम्) उस (गोमन्तं रयिम्) गौओं से युक्त सम्पत्ति, इन्द्रियो से युक्त देह और वाणियों से युक्त ज्ञान और (अश्विनम्) अश्वो से युक्त सैन्य बल को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करे। इसी प्रकार हम (पूर्व-चित्तये) सब से पूर्व विद्यमान एवं पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के लिये (गोमत् ब्रह्म) वाणियों से युक्त ब्रह्म = वेद ज्ञान को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

अ॒हमिद्धि पि॒तुष्परि॑ मे॒धामृ॒तस्य॑ ज॒ग्रभ॑ ।
अ॒हं सूर्य॑ इवाजनि ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(अहं) मै जिज्ञासु (इत्) ही (हि) अवश्य (ऋतस्य) वेदमय सत्य ज्ञान के (पितु' मेधाम्) पितावत् पालक प्रभु वा गुरु की (मेधाम्) ज्ञानवती बुद्धि को (परि जग्रभ) प्रेमपूर्वक ग्रहण करूं। और (अहं) मै (सूर्यः इव) सूर्य के समान (अजनि) होऊं। इत्येकादशो वर्गः॥

अ॒हं प्र॒त्नेन॒ मन्म॑ना॒ गिर॑ः शुम्भामि कण्व॒वत् ।
येनेन्द्र॒ः शुष्म॒मिद्द॒धे ॥ ११ ॥

भा०—(येन) जिस ज्ञान से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुप या आत्मा (शुष्मम् इत् दधे) शत्रुशोषक बल को धारण करता है (अह) मैं भी (प्रत्नेन) पुराने, सनातन, नित्य (मन्मना) मनन योग्य वेदमय या आत्मज्ञान से (कण्ववत्) उत्तम मेधावी पुरुप के समान (गिरः शुम्भामि) अपनी वाणियो को सुशोभित करूं।

ये त्वामि॑न्द्र॒ न तु॑ष्टु॒वुरृष॑यो॒ ये च॑ तुष्टु॒वुः ।
ममेद्व॑र्धस्व॒ सुष्टु॑तः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान नाशक प्रभो! विद्वान् आचार्य (ये) जो यथार्थ ज्ञान के द्रष्टा न होकर (त्वाम् न तुष्टुवुः) तेरी स्तुति नहीं कर सकते है (च) और (ये च ऋषय' तुष्टुवु') जो ज्ञानद्रष्टा होकर स्तुति करते हैं उनसे तू (सु-स्तुत') उत्तम रीति से वर्णित और स्तुतियुक्त होकर (मम इत्) मुझे अवश्य (वर्धस्व) वढा, ज्ञान मे पूर्ण कर। ज्ञानदाता गुरुजन और ग्रहीता शिष्य जन दोनो ज्ञानदर्शी होने से ऋषि है। उनमें एक उपदेश करते है दूसरे श्रवण करते है। उनमे में चाहे शिष्यों में होऊं वा गुरुजनों मे तु उत्तम रीति से स्तुतिपात्र होकर मेरे ज्ञान की सदा वृद्धि कर।

यद॑स्य म॒न्युर॒ध्व॑नी॒द्वि वृ॒त्रं प॑र्व॒शो रु॒जन् ।
अ॒पः स॑मु॒द्रमैर॑यत् ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जब (अस्य मन्युः) सूर्य या विद्युत् का प्रखर ताप वा कोप (वृत्रं) मेघ के (पर्वशः) पोरु २ (वि रुजन्) छिन्न भिन्न करता है तब (अपः समुद्रम् ऐरयत्) जलों को वह मेघ समुद्र की तरफ प्रेरित करता है उसी प्रकार (यत्) जब (मन्युः) ज्ञानमय प्रभु वा गुरु (अस्य) इस जीव शिष्य को (वृत्रं) विस्तृत ज्ञान का (पर्वशः विरुजन्) पोरु २, गांठ २ करके छिन्न भिन्न करता हुआ (अध्वनीत्) उपदेश करता है, तब वह (अपः) जीव अपने कर्म को—लिङ्ग शरीर को उस (समुद्रम्) आनन्दमय प्रभु के प्रति (हेरयत्) सञ्चालित करे ।

नि शुष्ण॑ इन्द्र ध॒र्ण॒सिं वज्रं॑ जघन्थ॒ दस्य॑वि ।
वृषा॒ ह्यु॑ग्र शृ॒ण्वि॒षे ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) सर्व शक्तिमन् ! हे दुष्टों को भय देने हारे ! तू (वृषा हि) निश्चय से बड़ा बलवान्, सब सुखों की वर्षा करने वाला (शृण्विषे) सुना जाता है । तू ही (शुष्णे दस्यवि) प्रजाशोषक, कष्टदायी दुष्ट के ऊपर (धर्णसि वज्रं) दृढ़ वज्र का (नि जघन्थ) प्रहार कर कि वह अपने दुष्ट कर्म से वर्जित हो ।

न द्याव॒ इन्द्र॒मोज॑सा॒ नान्तरि॑क्षाणि व॒ज्रिण॑म् ।
न वि॑व्यचन्त॒ भूम॑यः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणम्) सर्व शक्तिमान् प्रभु से (न द्याव) न प्रकाशमान् सूर्य तारे, (न अन्तरिक्षाणि) न अन्तरिक्षगत वायु आदि और (न भूमय) न भूमिस्थ जल, जन्तु आदि ही (ओजसा) बल पराक्रम से (वि व्यचन्त) अधिक हैं । अथवा (न द्याव न अन्तरिक्षाणि न भूमय इन्द्रं विव्यचन्त) न सब सूर्य, न सब आकाश, न सब अन्तरिक्ष और न सब भूमियां ही उस महान् अनन्त परमेश्वर को व्याप सकते हैं ।
॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

यस्तं इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् ।
नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरी (महीः अपः) बड़ी विस्तृत व्यापक जगत् की प्रारम्भक प्रकृति की सूक्ष्म मात्राओं को (स्तभूयमानः) स्तब्ध, निष्क्रिय करता हुआ (आशयत्) सर्वत्र प्रसुप्त सा किये हुए था (तं) उसको तू (पद्यासु) अपनी गतियों वा शक्तिरूप क्रियाओ के बीच मे (नि शिश्नथः) सर्वथा नष्ट कर देता है। इस प्रकार जड प्रकृति की जड़ता ही वृत्र है जो सृष्टि के पूर्व प्रकृति को शिथिल प्रसुप्त सा बनाये रखता है। इसी प्रकार जो मेघ जलों को थामे रहता है विद्युत् वा सूर्य उसको आहत करके गतियुक्त धाराओं मे परिवर्त्तित करता है। इसी प्रकार जो शत्रु राजा की भूमियों और प्रजाओं को रोककर स्वयं सुख में सोवे उसको राजा (पद्यासु) पदाति सेनाओं के बल पर विनाश करे।

य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् ।
तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥

भा०—(यः) जो (इमे) इन (मही) बड़ी (रोदसी) आकाश भूमि (समीची) परस्पर अच्छी प्रकार मिली, दोनों स्त्री पुरुषों की श्रेणियों को भी मेघ वा रात्रि कालवत् (तमोभिः) अज्ञान-अन्धकारों से (सम् अजग्रभीत्) अच्छी प्रकार ग्रस लेता है, हे (इन्द्र) सूर्यवत् प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू (तं गुहः) उस अज्ञान, अविद्यामय दुखान्धकार को लुप्त कर, ज्ञान प्रकाश देकर सुखी कर।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः ।
ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ये यतयः) जो इन्द्रियों और मन का संयम करने वाले और (ये च भृगव) जो पापों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करने वाले या वेद वाणियों को धारण करने वाले तपस्वी और विद्वान् पुरुष

हैं वे सभी (त्वा) तेरी (तुष्टुवुः) सदा स्तुति करते है । तू उन सब की सुनता है । हे (उग्र) दुष्टो के प्रति भयंकर ! दण्डधर प्रभो ! (मम इत् हवम्) मेरी पुकार भी तु (श्रुधि) श्रवण कर ।

इमास्तं इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (इमाः पृश्नयः) ये सूर्य, अन्तरिक्ष और भूमि आदि समस्त पदार्थ गौओं के समान है । (ते) तेरे अधीन होकर (एनम्) उस (आशिरम्) भोगने योग्य (घृतं) क्षरणशील दुग्धवत् जल अन्नादि को (दुहते) प्रदान करते है । ये सब (ऋतस्य) तेज, जल, अन्न, धन और ज्ञान की (पिप्युपीः) वृद्धि भी करते है । ज्ञान की वृद्धि करने से ऋषि लोग भी 'पृश्नि' कहाते है ।

या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन् ।
परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(धर्म इव सूर्यम्) धारण करने वाला मेघमय जल वा वायु जिस प्रकार 'सूर्य' के ताप को (गर्भं करोति) अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (याः प्रस्वः) जो जगत् में उत्पन्न करने वाली शक्तिये (आसा) अपने मुख से अर्थात् मुख्य बल से, वा स्तुति द्वारा (त्वा) तुझे ही (गर्भम् अचक्रिरन्) अपने भीतर शक्ति रूप में धारण करते हैं । इसी प्रकार मादाएं वा माताएं भी जो गर्भ में धारण करती हैं वे भी सूर्यवत् तेरे ही उत्पादक बल को अपने भीतर धारण करती हैं । अन्नादि रूप में भी तेरे ही उत्पन्न किये प्राणदायक जीवन को प्रजाएं मुख से शरीर धारक रूप में ग्रहण करती हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः ।
त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल के पालक ! (कण्वाः) विद्वान् लोग

(त्वाम् इत्) तुझे लक्ष्य कर (उक्थेन) स्तुति वचन कहकर ही (वावृधुः) स्वयं वृद्धि, समृद्धि को प्राप्त करते हैं। (इन्दवः) भक्ति रस से द्रवित होने वाले (सुतासः) उत्पन्न जीव एवं भक्तजन भी पुत्रवत् (त्वाम्) तुझ पिता को प्राप्त कर स्तुति से (त्वा वावृधुः) तुझे बढाते, तेरी महिमा का गान करते और तुझे प्राप्त कर स्वयं वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः ।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी सूर्यवत् ! अनेक शक्तियों के स्वामिन् ! (उत) और (तव इत्) तेरी (प्रणीतिषु) उत्तम उत्कृष्ट नीतियों और रचनाओं में भी तेरी ही (प्रशस्तिः) उत्तम कीर्त्ति और शासन व्यवस्था विद्यमान है। तू ही (यज्ञः) सर्वोपास्य, सर्वदाता (वितन्तसाय्यः) अति विस्तृत महान्, सब से बड़ा है।

आ नं इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमंतीम् ।
उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! आत्मन् ! तू (नः) हमें (महीम्) बडी, पूज्य (इषम्) इच्छा, प्रेरणा, (गोमतीं पुरं न) गवादि सम्पदा युक्त नगरी के समान इन्द्रियों और वाणी से युक्त, पालन पोषण योग्य देह रूप पुरी को (उत) और (प्रजां) प्रजा, पुत्रादि और प्राणादि तथा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलवीर्य (आ दर्षि) प्रदान करता है। (२) राजन् ! तू हमें (महीम्) भूमि, अन्न, गवादि युक्त पुरी, प्रजा और उत्तम बल दे।

उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा ।
अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (यत्) जो (अग्रे) सबसे पहले (नाहुषीषु विक्षु) मानुषी प्रजाओं में (प्र दीदयत्) अच्छी प्रकार

प्रकाशित होता रहा (त्मन्) वह (आशु-अश्व्यम्) अति शीघ्र अश्व, मन, इन्द्रियादि को वश करने वाला मन, प्राण आदि आत्म सामर्थ्य हमें भी प्रदान कर।

अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम्।
यदिन्द्र मृळयासि नः॥ २५॥ १३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभो! राजन्! (यत्) जो तू (नः) हमे (मृडयासि) सुखी करता है वह तू (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी और प्रकाशस्वरूप होकर (उपाक-चक्षसम्) अति समीप अन्तःकरण के भीतर दर्शनीय वा गुरु द्वारा समीप रहकर उपदेश करने योग्य (व्रजं न) शरण योग्य वा गमनयोग्य मार्ग के समान ज्ञान मार्ग को (अभि तत्निषे) विस्तार करता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्र राजसि क्षितीः।
महाँ अपार ओजसा॥ २६॥

भा०—(अङ्ग इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन्! हे दुष्टों के दलन करने वाले! (यत्) जो तू स्वयं ही (तविषीयसे) बलवती सेना के समान आचरण करता है तू स्वयं (क्षितीः) सब बसी प्रजाओं पर (प्र राजसि) उत्तम राजा के समान है। सचमुच तू (ओजसा) बल पराक्रम में (महान्) बड़ा और (अपारः) अपार है, तेरा अन्त नहीं। (२) राजा स्वयं (तवी-षीयसे) सेना की कामना करता है, राजा बनता है।

तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये।
उरुज्रयसमिन्दुभिः॥ २७॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! (हविष्मती: विश:) उत्तम अन्न आदि देने और उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न प्रजाएं (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों सहित (त) उस (उरु-ज्रयसं त्वा) महान् बल पराक्रम वाले तुझ को

(उप ऊतये ब्रुवते) प्राप्त कर अपनी रक्षा के लिये तुझ से प्रार्थना करती है ।

उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत ॥ २८ ॥

भा०—(गिरीणाम् उपह्वरे) पर्वतों के समीप, उनके सुरक्षित स्थान में और (नदीनां च संगथे) नदियों के संगम स्थान मे (धिया) उत्तम कर्म और बुद्धि के योग तथा ध्यान के अभ्यास से (विप्र. अजायत) मनुष्य विद्वान् बुद्धिमान् होजाता है । उसी प्रकार विद्यार्थी जिज्ञासु (गिरीणाम् उपह्वरे) ज्ञान के उपदेष्टा गुरुजनों के समीप और (नदीनां च संगथे) ज्ञानोपदेष्टा तथा ज्ञान सम्पन्न जनों के सत्संग मे रहकर (धिया) उत्तम कर्म और बुद्धि के योग से (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् (अजा-यत) होता है ।

अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति ।
यतो विपान एजति ॥ २९ ॥

भा०—(यतः) जिस कारण से (विपानः) विशेष रूप से पालक वा व्यापक प्रभु (एजति) सब को चला रहा है, (अतः) इस कारण ही वह प्रभु (चिकित्वान्) सर्वज्ञ है और वह सूर्य के समान (उद्वत) ऊपर के लोकों को और (समुद्रम्) महा सागरवत् प्रवाह से अनादि अनन्त जगत् सर्ग को भी (अव पश्यति) अपने अधीन देखता है ।

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवा ॥ ३० । १४ ॥

भा०—(यत्) जो (ज्योतिः) तेज वा प्रकाश (दिवा) दिन के समय सूर्य के समान स्वाभाविक रूप (परः) काल और देश की सब मर्यादाओं के परे, दूर भी (इध्यते) प्रकाशित होता है (प्रत्नस्य) सनातन, नित्य (रेतस) सब के सञ्चालक, जल वा वीर्यवत् सब के उत्पादक

प्रभु की उस (वासरम्) सब को बसाने वाली ज्योति को (आत् इत्) योग साधनादि के पश्चात् योगीजन (पश्यन्ति) देखा करते हैं ।

कण्वास इन्द्र ते मृतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।
उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) महान् शक्तिमन् ! (विश्वे) समस्त (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ते मतिं) तेरे दिये ज्ञान को (ते पौंस्यं) तेरे दिये पौरुष युक्त बल, पराक्रम (उतो) और (ते वृष्ण्यम्) तेरे दिये सुखवर्षी, बलवीर्य, धन धान्यादि को भी (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं ।

इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव ।
उत प्र वर्धया मृतिम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (मे) मेरी (इमां) इस (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति प्रार्थना को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर तू (मा प्र सु अव) मुझे उत्तम रीति से, सुख से पाल, मेरी रक्षा कर, मुझे दुःखों और पापों से बचा । (उत) और (मतिम् प्र वर्धय) मेरे ज्ञान, बुद्धि की वृद्धि कर ।

उत ब्रह्मण्या वृयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।
विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥ ३३ ॥

भा०—(उत) और हे (प्रवृद्ध) सब से महान् ! हे (वज्रिवः) सर्व शक्तिमन् ! वा समस्त शक्तिमानों के भी स्वामिन् ! (वयं विप्रा) हम सब विद्वान् लोग मिलकर (तुभ्यं ब्रह्मण्या) तेरे लिये, तेरे उपदेश किये ब्रह्म, वेदोपदिष्ट ज्ञानों और धनों को (जीवसे) अपने सुखमय जीवन की वृद्धि के लिये (अतक्ष्म) करें और (वयं ब्रह्मण्या जीवसे अतक्ष्म) हम जीवन रक्षा के लिये तेरे दिये धनों और अन्नों को उत्पन्न करें ।

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः ।
इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥ ३४ ॥

भा०—(कण्वा') विद्वान् मेधावी पुरुष (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् प्रभु परमात्मा को (अभि अनूषत) लक्ष्य करके उसकी स्तुति करते हैं। (यती. आपः प्रवता न) बहती जलधाराएं जिस प्रकार स्वभावत. नीचे की ओर जाने वाले मार्ग से ही बहती है उसी प्रकार (यतीः) यमनियमों का पालन करने वाले इन्द्रिय और मन के वशीकर्त्ता (आपः) आप्तजन भी (प्रवता) उत्तम कर्म या मार्ग से (इन्द्रम् अभि अनूपत) इन्द्र, प्रभु को लक्ष्य कर उसके समक्ष झुकते है। और (मतिः) उनकी बुद्धि और वाणी भी स्वाभाविक रूप से (इन्द्रं वनन्वती) ऐश्वर्यवान प्रभु का भजन करती हुई उसकी ही स्तुति करती है।

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।
अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥ १५ ॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) जिस प्रकार नदियें समुद्र को बढाती है उसी प्रकार (उक्थानि) उत्तम वेदमन्त्र (समुद्रम्) आनन्द के सागर और (अनुत्त-मन्युम्) सर्वोपरि ज्ञान और पराक्रम से युक्त (अजरम्) जरारहित, अविनाशी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वावृधु') बढाते है, उस की महिमा का विस्तार करते है।

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।
इममिन्द्र सुतं पिब ॥ ३६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो स्वामिन् ! (हरिभ्यां परावत) दो अश्वों से जिस प्रकार कोई स्वामी अतिशीघ्र दूर देश से भी प्राप्त होता है उसी प्रकार तू (हर्यताभ्याम्) अत्यन्त कान्तियुक्त, मनोहर (हरिभ्याम्) सब दु.खों के हरने वाले चिन्मय और आनन्दमय रूपों से ज्ञानमय और क्रियामय रूपों से (परावतः) दृश्यमान जगत् की सीमा से कहीं अ

अगम्य दशा से भी (नः आयाहि) हमे प्राप्त हो, हमें प्रकट हो। और हे प्रभो ! (इमं सुतं पिब) उत्पन्न हुए इस जीव संसार को पुत्रवत् पालन कर वा ओषधि रसवत् पान कर, अपने मे एकरस करले।

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः।
हवन्ते वाजसातये ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) आत्मा को घेर कर बैठे अज्ञान और नाना दुःखजनक वासना-पुञ्जों को नाश करने मे सर्वोत्तम ! (वृक्त-बर्हिष) कुशादि को छेदन कर यज्ञ करने वालो के समान वासनामूलो को उच्छेद कर तेरी उपासना करने वाले जीवगण (वाज सातये) बल, अन्न, और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हवन्ते) तुझे ही बुलाते, तुझे उद्देश्य करके ही आहुति देते, यज्ञ करते है।

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम्।
अनु सुवानास इन्दवः ॥ ३८ ॥

भा०—(एतशं चक्रं न) जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ चक्र-जाता है उसी प्रकार (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथिवी (त्वा अनु-वर्त्ति) तेरे ही पीछे २ चल रहे हैं। वे तेरे चलाये चलते हैं। उसी प्रकार (सुवानास) ऐश्वर्यशील या उत्पन्न होने वाले (इन्दव') कान्तिमान् सूर्यादि वा जीवगण भी (त्वा अनु) तेरे ही अनुकूल तेरी व्यवस्था मे चलते हैं।

मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति।
मत्स्वा विवस्वतो मती ॥ ३९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (स्व:-नरे) सुखमय परम पद को लक्ष्य कर अपने को लेजाने वाले (उत) और (शर्यणावति) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष मे (सु मन्दस्व) अच्छी प्रकार आनन्द प्रदान कर। (विवस्वत.) विशेष रूप से तेरी परिचर्या करने वाले

पुरुष की (मती) मनन करने वाली बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द उत्पन्न कर। अथवा—हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू (स्वः-नरे) परम सुख प्राप्त कराने और (शर्यणावति) सब संकटों को दूर करने वाले परम शक्तिवान् प्रभु मे आनन्द लाभ कर। तू (विवस्वतः) विशेष रूप से समस्त संसार में बसे प्रभु की (मती) मनन करने वाली बुद्धि मे (मत्स्व) आनन्द सुख अनुभव कर उसी मे रम।

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत्।
वृत्रहा सोमपातमः ॥ ४० ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उप द्यवि वावृधानः वृषा वज्री अरोरवीत्) आकाश मे बढ़ता हुआ वर्षणशील, विद्युत्-मय मेघ गर्जता है वह (वृत्र हा) जल को प्राप्त कर (सोम-पातमः) ओषधि गण का सर्वोत्तम पालक होता है उसी प्रकार (वृषा) समस्त सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान्, समस्त संसार का प्रबन्धक, (वज्री) सर्वशक्तिमान् अज्ञान पापादि को वर्जन करने वाले ज्ञान बल से सम्पन्न, (वृत्र-हा) विघ्न और आवरणकारी अज्ञान का नाशक (सोम-पातमः) ऐश्वर्यों, जगदुत्पादक बलो और समस्त जीवों का सर्वोपरि पालक प्रभु परमेश्वर (द्यवि) तेजोमय, ज्ञानमय, स्वरूप में (उप) हृदय के अति निकट रहकर (वावृधानः) अपनी महान् महिमा को प्रकट करता हुआ (अरोरवीत्) ज्ञान का उपदेश करता है। इति षोडशो वर्गः।

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (हि) निश्चय से (ऋषिः) समस्त ज्ञानों का द्रष्टा, (पूर्वजाः) सबसे पूर्व विद्यमान रहकर सब को उत्पन्न करने वाला, (ओजसा) बल पराक्रम से (एकः ईशानः) अद्वितीय सबका ईश्वर है, तू ही (वसु) बसे समस्त जीव को (चोष्कूयसे) अपने वश करता, वा समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है।

अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः।
शतं वहन्तु हरयः॥ ४२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (अस्माकं) हम मे से (शतं हरयः) अनेक मनुष्य (वीत-पृष्ठाः) कान्तियुक्त स्वरूप वाले तेजस्वी होकर (त्वा उप) तेरी उपासना करते हुए (सुतान्) नाना ऐश्वर्यों और पुत्रों तथा (प्रय. अभि) अन्न, ज्ञान आदि (अभि वहन्तु) प्राप्त करें और अन्यों को करावे।

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम्।
कण्वा उक्थेन वावृधुः॥ ४३॥

भा०—(कण्वा) विद्वान् पुरुष (इमां) इस (पूर्व्याम्) पूर्व पुरुषो की, वा 'पूर्व' अर्थात् पूर्ण पुरुष की (मधोः घृतस्य) मधुर ज्ञान को बढ़ाने वाली, (धियं) बुद्धि और कर्म को (उक्थेन) वेदमन्त्र से (वावृधुः) बढ़ावे, उसे अधिक समृद्ध करें।

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः।
इन्द्रं सनिष्युरूतये॥ ४४॥

भा०—(विमहीनां) विशेष रूप से बड़ी शक्तियो के बीच में भी (मेधे) पवित्र यज्ञ मे (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रम् इत्) सूर्य, वायु, जल आदि उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को ही (वृणीत) उपास्य जाने। (सनिष्यु) दान देने की कामना करने वाला, पुरुष भी (ऊतये) रक्षा के लिये (इन्द्रम् इत् वृणीत) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को ही वरण करे। (२) इसी प्रकार (मर्त्यः) समस्त मनुष्य (मेधे) संग्राम के अवसर पर (विमहीनाम्) विशेष विविध भूमियो के (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् राजा को ही राज्य पद पर धरें। और (सनिष्युः) ऐश्वर्य और वेतनादि का इच्छुक जन भी (ऊतये) रक्षार्थ उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् को प्राप्त करे।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों द्वारा स्तुति करने योग्य, बहुतों से प्रार्थित, उपासित (प्रियमेधस्तुता) यज्ञ, उपासनादि के प्रेमी पुरुषों द्वारा स्तुत या उपदिष्ट (हरी) ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ दोनों (सोमपेयाय) ओषधि रसवत् तेरे ऐश्वर्यमय परमानन्द रस का पान करने के लिये (अर्वाञ्चं) अति समीप प्राप्त, साक्षात् (त्वा वक्षतः) तुझे ही अपने हृदय में धारण करते हैं। (२) युद्ध-प्रियों से प्रशंसित 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र की रक्षार्थ हे राजन्! (अर्वाञ्चं त्वा वक्षतः) घोड़ों से जाने वाले तुझ को रथ में वह करते हैं।

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे।
राधांसि याद्वानाम् ॥ ४६ ॥

भा०—(अहं) मैं (याद्वानां) मनुष्यों के (शतं सहस्रं राधांसि) सौ, और हजार भी ऐश्वर्य (तिरिन्दिरे) उस तीर्णतम, सर्वोपरि ऐश्वर्यवान्, (पर्शौ) सर्वद्रष्टा सर्वस्रष्टा, सर्वव्यापक प्रभु के बीच में ही (आददे) प्राप्त करता हूं। युवा स्यात् साधु युवाध्यायकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् स एको मानुष आनन्दः॥ ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्द। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। तैति० उप० ब्रह्मानन्द वल्ली ८ ॥

(२) इसी प्रकार (याद्वानां शतं सहस्र राधांसि) यत्नशील परिश्रमी मनुष्यों के सैकड़ों सहस्रों ऐश्वर्य (पर्शौ) परशुवत शत्रुछेदन करने में समर्थ (तिरिन्दिरे) शत्रुहन्ता राजा के अधीन ही मैं प्रजाजन प्राप्त कर सकता हूं।

तिरिन्दरः—तिरः तीर्णतमः इन्दिरः इन्द्रः। 'पर्शुः'—पशु पश्यत

रकारोपजनः । परशुः । अकारलोपः । पर्शुः स्पृशतेः । संस्पृष्टा पृष्ठदेशम् । निरु० ४ । १ । ४ ॥

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ।
ददुष्पज्राय साम्ने ॥ ४७ ॥

भा०—वह परमेश्वर (पज्राय) प्रार्थना वा ज्ञानार्जन करने वाले, (साम्ने) सब के प्रति समान बुद्धि करने वाले समदर्शी पुरुष को (अर्वतां त्रीणि शतानि) तीन सौ गतिशील वर्षों की आयु और (गोनां दशसहस्रा) वेद वाणियों के दश सहस्र मन्त्र, विद्वान् लोग (ददुः) प्रदान करते हैं।

उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्रांश्चतुर्युजो ददत् ।
श्रवसा याद्वं जनम् ॥ ४८ ॥ १७ ॥

भा०—(श्रवसा) श्रवण करने योग्य ज्ञान तथा अन्न के निमित्त (याद्वं जनम्) यत्नशील मनुष्य को (ककुहः उद् आनट्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु उन्नत करता है। और वह (चतुर्युज) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाले (उष्ट्रान्) नाना पदार्थों की कामना करने वाले लोगों को अथवा अन्तःकरण की चारों वृत्तियों का निरोध करने वाले, कर्मबीजों को ज्ञानाग्नि से दहन करने वालों को भी (दिवं ददत्) ज्ञानप्रकाश प्रदान करता हुआ (ककुह) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (श्रवसा उदानट्) ज्ञान द्वारा ही उन्नत करता है। तुर्वश चतुर्वश चतुरो धर्मार्थकाममोक्षान् कामयन्ते इति तुर्वशा मनुष्याः। त एव चतुर्युज उष्ट्राः। अथवा—चतुरः अन्तःकरणवृत्तीन् युञ्जते समादधति निरुन्धन्ति, इति चतुर्युजः। ज्ञानाग्निना कर्माणि उषन्ति दहन्ति ते उष्ट्राः। इति सप्तदशो वर्गः ॥

२२—२७, ३५, ३६ निचृद्गायत्री । १९ पादनिचृद्गायत्री । २६, ३३ आर्षी विराड् गायत्री षट्त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।
वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (मरुतः पर्वतेषु वि राजथ) वायुगण मेघों मे विशेष विद्युत् दीप्ति उत्पन्न करते है तब (विप्रः इषं अक्षरत्) रूप से विशेष जल से पूर्ण मेघ वृष्टि को (त्रिष्टुभम्) पृथिवी के प्रति सेचन करता है । इसी प्रकार हे (मरुतः) प्राणो ! (यत्) जब (विप्रः) पुरुष (त्रिष्टुभम्) तीन कालों मे (इषं) अन्न रस को (प्र अक्षरत्) अच्छी प्रकार देह मे सेचन करता है तब हे प्राणो ! तुम (पर्वतेषु) पर्व अर्थात् पोरुओ से युक्त देह के अंगों में (वि राजथ) विराजते हो । अथवा—हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (विप्रः) ज्ञान और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाला विद्वान् राजा (वः) आप लोगों की (त्रिष्टुभम् इषम्) क्षात्रबल से युक्त सेना को (प्र अक्षरत्) आगे बढाता है तब आप लोग (पर्वतेषु) पर्वतों अर्थात् पर्व पर्व, वा खण्ड २ युक्त सैन्य दलो मे विशेष रूप से सुशोभित होओ । त्रिष्टुप्—त्रिष्टुप् इन्द्रस्य वज्रः । ऐ० २ । २ । इन्द्रस्त्रिष्टुप् । श० ६ । ६ । २ । ७ ॥ इन्द्रियं वै त्रिष्टुप् । तै० २ । ३ । ९ । ८ ॥ वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । २ ॥ ओजो वा इन्द्रियं, वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । ५ ॥ उरः त्रिष्टुप् । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥ क्षत्रं वै त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ त्रिष्टुप् हि इयं पृथिवी ॥ श० २ । २ । १० ॥

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (तविषीयव यामं चिन्वन्ति) बलयुक्त वेग वान् वायुगण अपने जल संयमन करने वाले, वायु सम्बन्धी बल को [illegible] साथ लगा देते है तब (पर्वताः नि अहासत) मेघ निश्चित [illegible]

गति करते या निम्न दिशा की ओर आ झुकते हैं। उसी प्रकार (अङ्ग) हे (तविषीयवः) बलवती सेना बनाने के इच्छुक वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्) जब (शुभ्रा) शस्त्रादि से खूब सजधज कर (यामं) नियामक सैन्य बल को (अचिध्वम्) सञ्चित करलो तब (पर्वताः) नाना पर्वों, खण्डों से युक्त सैन्यबल के अध्यक्ष जन (नि अहासत) नियमपूर्वक प्रयाण करें।

उदी॑रयन्त वा॒युभि॑र्वा॒श्रास॒ः पृश्नि॑मातरः ।
धु॒क्षन्त॑ पि॒प्युषी॒मिष॑म् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नि-मातरः) प्रबल धारा वर्षण करने वाली नीहारिका से उत्पन्न (वाश्रासः) गर्जनाशील मेघ (वायुभिः इव् ईरयन्त) वायुओं के साथ उठते हैं तब वे (पिप्युषीम् इषं धुक्षन्त) अन्न वनस्पति-आदि को बढ़ाने वाली जलवृष्टि को प्रदान करते हैं। इसी प्रकार (पृश्नि-मातर) माता भूमि विद्वान् गुरुओं और विदुषी माताओं के पुत्र (वाश्रास.) उपदेष्टा पुरुष (वायुभिः) वायुवत् बलवान् प्राणों और नेता पुरुषों से युक्त होकर (उद् ईरयन्ते) ऊपर को उठते हैं तब वे (पिप्युषीम्) राष्ट्र को बढ़ाने वाली (इषम्) सेना को (धुक्षन्त) पूर्ण करते हैं। वा राष्ट्र में वृद्धिकारक बल और अन्न का दोहन करते हैं। अर्थात् प्रयाण के पूर्व अन्न और बल का सञ्चय करते हैं।

वप॑न्ति म॒रुतो॒ मिहं॒ प्र वे॑पयन्ति॒ पर्व॑तान् ।
यद्यामं॒ यान्ति॑ वा॒युभि॑ः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः यद् यामं वायुभिः यान्ति) सजल वायुएं जलरहित वायुओं के साथ आकाश मार्ग से जाते हैं तब वे (पर्वतान् प्रवेपयन्ति) मेघों को भी गति देते और (मिहं वपन्ति) वर्षा को भी बीजवपनवत् भूमि पर डालते हैं। इसी प्रकार (मरुत) प्रचण्ड वायु के समान वीर नायक गण (यत्) जब (वायुभिः) तीव्र वायुवत्

बलवान् सैनिकों के साथ (यामं) प्रयाण मार्ग मे गमन करते है तब वे (मिहं वर्षन्ति) शस्त्र वृष्टि करते है, और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ शत्रुओं को भी (प्रवेपयन्ति) खूब कंपा देते है, विचलित कर देते है। विशेष वृष्टि लाने वाली मानसून वायुएं ही वेद मे 'मरुत.' कहे गये हैं। (२) इसी प्रकार (मरुतः) मर्त्य युवा मनुष्य (यत्) जब (वायुभिः) गन्धयुक्त भूमिवत् धर्म दाराओं के साथ (यामं यन्ति) उपयम अर्थात् विवाह बन्धन को प्राप्त कर लेते है तब वे (पर्वतान्) प्रसन्न करने और पालने योग्य आदरणीय जनों को (प्रवेपयन्ति) हर्षित करते है और (मिहं वपन्ति) निषेक द्वारा उत्तम सन्तानों का वपन करते है।

नि यद्यामा॑य वो गि॒रिर्नि सिन्ध॑वो॒ विध॑र्मणे।
म॒हे शुष्मा॑य येमि॒रे ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—वृष्टि लाने वाले सजल वायुगण को (यामाय) बांधने, रोकने के लिये जिस प्रकार (गिरिः = गिरय') पर्वत या मेघ और (वि-धर्मणे) उनको विशेष रूप से धारण करने के लिये (महे शुष्माय) बडे वैद्यु तिक आदि बल उत्पन्न करने के लिये (सिन्धवः) नदियें, सागर और नहरे (नियम्यन्ते) विशेष रूप से बनायी जाती है उसी प्रकार हे (मरुत) वीरो! विद्वानो! (वः यामाय) आप लोगो के नियन्त्रण, संयम और शिक्षण के लिये (गिरयः) उपदेष्टा गुरुजन नियत किये जावे। और (विधर्मणे) विशेष रूप से आप लोगों को दृढ रखने और (महे शुष्माय) बडे आप लोगों की भारी बलवृद्धि के लिये (सिन्धव नियेमिरे) वेगवान अश्वों को भी नियम में व्यवस्थित किया जाय। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यु॒ष्माँ उ॒ नक्त॑मू॒तये॑ यु॒ष्मान्दिवा॑ हवामहे।
यु॒ष्मान्प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान और वीर पुरुषो! (नक्तम्) रात्रि के समय (ऊतये) रक्षा के लिये (युष्मान् उ हवामहे) आप लोगो से ही हम प्रार्थना

करते है। हे वीर पुरुषो ! (युष्मान्) तुम्हें हम (दिवा ऊतये हवामहे) दिन के समय रक्षा करने के लिये प्रार्थना करते है। और (अध्वरे प्रयति) यज्ञ के अवसर मे (ऊतये हवामहे) रक्षा के लिये बुलावे।

उदु त्ये अ॑रु॒णप्स॑वश्चि॒त्रा यामे॑भिरीरते।
वा॒श्रा अधि॒ ष्णुना॑ दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण, (वाश्राः) शब्द करते हुए (अरुणप्सवः) सूर्य की दीप्तियो को मानो खाजाते है, उनको अपने में विलीन कर लेते है, (चित्रा) अद्भुत रूप के होकर (यामेभिः) वायु के मार्गों से (उत ईरते) ऊपर उठकर आकाश से जाते है वे (ष्णुना अधि दिवः) पर्वत शिखर के साथ २ आकाश मे चले जाते है उसी प्रकार (त्ये मरुतः) वे विद्वान् और वीर मनुष्य भी (अरुणप्सवः) कान्तिदायक तेजोवर्धक पदार्थ का भोजन करने वाले हों, वे (चित्राः) अद्भुत कर्म करने वाले (यामेभिः) रथों से वा उत्तम नियम व्यवस्थाओ से (उत् ईरते) उठें, उन्नति करें, शत्रु पर जा चढे। वे (वाश्राः) उपदेश और गर्जन करते हुए (स्नुना) उपभोग्य ऐश्वर्य के साथ ही (दिवः अधि) भूमि पर अधिकार करे।

सृ॒जन्ति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे।
ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण (ओजसा) अपने पराक्रम से (यातवे सूर्याय) गमन करते सूर्य के (पन्थाम्) मार्ग को प्राप्त कर स्वयं (रश्मिं सृजन्ति) दीप्ति को उत्पन्न करते और (भानुभिः वि तस्थिरे) नाना विद्युत् कान्तियों से विराजते है उसी प्रकार (ते) वे वीर पुरुष भी (भानुभिः वि तस्थिरे) नाना कान्तियो से विराजे और (यातवे सूर्याय) प्रयाण करने वाले तेजस्वी पुरुष के (ओजसा) बल पराक्रम से (रश्मिम् पन्थाम् सृजन्ति) व्यापक, विस्तृत मार्ग बना देते है।

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः।
इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे (ऋभुक्षणः) बड़े बलशाली पुरुषो ! आप लोग (मे इमां गिरम्) मेरी इस वाणी को और (इमं स्तोमं) इस स्तुत्य वचन को और (मे इमं हवम्) मेरे इस ग्राह्य उपहार वेतनादि को भी (वनत) सेवन करो।

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नयः) जल वर्षण करने वाले सूर्य के रश्मि गण (वज्रिणे) वज्र अर्थात् विद्युत् से युक्त मेघ के लिये (त्रीणि सरांसि) तीनों तालावों के तुल्य भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश तीनों से (मधु दुदुह्रे) प्रभूत जल ग्रहण करते है। वे ही (उत्सं) ऊपर से बहने वाले (उद्रिणम्) जल से युक्त मेघ से (कबन्धम्) जल को भी (दुदुह्रे) प्रदान करते है। उसी प्रकार (पृश्नयः) विद्वान् जन (वज्रिणे) शक्तिशाली राष्ट्रपति के लिये (त्रीणि सरांसि मधु दुदुह्रे) तीनों लोकों से मधुर ऐश्वर्य को प्राप्त करें। और उत्तम मेघ, जलाशय तथा (उत्सं) ऊपर से बहने वाले झरने आदि से राष्ट्र के लिये (कबन्धम्) धाराबद्ध जल को भी प्राप्त करें, उससे यन्त्र, फ़ौवारे आदि चला दे। अन्नं वै देवाः पृश्नीनि वदन्ति। ताण्ड्य०। इयं वै पृश्निः। पृश्नयो ऋषयः ॥ इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे।
आ तू न उप गन्तन ॥ ११ ॥

भा०—हे (मरुतः) जलवर्षी वायु गणों के समान विद्वान् एवं वीर जनो ! हम लोग (यत् ह वः) जब भी आप लोगों को (सुम्नायन्तः) अपना सुख एवं उत्तम ज्ञान चाहते हुए (हवामहे) आदर से प्रार्थना

करे (आ तु) अनन्तर ही आप लोग (नः उप गन्तन) आप हमारे समीप प्राप्त हुआ करे। रक्षेच्छुक प्रजाजनो के लिये सिपाही जनो को तुरत जाना चाहिये।

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे।
उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥

भा०—हे (सुदानवः) शोभन दानशील एवं शत्रुओ का अच्छी प्रकार खण्डन करने वाले (रुद्राः) दुष्टो को रुलाने वाले! (ऋभुक्षणः) सत्य का विवेचन 'ऋत' उत्तम अन्न, जल का ज्ञानवत् उपभोग और पालन करने वाले वीर, विद्वान् पुरुषो! हे (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान और उत्तम चित्त वाले सदाशय पुरुषो! (यूयं हि) आप लोग अवश्य (दमे) गृह मे, शत्रुदमन के कार्य में (उत) और (मदे) समस्त प्रजाजनों को ज्ञान, अन्नादि मे तृप्त, सुखी और आनन्दित करने मे (स्थ) दत्तचित्त रहो।

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम्।
इयर्ता मरुतो दिवः ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण (मद-च्युतं) तृप्तिदायक (पुरक्षु) बहुत से अन्न युक्त (विश्व-धायसम् रयिम्) विश्व की पोषक सम्पदा (दिवः) आकाश वा अन्तरिक्ष से प्रदान करते है उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर बलवान् पुरुषो! आप लोग भी (नः) हमे (मद-च्युतम्) आनन्ददायक (पुरु-क्षुं) बहुतों के निवास योग्य (विश्व-धायसम्) समस्त प्रजाजनो का पालन पोषण करने मे समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य (दिवः) इस भूमि मे (आ इयर्त्त) प्राप्त कराओ।

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम्।
सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण (गिरीणाम् अधि) पर्वतों और मेघो के बीच से भी (शुभ्रा) शुभ्र वर्ण होकर (याम) यम अर्थात्

पवन के मार्ग का (अचिध्वम्) अवलम्बन करते या वायु मण्डल के बीच विद्यमान जल राशि का सञ्चय करते हैं, तब (सुवानैः इन्दुभिः) नये उत्पन्न होते हुए द्रवणशील जलों से (मन्दध्वे) सब को आनन्दित करते हैं। उसी प्रकार हे वीर पुरुषो ! आप लोग (गिरीणां) पर्वतों के (अधि इव) मानो ऊपर भी (यामं) यम, नियन्ता राष्ट्र पति के आदेश को ही (अचिध्वम्) ग्रहण करो। हे (मरुतः) वायुवत् प्रिय शिष्य जनो! आप लोग भी (शुभ्राः) शुद्धाचरण, तेजस्वी, रहकर (गिरीणां) उपदेष्टा गुरु-जनों के (यामं) यम-नियमादि व्रत पालन और 'यम' नियन्ता आचार्य के ज्ञानोपदेश को (अधि इव अचिध्वम्) खूब अधिकाधिक ग्रहण करो। आप लोग (सुवानैः) ऐश्वर्य वृद्धि करने वाले प्रजाजनों से वा ऐश्वर्यों से (मन्दध्वे) स्वयं प्रसन्न होओ और अन्यों को भी प्रसन्न करो।

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः।
अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (एषां) इन वीर वा विद्वान् पुरुषों में से (अदाभ्यस्य) शत्रुओं से नाश न होने वाले, (एतावतः) ऐसे ही महान् गुणवान् पुरुष से (मन्मभिः) उत्तम स्तुति युक्त वचनों से (सुम्नम् भिक्षेत) सुखप्रद धन और शुभ ज्ञान की याचना करे। निर्गुण अल्प चित्त वाले से ज्ञान, धनादि लेना न चाहे। इति विंशो वर्गः ॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः।
उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार मरुद्गण (रोदसी धमन्ति) भूमि और आकाश को शब्द से पूरित करते और फिर (वृष्टिभिः अक्षितं उत्सं) वृष्टियों द्वारा अक्षय जल या अन्न को मेघ में से दोहकर प्रदान करते हैं। उसी प्रकार (ये) जो वीर पुरुष (द्रप्सा इव) राष्ट्र के बलवीर्य रूप होकर (रोदसी) उभय पक्ष की सेनाओं को (धमन्ति) निनादित करते हैं, अथ अग्र से

प्रचण्ड रूप से आग लगाते हैं और (अनु) पश्चात् शत्रुपर (वृष्टिभिः) वाण-वर्षाओं से (उत्सम्) उठने वाले शत्रु को नाशकर स्वयं (अक्षितं) अपना अपराजित, राष्ट्र और अक्षय ऐश्वर्य (दुहन्तः) पूर्ण करते हुए शोभा दिखाते हैं ।

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः ।
उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नि-मातरः) जल सेचन अर्थात् जल वर्षण करने वाले मेघों की माता के समान उत्पादक वायुगण (स्वानेभिः वायुभिः उद् ईरते) शब्दों, प्रबल वायु वेगो से उठते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि, आचार्य वा पृथिवी रूप माता के पुत्र वीर पुरुष (स्वानेभिः) सिंह गर्जनाओं सहित (उत् ईरते) उठते हैं, (रथैः उत्) रथों से और (वायुभिः उद् उ) वायुवत् प्रबल नायकों और (स्तोमैः उत्) स्तुति-योग्य प्रशंसा-वचनों से (उत् ईरते) ऊपर उठते, उत्साहित होते और विजय करते हैं । (२) इसी प्रकार विद्वान् गण उत्तम ध्वनियों, (रथैः) उपदेशों और (स्तोमैः) वेदमन्त्र समूहों से (उद् ईरते) उन्नति प्राप्त करते हैं ।

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् ।
राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥

भा०—(येन) जिस साधन से आप लोग (तुर्वशं) शत्रु के नाशक वा हिंसकों के वशकर्त्ता वा पुरुषार्थ चतुष्टय के इच्छुक (यदुं) यत्नशील, उद्योगी मनुष्य वर्ग को और (येन) जिस उपाय से (धन-स्पृतं) धन की कामना करने वाले वैश्य वर्ग और (कण्वं) विद्वान् उपदेष्टा ब्राह्मण वर्ग की (अव) रक्षा करते हो (तस्य) उसी उपाय का हम (राये) ऐश्वर्य के लाभ के लिये (सु धीमहि) अच्छी प्रकार धारण और विचार करें ।

इसी प्रकार वृष्टि जल से चारों वर्णों के जो उपकार हो सकते है उन सब का हम सदा ध्यान रक्खें और वर्षा के जल को व्यर्थ न जाने दिया करें।

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः।
वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील एवं छेदन भेदन के कर्म मे कुशल जनो ! (वः) आप लोगो की (इमाः इष.) ये जल-वृष्टियों के समान (इषः) सेनाएं (घृतं न पिप्युषीः) जल के समान परस्पर स्नेह और राजा के तेज की वृद्धि करती हुई (काण्वस्य) विद्वान् पुरुष के (मन्मभिः) सुविचारित वचनो से (वर्धान्) वृद्धि को प्राप्त करे।

क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः।
ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार जल वृष्टि, अन्न प्रदान करने से वायुगण (सु-दानवः) उत्तम दानशील है वे (वृक्त-बर्हिषः) अन्तरिक्ष को चीर के जाने वाले होते और सब को आनन्दित करते है, उनके सम्बन्ध मे भी प्रश्न होता है कि उनको (कः ब्रह्मा) कौन महान् शक्तिशाली सञ्चालित करता है। उसी प्रकार हे (सु-दानवः) उत्तम धन, ज्ञान, यशादि के देने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वृक्त-बर्हिषः) याग के निमित्त कुशादि काट कर लाने वाले वा शत्रुओं और अन्तरात्मा से क्रोध कामादि वासनाओं को समूल उच्छिन्न कर शुद्ध पवित्र होकर आप लोग (क्व मदथ) कहां २ आनन्द लाभ करते और किस २ स्थान वा अवसर पर अन्यो को आनन्दित करते हो। (वः) आप लोगों को (कः) कौन (ब्रह्मा) महान् शक्ति वाला, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुष (सपर्यति) आप लोगों का सत्कार करता है ? इत्येकविंशो वर्ग. ॥ उत्तर—

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः।
शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृक्तबर्हिषः) यज्ञशील और शत्रुरहित वीर जनो! (पुरा) पहिले के समान ही (वः) आप लोगों के (यत् नहि स्म) जो बल नही प्राप्त हो उन (ऋतस्य) धन, अन्न और सत्य ज्ञान के (शर्धान्) नाना बलो को (स्तोमेभिः) स्तुति वचनो द्वारा (जिन्वथ) बढ़ाओ।

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम्।
सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ लाने वाले सजल वायुगण (महती अपः सं दधुः) बहुत भारी जल राशि को अच्छी प्रकार धारण करते है। (क्षोणी सं दधुः) भूमि पर उन जलों को प्रदान करते है, वा वे वृष्टि युक्त वायुगण (क्षोणी सं दधुः) इस भूमि और अन्तरिक्ष को परस्पर सुसम्बद्ध करते हैं वे ही (सूर्यम्) सूर्य की दीप्ति को (सं दधुः) धारण करते है और (वज्र) विद्युत् को भी (पर्वशः) पोरु २, खण्ड २ कर धारण करते हैं उसी प्रकार (त्ये) वे वीर पुरुष भी (महतीः अपः सम् दधुः) बहुत बड़ी प्रजाओं को धारण करें, (क्षोणी सम्) स्व और पर-राष्ट्रों को सन्धि द्वारा व्यवस्थित करें, (सूर्यं सं दधुः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा सेनापति को धारण करे, और (वज्रं पर्वशः सं दधुः) वज्र की एक २ टुकड़ी का नायक महास्त्र धारण करे वा वे स्वयं टुकड़ी २ होकर महा सैन्य बल को और अपने सन्धि २, जोड़ २ पर बल धारण करे।

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार पूर्वोक्त वायुगण (वृत्रं) जल को (पर्वशः) पोर २ पर (वि ययु) विशेष रूप से व्यापते है। वे (अराजिन) स्वयं दीप्तिरहित, श्याम (पर्वतान् वि ययु) मेघों को भी व्यापते है और (वृष्णि) वर्षणशील मेघ पर विशेष (पौंस्य विचक्राणा भवन्ति) बल पराक्रम करते हैं उसी प्रकार वे वीर लोग (वृत्रं) अपने बढ़ते या घेरने

वाले शत्रु को (पर्वशः वि ययुः) पोरु २, सन्धि २, जोड़ २ मे व्याप ले, उसके सैन्य दल मे घुस जांय (अराजिनः) राजा के विपरीत, उच्छृंखल द्रोही (पर्वतान्) पर्वतवत् अचल शत्रुओ पर भी (वि ययुः) चढ़ाई करें। और (वृष्णि) बलवान् शत्रुपर वा (घृष्णि) उत्तम बलवान् प्रबन्धक पुरुष के अधीन रहकर (पौंस्यं) बल पौरुष (चक्राणा) करते रहा करें।

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् ।
अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्रतूर्ये इन्द्रं अनु शुष्मम् क्रतुम् आवन्) मेघ के छिन्न करने के अवसर में वायुगण सूर्य के अनुकूल ही बलयुक्त कर्म को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार वीर सैन्य जन भी (वृत्र-तूर्ये) शत्रु के नाशकारी संग्राम के अवसर में (त्रितस्य युद्धयत) स्व और पर से अतिरिक्त तीसरे बलशाली से लड़ते हुए (इन्द्रम् अनु) अपने सेनापति के कथनानुसार (उत) ही (शुष्मम् क्रतुम्) बल और उद्योग कर्म को (अनु आवन्) खूब प्राप्त करते और बलवान् और क्रियावान् भाग की खूब रक्षा करते हैं।

त्रितः—तीर्णतमो मेधया बभूव। अपि वा सङ्ख्यानामैवाभिप्रेत स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवः। निरु० अ० ४। पा० १। ६॥

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! आप लोग (विद्युद् हस्ता) विद्युत् के समान विशेष चमकीले शस्त्र या आभूषण को हाथ में रक्खो और स्वयं (अभिद्यवः) कान्ति युक्त (शुभ्राः) शोभायुक्त वस्त्रालंकार धारण कर (शीर्षन्) शिर पर (हिरण्ययीः) सुवर्ण से सजी, सुनहरी, सुन्दर (शिप्राः) टोपियों या लोह आदि के बने शिर बचाने के टोपों को (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये (वि अञ्जत) विशेष रूप से प्रकट किया करें।

शिप्राः—टोपियां। इति द्वाविंशो वर्गः॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार पवन गण (परावतः) दूर विद्यमान (उक्ष्णा) जल-सेचक मेघ के (रन्ध्रम्) छिद्र भाग की ओर (उशनाः) तीव्र कान्ति-युक्त होकर जाते हैं। तब (द्यौः न भिया चक्रदत्) आकाश व पृथिवी भी भय से कांप जाती या गूंज उठती है उसी प्रकार आप लोग भी (उशनाः) राज्य-विजय की कामना करते हुए हे वीरो ! (यत्) जब (परावतः उक्ष्ण) दूर देश से बलवान् शत्रु के (रन्ध्रम्) छिद्र या मर्मस्थान को पाकर (अयातन) प्रयाण करो, उस पर चढ़ाई करो तब (द्यौः न) मानो समस्त पृथिवी और आकाश भी (भिया चक्रदत्) भय से गूंज उठे और कांप उठे ।

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।
देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (मखस्य) यज्ञ के निमित्त (दावने) दान देने के लिये (हिरण्य-पाणिभिः) हितकारी उत्तम पदार्थों को हाथ में लिये (अश्वैः) उत्तम वेगयुक्त अश्वों से हमारे (उप गन्तन) समीप आया करो । [हिरण्यपाणिभिरिति देवान् विशिनष्टि नाश्वान् ।]

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के (रथे) वेग में (पृषती) जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को (प्रष्टिः) वेगवान् वायु और (रोहितः) रक्तवर्ण सूर्य (वहति) वहन करता है तब वे भी (यान्ति) गति करते और (शुभ्राः अपः रिणन्) स्वच्छ जल पहुंचाते हैं । उसी प्रकार (एषां) इन वीरों के (रथे) रथ समुदाय में (पृषती) हृष्ट पुष्ट नाना वर्णों सेनाएं

वा नियुक्त अश्व (प्रष्टिः) शीघ्र चालक (रोहितः) सारथिवत् सेनापति वहन करे तब ये भी (शुभ्राः) शुद्ध, सुन्दर (अपः) जलधाराओंवत् सैन्यधाराओं का सञ्चालन करते हुए (यान्ति) प्रयाण करें।

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति।
ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सुषोमे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (शर्यणावति) उत्तम सेना, पोलिस आदि से सुरक्षित, (आर्जीके) धार्मिक निवासियों से बसने योग्य, धार्मिक राजा से शासित (पस्त्यावति) उत्तम प्रजा से सम्पन्न या नाना गृह भवनों से समृद्ध नगर या देश में (निचक्रया) नीचे लगे चक्रों से युक्त ट्राम आदि गाड़ियों से (ययुः) जाया आया करें। अथवा— उक्त प्रकार के देश में भी (मरुतः) वीर सैनिक (नि-चक्रया) नियमित चक्र अर्थात् सैन्यादि चक्र, व्यूह युक्त सेना से आगे बढ़ें।

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम्।
मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (इत्था) इस प्रकार (हवमानं विप्रम्) स्तुतिशील वा यज्ञकर्त्ता, विद्वान् पुरुष को (मार्डीकेभि·) सुखजनक वचनों से (नाधमानम्) प्रार्थना करते हुए (कदा गच्छाथ) कब प्राप्त होते हैं ? [उत्तर] अथवा (मार्डीकेभि नाधमानं) सुखजनक द्रव्यों से समृद्ध (हवमानं विप्रम्) दान देते हुए विविध धनों से पूर्ण मनुष्य को ही प्राप्त होते हो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन।
को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥

भा०—हे (कध-प्रियः) उत्तम कथा, स्तुति, उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाले पुरुषो! (यद् इन्द्रम् अजहातन) आप लोग शत्रुहन्ता और संशयच्छेत्ता वीर वा विद्वान् पुरुष वा प्रभु को त्यागते हो ऐसा नहीं

(कद्ध ह नूनं) क्यों कर हो सकता है ? यदि छोड़ दिया करो तो भला (वः सखित्वे) आप लोगों की मित्रता में (कः ओहते) कौन विश्वास करे।

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः।
स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (हिरण्य-वाशीभिः) लोह, सुवर्णादि के बने शस्त्रों से सजे वा हितरमणीय वाणी बोलने वाले (वज्र-हस्तैः) खड्ग और शस्त्र वर्जन करने वाले चर्म आदि हाथ में लिये उत्तम बलवीर्य सम्पन्न, (मरुद्भिः) वीरों और विद्वानों के (सह उ) सहित (अग्निम्) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष का (नः सुस्तुषे) हमारे प्रति उत्तम रीति से कथन करो।

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय।
ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥

भा०—मैं (वृष्णः) बलवान्, उदार, (प्र-यज्यून्) उत्तम दानशील (चित्र-वाजान्) अद्भुत बल और ऐश्वर्य के स्वामी जनों से (सुविताय) उत्तम धन प्राप्त करने और (नव्यसे) नये से नये धन प्राप्त करने के लिये (आ ववृत्याम्) अपने सन्मुख प्रार्थना करूं। उसी प्रकार (नव्यसे सुविताय) स्तुत्य, उत्तम चरित्र शिक्षण के लिये अद्भुत ज्ञानी पुरुषों की शरण जाकर उनसे प्रार्थना करूं।

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः।
पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार सजल वायुओं से स्पर्श पाकर (गिरयः नि जिहते) मेघ भी भारी होकर नीचे उतर आते हैं (पर्वताः चित् नि-येमिरे) पर्वत भी उनको रोक थाम करते हैं उसी प्रकार (पर्शानासः) उत्तम विद्वानों और वीरों से स्पर्श पाकर (मन्यमानाः) अभिमान युक्त (गिरयः) विद्वान् जन (नि जिहते) विनय से झुकते हैं और (पर्व-

तासः) पीड़ित होकर (पर्वताः चित्) पर्वतवत् दृढ़ अभेद्य, शत्रु जन भी (नि येमिरे) बांधे जाते हैं। वश किये जाते है।

आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः।
धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥

भा०—(अन्तरिक्षेण पततः धातारः यथा वयः वहन्ति) जिस प्रकार अन्तरिक्ष से जाते हुए सजल पवन गण विश्व के पोषक होकर अन्न वा जीवन प्राप्त कराते है उसी प्रकार (अक्ष्ण-यावानः) आख के इशारे से आगे बढ़ने वाले, और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश मार्ग से जाने वाले, (धातारः) राष्ट्र के धारक, शासक जन (स्तुवते) प्रार्थी-प्रजाजन के हितार्थ (वय. वहन्ति) बल, जीवन और अन्न धारण करते और प्राप्त कराते है।

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥ २४ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है और वह (अर्चिषा) ज्वाला से (सूरः न छन्दः) सूर्य के समान दीप्तियुक्त मनोहर होता है और नाना वायुगण (भानुभिः) विद्युत् आदि दीप्तियों से युक्त होकर (वि तस्थिरे) विविध प्रकार से चमकते रहते है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी, तेजस्वी अग्रणी नायक प्रभु (पूर्व्य जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है। वह ज्ञानदीप्ति से सूर्यवत् सब का उत्पादक और (छन्दः) रक्षक रहा। (ते) वे नाना जीवगण और सूर्य चन्द्र आदि लोक उसी के (भानुभिः) प्रकाशों मे (वि तस्थिरे) विविध प्रकारों से विविध लोकों में रहते है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८]

सध्वंसः काण्व ऋषिः। अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६, ७, ... ६, ७, ८, १०, ११, १४, १५, १८—२०, २२ निचृदनुष्टुप्। ६, १६ अनुष्टुप् ॥ ... २३ आर्षी विराडनुष्टुप्। ...

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत्, चन्द्रसूर्यवत् सब के हृदयों मे व्यापने वाले वा 'अश्व' अर्थात् शीघ्रगामी घोड़ो के समान तीव्र वेग से विषय मार्गों मे दौड़ने वाले इन्द्रियो के स्वामी जितेन्द्रिय पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और ज्ञानो तथा तृप्तिदायक उपायों, अन्नादि के सहित (नः) हमे (आगच्छतम्) प्राप्त होओ। आप दोनों (दस्रा) दुःखों और पापो का नाश करने वाले (हिरण्य-वर्त्तनी) सुसज्जित, स्वर्णादि मण्डित रथ पर आरूढ, एवं हितकारी रमणीय, उत्तम मार्ग से जाने वाले, सदाचारी होकर (सोम्यं मधु) ओषधि रस और उत्तम मधुर अन्न और जल का (पिबतम्) उपभोग करो। 'सोम' पुत्र, शिष्य, सन्तान लाभ आदि का मधुर सुख उपभोग करो ।

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवद् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सूर्य-त्वचा) सूर्य के समान कान्तियुक्त आवरण वाले, सुन्दर (रथेन) वेगवान् रथ से (नूनं आयातम्) अवश्य आया जाया करो। आप दोनों वर्ग (भुजी) नाना सुखों के भोगने और प्रजा भृत्यादि को उत्तम रीति से पालने वाले, (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण के समान उत्तम कान्तियुक्त, (कवी) उत्तम विद्वान्, दीर्घदर्शी, सम्यग्-दर्शी, (गम्भीर चेतसा) गम्भीर चित्त वाले होओ ।

आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र के स्वामी जनो ! सचिव और नृपति के तुल्य प्रधान पुरुषो ! आप दोनो (नहुषः परि) मनुष्य वर्ग से ऊपर

(अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से (सुवृक्तिभिः) उत्तम हिताचरणों और स्तुति-वाणियों सहित (आयातम्) आया करो और (कण्वानां) विद्वान् पुरुषों के (सवने) यज्ञ मे (सुतम्) तैयार किये (मधु) मधुर सोम रस, हविष्य, अन्न, यज्ञ शेष और ज्ञान आदि का (पिबाथः) पान किया करो।

आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु॥ ४॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् सम्बद्ध स्त्री पुरुषो! हे (अध प्रिया) अपने अधीन दास, भृत्य, सेवक, सहचर आदि को सदा सुप्रसन्न, तृप्त, सुखी रखने वाले एवं उनके भी प्रिय, (यद्वा अधप्रिया = कथप्रिया) उत्तम स्तुति ज्ञानोपदेश के प्रिय पुरुषो! आप दोनों (दिवः परि) भूमि-मार्ग से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ। (इह) इस स्थान में (वाम्) आप दोनों को लक्ष्य करके (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष का शिष्य, पुत्र, वा विद्वानों के दुःखो को दूर करने वाला, और बहुतों की रक्षा करने मे समर्थ पुरुष (सोम्यं मधु) विद्वान् पुरुषों के योग्य, उत्तम मधुर अन्न और ज्ञान को (सुषाव) प्रदान करता है।

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा॥ ५॥ २५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! आप लोग (स्तोमस्य) स्तुति, और उपदेश करने योग्य वेद-ज्ञान का (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा कथनोपकथन करते हुए और (धीतिभिः) अध्ययन, मनन, और सत्कर्माचरणों द्वारा उसकी (वर्धना) वृद्धि करते हुए (प्र यातम्) आगे बढ़ो और हे (कवी) विद्वानो! हे (नरा) उत्तम पुरुषो! आप दोनों (सोमपीतये) ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के पालन और

उपभोग के लिये (उप-श्रुति) उत्तम ज्ञान श्रवण करने के लिये यज्ञ, सभाभवन, गुरुगृह आदि स्थानो मे भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! (वां) आप लोगो के (अवसे) ज्ञान करने के लिये (पुरा) पहले काल मे (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियो ने (यत् चित् हि) जो कुछ भी (जुहूरे) उपदेश किया है और (इमां सुस्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति, उपदेशादि को (उप) प्राप्त करने के लिये (मम आयातम्) मेरे समीप आइये।

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

भा०—हे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! आप दोनों (दिवः चित् रोचना) सूर्य के समान प्रकाशमान, ज्ञानवान्, (रोचनात्) तेजस्वी गुरु से (स्वर्विदा) प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करके (स्तोमेभिः) वेद के सूक्तों से (हवन श्रुता) स्वयं ग्रहण करने और अन्यो को देने योग्य ज्ञान का श्रवण करके (धीभिः) उत्तम बुद्धियो और कर्मों से (वत्स-प्रचेतसा) 'वत्स' अर्थात् उपदेष्टावत् उत्तम ज्ञानी गुरु के अधीन रह, उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (अधि न गन्तम्) अनन्तर हमारे पास आओ।

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् अन्ये) हम से अतिरिक्त अन्य विद्वान् लोग भी (स्तोमेभिः) स्तुति उपदेशों सहित (किम् परि आसते) किस प्रयोजन से विराजते हैं। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय शिष्य शिष्याओ ! वे सब केवल

ज्ञानोपदेश देने के लिये ही होते है। (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् पुरुष का पुत्र वा विद्वान् मेधावी परमेश्वर के (पुत्रः = पुरु त्रायते) बहुत से ज्ञान का रक्षक (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा विद्वान् (वत्सः) अभिवादन करने योग्य एवं विद्या का उपदेष्टा होकर (गीर्भिः) वेद वाणियों से (वाम् अवीवृधत्) तुम दोनों की उन्नति करे।

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो! (इह) इस आश्रम मे (विप्रः) विद्वान् आचार्य (स्तोमेभिः) वेद के मन्त्रों, सूक्तो से (वां अवसे) आप दोनो को ज्ञान प्रदान करने के लिये (अह्वत्) आदर पूर्वक उपदेश करे और (ता) वे आप दोनों (अरिप्रा) पाप रहित और (वृत्रहन्तमा) आवरणकारी अज्ञान को को नाश करने वाले होकर (नः) हमारे लिये (मयोभुवा भूतम्) सुख शान्तिदायक होओ।

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाज' अर्थात् ज्ञान और बलशाली विद्या और वीर्यरूप धन के धनी स्त्री पुरुषो! (यत्) जब तक आप दोनों में से (योषणा) पति से प्रेम करने वाली स्त्री और स्त्री को प्रेम करने वाला पुरुष (रथम् आ अतिष्ठत्) गृहस्थ रूप रमण योग्य आश्रम में प्राप्त होते हो, तब तक हे (अश्विना) इन्द्रिय, मनरूप अश्वों के स्वामी, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो! आप दोनो (विश्वानि धीतानि = अधीतानि) समस्त अध्ययन करने योग्य विषयों को (प्र अगच्छतम्) अच्छी प्रकार ग्रहण करलो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! जब (वत्सः) विद्या का उपदेष्टा, ब्रह्मचर्यवास काल का गुरु (काव्यः) विद्वानों मे विद्वान् (कविः) स्वयं क्रान्तदर्शी आचार्य (वां) तुम दोनो को (मधुमत् वचः) मधुविद्या ब्रह्मविद्या से युक्त प्रवचन, उपदेश (अशंसीत्) कर चुके (अतः) उसके बाद आप दोनों (सहस्र-निर्णिजा) बहुत प्रकार के बने (रथेन) रथों से (आयातम्) गृह के प्रति आओ। अथवा—(सहस्र निर्णिजा रथेन) सब प्रकार से शुद्ध निष्णात एवं बलवान् दृढ़ शरीर से युक्त होकर गृहपर आओ।

पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥ १२ ॥

भा०—(पुरुमन्द्रा) बहुत से मनुष्यो को सुखी और प्रसन्न, आनन्दित करने वाले, (पुरूवसू) बहुतों को बसाने वाले, वसु, धनों ऐश्वर्यों के स्वामी, (रयीणां) नाना प्रकार के धनो के प्राप्ति, विनिमय आदि विषय में मनन या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने वाले, (वह्नी) कार्य-भार वहन करने में समर्थ, (अश्विनौ) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्व, रथ, यान आदि सञ्चालन में कुशल स्त्री-पुरुष वर्ग, (इमं मे स्तोमं) मेरे इस स्तुत्य ग्राह्य वचन को (अभि अनूषाताम्) आदरपूर्वक ग्रहण करें।

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नः) हमारे (विश्वानि) सब प्रकार के (राधांसि) धनों को आप दोनों (अह्रया) बिना सङ्कोच या लज्जा के (आ धत्तम्) सब ओर से प्राप्त कर धारण करो और हमें प्रदान करो। आप दोनो (नः) हमें (ऋत्वियावतः कृतम्) ऋतु २ में करने योग्य यज्ञ से सम्पन्न करो। (नः) हमें (निदे) निन्दक के हाथ के लिये (मा रीरधतं) अपने अधीन वश मत करो।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् मुख्य स्थान पर स्थित वा (न असत्या) परस्पर कभी असत्य व्यवहार न करने वाले, आप दोनों (यद्, चाहे जब (परावति स्थः) दूर देश मे होओ (यद् वा) और चाहे (अम्बरे अधिस्थः) समीप मे होओ हे (अश्विना) वेगवान् अश्वो के स्वामी जनो! (अतः) वहां से आप लोग (सहस्र-निर्णिजा रथेन) दृढ बल से युक्त, रूपवान्, सुदृढ़ रथ से ही (आ यातम्) आया करो ।

यो वाँ नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले, सत्य धर्म के व्यवस्थापक और नासिकावत् प्रमुख पदों पर स्थित जनो ! (यः) जो (वत्सः ऋषिः) उत्तम उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुष (वां अवीवृधत्) आप दोनों को वृद्धि प्रदान करता है (तस्मै) उसके आदरार्थ, वा रक्षार्थ आप दोनों (घृतश्चुतम् इषम्) घृतयुक्त नाना रूप अन्न के समान ही (सहस्र-निर्णिजं) बहुत रूपो का, हजारों पुरुषों से बना, (घृतश्चुतम्) तेजोयुक्त पद, (इषं) सैन्य, वा नाना प्रकार की स्नेह से युक्त इच्छा को (धत्तम) धारण करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वाँ सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (वां) तुम दोनो को (सुम्नाय) सुख, शान्ति लाभ के लिये (तुष्टवत) स्तुति या उपदेश करे, हे (दानुनः पती) दान शील जन वा दातव्य धन के पालको ! (यः) जो जो (वसूयात) आप दोनों के सुखार्थ ही अपना धन चाहे, (अस्मै) उस पूज्य पुरुष को (युवं,

तुम दोनो हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो! (घृतश्चुतं) घी, जलादि से युक्त (ऊर्जं प्रयच्छतम्) बलकारक अन्न प्रदान करो।

आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये॥ १७॥

भा०—हे (रिशादसा) हिंसको के नाशक वीर जनो! हे (पुरुभुजा) बहुतों के पालक और बहुत से ऐश्वर्यों के भोक्ता जनो! आप लोग (नः आ गन्तं) हमे प्राप्त होओ। और (नः) हमारे (स्तोमं) इस उत्तम उपदेश या स्तुत्य वचन या व्यवहार का (कृतम्) पालन करो। हे (नरा) नायक, उत्तम स्त्री पुरुषो (इमाः) ये (सु-श्रियः) उत्तम २ लक्ष्मियां (नः) हमें (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (दातम्) प्रदान करो।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु॥ १८॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् उत्तम स्त्री पुरुषो! (प्रिय-मेधाः) यज्ञ सत्संग के द्वारा अन्न, जल, वायु आदि भौतिक तत्वों के सुगन्धादि से पूर्ण करने और विद्वान् पुरुषों को अन्न, जल, वस्त्रादि से प्रसन्न करने वाले जन और (प्रिय-मेधाः) शत्रु वा दुष्ट पुरुषों की ताडना करने को अच्छा समझने वाले वीर पुरुष भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी समस्त विद्या और रक्षा साधनों, सेनाओं के सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को सब प्रकार से स्वीकार करें और आप दोनों (अध्वराणां) नाना हिंसारहित यज्ञों और सब को मार्गोपदेश करने वाले कार्यों के बीच में (याम-हूतिषु) लोगों को चलने के मार्ग तथा उत्तम यमनियमादि, नियन्त्रण व्यवस्था के उपदेश करने के कार्यों में (राजन्तौ) राजावत् चमकते हुए रहो।

आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शम्भुवा युवम्।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्॥ १९॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वत्सः उत्तम उपदेष्टा गुरु (विपन्यू) विशेष व्यवहार कुशल एवं प्रार्थी (वां आप दोनों को (धीतिभिः) उत्तम कर्मों और (गीर्भिः) उत्तम वे वाणियों द्वारा (अवीवृधत्) वृद्धि को प्राप्त कराता है उससे उपदिष्ट होकर (युवम्) आप दोनों (मयोभुवा) सुखप्रद और (शंभुवा) शान्तिदायक होकर (नः आगन्तम्) हमें प्राप्त होओ ।

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥ २८ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो, राजा रानी, सेनापति सभापति आदि जनो! आप लोग (याभिः) जिन उपायों से (कण्वं) विद्वान् (मेधातिथि) अन्नादि सत्कार और सत्संग योग्य अतिथि की रक्षा करते हो, या उनको प्राप्त होते और (याभि:) जिन उत्तम क्रियाओं से (दश व्रजम्) दशों दिशाओं में जाने वाले, और दशो मार्गों से युक्त (वशं) वश करने योग्य राष्ट्रजन या मन आदि को वश करते हो, और (याभिः) जिन सैन्यादि से (गो-शर्यम्) 'गो' अर्थात् धनुष की डोरी और 'शर' बाण इनके चलाने में कुशल सैन्य को (आवतम्) रक्षा करते हो, उन्हे प्राप्त होते हो (ताभि:) उनसे ही हे (नरा) उत्तम प्रधान नायक पुरुषो ! (नः अवतम्) हमारी रक्षा करो। (नः आ अवतम्) उन सहित हमें प्राप्त होओ। अथवा—अव हिंसा-रक्षण-कान्ति-तृप्ति-वृद्ध्यर्थश्च । (याभिः) जिन सेनाओं से (गोशर्यम् आवतम्) गो-भूमि के हिंसक क्रूरकादि की रक्षा करते और गौ आदि पशुओ के हिंसकों का नाश करते हो उन उपायों सहित (नः आगतम्) हमें प्राप्त होओ । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्वर्स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१ ॥

भा०—(याभि:) जिन सेना आदि उपायों से (धने कृत्व्ये) प्राप्त

करने योग्य ऐश्वर्य की रक्षा के निमित्त (त्रसदस्युम्) पशुओं को भयभीत करने वाले सिपाही पहरेदार आदि को (आवतम्) रखते हो उनसे ही हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! (वाज-सातये) धन अन्नादि के लाभ के लिये (अस्मान् सु प्र अवतम्) हमारी भी अच्छी प्रकार रक्षा करो। अधिकारी जन अपने धन की रक्षार्थ जैसे अपने कर्मचारियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार वे प्रजा को धन समझ कर उसकी भी अच्छी प्रकार रक्षा किया करें।

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं अश्व सैन्य वा राष्ट्र के स्वामी जनो ! स्वामी अमात्य जनो ! (स्तोमाः) स्तुतियोग्य कार्य और (सुवृक्तयः) उत्तम रीति से पाप से बचाने वाली (गिरः) वाणियां (वां प्रवर्धन्तु) आप दोनों को बढ़ावें। (ता) वे आप दोनों (पुरुत्रा) बहुतों के रक्षक, (वृत्र हन्तमा) शत्रु और पाप को अच्छी प्रकार नाश करने वाले और (नः) हमारे बीच (पुरु-स्पृहा) बहुतों के प्रेम पात्र और बहुतों के न्यायपूर्वक स्नेह करने वाले, सब के सच्चे प्रेमी (भूतम्) होओ।

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥ २९ ॥

भा०—(त्रीणि) तीन (पदानि) स्थान, प्राप्तव्य विषय (अश्विनो) विद्वान् स्त्री पुरुषों की (गुहा) बुद्धि में (परः) सब से अधिक उत्तम रीति से (आविः सन्ति) प्रकट होते हैं। उन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (पत्मभिः) तीनों पदों से वे दोनों (अर्वाक्) साक्षात् (कवी) विद्वान् क्रान्तदर्शी होकर (जीवेभ्यः परि) जीवों के हितार्थ हों। 'ऋत' सत्याचरण, धर्म, यज्ञ और वेद ज्ञान के तीन पद ऋक्, साम, यजुः; मन्त्र, गीति

और क्रिया; ज्ञान, उपासना और यज्ञ है। वे तीनों विद्वानों की बुद्धि में उत्तम रूप से प्रकट हों। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

शशकर्णः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ बृहती । १४, १५ निचृद् बृहती । २, १० गायत्री । ३, ११ निचृद् गायत्री । ११ त्रिपाद् विराड् गायत्री । ५ उष्णिक् ककुप् । ७, ८, १७, १९ अनुष्टुप् । ९ पाद-निचृदनुष्टुप् । १३ निचृदनुष्टुप् । १६ आर्ची अनुष्टुप् । १८ विराडनुष्टुप् । २० आर्षी निचृत् पङ्क्तिः । १२ जगती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (नूनं) अवश्य ही (वत्सस्य अवसे) अपने अधीन आश्रय रहने वाले बच्चे, बालक, पुत्र भृत्यादि के रक्षण वा भोजनादि से तृप्ति और उनके प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिये आप दोनों (आ गन्तम्) आया करो। इसी प्रकार (वत्सस्य अवसे) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् की रक्षा और उसके ज्ञान और वृद्धि आदि के लिये उसके पास आया जाया करो। (अस्मै) उसको (पृथु छर्दिः) बड़ा विस्तृत गृह, शरण, (अवृकं) छल कपटरहित होकर (प्र यच्छतम्) प्रदान करो। (या अरातयः) जो न देने के क्षुद्रता आदि के विचार हैं उनको (युयुतं) दूर करो।

यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (नृम्णम्) धन (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष (यत् दिवि) जो आकाश में और (यत्) जो (पञ्च मानुषान् अनु) पाँचों मनुष्यों के अनुकूल सुखदायी धन है (तत्) वह धन है (अश्वि-

जितेन्द्रिय एवं अश्वादि के स्वामी वर्गो ! आप लोग अवश्य (धत्तम्) धारण किया करो। आकाश मे वायु, जल, मेघ, वृष्टि आदि और आकाश मे सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि पांचो मनुष्यो के अनुकूल भूमि पर्वत नदी जलाशय जन, भृत्य, सुवर्ण, हिरण्यादि। ये राष्ट्रीय त्रिविध धन मनुष्य मात्र के सुखप्रद होने से 'नृम्ग' है। इनकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः।
एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (ये) जो (विप्रास.) विद्वान् पुरुष (वां) आप लोगो के (दंसांसि) नाना प्रकार के कार्यों को (परि ममृशु) करते और उन कार्यो पर विचार करते हैं, उनके किये कार्य और (काण्वस्य एव इत्) विद्वानो के किये ज्ञान, अनुष्ठान आदि का भी (बोधतम्) तुम ज्ञान प्राप्त करो।

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (वां) आप दोनों का (अयं) यह (घर्म·) तेजोयुक्त प्रभाव या सामर्थ्य है जिसको (स्तोमैः) स्तुति योग्य वचनों या वेदमन्त्रो द्वारा (परिषिच्यते) परिषेक किया जाता, जिसकी प्रतिष्ठा की जाती है। हे (वाजिनीवसू) ज्ञान, यत्नादि से युक्त क्रिया के धनी जनो ! (अयं मधुमान् सोमः) यह मधुर अन्नादि से युक्त ऐश्वर्य वा उत्पादक बल है, (येन) जिससे आप दोनों (वृत्र) जीवन के रोग दु.खादि विघ्न समूह को दूर करने मे समर्थ हो। इस बल वीर्य की ब्रह्मचर्यादि से तुम सदा रक्षा करो, उसी का महान् आदर है। इसी की लोक मे प्रतिष्ठा है।

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम्।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय और उत्तम भोगों को भोगनेहारे! (पुरु-दंससा) नाना कर्मों को करने मे समर्थ विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यत् अप्सु) जो जलों, (यद् वनस्पतौ) जो वनस्पति और (यद् ओषधीषु) जो ओषधि, अन्नादि के प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करते हो (तेन) उससे ही (मा अविष्टम्) तुम दोनों प्रजावत् मेरी रक्षा करते रहो। इति त्रिंशो वर्गः ॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले सदा सत्यकर्मा, सत्यभाषी, सत्यव्रती होकर आप दोनो (हविष्मन्तं हि) नासिकास्थ प्राणो के समान उत्तम अन्न वाले प्रजाजन को माता पितावत् (भुरण्यथः) पालन करते हो, (यद्वा) जो आप दोनों (हविष्मन्तं हि भिषज्यथः) उत्तम पवित्र अन्न वाले के ही रोगों को दूर करते हो और (हविष्मन्तं हि गच्छथः) उत्तम अन्नादि के स्वामी राष्ट्रवासी जन को ही तुम प्राप्त होते हो, (अयं) यह (वत्सः) राष्ट्र निवासी जन बालक के समान होकर ही (मतिभिः) बुद्धियों वा स्तुतियों से भी (वा) तुम दोनों को (न विन्धते) प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् केवल गुणस्तवन मात्र से यह तुम्हारे उपकार से उऋण नहीं हो सकता है ।

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥

भा०—(ऋषिः) मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वान् पुरुष (नूनम्) अवश्य ही, (वामया) अपनी उत्तम बुद्धि से और अच्छी रीति से (अश्विनोः) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (स्तोमं) उत्तम स्तुति योग्य मन्त्रों का उपदेश (आचिकेत) करे, उनको उसका ज्ञान दे । (अथर्वणि) स्थिर, शान्त प्रज्ञावान् पुरुष में ही वह अग्नि (घर्मं) तीव्र घृत वा तेज के समान (मधुम

त्तमम्) वा अति मधुर (सोमं) ओषधि रसवत् उत्तम ज्ञान और तेज का (सिञ्चात्) सेचन, प्रदान करे। अथवा वह विद्वान् गुरु (अथर्वणि) अथर्ववेद की समाप्ति पर वा अहिंसा शम, आदि भाव मे (मधुमत्तमं) उत्तम वेद के ज्ञान से युक्त (सोमं) विद्याक्षेत्र मे उत्पन्न (घर्मं) सुतप्त, तपस्वी, तेजस्वी शिष्य को (सिञ्चात्) स्नान करावे, उसे स्नातक बनावे।

अथवा—सवनं यज्ञः, यजुर्वेदः, मधु ऋग्वेदः। घर्मः सामवेदः। तेषु निष्णातं शिष्यमथर्वणि सिञ्चेत् अथर्ववेदे व्युत्पादयेत्॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत॥ ८॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि वेगवान्, बलवान् इन्द्रिय, ग्राम और मन को वश में रखने वाले आप दोनो! (नूनं) अवश्य ही (रघु-वर्तनि) लघु अर्थात् शीघ्र वेग से युक्त वा (रघु-वर्तनि) स्वल्प, छोटे मार्ग से जाने मे समर्थ, (रथं) रमणीय रथ पर (आ तिष्ठथः) विराजा करो। (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके (इमे) मेरे (स्तोमाः) स्तुत्य वचन, (नभः न) आकाश में सूर्य के प्रति किरणोंवत् वा पवनवत् (चुच्युवीरत) प्राप्त हों।

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि।
यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम्॥ ९॥

भा०—हे (नासत्या) सत्यभाषी, सत्यकर्मा, प्रमुख स्त्री पुरुषो! (यत् अद्य) जो आज, (वां) आप दोनो के प्रति हम (उक्थैः) उत्तम वचनों सहित (अचुच्यवीमहि) प्राप्त हो और आप दोनो (यद् वा) जो भी (अश्विना इव) 'अश्व' अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय होकर (काण्वस्य इत्) विद्वान् पुरुष को (वाणीभिः) वाणियों से (बोधतम्) ज्ञान प्राप्त किया करो।

यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१०॥३

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अश्व सैन्यादि स्वामी राजा सेनापति आदि पुरुषो ! (वां) तुम दोनों को (यत्) जिस (कक्षीवान्) अंगुलियों वाला, सिद्धहस्त, कुशल वा अन्यों की बागडो अपने हाथों मे रखने वाला पुरुष, (उत) और (यत्) जब (व्यश्व विविध या विशेष अश्वों या विद्वानों का स्वामी, विविध विद्याओं निष्णात और (यत्) जिस कारण से (दीर्घतमाः) बडी २ लम्बी चौड़ी आकांक्षाओ वाला, उत्साही (ऋषि.) दूरदर्शी पुरुष (वां वां) तुम लोगों को (जुहाव) उत्तम उपदेश करे वा तुम्हे किसी उत्तम कार्य के लिये बुलावे और (यद्वा) जिससे तुम दोनों को (वैन्य.) तेजस्वी, यश क इच्छुक (पृथी) बड़े राष्ट्र-ऐश्वर्य का स्वामी (सादनेषु) नाना स्थानों, पदों पर (एव जुहाव इत्) कार्य करने के लिये बुलावे (अतः) उससे पू हे जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों अवश्य (चेतयेथाम्) ज्ञान प्राप्त करलो अर्थात् स्त्री पुरुषों को बाल्यकाल मे खूब ज्ञान प्राप्त करना चाहिये जिससे कोई अधिकारी सेनापति, उत्साही विजिगीषु यशोर्थी राजा आदि उनको उत्तम पदों पर नियुक्त करने के लिये सादर बुलावे । एकत्रिंशो वर्गः ॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय एवं अश्व रथादि के स्वामी जनो आप दोनों (नः) हमारे (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रादि के हिता (वर्त्तिः यातम्) वृत्ति या वेतनादि भी प्राप्त करो । आप दोनों (न हमारे (छर्दिष्पा भूतम्) गृहों की रक्षा करने वाले होवो । (न. परस्पा भूतम्) हमें शत्रु से बचाने वाले होवें । (उत न जगत्पा तनूपा भूतम और हमारे जंगम पशु सम्पत्ति और हमारे शरीरों के भी रक्षक होवो ।

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः॥१२

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वादि के स्वामी, व्यापक सामर्थ्यवान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् शत्रु-विनाशी राजा सेनापति आदि के साथ (स रथं याथः) रथ के साथ रथ चलाकर प्रयाण करते, वा (स-रथं याथः) सरण या युद्ध यात्रा करते हो, (यद्वा) अथवा जो आप दोनों (वायुना समोकसा) वायु और वायुवत् बलवान् सेनापति के समान भवन या पद वाले (भवथः) हो जाओ। (यद्) या जो आप दोनों (ऋभुभिः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित (आदित्येभिः) आदित्यवत् तेजस्वी, ब्रह्मचारी विद्वानों के साथ (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होवो (यद् वा) या तुम दोनों (विष्णोः) व्यापक बलशाली राजा के (विक्रमणेषु) विशेष विक्रम के कार्यों मे (तिष्ठथः) उच्चासनों पर विराजो, वा (विष्णोः विक्रमणेषु) परमेश्वर की बनाई सृष्टियों में ज्ञानपूर्वक स्थिर रहो यही तुम्हारे लिये आदर्श, उत्तम कर्त्तव्य और अधिकार है। अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष इन उच्च २ पदों तक पहुंचने के लिये साधिकार हैं कि वे यत्न करें और बढ़ें।

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये।
यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः॥ १३ ॥

भा०—और (यत्) जो (अद्य) आज मैं (अश्विनौ) जितेन्द्रिय और अश्वादि के नायकों को (वाज सातये) अन्न, ऐश्वर्यादि प्राप्ति के लिये सआदर (हुवेय) बुलाया करूं। (यत्) क्योंकि जो (पृत्सु) संग्राम में (तुर्वणे) शत्रु के नाश करने में (सहः) शत्रु पराजयकारी बल है (तत्) वही (अश्विनोः) उन जितेन्द्रिय अश्वादि के स्वामी, इनों का (श्रेष्ठम् अवः) सर्वश्रेष्ठ बल और रक्षा सामर्थ्य है। यदि राष्ट्र के स्त्री पुरुष

युद्ध-काल मे शत्रु को परास्त नहीं कर सके तो वे कुछ नहीं, उनका अन्न वेतनादि पाना, भोजन करना, ऐश्वर्य भोगना आदि सब व्यर्थ है और पाप है।

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (तुर्वशे) चतुर्वर्गों की कामना करने वाले और (यदौ) यत्नशील, राष्ट्र प्रजाजन और (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के (अधि) बीच मे (वाम्) तुम दोनो को (इमे सोमास') ये नाना बल, अधिकार और ऐश्वर्य प्राप्त हो और (नूनं) अवश्य ही (इमा) ये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न भी (वां हिता) आप लोगो के लिये नियत रूप से है, अब आदरपूर्वक (आ यातम्) आओ और स्वीकार करो ।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५॥३२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य ज्ञान से रहित, सदा सत्य, सुपरीक्षित ज्ञान वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत् भेषजम् पराके) रोगादि के नाश करने वाला जो पदार्थ दूर देश मे हो वा जो (अर्वाके भेषजम् अस्ति) समीप स्थान में औषधादि हो (तेन) उससे हे (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले दयालु जनो ! (वत्साय) पुत्रवत् राष्ट्र मे वसे प्रजाजन के उपकार के लिये (वि-मदाय) विशेष हर्ष और आनन्द लाभ के लिये (नूनं) अवश्य (छर्दि यच्छतम्) गृह, आवास प्रदान करो । उत्तम ओषधि आदि के नाना समस्त प्रजा को सुख मे राष्ट्र मे वसने का मौका दो । जिससे सब नगर गृहादि नीरोग और सुखप्रद हों । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

भा०—मैं (अश्विनो) दिन रात दोनों मे (देव्या) प्रकाशमान

उषा के समान कान्तियुक्त और स्त्री पुरुषों में से (देव्या) गुणवती विदुषी के समान ज्ञानवती (अश्विनोः) विद्या के पारंगत स्त्री पुरुषों की (वाचा) वाणी से (प्र अभुत्सि) उत्तम रीति से प्रबोध, ज्ञान जागृति को प्राप्त होऊं। हे (देवि) विदुषि ! हे वाणि ! तू (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (मतिं वि आ आवः) उत्तम सुमति और ज्ञान को विशेष रूप से प्रकट कर। और (रातिं वि आवः) दान भी विविध प्रकार से प्रदान कर।

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यंज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (उषः) उषा प्राभातिक सूर्य की कान्ति के समान सुशोभित देवि ! हे (देवि) विदुषि ! ज्ञान का प्रकाश देने वाली ! दानशीले ! हे (सुनृते) उत्तम सत्य ज्ञान से युक्त ! हे (महि) पूज्ये ! जिस प्रकार उषा सब को जगाती है उसी प्रकार तू भी (प्र प्र बोधय) अच्छी प्रकार सब को ज्ञानोपदेश करके जगा। हे देवि ! गृह में तू ही सबसे प्रथम उठकर पति, बालक आदि को भी जगाया कर। हे (यज्ञ-होत) यज्ञ में होता के समान गृहस्थ, यज्ञ में सत्पात्रों में धन अन्न आदि के देने वाले पुरुष ! तू भी (आनुषक्) निरन्तर (प्र बोधय) उत्तम ज्ञान का उपदेश किया कर। (मदाय) तृप्ति और आनन्द प्राप्ति के लिये (बृहत् श्रव)बहुत उत्तम अन्न प्रदान कर और (बृहत् श्रव) बड़े उत्तम श्रवण योग्य वेदोपदेश देकर सबको हृष्ट और ज्ञानवान् कर।

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (उष) कान्तिमति ! विदुषि ! तू जब प्राभातिक सूर्य की दीप्ति के समान (भानुना) प्रकाश के साथ (यासि) गमन करती है और (सूर्येण) सूर्यवत् कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष से (स रोचसे) सुप्र[illegible] [illegible] अच्छी लगती है तभी (अश्विनो) आप दोनों जितेन्द्रिय

वर वधू, पति पत्नी का (अयम्) यह (रथः) रमणीय सुन्दर गृहस्थ रूप एक रथ, (नृपाय्यं वर्त्तिः याति) मनुष्यमात्र को पालन करने वाले गृह अर्थात् प्रजापति पद या मार्ग की ओर गति करता है। इसी प्रकार (उषा) शत्रु को दग्ध करने और राष्ट्र को वश करने वाली सेना जब सूर्यवत् तेजस्वी सेनापति को वरती है तो उनका वेगवान् रथ राष्ट्रवासी मनुष्यो पालन के मार्ग पर गमन करे। तब उनका धर्म प्रजापालन है।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना॥ १९॥

भा०—जिस प्रकार (गावः ऊधभिः दुह्रे) गौवे स्तन-मण्डलो दूध देती है उसी प्रकार (यत्) जब (आपीतासः) ईषत् पिंगल व के, वा ज्ञान को सब प्रकार से पान किये हुए प्रदान करते और ज (देवयन्तः) देव, प्रभु की कामना करते हुए (प्र अनूषत) वाणिय का उच्चारण करती है उस समय हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आ दोनों भी उसका उत्तम लाभ लो।

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृपाह्याय शर्मणे।
प्र दक्षाय प्रचेतसा॥ २०॥

भा०—हे (प्र-चेतसा) उत्तम चित्त और ज्ञान वाले जनो! आ दोनों (द्युम्नाय) उत्तम ऐश्वर्य, (शवसे) बल और (नृ पाह्याय) म शत्रु-नायकों को पराजय करने, (शर्मणे) शत्रुहिंसक बल और प्रजा को शान्तिदायक शरण देने और (दक्षाय) बल और ज्ञान को प्राप्त कर के लिये (प्र प्र प्र प्र) सदा उत्तम से उत्तम मार्ग पर आगे बढ़ो।

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या॥ २१॥ ३३॥

भा०—(यत) जब हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (नूनं) निश्चय से (धीभि) उत्तम कर्मों (यद्वा) और जब (सुम्नेभि , उ

जनक कार्यों से (पितुः योना) अपने पूज्य माता पिता गुरु के गृह मे (निषीदथः) खूब दृढ़ हो जाते हो तब आप दोनो (उक्था) उत्तम प्रशंसा योग्य हो जाते हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१०]

प्रगाथः काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ आर्ची स्वराड् बृहती। २ त्रिष्टुप्। ३ आर्ची भुरिगनुष्टुप्। ४ आर्चीभुरिक् पंक्तिः। ६ आर्षी स्वराड् बृहती ॥ षड्टृचं सूक्तम् ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥

भा०—(यत्) यदि तुम दोनों (दीर्घ-प्र-सद्मनि) बड़े भवनों वाले नगर में (स्थः) होवो, (यद्वा) या चाहे आप दोनों (अदः) इस दूरस्थ (दिवः रोचने) पृथिवी के क्रीड़ा, विनोदयुक्त किसी रुचिकर स्थान मे होवो (यद्वा) अथवा चाहे (समुद्रे) जल मे या समुद्र से घिरे गृह में (अधि स्थ.) बैठे हो, तो भी हे (अश्विना) वेग से चलने वाले अश्वादि साधनो से सम्पन्न जनो! आप (अतः आ यातम्) वहां से आया जाया करो।

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा २

भा०—(यद्-वा) और जब आप दोनों (मनवे) मनुष्य मात्र के हित के लिये (यज्ञं सं मिमिक्षथुः) यज्ञ को परस्पर मिलकर एक साथ करो, तब भी (एव इत् काण्वस्य बोधतम्) विद्वान् जनों को उसका ज्ञान करा दिया करो। (बृहस्पतिम्) सबसे बड़े राष्ट्र और वेद वाणी के पालक, और (विश्वान् देवान्) समस्त मनुष्य प्रजावर्ग या विद्याभिलाषी विद्यार्थियों को और (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् राजा व्यापक सामर्थ्य वाले सेनापति

इन दोनों को और (आशु-हेपसा) शीघ्र ही उत्तम ध्वनि करने वाले (अश्विना) अश्वारोही वा जितेन्द्रिय जनों को (अहं हुवे) आदर पूर्वक प्रार्थना करूं कि वे मेरे यज्ञ मे अवश्य आया करें।

त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता।

ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्या अश्विना नु हुवे) मैं उन दोनो जितेन्द्रिय, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को आदरपूर्वक निमन्त्रित करूं जो दोनो (सु-दंससा) उत्तम कर्मों का आचरण करने वाले और (गृभे कृता) गृह मे एकत्र पति पत्नी रूप से बने हों, (ययोः) जिन मे (नः सख्यं प्र अस्ति) हमारा उत्तम सौहार्द हो और (ययोः) जिनका (आप्यं) बन्धुभाव (देवेषु) विद्वानो के बीच मे (प्र अस्ति) उत्तम हो।

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः।

ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु॥४॥

भा०—(ययोः अधि) जिन दोनों स्त्री पुरुषो के ऊपर (यज्ञाः) यज्ञ, उत्तम कर्म और (असूरे) सूर्यरहित, अन्धकार युक्त काल या देश में भी (ययोः अधि) जिन के अधीन वा जिनपर नाना (सूरय) विद्वान् आश्रय पाते वा अध्यक्ष है। (या) जो दोनो (स्वधाभि) अन्नों सहित (सोम्यं मधु पिबत) ओषधिरस युक्त मधुर जल मधु आदि मधुर पदार्थ का पान करते है (ता) वे दोनो (प्र-चेतसा) उत्तम विद्वान्, शुभ-चित्तवान् होकर (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसा रहित वा अक्षय यज्ञ के (स्वधाभि) अन्नादि से करने वाले हों।

यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू।

यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (यद् अद्य) जो तुम दोनों (अपाग्) पश्चिम में या (यत्) जो (प्राक् स्थः) पूर्व मे भी

होवो, हे (वाजिनीवसू) विद्या और बलशक्ति युक्त क्रिया से सम्पन्न विद्वानो ! (यद्) यदि तुम दोनो (द्रुह्यवि) परस्पर के द्रोही जनों मे, (तुर्वशे) एक दूसरे के हिंसक जनो मे और (अनवि) छोटे या अप्रसिद्ध जनो में या (यदौ) यत्नशील उद्योगी श्रमी जनो मे भी होवो तो मैं अवश्य (अद्य) आज ही तुरन्त (हुवे) आदरपूर्वक निमन्त्रित करूं। (अथ) और तुम दोनो (मा गतम्) मुझे अवश्य प्राप्त हो। उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष कहीं भी हों और किसी भी जनसमाज मे हो उनको आदरपूर्वक निमन्त्रित कर लेना चाहिये।

यद॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑थः पुरुभुजा॒ यद्वे॒मे रोद॑सी॒ अनु॑ ।
यद्वा॑ स्व॒धाभि॑र॒धि॒तिष्ठ॑थो॒ रथ॒मत॒ आ या॑तमश्विना ॥६॥३४॥

भा०—हे (अश्विना) आशुगामी अश्वो और यन्त्रो के जानने और बनानेवाले शिल्पकार जनो ! (यत्) जो आप दोनो (पुरु-भुजा) बहुतो को पालने में समर्थ होकर (अन्तरिक्षे पतथ) अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करते हो, (यत् वा) और जो आप दोनो (इमे रोदसी अनु पतथः) इन आकाश और पृथिवी दोनों मे सुख से विचर सकते हो (यद् वा) और जो आप दोनो (स्व-धाभिः) स्वयं अपने आप धारण करने मे समर्थ शक्तियों से (रथम्) वेग से चलने वाले यन्त्र पर (अधि तिष्ठथः) अध्यक्ष रूप से विराजते हो वे आप दोनो (अतः आयातम्) उस प्रयोजन से हमारे पास आया करो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[११]

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा । त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! सर्वव्यापक ! अग्निवत् तेजःस्वरूप सत्यार्थ के प्रकाशक ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (व्रत-पाः असि) व्रतों, सत्कर्मों, अन्नों का पालक है। और (मर्त्येषु आ) मनुष्यों मे भी तू (देवः) सब सुखों का दाता, दीप्तिमान् है । (त्वं) तू (यज्ञेषु) समस्त यज्ञों मे (ईड्यः) स्तुति करने योग्य, पूज्य और चाहने योग्य है ।

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (सहन्त्य) शत्रुओं के पराजयकारिन् ! हे सब के साथ व्यापक ! (त्वम्) तू (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों और ज्ञान लाभ के अवसरों मे (प्रशस्यः असि) सब से प्रशंसा करने और उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है । तू ही (अध्वराणाम्) यज्ञों और सन्मार्ग, मोक्ष मार्ग मे जाने वालों मे (रथीः) रथवान् के समान सुख से मार्ग पार करा देने और अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा देने हारा है ।

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (जात-वेद) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे ! सब मे व्यापक प्रभो ! विद्यावान् विद्वन् और धनैश्वर्य के स्वामिन् ! राजन् ! (त्वं) तू (स) वह (द्विषः) द्वेष करने वालों और द्वेष के योग्य भाव क्रोधादि अन्तःशत्रुओं को भी और (अरातीः अदेवीः) शुभ उत्तम गुणों से रहित दान या अनेक उचित अधिकारों को न देने वाले भावों, प्रवृत्तियों और वाणियों को भी (अस्मत् अप युयोधि) हम से दूर कर ।

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥४॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त पदार्थों को जानने हारे प्रभो ! हे कृतविद्य विद्वन् ! (रिपोः मर्तस्य) पापी पुरुष के (अन्ति चित् सन्तं यज्ञं) अति समीप विद्यमान यज्ञ को (न उप वेषि) प्राप्त नहीं होता,

नहीं स्वीकार करता, तू शत्रुता के भाव को रखने वाले मनुष्य के यज्ञ, पूजा, आदर भाव वा दान को स्वीकार नहीं करता।

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः॥५।३५

भा०—हे प्रभो! विभो! (जात-वेदसः) समस्त उत्पन्न पदार्थों में व्यापक सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (ते) तुझ (अमर्त्यस्य) अविनाशी के (भूरि नाम) बहुत सेनानो से हम (मर्त्ताः) मनुष्य, जीवगण (मनामहे) तेरी स्तुति करते हैं।

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

भा०—हम (विप्रासः मर्त्तासः) विद्वान् बुद्धिमान् मनुष्य (अवसे) रक्षा, ज्ञान, आत्मसंतोष, प्रीति सुखादि के लिये और (ऊतये) तुझे प्राप्त होने के लिये (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों के पूरक (देवं) प्रकाशमान (अग्नि) ज्ञानस्वरूप को हम (गीर्भिः) नाना वेदवाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।
अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप! (वत्सः) तेरी स्तुति करने हारा उपासक तेरे पुत्रवत् प्रिय (परमात् चित् सधस्थात्) परम, सर्वोत्कृष्ट तेरे साथ एकत्र रहने की स्थिति से (ते) तुझे प्राप्त करने के लिये (त्वा कामया गिरा) तुझे चाहने वाली, भक्ति भरी वाणी से (मनः) अपने मन को (आ यमत्) सब ओर से रोके और तेरे ही में लगावे।

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (पुरुत्रा) बहुत से स्थानों में भी सूर्यवत् (सदृङ् असि) एक समान सब को देखने और दीखने हारा सर्वत्र व्यापक है। तू (विश्वा विशः अनु) समस्त प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह

करने हारा, (प्रभुः) सर्वोत्तम शासक प्रभु है। (त्वा) तुझ से ही (समत्सु) हर्ष के अवसरो और युद्धो मे भी (हवामहे) प्रार्थना करते है।

स॒मत्स्व॒ग्निमव॑से वाज॒यन्तो॑ हवामहे। वाजे॑षु चि॒त्ररा॑धसम् ॥९॥

भा०—हम (समत्सु) संग्राम मे और एक साथ मिलकर आनन्द अनुभव करने के अवसरों में और (वाजेषु) ऐश्वर्यों, ज्ञानो, अन्नो के निमित्त (चित्र-राधसम्) अद्भुत धन के धनी, (अग्निम्) सर्वव्यापक, अग्रणी, ज्ञानस्वरूप प्रभु की (अवसे) रक्षा, पालन, ज्ञान आदि के लिये ही (वाजयन्तः) ऐश्वर्य ज्ञानादि की कामना करते हुए हम लोग (हवामहे) स्तुति करते है।

प्र॒त्नो हि क॒मीड्यो॑ अध्व॒रेषु॑ स॒नाच्च॒ होता॒ नव्य॑श्च॒ सत्सि॑।
स्वां चा॑ग्ने त॒न्वं॑ पि॒प्रय॑स्वा॒स्मभ्यं॑ च॒ सौभ॑ग॒मा य॑जस्व१०।३६।८।५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत स्वप्रकाश ! सब जगत् से पूर्व विद्यमान ! सबके नायक ! (हि) जिसमे तू (प्रत्नः) सबसे पुराना, अनादि काल से विद्यमान (ईड्यः कम्) स्तुति योग्य, उपास्य (अध्वरेषु) अविनाशी पदार्थो में, यज्ञों मे भी स्तुति करने योग्य है, तू (नव्यः च) अति स्तुति योग्य, सदा नवीन और (सनात् च) सनातन काल मे ही (होता) सर्व सुखदाता होकर (सत्सि) विराजता है। तू (स्वां च तन्वं) अपने ही विस्तृत सृष्टि को (पिप्रयस्व) पालन और तृप्त कर उसको कर्मानुसार भोग भुगा और (अस्मभ्यं च) हमें भी (सौभगम् आ यजस्व) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

॥ इति पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः ॥

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभितेन श्रीमत्पण्डितजयदेव-
शर्मणा विरचिते ऋग्वेदभाष्ये पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[१२]

पर्वतः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, ९, १५, १६, २०, २१, २५, ३१, ३२ निचृदुष्णिक् । ३—६, १०—१२, १४, १७, १८, २२—२४, २६—३० उष्णिक् । ७, १३, १९ आर्षीविराडुष्णिक् । ३३ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

य इ॑न्द्र सोम॒पात॑मो॒ मदः॑ शविष्ठ॒ चेत॑ति ।
येना॒ हंसि॒ न्य१॒॑त्रिणं॒ तमी॑महे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं के नाशक ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे ज्ञानवन् ! (यः) जो तू (सोम-पातम) सोम, ऐश्वर्य की और जगत् वा राष्ट्र-प्रजाजन की पुत्रवत्, ओषधिवनस्पति आदि को मेघ या सूर्यवत् उत्तम रीति से पालन करने वाला और (मदः) सबको तृप्त एवं प्रसन्न करने वाला, आनन्दमय होकर (चेतति) सबको ज्ञान प्रदान करता है और (येन) जिस कारण से तू (अत्रिणं) जगत् के, प्रजा के भक्षक, नाशक वा (नि हंसि) विनाश करता है अतः (तम्) उस तुझको हम लोग (ईमहे) प्राप्त होते और तुझ से रक्षादि की याचना-प्रार्थना करते हैं । अहः ज्ञान देने और पालन, रक्षा करने वाले प्रभु की हम सदा स्तुति करें, उसी से सब कुछ मांगें ।

येना॒ दश॑ग्व॒मध्रि॑गुं वे॒पय॑न्तं॒ स्व॑र्णरम् ।
येना॑ समु॒द्रमावि॑था॒ तमी॑महे ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिससे या जो हे प्रभो ! राजन् ! तू (दशग्वम्) 'दशगु' दश भूमि या दस ग्रामो के स्वामी को और (अध्रिगु-अधिगुं) इससे भी अधिक भूमियो के स्वामी को और (स्वःनरं) सबके नेता, सुखों के प्रदान करने वा ज्ञानोपदेश के देने वाले विद्वान् जन को और (वेदयन्तं) शत्रुओं को कंपाने वाले बलवान् को और (येन) जिस कारण से तू (समुद्रम्) समुद्रवत् अपार, उमड़ने वाले, उत्साही राष्ट्र प्रजाजन और सैन्य वल को (आविथ) रक्षा करता, प्राप्त करता और उसका पोषण करता है इससे हम सब (तम्) उस तुझको (ईमहे) प्राप्त होते और तुझ से प्रार्थना करते है। अध्यात्म मे—'दशगु' दश इन्द्रियों का स्वामी और अध्रिगु अधिक गति वाला, अधिक ज्ञानी आत्मा, सबका सञ्चालक 'स्वर्नर' वायु, प्राण और 'समुद्र' जलमय सागर और आकाश इन सब की प्रभु रक्षा करता है। वही सर्वोपास्य स्तुत्य, शरणीय है।

येन॒ सिन्धुं॑ म॒हीर॒पो रथाँ॑ इव प्रचो॒दयः॑ ।
पन्था॑मृ॒तस्य॒ यात॑वे॒ तमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस कारण वा जो तू हे भगवन् ! जिस प्रकार (रथान् इव) रथों, रथारोही वीरों को और (सिन्धुम्) अश्व सैन्यों को और (महीः) भूमिवासिनी प्रजाओं को और (अपः) आप्त जनों को राजावत् उत्तम मार्ग में चलाता है उसी प्रकार तू (सिन्धुं) महान समुद्र को (मही अप) भूमियों और जलों को (प्रचोदयः) उत्तम उद्देश्य के लिये चला या प्रेरित कर रहा है। (ऋतस्य पन्थाम यातवे) सत्य के मार्ग पर चलने के लिये (त) उसी देवों के देव, राजाओं के राजा तुझ को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।
येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो ! (येन) जो तू (सद्यः) सदा समान सब दिनों (ओजसा) बड़े भारी बल पराक्रम से महान् राजा के समान (ववक्षिथ) समस्त जगत् को धारण कर रहा है, तू सबसे महान् है, हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्तिशालिन् ! अत हम भी (अभिष्टये) अपने अभिलषित फल का प्राप्त करने के लिये (घृतं न पूतं) पवित्र जल के समान स्वच्छ एवं तृप्ति सुख और आरोग्यकारक और (घृतं न पूतम्) पवित्र प्रकाशमय तेज के समान परम पावन, अन्तःकरण के प्रकाशक (इमं स्तोमं) इस स्तुति-वचन वेदमय ज्ञान को (ईमहे) तेरे से प्राप्त करते है। उसी स्तुत्य ज्ञान प्रकाश की तुझ से याचना करते हैं ।

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शक्तिशालिन् ! इस संसार के द्रष्टः ! तू (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और शक्तियों से (ववक्षिथ) इस संसार को धारण कर रहा है, तू सबसे महान् है। हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा श्रवण भजन करने योग्य ! हे समस्त वेद वाणियों को देनेहारे ! तू (समुद्रः इव) महान् सागर के समान (समुद्रः) समान रूप से सबको आनन्द हर्ष का देने वाला, परमानन्द का सागर (पिन्वते) होकर बढ़ता है, तू (इमं) इस स्तुति को भी (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे ।
दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (देवः) दानशील, सब सुखों का दाता, जगत् का प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (परावतः) दूर, परम स्थान से भी (दिवः

वृष्टिं प्रथयन्) आकाश से वृष्टि करता हुआ इस जगत् को (ववक्षिथ) ज्ञान का उपदेश करता है, उसको हम (सखित्वनाय) अपना मित्र बना लेने की (मामहे) प्रार्थना करते हैं।

वुवक्षुरस्य केतवं उत वज्रो गभस्त्योः।
यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत्॥ ७॥

भा०—(रोदसी सूर्यः न) आकाश और भूमि दोनों लोकों को सूर्य जिस प्रकार बढ़ाता, पुष्ट करता है उसी प्रकार (सूर्य) सब जगत् का सञ्चालक, प्रकाशक और उत्पादक प्रभु परमेश्वर (रोदसी) इस समस्त संसार को (अवर्धत्) शिल्पीवत् बनाता, राजावत् उनकी वृद्धि, और पोषण करता है। अथवा, (सूर्यः न) सूर्य के समान बढ़ाता और (रोदसी न) अन्तरिक्ष, भूमिवत् वा बालक को माता पितावत् पालता और पुष्ट करता है, (अस्य) उस प्रभु के (केतवः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान विज्ञान और नाना शक्तियां (उत) और (गभस्त्योः वज्रः न) हाथों में पकड़े शस्त्र के समान (वज्रः) ज्ञानमय उपदेश ये सब (ववक्षुः) जगत् को धारण करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः।
आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे॥ ८॥

भा०—हे (प्रवृद्ध) सबसे महान्! हे (सत्पते) सत्, व्यक्त जगत् सत्पदार्थों, सज्जनों और सत्य ज्ञान के पालक! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, अनेक बड़े २ शक्तिशाली सूर्य, मेघ, समुद्र, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, या सहस्रों बड़े विघ्नों का नाश करता है (आत् इत्) उससे ही तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य बल, और आत्म-सामर्थ्य (प्र वावृधे) बहुत बढ़ा है।

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति।
अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे॥ ९॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (अर्शसानम्) नाशकारी रोग और अन्धकार को (नि-ओषति) सर्वथा ऐसे भस्म कर देता है जैसे (अग्निः वना इव) आग वनों और काष्ठों को जला डालती है। वह (सासहिः) सर्वोत्कृष्ट बलशाली, सब को पराजित करने में समर्थ होकर (प्र वावृधे) सब से अधिक बढ़ जाता है, वह सबसे महान् है। (२) इसी प्रकार इन्द्र, राजा सूर्य-रश्मिवत् अपने नियामक शासकों से प्रजानाशक दुष्ट वर्ग को पीड़ित करे, अग्निवत् भस्म करे, सर्वविजयी होकर बढ़े।

इयं त॑ ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी।
सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत्॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इयं) यह (ते) तेरी (ऋत्वियावती) ऋतु ऋतु मे करने योग्य यज्ञादि वाली, (नवीयसी) अति स्तुत्य (धीतिः) स्तुति, (पुरु-प्रिया) बहुतों को प्रसन्न करने वाली, (सपर्यन्ती) परमेश्वर की अर्चना करती हुई, वेदवाणी (मिमीते इव) सबको उपदेश करती है। उसी प्रकार (ते धीतिः) हे प्रभो ! तेरी जगत्धारक, पोषक शक्ति, (ऋत्वियावती) सूर्य से उत्पन्न ऋतुवत् नियम पूर्वक भिन्न २ सामर्थ्यों से विश्व को चलाने वाली, अति स्तुत्य, सर्वप्रिय, (मिमीते) जगत् को बनाती है। (२) राजा की राष्ट्रधारक शक्ति, (ऋत्वियावती) 'ऋतु' राजसभादि के सदस्यों वा शासक जनों से युक्त, सर्वप्रिय राष्ट्र की सेवा करती हुई (मिमीते इव) राष्ट्र का निर्माण करती है। इति द्वितीयो वर्गः॥

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक्।
स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत्॥ ११ ॥

भा०—(देवयुः) उस सर्वज्ञ दाता प्रभु को चाहने वाला मनुष्य (यज्ञस्य गर्भः) यज्ञ, परम उपासनीय, पूज्य, सर्वदाता प्रभु की स्तुति करने वाला उसी का आश्रय ग्रहण करने वाला और उसी के भीतर नाना

के पेट मे बालक के समान, उसी प्रभु की रक्षा मे पालित पोषित होकर (आनुषक्) निरन्तर (क्रतुं) अपने ज्ञान और कर्म को (पुनीते) शुद्ध पवित्र करता है। वह (इन्द्रस्य स्तोमैः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपदेशमय वेदवचनो तथा स्तुति-वचनों से (ववृधे) बढ़ता और (मिमीते इत्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु का ज्ञान भी कर लेता है।

सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये।
प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सोमस्य पीतये) उत्पन्न जगत् वा जीवगण को पालन और कर्मफलोपभोग करने के लिये (मित्रस्य) अपने को स्नेह करने वाले जीव, भक्त को (सनिः) सब सुखों का दाता होकर (पप्रथे) जगत् को विस्तृत करता है, अर्थात् जीवों के भोग और मोक्ष लिये जगत् को रचता है। (सुन्वते वाशी इव) शिल्पी का बसूला जिस प्रकार उत्तम रीति से आगे बढ़कर काष्ठ की वस्तुएं बनाता है उसी प्रकार (वाशी) सब जगत् को वश करने वाली और जगत्सर्ग करूं ऐसी 'कामना' करने, वा (सुन्वते = सुन्वतः) जगत्सर्ग करने वाले विधाता की शक्ति (प्राची) सब मे उत्कृष्ट होकर ही (मिमीते इत्) इस संसार की रचना करती है। अथवा—(सुन्वते वाशी इव) जिस प्रकार यज्ञोपासना करने वाले की वाणी (मिमीते) शब्द करती है, उसी प्रकार (प्राची) उत्तम पूज्य प्रभु शक्ति भी गुरुवत् (सुन्वते मिमीते) भक्त उपासक को शिष्यवत् ज्ञान प्रदान करती है।

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर को (उक्थवाहसः) वेद मन्त्रों को धारण करने वाले (विप्राः) विद्वान् (आयवः) पुरुष (अभि प्रमन्दुः) साक्षात् कर प्रसन्न होते, आनन्द लाभ करते हैं उसी प्रकार (यत्) ...

(ऋतस्य) सत्य स्वरूप, परम कारण परमेश्वर सत्य ज्ञान वेद के (घृतं) प्रकाशवत् दीप्ति से युक्त है उसको अपने (आसनि) मुख में (घृतम् इव) पुष्टि दायक घृत के समान ही (पिप्ये) पान करूं। अर्थात् मुख से सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास, आवर्त्तन मनन आदि अन्न घृतादि आहार के ग्रहण चर्वण आदि के समान ही शनैः २ करना और उसे मनन द्वारा पचाना चाहिये।

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥ १४ ॥

भा०—(उत) और (स्वराजे) स्वयंप्रकाश, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर के (स्तोमम्) स्तुति वा उपदेश-रूप वेद ज्ञान को (अदितिः) अखण्ड, अविनाशी वेद ही (जीजनत्) प्रकट करता है। और (यत्) जो (ऋतस्य) सत्य ज्ञान या परम कारणमय प्रभु का (पुरु प्रशस्तं) बहुत विद्वानों से उपदेश करने योग्य ज्ञान है उसको (ऊतये) जगत् की रक्षा के लिये (अदितिः) अखण्ड व्रत वाला तपस्वी पुरुष ही (जीजनत्) प्रकट या प्रकाशित करे।

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(वह्नय) ज्ञान को धारण करने वाले विद्वान् अध्यापक उपदेशक शुश्रूषु जन (ऊतये) ज्ञान प्राप्त करने और (प्रशस्तये) तेरी उत्तम स्तुति और जनों को अच्छी प्रकार शासन या उपदेश के लिये (ऋतस्य यत्) सत्य ज्ञानमय वेद या प्रभु का जो अति प्रशस्त ज्ञान है उसका (अनूषत) उपदेश करते हैं। हे (देव) समस्त सुखों के दाता, ज्ञान और जगत् के प्रकाश प्रभो ! (विव्रता) व्रत, सज्जनों से रहित आच-रण करने वाले (हरी) स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान के इस तत्व को (न) नहीं पाते। इति तृतीयो वर्गः ॥

यत्सोमंमिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत) जो तू (विष्णवि) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य के आधार पर, (यद्वा घ आप्त्ये) और जो तू जलो से पूर्ण (त्रिते) तीनो लोको के आश्रय और (यद्वा मरुत्सु) वा प्राणो के आश्रय पर, (इन्दुभिः) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों द्वारा (सोमम्) उत्पन्न होने वाले जीव या जगत् को (सम् मन्दसे) भली प्रकार प्रसन्न और आनन्दित करता है इस कारण तू दयालु, सर्वप्रद, सर्वोपास्य है।

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिमन्! (यद् वा) जो तू (परावति) अज्ञानियों से अति दूर, परम (समुद्रे) अति उल्लासयुक्त समान रूप से एक रस आनन्द से परिपूर्ण रूप मे (अधि मन्दसे) अतिशय आनन्द से रमता है। (सुते) इस उत्पन्न जगत् मे (इन्दुभिः) इन ऐश्वर्य युक्त, दीप्तियुक्त और रसवन् द्रुतगति से जाने वाले नाना पदार्थों मे (अस्माकम् इत रण) हमें अवश्य सुखी कर।

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सत्पते) सत पुरुषों के पालक! (यद् वा) जो तू (सुन्वतः) जिस किसी भी साधक (यजमानस्य) देवपूजा करने वाले उपासक को तू (वृधः) बढ़ाता है और उसके (उक्थे) स्तुति वचन पर (रण्यसि) प्रसन्न होता है वह तू उसको (इन्दुभिः सं रण) नाना ऐश्वर्यों से प्रसन्न और आनन्दित करता है।

देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मै (वः) आप लोगों को (देवं-देवं) सर्वत्र प्रकाशमान और (इन्द्रम् इन्द्रम्) सर्वत्र ऐश्वर्यवान् विघ्नविनाशक प्रभु को (अवसे) प्राप्त करने का (गृणीषणि) उपदेश करता हूं (अध) और (तुर्वणे) सब दुःखों और दुष्टों के नाशक (यज्ञाय) सर्वोपास्य परमेश्वर के ही ये समस्त ऐश्वर्य जगत् में (वि-आनशुः) विविध प्रकार से व्याप रहे हैं और समस्त (तुर्वणे यज्ञाय) दुःख-विघ्ननाशक सर्वदाता प्रभु को ही समस्त भक्त विविध उपायों से प्राप्त होते हैं।

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।
होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—उस (यज्ञवाहसं) देवपूजा को स्वीकार करने वाले प्रभु को विद्वान् लोग (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनाओं से (वावृधुः) बढ़ाते, उसकी महिमा का विस्तार करते और (वि-आनशुः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हैं। उस (सोम-पातमम्) उत्पन्न हुए नाना सर्गों के परम पालक प्रभु को भक्तजन (सोमैः ववृधुः) उसके ऐश्वर्यों के वर्णनों से ही बढ़ाते हैं और उन द्वारा ही उस तक (वि आनशुः) पहुंचते हैं। इसी प्रकार वे (होत्राभिः) नाना वाणियों से (इन्द्रं ववृधुः) ऐश्वर्यवान् प्रभु की महिमा बढ़ाते और उन (होत्राभिः) गुरु शिष्यों द्वारा देने लेने योग्य वेद वाणियों से ही उस को (व्यानशुः) विविध प्रकार से प्राप्त करते, उसका ज्ञान करते, उसके गुणों में रमते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥ २१ ॥

समस्त ऐश्वर्यों के देने वाले उसी प्रभु के वर्णन के लिये (वि आनशुः) विविध या विशेष प्रकार से उस तक पहुंचती है ।

इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे दे॒वासो॑ दधिरे पु॒रः ।
इन्द्रं॒ वाणी॑रनूषता॒ समोज॑से ॥ २२ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् मनुष्य (वृत्राय) बढ़ते या अन्तःकरण को आवरण करने वाले अज्ञान को (हन्तवे) नाश करने के लिये (इन्द्रं) सूर्यवत् अन्धकार को विदारण करने वाले, दीप्तिमान् प्रभु रूप सूर्य को (पुरः दधिरे)सदा अपने समक्ष रखते है, उसका ध्यान वा धारण करते हैं। और (ओजसे) आत्मिक परम बल प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं) उसी विघ्न-नाशक, तेजस्वी प्रभु की (वाणीः) वाणियो द्वारा (सम् अनूषत) उसकी अच्छी प्रकार स्तुति करते है ।

म॒हान्तं॑ महि॒ना व॒यं स्तोमे॑भिर्हवन॒श्रुत॑म् ।
अ॒र्कैर॒भि प्र णो॑नुमः॒ समोज॑से ॥ २३ ॥

भा०—(महिना महान्त) अपने महान् सामर्थ्य से बडे (हवन-श्रुतम्) आह्वानों, उपासक की पुकारों को श्रवण करने वाले, वा 'हवन' दानों मे सर्वत्र प्रसिद्ध उस प्रभु की हम (स्तोमेभिः) स्तुतियों और (अर्कैः) अर्चना करने योग्य वेदमन्त्रों और यज्ञो से (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (अभि सं प्र नोनुम) साक्षात् खूब स्तुति करें ।

न यं वि॑वि॒क्तो रोद॑सी॒ नान्तरि॑क्षाणि व॒ज्रिण॑म् ।
अ॒मादिद॑स्य तित्विषे॒ समोज॑सः ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (रोदसी) भूमि और आकाश भी (न विविक्त) विवेचन नहीं कर सकते और (यं) जिस (वज्रिणम) बलशाली प्रभु को (अन्तरिक्षाणि न विविक्त) नाना अन्तरिक्ष भाग भी विवेचन नहीं कर सकते अर्थात आकाश, भूमि और अन्तरिक्ष के नाना सर्ग, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्र, वायु, भूमि पर्वत, समुद्रादि भी जिसके सामर्थ्य

ऐश्वर्यमय शक्तिशाली रूप का पूरी तरह से विवेचन नहीं करा सकते उसी (अस्य ओजसः) बलस्वरूप प्रभु के (अमात् इत्) बल से ही यह समस्त जगत् (तित्विषे) प्रकाशित होता है। (२) (रोदसी) उपदेष्टा और शिष्य भी जिस प्रभु का वाद द्वारा विवेचन नहीं कर सकते (अन्तरिक्षाणि) अन्तःकरणो के व्यापार भी जिसका विवेक, अर्थात् पृथक् स्वरूप नहीं बतला सकते, उसी परम प्रभु के बल से ज्ञान का प्रकाश होता है। वही स्वयंप्रकाशस्वरूप परमेश्वर अपने सामर्थ्य से जगत् को प्रकाशित करता है, वही अपना भी प्रकाश करता है।

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(पृतनाज्ये) सेनाओ के भागने के स्थान, या अवसर तथा सेनाओ से विजय करने योग्य संग्राम मे जिस प्रकार (देवाः) विजिगीषु लोग (इन्द्रं पुरो दधिरे) तेजस्वी, राजा या सेनापति को आगे रखते है (हर्यता हरी ववक्षतुः) वेगवान् सुन्दर दो घोड़े उसको आगे लेजाते है, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वयंप्रकाश प्रभो! (यत् त्वा) जिस तुझ को (देवाः) विद्वान् एवं नाना कामना करने वाले मनुष्य (पृतनाज्ये) मनुष्यों से प्राप्य ऐश्वर्य या उद्देश्य के लिये (पुरः दधिरे) अपने समक्ष साक्षी एव परम उद्देश्यवत् स्थापित करते हैं (आत् इत्) अनन्तर उसी (ते) तुझे (हर्यता हरी) तेरी कामना करने वाले ज्ञानी अज्ञानी वा स्त्री पुरुष वा ज्ञानी, कर्मी, मनुष्य (ववक्षतुः) हृदय में धारण करते है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (नदीवृतं वृत्रं) गरजती मेघ माला में विद्यमान जल को (शवसा अवधीत्) बलपूर्वक आघात करता

और उस विद्युत् को हरणशील कान्तियुक्त धन ऋण दोनों प्रकार की धाराएं दोनों कान्तियुक्त पदार्थ धारण करती है। इसी प्रकार (यदा) जब (नदीवृतं) नदीजलवत् निरन्तर गतिशील आत्मा की धारा में विद्यमान (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को हे (वज्रिन्) ज्ञानवज्र के स्वामिन्! हे शक्तिशालिन्! तू (शवसा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (अवधीः) नाश करता है (आत् इत्) अनन्तर ही (हर्यता) तुझे चाहने वाले (हरी) स्त्री पुरुष वा मन और आत्मा (ते) तेरे विषयक ज्ञान को (ववक्षतुः) धारण करते है।

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २७ ॥

भा०—हे प्रभो! (यदा) जब (ते) तेरे (ओजसा) दिये सामर्थ्य, बल से (विष्णुः) देह मे प्रविष्ट आत्मा (त्रीणि) तीनों (पदा) ज्ञातव्य और प्राप्तव्य लोकों को (विचक्रमे) पार कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर (हर्यता हरी) कान्तियुक्त हरणशील आत्मा और मन दोनों (ते) तुझ तक (ववक्षतुः) पहुचाते है। अथवा विष्णु, सूर्य जब तीनों लोकों में व्यापता है तब (हर्यता हरी) कान्तियुक्त दोनों लोक तेरा ही बल प्रकाश धारण करते है।

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २८ ॥

भा०—(यदा) जब (हर्यता हरी) कान्ति युक्त मनोहर सूर्य और भूमि (ते) तेरे बल से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (वावृधाते) बढ़ते हैं (आत् इत्) अनन्तर ही (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियम में बंधते है।

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (यदा) जब (ते) तेरे अधीन (मारुतीः) 'मरुत्' अर्थात् प्राणों से प्राणित (विशः) प्रजाएं, (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (नियेमिरे) नियम मे बद्ध होती है, (आत् इत्) अनन्तर, उनके नियम व्यवस्थित होने के कारण (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक भी (ते) तेरे अधीन ही नियम मे व्यवस्थित होते है ।

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (यदा) जब तू (अमुं सूर्यम्) उस सूर्य को और (दिवि) सूर्य मे (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध तेज और अन्तरिक्ष मे जल और विद्युत् आदि को (अधारयः) स्थापित करता है, (आत् इत्) फलतः (ते) तेरे ही अधीन, तेरी ही व्यवस्था मे (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियन्त्रित है ।

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः ।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥

भा०—(अध्वरे पिप्रतीं जामिं पदा इव) यज्ञ मे प्रसन्न होती या करती हुई बन्धुभूत पत्नी को वर वा विद्वान् पुरोहित जिस प्रकार सप्तपदी के पैर चलने को (प्र इयर्त्ति) प्रेरणा करता है, अथवा जिस प्रकार विद्वान् गुरु बन्धुवत् शिष्य के प्रति उत्तम ज्ञान का प्रेम से प्रकाश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (विप्रः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरी (इमां सु स्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति योग्य प्रसन्न करने वाली नीति को (धीतिभिः) उत्तम वाणियों और कर्मों से (प्र-इयर्त्ति) अच्छी प्रकार वर्णन करता है ।

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् ।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥

भा०—(यद) जब (अस्य) इस परमेश्वर के (प्रिये) अति प्रिय, मनोहर (धामनि) परम सर्वाश्रय तेज या स्वरूप में (समीचीनास)

अच्छी प्रकार सुसंगत होकर विद्वान् लोग (अस्वरन्) स्तुति करते हैं, तब (यज्ञस्य) परम पूजनीय परमेश्वर के (अध्वरे) अविनाशी, हिंसारहित, दयामय (नाभा) सब को बांधने वाले, (दोहना) सब सुखों के देने वाले उस (धामनि) तेजोमय स्वरूप मे ही वे आनन्द लाभ करते है।

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे तेजोमय! हे ऐश्वर्यप्रद! जिस प्रकार (अध्वरे पूर्वचित्तये होता इव) यज्ञ मे पूर्ण ज्ञानवान् पुरुष के उपकारार्थ दानशील यजमान, उत्तम अश्व गौ आदियुक्त धन प्रदान करता है उसी प्रकार प्रभो! तू (नः) हमे भी (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये और पूर्व विद्यमान पदार्थों का ज्ञान करने के लिये वा हमारे पूर्व विद्यमान चेतनावान् आत्मा को (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त, (सु अश्व्य) उत्तम आशुगामी मन से युक्त, (सुगव्यम्) उत्तम इन्द्रियगण (दद्धि) प्रदान करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[१३]

नारदः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ११, १४, १९, २१, २२, २६, २७, ३१ निचृदुष्णिक्। २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक्। ३० आर्षी विराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्।
विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी और सत्य ज्ञान का द्रष्टा, स्वामी प्रभु (सुतेषु सोमेषु) पुत्रों और शिष्यों मे गुरु के समान उपव निष्काम उपासक विद्वानों मे (क्रतुम) कर्म, ज्ञान और (उक्थ्यम्)

वचन को भी (पुनीते) रसवत् ही पवित्र, स्वच्छ करता है। इस प्रकार वह उपासक (वृधस्य) वर्धक और (दक्षसः) बल के (विदे) प्राप्त करने के लिये यत्न करता है, क्योंकि (सः) वह प्रभु (महान् हि) बहुत बड़ा एवं पूज्य है।

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (प्रथमे) सर्वोत्तम (व्योमनि) विशेष रक्षा और ज्ञानमय परम अभय (देवानां) दिव्य सूर्यादि एवं विद्वानों को (सदने) उनके २ स्थान में (वृधः) बढ़ाने वाला, (सुपारः) सब को सुख से पालन करने, दुःखों से तारने वाला, (सुश्रवः तमः) उत्तम यश, ऐश्वर्य और ज्ञान, ख्याति आदि से सम्पन्न और (अप्सु-जित्) समस्त अन्तरिक्ष में सूर्यवत् सर्वोपरि वर्त्तमान और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और जीवों पर भी वश करने हारा है।

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (तम् इन्द्रं) उस अपार ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वाज-सातये) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने और सब में निष्पक्षपात होकर विभक्त करने के लिये और (भराय) भरण पोषण के लिये (शुष्मिणम्) उस बलवान् प्रभु को (अह्वे) बुलाता हूं। हे प्रभो ! तू (नः सुम्ने) हमारे सुख के लिये और (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अन्तमः सखा भव) अति समीपतम, परम मित्र हो।

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ऐश्वर्य के देने हारे! हे (गिर्वणः) वाणियों से सेवन करने हारे वा वाणी द्वारा उपास्यदेव ! (सुन्वतः)

अच्छी प्रकार सुसंगत होकर विद्वान् लोग (अस्वरन्) स्तुति करते है, तब (यज्ञस्य) परम पूजनीय परमेश्वर के (अध्वरे) अविनाशी, हिंसारहित, दयामय (नाभा) सब को बांधने वाले, (दोहना) सब सुखो के देने वाले उस (धामनि) तेजोमय स्वरूप में ही वे आनन्द लाभ करते है।

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजोमय ! हे ऐश्वर्यप्रद ! जिस प्रकार (अध्वरे पूर्वचित्तये होता इव) यज्ञ मे पूर्ण ज्ञानवान् पुरुष के उपकारार्थ दानशील यजमान, उत्तम अश्व गौ आदियुक्त धन प्रदान करता है उसी प्रकार प्रभो ! तू (नः) हमें भी (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये और पूर्व विद्यमान पदार्थों का ज्ञान करने के लिये वा हमारे पूर्व विद्यमान चेतनावान् आत्मा को (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त, (सु अश्व्य) उत्तम आशुगामी मन से युक्त, (सुगव्यम्) उत्तम इन्द्रियगण (दद्धि) प्रदान करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[१३]

नारदः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ११, १४, १६, २१, २२, २६, २७, ३१ निचृदुष्णिक्। २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक्। ३० आर्षी विराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्।
विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी और सत्य ज्ञान का द्रष्टा, स्वामी, प्रभु (सुतेषु सोमेषु) पुत्रो और शिष्यो मे गुरु के समान उत्पन्न वा निष्काम उपासक विद्वानों में (क्रतुम्) कर्म, ज्ञान और (उक्थ्यम्)

वचन को भी (पुनीते) रसवत् ही पवित्र, स्वच्छ करता है। इस प्रकार वह उपासक (वृधस्य) वर्धक और (दक्षसः) बल के (विदे) प्राप्त करने के लिये यत्न करता है, क्योंकि (सः) वह प्रभु (महान् हि) बहुत बड़ा एवं पूज्य है।

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (प्रथमे) सर्वोत्तम (व्योमनि) विशेष रक्षा और ज्ञानमय परम अभय (देवानां) दिव्य सूर्यादि एवं विद्वानों को (सदने) उनके २ स्थान मे (वृधः) बढ़ाने वाला, (सुपारः) सब को सुख से पालन करने, दुःखों से तारने वाला, (सुश्रवः तमः) उत्तम यश, ऐश्वर्य और ज्ञान, ख्याति आदि से सम्पन्न और (अप्सु-जित) समस्त अन्तरिक्ष मे सूर्यवत् सर्वोपरि वर्त्तमान और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और जीवों पर भी वश करने हारा है।

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (तम् इन्द्रं) उस अपार ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वाज-सातये) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने और सब मे निष्पक्षपात होकर विभक्त करने के लिये और (भराय) भरण पोषण के लिये (शुष्मिणम्) उस बलवान प्रभु को (अह्वे) बुलाता हूं। हे प्रभो! तू (नः सुम्ने) हमारे सुख के लिये और (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अन्तम सखा भव) अति समीपतम, परम मित्र हो।

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वत ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! ऐश्वर्य के देने हारे! हे (गिर्वणः) वाणियों के देने और सेवन करने हारे या वाणी द्वारा उपासनीय! (सुन्वत)

ऐश्वर्य वा जगत् भर पर आधिपत्य करने वाले (ते) तेरा ही (रातिः) दान, (क्षरति) सर्वत्र मेघ से वृष्टिवत्, यजमान के हाथ से घृताहुतिवत् बरसता है। और (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय और समस्त (अस्य बर्हिषः) इस महान् विश्व को (मन्दानः) तृप्त, प्रसन्न करता हुआ (वि-राजसि) विशेष रूप से उस पर राजावत आधिपत्य करता है, सूर्यवत् चमकता है।

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे।
रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम लोग (सुन्वन्तः) यज्ञादि करते हुए, (यत्) जिस (स्वर्विदम्) सुख प्राप्त कराने वाले, (चित्रम्) संग्राह्य, उत्तम, आश्चर्यजनक (रयिं) ऐश्वर्य को (त्वा ईमहे) तुझ से मांगते हैं (नः) हमें (नूनं) अवश्य (तत् दद्धि) उस धन को प्रदान कर। वही धन हमें (आ भर) ला, दे। इति सप्तमो वर्गः॥

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः।
वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (विचर्षणिः स्तोता) विशेष २ गुणों का प्रबल उपासक पुरुष (गिरः) वेदवाणियों को (अति-प्रशर्धयत्) बहुत अधिक रूप से कहता है, वे (यत् जुषन्त) जब प्रेम से सेवन करते हैं (वयाः इव) शाखाओं के समान (अनु रोहते) तेरे गुणों के अनुरूप ही बढ़ते हैं।

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम्।
मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (जरितः) स्तुति करने वाले की (गिरः) वाणियों को (प्रत्नवत्) वृद्ध गुरु के समान (जनय) प्रकट कर। और (हवम्) उसके आह्वान या पुकार को (शृणुधि) श्रवण कर। (मदे-मदे) प्रत्येक हर्ष के अवसर में, प्रत्येक सात्विक भाव से पुलकित होने में (सुकृ-

त्वने) शुभ कर्म करने वाले पुण्यशील जन के हितार्थ (ववक्षिथ) तू उत्तम फल प्राप्त कराता है वा उत्तम उपदेश करता है ।

क्रीळ॑न्त्यस्य सू॒नृता॒ आपो॒ न प्र॒वता॑ य॒तीः ।
अ॒या धि॒या य उ॒च्यते॒ पति॑र्दि॒वः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (अया धिया) इस प्रकार की धारणावती बुद्धि या कर्म और वाणी से (दिव पतिः उच्यते) ज्ञान-प्रकाश और समस्त जगत्-व्यवहार का पालक कहा जाता है (अस्य) उस प्रभु की (सूनृता) उत्तम सत्यमय वाणियां, अन्न रस धारायें, (प्रवता) निम्न मार्ग से (यती.) बहती (आप' न) जलधाराओं के समान (प्रवता)उत्तम मार्ग से ही (क्रीडन्ति) मानो खेलती हुई सी सर्वत्र विचरण करती हैं ।

उ॒तो पति॒र्य उ॒च्यते॑ कृष्टी॒नामेक॒ इद्व॒शी ।
न॒मो॒वृ॒धैर॑व॒स्युभिः॑ सु॒ते र॑ण ॥ ९ ॥

भा०—(उतो) और (य.) जो (नमो-वृधैः) नमस्कारों आदर वचनों से बढ़ने वाले विनीत, वृद्ध और (अवस्युभिः) रक्षा और ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों द्वारा (एकः) एक, अद्वितीय (इत्) ही (कृष्टीनाम्) आकर्षण करने वाले सूर्यादि लोकों और मनुष्यों का (पति) स्वामी पालक और (वशी) सबको वश करने हारा (उच्यते) कहा जाता है, हे मनुष्य ! तू (सुते रण) इस उत्पन्न जगत् में उसी की स्तुति किया कर । रमति शब्दार्थ ॥

स्तु॒हि श्रु॒तं वि॑प॒श्चितं॒ हरी॒ यस्य॑ प्रस॒क्षिणा॑ ।
गन्ता॑रा दा॒शुषो॑ गृ॒हं न॑म॒स्विनः॑ ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्य ! (यस्य) जिस परमेश्वर के (हरी) सेनापति के अति बलवान् दो अश्वोंवत् (हरी) मनोहर और संहारक दोनों रूप (प्रसक्षिणा) सज्जन और दुर्जन, दोनों को बलपूर्वक उत्तम रीति से विजय कर लेते हैं तू उसी (श्रुत) वेदों, उपनिषदों द्वारा गुरुमुखों से

श्रवण किये, विख्यात, (विपश्चितं) विद्वानों से जानने योग्य और (विप-चितम्) वेद वाणी से चेतव्य, ज्ञातव्य प्रभु की (स्तुहि) नित्य स्तुति किया कर। और जिसे कान्त, भीम गुण राशियें (नमस्विनः) नमस्कार, विनयादि से पूर्ण (दाशुषः) आत्मसमर्पक, दानी पुरुष के (गृहं गन्तारा) गृह मे प्राप्त होने वाले पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर। इत्यष्टमो वर्गः ॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार (तूतुजानः) शत्रु का नाश करने वाला सेनापति (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध रूप या परिपक्व रूप वाले, सुदृढ़ शरीरवान् (आशुभिः अश्वेभिः यज्ञम् आयाति) अश्वारोहियों से संगति करता है उसी प्रकार हे (महेमते) बड़े भारी राष्ट्र को सञ्चालन करने वा बड़ा फल प्राप्त करने के लिये बड़ी भारी मति, बुद्धि ज्ञान वा संकल्प वाले ! तू (तूतुजानः) विश्व का पालन करता हुआ (प्रुषित-प्सुभिः) अग्नि, सूर्यादि से प्रुषित, परिपक्व वा घृतादि से सेचित अन्न का भोजन करने वाले अथवा (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, परितप्त या तपस्वी देह वाले (आशुभिः) शीघ्रगामी, तीव्रबुद्धि, कर्मकुशल (अश्वेभिः) दृढ, विद्वान् पुरुषों और अंगों द्वारा तू (यज्ञम्) उपास्य प्रभु और यज्ञ आदि शुभ कर्म को प्राप्त हो। हे विद्वान् पुरुष ! (ते) तुझे इस प्रकार (शम् इत् हि) अवश्य शान्ति प्राप्त होगी। (२) इसी प्रकार परमेश्वर भी हमारे यज्ञ अर्थात् आत्मा को तेजोयुक्त, सूर्यादि पदार्थों सहित हमें प्राप्त हो।

इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (सत्-पते) सत्पदार्थों, सत्य ज्ञान और सत्पुरुषों के पालक ! तू (गृणत्सु) विद्वान् उपदेशकों और स्तुतिकर्त्ता भक्त जनों में वा उनके निमित्त (रयिं

धारय) ऐश्वर्य धारण कर वा उनको प्रदान कर। (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (श्रवः) ज्ञान और (अमृतं) मोक्ष और (वसुत्वनम्) ऐश्वर्य (धारय) धारण करा।

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (सप्तिभिः) सर्पणशील, वेगवान् सूर्यादि के प्रकाशादि सुखो से (नः जुषाणः) हमे प्रेम करता हुआ (नः आगहि) हमे प्राप्त हो। हे प्रभो ! हमे (उदिते) उदय हुए और (मध्यन्दिने) दिन के मध्य समय मे विद्यमान (दिवः सूरे) ज्ञान के प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी, प्रखर पाप के नाशक स्वरूप (त्वा हवे) तुझ से प्रार्थना करता हूं और (त्वा हवे) तुझे ही स्वीकार करता हूं।

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे आत्मन् ! तू (आ गहि तु) आ, प्राप्त हो, (प्र द्रव तु) खूब दयापूर्ण होकर मेघवत् आनन्द-रस का वर्षण कर, (गोमतः सुतस्य) इन्द्रियों से युक्त उत्पन्न जीव को (मत्स्व) आनन्दित कर। (पूर्व्यं) पूर्व से विद्यमान (तन्तुं) सूत्रवत् अविच्छिन्न सृष्टि को (तनुष्व) विस्तृत कर (यथा) जिससे मैं जीव भी (विदे) ज्ञान प्राप्त करूं। (२) अथवा—हे जीव ! तू आगे आ, आगे बढ़, भूमि से उत्पन्न ओषधि आदि से तृप्त हो। पूर्व परम्परा से चले आये तन्तु रूप प्रजा सन्तति का विस्तार कर। (यथा विदे) जिससे तू आनन्द लाभ करे।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) विघ्न अन्य-

कारादि के नाशक ! (यत् परावति) जो तू दूर देश मे (यत् अर्वावति) जो तू समीप मे और (यद् वा समुद्रे) जो तू समुद्र या आकाश मे है तू (अन्धस) प्राणाधारी जीव गण का (अविता इत् असि) रक्षक ही है। तू सर्वत्र जीवो का रक्षक है। इति नवमो वर्गः ॥

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥

भा०—(न.) हमारी वाणियां (इन्द्रं वर्धन्तु) ऐश्वर्य के देने वाले प्रभु को बढ़ावे, उसका गुण गान करे। अथवा (इन्द्रं) इन्द्र को लक्ष्य करके कही गई (गिरः) वेदवाणियां (नः वर्धन्तु) हमारी वृद्धि करे। इसी प्रकार (सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ वा जीव गण (इन्द्रं वर्धन्तु) इन्द्र को बढ़ावे, वे भी उसी की महिमा बतलावे। (हविष्मतीः विशः) अन्नादि से समृद्ध प्रजाएं भी (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा के अधीन सुरक्षित प्रजाओ के समान (इन्द्रे) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु मे निमग्न रहकर (अराणिषुः) रमण करे। (२) इसी प्रकार प्रजा की वाणिये और ऐश्वर्यादि राजा की वृद्धि करे। वे राजा के अधीन सुखी रहे।

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः।
इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥ १७ ॥

भा०—(अवस्यवः) रक्षण और ज्ञान की कामना करने वाले (क्षोणीः) जन (प्रवत्वतीभि ऊतिभि.) उत्तम साधनो से युक्त बलवती सेनाओं के स्वामी भी (इन्द्रं) सेनापति के समान अति शक्तियुक्त प्रबल रक्षाओं से समृद्ध (तम् इत् इन्द्रं) उस ही परमेश्वर को समस्त (क्षोणी) मनुष्य और भूमियां (वया. इव) शाखाओं के समान (अवर्धयन) बढ़ाती है। उसकी ही महिमा को बढ़ाती है।

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥ १८ ॥

भा०—(देवासः) समस्त विद्वान् गण और सूर्य पृथिवी आदि लोक भी (त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोको मे (तम् इत् चेतनं) उस ही, चेतन, ज्ञानवान् (यज्ञं) सर्वोपास्य प्रभु को (अत्नत) फैला रहे है, उसी के महान् सामर्थ्य का विस्तार कर रहे है । उस (सदावृधं) सदा वृद्धिशील, महान् प्रभु को (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां भी बढ़ावे, उसी की जयकार करें, उसी को बड़ा मनावें ।

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार से (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता, उपासक (ते अनु व्रतः) तेरे अनुकूल व्रत आचरण करता हुआ, (ऋतुथा) भिन्न २ ऋतु आदि कालों में (उक्थानि) उत्तम वेद-वचनो को धारण करता है । भगवन् ! (सः) वह तू (शुचिः) शुद्ध, (पावकः) परम पावन और (अद्भुत) अद्भुत, आश्चर्यकारक और अजन्मा (उच्यते) कहा जाता है।

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(रुद्रस्य) सब दुःखों के दूर करने वाले उस प्रभु का (तत् इत्) वही (यह्वं) महान् बल, सामर्थ्य (प्रत्नेषु धामसु) पुरातन सूर्यादि लोकों मे (चेतति) जाना जाता है (यत्र) जिसमे (वि चेतसः) विशेष ज्ञानी जन (तत् मनः विदधुः) अपना मन स्थिर करते और (तत् दधु) उसका ज्ञान प्राप्त करते है। इति दशमो वर्गः ॥

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (यदि) यदि तू (मे सख्यम् आ-वरः) मेरे मित्र भाव को स्वीकार करता है (इमस्य अन्धसः) इस प्राणधारी जीव सृष्टि का (पाहि) पालन कर । (इमस्य अन्धसः पाहि) इस प्राणधारक अन्न का उपभोग कर, अहिंसा का पालन कर (येन) जिस से (विश्वाः द्विषः) समस्त प्रकार के द्वेष के भावो और शत्रुओ को भी हम (अति अतारिम) पार करे । जीव संसार का पालन करने से उनके भीतर के द्वेष टूट जाते है।

कुदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।
कुदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) 'गिरा' अर्थात् वेद वाणी से स्तवन करने योग्य, हे वेदवाणी के दातः! हे वाणी द्वारा, स्तवन भजन करने योग्य ! हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (ते स्तोता) तेरी स्तुति करने वाला (शन्तम कदा भवाति) अति शान्तियुक्त कब होता है ? और (नः) हमें (गव्ये) गौ आदि पशु, इन्द्रियों और वाणी से समृद्ध (अश्व्ये वसौ) अश्वों, विद्वानो और मन आदि साधनों से युक्त भूमि, देह, ज्ञान एवं निवास करने योग्य गृह, आचार्यगृह और राष्ट्र तथा प्रभु-शरण मे (कदा दधः) कब रक्खेगा ?

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक (यम्) जिस सुख की हम भी (ईमहे) याचना करते है । (अजुर्यस्य) अविनाशी, जरादि रहित (ते) तेरे (रथम्) रमण करने योग्य, सुखप्रद (मदिन्तमम्) अति अधिक हर्षदायक, सुख और ऐश्वर्यमय तेरे स्वरूप या ज्ञानोपदेश को, रथ के घोड़ों के समान (सु-स्तुता) उत्तम प्रशंसित और शिक्षित (वृषणा) बलवान् (हरी) स्त्री पुरुष ही (वहतः) धारण करते है ।

तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।
नि बर्हिषि प्रिये सददध द्विता ॥ २४ ॥

भा०—हम लोग (तम्) उस (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुति करने योग्य (यह्वं) महान् (तम्) उस प्रभु परमेश्वर को (प्रत्नाभिः) सनातन से विद्यमान (ऊतिभिः) ज्ञान वाणियो से (ईमहे) प्रार्थना करते है, (अध) और उसका ज्ञान करते है । वह (प्रिये) अतिप्रिय (बर्हिषि) वृद्धिशील संसार में प्रिय राष्ट्र मे राजा के समान तू (द्विता) दोनो ही प्रकार से (नि सदत्) विराजता है प्रभु के दो रूप सज्जनों का पालक और दुष्टों को दण्डदाता ।

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति करने योग्य प्रभो ! हे बहुतों द्वारा राजपद के लिये प्रस्तुत राजन् ! तू (ऋषि-स्तुताभिः) विद्वान् मन्त्रार्थद्रष्टा, तत्वज्ञानी पुरुषों से स्तुति की वा उपदिष्ट (ऊतिभिः) ज्ञानवाणियों वा रक्षा के उपायों से वा प्रिय वचनों से (वर्धस्व) बढ । तू (पिप्युषीम्) सब को बढ़ाने वाली और तृप्तिकारक (इषम्) अन्नसम्पदा को (धुक्षस्व) पृथ्वी से प्राप्त कर और हमें दे और (नि अव च) हमारी रक्षा कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः ।
ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! स्वामिन् ! हे (अद्रिव) अविदीर्ण, अदम्य शक्ति के मालिक ! तू (इत्था स्तुवत) इस प्रकार स्तुति करने वाले का (अविता इत् असि) रक्षक ही है । (ऋतात्) सत्य ज्ञानमय वेद से मैं (ते) तेरे उपदिष्ट (मनोयुजं) मन के साथ योग करने वाले, वा ज्ञान की सहयोगिनी (धियं) वाणी और कर्म को (इयर्मि) प्राप्त करूं ।

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमपीतये) 'सोम' ऐश्वर्य के पालन और उपभोग करने के लिये वा हे आचार्य विद्वन् ! तू 'सोम' वीर्य की रक्षा करने के लिये (सधमाद्या) एक साथ आनन्द लेने वाले (त्या) उन दोनों (प्रतद्-वसू) उत्तम विस्तृत ऐश्वर्यों के स्वामी (हरी) स्त्री पुरुषो को (इह) इस जगत् वा आश्रम मे (युजानः) रथ मे अश्वो के समान सन्मार्ग मे नियुक्त करता हुआ (अभि स्वर) उनको उपदेश कर ।

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।
उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! (ये) जो (रुद्रासः) अन्यो का दुःख दूर करनेवाले, अन्यों को दुःखी देख कर करुणा से स्वयं रोने या आसू वहाने वाले वा उत्तम उपदेष्टा एवं दुष्टो को रुलाने वाले पुरुष (तव अभि) जो तेरे गुणो का साक्षात् कर (स्वरन्तु) स्तुति करते और औरो को उसका उपदेश करते है वे (श्रियं सक्षत) लक्ष्मी, शोभा आदि को प्राप्त करते है । (उतो) और (मरुत्वतीः विशः) वे प्राणों से या 'मरुत्' विद्वानो, वीरो और वैश्य जनों से युक्त प्रजाओं को भी (प्रयः अभि) अन्न आदि प्राप्ति-योग्य तृप्ति-सुखकारक पदार्थ प्राप्त करावें ।

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि ।
नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९ ॥

भा०—(इमाः) ये (अस्य) इस राजा की (प्र-तूर्त्तयः) उत्तम रीति से शत्रु वा दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाली सेनाएं और उत्तम एवं शीघ्र कार्य करने में कुशल प्रजाएं (यत्) जो (दिवि) भूमि में (पदं) उत्तम स्थान (जुषन्त) प्राप्त करती हैं वे (यथा विदे) यथावत् श्रम के

अनुसार द्रव्य लाभ करने के लिये (नाभा) नाभिवत् राष्ट्र के उत्तम प्रबन्धक पुरुष के अधीन, उसी के आश्रय पर (यज्ञस्य सं दधुः) परस्पर दान-प्रतिदान, संगति, मान-सत्कार आदि का अच्छी प्रकार व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार (प्र-तूर्तयः) इस प्रभु की उत्तम प्रजागण जब (दिवि पदं जुषन्त) उस प्रकाशस्वरूप प्रभु मे स्थिति वा ज्ञान को प्राप्त कर लेते है वे (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और आनन्द के लाभ के लिये (नाभौ) नाभि देश में (यज्ञस्य) पूज्य प्रभु का (सं दधुः) उत्तम रीति से धारण, ध्यानादि करते है।

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे।
मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—(अयम्) यह विद्वान् (प्राचि) उत्तम रीति से पूज्य (अध्वरे) हिंसादि से रहित एवं अविनाशी (प्रयति) उत्तम यत्न से करने योग्य यज्ञमय प्रभु के आश्रय ही (दीर्घाय) बड़े भारी विस्तृत (चक्षसे) दर्शन या तत्वज्ञान के लाभ के लिये (वि-चक्ष्य) विशेष रूप से देख कर (आनुषक्) निरन्तर (यज्ञम् मिमीते) यज्ञ वा देवपूजा का सम्पादन करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी।
वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्! (अयम्) यह (ते) तेरा (रथ) रथ रमणीय स्वरूप (वृषा) बलवान्, सुदृढ़ है। (ते हरी) तेरे दोनों अश्व भी (वृषणा) बलवान् है। हे (शतक्रतो) सैकड़ों, अनेक प्रज्ञा और कर्म वाले! (त्वं वृषा) तू बलवान् है। तेरा (हवः) आह्वान, दान एवं नाम, स्मरणादि भी (वृषा) बलयुक्त, सुखों का देने वाला है। (२) इसी प्रकार राजा का रथ राष्ट्र, उसके वासी स्त्री पुरुष, राजा स्वयं और उसका व्यवहार सब बलवान् हों।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥

भा०—(ग्रावा वृषा) मेघवत् उपदेष्टा विद्वान् और प्रस्तरवत् शत्रुनाशक क्षात्रबल बलवान् हो । हे राजन् ! (मदः वृषा) तेरा यह 'मद' हर्ष, प्रसन्नता भी (वृषा) सुखप्रद और दृढ़ हो । (अयं सुतः) यह उत्पन्न (सोमः) पुत्रवत् राष्ट्र वा अभिषिक्त राजपुरुष भी (वृषा) बलवान् हो। (यज्ञः) परस्पर का मेल वा दान-प्रतिदान व्यवहार (यम् इन्वसि) जिसको तू करता है, वह भी (वृषा) बलवान्, दृढ़, सुखप्रद हो। (हवः वृषा) शत्रु के साथ प्रतिस्पर्द्धा और ललकार भी (वृषा) सुखप्रद और बलवान्, दृढ़ हो ।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥ ३३ ॥ १३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् (चित्राभिः) आश्चर्यजनक नाना (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं वा रक्षाओं से युक्त (वृषणं) बलवान् तुझ को (वृषा) मैं प्रजाजन (हुवे) स्वीकार करता हूं । तू (वृषा) सब सुखों का दाता, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता और (हवः) शत्रुओं के साथ प्रतिस्पर्द्धाशील होकर ही (प्रतिस्तुति वावन्थ हि) सर्वत्र स्तुति को प्राप्त कर। (२) प्रभु नाना रक्षाओं से सुखप्रद है। वह संसार का प्रबन्धक, (हवः) स्तुत्य है, सबकी स्तुति प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४]

गोपक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् गायत्री । २, ४, ५, ७, १५ निचृद्गायत्री । ३, ६, ८—१०, १२—१४ गायत्री ॥ पञ्चदश सूक्तम् ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जिस प्रकार (त्वम् एकः (इव) तू एक अद्वितीय ही (वस्वः ईशीय) ऐश्वर्य और बसे जीवगण का स्वामी है, (यद् अहं) वैसे ही जो मैं होऊं। फिर जिस प्रकार तेरा (स्तोता गो-सखा) स्तुतिकर्त्ता उत्तम वाणियो और इन्द्रियों का मित्र होता है उसी प्रकार इस लोक मे ऐश्वर्यसम्पन्न (मे) मेरा (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता वा उपदेष्टा विद्वान् भी (गो-सखा) भूमि का मित्र, वाणी का मित्र, गोसम्पदा का मित्र, 'गो' धनुष डोरी का मित्र, अर्थात् भूमि, वाणी, पशु और शस्त्रादिसम्पन्न बलवान् (स्यात्) हो।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तियों और वाणियों के स्वामिन् ! (यद् अहं गोपतिः स्याम्) जो मैं 'गोपति', भूमिपति, वाणियो का स्वामी विद्वान् एवं धनुर्धर होऊं तो (अस्मै मनीषिणे) इस मन पर वश करने वाले मननशील शिष्य को (शिक्षेयं) ज्ञान की शिक्षा दूं। (अस्मै मनीषिणे) इस ज्ञान के देने वाले विद्वान् को (दित्सेयं) धनादि देने की इच्छा करूं और (शिक्षेय) दूं भी।

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानप्रद ! तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! गुरो ! विद्वन् ! (सुन्वते) शुभकर्म करने वाले, ज्ञान-स्नान करने वाले (यजमानाय) देवपूजा, सत्संग शील के लिये (सूनृता) उत्तम सत्य, न्याययुक्त (ते धेनु) तेरी वाणी (पिप्युषी) उसे बढ़ाती हुई (गाम् अश्वं दुहे) गौ अश्वादि सम्पदा भी प्रदान करती है।

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः।
यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (यत्) जब (मघं दित्ससि) उत्तम ऐश्वर्य देना चाहता है तो (ते राधसः) तेरे दिये धन का (वर्त्ता) वारण करने वाला (न देवः न मर्त्यः) न कोई देव, विद्वान् तेजस्वी है और न साधारण मनुष्य है । तेरा दिया उसे अवश्य प्राप्त होता है ।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ५।१४

भा०—(दिवि) आकाश मे (ओपशं) मेघ को (चक्राणः) उत्पन्न करता हुआ (यत्) जो यज्ञ (भूमि वि-अवर्त्तयत्) भूमि को विविध सस्यादि से सम्पन्न करता है, वह ही (इन्द्रम् अवर्धयत्) सूर्यवत् प्रभु की महिमा को बढाता है । अथवा—(यत्) जो इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा सूर्यवत् (भूमिं अवर्त्तयत्) भूमि को विविध प्रकार से काम में लाता, (दिवि ओपशं चक्राणः) तेज मे या भूमि मे स्थिति प्राप्त करता है, उसको (यज्ञः) प्रजाओ का संग बढ़ाता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—(विश्वा धनानि) समस्त धनों को (जिग्युषः) जीतने वाले और (वावृधानस्य) निरन्तर बढ़ने वाले महान् (ते) तेरी (ऊति) रक्षा को ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (वयं वृणीमहे) हम वरण करते है ।

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ७

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी होकर (यत्) जब (वलम्) घेरने वाले शत्रु को मेघ के समान (अभिनत्) छिन्न भिन्न करता है तब वह (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य प्राप्ति वा राष्ट्र के लाभ रूप हर्ष में (रोचना) रुचियुक्त होकर (अन्तरिक्षम् वि-अतिरत्) अपने अन्तःकरण को भी आकाशवत् बड़ा कर लेता है, उदार होजाता है । इसी प्रकार जो

परमेश्वर आवरणकारी अज्ञान को छिन्न भिन्न करदेता है, आनन्द मे (रोचना सोमस्य) रुचि करने वाले जीव के (अन्तरिक्षम् वि-अतिरत्) हृदय को बढ़ाता है, उसको उत्साहित करता है ।

उद्गा आ॑जदङ्गि॑रोभ्य आविष्कृ॒ण्वन्गुहा॑ स॒तीः ।
अ॒र्वाञ्चं॑ नुनुदे व॒लम् ॥ ८ ॥

भा०—वह परमेश्वर (अंगिरोभ्यः) तेजस्वी विद्वानो वा प्राणधारी जीवों के उपकार के लिये (गुहा सतीः) अन्तःकरण मे प्राप्त हुई (गाः) वेदवाणियों को शिष्यों के गुरु के समान (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (उत् आजत्) उदित करता है, और (अर्वाञ्चं) आगे आये (वलम्) आत्मा को घेरने वाले अज्ञान को (नुनुदे) परे भगा देता है। इसी प्रकार प्रभु ऋषियों के हृदय में गुरुवत् ज्ञान प्रकाशित करता है ।

इन्द्रे॑ण रोच॒ना दि॒वो दृ॒ळ्हानि॑ दृंहि॒तानि॑ च ।
स्थि॒राणि॒ न प॑रा॒णुदे॑ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रेण) उस ऐश्वर्य के स्वामी, परमेश्वर ने (दिवः) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश के (रोचना) कान्तियुक्त वा रुचिकारक, नाना पदार्थ (दृढानि) दृढ़ किये और (दृंहितानि) बढ़ाये, (स्थिराणि) स्थिर, सदा विद्यमान रहने वाले बनाये, (न परानुदे) जिससे वे फिर चिरकाल तक नाश न होसकें ।

अ॒पामू॒र्मिर्मद॑न्निव॒ स्तोम॑ इन्द्राजिरायते ।
वि ते॒ मदा॑ अराजिषुः ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (स्तोम) स्तुतिप्रवाह (मदन् इव) हर्षने (अपाम् ऊर्मि इव) समुद्रों के तरंग के समान (अपाम् ऊर्मिः) प्राणों के तरंगवत् (अजिरायते) वेग से उठता है, (ते मदाः) तेरे आनन्द प्रवाह (वि अराजिषुः) विविध प्रकार से विराजते हैं । परमेश्वर

के प्रति स्तुतिसमूह प्राणों के उठते प्रवाह रूप से जल तरंगवत् हृदय समुद्र से उछलता है, प्रभु के आनन्द ही मानो सर्वत्र प्रकाशित हो रहे हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतृणामुत भद्रकृत् ११

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (स्तोतृणाम्) स्तुतिकर्त्ता जनो के (हि) अवश्य (स्तोम-वर्धनः) स्तुति समूह को बढाने वाला और (उक्थ-वर्धनः) उत्तम वचन को बढ़ाने वाला (उत) और (भद्रकृत्) उनका कल्याण करने वाला है।

इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः। उप यज्ञं सुराधसम् १२

भा०—जिस प्रकार (केशिना हरी इन्द्रम् वक्षतः) केशों वाले अश्व ऐश्वर्यवान् पुरुष को ढोते है उसी प्रकार (केशिना हरी) क्लेशो वाले स्त्री पुरुष वा ज्ञानी और कर्मवान् पुरुष (सोम-पेयाय) सुखैश्वर्य को प्राप्त करने और उसके उपभोग के लिये (इन्द्रम् इत् वक्षतः) उस परमेश्वर को हृदय मे धारण करते और उसकी ही स्तुति करते है। वा (केशिना हरी इन्द्रम् सोमपेयाय वक्षतः) जटावान् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी भी इन्द्र आचार्य को ज्ञान प्राप्तयर्थ प्राप्त करते है। और वे दोनों, (सु-राधसम्) उत्तम आराधना योग्य (यज्ञम् उप) पूज्य, उपासनीय प्रभु की उपासना करते है।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।

विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्त ! ज्ञान के द्रष्टा ! (यत)जब (विश्वा) समस्त (स्पृधः) स्पर्धाओं, द्वेषो और कामनाओं को (अजयः) जीत लेता है, तब तू (अपां) प्राणो के (फेनेन) बल से (नमुचेः) न छूटने वाले देह के (शिरः) शिरो भाग की ओर (उत् अवर्त्तय) ऊर्ध्व गति करता है। (२) इसी प्रकार राजा जब स्पर्धा मे सेनाओं को जीत ले तब (नमुचेः) न जीता छोडने योग्य शत्रु के शिर या विचार को (अपां

फेनेन) प्राप्त जनों के उपदेश-बल से (उत् अवर्त्तयः) उत्तम मार्ग में प्रवृत्त करावे। अथवा—(शिरः) शत्रु के शिर अर्थात् प्रमुख भाग को (अपां फेनेन) प्रजाओं के हिंसाकारी बल सैन्य से (उद्-अवर्त्तयः) उखाड़ दे।

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः १४

भा०—हे (इन्द्र) सत्यदर्शिन्! हे शत्रुहन्तः! तू (मायाभिः) नाना बुद्धियों से (उत्-सिसृप्सतः) ऊपर जाना चाहते हुए और (द्याम्) तेजोयुक्त प्रभुपद वा शिरोभाग के मूर्धा स्थान की ओर (आरुरुक्षतः) आरोहण करने वाले सज्जनों की रक्षा कर और (मायाभिः) छल कपटादि से ऊंचे जाने वाले (द्याम्) भूमि राज्य पर (आरुरुक्षतः) आरूढ होने वाले (दस्यून् अव अधूनुथाः) दस्युओं को नीचे गिरा दे। अर्थापत्ति के बल से यहां सज्जनों को वृद्धि करने का अभिप्राय है।

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः।
सोमपा उत्तरो भवन्॥ १५॥ १६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों के नाशक! तू (सोम पा:) ऐश्वर्य, राष्ट्र के प्रजाजन और विद्वान् आदि का रक्षक (उत्तर:) सबसे उत्कृष्ट, सबको पार ले जाने वाला (भवन्) होकर (असुन्वा संसदम्) ऐश्वर्य को न उत्पन्न करने वाली और (विषूचीम्) विपरीत अराजक दिशा में जाने वाली (संसदं) राजा वा जन-सभा को (वि-अनाशय:) विशेष रूप से नष्ट कर। इति षोडशो वर्ग:॥

[१५]

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (तम् उ) उसी (पुरु-हूत) बहुतो से स्वीकृत, (पुरु-स्तुतम्) बहुतो से स्तुति किये जाने योग्य (तविषम्) बलशाली, सर्वशक्तिमान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को लक्ष्य कर (अभि प्र गायत) खूब अच्छी प्रकार गान करो । (गीर्भिः) नाना स्तुति वाणियो से (आ विवासत) आदरपूर्वक सेवा और उपासना करो ।

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ २ ॥

भा०—(द्वि-बर्हसः) आकाश और भूमि दोनो को धारण करनेवाले दोनों के स्वामी रूप (यस्य बृहत् सहः) जिसका बल बहुत बडा है वह (वृषत्वना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी दाधार) आकाश और भूमि को धारण करता है, वह (अज्रान् गिरीन्) वेग से जाने वाले मेघों को (अपः) समुद्र वा आकाश के जलों को और (स्वः) सूर्य को वा प्रकाश को भी अपने बल से (दाधार) धारण करता है ।

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! (सः) वह तू (पुरु-स्तुत) बहुतों से प्रशंसित, बहुतो की स्तुति प्रार्थनादि किये जाने योग्य (एकः) अकेला निःसहाय, अद्वितीय रहकर (राजसि) राजा के समान है । वह तू (एकः) अकेला ही (जैत्रा) विजय करने योग्य और (श्रवस्या) श्रवण करने योग्य धनों, अन्नों और ज्ञानों को (यन्तवे) देने के लिये (वृत्राणि जिघ्नसे) मेघों को विद्युत्वत्, आवरणकारी अज्ञानों को नाश करता है ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अद्रिव) वीर्यवन् ! हे अखण्ड शक्तिशालिन् ! (ते) तेरे (तं) उस (वृषणं) महान् शक्तिसम्पन्न, सब सुखो के दाता, (पृत्सु सासहि) संग्रामो मे शत्रु को पराजय करने वाले (लोक-कृत्नुम्) समस्त लोको को बनाने वाले और (हरि-श्रियम्) सूर्यादि लोको और समस्त मनुष्यों के आश्रय लेने योग्य (मदं) परमानन्द की हम (गृणीमसि) स्तुति करते हैं।

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (येन) जिस संसार द्वारा (आयवे) इस संसार मे पुन. २ आने वाले (मनवे) मननशील जीव संसार को (ज्योतींषि) अग्नि आदि और विद्युत्वत् चमकने वाले वेदमय ज्ञान-प्रकाश (विवेदिथ) प्राप्त कराता है वह तू (मन्दान.) स्वयं आनन्दमय होकर (अस्य बर्हिषः) इस महान् संसार के बीच मे (वि राजसि) विविध प्रकार से चमकता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(तत्) वे विद्वान् जन (अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्ववत् (उक्थिनः) वेद वचन वा मन्त्रों के जानने वाले (ते) तेरे यश का (अनु स्तुवन्ति) नित्य स्तवन करते है। हे बलशालिन् ! (दिवे दिवे) प्रति दिन, नित्य, (वृषपत्नी) बलवान् पुरुषों द्वारा पालने योग्य (अप.) प्रकृति के परमाणुओं को (जय) अपने वश करता है। उसी प्रकार राजा की सब स्तुति करते है वह बल पुरुषों से पालन करने योग्य प्रजाओं और भूमियो को प्रतिदिन विजय करे।

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन्।
इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥ १३ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो! (नः) हमारे (महे क्षयाय) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के रुचियुक्त, कान्तियुक्त पदार्थ नाना रूप वाले अश्व, गौआदि प्राणि (अरं आविशन्) खूब प्राप्त हों अथवा हमारे ही ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (विश्वा) समस्त जीव (रूपाणि अविशन्) नाना देहों को प्राप्त होते है। हे विद्वन्! (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति के तुल्य इस अध्यात्मगत तेजस्वी प्रभु को भी (जैत्राय) सब अन्तःशत्रुओं और प्राकृतिक ऋद्धियों पर विजय प्राप्त करने के लिये उस (शचीपतिम्) शक्तियो के पात्र प्रभु को (हर्षय) प्रसन्न कर। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६—१२ गायत्री । २—७ निचृद् गायत्री । ८ विराट् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—(चर्षणीनाम् सम्राजं) समस्त ज्ञानदर्शी, तत्व ज्ञानी मनुष्यों के बीच में अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाले, सम्राट् के समान सर्वोपरि शोभायमान, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (नव्यं) स्तुति योग्य (नरं) नायक, परम पुरुष (नृ-साहं) मनुष्यों को वश करने वाले (मंहिष्ठम्) अतिदानशील पुरुष, प्रभु का (गीर्भिः स्तोत) वेद वाणियों से स्तुति किया करो।

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥

भा०—(समुद्रे अपाम् अव) जिस प्रकार समुद्र मे जलों के नाना प्रवाह वा तरंग आते और इसी मे लीन होजाते है इसी प्रकार (यस्मिन)

जिस प्रभु मे (विश्वानि उक्थानि) समस्त स्तुति-वचन और (विश्वानि श्रवस्या च) सब प्रकार के श्रवण करने योग्य कीर्त्ति वचन भी (रण्यन्ति) रमते हैं, उसी का वर्णन करते है। (तम् सुस्तुत्या विवासे) उस प्रभु का मैं स्तुति द्वारा भजन, सेवन और प्रकाश करूं।

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (ज्येष्ठ-राजं) बड़ो २ के राजा, बड़े २ सूर्यादि में प्रकाशमान (भरे कृत्नुम्) भरण पोषण करने योग्य संसार मे जगत् को बनाने वाले (महः वाजिनम्) बड़े बल, ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी को मैं (सनिभ्यः) नाना भागों या दानो के लिये (सुस्तुत्या आविवासे) उत्तम स्तुति से उसकी सेवा, अर्चा और पूजा तथा उसके गुणो का प्रकाश करूं।

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः। हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु के (मदा·) आनन्दमय विकास वा (मदा·) आनन्ददायक व्यवहार, तृप्तिदायक जलाशयवत् रस सागर और आनन्द युक्त पुरुष (अनूना·) किसी प्रकार भी न कम, परिपूर्ण, (गभीरा) गभीर, (उरव·) बडे २ और (तरुत्राः) वृक्षों के इर्द गिर्द लगे वाड़ के समान समस्त प्राणियों की रक्षा करनेवाले, वा इस संसार से पार उतारने वाले और (शूर-सातौ) शूरवीरो के प्राप्ति के अवसर, संग्रामादि में भी (हर्षुमन्त·) अति हर्षयुक्त है वही परमेश्वर राजा के समान सबका पालक है।

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते। येषामिन्द्रस्ते जयन्ति॥५॥

भा०—(हितेषु धनेषु) हितकारी, कल्याणजनक धनों को प्राप्त करने के निमित्त (अधिवाकाय) अध्यक्ष रूप से आज्ञा वा निर्णय वचन करने वाले अध्यक्ष पद के लिये विद्वान् लोग (तम् इत् हवन्ते) उसी से

प्रार्थना करते है कि हम लोगो के ऊपर विराज कर न्याय निर्णय करे। (येषाम् इन्द्रः) जिनके पक्ष मे 'इन्द्र' सत्य न्याय का द्रष्टा होता है (ते) वे (जयन्ति) विजय प्राप्त करते है। वे ही विवादग्रस्त धन के भागी होते है। 'इन्द्र':—इदम् अदर्शत् इति इन्द्रः ।

तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः ।
एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(एषः इन्द्रः) यह ऐश्वर्य का स्वामी, तेजस्वी प्रभु ही (वरिवस्कृत्) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है। (तम् इत्) उस को (च्यौत्नै) वलों, ज्ञानों और (कृतेभिः) सत्कर्मों से (चर्षणयः) सब मनुष्य (आर्यन्ति) सब प्रकार से प्राप्त करते, उसको अपना स्वामी बना लेते है, उसकी उपासना प्रार्थना करते है। इति विंशो वर्गः ॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः ।
महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥

भा०—इन्द्र का लक्षण और नाना भेद । (इन्द्रः ब्रह्मा) ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने से चारों वेदो का ज्ञाता महान् ज्ञानी पुरुप 'इन्द्र' है। (ऋषिः इन्द्रः) यथार्थ ज्ञान का तत्वदर्शी इन्द्र है। वह अपनी वाणी औरो को प्रदान करता है। वह (पुरुहूतः) बहुतो से आदर प्राप्त होता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियो और पूज्य २ वाणियों करके (महान्) महान् है और (पुरु) बहुत प्रकार से विराजता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी महान् होने मे 'ब्रह्म' है, सर्वद्रष्टा होने से 'ऋषि' है, वह वडी २ शक्तियों मे 'महान्' है।

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः ।
एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (स्तोम्यः) स्तुति योग्य वचनों से या सूक्तों से स्तुति करने योग्य है। (सः हव्यः) वह यज्ञ और प्रार्थनादि

से सत्कार योग्य है। वह (सत्यः) सत्य स्वरूप, (सत्वा) बलवान्, (तुवि-कूर्मिः) बहुत से नाना कर्म करने हारा है। वह (एकः चित्) अकेला ही, (सन्) सर्वत्र प्राप्त और (अभि-भूतिः) सब विघ्नों और शत्रु जनों का पराजय करने हारा है।

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः।
इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः॥ ९॥

भा०—(तम् इन्द्रं) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञान के द्रष्टा विद्वान् लोग (अर्केभिः) अर्चना करने योग्य मन्त्रों से और (तं सामभिः) उसी को साम गानों से और (तं गायत्रैः) उसीको गायत्री आदि नाना छन्दों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। उसी का गुण गान कर उसकी महिमा का विस्तार करते हैं।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।
ससहांसं युधामित्रान्॥ १०॥

भा०—और वे मनुष्य (वस्यः) उत्तम ऐश्वर्य को (अच्छ प्रणेतारम्) साक्षात प्रयाग करने वाले और (समत्सु) संग्रामवत् संदिग्ध, भययुक्त संकट के अवसरों में भी (ज्योतिः कर्तारम्) प्रकाश करने वाले, (युधा) युद्ध द्वारा (अमित्रान् ससहांसं) स्नेह से रहित शत्रुवर्ग के पराजित करने वाले की ही विद्वान् लोग स्तुति करते हैं।

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः॥ ११॥

भा०—(स पुरुहूत) वह बहुतों से पुकारे जाने वाला (इन्द्र) महात्मा, परमैश्वर्यवान् प्रभु, (पप्रि) सब का पालक (विश्वा द्विष) सब अप्रीति कर शत्रुओं का संकटों से (नावा) नौका से नदियों के समान (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक, सुख से (अति पारयाति) पार करे।

स त्वं न॑ इन्द्र॒ वाजे॑भिर्दश॒स्या च॑ गातु॒या च॑ ।
अच्छा॑ च नः सु॒म्नं ने॑षि ॥ १२ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! प्रभो ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों और बलों करके (दशस्य) सुख प्रदान कर और (गातुया च) उत्तम सुख की ओर मार्ग दिखा । (अच्छ च नः सुम्नं नेषि) हमे सुख की ओर ले चल । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१७]

हरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७, ८ गायत्री । ४—६, ९—१२ निचृद् गायत्री । १३ विराड् गायत्री । १४ आसुरी बृहती । १५ आर्षी भुरिग् बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

आ या॑हि सुषु॒मा हि त॒ इन्द्र॒ सोमं॒ पिबा॑ इ॒मम् ।
एदं ब॒र्हिः स॑दो॒ मम॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे विद्वन् ! राजन् ! तू (आयाहि) हमे प्राप्त हो, आ, (ते) तेरे लिये ही हम (इमं सोमं) इस पुत्र वा ऐश्वर्य को (सु-सुम) उत्पन्न करते है । हे प्रभो ! तेरे लिये ही इस सोम, आत्मा को सन्मार्ग पर चलाते है, (इमं पिब) इसकी रक्षा कर । (इदं बर्हिः) यह वृद्धियुक्त प्रजाजन एवं आसनवत् (मम सदः) मेरा दिया आपके विराजने के लिये है । उस पर (आ सदः) आप विराजिये ।

आ त्वा॑ ब्रह्म॒युजा॒ हरी॒ वह॑तामिन्द्र के॒शिना॑ ।
उप॒ ब्रह्मा॑णि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (केशिना हरी) केशों वाले दो अश्व स्वामी के रथ को लेजाते है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ब्रह्म युजा) वेद ज्ञान के सहयोगी (केशिना हरी) केशोंवत्, रश्मियों तेजों को धारण करने वाले स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य, (त्वा आ वहताम्) तुझे आगे में

धारण करें। तू (नः ब्रह्माणि) हमारे वेद-मन्त्रों को (उप शृणु) श्रवण कर। हे विद्वन्! गुरो! तू हमे नाना वेदज्ञान समीप विराज कर (उप-शृणु) श्रवण करा॥ अन्तर्भावितो णिः॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे॥ ३॥

भा०—(वयं ब्रह्माणः) हम ब्राह्मण, स्तुतिकर्त्ता एवं ब्रह्मचारी जन, (सोमिनः) 'सोम' अर्थात् उत्तम ज्ञान, अन्न, सन्तान से युक्त और (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादिमान् होकर (युजा) योग द्वारा वा उत्तम गुरु शिष्यरूप सम्बन्ध द्वारा (सोमपां त्वाम्) सोम, शिष्यादि के पालक तुझको (हवामहे) प्रार्थना करते है। इसी प्रकार हे राजन्! हम (ब्रह्माणः) धनसम्पन्न जन, ऐश्वर्यवान् और अन्नादिसम्पन्न होकर तुझे ऐश्वर्य पालक स्वीकार करें।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः॥ ४॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुकुट वा उत्तम मुख नासिका वाले, सौम्यमुख विद्वन्! राजन्! तू (सुतावतः नः) पुत्रवान् एवं ऐश्वर्यादि युक्त हमें (आ याहि) प्राप्त हो। (अस्माकं सुष्टुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियों को सुन वा हमें उत्तम उपदेश प्रदान कर। (अन्धसः सुपिब) अन्न का उपभोग, उत्तम भोजन कीजिये। हे स्वामिन्! आप (अन्धसः) प्राणधारक जीव का पालन करें।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु।
गृभाय जिह्वया मधु॥ ५॥ २२॥

भा०—जिस प्रकार अन्न ओषधि सोमादि का रस (कुक्ष्योः) कोखों, उदर में [illegible] जाकर [illegible] बहा जाता है और मनुष्य जिह्वा से

(मधु) अन्न को ग्रहण करता है इसी प्रकार हे विद्वान् शिष्य मै (ते) तेरे (कुक्ष्योः) कोखों को (आसिञ्चामि) जल से शुद्ध करता हूं। वह स्नान-जल (गात्रा अनु वि धावतु) अन्य अंगो को भी प्राप्त होकर पवित्र करे। इस प्रकार शुद्ध होकर हे शिष्य ! तू (जिह्वया) वाणी से (मधु) ब्रह्मज्ञान वेद को (गृभाय) धारण कर । (२) राजा की दो कुक्षियां है एक सैन्यबल, दूसरा राजकोष, प्रजा दोनो को भरे । वह ऐश्वर्य राष्ट्र प्रत्येक अंग मे पहुंचे, राजा वाणी से सदा मधुर भाषण करे। वा अपनी आज्ञामात्र से मधुवत् कर ग्रहण करे । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३तव ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सोम स्वादुः तन्वे मधुमान्, हृदे शम्) अन्नादि ओषधिरस स्वादु, शरीर को सुख और पोषणप्रद, और हृदय को शान्तिदायक होता है इसी प्रकार हे गुरो ! हे विद्वन् ! यह (सोमः) शिष्य (संसदे स्वादुः) उत्तम ज्ञान के दाता तुझ गुरु के ज्ञान को उत्तम रीति से ग्रहण करने हारा हो। और वह (तव तन्वे) तेरी शरीर सेवा के लिये वा तेरे विस्तृत ज्ञान के लिये (मधुमान्) वेदज्ञान से युक्त हो। वह (ते हृदे) तेरे हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक हो ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(जनी इवः संवृत. अभि) जिस प्रकार स्त्रियें अच्छी प्रकार वस्त्र आभरणादि से युक्त होकर, वा अच्छी प्रकार वरण करके पति को प्राप्त होती हैं अभिमुख होकर इसी प्रकार हे (इन्द्र) आचार्य ! हे विद्या के दाता ! हे (विचर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! (अयम् सोम.) यह शान्त शिष्य वा सावित्री माता के गर्भ मे उत्पन्न पुत्र भी (संवृत) तेरे द्वारा अच्छी प्रकार वृत, स्वीकृत होकर वा (सं-वृत.) सम्यक् रीति

से आवरणवान् होकर (त्वा अभि सर्पतु) तुझे प्राप्त हो और (प्र सर्पतु) विद्या, चरित्र के मार्ग मे आगे बढ़े। (२) राष्ट्रपक्ष मे 'सोम' प्रजावर्ग (सवृत.) अच्छी प्रकार तुझे राजा वरे और (स वृतः) सुरक्षित होकर तुझ उत्तम अध्यक्ष को प्राप्त हो, उन्नति करे।

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥

भा०—वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन। जिस प्रकार (सु-बाहुः) उत्तम बाहु (तुवि-ग्रीव) अंगुलि आदि विस्तृत एवं बहुत सी गर्दनों वाला, (वपोदर) स्थूल, दृढ़ होकर (वृत्राणि जिघ्नते) बाधक विघ्नो का नाश करता है। उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रु के दृढ बलो का नाशक राजा, सेनापति भी (तुवि ग्रीवः) संख्या मे बहुत एवं बडी ग्रीवा वाला दृढ स्कन्ध, नाना सैन्य बलों से युक्त, (वपोदरः) 'वपा' छेदन भेदन की शक्ति को अपने राष्ट्र के बीच मे धारण करता हुआ (सुबाहुः) उत्तम बाहुमान्, दृढ भुजों वाला होकर (अन्धसः मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होकर, (वृत्राणि) राज्य के बाधक कारणों को (जिघ्नते) नाश करे। राजा या सेनापति शरीर में बाहुवत् है, यह श्लेष से कहा। (२) इसी प्रकार परमेश्वर सर्व विघ्ननाशक है। वह विश्वतोमुख होने से बहुग्रीवावान् है, 'वपा' सर्व जगदुत्पादक शक्ति से युक्त है, वह जीव सर्ग के तृप्ति अर्थात् अन्न के लिये (वृत्राणि जिघ्नते) जलो, मेघो को लाता, बरसाता है।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पुरः प्र इहि) आ, [illegible] हो, तू (ओजसा) बल पराक्रम से (विश्वस्य ईशानः) सब [illegible] का स्वामी है। हे (वृत्रहन्) सूर्यवत् मेघो के हनने और दुष्टों

को तारने हारे ! तू (वृत्राणि जहि) दुष्टों को दण्ड दे और जलों को बरसा। हे राजन् ! तू (वृत्राणि जहि) धनों को प्राप्त कर।

दी॒र्घस्ते॑ अस्त्वङ्कु॒शो येना॒ वसु॑ प्र॒यच्छ॑सि।
यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! (येन) जिसके बल से तू (सुन्वते यजमानाय) अन्नादि उत्पन्न करने वाले और करादि देने वाले प्रजावर्ग के हितार्थ (वसु प्रयच्छसि) ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (ते अङ्कुशः) तेरा अङ्कुश शत्रु-वर्गरूप गज का वश करनेवाला साधन, शासन बल (दीर्घः अस्तु) बहुत विस्तृत हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अ॒यं त॑ इन्द्र॒ सोमो॒ निपू॑तो॒ अधि॑ ब॒र्हिषि॑।
एही॑म॒स्य द्र॒वा पिब॑ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे गुरो ! (ते) तेरा (अयं) यह (बर्हिषि) उत्तम शासन वा यज्ञ में (निपूतः) निरन्तर पवित्र (सोमः) शिष्य विराजमान है, (ईम् अस्य आ इहि) उसको तू प्राप्त हो (आ द्रव, आ पिब) उस पर कृपा कर और उसको अपनी रक्षा में रख। (२) हे राजन् (बर्हिषि अधि) राष्ट्र के, प्रजाजन के अध्यक्ष पद पर विराजमान रहने से नितरां पवित्र यह ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है, तू उसे शीघ्र प्राप्त कर और उसका उपभोग और पालन कर।

शाचि॑गो॒ शाचि॑पूजना॒यं रणा॑य ते सु॒तः।
आख॑ण्डल॒ प्र हू॑यसे ॥ १२ ॥

भा०—(शाचि-गो) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों वाले राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! हे (शाचि-पूजन) शक्तियों से या शक्तिशाली सेनाओं के कारण पूजनीय, हे (आखण्डल) शत्रुओं को सब ओर छिन्न भिन्न करने हारे ! (अयं) यह (सुत) ऐश्वर्य देने वाला प्रजाजन (ते रणाय) तेरे ही रमण करने के लिये है। तू (प्र हूयसे) बड़े आदर से

बुलाया जाता है। (२) हे (शचि-गो) शक्तियों से सूर्यादि को सञ्चालित करने वाले वा व्यक्त वाणी से बोलने योग्य वेद वाणि के स्वामिन्! हे (शचि-पूजन) व्यक्त वाणि द्वारा पूजने योग्य! यह उत्पन्न वा शिष्य तेरी ही (रणाय) प्रसन्नता के लिये है। हे (आखण्डल) प्रलयकारिन्! विघ्ननाशक! हे संशयच्छेदक! तुझे आदर से बुलाते है।

यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः।
न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ १३ ॥

भा०—हे (शृङ्गवृषः नपात्) हिंसाकारी वाणों की वर्षा करने वाले प्रबल सैन्य को न गिरने देने वाले! उसके स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरा (प्रणपात्) उत्तम पुत्रवत् पालनीय (कुण्ड-पाय्य) कुण्डों के जलादि से पालन करने योग्य राष्ट्र रूप ऐश्वर्य है (अस्मिन्) उसमें ही (मनः आ दध्रे) सब अपना मनोयोग रक्खे।

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम्।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥

भा०—हे (वास्तोष्पते) 'वास्तु' अर्थात् नगरादि के पालक! जिस प्रकार गृह का (स्थूणा ध्रुवा) मुख्य स्तम्भ सर्वाश्रय हो उसी प्रकार तेरे राष्ट्र में (ध्रुवा) तू पृथिवीवत् (स्थूणा) मुख्य स्तम्भ के समान सबका आश्रय है। (सोम्यानां) ऐश्वर्य पाने योग्य शासकों, वा शिष्यों के हितैषी ज्ञानी पुरुषों को (असत्रं) कन्धों के विशेष कवचवत् उनके रक्षक हो। (द्रप्सः) द्रुतगति से आक्रमण करने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (शश्वतीनां पुरां) बहुत से शत्रु नगरों का (भेत्ता) तोड़ने वाला हो। और वह (मुनीनां) मन से मनन करने वाले ज्ञानविचारक मनुष्यों का सदा (सखा) मित्र हो।

पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः।
भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १५ ॥ २४ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् राजा (पृदाकु-सानुः) 'पृत्' अर्थात् संग्रामों के अवसरो मे सन्मार्ग को वतलाने वाला और उन्नति पद पर स्थित, (यजतः) पूज्य, दानी और (गवेषणः) भूमि राष्ट्र को चाहने वाला होकर (भूयसः अभि) वहुत से शत्रुओं पर (एकः सन्) अकेला रहकर भी (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (पुरः) अपने समक्ष (तुजा गृभा) शत्रुहिंसाकारी पकड़ या वशीकरण सामर्थ्य से (भूर्णिम्) सबके भरण पोषण करने मे समर्थ (अश्वं) राष्ट्र वा सैन्य को और (इन्द्रं) ऐश्वर्य को भी (नयत्) चलावे। अर्थात् राष्ट्र और कोष को अपने अधीन सञ्चालित करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—७, १०—२२ आदित्याः। ८ अश्विनौ। ९ अग्निसूर्यानिला.॥ छन्द.—१, १३, १५, १६ पादनिचृदुष्णिक् ॥ २ आर्ची स्वराडुष्णिक्। ३, ८, १०, ११, १७, १८, २२ उष्णिक्। ४, ९, २१ विराडुष्णिक्। ५–७, १२, १४, १९, २० निचृदुष्णिक् ॥

द्वाविंशत्यृच सूक्तम् ॥

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः।
आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥ १ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (आदित्यानां) आदित्यवत् तेजस्वी वीर्यवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के (सवीमनि) शासन मे रहकर (एषां) इनके (सुम्नं) सुखकारक (अपूर्व्यम्) अपूर्व ज्ञान को (ह नूनं) अवश्य (भिक्षेत) याचना किया करे।

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम्।
अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन (आदित्यानां) तेजस्वी पुरुषों के (पन्थाः)

मार्ग (अनर्वाणः) निर्दोष, हिंसकादि से रहित, निष्कण्टक, (अदब्धः) अहिंसित, अक्षय, (पायवः) पालक और (सुगे-वृधः) सुख के बढ़ाने वाले (सन्ति) होते हैं।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा।
शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(सविता) उत्पादक माता पिता, आचार्य, (भगः) सेवा योग्य एवं ऐश्वर्यवान् स्वामी (वरुणः) दुःखवारक राजा, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी अध्यक्ष, ये सब (स-प्रथः) अति विस्तृत (यत्) जिस (शर्म) सुख, शान्ति वा आश्रय को हम (ईमहे) चाहते हैं (यच्छन्तु) प्रदान करें। (२) सविता, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा नाम वाला प्रभु हमें हमारा अभिलषित सुख प्रदान करे। इस पक्ष में—'यच्छन्तु' अत्र वचनव्यत्ययः।

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि।
स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अदिते) अखण्ड चरित्रवाली! भूमिवत् वा मातावत् पालन करने वाली! हे (पुरुप्रिये) बहुतों को प्रिय लगने हारी, सबको प्रसन्न करने हारी (देवि) विदुषि! हे (अरिष्टभर्मन्) सुखों को पूर्ण करने वाली, अहिंसित बालक पुत्रों को पोषण करने वाली वा दात्री (देवेभिः) शुभ गुणवान् (सूरिभिः) विद्वान् (सु-शर्मभिः) उत्तम गृहस्थों सहित (स्मत् आगहि) अच्छी प्रकार आदर से प्राप्त हो।

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥ २५ ॥

(द्वेषांसि) अप्रीतिकारक द्वेष भागो को (योतवे विदुः) दूर करने का उपाय जानते है । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अदि॑तिर्नो॒ दिवा॑ प॒शुमदि॑ति॒र्नक्त॒मद्व॑याः ।
अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सः स॒दावृ॑धा ॥ ६ ॥

भा०—(अद्वयाः) अद्वितीय वा बाहर भीतर दोनों मे दो भाव न रखती हुई, (अदितिः) विदुषी माता (नः) हमारे (पशुम्) पशुओं की रक्षा करे । वह (अदितिः) अखण्ड और अदीन राजशक्ति (नक्तम्) रात को भी (पातु) पालन करे । वह (सदावृधा) प्रजाजनो को बालक-वत् पुष्ट करने वाली होकर (नः अंहसः पातु) हमे पाप से बचावे ।

उ॒त स्या नो॒ दिवा॑ म॒तिरदि॑तिरू॒त्या ग॑मत् ।
सा शन्ता॑ति॒ मय॒स्कर॒दप॒ स्रिधः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (अदितिः) अदीन भाव से रहने वाली शक्ति, (मतिः) बुद्धिमती होकर (नः) हमे (दिवा) दिन के समय (ऊत्या) रक्षा और ज्ञानसहित (आ गमत्) आवे । (सा) वह (शन्ताति) शान्तिदायक (मयः) सुख (करत्) प्रदान करे और (स्रिधः) हिंसक शत्रुओं को (अप करत्) दूर करे ।

उ॒त त्या दैव्या॑ भि॒षजा॒ शं नः॑ करतो अ॒श्विना॑ ।
यु॒यु॒याता॑मि॒तो रपो॒ अप॒ स्रिधः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और (त्या) वे (दैव्या) 'देव' अर्थात् दिव्यगुण युक्त पदार्थों में कुशल वा 'देव' अर्थात् मनुष्यों के हितकारी (भिषजा) दोनों प्रकार के रोगचिकित्सक (अश्विना) विद्या के क्षेत्र मे विस्तृत ज्ञान वाले (नः शं करतः) हमे शान्ति प्रदान करें । (इतः) इस देह या राष्ट्र मे (रपः) दुःख वा पापपरिणाम को (युयुयाताम्) पृथक् करें और (स्रिधः अप) बाधक विघ्नों और रोगादि को भी दूर करें ।

शम॒ग्निर॒ग्निभि॑: कर॒च्छं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑ ।
शं वातो॑ वात्वर॒पा अप॒ स्रिधः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि तत्व (अग्निभिः) अपने व्यापन और दाह आदि गुणो से युक्त पदार्थों से (नः शम् करत्) हमे शान्ति प्रदान करे। (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें शान्ति सुखदायक और रोगशमन करने वाला होकर (तपतु) तपे। (वातः) वायु (अरपाः) रोग रहित होकर (नः शं वातु) हमे शान्तिदायक होकर वहे। (स्रिधः अप) रोगादि दुःख-जनक पीड़ाएं दूर हों।

अपामी॑वा॒मप॒ स्रिध॒मप॑ सेधत दु॒र्मति॑म् ।
आदि॑त्यासो यु॒योत॑ना नो॒ अंह॑सः ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) उत्तम माता पिता गुरु आदि के पुत्र ! एवं हे पुत्रों के उत्तम पिता मातादि गुरुजनो ! आप लोग (अमीवाम् अप) रोग को दूर करो। (स्रिधम्) नाशकारी (दुर्मतिम्) दुष्टमति को (अप सेधत) दूर करो। और (नः अंहसः युयोतन) हमारे पापों को दूर करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यु॒योता॒ शरु॑म॒स्मदाँ॒ आदि॑त्यास उ॒ताम॑तिम् ।
ऋ॒धग्द्वेषः॑ कृणुत विश्ववेदसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानो के जानने वाले (आदित्यास) आदित्यवत् तेजस्वी एवं संसार के समस्त पदार्थों से ज्ञान और उपयोगी पदार्थों के लेने वाले पुरुषो ! आप लोग (अस्मत् शरुं) हम से 'शरु' अर्थात् हिंसक और हिंसाभाव (उत) तथा (अमतिम्) मूर्ख और मूर्खता को (युयोत) पृथक् करो। और (द्वेष) द्वेष को भी (ऋधक् कृणुत) पृथक् करो।

तत्सु नः॒ शर्म॑ यच्छ॒तादि॑त्या॒ यन्मुमो॑चति ।
एन॑स्वन्तं चि॒देन॑सः सुदानवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी, एवं अदिति अर्थात् अखण्ड परब्रह्म के उपासक वा वेदवाणी में निष्णात विद्वान् पुरुषो ! हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील जनो ! (यत्) जो (एनस्वन्तं चित्) पापी को (एनसः मुमोचति) पाप से मुक्त कर देता है, आप (तत् शर्म) वह शान्ति सुखदायक, शरण वा दण्डव्यवस्था (नः यच्छत) हमें प्रदान करो।

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।
स्वैः ष एवैः रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (कश्चित्) कोई (मर्त्यः) हिंसक मनुष्य (रक्षस्त्वेन) अपने हिंसक स्वभाव से (नः) हमें (रिरिक्षति) मारना या पीड़ित करना चाहता है (सः) वह (युः) दुःखदायी (जनः) मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (रिरिषीष्ट) पीड़ित होता है। हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः ॥

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम्।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मत्रा) हम लोगों में (दुर्हणावान्) दुःखदायी, पीड़ा देने वाला और (द्वयुः) हमारे प्रति दो प्रकार का भाव—बाहर कुछ और भीतर कुछ, प्रत्यक्ष में कुछ और परोक्ष में कुछ भाव—रखता है, (तं) उस (दुःशंसं) दुर्गृहीत नाम वाले, बदनाम वा बुरी बात करने वाले (रिपुम् मर्त्यम्) शत्रु, पापी पुरुष को (अघम् सम्-अश्नवत्) पाप ही व्याप लेता और नष्ट कर देता है।

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम्।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (वसवः) माता पिता, गृहस्थादि आश्रमों में वास करने वाले मनुष्यो ! आप लोग (पाकत्रा) परिपक्व ज्ञान वाले तपस्वी जनों के अधीन (स्थन) होकर रहो और

(द्वयुं अद्वयुं च) दो भावो से रहने वाले, कपटी और दो भावों से न रहकर एक भाव से रहने वाले निष्कपट (मर्त्यं) मनुष्य को (हृत्सु उप जानीथ) हृदयो तक मे खूब जाना करो। मनुष्यो को उनके हृदयों से पहचाना करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे।
द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (द्यावाक्षाम) सूर्य और पृथिवीवत् तेजस्वी और क्षमाशील, माता पिता गुरु जनो ! हम लोग (पर्वतानां) मेघों वा पर्वतों के और (अपां) जलों के बीच (शर्म) शान्ति सुखदायक शरण या गृह के समान सुरक्षित, (पर्वतानां अपां) पालक साधनों वाले दृढ़ बलवान् महापुरुषों और आप्तजनों के बीच (शर्म वृणीमहे) शान्ति सुख को प्राप्त करे। आप दोनो (रपः) पापको (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (कृतम्) करो।

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः।
अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥ १७ ॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र मे या आश्रमों में बसे माता पितादि जनो (ते) वे आप लोग (युष्माकं) अपने (शर्मणा) दुष्टों के नाशक, शान्तिदायक कर्म से (विश्वानि दुरिता) सब दुष्टाचरणों से (नावा) नौका से जलो के समान (अति पिपर्त्तन) पार करो।

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) अपनी शरण में लेने वाले एवं तेजस्वी और हे (सुमहसः) उत्तम प्रकाशवान्, ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (तुचे तनाय) पुत्र पौत्र के (जीवसे) जीवन के लिये (तत्) वह (द्राघीय आयुः कृणोतन) अति दीर्घ आयु करो।

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! विद्वन् ! हे (सोभरे) उत्तम रीति से प्रजा के पोषण करने हारे ! तू (इम्) इस (अध्वराय) यज्ञ, और अविनाश के लिये (पूर्व्यम्) सब से पूर्व विद्यमान एवं विद्या, बल से पूर्ण (अस्य सोम्यस्य) सोम योग्य, पुत्र शिष्यादि के हितकारी ऐश्वर्य से सम्पाद्य इस (मेधस्य) सत्संग यज्ञ के (यन्तुरं) नियन्ता, (विभूत राति) प्रचुर दानशील, (चित्र शोचिषम्) अद्भुत तेजस्वी, (अग्निम्) अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक को (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार आदर कर । उसको मुख्य पद पर स्थापित कर । (२) इसी प्रकार इस संसार रूप यज्ञ के नियन्ता प्रभु की स्तुति करो ।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य यज्ञस्य) इस यज्ञ के (सु-क्रतुम्) उत्तम रीति से बनाने और जानने वाले, (होतारम्) सर्व ऐश्वर्य के दाता, (अमर्त्यम्) अविनाशी, (देवत्रा देवं) देवों, प्रकाशमान सूर्यादि के भी प्रकाशक, दाताओं के भी दाता, (यजिष्ठं) अति पूज्य, दानी, (त्वा) तुझ स्वामी को हम (ववृमहे) वरण करते हैं, तुझे अपनाते, तेरी स्तुति गाते, और तेरी उपासना करते हैं ।

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् बल को नष्ट न होने देने वाला वा बल से उत्पन्न, उत्तम ऐश्वर्य युक्त, दीप्तियुक्त, उत्तम शोधक, वह प्राण अपान देह के रक्तादि में भी सुख देता है, हे विद्वन् ! तू उसको जाने, उसी प्रकार तू (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, अन्न के

पालक, सैन्य बल को नाव के समान पार लेजाने वाला, (सु-भगं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुख सेवने योग्य (श्रेष्ठ-शोचिषम्) उत्तम कान्तियुक्त, को (दिवि) ज्ञान और व्यवहार के लिये (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार उपासना कर। (सः) वह (नः) हमे, (मित्रस्य) स्नेही मित्र, (वरुणस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ राजा, और (सः) वह (अपां) जलवत् शान्ति-सुखदायक आप्तजनों के (सुम्नं) सुख को भी (यक्षते) प्रदान करता है।

यः स॒मिधा॒ य आहु॑ती॒ यो वेदे॑न द॒दाश॒ मर्तो॑ अ॒ग्नये॑।
यो नम॑सा स्वध्व॒रः ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—(यः) जो (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक, यज्ञशील, (मर्त्तः) पुरुष (नमसा) अन्न से, या विनय श्रद्धा से (यः) जो (समिधा) काष्ठ से, (यः आहुती) जो आहुति से, (यः वेदेन) जो वेद से, वेद के अध्ययन, मनन, श्रवणादि करते हुए (अग्नये) अग्नि में आहुतिवत्, उस ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, सर्वगुरु परमेश्वर के हाथों अपने को (ददाश) प्रदान करता है उसी प्रकार जो राष्ट्रजन तेजस्वी अग्रणी राजा के हाथ अपने को सौंप देता है, उसके ही—इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

तस्येदर्व॑न्तो रंहयन्त आ॒शव॒स्तस्य॑ द्यु॒म्नित॑मं॒ यशः॑।
न तमंहो॑ दे॒वकृ॑तं॒ कुत॑श्च॒न न मर्त्य॑कृतं नशत् ॥ ६ ॥

भा०—(तस्य इत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः) वेग से जाने वाले अश्व (रंहयन्ते) वेग से गमन करते हैं (तस्य) उसका ही (यशः द्युम्नितमम्) यश अति उज्ज्वल होता है, (तम्) उस तक (देवकृतं) विद्वानों और (मर्त्यकृतं) मनुष्यों का किया (अंहः) पाप या अपराध कर्म (कुतः चन न नशत्) किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त हो। अर्थात् यज्ञशील उपासक को किसी प्रकार का पाप स्पर्श नहीं करता।

स्व॒ग्नयो॑ वो अ॒ग्निभिः॒ स्याम॑ सूनो सहस ऊर्जां पते।
सु॒वीर॒स्त्वम॑स्म॒युः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक ! हे (ऊर्जां पते) बलवान् पराक्रमी सैन्यों के पालक ! हे (अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वः अग्निभिः) तुम्हारे अग्रणी, ज्ञानी पुरुषों द्वारा (सु-अग्नय.) उत्तम सुखजनक अग्नियों वा प्रधान नायकों से युक्त (स्याम) होवें। हे अग्रणी ! (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला हमारा स्वामी, (सुवीरः) उत्तम वीर और वीरों का नायक है।

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (अतिथिः न) अतिथि के समान पूज्य, आत्मा के समान व्यापक, (प्रशंसमानः) उत्तम रीति से उपदेश करता हुआ, (मित्रियः) स्नेही मित्र होने योग्य, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, (रथः न) रथवत् रमणीय, (वेद्य) परम गम्य है। हे प्रभो ! (त्वे) तुझ में (क्षेमासः) निवास करने वाले (साधवः) साधक लोग (अपि सन्ति) निमग्न होकर रहते हैं। (त्वं) तू (रयीणां राजा) समस्त ऐश्वर्यों का राजा है।

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः।
स धीभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! (सः) वह पुरुष (अद्धा) सचमुच (दाश्वध्वर.) दानशील, सफल यज्ञ वाला (मर्त्तः) मनुष्य होता है और (सः प्रशस्य) वही प्रशंसनीय होता है, (स) वही (धीभि.) कर्मों और उत्तम बुद्धियों से (सनिता अस्तु) दान देने और ऐश्वर्य का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला भी (अस्तु) हो जो तेरे अधीन अपने को सौंपे हुए हैं।

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् १०।३०

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (यस्य अध्वराय) जिस को नाश न होने देने के लिये वा जिसके यज्ञ की रक्षा के लिये वा जिस राष्ट्र के अहिंसक, पालक पद के लिये (क्षयद्-वीरः) शत्रुओं वा अधीन रहने वाले वीरों का स्वामी होकर (त्वं) तू (ऊर्ध्वः) ऊपर अध्यक्ष होकर (तिष्ठसि) विराजता है, (स) वह ही (अर्वद्भिः) वीर विद्वानों और (स विपन्युभिः) वह विशेष व्यवहारज्ञों और (स: शूरैः) वह शूरवीरों सहित (सनिता) ऐश्वर्य का भोक्ता और (स: सनिता) वही ऐश्वर्य का दाता होकर (कृतं साधते) कार्य सिद्ध करता है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।
हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः गृहे चनः दधीत हव्या वेविपत्) घर में आग पाचन करता है, नाना अन्न प्राप्त कराता है, उसी प्रकार (यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर में (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (वपु) संशयों को छेदन करने में कुशल और (विश्व-वार्य) सबसे वरण करने योग्य, सर्व-प्रिय होकर (चनः स्तोम) प्रवचन करने योग्य स्तुति योग्य मन्त्र समूह को (दधीत) धारण करता है वा और (विप) विविध प्रकार से उप-भोग्य वा दातव्य नाना (हव्या वा) भोज्य अन्नों और ज्ञानों को (वेवि-पद्) प्राप्त कराता है । चन —पचतेर्वा-वचेर्वा । पचनः, वचन । वर्ण-लोपश्छान्दसः । चन. ।

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥ १२ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने वाले ! हे प्रजा के अधीन बसने वाले विद्वन् ! हे (सहस यहो) बलवान् पिता के पुत्र ! शिष्य ! तू (स्तुवत) उपदेष्टा (विप्रस्य) बुद्धिमान् और (विविदुष) विशेष विद्यावान्, ज्ञानी पुरुष के (वच) वचन को (अवो देवम्) परमेश्वर से नीचे और (उपरि-

मर्त्यं) साधारण मनुष्यों से ऊपर (कृधि) कर। और (यक्षतमस्य) अति शीघ्रकारी, अति कुशल वा पुरुष के (रातिपु) दानो मे से (वचः) वचन, उपदेश को भी तू ईश्वर से न्यून और सामान्य मानवों से अधिक श्रद्धायोग्य जान।

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति।
गिरा वाजिरशोचिषम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (हव्य-दातिभिः) चरु आदि हव्य पदार्थों की आहुतियों से (अग्निम्) जिस प्रकार अग्नि को (आ विवासति) यजमान सेवन करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (अग्निम्)अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक, (सुदक्षम्) उत्तम, कार्यकुशल पुरुष को (हव्य-दातिभिः) उत्तम ग्राह्य तथा भोज्य पदार्थों के दानों से और (नमोभिः) नमस्कार आदि सत्कारयुक्त वचनों से वा अन्नों से (आ विवासति) परिचर्या करता है, (वा) और जो (अजिर-शोचिपम्) न नाश होने वाली दीप्ति से युक्त अग्निवत् अविनाशी कान्ति वाले, प्रकाशस्वरूप आत्मा को (गिरा) वाणी द्वारा (आविवासति) साक्षात् करता है वही पुरुष वास्तविक अग्निहोत्र और वास्तविक स्वप्रकाश आत्मदर्शन वा उपासना करता है।

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् १४

भा०—(समिधा अग्निम्) काष्ट की समिधा से अग्नि की जिस प्रकार परिचर्या करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (निशिती) अति तीक्ष्ण बुद्धि से (अदितिं) अखण्ड, अदीन सूर्यवत् सर्वोपरि प्रभु की (दाशत्) सेवा करता, उसके प्रति अपने को सौंपता है (सः) वह (मर्त्य) मनुष्य (अस्य धामभि) उसके ही नाना तेजों वा धारण सामर्थ्यों से (धीभि) कर्मों के अनुसार (द्युम्नै) ऐश्वर्यों से (विश्वा

इत् जनान्) समस्त जनों को (उद्नः इव अति तारिषत्) जलों के समान पार कर जाता है और (सु-भगः) वह उत्तम ऐश्वर्यवान् भी हो जाता है।

तद॑ग्ने द्यु॒म्नमा भ॑र॒ यत्सा॒सह॒त्सद॑ने॒ कं चि॑द॒त्रिण॑म्।
म॒न्युं जन॑स्य दू॒ढ्यः॑ ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! प्रभो! नायकवर! तू (तत् द्युम्नं) वह उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश और तेज (आ भर) धारण कर और हमें प्रदान कर (यत्) जो (सदने) घर में, देह में (कं चित् अत्रिणं) किसी भी खाजाने वाले, राक्षसवत् दुखदायी लोभ को (सासहत्) पराजित कर सके और जो (दूढ्यः जनस्य) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य के (मन्युं सासहत्) क्रोध पर विजय पा सके।

येन॒ चष्टे॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा येन॒ नास॑त्या॒ भगः॑।
व॒यं तत्ते॒ शव॑सा गातु॒वित्त॑मा॒ इन्द्र॑त्वोता विधेमहि ॥१६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (येन) जिस (शवसा) बल और ज्ञान से (वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ, स्नेही और दुष्ट पुरुषों का नियन्ता, न्यायकारी पुरुष (चष्टे) न्यायानुकूल प्रजाजन को देखता है, सत असत का निर्णय करता है, और (येन शवसा) जिस ज्ञान और बल से (नासत्या) कभी, असत्याचरण न करने वाले या नासिकावत् प्रमुख पद पर स्थित स्त्री पुरुष और (भगः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (चष्टे) अधीनस्थों को देखता और आज्ञा वचन कहता है हम (इन्द्र-त्वोताः) तुझ सूर्याग्निवत् तेजस्वी और प्रचण्ड विद्वान् और वीर पुरुष द्वारा सुरक्षित रहकर (ते तव शवसा) इसी तेरे बल से (गातुवित् तमाः) खूब भूमि और वाणी के धन को अच्छी प्रकार प्राप्त होकर (ते) तेरे (तत् विधेमहि) उसी बल और ज्ञान को सम्पादन करें।

ते घेद॑ग्ने स्वा॒ध्यो॒३ ये त्वा॑ विप्र निदधि॒रे नृ॒चक्ष॑सम्।
विप्रा॑सो देव सु॒क्रतु॑म् ॥ १७ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन् ! हे विविध विद्याओं से पूर्ण ! निष्णात ! (ये) जो (त्वा) तुझ को (नृ-चक्षसम्) समस्त मनुष्यों पर द्रष्टा रूप से (निदधिरे) नियत करते और निश्चयपूर्वक जानते है और (ये विप्रासः) जो विद्वान् लोग हे (देव) दानशील ! हे प्रकाशस्वरूप, सत्य प्रकाशक ! (त्वा सुक्रतुं निदधिरे) तुझ उत्तम कर्म और ज्ञान वाले, तुझको स्थिर करते है (ते घ इत्) वे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (स्वाध्यः) सुख पूर्वक तेरा ध्यान करने वाले तुझे वरण और अग्निवत् हृदय वेदि मे धारण करने वाले होते है ।

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रभो ! ज्ञानवन् ! (ये) जो (त्वे) तुझ मे (कामम्) 'अपने कामना वा इच्छा करने वाले आत्मा वा मन को (त्वे नि-एरिरे) तेरे अधीन, तेरे ही मेँ प्रेरित करते है (ते) वे (इत्) ही हे (सुभग) उत्तमैश्वर्यवन् ! (वेदिम् चक्रिरे) वेदि बनाते, (ते आहुतिं चक्रिरे) वे आहुति करते और इस भूमि पर (ते सोतुं चक्रिरे) वे हवन यज्ञ करते है । इसी प्रकार वे (वेदि) ज्ञान करते, (आहुति) दान आदान करते, (सोतुं) ऐश्वर्य उत्पन्न करते । (ते इत्) वे ही (वाजेभिः) ज्ञानों और सैन्यादि बल पराक्रमों से (महद् धनं जिग्युः) बडे भारी धन का विजय करते है ।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

भा०—(आहुतः) आदरपूर्वक आहुति किया (अग्निः) अग्नि, और आदरपूर्वक बुलाया या वृत या दान सत्कृत विद्वान् (नः भद्रः) हमारे लिये कल्याण और सुख का देने वाला हो । (रातिः भद्रा) हमारा दिया दान हमें सुखकारी हो । हे (सु-भग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! (न

अध्वरः) हमारा यज्ञ (भद्रः) कल्याणजनक हो । (उत) और (प्र-शस्तय:) उत्तम ख्याति या उत्तम उपदेश भी हमे (भद्राः) कल्याणकारी हो वा हमारी उत्तम ख्यातियां हो ।

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥२०॥३२

भा०—हे नायक ! प्रभो ! तू (वृत्रतूर्ये) दुष्टो के नाश करने वाले संग्राम मे (येन) जिस ज्ञान और मनोबल से (समत्सु) संग्रामों मे (सासह:) शत्रुओ को पराजित करता है, तू उसी (मनः) मन और ज्ञान को (भद्रं) हमें सुखदायक कर । और (शर्धतां) बल वाले हिंसक शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ सैन्यों को भी (अव तनुहि) नीचे कर, नाश कर । जिससे हम (अभिष्टिभिः) अभिलषित सुखो से (ते वनेम) तेरी सेवा करें । तुझ से नाना ऐश्वर्य प्राप्त करें ।

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे ।
यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ २१ ॥

भा०—(यम्) जिस (यजिष्ठं) अति पूज्य (हव्य-वाहनम्) हव्य, उत्तम अन्न को ग्रहण करने वाले, (दूतम्) दुष्ट पुरुषों के उपतापक और विद्वानो से उपासित (अरतिं) अति मतिमान् स्वामी को (देवा) नाना अर्थों के अभिलाषी होकर (नि ऐरिरे) स्तुति करते है (मनुर्हितम्) मननशील पुरुषों द्वारा धारित उस पूज्य की मैं (गिरा ईळे) वाणी द्वारा स्तुति करूं ।

निम्रजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
य पिशते सूनृताभि सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुत ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृतेभि आहुत अग्नि) घी की धाराओं से आहुति पाकर अग्नि (सूनृताभि) उत्तम शब्द वाणियों सहित (सुवीर्यं पिशते) उत्तम दर्शन रूप प्रकट करता है और जिस प्रकार (घृतेभि

भा०—हे (वसो) धनवत् प्रजा को बसाने और सब मे बसने हारे स्वामिन् ! मै जिस प्रकार (अभिशस्तये) निन्दा अपवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) धन को नहीं दूं उसी प्रकार (त्वा तुझे भी (अभिशस्तये) निन्दा, परापवाद और (पापत्वाय) पाप का के लिये (न रासीय) कभी त्याग न करूं वा तेरा नाम अन्यों को पी पहुंचाने और पाप कर्म करने के निमित्त न लूं। हे (सन्त्य) भज करने योग्य ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! (मे स्तोता) मे स्तुति करने वा उपदेश करने वाला (अमतिवा) मतिहीन, मूर्ख (न न हो और (दुर्हितः) दुःखदायी दुष्टाशय पुरुष (न) न हो और (पापः स्यात्) वह पापाचारी वा पाप बुद्धि से युक्त भी न हो ।

पि॒तुर्न पु॒त्रः सु॒भृ॑तो दुरो॒ण आ दे॒वाँ ए॑तु॒ प्र णो॑ ह॒विः ॥ २७

भा०—(सु भृतः) उत्तम रीति से भरण पोषण प्राप्त, सुपुष्ट (पु पुत्र जिस प्रकार (दुरोणे) गृह मे (पितुः) पिता का भी पालक है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी परमेश्वर एव राजा गृहपति भी (पितुः न) अन्न के समान (पुत्रः) बहुतों के रक्षा करने मे समर्थ, (सु-भृत.) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण करने वाला होकर (दुरोण) अन्यों से कठिनता से प्राप्त करने योग्य राष्ट्रपति वा मोक्ष पद पर है । व (देवान् आ एतु) समस्त मनुष्यों, विद्वानों और दिव्य पदार्थों को प्राप्त हो, और वह (न हवि प्र एतु) हमारे स्तुतिवचन वा कर आदि देन योग्य अंश को भी प्राप्त करे ।

तवा॒हम॑ग्न ऊ॒तिभि॒र्नेदि॑ष्ठाभि॒. सचे॑य॒ जोष॒मा व॑सो ।
सदा॑ दे॒वस्य॒ मर्त्यः॑ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वसो) सब प्राणियों और लोकों को बसाने और सब मे बसने हारे ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे अग्ने मे व्यापक ! (मर्त्य,) सर्वदा, सब कालों मे (मर्त्य) मै मरणधर्मा जीव (देवस्य तव) ...

सुखदाता, सर्वप्रकाशक तेरी (नेदिष्ठाभिः मतिभिः) अति समीपतम रक्षाओं से सुरक्षित होकर (तव जोषम् आ सचेय) तेरे प्रेम और सेवा का सब प्रकार से लाभ करूं।

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्निवत् सर्वप्रकाशक! (क्रत्वा) उत्तम कर्म, उत्तम बुद्धि से वा यज्ञ से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। (रातिभिः) दानों से (तव सनेय) तेरा भजन करूं। और (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं, स्तुतियों से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। हे (वसो) गुरुवत् अपने में सब को बसाने और प्राणवत् सब में बसने हारे! (त्वाम् इत् प्रमतिम्) तुझ को सब से उत्कृष्ट बुद्धि और ज्ञान वाला (आहुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं। हे (अग्ने) सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक! तू (मम दातवे) मुझे देने के लिये (हर्षस्व) स्वयं प्रसन्न हो वा मुझे दान देने के लिये हर्षित, उत्साहित कर।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक! सर्वव्यापक प्रभो! स्वामिन्! (वाजभर्मभि) ज्ञान, बल अन्नादि भरण पोषण करने वाली (सुवीराभि) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, (तव ऊतिभि.) तेरी रक्षाओं और दीप्तियों से (स प्र तिरते) दर बराबर बढ़ा करता है (यस्य सख्यं) जिसके मित्र भाव को (तू आवर) स्वीकार कर लेता है।

लोगो के (ऋतस्य) सत्य, न्याय, तेज, धन, सत्यमार्ग के (रथ्यः)रथारोही गन्ता के समान (स्याम इव) अग्रेसर होवे।

अदा॑न्मे पौरुकु॒त्स्यः प॑ञ्चा॒शतं॑ त्र॒सद॑स्युर्व॒धूना॑म्।
मंहि॑ष्ठो अ॒र्यः सत्प॑तिः ॥ ३६ ॥

भा०—(पौरुकुत्स्यः) बहुत से वज्र अर्थात् हथियारबन्द वीर पुरुषो का स्वामी (त्रसदस्युः) दुष्टो को भयभीत करने वाला राजा (मंहिष्ठः) अति दानशील, पूज्य, (अर्यः) स्वामी (सत्पतिः) सज्जनो का पालक, (अर्यः) सबका स्वामी, है। वह (मे) मुझ प्रजाजन को धारण करने वाली (पञ्चाशतं) ५०, वा, १०५, वा ५०० सेनाओ को (अदात्) प्रदान करे।

उ॒त मे॑ प्र॒यियो॑र्व॒यियोः॑ सु॒वास्त्वा॒ अधि॒ तुग्व॑नि।
ति॒सृ॒णां स॑प्तती॒नां श्या॒वः प्र॑णे॒ता भु॑वद्व॒सुर्दिया॑ना॒म् पतिः॑॥३७॥३५॥

भा०—(सुवास्त्वाः) उत्तम भवनो वाली नगरी के (तुग्वनि अधि) शत्रुहिसक और प्रजापालक बल या सैन्य के ऊपर (उत)और (प्रयियो) प्रयाण करने वाले सैन्य और (वयियोः) तन्तु-सन्तान विस्तार करने वाले, वसे (मे) मुझ प्रजाजन के (तुग्वनि) पालनकारी पद पर विराजमान (श्यावः) ज्ञानी और वीर पुरुष (तिसृणां सप्ततीना) तीन ७०। ७० की पङ्क्तियों का (प्रणेता) मुख्य नायक होकर (दियाना) करप्रद प्रजाओं का पालक, स्वामी और (वसुः भुवत्) 'वसु' होजाता है। अध्यात्म मे—सुवास्तु, यह देह है उसमे प्रयाण करने और प्रजा सन्तति का इच्छुक आत्मा है उसके पालक इस देहाधिष्ठाता प्राण पर भी भीतरी 'श्याव' अश्व मन ३ × ७० = २१० नाडियो को सञ्चालित करता है, वहां (दियानां पति) ज्ञानप्रद इन्द्रियों का पालक अधिष्ठाता और (प्रणेता) मुख्य नायक भी होता है। उसी-का नाम 'वसु' है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२०]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७, १९, २३ उष्णिक् ककुप् । ९, १३, २१, २५ निचृदुष्णिक् । ३, १५, १७ विराडुष्णिक् । २, १०, १६, २२ सतः पङ्क्तिः । ८, २०, २४, २६ निचृत् पङ्क्तिः । ४, १८ विराट् पङ्क्तिः । ६, १२ पादनिचृत् पङ्क्तिः । १४ आर्ची भुरिक् पङ्क्तिः ॥ षड्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

**आ ग॑न्ता॒ मा रि॑षण्यत॒ प्रस्था॑वानो॒ माप॑ स्थाता समन्यवः ।
स्थि॒रा चि॑न्नमयिष्णवः ॥ १ ॥**

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (आ गन्त) आप लोग आवो ! (मा रिषण्यत) पीड़ित मत करो। हे (प्रस्थावानः) प्रधान पद पर स्थित पुरुषों वा रणादि में प्रस्थान करने वा आगे बढ़ने वालो ! हे (समन्यवः) समान क्रोध वा ज्ञान वाले वीरो ! आप लोग (मा अप स्थात) दूर २ मत रहो, समीप संघीभूत होकर रहो। आप लोग (स्थिरा चित्) स्थिर वृक्षों को वायु के समान दृढ़, स्थिर, बहुत देर के जमे हुए शत्रुओं को भी (नमयिष्णवः) अपने आगे झुकाने में समर्थ होवो।

**वी॒ळु॒प॒विभि॑र्मरुत ऋभुक्षण॒ आ रु॑द्रासः सुदी॒तिभिः॑ ।
इ॒षा नो॑ अ॒द्या ग॑ता पुरुस्पृहो य॒ज्ञमा सो॑भरी॒यवः॑ ॥ २ ॥**

भा०—हे (मरुत) शत्रुओं को मारने वाले ! हे (ऋभुक्षण) महान् बल वाले ! हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने और प्रजा के रोगों, कष्टों को दूर करने वाले ! हे (पुरुस्पृहः) बहुत से प्रजाजनों को प्रेम करने, बहुतों के प्रेमपात्र होने वाले ! हे (सोभरीयवः) उत्तम पालक पोषक साधनों को धारने वाले ! आप लोग (वीळुपविभिः) दृढ़ वज्रों, रथ चक्रधाराओं और (सुदीतिभिः) उत्तम कान्तियों से युक्त होकर

(अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इषा आ गत) इच्छा, अन्न, वा सुभिक्ष और सुवृष्टिसहित पवनो के समान ही (नः आ गत) हमे प्राप्त होवो ।

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।
विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रियाणां) जनता में फैलने वाले रोगो को वेग से उड़ा लेने वाले प्रचण्ड (मरुतां शिमीवताम्) वातों और कर्मकारी यन्त्रादि सञ्चालक वेगों का (उग्रं शुष्मम्) बडा भारी बल होता है । और (एषस्य) अभिलषणीय (विष्णोः) व्यापक, सब ओर विशेष रूप से वरसने वाले जल को (मीढुषां) वृष्टि रूप से भूमि पर सेचने वाले जलधर वायुओं के समान (रुद्रियाणां शिमीवताम् मरुताम्) भव-पीड़ाओं के नाशक गुरु, प्रभुओं के शिष्यो और (शमी वताम्) कर्मनिष्ठ विद्वानों के उग्र बल को और (विष्णोः) सूर्य के (एषस्य) अभिलाषणीय तत्व (विद्मा हि) ज्ञान करें ।

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण, (द्वीपानि वि पापतम्) नाना द्वीपों में भ्रमण करते, (उभे रोदसी) आकाश और पृथ्वी दोनो को (दुच्छुना) दुःख से ही युक्त कर देते है । वे मरुद्गण आकाश पिण्डों को लपेट कर भूमि पर गिराते है और (तिष्ठत्) भूमिस्थ वृक्षों को (दुच्छुना) दुष्पदार्थों पतनादि से युक्त करते हैं । और वे (स्वभानव) अपनी कान्ति से युक्त (शुभ्र-खादयः) शुभ्र दीप्ति वाले होकर (धन्वानि ऐरत) जलों को नीचे गिराते है इसी प्रकार हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! आप लोग (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों को विजयादि कार्यों के लिये जाया आया करो । (उभे रोदसी) दोनों स्वपक्ष परपक्ष को (दुच्छुना युजन्त) दुःख, शोकादि

से युक्त करते हैं। आप सब (स्व-भानवः) अपने धन की दीप्ति से युक्त और (शुभ्र खादयः) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्गादि वाले, (यत् एजथ.) जब २ जाते हों तो (धन्वानि ऐरत) धनुषों को आगे बढ़ाओ और चलाओ।

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जिस प्रकार पवनों के चलने पर (पर्वतासः अच्युतासः वनस्पतिः भूमि रेजते) दृढ पर्वतवत् वा मेघ भी गर्जते, वनस्पति और मानो भूमि कांपती है, उसी प्रकार हे वीरो ! (वः अज्मन् यामेषु) आप लोगों के संग्राम मे प्रयाण होने पर (अच्युता चिद् पर्वतासः) दृढ पर्वत भी (आ नानदति) प्रतिध्वनि करते हैं। (वनस्पतिः) सूर्य वा वन के स्वामी वृक्षों वत् ऐश्वर्यपालक शत्रु और (भूमिः) भूमि भी (रेजते) कांपती है। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत्।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के (अमाय यातवे) बलपूर्वक जाने के लिये (द्यौः उत्तरा बृहत जिहीते) ऊपर का आकाश बीच के बड़े भारी अन्तरिक्ष को त्याग देता है, इसी प्रकार हे (मरुत) शत्रुओं को मारने में निपुण वीर पुरुषो ! (वः अमाय) आप लोगों के बल प्रयोग वा व्यायामाभ्यास के लिये और (यातवे) युद्धार्थ प्रयाण करने के लिये (उत्तरा द्यौः) सर्वोपरि शासक शक्ति, (बृहत्) बहुत बड़ा स्थान वा पद (जिहीते) दे, (यत्र) जिस पर स्थित होकर (बाह्वोजसः) बाहुओं में बल पराक्रम धारण करने वाले (नरः) नायक लोग (तनूषु) अपने शरीरों पर (त्वक्षांसि) [illegible] वा [illegible] [illegible] (आ

देदिशते) धारण करते है । अथवा (तनूषु त्वक्षांसि आ देदिशते) शत्रुओं के शरीरो वा विस्तृत सैन्यों पर तीक्ष्ण शस्त्रो का रुख करते है ।

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।
वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥ ७ ॥

भा०—वे (नरः) नायक वीर जन (त्वेषाः) तीक्ष्ण कान्तियुक्त (अमवन्तः) वलवान्, (वृषप्सवः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर वाले और (अह्रुतप्सवः) सरल सूधी प्रकृति वाले, निष्कपट होकर (स्वधाम् अनु) अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार (महि श्रियम् वहन्ते) बड़ी भारी राजलक्ष्मी को धारण करते हैं ।

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८॥

भा०—(सोभरीणां) प्रजा का उत्तम रीति से पालन करने वाले क्षत्रियों और राजाओं के (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि से परिपूर्ण खजाने में (गोभिः)भूमियो द्वारा (वाणः) देने और सेवने योग्य ऐश्वर्य (अज्यते) प्राप्त किया जाता है, और (हिरण्यये) तेजोमय आत्मा के (कोशे रथे) आनन्दमय, विज्ञानमय प्राणमय, मनोमय अन्नमय (रथवत्) कोश अर्थात् देह मे (गोभिः) इन्द्रियों के सहित (वाणः) भोक्ता आत्मा (अज्यते) प्रकट होता है । (गोभिः वाणः अज्यते) वाणियों, वेदमन्त्रों से शब्दमय, ज्ञानमय ज्ञान रस प्रकट होता है । इसी प्रकार उनके (रथे) रथ मे (गोभिः) धनुष डोरियों से वद्ध धनुषो के साथ २ (वाणः) वाण भी शोभा देता है । अथवा (गोभिः) डोरियों से (वाणः अज्यते) बाण दूर फेंका जाता है ।

प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।
हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ ९ ॥

भा०—(वृषद्-अञ्जयः) बरसते मेघों से प्रकट होने वा उन सहित

आने वाले पवन जिस प्रकार वर्षा करने वाले, बलवान् वायुओं के प्रेरण के लिये ग्राह्य जलराशि को धारण करते हैं। उसी प्रकार हे (वृषक्रतु-अश्रयः) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले एवं प्रबन्धकारक, विशेष स्वरूप वा पोशाक पहनने वाले वीर पुरुषो! और (वः) आप में से वा अपने बीच में विद्यमान (वृष्णे) बलवान्, (शर्धाय) पराक्रमी वा (शर्-धाय) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र बल को धारण करने में समर्थ क्षत्रपति (मारुताय) मनुष्यों के हितैषी, (वृष-प्रयाव्णे) बलवान् पुरुषों वा अश्वों के साथ प्रयाण करने वाले वा राष्ट्रपति या सेनापति की वृद्धि के लिये (हव्यः) उत्तम अन्न एवं ग्राह्य स्तुत्य वचन और समस्त आवश्यक अन्न, धनादि रत्न, नाना पदार्थ (प्र भरध्वम्) लाओ अथवा (हव्या = हवयोग्यानि) यज्ञ और संग्राम के योग्य पदार्थों को लाओ और (हव्या) संग्रामोचित शस्त्रों का शत्रुओं पर (प्र भरध्वम् = प्र हरध्वम्) प्रहार करो।

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत १०।३७

भा०—हे (मरुत) वीर मनुष्यो! (श्येनासः पक्षिणः न) बाज नाम के पक्षी जिस प्रकार वेग से जाते हैं उसी प्रकार आप लोग (वृषण-श्वेन) बलवान् अश्व वाले (वृष-प्सुना) सुदृढ रूप वाले, (वृष-नाभिना) सुदृढ चक्रनाभि वाले (रथेन) रथ से (वृथा) अनायास ही (नः वीतये) हमारी रक्षा के लिये (हव्या आ गत) यज्ञों युद्धों में आया जाया करो। अथवा इसी प्रकार (मरुत) वैश्यगण रथों, यानों द्वारा (नः वीतये) हमारे खाने के लिये (हव्या) नाना अन्न (आ गत) लाया करें। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु।
दविद्युतत्यृष्टयः। ११॥

भा०—(एषां) इन वीर पुरुषों के (अञ्जि) रूप, पोशाक और [illegible] सब (समानम्) समान हों। (रुक्मासः अधि) बाहुओं पर

(रुक्मासः) सुवर्णीय, सुनहरी बैज (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकें और (बाहुषु) बाहुओं में ही (ऋष्टयः) शत्रुनाशक नाना शस्त्र भी (दविद्युतति) चमका करें।

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२॥

भा०—(ते) वे (उग्रासः) भयानक, (वृषणः) बलवान्, (उग्र-बाहवः) प्रचण्ड बाहुबल वाले, वीर पुरुष (तनूषु) अपने शरीरों के निमित्त (नकिः येतिरे) कोई श्रम न करें। इनको आजीविकोपार्जन के लिये अन्य यत्न की आवश्यकता नही। उनका कर्त्तव्य है कि (रथेषु) उनके रथों पर (धन्वानि आयुधा) धनुष आदि हथियार (स्थिरा) स्थिर हों। हे वीर पुरुषो! (नः अनीकेषु अधि) आप लोगो की सेनाओ के आधार पर ही (श्रियः) राष्ट्र की लक्ष्मियां स्थिर है।

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे।
वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥

भा०—(पित्र्यं वयः न) जिस प्रकार पिता पितामह का सञ्चित अन्न वा (अर्णः न सप्रथः) जल के समान विस्तृत धन (एकम् इत् भुजे) एक भी प्रजा के भोग के लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार (येषाम्) जिन वीरो के (अर्णः न) सागर के जल के समान धन, (सप्रथः नाम) विख्यात, विस्तृत नाम, शत्रुओं को झुका देने वाला अपार बल, (त्वेषं) कान्ति, तेज, और (पित्र्यं वयः) पिता, वा राष्ट्र पालक होने योग्य पिता तुल्य वयस्, उमर और रक्षा बल तथा (सहः) पराक्रम है, उनको—

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम्।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रजाजन! (तान् मरुतः) उन वायुवत् बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को (वन्दस्व) आदर सत्कार कर। (तान् उप स्तुहि)

उनकी स्तुति कर। (तेषां हि) उन शत्रुओं के (धुनीनाम्) कंपादेने वाले वा (धुनीनां) शास्त्र के उपदेष्टाओं और (अराणां) चक्र में लगे अरों, दण्डों के तुल्य व्यूह में बद्ध, अर्थात् गमन करने और औरों को आगे ले जाने वालों में से (चरमः न) कोई भी व्यक्ति चरम या अधम नहीं। (एषां दाना तत्) उनके दिये ज्ञान, दान ऐश्वर्यादि और उनके किये वे शत्रुनाश आदि नाना कार्य सब (एषाम् मह्ना) इनके ही महान् सामर्थ्यों से होते हैं। अथवा—(अराणां मह्ना चरमः न) चक्र में लगे दण्डों से जिस प्रकार मार्ग में संचरण होता है उसी प्रकार (तेषां हि धुनीनां) उन शत्रुकम्पक, वा वेदोपदेशकों के (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (चरमः) चरम, अन्तिम लक्ष्य प्राप्त होता है।

सुभगः स वं ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु।
यो वां नूनमुतासति ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(उत) और (य वा) जो भी मनुष्य हे (मरुत) वीरो, विद्वानो! (नूनम्) अवश्य (पूर्वासु व्युष्टिषु) पूर्व अर्थात् प्रारम्भ के दिनों में वा ब्रह्मचर्य पालन के वयस् में (व ऊतिषु) आप लोगों की रक्षाओं में (आस) पहुंच जाता है, (उत असति) या निरन्तर रहता है (स. सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्य युक्त और सुखी, सौभाग्यवान् होता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्ग. ॥

यस्य॑ वा यूयं प्रति॑ वाजिनो॑ नर॒ आ ह॒व्या वीतये॑ गथ।
अभि ष सुम्नैरुत वाज॑सातिभिः सुम्ना वो॑ धूतयो नशत् १६

भा०—हे (नरः) वीर नायक जनो! (वा) और (यस्य वाजिन) बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (वीतये) रक्षा के लिये (यूयं) आप लोग (वाजिन) स्वयं बलशाली होकर (हव्या प्रति आ गथ) स्तोत्रों और यज्ञ, उपयोगी देने योग्य और हवियों को प्राप्त करते हो, हे (धूतय) शत्रुकम्पक वीरो! और हे [illegible], शान्ति के स्थापने

वाले विद्वानो ! (सः) वह (द्युम्नैः) नाना ऐश्वर्यों और (वाज-सातिभिः) ज्ञान, बलादि की वाणियों सहित (वः सुम्नानि अभिनशत्) आप लोगों के सुखो को प्राप्त करता है ।

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः ।
युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥

भा०—(रुद्रस्य सूनवः) गर्जना करने वाले मेघ के प्रेरक वायुगण जिस प्रकार (असुरस्य वेधसः) जलप्रद मेघ को उत्पन्न करते और (दिवः वशन्ति) अन्तरिक्ष पर वश करते वा भूमि को कान्तियुक्त करते है उसी प्रकार (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले राजा के (सूनवः) सञ्चालक और (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले और प्रजाओं को जीवन-वृत्ति देने वाले राजा को (वेधसः) बनाने वाले विद्वान् और (युवानः) बल-वान् पुरुष (दिवः यथा वशन्ति) भूमि या राजसभा की जैसी वशकारिणी व्यवस्था करते या जैसे कामनाएं या व्यवहार चाहते है (तथा इत् असत्) उसी प्रकार हो ।

ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (सु-दानवः) उत्तम दानशील (मरुतः) मनुष्य (मीढुषः) ज्ञान, धन के दाता, वीर्यादि के सेक्ता माता पिता, गुरु, स्वामी आदि जनो की (अर्हन्ति) पूजा करते है और (ये च स्मत्) जो अच्छी प्रकार (चरन्ति) आचरण और सेवा करते है वे (युवानः) युवा पुरुष (अतः चित्) इसी प्रकार (वस्यसा हृदा) उत्तम हृदय से (नः उप आ ववृध्वम्) हमें आप लोग भी प्राप्त होओ ।

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा ।
गाय गा इव चर्कृषत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सोभरे) उत्तम रीति से पालन पोषण करने हारे !

हे उत्तम ज्ञान प्रदान करने हारे गुरो ! विद्वन् ! जिस प्रकार (चर्कृषत्) खेती करने हारा (गाःइव) बैलों वा भूमियों को देखकर, वा (वृष्णः अभि) बरसते बादलों को देखकर, (गिरा) वाणी से उनकी (गायति) स्तुति करता है उसी प्रकार तू भी (गाः इव चर्कृषत्) शिष्यों को भूमियों के समान ज्ञान ग्रहण कराता हुआ (वृष्णः) वीर्यवान्, बलवान् (पावकान्) पवित्र आचार वाले तेजस्वी (यूनः) युवा पुरुषों के (अभि) प्रति (नविष्ठया गिरा) अति स्तुत्य वाणी से उन्हे (अभि गाय) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनके प्रति उत्तम आदरपूर्वक वचन कह और ज्ञान बीजों का वपन कर ।

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२०॥३९॥

भा०—(विश्वासु पृत्सु) जिस प्रकार समस्त युद्धों में या समस्त (होतृषु पृत्सु) ललकारने वाले मनुष्यों मे (मुष्टिहा इव हव्यः) मुक्के से या मुट्ठी के समान पाचों जनों को मिलाकर सब शक्ति से ही शत्रु को मारने वाला उत्तम युद्धकुशल होता है उसी प्रकार (ये) जो (विश्वासु पृत्सु) सब संग्रामों या सब मनुष्यों मे, (होतृषु) गुरुजनों के अधीन (सहाः सन्ति) शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं उन (वृष्णः) बलवान् (चन्द्रान्) प्रजाओं को प्रसन्न रखने वाले (सुश्रवस्तमान्) उत्तम यशस्वी, उत्तम ज्ञानी (मरुत) वीरों और विद्वान् पुरुषों को (अह) भी (वन्दस्व) उत्तम प्रकार स्तुति और आदर प्रदान कर । अर्थात् वीर, विजयी, सर्वा-ङ्गपूर्ण योद्धाओं, शासकों तथा कीर्त्तियुक्त ज्ञानी सफल विद्वानों को सदा विशेष प्रशंसा प्राप्त होनी चाहिये । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार (गावः चित् सजात्येन मिथः रिहते) गौवें एक जाति की होने से प्रेमपूर्वक एक दूसरे को चाटती है, एक दूसरे से प्रेम करती है, और जिस प्रकार (मरुतः ककुभ. रिहते) सजल वायुगण दिशाओं का स्पर्श करते, उन तक पहुंचते हैं, उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् शत्रुओं के नाशक राष्ट्र के प्राणवत् पुरुषो ! आप लोग भी (गावः चित्) गौओ के समान परस्पर प्रेम युक्त होकर, (गावः चित्) और किरणों के समान तेजस्वी होकर, (स-मन्यव.) ज्ञान-युक्त एवं (स-जात्येन) एक ही देश मे उत्पन्न होने, एक ही समान उत्पत्ति होने से (स बन्धवः) अपने बन्धु वर्ग सहित वा सम रूप से बन्धु, होकर (मिथः) परस्पर मिलकर (ककुभिः) दिशाओं के समान गुणों में विशाल वा महान् होकर भी (रिहते) एक दूसरे के साथ स्नेह का वर्त्ताव करे । ककुभ इति दिङ्नाम । ककुह इति महन्नाम (निघ०)

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओ को मारने वा वायुवत् प्रबल होकर शत्रु को उखाड़ फेकने में समर्थ वीर पुरुषो ! एवं (मरुतः) प्राण के अभ्यासी, ज्ञानी पुरुषो ! हे (नृतवः) उत्तम मार्ग मे लेजाने वाले नायक जनो ! वा युद्ध क्षेत्र मे कर चरणादि सञ्चालन करके नाचने की सी क्रिया करने वाले ! हे (रुक्म-वक्षस) वक्ष.-स्थल पर सुवर्ण के हार आदि आभूषण धारण करने वाले वीर पुरुषो ! (मर्तः चित्) साधारण मनुष्य भी (वः भ्रातृत्वम् उप आयति) आप लोगों के भ्रातृत्व को प्राप्त करता है । और (हि) क्योंकि (वः) आप लोगों का भी (आपित्वम्) परस्पर-बन्धुत्व (निध्रुवि) नित्य ध्रुव राजा के अधीन, वा नियम से धारणीय राष्ट्र में (अस्ति) है अत. आप लोग (नः) हम लोगों पर (अधि गात) अध्यक्ष होकर शासन करो । इसी प्रकार विद्वान् (रुक्म-वक्षसः) रुचियुक्त तेजो-

मय आत्मज्ञान को धारण करने से 'रुक्म-वक्षस्' है उनका नित्य ध्रुव परमात्मा मे बन्धुत्व भाव है। वे हमें सदा उपदेश करे।

मरु॑तो॒ मारु॑तस्य न॒ आ भे॑ष॒जस्य॑ वहता सुदानवः।
यू॒यं स॑खायः सप्तयः॥ २३॥

भा०—वायुएं जिस प्रकार हमे प्राण सम्बन्धी रोगनाशक सामर्थ्य प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (मरुत.) वीर और विद्वान् पुरुषो! (सखायः) परस्पर मित्र, (सप्तयः) वेग से जाने आने वाले, अश्ववत् तीव्रगामी, (सु-दानव.) उत्तम दानशील होकर (मारुतस्य) मरुत् अर्थात् वायुओं से प्राप्त होने योग्य, (भेषजस्य) रोग दूर करने वाले उपाय के समान (मारुतस्य भेषजस्य) वीर पुरुषों से प्राप्त होने योग्य शत्रुनाशक उपाय को (न' आवहत) हमे प्राप्त कराओ। इसी प्रकार प्राण के अभ्यासी विद्वान् लोग हमें मनुष्योपयोगी भेषज औषधादि प्राप्त करावें।

याभि॒ः सिन्धु॒मव॑थ॒ याभि॒स्तूर्व॑थ॒ याभि॑र्दश॒स्यथा॒ क्रिवि॑म्।
मयो॑ नो भूतो॒तिभि॑र्मयोभुवः शि॒वाभि॑रसचद्विषः॥ २४॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण वा प्राणगण (सिन्धुम् अवन्ति) अन्तरिक्ष, प्राण वा देह मे रक्तप्रवाह की रक्षा करते, (तूर्वन्ति) रोग नाश करते, (क्रिवि दशस्यन्ति) कर्त्ता आत्मा को बल प्रदान करते, (शिवाभि' ऊतिभि' मयोभुव.) गतियों से नाना सुख प्रदान करते हैं। इसी प्रकार हे वीरो! विद्वान् पुरुषो! आप लोग (याभि) जिन (ऊतिभि') रक्षा साधनो से (सिन्धुम्) समुद्र के समान गंभीर सेनापति वा सैन्य समूह की (अवथ) रक्षा करते हो, और (याभि तूर्वथ) जिन उपायों से शत्रुओं का नाश करते हो, और (याभि.) जिन उपायो से (क्रिविं दशस्यथ) गृह, [illegible] आदि प्रदान करते हो, उन (शिवाभि' ऊतिभि.) कल्याणकारी क्रियाओं से (मयो-भुव) सुख उत्पन्न करने वाले आप लोग

(असचद्द्विषः) समवाय रहित शत्रुओं वाले होकर (नः मयः भूत) हमारे लिये सुखकारी होवो ।

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (सु-बर्हिषः) उत्तम यज्ञ वाले और ओषधियों वाले (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (भेषजम्) रोगनाशक पदार्थ (सिन्धौ) नदी प्रवाह में और यत् (असिक्न्यां) रात्रि काल मे, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रों में, और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों मे रोगनाशक ओषधि है उनको (आवहत) प्राप्त कराओ । उत्तम औषधि को जानने वाले विद्वान् सुबर्हिष् मरुत् कहाते है । इसी प्रकार देह में रक्त नाड़ियां सिन्धु हैं, नीली असिक्नी हैं, हृदय फुस्फुसादि समुद्र और अस्थिपर्व पर्वत है । उनमें प्राप्त रोगनाशक तत्व पापों के बलपर कर्म करते है ।

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६।४०।१।३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे (मरुतः) प्राणवत् सुखकारी जनो ! आप लोग (तनूषु) शरीरों में (विश्वं पश्यन्तः) सब विश्व को ज्ञानपूर्वक देखते हुए (विश्वं बिभृथ) समस्त प्राणी वर्ग वा देह में आत्मा को धारण कराओ, सबको पुष्ट करो । (तेन) उसे ज्ञानपूर्वक देखें, विवेक से (नः अधिवोचत) हमे भी उपदेश करो । (नः) हममे से (आतुरस्य) व्याधिपीड़ित मनुष्य के (रपः) रोग वा दुःखदायी कारण की (क्षमा) शान्ति हो । और (नः) हमारे शरीरो में (वि-ह्रुतम्) विपरीत भाव से अङ्गों में कुटिल भाव आगत्य हो तो उसे (पुनः इष्कर्त्ता) फिर से ठीक कर दो । इति चत्वारिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले तृतीयोऽनुवाकः ॥
इति षष्ठेऽष्टके प्रथमोध्यायः समाप्तः ॥

द्वितीयोऽध्यायः। चतुर्थोऽनुवाकः॥

[२१]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ १—१६ इन्द्रः। १७, १८ चित्रस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक्। १३, १७ निचृदुष्णिक्। ५, ७, ६, ११ उष्णिक् ककुप्। २, १२, १४ पादनिचृत् पंक्तिः। १० विराट् पंक्तिः। ६, ८, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ४ भुरिक् पंक्तिः॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः।
वाजे चित्रं हवामहे॥ १॥

भा०—हे (अपूर्व्य) अपूर्व! सबसे पूर्व विद्यमान! सबसे अधिक पूर्ण! तेरे से पूर्व और अधिक पूर्ण दूसरा नहीं। (वयम् उ) हम लोग (अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान, प्रेम और आनन्द की कामना करते हुए और (स्थूरं कत् चित्) किसी स्थिर या बड़े आश्रय को (न भरन्तः) न धारण करते हुए (वाजे) संग्राम या ऐश्वर्य के लिये (चित्रं) आश्चर्यकारक (त्वा) तुझ प्रभु वा स्वामी को (हवामहे) पुकारते और तुझ से प्रार्थना करते हैं।

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो तू (धृषत्) दुष्टों को पराजित करने वाला, (युवा) नित्य बलवान् और (उग्र) भयंकर होकर (नः चक्राम) हमें प्राप्त होता है, उस (त्वा) तुझको हम (ऊतये) रक्षा के लिये (कर्मन्) प्रत्येक कार्य में (उप ववृमहे) स्वीकार करते हैं। और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम (सखाय) तेरे मित्रजन (सानसिम्) सेवा करने योग्य उपास्य वा न्यायपूर्वक ऐश्वर्य का विभाग करने वाले (त्वाम् इत्) तुझको ही (अवितारं) रक्षक रूप से (ववृमहे) वरण करते हैं।

(असचद्विषः) समवाय रहित शत्रुओं वाले होकर (नः मयः भूत) हमारे लिये सुखकारी होवो ।

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (सु-बर्हिषः) उत्तम यज्ञ वाले और ओषधियों वाले (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (भेषजम्) रोगनाशक पदार्थ (सिन्धौ) नदी प्रवाह में और यत् (असिक्न्यां) रात्रि काल मे, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रों में, और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों मे रोगनाशक ओषधि है उनको (आवहत) प्राप्त कराओ । उत्तम औषधि को जानने वाले विद्वान् सुबर्हिष् मरुत् कहाते है । इसी प्रकार देह मे रक्त नाड़ियां सिन्धु हैं, नीली असिक्नी हैं, हृदय फुस्फुसादि समुद्र और अस्थिपर्व पर्वत है । उनमें प्राप्त रोगनाशक तत्व पापो के बलपर कर्म करते हैं ।

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६।४०।१।३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे (मरुतः) प्राणवत् सुखकारी जनो ! आप लोग (तनूषु) शरीरों मे (विश्वं पश्यन्तः) सब विश्व को ज्ञानपूर्वक देखते हुए (विश्वं बिभृथ) समस्त प्राणी वर्ग वा देह मे आत्मा को धारण कराओ, सबको पुष्ट करो । (तेन) उसे ज्ञानपूर्वक देखे, विवेक से (नः अधिवोचत) हमे भी उपदेश करो । (नः) हममे से (आतुरस्य) व्याधिपीड़ित मनुष्य के (रपः) रोग वा दुःखदायी कारण की (क्षमा) शान्ति हो । और (नः) हमारे शरीरों में (वि-ह्रुतम्) विपरीत भाव से अङ्गों में कुटिल भाव आगत्य हो तो उसे (पुनः इष्कर्त्ता) फिर से ठीक कर दो। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले तृतीयोऽनुवाकः॥

इति षष्ठेऽष्टके प्रथमोध्यायः समाप्तः ॥

द्वितीयोऽध्यायः। चतुर्थोऽनुवाकः॥

[२१]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ १—१६ इन्द्रः। १७, १८ चित्रस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक्। १३, १७ निचृदुष्णिक्। ५, ७, ६, ११ उष्णिक् ककुप्। २, १२, १४ पादनिचृत् पंक्तिः। १० विराट् पंक्तिः। ६, ८, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ४ भुरिक् पंक्तिः॥

व॒यमु॑ त्वाम॑पूर्व्य स्थू॒रं न कच्चि॒द्भर॑न्तोऽव॒स्यवः॑।
वाजे॑ चि॒त्रं ह॑वामहे॥ १॥

भा०—हे (अपूर्व्य) अपूर्व! सबसे पूर्व विद्यमान! सबसे अधिक पूर्ण! तेरे से पूर्व और अधिक पूर्ण दूसरा नहीं। (वयम् उ) हम लोग (अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान, प्रेम और आनन्द की कामना करते हुए और (स्थूरं कत् चित्) किसी स्थिर या बड़े आश्रय को (न भरन्तः) न धारण करते हुए (वाजे) संग्राम या ऐश्वर्य के लिये (चित्रं) आश्चर्यकारक (त्वा) तुझ प्रभु या स्वामी को (हवामहे) पुकारते और तुझ से प्रार्थना करते हैं।

उप॑ त्वा॒ कर्म॑न्नू॒तये॒ स नो॒ युवो॒ग्रश्च॑क्राम॒ यो धृ॒षत्।
त्वामिद्ध्य॑वि॒तारं॑ ववृ॒महे॒ सखा॑य इन्द्र सान॒सिम्॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो तू (धृषत्) दुष्टों

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्व-पते) अश्वों, इन्द्रियों और सूर्यादि लोकों के पालक ! स्वामिन् ! हे (गो-पते) गौवों, वाणियों और समस्त भूमियों के पालन करने हारे ! हे (उर्वरा-पते) उत्पादक भूमि के स्वामिन् ! हे (सोम-पते) उत्पन्न अन्न ओषधिवत् शिष्यपुत्रादि एवं जगत् के पालक ! आत्मन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (आ याहि) आ, प्राप्त हो, (इमे इन्दवः) ये ऐश्वर्य वा, स्नेहयुक्त प्रजाजन है तू उनका (पिब) पालन कर ।

व॒यं हि त्वा॒ बन्धु॑मन्तमब॒न्धवो॒ विप्रा॑स इन्द्र येमि॒म ।
या ते॒ धामा॑नि वृषभ॒ तेभि॒रा ग॑हि॒ विश्वे॑भिः॒ सोम॑पीतये ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्य के देने हारे ! तेजस्विन् ! (वयं विप्रासः) हम विद्वान् लोग (अबन्धवः) विना बन्धु के, निःस्सहाय वा बन्धनरहित, सब सांसारिक बन्धनों, सम्बन्धादि को शिथिल किये हुए (बन्धुमन्तं त्वा) बन्धु वाले तुझको ही (येमिम) हम अपने साथ बांधते है । हे (वृषभ) बलशालिन् ! समस्त सुखों की वर्षा करने हारे ! (या ते धामानि) जो तेरे नाना धारण सामर्थ्य, तेज है तू (तेभिः विश्वेभिः) उन सबो से (सोमपीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये राजा के समान हमे (सोमपीतये) ओषधि रसवत् आत्मानन्दरस के पान कराने के लिये (आ गहि) प्राप्त हो ।

सीद॑न्तस्ते॒ वयो॑ यथा॒ गोश्री॑ते॒ मधौ॑ मदि॒रे वि॒वक्ष॑णे ।
अ॒भि त्वामि॑न्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा वय) जिस प्रकार पक्षीगण (गोश्रीते = गोश्रिते) भूमि पर आश्रित वा सूर्य द्वारा परिपक्व, फलवान् (विवक्षणे) विविध स्कन्धों वाले, वृक्षपर, (मदिरे मधौ) आनन्दमय वसन्त में वा अन्न पर आश्रित, (सीदन्त अभिनोनुवन्ति)

बैठे हुए सब तरफ कलरव किया करते हैं उसी प्रकार हम भी (ते) तेरे (गो-श्रीते) वाणियों द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य, वाणी द्वारा स्तुति योग्य, (मदिरे) हर्षजनक (विवक्षणे) विविध प्रकार से कथ-नोपकथन करने एवं धारण करने योग्य (मधौ) मधुर, मधु, ज्ञानमय वेद एवं तेरे रूप में (सीदन्तः) आश्रय लेते हुए (त्वाम् अभि नोनुमः) तेरी ही साक्षात् स्तुति करें। वा, (गोश्रीते) इन्द्रियों से सेव्य हर्षजनक (विवक्षणे) विविध लोकों को उठाने वाले (मधौ) सुखमय संसार में आश्रय पाते हुए हम जीवगण तेरी स्तुति करते हैं।

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः॥६॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! सूर्यादि लोकों के स्वामिन्! हम (त्वा एना नमसा अच्छ वदामसि) तुझे लक्ष्य कर इस विनय से युक्त वाणी द्वारा प्रार्थना करते हैं। (मुहुः) बार २ तू भी (किं वि दीधयः चित) क्या विचारता सा रहता है कि भला हम क्यों तेरी स्तुति करते हैं। भगवन्! स्वामिन्! (कामासः सन्ति) हमारी बहुत सी अभिलाषाएं हैं। और (त्वं ददिः) तू ही उन को देने या पूर्ण करने हारा दाता है। (त्वा स्मः वयं स्मः) हम भी ये तेरे सन्मुख हाज़िर हैं। (नः धियः सन्ति) हमारे उत्तम कर्म, स्तुतियें और उत्तम बुद्धियें भी हैं।

नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः।
विद्मा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्व-पते) अश्वों, इन्द्रियो और सूर्यादि लोको के पालक ! स्वामिन् ! हे (गो-पते) गौवो, वाणियों और समस्त भूमियों के पालन करने हारे ! हे (उर्वरा-पते) उत्पादक भूमि के स्वामिन् ! हे (सोम-पते) उत्पन्न अन्न ओषधिवत् शिष्यपुत्रादि एवं जगत् के पालक ! आत्मन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (आ याहि) आ, प्राप्त हो, (इमे इन्दवः) ये ऐश्वर्य वा, स्नेहयुक्त प्रजाजन है तू उनका (पिब) पालन कर ।

वयं हि त्वा बंधुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्य के देने हारे ! तेजस्विन् ! (वयं विप्रासः) हम विद्वान् लोग (अबन्धवः) विना बन्धु के, निःस्सहाय वा बन्धनरहित, सब सांसारिक बन्धनों, सम्बन्धादि को शिथिल किये हुए (बन्धुमन्तं त्वा) बन्धु वाले तुझको ही (येमिम) हम अपने साथ बांधते है । हे (वृषभ) बलशालिन् ! समस्त सुखों की वर्षा करने हारे ! (या ते धामानि) जो तेरे नाना धारण सामर्थ्य, तेज है तू (तेभिः विश्वेभिः) उन सबो से (सोमपीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये राजा के समान हमें (सोमपीतये) ओषधि रसवत् आत्मानन्दरस के पान कराने के लिये (आ गहि) प्राप्त हो ।

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा वय) जिस प्रकार पक्षीगण (गोश्रीते = गोश्रिते) भूमि पर आश्रित वा सूर्य द्वारा परिपक्, फलवान् (विवक्षणे) विविध स्कन्धों वाले, वृक्षपर, (मदिरे मधौ) आनन्दमय वसन्त में वा अन्न पर आश्रित, (सीदन्तः अभिनोनुवन्ति)

बैठे हुए सब तरफ कलरव किया करते हैं उसी प्रकार हम भी (ते) तेरे (गो-श्रीते) वाणियो द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य, वाणी द्वारा स्तुति योग्य, (मदिरे) हर्षजनक (विवक्षणे) विविध प्रकार से कथ-नोपकथन करने एवं धारण करने योग्य (मधौ) मधुर, मधु, ज्ञानमय वेद एवं तेरे रूप मे (सीदन्तः) आश्रय लेते हुए (त्वाम् अभि नोनुमः) तेरी ही साक्षात् स्तुति करे । वा, (गोश्रीते) इन्द्रियों से सेव्य हर्षजनक (विवक्षणे) विविध लोकों को उठाने वाले (मधौ) सुखमय संसार में आश्रय पाते हुए हम जीवगण तेरी स्तुति करते है ।

अच्छा॑ च त्वैना नम॑सा वदा॑मसि किं मुहु॑श्चिद्वि दी॑धयः ।
सन्ति॒ कामा॑सो हरिवो द॒दिष्ट्वं स्मो व॒यं सन्ति॑ नो॒ धियः॑ ॥६॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! सूर्यादि लोकों के स्वामिन् ! हम (त्वा एना नमसा अच्छ वदामसि) तुझे लक्ष्य कर इस विनय से व्यक्त वाणी द्वारा प्रार्थना करते हैं । (मुहुः) वार २ तू भी (किं चि दीधयः चित्) क्या विचारता सा रहता है कि भला हम क्यों तेरी स्तुति करते हैं । भगवन् ! स्वामिन् ! (कामासः सन्ति) हमारी बहुत सी अभिलाषाएं है । और (त्वं ददिः) तू ही उन को देने या पूर्ण करने हारा दाता है । (त्वा अच्छ वयं स्मः) हम भी ये तेरे सन्मुख याचक है । (नः धियः सन्ति) हमारे उत्तम कर्म, स्तुतिये और उत्तम बुद्धियें भी है ।

नूत्ना इदि॑न्द्र ते व॒यमू॒ती अ॑भूम न॒हि नू ते॑ अद्रिवः ।
वि॒द्मा पु॒रा परी॑णसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (ते ऊती) तेरी रक्षा में (नूत्ना इत्) नये ही सदा (अभूम) बने रहे । हे (अद्रिवः) अखण्डशक्ते ! (परी-णसः) सर्वव्यापक, महान् (ते) तेरे विषय में (पुरा) पहले के

समान अब भी हम लोग (नहि नु विद्म) कुछ भी नहीं जान पाये। तू अगम्य, महान्, असीम, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है।

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यमा ते ता वज्रिन्नीमहे।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥८॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! हम लोग (ते) तेरे (सखित्वम्) मित्र भाव को (विद्म) जानें (उत) और हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! शक्तिशालिन् ! हम लोग (ते) तेरे (ता) वे नाना प्रकार के ऐश्वर्य तथा (भोज्यं) भोग और पालन करने योग्य सुख, ऐश्वर्य तथा बल को (ते ईमहे) तुझ से मांगते और पाते है। हे (वसो) सबमे वसे ! सब जीवों को संसार मे बसाने वाले ! (उतो) और हे (सु-शिप्र) उत्तम सुखप्रद तेज देनेहारे सुखमय स्वरूप ! तू (गोमति वाजे) इन्द्रियों से युक्त आत्मिक ऐश्वर्य, भूमि से युक्त ऐहिक ऐश्वर्य और वेद वाणी से युक्त (अस्मिन्) इस ज्ञान मे (नः) हमें (शम् आ शिशीहि) अच्छी प्रकार अनुशासन कर, आशान्वित और सफल तेजस्वी बना।

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (यः) जो प्रभु (पुरा) पहले भी (नः) हमे (इदम् इदम्) ये ये नाना गौ, भूमि, हिरण्य आदि (वस्यः) उत्तम २ ऐश्वर्य (आनिनाय) देता रहा है, उसी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को (ऊतये) रक्षा और उपासना करने के लिये मै (वः स्तुषे) आप लोगों को भी उपदेश करता हू।

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१०॥२॥

भा०—(सः हि स्म मघवा) वह ही निश्चय से परमैश्वर्यवान् है

(यः अमन्दत) जो स्वयं आनन्दमय होकर सब संसार को भी आनन्दित करता है। (सः तु) वही, (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हम में से (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले उपासक जनो के उपकारार्थ (शतम्) अनेक (गव्यम्) गौ और (अश्व्यम्) अश्वादि सम्पन्न नाना धन (आ वयति) निरन्तर दिया करता और बनाता रहता है, सन्तति-परम्परा से उनका तांता लगाये रखता है। मैं उपासक भी (तं) उस ही (हर्यश्वं) सब मनुष्यों और लोकों मे व्यापक, किरणो मे सूर्य के समान तेजस्वी, (सत्-पतिम्) सज्जनो और सत् कारण, प्रकृति के पालक और (चर्षणी-सहं) सब मनुष्यों को सहनेवाले प्रभु की (स्तुषे) स्तुति करता हूं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

त्वया॑ ह स्विद्युजा व॒यं प्रति॑ श्व॒सन्तं॑ वृषभ ब्रुवीमहि ।
सं॒स्थे जन॑स्य॒ गोम॑तः ॥ ११ ॥

भा०—(गो-मत) कान, आंख आदि इन्द्रियगण और वाणी से युक्त, अविकलेन्द्रिय (जनस्य) मनुष्य के (संस्थे) समीप (श्वसन्तं) और श्वास लेने वाले प्रत्येक प्राणी के (प्रति) प्रति हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करने हारे ! (त्वया ह स्वित् युजा) तुझ अपने सहायक के साथ (प्रति ब्रुवीमहि) बात चीत करें। जनसमुदाय या किसी भी प्राणी के साथ बात चीत करते हुए तुझे अपना सहायक साथी जानें, किसी से मिथ्या व्यवहार न करें और न डरें। (२) इसी प्रकार (जनस्य संस्थे) मनुष्यो के संग्राम मे (श्वसन्त) क्रोध से फुफकारते शत्रु के प्रति तुझ सहायक मे निर्भय होकर प्रतिवचन कहा करें।

जये॑म का॒रे पु॑रुहूत का॒रिणो॒ऽभि ति॑ष्ठेम दू॒ढ्यः॑ ।
नृभि॑र्वृ॒त्रं ह॒न्याम॑ शूशु॒याम॒ चावे॑रिन्द्र॒ प्र णो॒ धियः॑ ॥ १२ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) हे बहुतों से आदरपूर्वक स्तुत ! प्रभो ! राजन् ! हम (कारिण) संग्राम करने मे कुशल, एवं स्वयं भी कार्यकुशल होकर

(कारे) करने योग्य कार्य के अवसर मे, वा संग्राम मे (दूढयः) दुष्ट बुद्धि वाले पुरुषों को (जयेम) पराजित करे और (अभि तिष्ठेम) उनका मुकाबला करे। (वृत्रं) बढते और विघ्न करने वाले शत्रु को (नृभिः हन्याम) उत्तम नेता जनो से दण्डित करे और (शूशुयाम च) हम बढ़ें, उन्नति करे। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों की (प्र अवेः) अच्छी प्रकार रक्षा कर और आगे बढा।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नेता रहित और (सनात्) अनादि काल से (जनुषा) स्वभावतः (अनापिः असि) बन्धुरहित है। तू (युधा इत्) युद्ध द्वारा ही (आपित्वम् इच्छसे) बन्धुता को चाहता है। जैसे कोई बलवान् राजा निर्बल पर आक्रमण करके ही उसके द्वारा प्रस्तुत सन्धि से बंधकर उसे अपना मित्र वा सम्बन्धी बना लेता है उसी प्रकार प्रभु परमेश्वर जीवगण को उनके कर्मानुसार (युधा) दण्डित करके ही उनको अपना भक्त बना लेता है, दुष्कर्म के बदले दण्ड पा कर दुःखी होकर वे प्रभु की शरण मे ही आते है।

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (रेवन्तं) धन से सम्पन्न पुरुष को (सख्याय) अपने मित्रभाव के योग्य (नकिः विन्दसे) कभी नही पाता। सम्पन्न जन (सुराश्वः) 'सुरा', मद्य पी कर घमण्ड मे फूलने वाले, मत्त जनों के समान 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने योग्य स्त्री भोग आदि विषय तथा राज्य लक्ष्मी से बढ़ते हुए, मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्त जनों को पीड़ित करते हैं। और जब तू उन को (नदनुं) स्तुति करने वाला (कृणोषि) कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर ही तू उन्हे (सम् ऊहसि) अच्छी

प्रकार अपने साथ लेता है, अपनी गोद मे उठा लेता है अथवा जब तू (नदनुं) उपदेश करता है, तू उनको अपने साथ संगठित करता और (आत् इत्) अनन्तर ही (पिता इव हूयसे) पिता के समान पुकारा जाता है।

मा ते॑ अमा॒जुरो॑ यथा मू॒रास॑ इन्द्र स॒ख्ये त्वाव॑तः।
नि ष॑दाम॒ सचा॑ सु॒ते ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(मूरास॑ यथा अमा-जुरः) मूढ़, मरणोन्मुख मनुष्य जिस प्रकार रोग पीडाओ वा जड़ गृहादि, वा पुत्र पौत्रादि, 'अ-मा' अर्थात् अज्ञान के साथ ही जीवन भर अज्ञानी रहकर बूढ़े हो जाते है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! उसी प्रकार (त्वावतः ते सख्ये) तेरे जैसे, तुझ अद्वितीय प्रभु के मित्र-भाव मे रहकर हम लोग वैसे (मा) कभी न हों। अर्थात् हम रोगों में या पुत्र पौत्रादि के मोह में कभी बूढ़े न हों। प्रत्युत (सुते) ऐश्वर्य होजाने पर भी हम (सचा) तेरे साथ मिलकर (नि सदाम) स्थिर होकर विराजे। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा ते॑ गोदत्र॒ निर॑राम॒ राध॑स॒ इन्द्र॒ मा ते॑ गृहामहि।
दृ॒ळ्हा चि॑द॒र्यः प्र मृ॑शा॒भ्या भ॑र॒ न ते॑ दा॒मान॑ आ॒दभे॑ ॥ १६ ॥

भा०—हे (गोदत्र) भूमियों, वाणियों और इन्द्रियों के देने हारे प्रभो! हम लोग (ते राधसः) तेरे दिये धन आराधना से (मा निरराम) कभी वञ्चित न हों। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम (ते) तेरे होकर (मा गृहामहि) दूसरे का ग्रहण न करें। तू (अर्यः) स्वामी होकर (दृढा) दृढ, स्थिर धनों का (प्र मृश) प्रदान कर वा तू दृढ होकर हमें पकड़, और हमारे विषय मे निर्णय, विचार कर। (अभि आ भर) हमें उत्तम रीति से पालन कर, सब ओर से हमे पकड, (ते दामानः) तेरे दान और बन्धन (न आ-दभे) कभी विनष्ट नही हो सकते।

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥

भा०—हे (चित्र) समस्त जगत् में पूज्य एवं आश्चर्यजनक शक्ति-वाले प्रभो ! तू (दाशुषे) दानशील, उपासक को (इन्द्रः वा) ऐश्वर्य-वान् के समान (घ) ही (इयत् मघं ददिः) इतना धन देता और तू (सरस्वती वा सुभगा) सौभाग्यवती सरस्वती, उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री वा उत्तम जल वाली नदी के समान (इयत् वसु ददिः) जलवत् अप-रिमित इतना धन-प्रवाह देने वाला है कि जिसका पारावार नहीं । अत्र वेत्युपमार्थीयः ॥

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥ ४॥

भा०—(यके) जो (सरस्वतीम्) नदीवत् प्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न प्रभु के (अनु) ऊपर निर्भर है वे (अन्यके राजकाः इत्) और सब छोटे २ राजाओं के तुल्य स्वप्रकाश आत्मा हैं । और (चित्र इत्) सबको चेतना वा ज्ञान देने वाला है वही आश्चर्यकारी प्रभु (राजा) बड़ा भारी राजा के तुल्य, सूर्यवत् प्रकाशमान है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२२]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । ३, ५ निचृद् बृहती । ७ बृहती पथ्या । २ विराट् पंक्ति । ६, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ४, १० सतः पंक्तिः । २४ भुरिक् पंक्तिः । ८ अनुष्टुप् । ६, ११, १७ उष्णिक् । १३ निचृदुष्णिक् । १५ पादनिचृदुष्णिक् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वों के स्वामीवत् जनो ! हे (सु-हवा) उत्तम नाम और उत्तम वचन वाले, हे (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापतिवत् वा दुःख दूर करने वाले, वैद्यवत् कार्य व्यवहार करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यं) जिस (दसिष्ठं) दुष्टों के नाशक और खूब कर्म करने मे समर्थ, (रथम्) रमणीय, सुखजनक रथवत् गृहस्थ पर (सूर्यायै) सूर्य की कान्ति के समान तेजस्विनी, एवं दीप्तिमती कन्या वा वधू वा सन्तानजनक माता की (ऊतये) रक्षा के लिये (आ तस्थथुः) स्थित होते है (ओ) हे स्त्री पुरुषो ! मैं (त्यं रथम्) उस रमण करने योग्य गृहस्थ रूप रथ का (अह्वे) वर्णन करता हूं ।

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥

भा०—इसी गृहस्थ रथ का वर्णन करते है । हे (सोभरे) प्रजा का उत्तम रीति से भरण पोषण करने में समर्थ पुरुष ! मैं तुझे ऐसे उस रथ का उपदेश करता हू जो (पूर्व आ-पुषम्) अपने पूर्वज जन को पुष्ट करता, उनके वंश की वृद्धि करता है, (सु-हवं) शुभ नाम वाला, (पुरु-स्पृहं) बहुतों के साथ स्नेह करने वाला, (वाजेषु पूर्व्यम्) ऐश्वर्यों और ज्ञानों से पूर्ण, (सचनावन्तं) आसक्ति और प्रेम से युक्त (भुज्युं) भोगों की कामना वाला और प्रजा सन्तानादि के रक्षा करने वाला, (वि-द्वेषसम्) परस्पर के द्वेष से रहित, (अनेहसम्) पापों, अपराधों से रहित हैं, उस गृहस्थ रूप रथ का मैं (अह्वे) उपदेश करूं । गृहस्थ स्त्री पुरुषों से भिन्न नहीं होता अतः ये सब गुण विशेष स्त्री-पुरुषों के ही हैं । स्त्री पुरुषों को ही ऐसा होना चाहिये ।

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥

भा०—(इह) यहां (दाशुष) आतिथ्यादि देने वाले के (गृहं

गन्तारा) गृह पर जाने वाले, (पुरु-भूतमा) बहुतों के प्रति सद्भावना करने वाले, (देवा) उत्तम गुणों से अलंकृत (त्या) उन दोनों (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (अवसे) उत्तम रूप से तृप्त, प्रसन्न करने के लिये, (नमोभिः) अन्नों और आदरयुक्त वचनों से (सु करामहे) सत्कार करें।

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥

भा०—गृहस्थ रथ के दो चक्र। हे (ईर्मा) एक शरीर में लगे दो बाहुओं के समान (शुभः पती) उत्तम व्रतों, कर्मों के पालक, एवं शोभा युक्त पति-पत्नी जनो! (युवोः रथस्य चक्रम्) तुम दोनों के बने रथ अर्थात् रमणीय रथवत् गृहस्थ का एक 'चक्र' वत् कर्त्ता पुरुष, (परि ईयते) सर्वत्र बाहर जाता है, और (वाम् अन्यत्) तुम दोनों मे दूसरा चक्र स्त्री, वह केवल (इषण्यति) चाहना करती है। (वां सु-मतिः) तुम दोनों की उत्तम बुद्धि (धेनुः इव) गौ के समान (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हम को भली प्रकार प्राप्त होवे।

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ के समान सुख देने वाला, उत्तम गृहस्थ रूप रथ है वह रथ के समान ही (त्रि-बन्धुरः) तीन ऋण रूप बन्धनों के समान कायिक, मानसिक और वाचिक तीनों बन्धनों से युक्त है, इसमे (हिरण्याभीशुः) हित रमणीय वचन वा सुवर्णादि ही अभीशु अर्थात् लगाम के समान है। वह (श्रुत.) विख्यात, एवं गुरुपदेशादि श्रवण करके विद्या में सम्पन्न होकर (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के सदृश (परि भूषति) सुशोभित होता है। हे (नासत्या) कभी व्यभिचार आदि असत्याचरण

न करने वाले आप दोनों (तेन) उसी रथ से (आ गतम्) आओ, जाओ, संसार मार्ग की यात्रा किया करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

दृशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥

भा०—आप दोनो (दशस्यन्ता) दानशील होकर (मनवे) मनुष्यों के हितार्थ, (पूर्व्यं यवं) पूर्वों से उपदिष्ट यव आदि धान्य की (दिवि) भूमिपर (वृकेण कर्षथः) हल द्वारा कृषि करो। हे (शुभ -पती) शोभा-युक्त पति पत्नी! हे (अश्विना) रथी सारथिवत् पति पत्नी! (ता) उन (वाम्) तुम दोनो को हम (सु-मतिभि.) उत्तम बुद्धियों और ज्ञानों से (प्र स्तुवीमहि) उत्तम उपदेश करें। विवाह के अनन्तर वृद्ध्यर्थ जौ के खेत बुवाने की प्रथा की जाती है। वर वधू को उत्तम आसन पर बिठला कर उनको जौं देकर बैठा दिया जाता है और अधीन कृषकों के प्रतिनिधि-भूत अन्य स्त्री पुरुष उनके चारों ओर घूमते हैं वे दोनों उनकोबोने के लिये जौ बाटते हैं।

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥७॥

भा०—हे (वाजिनी वसू) ज्ञानवाली, बलवती, और अन्नवती, बुद्धि, सेना और कृषि रूप धन के धनी स्त्री पुरुषो! आप दोनों (येभिः) जिन (ऋतस्य पथिभि.) सत्य, ज्ञान, और न्याय के प्राप्त कराने वाले उपायों से (त्रासदस्यवं) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने और दुष्टों को भय देने वाले सैन्य दल के नायक (तृक्षि) विजिगीषु नायक को (महे क्षत्राय) बड़े भारी धन दल को प्राप्त करने के लिये (जिन्वथ) बढ़ा सकते हो आप दोनो (वृषणा) बलवान् होकर उन ही (ऋतस्य पथिभि) सत्य, न्यायादि मार्गों से (न उप यातम्) हमें प्राप्त होवो।

अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) उत्तम सुख की वर्षा करने वाले, बलवान् अंगों के स्वामी जनो ! हे (नरा) उत्तम नायक नायिका जनो ! (वाम्) आप दोनों का (अयम्) यह (सुतः) उत्पादित ऐश्वर्य (अद्रिभि.) मेघों से उत्पादित वा पाषाणादि से पीस कर तैयार किये अन्न के समान (अद्रिभिः) अखण्ड शस्त्रों, बलो से उत्पन्न किया जाता है । आप दोनो (सोम-पीतये) ऐसे ऐश्वर्य के उपभोग और पालन के लिये (दाशुषः गृहम्) दानशील यज्ञकर्त्ता पुरुष के गृह पर (आ यातम्) आवो और (पिबतम्) उसका पालन और उपभोग करो ।

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् साधनों के स्वामी जनो ! हे (वृष- ण्वसू) हे बलवान् पुरुषों के अधीन जनो ! या बलशाली पुरुषों के बीच बसने वालो ! आप दोनों (रथे) रथ के समान सुखजनक (हिरण्यये) सुवर्ण से पूर्ण (कोशे) कोश, खजाने पर (आरुहतम्) स्थिर होवो । और (पीवरीः इषः) सम्पन्न अन्नों, और अभिलाषाओं को (युञ्जाथाम्) प्रदान करो ।

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०॥६॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान्, अश्व रथादि के स्वामी जनो ! आप दोनों (याभिः) जिन उपायों से (पक्थम् अवथः) पके अन्न की रक्षा करते हो, और (याभिः) जिन उपायों से (अध्रिगुं अवथः) अस्थिर रूप से गमन करने वाले, निर्बल बालकवत् दीन जन की रक्षा करते हो, और (याभि) जिन उपायो और शक्तियो से (वि-जोषसम्) विशेष

प्रीति युक्त (बभ्रुं) भरण पोषणकारी माता पितावत् पालक एवं सेवक जन की रक्षा करते हो, (ताभिः) इन सब शक्तियों वा साधनो सहित (नः) हमे (मक्षु तूयम्) शीघ्रातिशीघ्र (आ गतम्) आओ और (यत् आतुरम्) जो पीडित जन हो उसके (भिषज्यतम्) दु:खो को दूर करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
व॒यं गी॒र्भिर्वि॑प॒न्यवः॑ ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्रि गू) इन्द्रियों पर अधिकार करने वाले! हे (अश्विना) अश्ववत् वेगवान् मन पर वश करने वाले जनो! (यत्) जब हम (अध्रि-गाव:) वाणियों पर वशी (विपन्यवः) स्तुतिकर्त्ता हो (अन्हः चित् इदा) दिन के उसी उत्तम समय मे आप दोनो की (गीर्भिः हवामहे) वाणियों से स्तुति करें, आप दोनों को आदर से बुलावें। उत्तम वाणियों से आप दोनों को उपदेश करें।

ताभि॒रा यां॑तं वृष॒णोप॑ मे॒ हवं॑ वि॒श्वप्सुं॑ वि॒श्ववा॑र्यम् । इ॒षा मंहि॑ष्ठा पुरु॒भूत॑मा न॒रा याभिः॒ क्रिविं॑ वावृ॒धुस्ताभि॒रा ग॑तम् १२

भा०—हे (वृषणा) बलवान्, सुखों की वृष्टि करने वाले मेघ पवनवत् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (विश्व-प्सुं) नाना रूप के (विश्ववार्यं) सब साधनों मे सम्पन्न, सब कष्टों के वारण करने वाले, (मे हवं) मेरे यज्ञ को आप (ताभि) उन शक्तियो सहित (आयातम्) आवो (याभिः) जिनसे आप दोनों (इषा) इच्छावान्, (मंहिष्ठा) दानशील (पुरु-भूतमा) अधिक सामर्थ्यवान् (नरा) नायक होकर (क्रिविं वावृधुः) शत्रुनाशक स्वामी की वृद्धि करते हो, (ताभिः) उन सहित ही (आ गतम्) हमारे पास भी आवो।

ताविदा चिदहानां ताव॒श्विना॒ वन्द॑मान॒ उप॑ ब्रुवे ।
ता उ॒ नमो॑भिरीमहे ॥ १३ ॥

भा०—(अहानां इदा चित्) दिनो के वर्त्तमान काल में, सब दिनों, (तौ) उन दोनो की मैं स्तुति करूं और (तौ अश्विनौ) उन दोनो जितेन्द्रिय पुरुषों को (वन्दमानः) नमस्कार करता हुआ (उप ब्रुवे) उनके समीप जाकर वचन कहू । (नमोभिः) हम लोग आदर युक्त वचनों से (ता उ ईमहे) उनसे प्रार्थना करे ।

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४॥

भा०—(तौ इत् दोषा) वे दोनों रात्रि मे, (ता उषसि) वे दोनो, प्रभात वेला में, (शुभः-पती) शुभ गुण, कर्मों और शोभा और अन्न जलादि के पालक, एवं शोभा युक्त पति पत्नी हो । (यामन्) मार्ग मे, वा नियम व्यवस्थाओं मे (ता) वे दोनो (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टो को रुलाने और रोग दूर करने और उपदेष्टा आदि के समान उत्तम व्यवहार करने वाले हों । हे (वाजिनी-वसू) बल, ज्ञान, अन्नादि युक्त प्रजा के धनी जनो ! हे (रुद्रौ) दुष्टों को रुलानेवालो ! आप दोनो (नः) हमे (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु या पापी मनुष्य के लाभ या वृद्धि के लिये (मा अति ख्यतम्) मत परि त्याग करें ।

आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सक्षणी) एक साथ रहने वाले, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (प्रात) प्रात काल, (सुग्म्याय) सुख प्राप्त करने के लिये (सुग्म्यं) सुखपूर्वक (रथेन) रमण योग्य, सुख से सेवने योग्य, गृहस्थ रूप रथ से (आ) जीवन व्यतीत करो । मै (सोभरा) उत्तम रीति से पोषण करने वाला (पिता इव) पिता के समान तुम दोनों को (हुवे) बुलाता हूं और उपदेश करता हू । इति सप्तमो वर्गः ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभिः।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा॥ १६ ॥

भा०—हे (मनो-जवसा) ज्ञानपूर्वक एवं मन के वेग से जाने वाले, (वृषणा) बलवान्, एवं वीर्यसेचन मे समर्थ, पूर्ण युवा, (मद-च्युता) हर्ष से जाने वाले, वा शत्रुओ के मद को दूर करने मे समर्थ, और (पुरु-भोजसा) बहुतों की रक्षा करने वाले आप दोनों (अस्मे अवसे) हमारी रक्षा के लिये, (पूर्वीभिः) पूर्व विद्यमान, बल से पूर्ण (मक्षुं-गमाभिः) अति वेग से जाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओ सहित (आरात्तात् चित्) हमारे अति समीप और दूर भी (भूतम्) होवो।

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत्॥ १७॥

भा०—हे (मधु-पातमा) मधुर अन्न जल, आदि हर्षदायक पदार्थ और ज्ञान के उपभोग और रक्षा करने वाले (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो! आप दोनों (नः) हमारे (अश्वावत्) अश्वों, (गोमद्) गौओं और (हिरण्यवत्) सुवर्ण से समृद्ध (वर्त्तिः) गृह मे (आ यासिष्टम्) आओ, और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो।

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि॥१८॥८॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्यादियुक्त, विद्या, सेना, कृषि, राज्यलक्ष्मी आदि के धनी स्त्री पुरुषो! हम लोग (रक्षस्विना अनाधृष्टं) 'रक्षस्' अर्थात् नाना दुष्ट जनों के सर्दार द्वारा भी बलात्कार से न पराजित होने वाला (सुष्टु) उत्तम (वार्य) धन और (सु-प्रावर्गं) शत्रुओं को वर्जन करने वाला (सु-वीर्य) उत्तम बल युक्त, सैन्य और (वाम् आयाने) आप दोनो के आजाने पर (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (विश्वा

-वामानि) समस्त उत्तम पदार्थ हम लोग (आ धीमहि) धारण करें।
इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, १०, १४—१६, १९—२२, २६, २७ निचृदुष्णिक्। २, ४, ५, ७, ११, १७, २५, २९, ३० विराडुष्णिक्। ६, ८, ९, १३, १८ उष्णिक्। १२, २३, २८ पादनिचृदुष्णिक्। २४ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं१ यजस्व जातवेदसम्।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (प्रतीव्यः) प्रत्यक्ष मे कान्तियुक्त (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ मे विद्यमान, (चरिष्णु-धूमः) फैलने वाले धूम वाला, (अगृभीत-शोचिः) न स्पर्श करने योग्य ज्वाला वाला होता है उसी प्रकार हे मनुष्य तू (प्रतीव्यं) प्रत्यक्षतः कान्तिमान् तेजोमय (जातवेदसम्) समस्त पदार्थों को जानने वाले, (चरिष्णु-धूमम्) विश्वभर मे व्यापक सञ्चालक शक्ति वाले, (अगृभीत-शोचिषम्) अपरिचित वा प्रत्यक्ष चक्षुओं से न दीखने योग्य तेज वाले, प्रभु परमेश्वर की (हि) अवश्य (ईडिष्व) उपासना कर।

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विश्व-चर्षणे) संसार भर मे प्रविष्ट, व्यापक एक ही महान् प्रभु को देखने वाले! हे (विश्व-मनः) उसी सर्वव्यापक, कामना न करने वाले, उसमे निमग्न मन वाले! तू (गिरा) वाणी से (वि-स्पर्धतः) विविध प्रकार की स्पर्द्धाएं करने वाले, नाना ऐश्वर्यों के इच्छुक जीव को

(रथानां) नाना रमण करने योग्य देहों के (दामानं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् तेजस्वी और व्यापक परमेश्वर की (उत) भी (स्तुषे) स्तुति कर।

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे।
उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥

भा०—(ऋग्मियः) वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य, (वह्निः) जगत् को धारण करने वाला, (आ-बाधः) दुष्ट पुरुषों को सब प्रकार से पीड़ित करने वाला होकर (इषः पृक्षः च) उनकी इच्छा और अन्नादि को भी (नि-ग्रभे) रोक देता है, उन पर प्रतिबन्ध लगा देता है। वह (उप-विदा) विवेक पूर्वक (वसु विन्दते) धन प्राप्त कराता है। (२) राजा अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है। वह स्तुति योग्य, दुष्टों का बाधक होता, अन्न, सेनादि का निग्रह, व्यवस्था करता, प्रजा के साथ आमन्त्रणा करके करद्वारा ऐश्वर्य संग्रह करता है।

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्यजरम्।
तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस भौतिक अग्नि की ज्वाला ऊपर को उठती है, वह (वि-अजरम्) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न करके दूर २ तक फेंकती या फैला देती हैं, (तपुः-जम्भः) अग्नि का प्रताप ही मानो उसकी दाढ़ों के समान काष्ठादि को खाजाने का साधन है। वह (सु-द्युत्) उत्तम कान्ति युक्त (गण-श्रीः) गणनीय, दर्शनीय शोभा से युक्त होता है। इसी प्रकार (अस्य) इस (सु-द्युत.) उत्तम कान्तियुक्त, तेजस्वी, (गण-श्रिय) अनुयायी सैन्य गण का आश्रयणीय, उनके बीच में शोभावान् (दीदियुष.) देदीप्यमान, (अस्य) इस राजा वा प्रभु का (वि-अजरम्) विशेष रूप से अविनाशी वा विविध प्रकार से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (शोचि.) तेज (उत् अस्थात्) सर्वोपरी उठता है और विराजता है। (तपुर्जम्भस्य) शत्रुसन्तापक शस्त्रास्त्र

बल ही उसकी जम्भ या दंष्ट्रा के समान दुष्टों शत्रुओं को हड़प जाने का साधन होता है। (२) इसी प्रकार प्रभु की अविनश्वर दीप्ति सर्वोपरि विराजती है। वह विकृति आदि गण मे विराजता और उनका आश्रय है। दुष्टों का सन्तापक बल ही उसकी महान् दाढ़ है, जिनमे दुष्ट पिसते, नाना नरक भोगते है। वह स्वभावतः उत्तम कान्तिमान् है।

ऊर्ध्वो तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा।
अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! हे प्रभो ! राजन् ! विद्वन् ! हे (स्वध्वर) उत्तम अविनाशिन् ! उत्तम हिंसारहित ! प्रजापालक ! तू (देव्या कृपा) तेजोयुक्त प्रजा को सुख देने वाली राजशक्ति से और (अभि-ख्या) सब ओर स्पष्ट घोषणा करने वाली वा प्रसिद्ध वाणी और (भासा) कान्ति और (बृहता) बड़े भारी ज्ञान और बल से युक्त होकर (शुशुक्वनिः) निरन्तर अग्निवत् शुद्ध, कान्तिमान् , तेजस्वी, और (स्तवानः) स्तुति किया जाकर वा अन्यों को उपदेश वा आज्ञावचन कहता हुआ (उत् तिष्ठ उ) उत्तम आसन पर विराज। इति नवमो वर्गः॥

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक्।
यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (सुशक्तिभिः हव्या आनुषक् जुह्वानः) उत्तम वेद-स्तुतियों सहित उत्तम हव्यों का ग्रहण करता हुआ (दूतः) तापकारी होकर (हव्य-वाहनः भवति) हव्य, चरु आदि पदार्थों को दूर २ तक पहुंचाने में समर्थ होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! तू भी (सु-शक्तिभिः) उत्तम शासनों द्वारा (आनुषक्) निरन्तर (हव्या जुह्वानः) राजा के ग्रहणयोग्य करों और विद्वानों के ग्राह्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को लेता हुआ (दूतः यथा) दूत, संदेश हर के समान (हव्य-

वाहनः बभूथ) प्राप्य बचन और ज्ञान को पहुंचाने वाला होता है । वह तू (याहि) हमें प्राप्त हो ।

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं हु॑वे॒ होता॑रं चर्षणी॒नाम् ।
तम॒या वा॒चा गृ॑णे॒ तमु॑ वः स्तुषे ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! मैं (वः) आप लोगों को (चर्षणीनां) ज्ञान को देखने वाले इन्द्रियों के (होतारं) बल देने वाले आत्मा के समान (चर्षणीनां) ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के (पूर्व्यं) सब से पूर्व विद्यमान ज्ञान और शक्ति में परिपूर्ण (अग्निः) उस ज्ञानी प्रभु का (वः हुवे) तुमको ज्ञानोपदेश करता हूं । और (तम्) उस प्रभु की मैं (अया वाचा) इस व्यक्त वेदवाणी से (गृणे) स्वयं स्तुति करता हूं और (तम् उ वः स्तुषे) उसका ही मैं आप लोगों को उपदेश करता हूं ।

य॒ज्ञेभि॒रद्भु॑तक्रतुं॒ यं कृ॒पा सू॒दय॑न्त॒ इत् ।
मि॒त्रं न जने॒ सुधि॑तमृ॒ताव॑नि ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावनि जने) सत्य, वेदज्ञान एवं न्यायमार्ग का सेवन करने वाले मनुष्य के बीच (सुधितम्) उत्तम रीति से धारित एवं (मित्रं न) मित्र, स्नेही जन के समान, प्राणप्रद, प्राणरक्षक रूप से (कृपा) अपने दया एवं जगद्-रचनादि सामर्थ्य से (अद्भुत-क्रतुं) अद्भुत ज्ञान और कर्म वाले (यं) जिसकी ओर सब उपासकजन (यज्ञेभि) यज्ञों, उपासनाओं से (सूदयन्त इत्) अति द्रवित, प्रेमार्द्र होकर जलोंवत् स्वभावतः बह ही जाते हैं मैं उसीका तुमको उपदेश करता हूं । उसीकी स्तुति करता हूं ।

ऋ॒तावा॑नमृता॒यवो॑ य॒ज्ञस्य॒ साध॑नं गि॒रा ।
उपो॑ एनं जुजुषु॒र्नम॑सस्प॒दे ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतायवः) अन्नार्थी (नमसः पदे) अन्न के पाने के लिये (ऋतावानं जुजुषुः) अन्न के स्वामी की सेवा करते हैं उसी

प्रकार (ऋतायवः) सत्य ज्ञान की आकांक्षा करने वाले, पुरुष (यज्ञस साधनम्) यज्ञ को साधने वाले, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान के दाता, (एनं) उसको ही (नमसः पदे) आदर नमस्कार के योग्य प्रतिष्ठा पद पर स्थापित (एनं) उसकी (गिरा) वेदवाणी से ही (उपो जुजुषुः) उपासना पूर्वक सेवन और प्रेम करे।

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः।
होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो (विक्षु) प्रजाओं मे (होता) सब सुखों का दाता और (यशः-तमः) कीर्त्ति और बल मे सबसे अधिक (अस्ति) है। उसी (अंगिरस्तमं) सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी और तपस्वितम पुरुष को (अच्छा) प्राप्त कर (यज्ञासः) यज्ञ और संगठित दल भी (सं-यतः सन्तु) सुसम्बद्ध होकर आगे बढ़े। इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने तव त्ये अंजरेन्धानासो बृहद्भाः।
अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! स्वामिन्! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने मे समर्थ? हे अविनाशिन्! (तव) तेरे (त्ये) वे (इन्धानासः) देदीप्यमान (तविषीयवः) बलवान्, (वृषणः) मेघवत् सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करने वाले (बृहद्-भाः) बड़े २ प्रकाशो से चमकने वाले और (अश्वा इव) अश्वों वा सूर्यों के समान सुदृढ़ है।

स त्वं न ऊर्जांपते रयिं रास्व सुवीर्यम्।
प्राव न स्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऊर्जां पते) अन्नों और बलो के स्वामिन्! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (रास्व)

प्रदान कर। (समत्सु) संग्रामो में (नः तोके तनये) हमारे पुत्र पौत्रों के निमित्त हमारे धन की (प्र-अव) अच्छी प्रकार रक्षा कर।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥

भा०—(यत् वै उ विश्पतिः) जब भी प्रजाओं का पालक (शितः) तीक्ष्ण, बलवान् (सुप्रीतः) अच्छी प्रकार तृप्त, प्रसन्न होकर (मनुषः विशि) मनुष्यों के प्रजाजन के बीच विराजता है वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (विश्वा इत् रक्षांसि प्रति सेधति) समस्त राक्षसों को उनका मुकाबला करके दूर करता है, उनका नाश कर देता है।

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥

भा०—हे (वीर विश्पते) शूरवीर प्रजा के पालक ! (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (मे स्तोमस्य) मेरे स्तुत्य वचन को (श्रुष्टी) श्रवण करके शीघ्र (मायिनः रक्षसः) मायावी, राक्षस, दुष्ट पुरुष को (नि दह) भस्म कर।

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः।
यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (अग्नये) अग्नि में (हव्य-दातिभिः) हव्य चरु की आहुतियों द्वारा (ददाश) प्रदान करता है उसी प्रकार जो प्रजाजन (अग्नये) अग्रणी, तेजस्वी नायक राजा को (हव्य-दातिभिः) ग्राह्य कर-आदि अंशों से (ददाश) उसको प्रदान करता है (तस्य) उस पर (रिपुः मर्त्यः) शत्रु मनुष्य (मायया चन) माया, कुटिल बुद्धि से भी (न चन ईशीत) कभी अधिकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार जो विद्वानों को अन्नादि से पालता है शत्रु उससे बुद्धि बल से दब नहीं सकता। परमेश्वर के प्रति स्तुत्य वचनों से जो अपने को सौंपता है शत्रु उस पर छल कपट से वश नहीं कर सकता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः ।
महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥

भा०—(उक्षण्युः) जलसेचक मेघ की इच्छा करने वाला, (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वि-अश्वः) विशेष विद्वान् होकर (वसु-विदम्) जीवन को प्राप्त कराने वाले सूर्य या अग्नि को (अप्रीणात्) हव्यों से तृप्त करता है, उसी प्रकार (उक्षण्युः) समस्त संसार को वहन करने और सुखों के वर्षक प्रभु को चाहने वाला (वि-अश्वः) विशेष सुख आनन्द के भोगने या प्राप्त करने वाला (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वसु-विदम्) समस्त ऐश्वर्यों के देने वाले प्रभु को (अप्रीणात्) प्रसन्न करे, उसकी प्रार्थना करे। हम भी (महः राये) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (तम् उ त्वा) उस तुझको (सम् इधीमहि) अच्छी प्रकार अपने हृदय में, कुण्ड में अग्नि के समान प्रज्वलित करें ।

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।
आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ॥ १७ ॥

भा०—(काव्यः) कवि, विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों का पुत्र वा शिष्य अथवा स्वयं कवि, सर्वोपदेष्टा प्रभु का उपासक (उशना) कामनावान् जीव (मनवे) मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये (होतारं) सर्व सुखदाता, (आयजि) सब प्रकार से पूज्य (जात-वेदस) सर्वज्ञानी, सर्वैश्वर्यवान् (त्वा) तुझे ही (नि-असादयत्) सर्वात्मना प्राप्त करे ।

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप! ज्ञानैश्वर्य के देने वाले! (स-जोषस) समान प्रीति से युक्त (विश्वे हि देवासः) सब विद्वान् तेरी कामना करने वाले और तुझे चाहने वाले जन (त्वा) तुझ को (दूतम् अक्रत) अपना संदेशहर, ज्ञानदाता स्वीकार करते हैं। हे (देव) देव ! तू ही

(श्रुष्टी) शीघ्र (प्रथमः) सब से प्रथम (यज्ञियः भुवः) सर्वोपास्य है। (२) इसी प्रकार विद्वान् लोग अग्नि, विद्युत् को एवं विद्वान् ज्ञानी को अपना संदेशहर दूत बनाते हैं। वह अग्नि ही प्रथम यज्ञ का साधन बनाया गया है।

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः।
पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥ १९ ॥

भा०—(वीरः मर्त्यः) विशेष विद्वान् मनुष्य (पावकं) पवित्र करने वाले (कृष्ण-वर्त्तनिम्) पापों के नाशक व्यवहार वाले वा चित्ता-कर्षक मार्ग वाले, वा (कृष्ण-वर्त्तनि) आकर्षणशील सूर्यादि लोकों को अपने २ मार्गों से संचालन करने वाले, (विहायसं) महान् आकाशवत्, व्यापक (इमं घ) इस प्रभु को ही (दूतं) उपास्य (कृण्वीत) बनावे। (२) अग्नि भी शोधक होने से पावक है, कृष्णधूम को उत्पन्न करता वा जहां से गुजरता है जलाकर काला करता है वा मनुष्य आकर्षण करने वाले व्यापक विद्युत् को संदेशहर दूत बनावे, टेलिफोन, तार, रेडियो आदि यन्त्रों में प्रयोग करे।

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम्।
विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(सु-भासं) उत्तम कान्तिमान्, (शुक्र-शोचिषम्) शुद्ध प्रकाशवान्, अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (तम्) उसी (विशाम् अग्निम्) प्रजाओं या देह मे प्रविष्ट होने वाले जीवों को अग्रणी नायकवत् कर्म व्यवस्था मे संचालक, (अजरं) अविनाशी, (प्रत्नम्) सदातन, (ईड्यम्) स्तुत्य प्रभु को हम (यत-स्रुच) स्रुच् आदि यज्ञ साधनों के समान अपने प्राणों को संयम करके (हुवेम) उसकी उपासना करें। इति द्वादशो वर्गः॥

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्।
भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥ २१ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त.) मनुष्य (अस्मै) इस अग्नि की (हव्य-दातिभिः) चरु की आहुतियों द्वारा (आहुतिं) आहुति, यज्ञ, (अविधत्) करता है, इसी प्रकार जो (अस्मै) उस प्रभु का (हव्य-दातिभिः) स्तुत्य वचनों द्वारा (आहुतिं) प्रार्थनोपासना (अविधत्) करता है, (सः) वह (भूरि-पोषं धत्ते) बहुत पुष्टिकारक अन्न, धन धारण करता है और (वीर-वद् यशः धत्ते) वीर पुत्रादि से युक्त यश भी प्राप्त करता है। वह पुत्रवान् यशस्वी, अन्नवान् और समृद्धिमान् हो जाता है।

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञेषु अग्नि प्रति हविष्मती स्रुग् नमसा प्रति एति) यज्ञों में अग्नि को लक्ष्य कर हविष्य से युक्त स्रुक्, चमसा नमस्कार युक्त मन्त्र से आता है उसी प्रकार (यज्ञेषु) समस्त उपास्य एवं सत्सग योग्य पूज्य जनों में (पूर्व्यम्) पूर्व एवं ज्ञानशक्ति आदि में पूर्ण (प्रथम) सबसे प्रथम विद्यमान (जातवेदसम्) ज्ञानवान्, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर (हविष्मती) ज्ञान से युक्त (स्रुक्) बुद्धि, वाणी (नमसा) आदरपूर्वक (प्रति एति) उसी को प्राप्त होती और उसी का ज्ञान करती है।

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् ।
मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥

भा०—हम (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेज वाले, प्रकाशस्वरूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (व्यश्ववत्) विशेष रूप से संयतेन्द्रिय वा ज्ञानवान् होकर (ज्येष्ठाभिः) सर्वश्रेष्ठ (मंहिष्ठाभिः) अतिपूज्य, ज्ञानप्रद (आभिः) इन (मतिभिः) वाणियों और बुद्धियों से (विधेम) उपासना करें।

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् ।
ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥ २४ ॥

भा०—हे (वैयश्व ऋषे) जितेन्द्रिय ज्ञानदर्शिन् मनुष्य ! तू (दम्याय अग्नये) गृह मे स्थापन करने योग्य गार्हपत्याग्नि के समान (दम्याय अग्नये) सब संसार को दमन करने मे समर्थ, ज्ञानवान् (विहायसे) महान् प्रभु की (स्थूर-यूपवत्) बड़े २ यूपों से युक्त यज्ञ के समान (नूनम्) अवश्य (स्तोमेभिः) वेदमन्त्रो से (अर्च) उपासना किया कर । अध्यात्म में—(स्थूरयूपवत्) स्थिर आत्मा वा सूर्य के समान सर्वप्रकाशक प्रभु की स्तुति किया कर ।

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।
विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥ २५ ॥ १३ ॥

भा०—(मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों के बीच (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (वनस्पतीनाम्) तेज के पालक, सूर्यों और वनस्पतियों के (सूनुं) सञ्चालक और उत्पादक (प्रत्नम् अग्निम्) सनातन ज्ञानवान् प्रभु की (विप्राः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं । (२) लौकिक अग्नि, मनुष्यों में जाठर रूप से व्यापक, और वनस्पति काष्ठादि से उत्पन्न होता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा ।
अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वामिन् ! तू (महतः विद्यमान् सतः) बड़े २ विश्वों और विद्यमान पदार्थों को (अभि सत्सि) व्यापता है । तू (मानुषा हव्या अभि सत्सि) मनुष्यों के वचनों को स्वीकार करता है । हे प्रभो ! तू (अधि बर्हिषि) इस महान् संसार में (नमसा) बड़े भारी बल के साथ (नि सत्सि) यज्ञ मे अग्रासहित अग्नि के समान

विराजता है। (२) उसी प्रकार सब पर (नमसा) शस्त्र बल से राष्ट्र-प्रजाजन के ऊपर शासक रूप से विराजे।

वस्वा नो वार्या पुरु वस्व राय: पुरुस्पृहः।
सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः॥ २७॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (नः) हमें (पुरु-वार्या) बहुत से उत्तमोत्तम धनादि (वस्व) प्रदान कर। और तू हमे (प्रजावतः) प्रजा का उत्पादक (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्य और (यशस्वतः) उत्तम यश, कीर्त्ति, बल और अन्न से सम्पन्न (नाना राय वस्व) अनेक ऐश्वर्य दे।

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय।
सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते॥ २८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! हे (वरो) वरण योग्य! हे (वसो) सब जगत् को बसाने और उसमें बसने वाले! हे (यविष्ठ) अतिशय बलशालिन्! हे सबसे बड़े दुःख दूर करने हारे! (त्वं) तू (सदा) सब कालों (शश्वते) बहुत से (सु-साम्ने) उत्तम साम गान करने वाले स्तुतिकर्त्ता उपासक (जनाय) मनुष्यों के हितार्थ (रातिं) दान राशि और उत्तम ज्ञान को (चोदय) प्रेरित कर, प्रदान कर।

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः।
महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि॥ २९॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक! प्रकाशस्वरूप! उन्नति के मार्ग में लेजाने हारे! (त्वं हि) तू निश्चय से (सु-प्रतूः असि) उत्तम रीति से धन प्रदान करने हारा है। (त्वं) तू (नः) हमें (गोमतीः इषः) इन्द्रियों या वाणी से युक्त उत्तम इच्छाओं और भूमि, गवादि पशु समेत अन्न, (महः रायः सातिम्) बड़े भारी ऐश्वर्य के भाग को (अप वृधि) खोल, हमें प्रदान कर।

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।
ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥ ३० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने त्वं यशाः असि) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू यश स्वरूप, कीर्तिमान् है । तू (ऋतवाना) सत्यनिष्ठ, (सम्राजा) समान भाव से तेजोयुक्त, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल और ज्ञान वाले, (मित्रावरुणा) सर्व-स्नेही ब्राह्मण, और 'वरुण' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष क्षत्रिय दोनों को (महो रायः सातिम्) बड़े भारी धन का विभाग (वह) प्राप्त करा । प्रभु परमेश्वर विद्वानों को ज्ञान का और क्षत्रियों को बल का धन देता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२४]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—२७ इन्द्रः । २८—३० वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ११, १३, २०, २३, २४ निचृदुष्णिक् । २—५, ७, ८, १०, १६, २५—२७ उष्णिक् । ९, १२, १८, २२, २८ २९ विराडुष्णिक् । १४, १५, १७, २१ पादनिचृदुष्णिक् । १९ आर्चीं स्वराडुष्णिक् । ३० निचृदनुष्टुप् ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (वज्रिणे) बलशाली, सर्वशक्तिमान (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान्, सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक प्रभु के (आशिषामहि) आदरपूर्वक गुणों का वर्णन करें । मैं (धृष्णवे) दुष्टों को नाश करने, जगत् को धारण करने वाले (नृतमाय) परम पुरुषोत्तम, सर्वश्रेष्ठ नेता की ही (वः) आप लोगों के प्रति (ऊ सु स्तुषे) अच्छी प्रकार स्तुति करता हूं ।

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! प्रभो ! तू (वृत्रहत्येन) प्रकृति के 'सरिर'मय स्वरूप में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले मेघ के आघात-कारी विद्युत् के समान (शवसा) बल से ही तू (वृत्र-हा) 'वृत्रहा' नाम से (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है। हे प्रभो ! अथवा, तू (वृत्र-हत्येन शवसा) दुष्टों के नाशक बल से 'वृत्र-हा' दुष्टहन्ता प्रसिद्ध है। तू (मघैः) उत्तम २ ऐश्वर्यों से (मघोनः) बड़े २ धनवानों को भी पार कर। उनसे भी अधिक (अति दाशसि) बहुत बहुत दान देता है।

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम्।
निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः॥ ३॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यो वा जीवों के स्वामिन् ! (सः) वह तू (स्तवानः) हमे ज्ञान उपदेश करता हुआ, (चित्र-श्रवस्तमम्) ज्ञान-प्रद एवं गुरुपरम्परा से श्रवण करने योग्य ज्ञान रूप (रयि) धन (नः आ भर) हमें प्रदान कर। (यः) जो तू (निरेके) सर्वातिशायी पद पर विराजमान (वसुः चित्) सम्पूज्य, सबको बसाने हारा और (ददिः) सबका दाता है।

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम्।
धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर॥ ४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रियम्) अति प्रीतिकारी (निरेकम्) सबसे उत्तम धन (आ दर्षि) प्रदान करता है। हे (धृष्णो) दुष्टों के धर्षक ! तू (धृषता) अपने दुष्ट-अज्ञान के नाशक बल से (स्तवमानः) जगत् भर को उपदेश करता हुआ, वा अन्यों से स्तुति किया जाता हुआ (नः आ भर) हमें भी प्रिय उत्तम धन प्रदान कर।

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः।
न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु॥ ५॥ १५॥

भा०—हे (हरिवः) समस्त मनुष्यों के स्वामिन् ! हे समस्त सूर्यादि लोकों के स्वामिन् ! (गविष्टिषु) वाणी द्वारा तेरी उपासना करने के अवसर में (आसुरः) अभिमुख आकर मरने मारने वाले शत्रुजन भी (ते) तुझ महाबलवान् पुरुष के (न दक्षिणं न सव्यं हस्तं) न दायें और न बायें हाथ को (वरन्त) रोक सकते हैं । वे (गविष्टिषु न परिबाधः) वाणियों द्वारा करने योग्य यज्ञों में भी किसी प्रकार बाधा नहीं कर सकते । (२) निर्बल शत्रु बलवान् राजा के दायें बायें के सैन्य या प्रमुख नेतृबल को भी नहीं सह सकते । वे उसकी (गविष्टिषु) भूमियों के दान या ग्रहण में वा धनुषों द्वारा करने योग्य युद्धयज्ञों में भी बाधा नहीं कर सकते । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः ।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के या शस्त्रबल के स्वामिन् ! (गोभिः व्रजम् इव) बैलों या अश्वों से जिस प्रकार कोई गन्तव्य मार्ग को प्राप्त करता है उसी प्रकार मैं (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (व्रजं) प्राप्य एवं गन्तव्य परम शरणरूप (त्वा) तुझको ही (आ ऋणोमि) प्राप्त होजाता हूं । तू (जरितुः) स्तोता प्रार्थी के (कामं आ पृण स्म) अभिलाषा को पूर्ण कर और (मनः आ पृण) उसके मन को पूर्ण कर वा उसे ज्ञान से भरपूर कर ।

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम ।
उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) प्रकृति तत्व के संचालक, प्रवर्त्तक वा दुष्टों के नाशक, हे (उग्र) अति बलवन् ! हे (प्रणेतः) श्रेष्ठ नायक ! हे (वसो) जगत् को बसाने वाले ! तू (विश्वमनसः नः) सबमें प्रविष्ट

विश्वात्मा प्रभु के दिये हम लोगों की (धिया) बुद्धि कर्मानुसार (नः अधि गहि) हमे प्राप्त हो और हम पर शासन कर ।

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः ।
वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! प्रकृति तत्व के संचालक ! प्रवर्त्तक ! हे (शूर) शक्तिशालिन् ! हे (पुरु-हूत) सबजनों से स्तुतियोग्य, सबों से नाना प्रकारो से स्तुत्यरूप मे स्वीकृत ! (वयं) हम लोग (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) अति नवीन वा स्तुतियोग्य (वसोः) सबको अपने भीतर बसाने वाले (स्पार्हस्य) मनोहर, अभिलषणीय (राधसः) धनैश्वर्य का (विद्याम) ज्ञान और लाभ करें ।

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः ।
अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृतो) सबको अपनी इच्छा पर नचाने या यथेच्छ संचालित करने वाले हे (पुरुहूत) बहुधा स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! (यथा) जैसा (ते) तेरा (शवः) बल (अपरीतं अस्ति)अवि-नाशित, तुझसे कभी पृथक् नही होता । उसी प्रकार (दाशुषे) दानशील उपासक के लिये भी तेरा (रातिः) दान भी (अमृक्ता) कभी नष्ट नहीं होता ।

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे ।
दृळ्हश्चिद्दृह्य मघवन्मघत्तये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(महामह) बड़ों से बड़े ! महतो महीयान् ! सर्वपूज्य ! हे (नृ-तम) सर्वश्रेष्ठ नायक ! हे पुरुषोत्तम ! तू (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (आ वृषस्व) स्वयं बलवान् बन । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (मघत्तये) ऐश्वर्य दान करने के लिये (दृढः चित्) दृढ से दृढ को (दृह्य) विदीर्ण कर । उसको दयार्द्र कर । इति षोडशो वर्गः ॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन् ! (नः आशसः) हमारी आशाएं (त्वत् अन्यत्र चित् जग्मुः) तुझ से अन्य मे भला क्योंकर जावे । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकारिणी शक्तियों से तू (नः तत् शग्धि) हमें वही आशाएं या कामनाएं प्रदान कर।

नह्यं१ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।
राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥

भा०—हे (नृतो) सब के नायक ! (अंग) हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा, प्रार्थनीय ! मैं (राधसे) आराधना करने और (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने लिये और (द्युम्नाय) तेज, यश और (शवसे) बल प्राप्त करने के लिये (त्वत् अन्यं) तुझ से दूसरे को (न विन्दामि) नहीं पाता हूं।

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥ १३ ॥

भा०—जो परमेश्वर (राधसा) अपनी आराधना वा वशीकारक ऐश्वर्य से और (महित्वना) महान् सामर्थ्य से (प्र चोदयाति) समस्त जगत् को और जीव संसार को अच्छी प्रकार, ठीक राह पर प्रेरित करता है और जो (सोम्यं मधु) उत्पन्न होने वाले जगत्, अन्न वा जल को जीव के सदृश (पिबाति) पी लेता वा खालेता, अपने भीतर लीन करलेता है, उस (इन्द्राय) महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर के लिये (इन्दुम्) इस प्रेमार्द्र आत्मा को उसकी ओर (आ सिञ्चत) प्रवाहित कर, आत्मा को उसी की ओर प्रवृत्त कर।

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ १४ ॥

भा०—मैं (हरीणां पतिम्) सूर्य, चन्द्रादि लोकों, और मननशील पुरुषों के पालक, (दक्षम्) सब पापों के भस्म करने वाले, वा कर्म करने वाले (पृञ्चन्तम्) सब के स्नेही, प्रभु को लक्ष्य करके (उप ब्रवम् उ) उपासना, प्रार्थना करता हूं। (नूनं) अवश्य, निश्चय करके (अश्व्यस्य) इन्द्रियों के द्वारा सुख दुःखों के भोक्ता, वा मन, इन्द्रियादि के स्वामी (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता जीव की तू (श्रुधि) प्रार्थना को श्रवण कर।

नह्यं१ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
नकी राया नैवथा न भन्दना ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—(अंग) हे प्रभो ! (पुरा चन) पहले भी, और अब भी (त्वत्) तुझ से अधिक (वीरतरः) बडा वीर, जगत् संचालक, और विविध विद्याओं का उपदेष्टा, (नहि जज्ञे) नहीं पैदा हुआ, और (नकिः राया) न कोई ऐश्वर्य से (न एवथा) न ज्ञान, और रक्षण सामर्थ्य से और (न भन्दना) न जगत् के कल्याण और सुखदायक सामर्थ्य से तुझ से कोई बड़ा है, न होगा। इति सप्तदशो वर्गः ॥

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ १६ ॥

भा०—(वीरः एव हि) वीर, विद्वान् (सदा-वृधः) सदा सबको बढ़ाने वाला ही (स्तूयते) स्तुति करने योग्य है। हे (अध्वर्यो) अविनाशिन् ! तू (अन्धसः) अन्न के समान प्राणपोषक (मध्वः) जलवत् शान्तिदायक आनन्द रस से (मदिन्तरं) अतिशय आनन्ददायक आत्मा को (आ सिञ्च इत्) आ, सेचन कर, उसकी वृद्धि कर।

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ १७ ॥

भा०—हे (हरीणां स्थातः) मनुष्यों के बीच वा अश्व सेनाओं के बीच सेनापति के समान सर्वोपरि विराजमान ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते

पूर्व्यं स्तुतिम्) तेरी पूर्व विद्यमान और पूर्ण स्तुति को (शवसा) बल या ज्ञान से भी (नकिः उत् आनंश) कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता और (न भन्दना उत् आनंश) सुख, कल्याण और ऐश्वर्य से भी कोई नहीं बढ़ सकता।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥

भा०—(अप्रायुभिः) आयु से रहित दीर्घायु वा अप्रमादी पुरुषों और (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनादि सत्कर्मों से (वावृधेन्यम्) अति वृद्धिशील, (वाजानां पतिम्) आप सबके ज्ञान, ऐश्वर्यादि के पालक उसको (नः) हम (श्रवस्यवः) ज्ञान, कीर्त्ति और अन्नादि के इच्छुक होकर (अहूमहि) पुकारते, उसीकी उपासना करते हैं।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो! (एत उ नु) आप लोग आओ न भला, (स्तोम्यं नरं) स्तुति करने योग्य सर्वप्रणेता पुरुष की (स्तवाम) स्तुति करें, (यः विश्वाः कृष्टीः) जो समस्त मनुष्यों के प्रति (एक इत् अभि अस्ति) एक, अद्वितीय, सबके प्रति समान रूप से उपास्य है।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो (अगो-रुधाय) जो पुरुष आप लोगों की वाणी पर रोक न करे, और (गविषे) जो आपकी वेद वाणी को चाहे, उस (द्युक्षाय) तेजस्वी पुरुष के लिये (घृतात् स्वादीयः) घी से भी अधिक स्वादु, शान्तिप्रद, और (मधुनः च) मधु वा अन्न से भी अधिक मधुर, पुष्टिप्रद, बलप्रद (दस्म्यं वचः) दर्शनीय वा ज्ञान के नाशक वचन का (वोचत) उच्चारण करो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यस्यामितानि वीर्या॑ न राधः पर्यैतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ २१ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (वीर्या अमितानि) वीर्य अपरिमित हैं औ (राधः) जिसके धनैश्वर्य (पर्येतवेन) पूर्णतया जाने नहीं जा सकते औ (यस्य दक्षिणा) जिसका बल और दान भी (ज्योतिः न) सूर्य प्रका के समान (विश्वम् अभि अस्ति) सबके प्रति समान रूप से प्राप्त है।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ २२ ॥

भा०—उस (अनूर्मिम्) तरङ्ग या धारा से रहित प्रशान्त औ अगाध, (वाजिनम्) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी, (यमम्) सर्वनियन्ता (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, प्रभु को (वि-अश्ववत्) विविध अश्वों, इन्द्रियों से युक्त आत्मा के समान ही (स्तुहि) स्तुति कर और (दाशुषे) भक्त के (गयं मंहमानं) प्राण और देह, गृहादि देने वाले उस स्वामी की स्तुति कर जो (अर्यः) स्वामी (वि) विविध प्रकार से ऐश्वर्य प्रदान करता है।

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (वैयश्व) विविध अश्वों, अश्वसैन्यों वा भोक्ता शासकों से युक्त सेनापति के समान, विविध अश्वों, प्राणों के स्वामिन्! आत्मन्! तू (नूनम्) अवश्य (दशमं) नव प्राणों के बीच (दशमम्) दशवें और (चरणीनाम्) आचरण करने वालों में भी (सुविद्वांसं) उत्तम ज्ञानी विद्वान् और (चर्कृत्यं) कार्य करने वाले ज्ञानवान् कर्मवान् आत्मा की (उप स्तुहि) स्तुति वा उपदेश कर।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ २४ ॥

भा०—(शुन्ध्युः) सर्वशोधक सूर्य जिस प्रकार (परिपदाम् निर्ऋतीनां) चारों ओर चलने वाली भूमियो के (परिवृतं वेत्ति) परिक्रमामार्ग को जानता है उसी प्रकार हे (वज्र-हस्त) बाहुवीर्य, राजन्, शक्तिशालिन् प्रभो! तू (अहरहः) दिन प्रतिदिन (परिपदाम्) निरन्तर चलने वाले (निर्ऋतीनां) लोकों के (परिवृत्रं) जाने योग्य मार्ग को (वेत्थ) जानता है और (शुन्ध्युः) सब दुःखों और पापों का सूर्य वा अग्निवत् शोधन करने वाला है ।

तदि॑न्द्राव॒ आ भ॑र॒ येना॑ दंसिष्ठ॒ कृत्व॑ने ।
द्वि॒ता कुत्सा॑य शिश्नथो॒ नि चो॑दय ॥ २५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुष्टों और दुःखों के नाशक ! तू (येन) जिस रक्षा सामर्थ्य से (कृत्वने कुत्साय) कर्म करने मे तत्पर स्तुतिकर्त्ता भक्तजन के (द्विता शिश्नथः) इस और उस दोनो लोकों के दुःखों को शिथिल कर देता है तू (तत्) उसी (अवः) रक्षा और ज्ञान को हमें (आभर) प्रदान कर । (नि चोदय) उसी से हमें नित्य सन्मार्ग में प्रेरित कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तमु॑ त्वा नू॒नमी॑महे॒ नव्यं॑ दंसिष्ठ॒ सन्य॑से ।
स त्वं नो॒ विश्वा॑ अ॒भिमा॑तीः स॒क्षणिः॑ ॥ २६ ॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुःखों के नाशक ! (नूनं) निश्चय (त्वा तम् उ) उस पूज्य तुझ (नव्यं) स्तुति योग्य को ही (संन्यसे) सर्व वासना और बन्धनों के त्यागने के लिये, (ईमहे) हम याचना करते हैं । (सः त्वं) वह तू (सक्षणिः) सब दुःखों का नाशक, सबका पराजयकारी होकर (विश्वाः अभिमातीः) समस्त अभिमानी जीवों को पराजित करता है ।

य ऋ॒क्षादंह॑सो मु॒चद्यो वार्या॑त्स॒प्त सिन्धु॑षु ।
वध॑र्दा॒सस्य॑ तुविनृम्ण नीनमः ॥ २७ ॥

भा०—(य) जो प्रभु (ऋक्षात्) मनुष्यों के नाश करने वाले,

रीछ के समान भयंकर, एवं मनुष्यनाशक दुष्ट पुरुषवत् दुःखदायी (अंहसः) पाप से (मुचत्) मुक्त करता है (यः वा) और जो, (सप्त-सिन्धुषु) वेग से जाने वाले जलों मे विद्युत्-बल वा जल को (अर्यात्) प्रेरित करता है, हे (तुवि-नृम्ण) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (दासस्य) सूर्य या पवनवत् जलप्रद मेघ मे, दुष्ट पुरुष के नाशार्थ (वध' नीनमः) हिंसाकारक अस्त्र का प्रहार कर।

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम्।
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ २८ ॥

भा०—हे (वरो) श्रेष्ठ पुरुष ! (यथा) जिस प्रकार तू (सुषाम्णे) उत्तम साम द्वारा स्तुति करने वाले, उत्तम निष्पक्षपात और (सनिभ्यः) उत्तम दान पात्रो को (रयिम् आवहः) ऐश्वर्य प्राप्त कराता है उसी प्रकार हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! हे (वाजिनी-वति) ऐश्वर्य सम्पदा की स्वामिनी ! वधू ! तू भी (व्यश्वेभ्यः) विजितेन्द्रिय पुरुषों को (रयिम्) अन्नैश्वर्य (आ वहः) प्राप्त करा। वर वधू दोनो को चाहिये कि वे सत्पात्रों मे दान दिया करे। इसी प्रकार परमेश्वर 'सुसामा' सम्यग् दृष्टि और समदर्शी तथा भक्तजनो को ऐश्वर्य देता है। और सुभगा प्रकृति भी अश्व अर्थात् विविध इन्द्रियों से सम्पन्न जीवों को अपनी विभूति देती है।

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः।
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥ २९ ॥

भा०—(नार्यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ और उनके हितैषी (सोमिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (दक्षिणा) दान का द्रव्य (वि-अश्वान्) विविध विद्याओं मे पारंगत एवं जितेन्द्रिय पुरुषों को (आ एतु) प्राप्त हो। वा (सोमिनः) पुत्र शिष्यादि के गुरुजनों को प्राप्त हो और उसका (स्थूरं) स्थायी (शतवत् सहस्रवत्) सौ, हजार संख्या वाला (राधः) धन भी ऐसे ही पुरुषों को प्राप्त हो। परमेश्वर नरों, जीवों का स्वामी होने से नर्य

वा 'नार्य' है। उसका दान विविध इन्द्रियोपभोगभूमियों में वर्त्तमान कर्मफल वाले जीवों को प्राप्त होता है।

यस्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते।
एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥ ३० ॥ २० ॥

भा०—(कुहया-कृते) आत्मा वा प्रभु उपास्य कहां है ? इस प्रकार की जिज्ञासा करने वाली हे बुद्धे ! (ईजान:) देवोपासना करने वाला (यः) जो पुरुष (त्वा पृच्छात्) तुझ से पूछता है कि (एषः अपश्रितः) वह संसार बन्धन से दूर देहादि मे अनाश्रित (वलः = वरः) सब से वरणीय, सबको व्यापने वाला प्रभु (कुहया) कहां है तो इसका समाधान श्रवण कर। (एषः) वह (वलः) सर्वव्यापक प्रभु (गोमतीम्) इन्द्रिय और वाणी से युक्त इस चित्त भूमि को (अव) नीचे छोड़ कर, (तिष्ठति) उसके भी ऊपर परम अवर्णनीय रूप में विद्यमान है। इति विंशो वर्गः ॥

[२५]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—९, १३—२४ मित्रावरुणौ। १०—१२ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५—९, १६ निचृदुष्णिक्। ३, १०, १३—१६, २०—२२ विराडुष्णिक्। ४, ११, १२, २४ उष्णिक्। २३ आर्ची उष्णिक्। १७, १० पादनिचृदुष्णिक् ॥ चतुर्विंशत्यृच सूक्तम् ॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया।
ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥

भा०—(ता वां) वे आप दोनों (विश्वस्य) समस्त विश्व के वा सबके (गोपा) पालक (देवेषु) विद्वान् मनुष्यों के बीच में (यज्ञिया देवा) पूजा सत्कार के योग्य, दानशील और तेजस्वी होवो। आप दोनों (ऋतावाना) सत्य न्यायवान्, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल वा ज्ञान वाले जनों को हे मनुष्य ! तू (यजसे) पूजा कर।

मित्रा तना न रथ्या॑ वरु॑णो यश्च॑ सुक्रतु॑: ।
सनात्सु॑जाता तन॑या धृतव्र॑ता ॥ २ ॥

भा०—स्त्री पुरुष कैसे हों ? वे दोनों (मित्रा) स्नेहवान् ! (रथ्या न तना) रथ मे लगे दो अश्वों वा रथ मे विराजमान रथी सारथी के समान शरीर से सुशोभित और (वरुणः) वरण करने योग्य पुरुष भी ऐसा हो (यः च सुक्रतुः) जो स्वयं उत्तम क्रियावान् , बुद्धिमान् हो । वे दोनों (सनात्) सदा (सु-जाता) उत्तम वंश और गुणो मे शिक्षित और (तनया) माता पिता के उत्तम पुत्र और (धृत-व्रता) व्रत को धारण करने वाले हों । अर्थात् तनया, कन्या स्वयं स्नेहवती, रथ मे चढने योग्य उत्तम कर्मकुशल, सुजाता, सुपुत्री व्रतधारिणी हो और वर भी स्नेही, गृहस्थ रथ के योग्य, सुकर्मा, सुजात और व्रती हो ।

ता माता विश्ववे॑दसासुर्या॑य प्रम॑हसा ।
मही ज॑जानादि॑तिर्ऋ॑तावरी ॥ ३ ॥

भा०—(प्र-महसा) अति उत्तम तेजस्वी (विश्व-वेदसा) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी (ता) उन दोनो (माता) उत्पन्न करने वाली (ऋतावरी) सत्य व्रत का वरण करने वाली, (अदितिः) अखण्ड व्रत पालिनी (मही) पूज्या (माता) जननी ही (असुर्याय) बल पराक्रम के लिये (जजान) पैदा करता है ।

महान्ता॑ मित्रावरु॑णा सम्राजा॑ देवावसु॑रा ।
ऋतावा॑नावृतमा घो॑षतो बृहत् ॥ ४ ॥

भा०—वे दोनों (महान्ता) गुणो मे महान् , (सम्राजा) अच्छी प्रकार दीप्तिमान् , तेजस्वी, (देवा) दानशील (असुरा) बलवान् , शत्रुओं को उखाड फेकने वाले, (ऋतावानौ) सत्य ज्ञान से युक्त, दोनों (बृहत् ऋतम् आ घोषतः) बड़े भारी सत्य ज्ञान, वेद और न्याय की घोषणा किया करें, उसका पठन, पाठन और उपदेश किया करें ।

नपा॑ता॒ शव॑सो म॒हः सू॒नू दक्ष॑स्य सु॒क्रतू॑ ।
सु॒प्रदा॑नू इ॒षो वास्त्वधि॑ क्षितः ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—दोनो (महः शवसः नपाता) बड़े भारी बलके पालक और (महः दक्षस्य सूनू) बड़े भारी बल और धर्म के उत्पादक और परिचालक (इषः) अन्न के (सुप्रदानू) विस्तृत रूप से देने वाले होकर (वास्तु अधि) बड़े २ गृहो मे (क्षितः) निवास करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

सं या दानू॑नि ये॒मथु॑र्दि॒व्याः पार्थि॑वी॒रिषः॑ ।
नभ॑स्वतीरा वां चरन्तु वृ॒ष्टयः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(या) जो आप दोनो (दानूनि) दान योग्य वीर्यों, धनों का (सं येमथुः) संयमपूर्वक रक्षा करते रहे उन (वां) आप दोनों को (नभस्वतीः) आकाश की, (दिव्या) अन्तरिक्ष की (वृष्टयः) वृष्टियां और (पार्थिवीः इषः) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले अन्न (आचरन्तु) प्राप्त हों ।

अधि॒ या बृ॑ह॒तो दि॒वो॒३॒भि यू॒थेव॒ पश्य॑तः ।
ऋ॒तावा॑ना स॒म्राजा॒ नम॑से हि॒ता ॥ ७ ॥

भा०—(अभि यूथा इव) जिस प्रकार गौओं के समूहों को उनके पालक जन देखते है उसी प्रकार (या) जो (बृहतः दिवः अधि पश्यतः) बडे भारी कामनाओं वा अभिलाषाओं को देखते हैं वे दोनों (ऋतावाना) सत्य और धन वाले, (सम्राजा) उत्तम दीप्ति से दीप्तिमान् होकर (नमसे) अन्न और बल को प्राप्त करने के लिये (हिता) परस्पर हिताचरण करें वा स्थिर भाव से रहे ।

ऋ॒तावा॑ना॒ नि षे॑दतुः॒ साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतू॑ ।
धृ॒तव्र॑ता क्ष॒त्रिया॑ क्ष॒त्रमा॑शतुः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावाना) सत्य न्याय के स्वामी होकर (धृत-व्रता) व्रत, नियम के धारण करने वाले (क्षत्रिया) दल, और धन के स्वामी

(साम्-राज्याय) साम्राज्य पालनार्थं (सु-क्रतू) उत्तम कर्म वाले होकर (क्षत्रम् आशतुः) बल ऐश्वर्य को प्राप्त करें ।

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा ।
नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥

भा०—वे (अक्ष्णः चित् गातुवित्-तरा) आंख से भी अधिक मार्ग जानने वाले, वा आंखों वा इन्द्रियमात्र के भी इशारों को खूब समझने वाले हों । वे दोनों (अनुल्बणेन) सौम्य (चक्षसा) दृष्टि वा (अनुल्बणेन वचसा) कोमल, दुःख न देने वाले हृदयहारी वचन से (निमिषन्ता) नियम से व्यवहार करने वाले (नि-चिरा) खूब चिरायु होकर (नि चिक्यतुः) पूजा सत्कार योग्य होवें ।

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या ।
उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—(उत) और (देवी अदितिः) उत्तम सुख देने वाली विदुषी स्त्री माता और (नासत्या) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें । और (वृद्ध-शवसः) बड़े बली और अधिक ज्ञान वाले पुरुष (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायुवत् जीवनप्रद, दूरगामी विद्वान् क्षत्रिय और वैश्य जन (उरुष्यन्तु) हमारी रक्षा करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः ।
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (दिवा नक्तं) दिन और रात (नः नावम्) हमारी नौका वा प्रेरणा करने योग्य यान की (उरुष्यत) रक्षा करो । और हम (अरिष्यन्त) विना पीड़ित हुए किसी का हिंसा न करते हुए (पायुभिः) पालन करने वालों के साथ (सचेमहि) सदा संघ बना कर रहें ।

अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।
श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए, स्वयं भी पीड़ित न होते हुए, (अघ्नते) अहिंसक (सु-दानवे) उत्तम दानशील, (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञानी और सबसे पूर्व कर्मकर्त्ता, पूर्ण संसार के बनाने वाले परमेश्वर की स्तुति करें । हे (स्व-यावन्) अपने ही सामर्थ्य से संसार को चलाने हारे ! हे (सिन्धो) समुद्रवत् गम्भीर, आनन्द-रस के सागर ! तू (श्रुधि) हमारी प्रार्थना को श्रवण कर ।

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।
मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जिस धन और बल की (मित्रः) स्नेहवान्, मृत्यु से रक्षक, (यत् वरुणः) जिसकी सबको वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक, और (अर्यमा) शत्रु वा दुष्टों का नियन्ता पुरुष (पान्ति) रक्षा करते वा उपभोग करते हैं हम (तत्) उस (वार्य) वरण करने, दुःखों को दूर करने वाले (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (गोपयत्यम्) सबके पालक धन वा बल की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥

भा०—(अपां सिन्धु) जलों का वहने वाला प्रवाह, (मरुतः) शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष और वैश्यगण, (अश्विना) अश्वारोही योद्धा और रथी, सारथी, (इन्द्रः) सेनापति, राजा, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् वा विविध विद्याओं में निष्णात ये सब (मीढ्वांसः) प्रजापर सुखों की वर्षा करने वाले और (स-जोषस) एक समान सब से प्रीति रखने हारे होकर (नः तत् तत्) हमारे उन २ धनों की रक्षा करें और दें ।

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित्।
तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(ते हि) वे (भूर्णयः) जगत् के पोषक (नरः) नायक पुरुष, (वनुषः) शत्रुओं के नाशक और सेवा योग्य जन (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी प्रतिद्वन्द्वी के अभिमान को (तिग्मं क्षोदः न) तीव्र वेग से जाने वाले जल के समान (प्रति घ्नन्ति) विनाश कर सकते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः।
तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥

भा०—(अयम् एकः) यह एक (पुरुः) पालक, सबकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक हो। (इत्था) इस प्रकार सत्य न्याय को वह (वः वि चष्टे उ) विविध या विशेष प्रकार से तुम सब के व्यवहारों को सूर्यवत् देखता है। (तस्य व्रतानि) इस प्रजापति के उपदिष्ट और कृत कर्मों का हम (अनु चरामसि) अनुकरण करते हैं।

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम।
मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

भा०—(साम्राज्यस्य) महान् साम्राज्य के मालिक प्रभु के (पूर्वाणि) पूर्व विद्यमान वा पूर्ण, त्रुटिरहित (ओक्या) भुवनों, या गृहों के व्यवस्थापक नियमों को (अनु सश्चिम) पालन करें। (मित्रस्य) सर्वस्नेही, (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ (दीर्घ श्रुतः) दीर्घदर्शी, बहुज्ञ, पुरुष के (व्रता) कर्मों का हम अनुकरण करें।

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः।
उभे आपप्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (रश्मिना) तेजोवत् व्यापक सामर्थ्य

से (दिवः पृथिव्याः अन्तान्) आकाश और भूमि इनकी परली सीमाओं को भी (परि ममे) मापता है। वही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) आकाश और भूमि दोनों लोकों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है।

उदु ष्य श॑र॒णे दि॒वो ज्योति॑रयंस्त॒ सूर्यः॑ ।
अ॒ग्निर्न शु॒क्रः स॑मिधा॒न आहु॑तः ॥ १९ ॥

भा०—(स्यः) वह (दिवः शरणे) प्रकाश को बखेर कर दूर २ तक फैलाने में (सूर्यः) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशस्वरूप प्रभु (शरणे) इस महान् विश्व में (उत् अयंस्त) सबके ऊपर विराज कर सब को वश करता है। वह (अग्निः न शुक्रः) अग्नि के समान देदीप्यमान, (समिधा आहुतः न) काष्ठ से आहुति युक्त चमकने वाले अग्नि के तुल्य ही (आहुतः) सबसे स्तुति किया जाता है।

वचो॑ दी॒र्घप्र॑सद्मनीशे॒ वाज॑स्य॒ गोम॑तः ।
ईशे॒ हि पि॒त्वो॑ऽवि॒षस्य॑ दा॒वने॑ ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—जो (गोमतः वाजस्य) गौ, भूमि, वाणी और इन्द्रियों से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और विभूति का (ईशे) स्वामी है और जो (अविषस्य) विषरहित (पित्वः) अन्न के (दावने) देने मे (ईशे हि) निश्चय से सबका स्वामी है उस (दीर्घ प्रसद्मनि) महा-भवन के समान सब के शरणदाता वा महाभवनवत् विश्व के स्वामी के विषय में (वचः) स्तुति वाणी का प्रयोग किया करो। (२) इसी प्रकार जो राजा बड़े भवन में रहता, भूमि पशु सम्पदा स्वामी, और शुद्ध अन्न को देने में समर्थ है उसी से प्रजा शरण की प्रार्थना करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तत्सू॒र्यं रोद॑सी उ॒भे दो॒षा वस्तो॒रुप॑ ब्रुवे ।
भो॒जेष्व॒स्माँ अ॒भ्युच्च॑रा॒ सदा॑ ॥ २१ ॥

भा०—(दोषा वस्तो) दिन और रात (उभे रोदसी) आकाश

वा सूर्य और पृथिवी, समस्त जगत् के (सूर्यम्) संचालक, प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (तत्) उस प्रभु की मैं (उप ब्रुवे) स्तुति करता हू। हे प्रभो ! तू (सदा) सब काल, (अस्मान्) हमे (भोजेषु) पालक जनों और भोगैश्वर्य देने वाले लोको में (अभि उत् चर) उन्नति की ओर ले जा।

ऋज्रमु॑क्षण्याय॑ने रज॒तं हर॑याणे।
रथं॑ यु॒क्तम॑सनाम सु॒षाम॑णि ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (उक्षण्यायने) बलवान् बैल या अश्व से जाने योग्य, वा (हरयाणे) हरणशील वेगवान् अश्वों या यन्त्रों से जाने योग्य (सु-सामनि) उत्तम समभूमियुक्त मार्गों मे (ऋज्रम्) ऋजु, वेग से, जाने वाले, (रजतं) सुन्दर, (युक्तं) अश्वों से जुते (रथं) रथ को (असनाम) उपयोग करते है इसी प्रकार हम लोग (सु-सामनि) सबके प्रति समान भाव से रहने वाले, सुखप्रद, (उक्षण्यायने) बलवान्, सुख सेचक पुरुषो के भी आश्रय स्थान, (हरयाणे) दुःखों के हरने वाले, प्रभु के अधीन हम (युक्तं) इन्द्रियादि अश्वों से युक्त, रथवत् (ऋज्रम्) ऋजु, धर्म मार्ग से चलने वाले इस देह को (असनाम) प्राप्त करें और उसका सुख भोग करें।

ता मे॒ अश्व्या॑नां॒ हरी॑णां नि॒तोश॑ना।
उ॒तो नु कृत्व्या॑नां नृ॒वाह॑सा ॥ २३ ॥

भा०—(ता) वे दोनों प्रधान स्त्री पुरुष (मे) मुझ राजा के अधीन (अश्व्यानां हरीणां) अश्वारोही जनो के बीच (नि-तोशना) शत्रुओं को नाश करने वाले, (उत नु) और (कृत्व्यानां) कर्मकुशल पुरुषों के बीच में (नृ-वाहसा) मनुष्यों को सन्मार्ग मे लेजाने वाले हों।

स्मद॑भीशू॒ कशा॑वन्ता॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती।
म॒हो वा॒जिना॒वर्व॑न्ता॒ सचा॑सनम् ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा०—(स्मत्-अभीशू) शोभायुक्त अंगुलियों, धर्म-मर्यादाओं, व्यवस्थाओं से युक्त, (कशावन्ता) अर्थप्रकाशक, शुभ वाणी वाले, (विप्रा) मेधावी, बुद्धिमान् (नविष्ठया) अतिस्तुत्य (मती) बुद्धि से युक्त, (महः वाजिनी) बड़े भारी ज्ञानी (अर्वन्ता) दुःखों का नाश करने वाले, सन्मार्गगामी, स्त्री पुरुषों को मैं दो अश्वों वा प्राणों के सदृश (सचा असनम्) सदा एक साथ प्राप्त करूं। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[२६]

विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषिः॥ १—१९ अश्विनौ। २०—२५ वायुर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ उष्णिक्। २, ८, २३ विराडुष्णिक्। ५, ९—१५, २२ निचृदुष्णिक्। २४ पादनिचृदुष्णिक्। १६, १९ विराड् गायत्री। १७, १८, २१ निचृद् गायत्री। २५ गायत्री। २० विराडनुष्टुप्॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम्॥

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू॥ १॥

भा०—हे (वृषण्वसू) सुखप्रद, धन और बलवान् पुरुष रूप धन से धनी प्रधान नायक पुरुषो! राजा प्रजा वा पति पत्नी जनो! आप दोनों (वृषणा) बलवान्, उत्तम सुखों और वीर्यादि के सेक्ता और (अतूर्त-दक्षा) न नष्ट होने वाले स्थायी बल सामर्थ्य से युक्त होवो। (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (सध-स्तुत्याय) एक साथ मिलकर स्तुति प्राप्त करने के लिये (युवोः) तुम दोनों को (रथं) उत्तम उपदेश, उत्तम आचार, उत्तम रमणकारी साधन रथादि (सु-हुवे उ) उत्तम रीति से प्रदान करूं।

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू॥ २॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य भाषण और असत्याचरण न करने वाले, वा नासिकावत् प्रमुख पुरुषो ! हे (वृषणा) बलवान् ! वीर्यवान्, (वृषण्वसू) सुखप्रद, बलवान् धन, जन के स्वामियो ! हे (वरो) दोनों वरण करने योग्य, श्रेष्ठ जनो ! (युवं) आप दोनों (सुपाण्णे) सुखप्रदाता, निष्पक्षपात, सर्वोपरि विराजमान प्रभु के (महे तने) बड़े विस्तृत राज्य में (अवोभिः) रक्षासाधनों, ज्ञानों और रथादि से (याथः) गमनागमन करो !

ता वा॒म॒द्य ह॑वामहे ह॒व्येभि॑र्वाजिनीवसू ।
पू॒र्वीरि॒ष इ॒षय॑न्ता॒वति॑ क्ष॒पः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ऐश्वर्ययुक्त भूमि, ज्ञानयुक्त विद्या और बलयुक्त सेना को बसाने, बसने और उनको धनवत् पालने वाले राजा प्रजा जनो ! (पूर्वीः) पूर्व की, नाना, वा पूर्ण, राज्यादि के पालक (इषः) सेना और नाना उत्तम अभिलाषाओं और पूर्ण अभिलाषा योग्य अन्नादि समृद्धियों को (इषयन्तौ) चाहते हुए (ता वाम्) उन आप दोनों को (अति क्षपः) रात्रि व्यतीत कर प्रातः, वा नाशकारिणी, शत्रु सेनाओं को पार करके बाद (हव्येभिः) उत्तम अन्नों और वचनो से (हवामहे) सत्कार करें ।

आ वां॒ वाहि॑ष्ठो अश्विना॒ रथो॑ यातु श्रु॒तो न॑रा ।
उप॒ स्तोमा॑न्तु॒रस्य॑ दर्शथः श्रि॒ये ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के स्वामी, रथी सारथीवत् राजा सचिव जनो ! वा स्त्री पुरुषो ! वा माता पिता गुरु जनो ! हे (नरा) सन्मार्ग से लेजाने वालो ! (वां) तुम दोनो का (वाहिष्ठ) ज्ञान प्राप्त कराने वाला (रथ) रमणीय (श्रुत) श्रवण करने योग्य उपदेश हमे (रथः) रथवत् (आ यातु) प्राप्त हो । आप दोनों (तुरस्य) सर्वदुःखनाशक प्रभु के (स्तोमान्) उपदेश किये वेद मन्त्रो का (श्रिये) अपने आश्रय वा

शोभा, और ज्ञान धनादि समृद्धि के लिये (उप दर्शथः) गुरु देवादि की उपासना द्वारा ज्ञान किया करो।

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू ।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् प्राणों वालो ! हे बलवान् पुरुषो ! और सुखप्रद धनों के स्वामियो ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! हे 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र एवं बलवान् अश्व सैन्यादि के स्वामियो ! आप दोनों (जुहुराणा चित्) कुटिलता करने वालों को भी अच्छी प्रकार (मन्येथाम्) जानो, उनको दुष्टता करने से रोको। हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, दुःखों को दूर भगाने वाले जनो ! (युवं हि) तुम दोनों अवश्य ही (द्विषः) द्वेष करने वाले, अप्रिय शत्रुओं और रोगादि, काम क्रोधादि को (अति पर्षथः) पराजित किया करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।
धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय, रूपवान्, चरित्रवान्, दुष्टों के नाश करने वाले, (धियं-जिन्वा) अपने उत्तम कर्मों से सबको प्रसन्न करने वाले, (मधु-वर्णा) मधुर वर्ण, कान्तिमान् रूपवान्, वा मधु द्वारा एक दूसरे को वरने वाले वा मधुर शब्दों को बोलने वाले, (शुभस्पती) उत्तम शोभा-जनक अलंकार युक्त पति पत्नी एवं स्वामी जनो ! आप दोनों (आनुषक्) सदा साथ रहते हुए (मक्षुभिः) शीघ्रगामी रथों से (विश्वम् परि-दीयथ), समस्त संसार का, वा सब काल में परिभ्रमण करो।

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्यों, वा राष्ट्र के स्वामी जनो ! आप दोनों (विश्वपुषा राया सह) सबके पोषणकारी ऐश्वर्य के साथ

(नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो । तुम दोनों (मघवाना) उत्तम, पूज्य धन से युक्त, (सु-वीरौ) उत्तम, पूज्य वीर, बलवान् एवं विद्यावान्, और (अनपच्युतौ) दृढ़ एवं कुमार्ग में न जाने वाले होवो ।

आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र-नासत्या) ऐश्वर्ययुक्त एवं कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवा) एक दूसरे की सदा चाहना करने वाले, शुभ गुणयुक्त, विद्वान् (सचनस्तमा) परस्पर बहुत अधिक दृढ़ सम्बन्ध से सम्बद्ध होकर (मे) मुझ (अस्य) इस प्रियजन के (प्रतीव्यम्) पुनः रक्षण करने वाले गृह को (देवेभिः) अन्य प्रिय, विद्वान् जनों और शुभ गुणों सहित, सूर्य और वायु के समान (आ गतम्) आवो ।

व॒यं हि वां॒ हवा॑मह उक्ष॒ण्यन्तो॒ व्यश्व॒वत् ।
सु॒म॒तिभि॒रुप॑ विप्रावि॒हा ग॑तम् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (वि-अश्ववत्) विशेष अश्वसैन्य का स्वामी बलवान् स्त्री पुरुषों को राष्ट्र के शासनादि कार्य के लिये चाहता है उसी प्रकार (वयं हि) हम भी (उक्षण्यन्तः) उत्तम सन्तानोत्पादक, वीर्यसेचक बिजारों के समान दृढ़, हृष्टपुष्ट बलवान् पुरुषों को चाहते हुए, (वां हि) आप दोनों ऐश्वर्यवान्, असत्य व्यवहार से रहित स्त्री पुरुष वर्गों, वा प्रजा, राजवर्गों को (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि आप दोनों (विप्रौ) बुद्धिमान्, धनादि से विशेष पूर्ण होकर (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों सहित (उप आगतम्) हमें प्राप्त होवो ।

अ॒श्विना॒ स्वृ॑षे स्तुहि कु॒वित्ते॒ श्रव॑तो॒ हव॑म् ।
नेदी॑यसः कूळयातः प॒णीँरु॒त ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन् ! विद्या व्यवहारादि के द्रष्टा ! तू (अश्विनौ)

राष्ट्र, सेना के स्वामी वा जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष वर्गों को (सुस्तुहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनकी अच्छी प्रशंसा कर। (ते) तेरे (हवम्) वचन को वे दोनो (कुवित् श्रवतः) बहुत बार श्रवण करते है। (उत) और दोनों (नेदीयसः पणीन्) समीपस्थ उपदेष्टा एवं व्यवहारवान् पुरुषो को (कूळयातः) तट के समान आश्रय और नदीवत् मर्यादा प्रजा को स्थापित करते है। इति सप्तविंशो वर्गः॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा॥ ११॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नेताओ! हे स्त्री पुरुषो! आप लोग (वैयश्वस्य) विविध अश्वों के स्वामी, विविध इन्द्रियो के साधक जितेन्द्रिय राजा वा विद्वान् के आज्ञा वा उपदेश वचन (श्रुतं) श्रवण किया करो। (उतो) और (मे अस्य) मुझ इस प्रिय प्रजाजन को भी (वेदथः) जाना करो। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ मित्र, स्नेही और (अर्यमा) उत्तम जनों का स्वामी, उनका आदरकर्त्ता, दुष्टों का नियन्ता पुरुष (सजोषसा) समान प्रीति से युक्त हों। वे प्रजा के व्यवहार जानें।

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम्॥ १२॥

भा०—हे (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, बुद्धियुक्त, उत्तम आसनार्ह के योग्य हे (वृषणा) उत्तम ज्ञान, सुख, धनैश्वर्य बल-वीर्यादि के वर्षण करने वाले, बलवान् एवं माता पितावत् पालक प्रबन्धकर्त्ता जनो! आप लोग (युवादत्तस्य) आप दोनों से देने योग्य, और (युवा नीतस्य) आप दोनों से प्राप्त कराने और सिखाने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य (सूरिभिः) विद्वानों द्वारा (मह्यं) मुझ प्रजाजन को पुत्रवत् (अहरहः) दिन प्रति दिन (शिक्षत्) दो और सिखाओ।

यो वां युज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना॥ १३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व, व्यापक तेजस्वी किरणों वाले सूर्य चन्द्र वत् वा दिन रात्रिवत् पति पत्नी जनो ! (यः) जो पुरुष (अधिवस्त्रा वधूः -इव) अधिक वा उत्तम वस्त्र धारण करने वाली नव-वधू के समान स्वयं भी (अधिवस्त्रः) ऊपर उत्तरीय वस्त्र धारण कर या उत्तम 'वस्त्र' अर्थात् रहने योग्य गृह का अधिकारी होकर (वां) आप दोनों के योग्य (यज्ञेभिः) दान, सत्संग, पूजा सत्कारादि से (आवृतः) अपने को ढकलेता है उस विद्वान् की (सपर्यन्ता) सेवा शुश्रूषा करने वाले आप दोनों (शुभे) शुभ कर्म या फल के लिये (चक्राते) यत्न करो ।

यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।
वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! (यः) जो (वाम्) आप दोनों के (नृ-पाय्यम्) मनुष्यो के पालक और नायक जनों से रक्षा करने योग्य (उरु-व्यचसम्) अति अधिक व्यापक (वर्त्तिः) व्यवहार को (चिकेतति) जानता है (अस्मयू) हमे चाहने वाले आप दोनों उसको (परि यातम्) प्राप्त होवो ।

अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।
विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों के स्वामी जनो ! हे प्रजा जनों मे बलवान् प्रबन्धक जनो ! आप दोनो (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ ही (नृ-पाय्यं) मनुष्यों के पालन करने वाले (वर्त्ति) व्यवहार को (सु-यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त करो। जिस प्रकार (वि सु—द्रुहा, विषु = द्रुहा गिरा यज्ञम् इव) विविध अर्थदात्री या विविध वादप्रतिवाद वाली वाणी से जिस प्रकार (यज्ञम्) उपास्य प्रभु की तर्क द्वारा विवेचना की जाती है उसी प्रकार (वि-सु-द्रुहा इव) विविध प्रकार के परस्पर खंडन वाली, विवादग्रस्त, एक दूसरे का प्रतिवाद करने वाली (गिरा) वाणी से

(यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य, निर्णय रूप से देने योग्य सत्य तत्व को (ऊहथुः) तर्क वितर्क द्वारा प्राप्त करो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! (हवानां) ग्राह्य उपदेशो, ज्ञानों को (वाहिष्ठः) उत्तम रीति से अन्यो तक पहुचाने वाला (स्तोमः) वेदमन्त्रो का समूह (वां) तुम दोनो को (दूतः हुवत्) उत्तम संदेशहर के समान ज्ञानप्रद हो, और वह सदा (युवाभ्यां) तुम दोनो के लिये हितकारी (भूतु) होवे ।

यद्दो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।
श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) साधारण मनुष्यो से भिन्न असाधारण पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (अदः) उस (दिवः) परम ज्ञानमय, तेजोमय प्रभु के (अर्णवे) सागरवत् आनन्द मे वा (इषः) अन्न, और नाना कामना आदि के (गृहे) इस गृह या देह मे (मदथः) प्रसन्न, सुखी, आनन्दवान् होवो तो भी (मे) मुझ आत्मा के विषय में, वा विद्वान् ज्ञानी का वचन अवश्य (श्रुतम् इत्) श्रवण किया करो ।

उत स्या श्वैतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् ।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥

भा०—(श्वेतयावरी नदीनां वाहिष्ठा) नदियों में से जिस प्रकार हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी अति वेग से जाने वाली होती है, उसी प्रकार (नदीनां) उपदेश देने वाली वाणियों में से (उत) भी (स्या) वह, सब दुःखों को काटने वाली और (श्वेत-यावरी) श्वेत, शुक्र, विशुद्ध प्रभु से आने वा उस तक पहुंचा देने वाली वेदवाणी ही (वां वाहिष्ठा) तुम को अतिशय सुख देने और उद्देश्य तक पहुंचा देने में सर्वश्रेष्ठ

है । (हिरण्य-वर्त्तनिः सिन्धुः) जिस प्रकार हिरण्य अर्थात् लोह के बने मार्ग पर चलने वाला रथ वेग से जाने वाला तुम्हे उद्देश्य तक अच्छी प्रकार पहुंचाने का उत्तम सवारी होता है उसी प्रकार (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित रमणीय, व्यवहारवान् (सिन्धुः) समुद्रवत् गम्भीर पुरुष ही (वाहिष्ठः) तुम दोनों को उद्देश्य तक पहुंचाने मे समर्थ होता है। (२) उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनो मे से (श्वेत-यावरी) सर्वोत्तम विशु ज्ञानमार्ग वा सदाचार मार्ग से जाने वाली स्त्री (नदीनां वाहिष्ठा) सर्वश्रे समृद्धियों को लाने वाली होती है और तुम मे से जो पुरुष (हिरण्य वर्त्तनिः) हित, रमणीय व्यवहार मार्ग से चलता, सुवर्णादि का व्यवहार व्यापार करता है वह पुरुष (सिन्धुः) सम्पदाओं को बांधने और धारण करने वाला होता है । सिन्धुः—सिनाति दधाति च । षिञ् बन्धने ।

स्मदे॒तया॑ सु॒की॒र्त्याश्वि॑ना श्वे॒तया॑ धि॒या ।
वहे॑थे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र मे कहे 'श्वेतयावरी' को और स्पष्ट करते है। हे (शुभ्र यावाना) शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्मत पवित्र मार्ग से जाने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (एतया) इस (श्वेतया) निर्दोष कलंकरहित (सु-कीर्त्या) उत्तम कीर्त्ति युक्त, (धिया) धी, वाणी, ज्ञानोपदेश, सन्मति और सत् कर्म, शक्ति से (स्मत्) उत्तम २ फलों को (वहेथे) प्राप्त करो ।

यु॒क्ष्वा हि त्वं र॑था॒सहा॑ यु॒वस्व॒ पोष्या॑ वसो ।
आन्नो॑ वायो॒ मधु॑ पिबा॒स्माकं॒ सव॒ना ग॑हि ॥ २० ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) वसु ! ब्रह्मचारिन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (हि) अवश्य (रथ-सहा) रथ को उठाने मे समर्थ, अश्वों के समान अपने इन्द्रिय और मन दोनो को (युक्ष्व) सन्मार्ग मे लगा । और (पोष्या) पोषण करने योग्य, दृढ अंगों को (युवस्व) कार्यों मे योजित कर । इसी प्रकार

प्रजा का बसाने वाला विद्वान् वा राजा भी रथ में लगने योग्य अश्वों के समान ही स्त्री पुरुषो को राष्ट्रकार्य मे वा गृहस्थ मे जोड़े और उनको मिलावे। हे (वायो) वायुवत् बलशालिन्! वा ज्ञान के इच्छुक, ज्ञान देने वाले! (आत्) अनन्तर तू (नः) हमारे (मधु) मधुर जल, अन्न और मधुपर्क आदि का पान, उपभोग कर। और (अस्माकम्) हमारे (सवना) यज्ञों, गृहों आर ऐश्वर्यों को (आ गहि) प्राप्त कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

तव॑ वायवृतस्पते त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत।
अवां॑स्या वृ॑णीमहे॥ २१॥

भा०—हे (वायो) जलपालक! आकाश गतवायु के समान (ऋतः-पते) सत्यज्ञान, धन, यज्ञ और तेज के पालक! हे (अद्भुत) अभूतपूर्व आश्चर्यजनक! (जामातः) प्रजादि के उत्पन्न करने हारे! हे (वायो) वायुवत् प्राणप्रद! बलवन्! सर्वगत! हम (त्वष्टुः तव) सूर्यवत् देदीप्यमान, जगत् के कर्त्ता तेरे (अवांसि) ज्ञानों, रक्षाओं, तृप्ति आनन्द दायक सुखों की (वृणीमहे) प्रार्थना याचना करते हैं। (२) हे ज्ञानवन् बलवन्! अभूतपूर्व जामातः! अविवाहितनवयुवक! हम तेरे (अवांसि) सुखदायक आगमनों को चाहते हैं। श्वशुर सदा कन्या के लिये अभूतपूर्व अविवाहित जमाई को ही चाहे, वही 'त्वष्टा', प्रजा का उत्पादक होवे।

त्वष्टु॒र्जामा॑तरं व॒यमीशा॑नं रा॒य ई॑महे।
सु॒ताव॑न्तो वा॒युं द्यु॒म्ना जना॑सः॥ २२॥

भा०—(वयं) हम (द्युम्नाः) धन, यश से सम्पन्न (सुतवन्तः, सुतावन्तः) पुत्र पुत्री वाले मनुष्य, (त्वष्टुः) समस्त कार्यसाधक, तेजोयुक्त (रायः ईशानं) धन के स्वामी, (जामातरं) नाती के उत्पादक जामाता, जवाई को (ईमहे) प्राप्त करें। (२) हम यशस्वी, ऐश्वर्यवान् जन

उत्तम ऐश्वर्यादि के स्वामी (जामातरम्) सर्व जगदुत्पादक प्रभु से (ईमहे) याचना करें।

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम्।
वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! बलवन्! हे (शिव) कल्याणकारिन् हे जगत् को सूत्रवत् गूंथने वाले प्रभो! तू (दिवः) समस्त सूर्यादि लोकों को (याहि) सञ्चालित कर, उनको प्राप्त कर और (सु-अश्व्यम्) उत्तम सूर्यादि युक्त जगत् को (वहस्व) धारण कर। और (रथे) रथ में (पृथु-पक्षसा = पृथु-वक्षसा) विस्तृत पार्श्वों वाले दो अश्वों को जैसे वीर हांकता है उसी प्रकार तू भी (पृथु-पक्षसा) महान् जगत् के वशकारक बल से (महः वहस्व) महान् संसार को धारण कर। लिङ्ग-विभक्ति वचनादि श्लेषः। (२) इसी प्रकार हे बलवान् राजन्! तू (दिवः स्वश्व्यम्) भूमि के उत्तम अश्व सैन्य को सञ्चालित कर। बड़े वक्षःस्थल वाले अश्वों को रथ में जोड़।

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे।
ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥

भा०—हे प्रभो! हम लोग (सुप्सरस्तमं) उत्तम, पूज्य रूप कान्ति वाले! वा कान्तियुक्त तेजस्वियों में सर्वश्रेष्ठ (त्वा हि) तुझ को ही (नृ-सदनेषु) सब मनुष्यों के सञ्चालन कार्यों मे या मनुष्यों के गृहों में (हूमहे) तेरी ही स्तुति करते, तुझे ही पुकारते हैं। और तुझ को (अश्व-पृष्ठं) सूर्य के द्वारा सेचन समर्थ (मंहना) महान् सामर्थ्य से युक्त मेघ के सदृश, (अश्व-पृष्ठं) बडे २ विद्वानों के ऊपर विद्यमान (ग्रावाणं न) सर्वोपदेष्टा गुरुवत् (हूमहे) स्वीकार करते हैं। (२) इसी प्रकार अश्वों के बल पर पुष्ट 'ग्राव' अर्थात् शस्त्रास्त्रयुक्त राजा को हम मनुष्यों में से बसे राष्ट्रों में राजा रूप से स्वीकार करें।

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः ।
कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देव) प्रभो ! सर्व सुखों के दातः ! हे (वायो) सर्वप्राण ! सर्वसंञ्चालक ! (सः त्वं) वह तू (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, (नः मनसा मन्दानः) हमें ज्ञान से तृप्त, आनन्दित करता हुआ, (वाजान् अपः धियः कृधि) सत्, ऐश्वर्य, ज्ञान और कर्म प्रदान कर। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[२७]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद् बृहती । ३ शङ्कुमती बृहती । ५, ११, १३ विराड् बृहती । १५ आर्ची बृहती ॥ १८, १९, २१ बृहती । २, ८, १४, २० पङ्क्तिः । ४, ६, १६, २२ निचृत् पङ्क्तिः । १० पादनिचृत् पङ्क्तिः । १२ आर्ची स्वराट् पङ्क्तिः । १७ विराट् पङ्क्तिः ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(अध्वरे) अविनाशी (उक्थे) 'उत्तम वेदवचन और ईश्वरविषयक ज्ञानोपदेश प्राप्त करने के लिये (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (पुरोहित.) आगे अग्रासन पर स्थापित हो, और (ग्रावाणः) उपदेष्टा-जन और (बर्हिः) यज्ञ वा आकाश वा सूर्यवत् तेजस्वीजन भी अग्रासन पर स्थापित हों। मैं (ऋचा) वेदवचन, अर्चा सत्कार सहित, (मरुतः) विद्वान् पुरुषों और (ब्रह्मण. पतिम्) वेद और ब्रह्मज्ञान के पालक विद्वान् और (देवान्) ज्ञानप्रकाशक पुरुषों से (वरेण्यम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ (अव.) ज्ञान की (यामि) याचना करूं और उनसे उस ज्ञान को प्राप्त करूं।

आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पशुम्) पशु को, (पृथिवीम्) भूमि को और (वनस्पतीन्) बड़े २ वृक्षों को और (ओषधीः) अन्न लतादि को (उषासानक्तम्) दिन रात, प्रातः सायं (आ गासि) प्राप्त किया कर। हे (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने वाले (वसवः) राष्ट्र वासी ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग (विश्वे) सब (नः धीनां) हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों के (प्र-अवितारः भूत) उत्तम रीति से रक्षक होकर रहो ।

प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

भा०—(अध्वरः) जो हिंसारहित, नित्य, स्थायी यज्ञ (अग्ना) ज्ञानवान् पुरुष, अग्निवत् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) अग्नि, भूमि, जलादि तत्वों, सूर्यादि लोकों और विद्वान् दाताजनों मे (पूर्व्यः) पूर्व भी विद्यमान होता रहा, वह (नः प्र एतु) हमे अच्छी प्रकार, उत्तम फलदायक होकर प्राप्त हो। इसी प्रकार (आदित्येषु) १२हों महीने में या पूर्ण ब्रह्मचारियों में (धृत व्रते) व्रतों सत्-कर्मों के धारण व्यवस्थित करने वाले पुरुष के अधीन और (विश्व-भानुषु) सब तेजों प्रकाशों को धारण करने वाले (मरुत्सु) विद्वान् और बलवान् पुरुषों में है वह भी (नः प्र एतु) हमें प्राप्त हो ।

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वे) सब (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामी (रिशादसः) दुष्टों के नाशक लोग (मनवे वृधे हि भुवन)

मनुष्य की वृद्धि के लिये ही हों। हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के ज्ञाता, सब धनों के धनी जनो ! आप लोग (अरिष्टेभिः) हिंसादि से रहित, (पायुभिः) पालनकारक उपायो से युक्त (नः) हमें (अवृकं छर्दिः) चोरादि कष्ट बाधा से रहित गृह (यन्त) प्रदान करो।

आ नो॑ अ॒द्य सम॑नसो॒ गन्ता॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः।
ऋ॒चा गि॒रा म॑रुतो॒ देव्यदि॑ते॒ सद॑ने॒ पस्त्ये॑ महि ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान मनुष्यो ! आप लोग (विश्वे) सब (स-जोषसः) समान प्रीतियुक्त और (स-मनसः) समान चित्त होकर (नः अद्य आ गन्त) आज हमे प्राप्त होवो। हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) मातः ! तू भी (ऋचा गिरा) अर्चना योग्य सत्कारयुक्त वेद-वाणी से युक्त होकर (सदने) सभा भवन और (महि पस्त्ये) बड़े भवन में आओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अ॒भि प्रि॒या म॑रुतो॒ या वो॒ अश्व्या॑ ह॒व्या मि॑त्र प्रया॒थन॑।
आ ब॒र्हिरिन्द्रो॒ वरु॑णस्तु॒रा नर॑ आदि॒त्यासः॑ सदन्तु नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् मनुष्यो ! हे (मित्र) स्नेहवान् जनो ! (वः या प्रिया) आप लोगों को जो प्रिय, (अश्व्या) अश्व आदि साधन और (हव्या) ग्रहण करने, दान देने और खाने योग्य, अन्न धनादि पदार्थ हैं उन सबको (अभि प्रयाथन) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और अन्यों को प्राप्त कराया करो। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ राजादि और (तुरा नरा) शीघ्रगामी और नायक जन एवं (आदित्यासः) लेन देन करने में कुशल वा तेजस्वी विद्वान् लोग, (बर्हिः आ सदन्तु) उत्तम शासन और राष्ट्र पर आदरपूर्वक विराजे।

व॒यं वो॑ वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आनु॒षक्।
सु॒तसो॑मासो वरुण हवामहे मनु॒ष्वदि॒द्धाग्न॑यः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (वृक्त-

बर्हिषः) दर्भ प्राप्त करके, (हित-प्रयसः) अन्न धारण करके (सुत-सोमासः) सोम का सवन करके (इद्धाग्नयः) अग्नियें प्रज्वलित करके (वः) आप श्रेष्ठ जनों को (मनुष्वत्) उत्तम मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें। वा हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर तेरी उपासना, प्रार्थना करें।

आ प्र या॑त॒ मरु॑तो॒ विष्णो॒ अश्वि॑ना॒ पूष॒न्माकी॑नया धि॒या।
इन्द्र॒ आ या॑तु प्रथ॒मः स॑नि॒ष्युभि॒र्वृषा॒ यो वृ॑त्र॒हा गृ॒णे ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन् ! हे (अश्विना) रथीसारथिवत् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (माकीनया धिया) मेरे कर्म, बुद्धि और स्तुति आदि से (आ यात प्र यात) आया और जाया करो। (सनिष्युभिः) दान, वेतन ऐश्वर्यादि के इच्छुक लोग (यः) जिसे (वृषा वृत्रहा) बलवान्, सुखवर्षक मेघ के छेदक भेदक विद्युत्वत् दुष्टों का नाशक (गृणे) बतलाते हैं वह (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत्वत् बलवान् तेजस्वी पुरुष (प्रथमः आ यातु) सबसे प्रथम, मुख्य होकर आवे।

वि नो॑ देवासो अद्रु॒होऽच्छि॑द्रं॒ शर्म॑ यच्छत।
न यद्दू॒राद्व॑सवो॒ नू चि॒दन्ति॑तो॒ वरू॑थमाद॒धर्ष॑ति ॥ ९ ॥

भा०—हे (देवासः) दानशील और उत्तम शुभ गुणों से युक्त, तेजस्वी, और विजयेच्छुक, एवं व्यवहारवान् पुरुषो ! आप लोग (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (नः) हमें (अच्छिद्रं) छिद्ररहित, त्रुटि दोषादि से रहित, अविच्छिन्न, निर्भय (शर्म) सुखप्रद, गृह वा शरण (वि यच्छत) विशेष रूप से प्रदान करो। हे (वसवः) प्रजा के वसने बसाने वाले मातृपितृवत् शासक जनो! (यत्) जिसे (न दूरात्) न दूर से और (नु चित् अन्तितः) न पास से ही कोई उस दुःखवारक गृह, नगर, प्रकोट आदि को (आ-दधर्षति) हमसे छीन सके और न उस घर पर आक्रमण कर सके।

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१०॥३२॥

भा०—हे (रिशादसः) हिंसकों को नाश करने हारे ! (वः) आप लोगों की (सजात्यं अस्ति हि) जाति, उद्भव स्थान समान हो । हे (देवासः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः आप्यम् अस्ति हि) तुम लोगों की परस्पर बन्धुता भी हो । आप लोग (मक्षू) शीघ्र ही (पूर्वस्मै) पूर्ण, पूर्व विद्यमान (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त करने तथा उत्तम मार्ग मे चलने, सदाचार पालन करने और (नव्यसे) नये, उत्तम सुख प्राप्त करने के लिये (नः प्रवोचत) हमें अच्छा २ उपदेश किया करें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) विश्व के धन के स्वामियो ! वा समस्त ज्ञानों और धनों को धारण करने वाले विद्वान् वीर पुरुषो ! मैं राजा (नमस्युः) 'नमस्' अर्थात् शत्रुओं को विनय की शिक्षा देने वाले दण्ड को अपने वश मे करना चाहने वाला होकर (व.) आप लोगों को (वामस्य भक्तये) उत्तम ऐश्वर्य के सेवन करने के लिये (इदा हि व) अब आप लोगों को (अन्याम् उप स्तुतिम् इव) नई से नई शिक्षा (आ उप असृक्षि) प्रदान करूं ।

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (सु-प्र-णीतय) पूज्य, उत्तम नीति और व्यवहार वाले पुरुषो ! (स्य. सविता) वह सबका उत्पादक परमेश्वर (वरेण्य.) सबसे वरण करने योग्य, सबको श्रेष्ठ मार्ग मे ले चलने हारा, (ऊर्ध्वः) ऊपर (वः उत् अस्थात्) आप सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप मे विराजमान है । और (पतयिष्णवः) देश मे जाने और ऐश्वर्यों के स्वामी बनना चाहने वाले

(द्विपादः चतुष्पादः) दो पाये और चौपाये भी (अर्थिनः) याचकवत् (नि अविश्रन्) उसके अधीन विराजते हैं ।

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (देव्या धिया) उत्तम ज्ञानमय प्रकाश के देने वाली, सुखदायी (धिया) वाणी से (वः गृणन्तः) आप लोगों के प्रति उपदेश करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (देवं-देवम्) सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु को और (अभिष्टये) अभीष्ट सुखादि को प्राप्त करने के लिये भी (देवं-देवं) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, अति कमनीय प्रभु की और (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, अन्न और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (देवं-देवं) सर्व सुखादि के दाता, ज्ञानप्रकाशक प्रभु की (हुवेम) प्रार्थना करें ।

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ १४ ॥

भा०—(समन्यवः देवासः) ज्ञानवान्, और दानशील और तेजस्वी और (विश्वे) समस्त (स रातय) धनादि सम्पन्न पुरुष (मनवे) मननशील व्यक्ति के उपकार के लिये ही (वरिवः-विदः भवन्तु) उत्तम धन को प्राप्त कराने वाले हों । और (ते) वे (अद्य) आज (न) हमें भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनदाता हों । (अपरं तु) बाद में भी (न तुचे) हमारे पुत्रादि के लिये भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनादि के दाता हों ।

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५॥

भा०—हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो ! (संस्थे) एकत्र मिलकर बैठने के योग्य सभा आदि में (उप-स्तुतीनां) स्तुति योग्य (व) आप लोगों की (प्र शंसामि) प्रशंसा करता हूं । (य. मर्त्यः) जो मनुष्य है (वरुण)

श्रेष्ठ, हे (मित्र) स्नेहवान् ! (धामभ्यः) उत्तम जन्म, स्थान और तेज को प्राप्त करने के लिये (वः अविधत्) आप लोगों की सेवा करता है (तं) उसको (धूर्त्तिः) किसी प्रकार की हिंसा या बाधा नहीं सताती ।

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥ ३३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो मनुष्य (वः) आप लोगों को (वराय) श्रेष्ठ कार्य के लिये (दाशति) दान करता है (सः) वह (क्षयं) अपने गृहादि और ऐश्वर्य को (प्र तिरते) बढ़ा लेता है, वह (महीः इषः प्र तिरते) बहुत उत्तम अन्नों और उत्तम, वा बड़ी अभिलाषाओं को भी पूर्ण कर लेता है, वह (सर्वः) सब प्रकार से ही (अरिष्टः) अबाधित, दुःखरहित होकर (धर्मणः परि) धर्म के द्वारा (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओं से प्रजावान् होता और (परि एधते) खूब बढ़ता है ।

इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥ १७ ॥

भा०—(अर्यमा) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों का नियन्ता न्यायवान्, (मित्रः) स्नेहवान् और (वरुणः) श्रेष्ठजन (स-रातयः) दानशील, कृपालु और (स-जोषसः) प्रीतियुक्त होकर (यं त्रायन्ते) जिसकी रक्षा करते हैं (सः) वह राष्ट्रवासी जन (युधः ऋते) विना युद्ध के ही (विन्दते) ऐश्वर्य प्राप्त करता और (सु-गेभिः) उत्तम सुखप्रद यानों से (अध्वनः याति) मार्गों को जाता आता है ।

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

भा०—आप लोग (अस्मै) इस राष्ट्र वा जनलोक के हितार्थ हे विद्वानो ! वीर जनो ! (अज्रे चित्) न पराजित होने योग्य, शत्रु सैन्य, वा शत्रु नगर मे भी (नि-अञ्चनं कृणुथा) नित्य आया जाया करो। और (अस्मत्) इस रक्षा योग्य जन से (अशनिः) विद्युत्वत् घातक शस्त्र अस्त्रादि वा (अशनिः) मार कर खाजाने वाली क्षुधा, वा महामारी आदि फैलने वाली विपत्ति भी (सास्रेधन्ती) विनाश करती हुई बला, (परः विनश्यतु) दूर चली जाय।

यद॒द्य सूर्यं॑ उद्य॒ति प्रिय॑क्षत्रा ऋ॒तं द॒ध।
यन्नि॒म्रुचि॑ प्र॒बुधि॑ विश्ववेदसो यद्वा॑ म॒ध्यन्दि॑ने दि॒वः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (दिवः निम्रुचि) सूर्य के अस्त काल में, (प्रबुधि) प्रबोध या उदयकाल मे (यद्वा) अथवा (मध्यंदिने) मध्यान्ह मे भी सूर्य की किरणें (ऋतं दधे) तेज को धारण किये ही रहती है उसी प्रकार हे (विश्व-वेदसः) वा समस्त धनो और ज्ञानो के स्वामियो ! हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! आप लोग भी (प्रियक्षत्रा) 'क्षत्र' अर्थात् बल वीर्य, जल अन्नादि के प्रिय, तदभिलाषी जनो! आप लोग भी (अद्य) आज (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन वा ज्ञान के सूर्यवत प्रकाशक आचार्य के (उद्-यति) उदय होने वा उत्तम यत्नवान् होने पर आप लोग (नि-म्रुचि) निम्न गति, विनयशील होने पर सूर्यास्त होने के काल मे (प्रबुधि) प्रबोध काल मे, वा सूर्योदय काल मे, (यद्वा) अथवा (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल मे (ऋत दध) ऋत अर्थात् सत्य न्याय, वेद, तेज और अन्न को धारण करो।

यद्वा॑भिपि॒त्वे अ॑सुरा ऋ॒तं य॒ते छ॒र्दिर्ये॒म वि दा॒शुषे॑।
व॒यं तद्वो॑ वसवो विश्ववेदस॒ उप॑ स्थेयाम॒ मध्य॒ आ ॥ २० ॥

भा०—हे (असुरः) बलवान्, दुष्टों को उखाड फेकने मे समर्थ वीर पुरुषो ! प्राणों के दाता वा प्राणों के अभ्यास में लगे विद्वानो ! आप

लोग (अपिपित्वे) प्राप्त होकर (यत् वा ऋतं वियेम) जो भी सत्य ज्ञान है उसे हम प्रदान करे और (यते दाशुषे) यत्न शील वा शरणा-गत, दानशील वा सेवक जन को भी (छर्दिः) आश्रय और ज्ञान दीप्ति (वि-येम) विशेष रूप मे प्रदान करे। हे (वसवः) विद्वान जनो ! हे (विश्व-वेदसः) समस्त धनो और ज्ञानों के स्वामि जनो ! हम लोग भी (वः) आप लोगो के (मध्ये) बीच में (तत् छर्दिः) उस गृह वा शरण में (उप स्थेयाम) सदा उपस्थित रहें।

यद॒द्य सूर॒ उदि॑ते॒ यन्म॒ध्यन्दि॑न आ॒तुचि॑।
वा॒मं ध॒त्थ मन॑वे विश्ववेदसो॒ जुह्वा॑नाय॒ प्रचे॑तसे ॥ २१ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (उद् इते) उदय, को प्राप्त करते हुए और (मध्यन्दिने) मध्य दिन में (आ-तुचि) सब ओर संतापित करने वाले (सूरे) सूर्य के किरणोंवत् उसके समान तेजस्वी पुरुष के अधीन (यत् यत् वामं धत्थ) जिस २ उत्तम ज्ञान और धन को धारण करो उसको आप लोग (विश्व-वेदस.) समस्त धनो और ज्ञानो के स्वामी होकर, (जुह्वा-नाय) दान देने वाले और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त और उत्तम ज्ञानी पुरुष के लिये (धत्थ) दे दिया करो।

व॒यं तद्वः॑ सम्राज॒ आ वृ॑णीमहे पु॒त्रो न ब॑हु॒पाय्य॑म्।
अ॒श्याम॒ तदा॑दित्या॒ जुह्व॑तो ह॒विर्येन॒ वस्यो॑ऽन॒शा॑महे ॥२२॥३४॥

भा०—हे (सम्-राजः) सम्मिलित होकर अतिदीप्ति से चमकने वाले किरणो वत् वीर पुरुषो ! (पुत्र. न) पुत्र के समान (वयं) हम लोग भी (व.) आप लोगो के (तत्) उस (बहु-पाय्यं) बहुतों के पालन, और बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य की (आ वृणीमहे) याचना करते हैं। हे (आदित्या) सूर्य की किरणों वत् 'अदिति' भूमिमाता के सपूतो ! हम लोग (जुह्वत) आहुति देने वाले यज्ञकर्त्ता की पवित्र

(हविः) अन्नवत् हम भी अपने दाता स्वामी के दिये (हविः) अन्न का (अग्यमा) भोग करें (येन) जिससे हम भी (वस्यः) उत्तम धन को (अनशामहै) प्राप्त करें । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[२८]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्द —१, २ गायत्री । ३, ५, विराड् गायत्री । ४ विराडुष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् ।
विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (देवासः) तेजस्वी, उत्तम दानशील, और विजयेच्छुक, (त्रिंशति त्रयः) तीस ऊपर तीन अर्थात् संख्या में ३३ विद्वान् वीर जन, (बर्हिः आसदन्) यज्ञ, उत्तम आसन वा राष्ट्र के उत्तम पद प्राप्त करते है, वे (द्विता विदन्) सत् और असत् दोनों का ज्ञान करें । और (असनन्) निग्रह और अनुग्रह दोनों के देने वाले हों ।

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिपाचो अग्नयः ।
पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) दुष्टों को वारण करने वाला और सज्जनों से वरण करने योग्य (मित्रः) और सर्वस्नेही, (अर्यमा) दुष्टों को दमन करने वाला न्यायकारी जन ये तीनों (अग्नयः) अग्रणी, प्रधान तेजस्वी पुरुष (स्मद्-राति-पाचः) उत्तम कर वेतनादि धन का सेवन करने वाले और (पत्नीवन्तः) प्रजापालक शक्ति और नीति से युक्त होकर (वषट्-कृताः) उत्तम सत्कार से युक्त हों ।

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् ।
पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे उक्त अधिकारी जन (सर्वया विशा) समस्त प्रजा से युक्त होकर (नः) हमारे (अपाच्याः) पश्चिम से, (ते उदक) वे उत्तर से (इत्था) और इसी प्रकार (ते) वे (न्यक् पुरस्तात्) नीचे से और आगे से भी (गोपाः) रक्षक हों ।

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत् ।
अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः यथा वशन्ति) विद्वान्, तेजस्वी, उत्तम जन जैसा चाहते हैं (तेषां) उनकी वह इच्छा (तथा इत् असत्) वैसी ही सफल होती है, (मर्त्यः अरावा चन) अदानशील, मूर्ख मनुष्य (तेषां नकिः आमिनत्) उनका कुछ भी नहीं विगाड़ सकता ।

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम् ।
सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(सप्तानां) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों और विद्वानों के (ऋष्टय: सप्त) हथियार और दृष्टिये भी सर्पणशील, और दूर २ तक वेग से जाने वाली हों । (एषाम् द्युम्नानि सप्त) इनके धन और यश भी फैलने वाले हों । वे (सप्त उ श्रियः अधि धिरे) वे व्यापक सम्पदाओं को ही धारण करें । अथवा विद्वानो और वीरों के सात विभाग, उनके सात प्रकार के आयुध और सात प्रकार के दर्शन और सात प्रकार के धन, और सात प्रकार की शोभाएं हैं । अध्यात्म में—शरीर में सात प्राणों की सात प्रकार की शक्तियां, सात प्रकार के तेज, और वे सात प्रकार की ही शोभाएं हैं । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२९]

ब॒भ्रुरेको॒ विषु॑णः सू॒नरो॒ युवा॒ञ्ज्य॑ङ्क्ते हिर॒ण्यय॑म् ॥ १ ॥

भा०—(बभ्रुः) सबका भरण पोषण करने में समर्थ, (विषुणः) सब ओर जाने मे समर्थ, (सु-नरः) उत्तम नेता, (युवा) बलवान् (हिरण्यम्) सुवर्ण के समान दीप्तियुक्त, सुन्दर (अञ्जि) रूप को (अंक्ते) प्रकट करता है, वह विश्व मे प्रभु, और देह मे आत्मा है।

योनि॒मेक॒ आ स॑साद॒ द्योत॑नो॒ऽन्तर्दे॒वेषु॒ मेधि॑रः ॥ २ ॥

भा०—(एकः) एक अद्वितीय, (मेधिरः) सब शत्रुओं को हनन करने, सबके साथ संगति करने मे समर्थ एवं उत्तम बुद्धिमान्, (द्योतनः) सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, (देवेषु अन्तः) इन्द्रियों के बीच आत्मा के तुल्य, समस्त पृथिव्यादि पदार्थों के बीच मे, (योनिम्) स… संसार के मूलकारण भूत प्रकृति को, गृह को गृहपति के समान (आससाद) अध्यक्ष रूप से अपने वश करता है।

वाशी॒मेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॑ आय॒सीम॒न्तर्दे॒वेषु॒ निध्रु॑विः ॥ ३ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (देवेषु अन्तः) विद्वानों, विजयेच्छुकों के बीच सेनापतिवत्, प्राणों के बीच आत्मवत्, समस्त तेजोमय एवं पृथिव्यादि तत्वों के बीच (हस्ते) अपने हाथ में (आयसीम् वाशीम्) सुवर्णमयी वंशी को गायक के समान, एवं लोह की बनी वसौली को शिल्पियों के समान, (आयसीम्) सबको संचालन करने में समर्थ (वाशीम्) ज्ञान वाणी वेद को वा सर्वसंचालिका, वशकारिणी प्रभुशक्ति को (निध्रुविः) स्थिर होकर, सबका धारक होकर (बिभर्ति) धारण करता है।

वज्र॒मेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॒ आहि॑तं॒ तेन॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते ॥ ४ ॥

भा०—वह (एकः) एक अद्वितीय (हस्ते आहितं वज्रम्) हाथ में पकडे शस्त्र के समान स्वयं (वज्रम्) वीर्य, बल को (आहित) सर्व व्यापक रूप से (बिभर्त्ति) धारण करता है। (तेन) उससे वह (वृत्राणि)

मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य, प्रकृति के आवरणकारा परमाणुओं को (जिघ्नते) आघात करता, उनमे स्पन्द उत्पन्न करता और संचालित करता है।

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

भा०—वह (एकः) एक, अकेला, अद्वितीय, दूसरे की अपेक्षा न करने वाला, प्रभु (शुचिः) दीप्तिमान् शुद्ध पवित्र, (उग्रः) सबसे बलवान्, दुष्टों को भयदाता, (जलाष-भेषजः) जलवत् शान्तिदायक दुःखनाशक, सब बाधाओं को दूर करने मे समर्थ, वैद्य के समान, ही (तिग्मम्) तीक्ष्ण (आयुधम्) शस्त्र को (हस्ते बिभर्त्ति) अपने हाथ में, उत्तम शल्यचिकित्सकवत् अपने वश मे रखता है। वह उसका अत्यन्त विवेक से उपयोग करता है।

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥

भा०—(यथा तस्करः निधीनां वेद) जिस प्रकार चोर ख़जानों का पता लगा लेता है वह (पथः पीपाय) मार्ग रोक रखता है उसी प्रकार (एषः) वह (एकः) अद्वितीय प्रभु (पथः) सब जीवों से प्राप्त करने योग्य मार्गों की, (पीपाय) रखवारी करता, वा (पथः पीपाय) सब नाना मार्गों से जाने वाले जीवों को पुष्ट करता है। वह (यथा) यथावत् (तस्करः = तत्-करः) उन नाना सृष्टि रचन, पालन, संहारादि अद्भुत कर्मों के करने हारा, प्रभु (निधीनाम्) समस्त ऐश्वर्यों को (वेद) स्वयं जानने, प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने हारा है।

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—(यत्र) जिनमे (देवासः) नाना सुखों की कामना करने वाले जीवगण, प्रकाशमान सूर्यादि लोक और विद्वान् जन (मदन्ति) आनन्द लाभ करते हैं, उन (त्रीणि) तीन लोकों को (एकः) एक, अद्वितीय (उरु-गायः) विशाल वाणी, वेद का स्वामी, महान् लोकों में व्यापक,

महान् कीर्त्तिमान् प्रभु (वि-चक्रमे) विशेष रूप से बनाता और उनमें व्यापता है।

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥

भा०—(प्रवासा इव एकया चरतः) जिस प्रकार दो प्रवासी एक स्त्री के साथ (प्रवसतः) प्रवास करें उसी प्रकार (द्वा) दो जीवात्मा और परमात्मा (विभिः) अपनी विषयभोग साधन इन्द्रियों, प्राणों, और ईश्वर व्यापक सामर्थ्यों से (एकया सह) एक प्रकृति के साथ एक काल में ही (चरतः) अच्छी प्रकार विचरते और (प्र वसतः) रहते हैं। जीव तो उस प्रकृति का उत्तम गृहस्थवत् भोग करता है और दूसरा ईश्वर उसमें व्यापक होकर भी प्रवासगत विरही पथिकवत् उससे निःसंग रहता है। इससे दोनों प्रवासीवत् है।

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

भा०—(द्वा) वे दोनों (उपमा) एक दूसरे के तुल्य होकर ही (दिवि) द्यौ अर्थात् जीव कामना मे और प्रभु तेजोमय आनन्दमय मोक्ष में (सदः चक्राते) अपना स्थान बनाये रहते हैं। वे दोनों (सम्राजा) खूब दीप्तिमान्, (सर्पिः-आसुती) घृत आसेचन योग्य दो अग्नियों के तुल्य हैं। प्रभु (सर्पिः-आसुति) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का उत्पादक, और उनका संचालक है। इसी प्रकार जीव भी प्राणों का संचालक है।

अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥३६॥

भा०—(एके) एक, विद्वान् जन (अर्चन्तः) उस प्रभु की अर्चना करते हुए (महि साम) बड़े भारी सर्वत्र समम्त, व्यापक बल को (मन्वत) जान लेते हैं और (तेन) उसी से वे (सूर्यम्) सर्वोत्पादक प्रभु को (अरोचयन्) सबसे अधिक चाहते हैं। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

[३०]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्द —१ निचृद् गायत्री । २ पुर उष्णिक् । ३ विराड् बृहती । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥ १ ॥

भा०—हे (देवास) विद्वान् वीर पुरुषो ! हे जीवो ! (वः) आप लोगों में से कोई भी (अर्भकः नहि अस्ति) छोटा बच्चा नहीं, (न कुमारकः) न बालक है, वा (कुमारकः) कुत्सित उपायों से दूसरे को वा अपने आपको मारने वाला भी (न अस्ति) नहीं हो । आप (विश्वे) सब लोग (सतः महान्त इत्) सत् प्रकृति से महान् वा विद्यमान बड़े २ गुणों से अधिक शक्तिशाली हो ।

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो आप लोग (मनोः) मननशील और राष्ट्र को अपने वश में करने वाले (यज्ञियासः) यज्ञ, पूजा, सत्संगादि के योग्य (देवाः) ज्ञानी, (रिशादसः) दुष्टों के नाशक (त्रयः च त्रिंशत् च स्थ) तेतीस (३३) होते हो वे सब ।(इति) इस प्रकार (स्तुताः असथ) स्तुति युक्त, प्रशंसित होवो ।

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे आप लोग (नः त्राध्वम्) हमारी रक्षा करो । (ते अवत) वे आप लोग हमें बचाओ । (ते उ नः) वे ही आप लोग हम पर (अधि वोचत) अध्यक्ष होकर आज्ञा या शासन करो और अधिकाधिक उपदेश किया करो । और आप लोग (नः) हमें (परा-

वतः) दूर, परम प्रभु से चले आए (पित्र्यात्) पालक पिता के (मानवात्) मनु, मननशील विद्वान् के बनाये (पथः) मार्ग से (दूरं मा नैष्ट) दूर मत लेजाओ, उससे हमें पथभ्रष्ट मत करो।

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत॥ ४॥ ३७॥ ४॥

भा०—(इह) इस लोक या राष्ट्र मे (ये देवासः स्थन) जो विद्वान् विजयाभिलाषी वा ज्ञानादि के दाता है (उत) और जो (विश्वे) सब (वैश्वानराः) सब के संचालक प्रभु के भक्त, वा सब मनुष्यों के हितैषी है, वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये और हमारे (गवे अश्वाय) गौ, घोड़े आदि पशुओं के लिये भी (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख और गृहादि (यच्छत) प्रदान करो। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[३१]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ १—४ इज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च । ५—९ दम्पती १०—१८ दम्पत्योराशिषो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, १२ गायत्री । २, ४, ६, ८ निचृद् गायत्री । ११, १३ विराड् गायत्री । १० पादनिचृद् गायत्री । ९ अनुष्टुप् । १४ विराडनुष्टुप् । १५—१७ विराट् पंक्तिः । १८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च।
ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत्॥ १॥

भा०—(यः) जो (यजाति) यज्ञ करता, दान देता, ईश्वरोपासना करता है (यजाते इत्) दान देता और पूजा ही करता चला जाता है, (सुनवत्) सोमरस का सम्पादन कर, उत्तम ऐश्वर्य लाभ करता और (पचाति च) पाक यज्ञ करता, वा अपने आपको ज्ञानाग्नि, तप आदि मे परिपक्व करता है। वह (इन्द्रस्य ब्रह्म) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के महान् गुण-वचनों, वेद-वचनों को (चाकनत्) सदा चाहता है।

पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् ।
पादित्तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्मै) इस समस्त संसार को (आशिरं) खाने योग्य (पुरोडाशं) पूर्व ही देने योग्य, अन्न (सोमं) ओषधि लतादि रूप मे (ररते) प्रदान करता है वही (शक्रः) शक्ति शाली परमेश्वर (तं) उस संसार को (अंहसः) पाप, और नाश होने से भी (पात्) बचाता है। (२) (यः) जो प्रजाजन इस शक्तिमान् राजा को (सोमं) ऐश्वर्य (पुरोडाशं) अन्नवत् भोगने के लिये प्रदान करता है शक्तिशाली राजा उस प्रजाजन को पाप वा पापी जन से नाश होने से बचावे।

तस्य द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत् ।
विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह पूर्वोक्त शक्तिशाली स्वामी (विश्वा) सब प्रकार के (अमित्रिया) शत्रुओं के किये छल कपटादि के कार्यों को (वन्वन्) नाश करता हुआ (देव-जूतः) विद्वानों से सेवित होकर (शूशुवत्) बहुत वृद्धि को प्राप्त होता है। (तस्य) उसका (रथः) रथ भी (द्युमान्) कान्तियुक्त और (देव-जूतः) अग्नि, वायु, विद्युत् आदि पदार्थों से चलने वाला (असत्) होता है। (२) वह विद्वान् सब अमित्रभावों का नाश करता है, उसका (रथः) उपदेश (देव-जूतः) विद्याभिलाषियों से सेवित होकर (द्युमान्) अति तेजस्वी हो प्रसिद्ध हो जाता और वह वृद्धि को प्राप्त होता है।

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे ।
इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य इळा) उसकी भूमि (प्रजावती) प्रजा से युक्त होकर (दिवे दिवे) दिनो दिन (गृहे असश्चन्ती) गृह में स्थिर रहने वाली

पत्नी वा गौ के समान (धेनुमती) गवादि पशु युक्त और वाणी, आज्ञा युक्त होकर (दुहे) नाना सुखों को प्रदान करती है।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।
देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! (या) जो (दम्पती) पति पत्नी, (सऽमनसा) समान चित्त होकर (सुनुतः) पुत्र उत्पन्न करते है और (नित्यया) नित्य (आशिरा) उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्य से (आ धावतः च) उसे शुद्ध करते है और पालते हैं वे दोनों—

प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते।
न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥

भा०—(प्राशव्यान्) उत्तम खाने योग्य पदार्थों को (प्रति इतः) प्रतिदिन प्राप्त करे। वे (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार जीवन निर्वाह करते हुए (बर्हिः आशाते) उत्तम धान्य का उपभोग करे और (ता) वे दोनों (वाजेषु) अन्नों, बलों और ऐश्वर्यों से (न वायतः) वञ्चित नहीं रहते।

न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः।
श्रवो बृहद्विवासतः ॥ ७ ॥

भा०—वे दोनों विवाहित पति पत्नी (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों के बीच रहते हुए (अपि) भी, कभी भी (न ह्नुतः) कुटिलता का व्यवहार नहीं करें। और वे दोनों (सुमतिम्) अपनी उत्तम सम्मति, शुभ ज्ञान को (न जुगुक्षतः) कभी न छिपावें, प्रत्युत परस्पर हित के उत्तम ज्ञान देते रहा करें। वे दोनों नित्य (बृहत् श्रवः) बड़े भारी वेदज्ञान का (विवासतः) प्रकाश करें, उसका अभ्यास करें, और श्रवण करने योग्य महान् प्रभु की सेवा किया करें।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनो स्त्री पुरुष, पति पत्नी (पुत्रिणा) पुत्रो वाले और (कुमारिणा) प्रथम वयस मे वर्त्तमान कुमार अर्थात् नवयुवक सन्तानों के माता पिता होकर (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु का (वि अश्नुतः) भोग करें । और (उभा) दोनो (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण के उत्तम अलंकार धारण करने वाले हों ।

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥

भा०—वे दोनों (वीति-होत्रा) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी को बोलने हारे और (कृतद्वसू = कृत-वसू) उत्तम धन, गृह, बल, वीर्यादि प्राप्त करके (दशस्यन्ताम्) दान दिया करें । वे (अमृताय कम्) अमृत अर्थात् न मरने वाली जीवित सन्तान को प्राप्त करने के लिये (ऊधः रोमशं) उत्तम सन्तान आधान और धारण करने वाले, रोम युक्त अर्थात् यौवनयुक्त अंगों को (सं-हत॰) सयोजित करें, उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और (देवेषु) विद्वानों को (दुव॰) सेवा (कृणुतः) किया करे ।

ये पाचों ऋचाएं गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश करती है । पञ्चभिर्दम्पती अस्तूयेताम् इति सायण॰ ।

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् ।
आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥ ३९ ॥

भा०—हम लोग (पर्वतानां) पर्वतों, मेघों और पालन शक्ति से युक्त पुरुषों और (नदीनाम्) नदियों, वाणियों और समृद्ध प्रजाओं के (शर्म) सुख को (आवृणीमहे) प्राप्त करें । और हम (सचाभुवः) समवाय बनाकर रहने वाले (विष्णो) व्यापक शक्ति वाले प्रभु वा स्वामी के (शर्म) सुख को भी प्राप्त करें । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

ऐतु॑ पू॒षा र॒यिर्भगः॑ स्व॒स्ति स॑र्व॒धात॑मः ।
उ॒रुरध्वा॑ स्व॒स्तये॑ ॥ ११ ॥

भा०—(स्वस्तये) सुख, कल्याण की वृद्धि के लिये, (पूषा) सर्व-
क स्वामी, वा भूमि हमें (आ-एतु) प्राप्त हो (सर्व-धातमः) सबको
म रीति से पालन पोषण करने में समर्थ (रयिः) ऐश्वर्य, (भगः)
पदा और (उरुः अध्वा) बड़ा मार्ग प्राप्त हो । (२) परमेश्वर पोषक
ो से 'पूषा', ऐश्वर्यवान् सेवनीय होने से रयि और भग है । वही महान्
ाप्य होने से 'उरु अध्वा' है । वह हमें सुख-कल्याणकारक हो ।

अ॒रम॑तिरन॒र्वणो॒ विश्वो॑ दे॒वस्य॒ मन॑सा ।
आ॒दि॒त्याना॑मने॒ह इत् ॥ १२ ॥

भा०—(अनर्वणः) अहिंसक (देवस्य) सर्वदाता, सर्वप्रकाशक
के (मनसा) मनन और ज्ञान से (विश्वः) समस्त मनुष्य (अर-
ः) बड़ा ज्ञानवान्, बुद्धिमान् हो जाते हैं और (आदित्यानाम्)आदि-
ब्रह्मचारी, तेजस्वी पुरुषों के (मनसा) ज्ञानोपदेश से सब कोई (अनेहः
) पाप रहित भी हो जाते हैं ।

यथा॑ नो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णः॒ सन्ति॑ गो॒पाः ।
सु॒गा ऋ॒तस्य॒ पन्थाः॑ ॥ १३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा)
ाकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, कष्टों के वारक जन (नः) हमारे
ोपाः सन्ति) रक्षक होते हैं उसी प्रकार (ऋतस्य) सत्य, न्याय और
का (पन्थाः) मार्ग (सु-गा) सुखसे गमन करने योग्य है ।

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं गि॒रा दे॒वमी॑ळे॒ वसू॑नाम् ।
स॒प॒र्यन्तः॑ पुरुप्रि॒यं मि॒त्रं न क्षे॑त्र॒साध॑सम् ॥ १४ ॥

दुःखित, पीड़ित न हो। क्योंकि (यः इत् देवानां मनः इयक्षति) जो उत्तम पुरुषों के मन को प्रसन्न रखता है वह (अयज्वनः अभि भुवत्) अदानशील अनीश्वरोपासकों को पराजित करता है।

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १७॥

भा०—(यः इत्) जो मनुष्य अवश्य ही निश्चयपूर्वक (यजमानः देवानां मनः इयक्षति) विद्वान् पुरुषो के ज्ञान की उपासना करता है वह (अयज्वनः) ज्ञान की उपासना न करने वालो को (अभि भुवत् इत्) अवश्य ही परास्त करता है। (तं कर्मणा नकिः नशत्) उस तक कर्म के सामर्थ्य से भी कोई नही पहुंचता, न उसे नष्ट कर सकता है, और (न प्र योषत्) उसे कोई अपने स्थान से डिगा नहीं सकता। और वह स्वयं (न प्र योषति) पुत्र धनादि से वियुक्त नहीं होता।

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम्। देवानां य इन्मनो
यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १८॥ ४०॥ २॥

भा०—(यत् इत् देवानां मनः) जो देव, उत्तम तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान का (इयक्षति) आदर, सत्संग करता है, वह (अयज्वनः) सत्संग न करने वाले कदाचारी पुरुषों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य परास्त करता है, क्योंकि उसका (अत्र) इस लोक मे (सुवीर्यम् असत्) उत्तम वीर्य बल और विद्या सामर्थ्य हो जाता है और उसको (त्यत्) वह अलौकिक (आशु अश्व्यम्) शीघ्रगामी अश्वों से युक्त सैन्यादि और बलवान् इन्द्रिय-बल, सामर्थ्य प्राप्त होता है। इति चत्वारिंशो वर्गः॥

इति षष्ठेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥

तृतीयोऽध्यायः

[३२]

काण्वो मेधातिथिः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३, १५, २७, २८ निचृद् गायत्री । २, ४, ६, ८—१२, १४, १६, १७, २१, २२, २४—२६ गायत्री । ३, ५, १९, २०, २३, २९ विराड् गायत्री । १८, ३० भुरिग् गायत्री ॥

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया ।
मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

भा०—हे (कण्वाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (ऋजीषिणः) ऋजु, धर्मानुकूल इच्छा वाले पुरुष होकर (ऋजीषिणः) सत्य न्याय मार्ग पर प्रेरणा करने वाले (सोमस्य मदे) ओषधि, अन्न, ऐश्वर्यादि से खूब तृप्त, प्रसन्न होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (कृतानि) किये कार्यों और राजा के कर्त्तव्यों का (गाथया) गान करने योग्य वेदवाणी से (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उपदेश करो ।

यः सृविन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् ।
वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो तेजस्वी (सृविन्दम्) आक्रमण करके प्रजा का धन हरण करने वाले (अनर्शनि) अहिंसित बल के नेता (पिप्रुं) अपने ही पेट भरने वाले (दासम्) प्रजा के नाशक (अहीशुवम्) सर्प वा मेघवत् बढ़ने वाले दुष्टजन को (उग्रः) भयंकर होकर (वधीत्) विनाश या दण्डित करे वह ही (अपः) आप्त प्रजाओं और जलों को सूर्य या विद्युत्वत् (रिणन्) मार्ग मे चलाने में समर्थ होता है ।

न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृपे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार बिजुली (अर्बुदस्य बृहत विस्तपं वर्ष्माणं कृपे नि तिरति) बड़े भारी मेघ के तापरहित वृष्टिकारक रूप को छिन्न भिन्न करके कृषि के लिये दे देता है, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्त ! तू भी (अर्बुदस्य) प्रजा को दु ख देने वाले वा मेघवत् वा सहस्रों की सख्या मे (बृहतः) बड़े भारी शत्रु सैन्य के (विस्तपं) विशेष तापकारी, (वर्ष्माणं) अस्त्रवर्षी प्रबल भाग को (नि तिर) विनाश कर, और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (तत् पौंस्यं) ऐसा ही बल पराक्रम (कृपे) किया कर ।

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (गिरेः तूर्णाशं अधि धृषत्) विद्युत् मेघ से जल को बलपूर्वक गिरा देता है उसी प्रकार वह शत्रुहन्ता राजा (श्रुताय) प्रसिद्ध होने के लिये (वः) आप प्रजा जनों के (ऊर्णाशं) हिंसा द्वारा नाश करने वाले दुष्ट दल को (गिरेः अधि) स्वय पर्वतवत् उच्च पद से (प्रति अधि धृषत्) उसका मुकाबला करके खूब अधिक धर्षण करे उसे अधिकारपूर्वक दण्डित करे । जिससे वह फिर सिर न उठा सके । उसी (सुशिप्रम्) सुन्दर मुख, नासिका, वा मुकुट से सजे वा उत्तम वीर्यवान् राजा को मैं (ऊतये) प्रजागण अपनी रक्षा के लिये (हुवे) पुकारू, उससे प्रार्थना करू ।

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।
पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष ! तू (मन्दानः) प्रसन्न होकर अन्यों को भी प्रसन्न करता हुआ (सोम्येभ्य) ऐश्वर्य के पालन करने में योग्य कुशल पुरुषों के लिये, (गोः व्रजं) वाणियों, भूमियों के समूह तथा (अश्वस्य) आशुगामी, अश्व सैन्य के (व्रजं) प्रयाण मार्ग को और (पुरं न वि दर्षसि) प्राकार वा नगरों को विविध प्रकार से निर्माण कर ।

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः ।
आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (यदि) यदि तू (मे सुते) मेरे उत्पन्न किये ऐश्वर्य मे (रारणः) रमण करे, उसका उपभोग करे, और यदि (मे उक्थे) मेरे उत्तम वचन मे ही (रारणः) प्रसन्न हो और (चनः दधसे) बहुत अन्न को धारण करे, तो तू (आरात्) दूर या समीप से भी (स्वधा) अपने धारण पोषण करने के नाना पदार्थों को (उप गहि) क्रय विक्रय या व्यापार द्वारा प्राप्त कर ।

वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! (वयं घ) हम अवश्य (ते स्तोतारः) तेरे स्तुति करने वाले (अपि स्मसि) हों । हे (सोमपः) ऐश्वर्य के पालक ! (त्वं नः जिन्व) तू हमे प्रसन्न और तृप्त कर, हमारी वृद्धि कर ।

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ८

भा०—तू (सं रराणः) समान भाव से प्रजासहित राष्ट्र मे सुख भोग करता हुआ (नः) हमारे (अवि-क्षितम्) अविनष्ट (पितुम्) अन्न को (आ भर) प्राप्त करा । और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (ते) अपने (भूरि वसु आ भर) बहुत सा धन ऐश्वर्य भी प्राप्त करा ।

उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः ।
इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तेजस्विन् ! (उत) और तू (नः) हमे (गोमत.) गौ आदि पशु और भूमि आदि से सम्पन्न (कृधि) कर । तू हमे (हिरण्यवतः अश्विनः) उत्तम सुवर्ण धन और अश्वों का स्वामी (कृधि) कर । हम (इडाभि.) नाना उत्तम वाणियों

और अन्नों, भूमियों से (संरभे महि) अच्छी प्रकार जीवन का सुख प्राप्त करें। (२) हे (इन्द्र) आचार्य ! तू हमें (गोमतः) वाणी सम्पन्न (हिरण्यवतः अश्विनः) आत्मवान् जितेन्द्रिय कर, हम (इडाभिः) उत्तम वेदवाणियों से आनन्द लाभ करें।

बृहदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (बृहदुक्थ्यम्) वेद वाणी के उत्तम वचन जानने हारे, (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्तम्) आगे बढ़े बाहु वाले, अन्यों दीनों को आगे हाथ बढ़ा कर बचाने वाले और (साधु कृण्वन्तम्) उत्तम काम करने वाले धर्मात्मा, पुण्यवान् पुरुष को (अवसे) रक्षा के निमित्त प्रार्थना करें।

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा।
जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (संस्थे चित्) संग्राम में भी (शतक्रतुः) नाना कर्म करने हारा, नाना प्रज्ञावान् (वृत्रहा) शत्रुहन्ता होकर (आत्) अनन्तर (ईं कृणोति) नाना शत्रुओं का नाश करता है। वह (जरितृभ्यः) विद्वानों के लिये (पुरु वसुः) बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी हो। (२) अध्यात्म में पुरः इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा इन्द्र है।

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वह (शक्रः) शक्तिशाली (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (दानवान्) नाना दान योग्य धनैश्वर्यवान् होकर (नः आ शकत्) हम सब ओर से शक्तिमान् करे। और वह (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की रक्षाओं से (नः अन्तः-आ-भरः) हमें अपने राष्ट्र के भीतर गर्भ में माता के समान धारण पोषण एवं पालन करने वाला हो।

यो रायो३ वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो प्रभु (रायः वनिः) ऐश्वर्य का देने हारा (महान्) गुण और शक्ति मे महान् (सु-पारः) उत्तम रीति से पालन और पोपण करने और संकटो से पार उतारने हारा और (सखा) मित्र के समान स्नेही है (तम् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु स्वामी की (अभि प्रगायत) खूब स्तुति वा गुणो का गान करो।

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम्।
भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥

भा०—(आ-यन्तारं) सब ओर से वश करने वाले, (महि स्थिरं) महान्, स्थिर, कूटस्थ, (पृतनासु) संग्रामो वा सेनाओं के बीच (श्रवः-जितम्) यश कीर्त्ति को विजय करने वाले और (ओजसा) पराक्रम से (भूरेः) बड़े भारी ऐश्वर्य वा जगत् के (ईशानम्) स्वामी की (अभि गायत) स्तुति करो।

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (शचीनाम्) शक्तियों और (सूनृतानां) उत्तम सत्ययुक्त वाणियों का (नियन्ता) रोकने वाला (नकिः) कोई भी नहीं है। (न दात् इति वक्ता नकिः) वह नहीं देता ऐसा भी कहने वाला कोई नहीं। वह सबको श्रमानुरूप और कर्मानुरूप फल बड़े अनुग्रह से देता है।

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम्।
न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥

भा०—(सुन्वताम्) ऐश्वर्य, अन्नादि उत्पन्न करने वाले, वा (सुन्वता) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले, (प्राशूनां) उत्तम मार्ग

से जाने वाले, (ब्रह्मणां) विद्वान् ब्राह्मणों और ब्रह्मवेत्ताओं का (नूनं) निश्चय से कोई (ऋणं न अस्ति) ऋण शेष नहीं रहता । (सोमः) परम ऐश्वर्य वा यज्ञ में सोमरस, उत्तम अन्नादि का भोग भी (अप्रता) कोश न भरने वाले पुरुष को (न पपे) प्राप्त नहीं होता ।

पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत ।
ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पन्ये इत्) स्तुति योग्य परमेश्वर के निमित्त ही, उसको लक्ष्य करके ही (उप गायत) उपासना पूर्वक स्तुति गान करो । (पन्ये उक्थानि शंसत) उस स्तुत्य प्रभु के निमित्त ही उत्तम वेद-वचनों का उच्चारण करो । (पन्ये इत् ब्रह्म कृणोत) उस स्तोतव्य प्रभु के निमित्त ही वेद मन्त्रों का और यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करो ।

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः ।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! प्रभु (यज्वन.) दानी, सत्संगी, यज्ञोपासक का (वृधः) बढ़ाने हारा है वही (पन्य.) स्तुति योग्य है वही (वाजी) ऐश्वर्यवान्, (अवृतः) मोहादि से अनावृत, नित्य युक्त (शता सहस्रा) सैकड़ों हज़ारों बन्धनों को (आ दर्दिरत्) काट देता है ।

वि पू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः ।
इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सुतानां) जगत में उत्पन्न जीवों का (पिब) पालन कर । तू (कृष्टीनाम्) समस्त मनुष्यों को (आहुवः) सब से आदरपूर्वक प्रार्थना करने योग्य और सब सुख देने वाला है । तू (स्वधा अनु) अपनी शक्ति से जगत् का धारक होकर (वि पू चर)

अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप, (अनु चर) कर्मों के अनुसार उनको फल प्रदान कर। अथवा हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! तू (कृष्टीनां) अपने आप कृष्टिवत् परिश्रम से बोये बीजों की (स्वधाः अनु) स्वयं परिपुष्ट, स्वयं उत्पन्न के समान अपने किये कर्मों का (वि सु चर) उत्तम और विपरीत फल प्राप्त कर। (अनु आ हुवः) उनके अनुकूल ही सुख, दुःख प्राप्त कर (सुतानां) उत्पन्न फलो का ही (पिब) पालन कर।

पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा। उतायमिन्द्र यस्तव २०।४

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (स्व धैनवानां पिबति) अपनी गौवों का दूध पीता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (स्व धैनवानाम्) अपनी वाणियों द्वारा प्राप्त सत्-असत् फलों का उपभोग कर और (यः) जो पदार्थ (तुग्र्ये) पालन करने योग्य पुत्रादि मे (सचा) विद्यमान है, (उत अयम्) और यह (यः तव) जो तेरा है तू उसे (पिब) पालन या उपभोग कर।

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे। इमं रातं सुतं पिब ॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मन्यु-साविनम्) मन्यु, क्रोध वा अभिमान से आधिपत्य करने वाले को (अति इहि) अतिलंघन कर। और (उप-अरणे) अरमणीय, कष्टदायी स्थान मे (सुसुवांसम्) स्वामित्व करने वाले से भी (अति इहि) अधिक बढ़ जा। तू (इमं) इस (रातम्) अपने हाथ सौंपे (सुतं) उत्पन्न प्रजागण को (पिब) पालन कर।

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति।
धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥

भा०—तू (परावतः) दूर के (तिस्रः) तीनो प्रकार के उत्तम मध्यम, निकृष्ट प्रजाओं को (अति इहि) अपने वश कर। और (पञ्चजनान् अति इहि) चार वर्ण और पांचवें निषाद इन पाँचों को भी अपने वश

कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (धेना) नाना वाणियों को (अव चाकशत्) देख। अथवा हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (परावत.) दूर से भी (तिस्रः) धेनाः (इहि) तीनों प्रकार के ऋग यजुः साम वाणियों को प्राप्त कर (अव चाकशत्) उनसे देख, न्याय और ज्ञान का दर्शन कर। पांचों जनों का अपने अधीन कर, उन इन्द्रियों पर आत्मावत् शासन कर।

सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः।
निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २३ ॥

भा०—(यथा सूर्यः रश्मिं सृजति) जिस प्रकार सूर्य तेज और राष्ट्र को व्यापने और रक्षा करने वाला शासन करता है इसी प्रकार तू भी (रश्मि सृज) तेज और राष्ट्र को व्यापने और वश करने वाला शासन कर। (आपः न सध्र्यक् निम्नम्) जिस प्रकार जलधाराएं एकही साथ सब नीचे प्रदेश मे आकर उसे घेर लेती हैं उसी प्रकार (मे गिरः) मेरी वाणियां भी (त्वा) तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (आयच्छन्तु) प्राप्त हों।

अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे।
भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञ करने हारे, यज्ञ के स्वामिन् ! तू (शिप्रिणे) मुकुट धारण करने वाले (वीराय) वीर पुरुष के लिये (सोम आ सिञ्च) ओषधि रसवत् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का आसेचन कर, उसके ऐश्वर्य के पद की वृद्धि कर। (पीतये) पालन करने के लिये (सुतस्य) उत्पन्न राष्ट्रजन को पुत्रवत् (भर) पुष्ट कर।

य उद्नः फलिगं भिनन्न्य१क्सिन्धूँरवासृजत्।
यो गोषु पक्वं धारयत् ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र विद्युत् (फलिगं भिनत्) मेघ का छेदन

भेदन करता और (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की धाराओं को नीचे फेंकता है और (गोपु पक्वं धारयत्) भूमियों मे परिपक्व अन्न को पुष्ट करता है, उसी प्रकार जो राजा (फलिगं भिनत्) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य से आक्रमण करने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करता, और राष्ट्र मे (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की नाना नहरों को नीची भूमियों मे प्रवाहित करता है और जो (गोपु) भूमियों मे (पक्वम्) पके अन्न को लेता है वही भूमि का स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् कहाता है ।

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् २६

भा०—(ऋचीषमः) तेज से सर्वत्र समान भाव से प्रदीप्त होने वाला सूर्य जिस प्रकार (और्णवाभम्) ऊन से बने कम्बल के समान आच्छादक, (अहीशुवम्) मेघ से बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघस्थ जल को (अहन्) आघात करता है और (हिमेन) शीत से (अर्बुदम्) जलप्रद मेघ को (अविध्यत्) वेध देता है, उसी प्रकार (ऋचीषमः) तेज और आदर, प्रतिष्ठा वा शासन वाणी से सर्वत्र समान निष्पक्षपात राजा (और्णवाभम्) ऊन देने वाले भेड़ के समान टक्कर लेने वाले, (अहीशुवम्) सूर्य के समान क्रोध से बढ़ने वाले (वृत्रम्) शत्रु को (अहन्) नाश करता है, और वह (अर्बुदम्) शस्त्र बल से नाश करने वाले शत्रु को (हिमेन) अपने हनन साधन शस्त्र-बल से (अविध्यत्) वेधता, पीड़ित, ताड़ित करता है, वही बलवान् 'इन्द्र' है ।

प्र वं उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत॥२७॥

भा०—हे प्रजाजनो ! हे विद्वानो ! आप लोग (वः) अपने में से (उग्राय) शत्रु के प्रति उग्रस्वभाव वाले, (नि:-स्तुरे) शत्रु का सर्वथा नाश करने मे समर्थ, (अषाढाय) और स्वयं कभी पराजित न होने और (प्र-सक्षिणे) पर पक्ष को अच्छी प्रकार पराजित करने वाले पुरुष को

और अधिक बलवान् करने के लिये (देवत्तं ब्रह्म) विद्वानों के द्वारा गुरु-परम्परा से प्रदत्त वा प्रभु से दिये वेद-ज्ञान का (गायत) उपदेश करो ।

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः ।
इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो (देवेषु) इन्द्रियों के बीच में (अन्धस मदे) अन्न से तृप्ति लाभ करके जिस प्रकार आत्मा (विश्वानि व्रता अभि चेतति) सब कार्यों को जानता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजगीषु पुरुषों के बीच (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होने पर वा ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के शासन-कार्य में (विश्वानि व्रता अभि) सब कर्त्तव्यों को (चेतति) ठीक जानता है, वह (इन्द्रः) इन्द्र है ।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥

भा०—(इह) यहां (त्या) वे दोनों (सधमाद्या) एक साथ आनन्द, वा अन्नादि की तृप्ति लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान केशों के तुल्य दीप्तियों को धारण करने वाले तेजस्वी, (हरी) राजा प्रजा, वा स्त्री पुरुष (हितम् प्रयः) हितकारी अन्न, ज्ञान (अभि वोढाम्) प्राप्त करावें । और सुवर्णवत् सुन्दर केशों से युक्त दो अश्व सेनापति को हित-मार्ग में ले चलें ।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! (अर्वाञ्चम्) साक्षात् प्राप्त तुझ को (प्रियमेध स्तुता) यज्ञ या सत्संगादि के प्रिय विद्वान् पुरुषों द्वारा उपदिष्ट, उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुष (सोमपेयाय) राष्ट्र वा पुत्र के पालन और उपभोग के लिये (वक्षतः) सन्मार्ग में ले चलें । और उत्तम उपदेश करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[३३]

मेधातिथि काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५ बृहती । ४, ७, ८, १०, १२ विराड् बृहती । ६, ६, ११, १४, १५ निचृद् बृहती । १३ आर्ची भुरिग् बृहती । १६, १८ गायत्री । १७ निचृद् गायत्री । १६ अनुष्टुप् ॥ एकोनविंशत्यृच सूक्तम् ॥

व॒यं घ॑ त्वा सु॒ताव॑न्त॒ आपो॒ न वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
प॒वित्र॑स्य प्र॒स्रव॑णेषु वृत्रह॒न्परि॑ स्तो॒तार॑ आसते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (आपः न) जलधाराएं (वृक्त-बर्हिषः) कुशा काशादि की वृद्धि करने वाली होकर (प्र-स्रवणेषु) निर्झरो मे नीचे की ओर बहा करती है उसी प्रकार हे (वृत्र-हन्) शत्रुनाशक स्वामिन् ! (वय घ) हम भी (सुत-वन्तः) उत्पन्न उत्तम प्रजावान् और अन्न ऐश्वर्यादिमान् (वृक्त-बर्हिषः) यज्ञ मे आसनादिवत् विस्तीर्ण एवं प्रजाओ की वृद्धि करके (त्वा परि) तुझे प्राप्त हो (पवित्रस्य) शुद्ध पवित्र जल एवं ज्ञान के (प्र-स्रवणेषु) प्रवाहो के तटो पर विराजे और (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्ता उपासक लोग भी (परि आसते) विराजते है ।

स्वर॑न्ति त्वा सु॒ते नरो॒ वसो॑ निरे॒क उ॒क्थिनः॑ ।
क॒दा सु॒तं तृ॑षा॒ण ओक॒ आ ग॑म॒ इन्द्र॑ स्व॒ब्दीव॒ वंस॑गः ॥ २ ॥

भा०—हे (वसो) समस्त जगत् को वसाने, सवकी रक्षा करने हारे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उक्थिनः नरः) उत्तम वेद-वचन को धारण करने वाले जन, (सुते) इस उत्पन्न जगत् मे, (निरेके) एकान्त मे भी (त्वा स्वरन्ति) तुझे लक्ष्य कर पुकारते है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, उत्तम गति मे चलने हारा (सु-अब्दीव) गर्जते मेघवत् या महा वृषभवत् (तृषाण.) पिपासित के समान अति उत्कण्ठित होकर (सुतं कदा आगम.) इस उत्पन्न जीव संसार को कब प्राप्त हो ।

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्त्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धनसम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध
प्रजाओं के ऊपर द्रष्टः ! हे (धृष्णो) दुष्टों के दलन करने हारे ! हम (पिशङ्ग-
रूपं) उज्वल, पीतरूप वाले और (गोमन्तं) भूमि से युक्त (वाजं)
ऐश्वर्य की तुझ से (मक्षु) शीघ्र ही (ईमहे) याचना करते है और तू
(कण्वेभिः) विद्वानो और वीरों द्वारा (सहस्त्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रो
सुखों, संख्याओं से युक्त ऐश्वर्य हमे दे । अथवा हे (वि-चर्षणे) विविध
विद्याओं के द्रष्टः ! विद्वन् ! (पिशङ्ग-रूपं) तेजस्वी, (गोमन्तं) वेदवाणी के
विद्वानों से (मक्षु) अति शीघ्र (वाजम् ईमहे) ज्ञान प्राप्त करें । और
(कण्वेभिः) विद्वानो द्वारा (सहस्त्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रों ऋचाओं से
युक्त ज्ञान प्रदान कर ।

पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥४॥

भा०—हे (मेध्यातिथे) 'मेध' अर्थात् सत्संग और अन्नादि द्वारा
सत्कार करने योग्य अतिथे ! विद्वन् ! तू (अन्धसः मदे) अन्न द्वारा तृप्ति
और आनन्द लाभ करने पर (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के सम्बन्ध में
(गाय) उपदेश कर और (पाहि) उसका ज्ञान-रस पान कर । (यः)
जो (हर्योः संमिश्लः) स्त्री पुरुष दोनों में समान रूप से व्यापक है, (यः
सुते सचा) जो उत्पन्न हुए पुत्रवत् जगत् में भी सदा सत्य विद्यमान है
जो (वज्री) बलवान् (रथः) रमरूप, रमणीय (हिरण्ययः) सुवर्ण-
वत् तेजोमय है ।

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारित ॥५॥

भा०—पुरुषोत्तम कैसा है ? (यः) जो (सुसव्यः सुदक्षिणः)

वायें और दायें दोनों हाथो से उत्तम कुशल, कर्म करने में समर्थ वा (सु-सव्यः) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य वा जगत् को उत्पन्न करने, शासन करने और संचालन करने मे समर्थ, और (सु-दक्षिण) उत्तम धन दान, बल, बुद्धि से सम्पन्न, (इनः) सबका स्वामी, (यः) जो (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म व प्रज्ञावान् (गृणे) स्तुति किया जाता है । (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रो उत्तम कर्मो का करने वाला, वा खनि के समान सहस्रो गुणो, ऐश्वर्यों को धरने वाला है, (यः शत-मघः) जो सैकड़ों ऐश्वर्यों का स्वामी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (यः पूर्भित्) शत्रु नगरों को तोड़ने वाला, वा ज्ञानपूर्वक योगिजनो के देह-बन्धन का विच्छेदक, मुक्तिदाता और जो (आरितः) स्तुति द्वारा प्राप्त होता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

यो धृ॒षि॒तो योऽवृ॑तो॒ यो अस्ति॒ श्मश्रु॑षु॒ श्रि॒तः ।
विभू॑तद्युम्न॒श्च्यव॑नः पुरुष्टु॒तः क्रत्वा॒ गौरि॑व शा॒किनः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (धृषितः) पराजय करने वाला, सबका वश कर्त्ता, (यः अवृतः) जो न घिरा, असंग, (यः) जो (श्मश्रुषु श्रितः) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य, वा (श्मश्रुषु = श्मसु शरीरेषु श्रूयन्ते इति श्मश्रवो जीवाः) शरीरो मे विद्यमान जीवो या श्मश्रु अर्थात् मूछों वाले, वीर पुरुषों मे (श्रितः) आश्रय करने योग्य, उन द्वारा सेवित, (विभूत-द्युम्नः) अति ऐश्वर्यवान् , तेजस्वी, (च्यवनः) शत्रुओ को विचलित करने वाला, वा सर्वव्यापक, (पुरु स्तुतः) बहुतो से प्रशंसित, और (क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य से (शाकिनः) शक्ति प्राप्त करने वाले जीव के लिये (गौः इव) गौ, भूमि के समान अनेक सुख उत्पन्न करने वाला है ।

क ईं॑ वेद सु॒ते सचा॒ पिब॑न्तं॒ कद्वयो॑ दधे ।
अ॒यं यः पुरो॑ विभि॒नत्त्योज॑सा मन्दा॒नः शि॒प्र्यन्ध॑सः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) पराक्रम से (पुरः) शत्रु के पुरों, दुर्गों, प्रकोटों को (वि-भिनत्ति) तोड़ डालता है (अयं) वह (अन्धसः)

अन्न वा जीवनधारक पदार्थ से (मन्दानः) आनन्द लाभ करता हुआ रहे। (सुते) ऐश्वर्य के बल पर (पिबन्तं) राष्ट्र का पालन करते हुए (ईं) इसको (कः वेद) कौन जानता है, और कौन जनाता है कि वह (कत् वयः दधे) कितना बल धारण करता है। इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर अपने बल से नाना ब्रह्माण्ड पुरों को संहार करता, (शिप्री) बलवान्, (अन्धसः मन्दान.) प्राणधारी जीवों को आनन्द देता रहता है। (वयः) वह उत्पन्न जगत् में व्यापक होकर सबका पालन करता है उसके अपार बल, आयु और ज्ञान को कौन जानता है ?

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ ८ ॥

भा०—(मृगः न वारण.) जिस प्रकार पशु हस्ती (पुरुत्रा दाना-दधे) बहुत से मदजल धारण करता है और (पुरुत्र चरथं दधे) बहुत से स्थानों पर विचरण करता है उसी प्रकार वह प्रभु, ऐश्वर्यवान् स्वामी (वारणः) सब दुःखों को वारण करने वाला, (मृग) अति शुद्धस्वरूप वा योगी मुमुक्षुओं से खोजने योग्य (पुरुत्रा) पालनीय जीवों के निमित्त (दाना) दान देने योग्य नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है और (पुरुत्रा चरथं दधे) बहुत से भोग्य कर्मफल भी प्रदान करता है। हे प्रभो ! (सुते) इस जगत् में या ऐश्वर्य में (त्वा नकिः नियमत्) तुझे कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है। तू (ओजसा) अपने महान् सामर्थ्य से (गमः) सर्वत्र व्यापक है और (महां) सब से महान् होकर (चरसि) सब में व्याप रहा है।

य उग्रः सन्ननिष्टृत. स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (उग्र. सन) स्वयं है अति उग्र होकर (अनिष्टृत) अहिंसित, अमर, (स्थिर.) स्थिर, दृढ़ (रणाय ,

रण के लिये सुसज्जित वा 'रण' परम आनन्द देने के लिये (संस्कृतः) सदा उपासित है। (यदि) यदि (मघवा) वह ऐश्वर्यवान्, (स्तोतुः हवं शृणवत्) स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना सुनले तो वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीर (न योपति) कभी स्त्रीवत् भय नहीं करता, (आगमत्) आही जाता है, इसी प्रकार जल की प्रार्थना सुन कर प्रभु भी (न योपति) पृथक् न रहकर (आ गमत्) उसे प्राप्त ही होजाता है।

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१०॥८॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (सत्यम्) सचमुच, (वृषा इत् असि) समस्त सुखों का वर्षाने वाला ही है। तू (नः) हमारे बीच (अवृत.) किसी से न घिरा, असंग, (वृषजूतिः) सुखवर्षक सूर्यादि को सञ्चालन करने में समर्थ सब का सारथिवत् नेता है। तू (परावति) दूर, परमार्थ में भी हे (उग्र) बलवन्! (वृषा हि शृण्विषे) बलवान् ही सुना जाता है, और (अर्वावति) समीप, इह लोक में भी (वृषः श्रुत.) जगत् का प्रबन्धक, बलवान्, सुखों का वर्षक ही प्रसिद्ध है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार वीर पुरुष की (अभीशवः कशा रथः हरी) रासें, चाबुक, रथ और घोड़े बलवान् हो तो वह युद्ध करने में समर्थ होता है उसी प्रकार हे (शतक्रतो) सैकड़ों बलों कर्मों और ज्ञानों वाले! स्वामिन्! तेरी (ते अभीशव.) सर्वत्र शासनकारिणी शक्तियां (वृषण) बलवती और सुखों का वर्षण करने वाली हैं। (ते कशा) तेरी वाणी वेदमयी, (हिरण्ययी) हितकारिणी और सुन्दर सुखदायी है और (वृषा) सुख ज्ञान के देने वाली है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ते रथः वृषा)

तेरा रमणीय रूप और उपदेश भी सुखप्रद है। (ते हरी) तेरे उपासक स्त्री पुरुष (वृषणा) बलवान् हैं। (त्वं वृषा) तू स्वयं बलवान्, सर्वसुखवर्षक है।

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम्॥ १२॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल सत्य, धर्ममार्ग में मनुष्यों को प्रेरित करने हारे! (सोता) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला (वृषा) बलवान् होकर (ते सुनोतु) तेरा अभिषेक करे। तू उसको (आ भर) सब ओर से पुष्ट कर। हे (हरीणां स्थातः) विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच स्थिर रहने हारे! (तुभ्यं) तेरी ही वृद्धि के लिये (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में (वृषा) बलवान् वीरसमूह (वृषणं) उत्तम प्रबन्धक, प्रमुख तुल्य पुरुष को ही (दधन्वे) पुष्ट, धारण करे।

एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! वा आत्मन् तू (मधु) मधुर सुखप्रद (सोम्यं) उत्तम बलकारक ओषधि आदि रसवत् शिष्योचित विद्वानों के उपदेश को (पीतये) पान करने, ज्ञान श्रवण करने के लिये (आयाहि) आ। हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन्! (अयम्) यह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (मघवा) केवल धनवान् पुरुष भी (ब्रह्म उक्था च) वेदज्ञान और 'उक्थ' उत्तम वचन और (गिरः) वाणियों को (न अच्छ शृणवद्) साक्षात् श्रवण नहीं कर सकता। वह भी ज्ञानश्रवणार्थ गुरु के समीप जाकर ही ज्ञान का श्रवण कर सकता है।

वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो॥ १४॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! हे (शत०) इत्यादि।

हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने हारे ! हे बहुयज्ञ ! (रथ-युजः) रथ में नियुक्त, (हरयः) अश्वो के समान, राष्ट्र मे नियुक्त विद्वान् जन (रथेष्ठाम् त्वा) रथ पर अधिष्ठाता वा स्वामी के समान विराजमान तुझ को (या) जो (अन्येषां सवनानि) अन्यो के यज्ञ वा ऐश्वर्य है उनको भी (तिरः चित् आवहन्तु) उत्तम रीति से प्राप्त करावे ।

अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः॥१५॥

भा०—हे (महामह) बड़ों के भी पूज्य ! तू (अद्य) आज (अस्माकं) हमारे (अन्तमं) अति समीपतम (स्तोमं) स्तुति-वचन को (धिष्व) धारण कर । हे (द्युक्ष) तेजस्विन् ! हे (सोम-पाः) ऐश्वर्यादि के पालक ! (अस्माकं सवना) हमारे पूजा, उपचारादि वा ऐश्वर्य (ते मदाय) तेरे आनन्द वृद्धि के लिये और (ते शन्तमा) तुझे अति शान्तिदायक (सन्तु) हों । इति नवमो वर्ग ॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान्वीर आनयत् ॥ १६ ॥

भा०—(यः वीरः) जो वीर वा विशेष विद्वान् (अस्मान्) हम सब को (आ अनयत्) आगे ले जाता है (सः) वह हे मित्र ! (नहि तव, नो मम अन्यस्य) न तेरे और न मेरे या किसी और सामान्य पुरुष के (शास्त्रे रण्यति) शासन मे प्रसन्न होता है । वह हम सब से ऊपर सर्वोपरि है ।

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः ।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः चित् घ) ज्ञानद्रष्टा विद्वान् भी (स्त्रियाः) 'स्त्री' अर्थात् सघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना के (तत् मनः) उस मन, या स्तम्भन बल को (अशास्यं अब्रवीत्) शासन न होने योग्य अति

प्रबल बतलाता है, (उतो) और उसके (रघुं) वेगयुक्त (क्रतुं) कर्म सामर्थ्य को भी (अशास्यं अह) अशास्य, अदम्य ही बतलाता है। पक्षान्तर में—उत्तम उपदेश और गुणों के ग्रहण करने वाली शिक्षिता स्त्री का चित्त विशेष शासन की अपेक्षा नहीं करता और उसका कर्मसामर्थ्य भी, 'रघु' अर्थात् कुशल होता है। स्त्यै ष्टै शब्दसंघातयोः। स्त्यायतेड्रट्। उ० १०४ | १६६ । स्त्री ॥

सप्ती चिद्धा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ १८ ॥

भा०—स्त्री और पुरुष (मिथुना) दोनों मिलकर (मदच्युता) आनन्द को प्राप्त करते हुए (सप्ती चित्) दो अश्वों के समान ही (रथम् वहतः) गृहस्थ रूप रथ या गृहस्थ के सुख को वहन करते और रथ में जिस प्रकार (धूः वृष्णः उत्तरा) धुरा बलवान् अश्व से अधिक ऊंची होती है उसी प्रकार (धूः) गृहस्थ या प्रजा को धारण करने में समर्थ स्त्री, (वृष्णः) बलवान्, वीर्यसेचक पुरुष की अपेक्षा (उत्तरा एव इत्) उत्कृष्ट गुणों से युक्त, अधिक आदर योग्य ही होती है। माता का मान पिता से अधिक है।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ १९ ॥ १० ॥

[३४]

नीपातिथिः काण्वः । १६—१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, १०, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ६, ७, ९ अनुष्टुप् । ५, ११, १४ विराडनुष्टुप् । १६, १८ निचृद्गायत्री । १७ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (दिवा-वसो) दिन को आकाश मे रहने वाले सूर्य के समान (दिवावसो) ज्ञान प्रकाश से अपने अधीन शिष्यो को बसाकर उनको ज्ञान-मय वस्त्र से आच्छादित करने हारे विद्वन् ! तू (अमुष्य) उस (शासतः) सबका शासन करने वाले (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु के (दिवं) ज्ञान प्रकाश को (यय) प्राप्त कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हरिभिः) विद्वानो द्वारा या हरणशील प्राणों, इन्द्रियादि अंगो सहित (कण्वस्य सुस्तुतिम् उप आ याहि) विद्योपदेष्टा के उत्तम उपदेश वाणी को प्राप्त कर, उसको समीप जाकर शिष्यवत् ग्रहण कर ।

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

भा०—हे विद्याभिलाषिन् ! (इह) इस आश्रम मे (सोमी) ज्ञानवान् शिष्यों का स्वामी (ग्रावा) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् (त्वा) तेरे प्रति (वदन्) व्यक्त वाणी से उपदेश करता हुआ (घोषेण) वेद द्वारा (दिवः) परम तेजोमय (शासतः) परम शासक और शास्ता (अमुष्य) उस प्रभु के (दिवं यच्छतु) प्रकाशमय तेज को प्रदान करे । हे (दिवावसो) विद्या की कामना से गुरु के अधीन बसने हारे विद्यार्थिन् ! तू भी उसके (दिवं यय) ज्ञान को प्राप्त कर ।

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥

भा०—(वृकः उरां न) भेड़िया जिस प्रकार भेड़ को बल से (धूनुते) कंपा देता है। उसी प्रकार (एषां) इन विद्वानों का (वृकः) विशेष ज्योति को प्रकाशित करने वाला (नेमिः) अनुशासन (अत्र) इस लोक मे (उराम्) अति विस्तृत वाणी को (विधूनुते) विशेष रूप से प्रदान करता है। (दिवः अमुष्य शासतः) अनुशासन करने वाले उस तेजस्वी ज्ञानी पुरुष के (दिवं) ज्ञानप्रकाश को हे विद्यार्थिन्! तू (यय) प्राप्त कर।

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! गुरो! (कण्वाः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (इह) इस आश्रम मे (वाज-सातये) ज्ञान प्राप्त करने और (अवसे) रक्षा के लिये (त्वा आ हवन्ते) तुझे आदरपूर्वक प्रार्थना करते है। (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(वृष्णे पूर्व-पाय्यम्) बलवान् पुरुष को जिस प्रकार पूर्ण ही पालन करने का उचित आदर-भेंट दिया जाता है उसी प्रकार हे विद्वन्! (ते वृष्णे) बरसते मेघवत् निष्पक्षपात होकर प्रचुर ज्ञान देने वाले तुझे मैं (सुतानां) अपने पुत्रों का (पूर्व पाय्य) पूर्ण पालन वा पूर्ण आयु का पालन रक्षण का भार (दधामि) प्रदान करता हूं। (दिवावसो) सूर्यवत् तेजस्विन्! वा विद्यार्थिन्! तू (शासतः) उस शास्ता के ज्ञान को प्राप्त कर। वा हे विद्वन्! तू उस परम प्रभु का ज्ञान विद्यार्थी को प्राप्त करा।

इत्येकादशो वर्गः ॥

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे वीर! तू (स्मत्-पुरन्धिः) सर्वोत्तम बहुत से ज्ञानों को धारण करने और बहुतो का भरण पोषण करने मे समर्थ उत्तम शासक, गृहणीवत् उत्तम प्रबन्धक और (विश्वतः-धीः) सब तरफ जाने वाली बुद्धि, वा सर्वगामी कर्मसामर्थ्य से सम्पन्न होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा और हमें ज्ञान प्रदान करने के लिये (नः आगहि) हमे प्राप्त हो। हे (दिवावसो) ज्ञान, प्रकाश और उत्तम व्यवहार शुभ कामना से रहने वाले तू (शासतः अमुष्य) शासन और विद्योपदेश करने वाले उस (दिवः) परम ज्ञानी और प्रकाश के (दिवं) ज्ञानप्रकाश और उत्तम कामना को (यय) प्राप्त कर।

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (महे-मते) महामते! पूजनीय ज्ञानवन्! हे (सहस्रोते) बलवान् रक्षा सामर्थ्य वा सहस्रो रक्षणों से युक्त! हे (शतामघ) सैकड़ो उत्तम धनों के स्वामिन्! तू (नः आ याहि) हमे प्राप्त हो। और हे (दिवावसो) ज्ञान दीप्ति से सबको आच्छादित करने वाले! विद्वन्! वा ज्ञान कामना से विद्वान् के अधीन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने हारे ब्रह्मचारिन्! तू (अमुष्य दिवं शासतः) उस ज्ञान के अनुशासन करने वाले (दिवः) ज्ञान-प्रकाशक गुरु के समीप (यय) प्राप्त हो।

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

भा०—(दिवावसो) ज्ञान की कामना करने हारे ब्रह्मचारिन्! (देवत्रा ईड्यः) विद्वानों के बीच स्तुति करने योग्य पूज्य, (मनुः) ज्ञानवान् (हितः) हितकारी (होता) ज्ञानादि के देने मे समर्थ, कुशल

पुरुष (त्वा आवसत्) तुझे धारण करे और उत्तम उपदेश कहे। और भी (अमुष्य दिवं शासतः) आकाश और भूमि के शासक, (दिवः सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (यय) प्राप्त करा।

आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥

भा०—(श्येनं पक्षा इव) जिस प्रकार बाज नामक पक्षी को दोनों पांख बल पूर्वक वहन करते हैं और जिस प्रकार (श्येन) श्येन व्यूह से गमन करने वाले वीर योद्धा को (पक्षा इव) आजू बाजू के दोनों सेना दल (आ वक्षतः) सब तरफ से धारण करते हैं उसी प्रकार (त्वा श्येनं) तुझ उत्तम आचार-चरित्र से सम्पन्न पुरुष को (मद-च्युता) उत्तम आनन्द देने वाले (हरी) स्त्री और पुरुष (पक्षा इव वक्षतः) ग्रहण, करने और अपनाने वाले बन्धु जनों के तुल्य (आवक्षतः) आदर पूर्वक आगे ले जावें और (आवक्षतः) उत्तम वचनोपदेश किया करें। (दिवोः अमुष्य० पूर्ववत्)

आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे (अर्य) स्वामिन्! तू (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के पालन करने के लिये (आयाहि) आ, और (स्वाहा) उत्तम वाणी, और उत्तम दान से तू (सोमस्य परि आयाहि) सोम, ऐश्वर्य, शासन, राष्ट्र, अन्न और जीवन गण के रक्षार्थ आ। (२) हे विद्वन् तू (सोमस्य) शिष्यगण के रक्षार्थ आ। (३) हे (अर्य) इन्द्रियों के स्वामिन्! (सोमस्य) वीर्य के रक्षार्थ उत्तम वाणी और क्रिया साधन से आ, यत्न कर। और (अमुष्य दिवं शासतः दिवं यय) उस ज्ञान के उपदेष्टा गुरु के वचनों को प्राप्त कर। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

भा०—हे (दिवावसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु ब्रह्मचर्य वास करने रे ! तू (नः) हम विद्वानों के (उप-श्रुति) समीप आकर ज्ञान श्रवण रने के निमित्त (आ याहि) प्राप्त हो और (उक्थेषु) वेद वचनों और पदेशों के निमित्त (इह) इस आश्रम में (नः रणय) हमें उपदेश र। हे (दिवा-वसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु उसके अधीन वास करने वाले ! ाण्य ! तू (अमुष्य दिवं शासतः दिवः) उस ज्ञान के अनुशासक जस्वी गुरु के ज्ञानों को (यय) प्राप्त कर।

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (सम्भृताश्वः) अश्वोंवत् विषयों को उपभोग करने वाले इन्द्रिय गण को अच्छी प्रकार अपने वश करके (संभृतैः) उत्तम रूप से पुष्ट और (सरूपैः) समान रूप कान्ति से युक्त अंगों वा सहयोगियों सहित (नः सु गहि) हमें सुख से प्राप्त कर। (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पर्वतेभ्यः) पर्वतों या मेघों से जलों के समान और (समुद्रस्य) समुद्र के (वि स्तपः) ताप रहित शीतल स्थान से मेघमाला या पवन के समान (आ याहि) हमें प्राप्त हो। (दिव. अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्)

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दहि।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

भा०—हे (शूर) वीर ! तू (सहस्रा) बलवान् वा सहस्रों (गव्यानि अश्व्या) गौओं और अश्वों की (न. आदर्दहि) हमारे लिये वृद्धि

कर। वा हमारे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राणों के (सहस्रा) अनेक ज्ञानों बलों को बढ़ा (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! शूर ! तू (नः) हमे (सहस्रशः अयुतानि शतानि च) सैकड़ो, हज़ारो और लाखो की संख्या मे (आ भर) पुष्ट कर, वा हमे अनेक ऐश्वर्य दे। (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्) इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः।
ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—हम लोग और (इन्द्रः च) हमारा ऐश्वर्यवान् राजा, नेता, (वसु-रोचिषः) धन, प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न होकर (ओजिष्ठं) अति पराक्रमशील, बलयुक्त, (अश्व्यं) अश्व बल से युक्त (पशुम्) पशु सम्पदा को (सहस्रं) सहस्र संख्या मे (आ दद्वहे) प्राप्त करें।

यऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः। भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७॥

भा०—(ये) जो (ऋज्राः) ऋजु, धर्म मार्ग से जाने वाले, (वात रंहसः) वायु के वेग से गमन करने वाले (अरुषासः) अति कान्तियुक्त, वा रोषरहित, अति शान्त, (रघुस्यदः) वेगवान् रथ से जाने वाले, वीर पुरुष (सूर्याः इव) सूर्यो के समान (भ्राजन्ते) चमकते है।

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु।
तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥ १३ ॥

कर (वनस्य मध्ये) जल के बीच कमलवत्, तेजो के बीच सूर्यवत् और ऐश्वर्यों के बीच मे (आ तिष्ठम्) विराजूं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३५]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—५, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ७—६, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, १०—१२, १४, १५, १७ भुरिक् पंक्तिः । २०, २१, २४ पंक्तिः । १६, २२ निचृत् पंक्तिः । २३ पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ चतुर्विंशत्यृच सूक्तम् ॥

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनो (अग्निना) अग्नि (इन्द्रेण) विद्युत्, (वरुणेन) जल, (विष्णुना) व्यापक, एवं विविध पदार्थों के शोधक, सूर्य (आदित्यैः) सूर्य की किरणों और (रुद्रैः वसुभिः) रोग-नाशक और जीव के बसाने योग्य साधनो से और (उषसा सूर्येण) उषा, प्रभात की दीप्ति और सूर्य के समान (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होकर (सोमं पिबतम्) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य का पालन, उत्पन्न जगत् और पुत्र राष्ट्रादि का पालन करो तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि का उपभोग करो। इसी प्रकार वे दोनों (सचा-भुवा) सदा साथ, संगत, एवं समवाय से परस्पर सहयोगी रहकर (अग्निना) अग्रणी नायक, तेजस्वी विद्वान् (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, (वरुणेन) श्रेष्ठ, (विष्णुना) व्यापक बलशाली और (आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः) सूर्य की किरणो, प्राणों और प्रजाजनों आदि से मिलकर ऐश्वर्यादि का उपभोग और पालन करो ।

विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(उषसा सूर्येण च) सूर्य की प्रातःकालिक उषा, और 'सूर्य' के समान (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् उत्तम सहयोगी जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों (वाजिना सचाभुवा) बल, ज्ञान, ऐश्वर्यादि के स्वामी और एक साथ संगत रहते हुए, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त वाणियों, कर्मों और ज्ञानों से और (भुवनेन) उत्पन्न संसार और (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी और (अद्रिभिः) मेघों से उत्पन्न (सोमं) ऐश्वर्य, अन्नादि का (पिबतम्) उपभोग करो।

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सचा-भुवा) सदा एक साथ (स-जोषसा) प्रेमपूर्वक रहते हुए (उषसा सूर्येण च) उषा, सूर्य के सदृश सुशोभित रहकर (त्रिभिः एकादशैः) तीन ग्यारह, अर्थात् ३३ (विश्वैः देवैः) समस्त विद्वानों (अद्भिः) जल-वत् शान्तिदायक आप्त जनों, (मरुद्भिः) वातों के समान बलवान्, (भृगुभि) दुष्टों के नाशकारी, तेजस्वी पुरुषों द्वारा (सोमं पिबतम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यज्ञं) यज्ञ, आदर-सत्कार, परस्पर सत्संग और दान धर्म का (जुषेथाम्) प्रेम-पूर्वक सेवन करो। और (मे हवस्य) मेरे उत्तम स्तुतियुक्त आह्वान व देने योग्य उपदेश का (बोधतम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो। आप दोनों (देवौ) दानशील और उत्तम कामनायुक्त होकर (इह) इस आश्रम में (विश्वा सवना अव गच्छतम्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करो। आप दोनों

(उपसा सूर्येण च सजोपसा) उपा और सूर्य के समान प्रीति युक्त होकर (नः) हमारे लिये (इपं आ वोढम्) उत्तम अन्न प्राप्त कराओ ।

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—(युवशा इव) जिस प्रकार उत्तम युवा युवति दोनो (स-जोपसा) समान प्रीतियुक्त होकर (कन्यनां स्तोमं जुषतः) कन्याओ वा गृह में विद्यमान मित्रो के स्तुति वचनो के पात्र होते है उसी प्रकार हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुपो ! आप दोनो भी (उपसा सूर्येण च) कामना युक्त स्त्री से पुरुप और सूर्यवत् तेजस्वी प्रजोत्पादन समर्थ पुरुष से स्त्री (स-जोपसा) समान प्रीतियुक्त होकर (देवौ) उत्तम व्यवहार, एवं कामनावान् दानशील होकर (इह) इस संसार से (विश्वा सवना) सब सवन, यज्ञ, प्रजाएं तथा ऐश्वर्यो को (अव गच्छतम्) प्राप्त करें । (च) और (नः) हमे (इपं वोढम्) हमारी इच्छाएं प्राप्त करावें । अथवा—(नः) हमारे बीच ऐसे पूर्वोक्त स्त्री पुरुप ही (इषं आवोढम्) उत्तम कामना को रखकर परस्पर विवाह करें ।

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) वलवान्, ऐश्वर्य भोगने और इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुपो ! आप लोग (गिरः जुषेथाम्) विद्वान् उप-देष्टा पुरुपों और वेद वाणियों का प्रेमपूर्वक सेवन करो । (देवौ) दान-शील और कामना युक्त वा व्यवहारज्ञ होकर (अध्वरं जुपेथाम्) यज्ञ और अहिंसाव्रत का प्रेमपूर्वक सेवन करो (इह विश्वा सवना अव गच्छ-तम्) यहां जगत में समस्त ऐश्वर्यों, अधिकारों, ज्ञानादि को प्राप्त करो । (स-जोपसा उपसा) प्रीतियुक्त कान्तिमती प्रभात वेला वा दाहक शक्ति और (स-जोपसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त सूर्यवत् परस्पर के साथ मिलकर

भा०—(उषसा सूर्येण च) सूर्य की प्रातःकालिक उषा, और 'सूर्य' के समान (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् उत्तम सहयोगी जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों (वाजिना सचाभुवा) बल, ज्ञान, ऐश्वर्यादि के स्वामी और एक साथ संगत रहते हुए, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त वाणियों, कर्मों और ज्ञानो से और (भुवनेन) उत्पन्न संसार और (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी और (अद्रिभिः) मेघों से उत्पन्न (सोमं) ऐश्वर्य, अन्नादि का (पिबतम्) उपभोग करो।

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (सचा-भुवा) सदा एक साथ (स-जोषसा) प्रेमपूर्वक रहते हुए (उषसा सूर्येण च) उषा, सूर्य के सदृश सुशोभित रहकर (त्रीभिः एकादशैः) तीन ग्यारह, अर्थात् ३३ (विश्वैः देवैः) समस्त विद्वानो (अद्भिः) जलवत् शान्तिदायक आप्त जनों, (मरुद्भिः) वातों के समान बलवान् , (भृगुभिः) दुष्टों के नाशकारी, तेजस्वी पुरुषों द्वारा (सोमं पिबतम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (यज्ञं) यज्ञ, आदर-सत्कार, परस्पर सत्संग और दान धर्म का (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक सेवन करो। और (मे हवस्य) मेरे उत्तम स्तुतियुक्त आदान या देने योग्य उपदेश का (बोधतम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो। आप दोनों (देवौ) दानशील और उत्तम कामनायुक्त होकर (इह) इस जगत् में (विश्वा सवना अव गच्छतम्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करो। आप दोनों

(उषसा सूर्येण च सजोषसा) उषा और सूर्य के समान प्रीति युक्त होकर (नः) हमारे लिये (इषं आ वोढम्) उत्तम अन्न प्राप्त कराओ ।

स्तोमं॑ जुषेथां युव॒शेव॑ क॒न्यनां॒ विश्वे॒ह दे॑वौ॒ सव॒नाव॑ गच्छतम् ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चेषं॑ नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—(युवशा इव) जिस प्रकार उत्तम युवा युवति दोनों (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (कन्यनां स्तोमं जुषतः) कन्याओं वा गृह में विद्यमान मित्रो के स्तुति वचनों के पात्र होते है उसी प्रकार हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो भी (उषसा सूर्येण च) कामना युक्त स्त्री से पुरुष और सूर्यवत् तेजस्वी प्रजोत्पादन समर्थ पुरुष से स्त्री (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (देवौ) उत्तम व्यवहार, एवं कामनावान् दानशील होकर (इह) इस संसार से (विश्वा सवना) सब सवन, यज्ञ, प्रजाएं तथा ऐश्वर्यो को (अव गच्छतम्) प्राप्त करें । (च) और (नः) हमे (इषं वोढम्) हमारी इच्छाएं प्राप्त करावें । अथवा—(नः) हमारे बीच ऐसे पूर्वोक्त स्त्री पुरुष ही (इषं आवोढम्) उत्तम कामना को रखकर परस्पर विवाह करें ।

गिरो॑ जुषेथामध्व॒रं जु॑षेथां॒ विश्वे॒ह दे॑वौ॒ सव॒नाव॑ गच्छतम् ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चेषं॑ नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) बलवान्, ऐश्वर्य भोगने और इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप लोग (गिरः जुषेथाम्) विद्वान् उप-देष्टा पुरुषों और वेद वाणियों का प्रेमपूर्वक सेवन करो । (देवौ) दान-शील और कामना युक्त वा व्यवहारज्ञ होकर (अध्वरं जुषेथाम्) यज्ञ और अहिंसाव्रत का प्रेमपूर्वक सेवन करो (इह विश्वा सवना अव गच्छ-तम्) यहां जगत में समस्त ऐश्वर्यों, अधिकारों, ज्ञानादि को प्राप्त करो । (स-जोषसा उषसा) प्रीतियुक्त कान्तिमती प्रभात वेला वा दाहक शक्ति और (स-जोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त सूर्यवत् परस्पर के साथ मिलकर

प्रीतियुक्त होकर (इषं वोढम्) अन्न, वृष्टि आदि के तुल्य अपनी उत्तम कामना को धारण करो। परस्पर विवाह करो। इति चतुर्दशो वर्गः॥

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार (हारिद्रवा इव वना) दो हरिद्रव नामक जल के पक्षी जलों में (पतथः) सुखपूर्वक गति करते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों भी (वना उप पतथः) सेवने योग्य ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर आगे बढ़ो। उनको प्राप्त कर ऐश्वर्यवान् होवो। (महिषा इव सोमं) जिस प्रकार दो महिष, विशालकाय अरणा भैंसा वा भैंसी, (वना इव उपपतथः) वनों में विचरते, नाना भोग्य सुखों को समीप रहकर प्राप्त करते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी (महिषा) बड़े दानशील होकर (उप पतथः) नाना भोग्य पदार्थों को प्राप्त करो, (सुतं सोमं अव गच्छथः) उत्पन्न सौम्य, पुत्र वा शिष्य को प्राप्त करो। (सजोषसा, उषसा, सजोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त, प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त स्त्री से पुरुष और प्रीतियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से स्त्री समान प्रीतियुक्त होकर दोनों (त्रिः वर्त्तिः) तीन प्रकार के मार्ग को गमन करें। तीन मार्ग अर्थात् तीन आश्रमों का पालन करें।

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना॥ ८॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (हंसौ इव) दो राजहंसों के समान और (अध्वगौ इव) दो पथिकों के समान (पतथः) गमन करो। (शेष पूर्ववत्—)

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना॥ ९॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो! आप दोनों (हव्यदातये)

ग्राह्य पदार्थ वा उत्तम खाद्य पदार्थ के देने वा यज्ञ के लिये (श्येनौ इव) दो श्येनों के समान वेग से उत्तम विमान रथादि से जाते हुए वा उत्तम आचारवान् होकर (सुतं सोमं अव गच्छथः) यज्ञ मे उत्पादित सोम ओषधि रस, तद्वत् आनन्द को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्।

पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे अश्वादि के स्वामी नायक वा सैन्य जनो ! आप दोनों (पिबतं च तृष्णुतं च) पान करो, ऐश्वर्य का भोग करो और तृप्त भी होवो, (आ गच्छतं च) आओ और (प्रजां च आ धत्तम्) उत्तम सन्तान धारण करो, और (द्रविणं च आ धत्तम्) धन भी प्राप्त करो, और (नः ऊर्जं च धत्तम्) परस्पर प्रीतियुक्त होकर हमारे बीच बल और अन्न धारण करो। शेष पूर्ववत्।

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

भा०—(जयतं च) दोनों आप जय प्राप्त करो, (प्र स्तुतं च) उत्तम रीति से स्तुति करो और (प्र अवतं च) अच्छी प्रकार रक्षा भी करो (प्रजां च धत्तं, द्रविणं च धत्तम्) प्रजा और धन को धारण करो। (शेष पूर्ववत्)

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—(शत्रून् हतं च) और शत्रुओं को मारो। (मित्रिणः यततं च) स्नेहयुक्त जनों को यत्नपूर्वक प्राप्त करो, (शेष पूर्ववत्) इति पञ्चदशो वर्गः॥

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा सैन्य एवं नायक जनो ! आप दोनों (मित्रावरुण-वन्ता) स्नेहवान् एवं श्रेष्ठ पुरुषों, ब्राह्मण और क्षत्रिय राजाओं से युक्त, (धर्म-वन्ता) धर्मवान् और (मरुत्वन्ता) उत्तम प्राणों, नाना मनुष्यों और बलवान् पुरुषो के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् , उपदेष्टा पुरुष के उपदेश को प्राप्त करो । (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा सूर्यवत् समान परस्पर प्रीतियुक्त हो (आदित्यैः यातम्) किरणोंवत् तेजस्वी पुरुषों के साथ वा बारहो महीने (यातम्) जीवन मार्ग पर गमन करो ।

अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—आप दोनो (अंगिरस्वन्ता) उत्तम विद्वानो और देह मे बलवान् प्राणों से युक्त (उत) और (विष्णुवन्ता) व्यापक सामर्थ्य से युक्त (मरुत्वन्ता) उत्तम पुरुषों वा प्राणों से युक्त होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् उपदेष्टा के यज्ञ, वा उपदेश को रणवत् प्राप्त करो । शेष पूर्ववत् ।

ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥

भा०—आप दोनों (ऋभु-मन्ता) सत्य ज्ञान से चमकने वाले पुरुषों से युक्त, (वृषणा) बलवान् , सुखों के दाता, (वाजयन्ता) ऐश्वर्य ज्ञानवान् (मरुत्वन्ता) प्राणों और पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) उपदेष्टा, विद्वान् के आह्वान वा उपदेश को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत् । इसी प्रकार सैन्य एवं नायक भी शिल्पियों से युक्त, बलवान्, ऐश्वर्यवान् और मरने मारने वाले वीर भटों से युक्त होकर (जरितु) राष्ट्र को जीर्ण करने वाले शत्रु के (हवम्) आह्वान, रण ललकार को प्राप्त करें (शेष पूर्ववत्)

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥

भा०—आप दोनो (ब्रह्म जिन्वतम्) ज्ञान, वेद और धन की वृद्धि करो, (धियः जिन्वतम्) बुद्धियो और सत्कर्मो की वृद्धि करो, (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों, विघ्न करने वालो को (हतम्) मारो। और (अमीवाः) रोगो को (सेधतम्) दूर करो। (सुन्वतः सोमम्) यज्ञ करने, सोम सवन करने वाले का सोम पान करे वा ऐश्वर्य उत्पादक प्रजा के (सोमं) ऐश्वर्य का उपभोग और रक्षण करें।

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—(क्षत्रं जिन्वतम्) आप दोनों धन और बल-वीर्य की वृद्धि करो। (नॄन् जिन्वतम्) नायक पुरुषो को बढावो। शेष पूर्ववत्।

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १८ ॥१६॥

भा०—(धेनूः जिन्वतम्) गौओं की वृद्धि करो, उनको अन्न, घास जलादि से खूब तृप्त, प्रसन्न कर रक्खो, और (विशः जिन्वतम्) प्रजाओं को बढ़ाओ, उनको तृप्त रक्खो। शेष पूर्ववत्। इति षोडशो वर्गः ॥

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथीवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अत्रेः इव) तीनों दुःखों, बन्धनो, आश्रमों से रहित संन्यासी पुरुष के समान ही (सुन्वतः) शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) रक्त श्याम अश्वों के स्वामी, राजा वा जितेन्द्रिय, विद्वान् की (पूर्व्य-स्तुति) श्रेष्ठ स्तुति या उपदेश को (मद-च्युता) तृप्त या हर्षित होकर (शृणुतं) श्रवण करो। (सूर्येण उषसा स-जोषसा) सूर्य और उषावत् परस्पर प्रीतियुक्त होकर

(तिरः-अह्नयम्) दिनावसान और दिन प्राप्ति के प्रातःसायं कृत्यों का भी पालन किया करो।

तिरः सतः इति प्राप्तस्य । निरु० ॥

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्नयम् ॥ २० ॥

भा०—आप दोनों शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) उत्तम अश्वों के स्वामी राजा वा जितेन्द्रिय विद्वान् की (सु-स्तुतीः) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों को (सर्गान् इव उप सृजतम्) आभूषणों के समान धारण करो वा जलों के समान पान करो वा उत्तम पदार्थों के समान उत्तम उपभोग करो। शेष पूर्ववत्।

रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्नयम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (मद-च्युता) हर्षप्रद होकर (सुन्वतः) सवन, ऐश्वर्य वा शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान् उत्तम अश्वों वाले पुरुषों और (अध्वरान्) यज्ञों और न विनष्ट होने वाले, प्रबल जनों को (रश्मीन् इव) रश्मियों के समान (उप यच्छतम्) नियन्त्रित करो। शेष पूर्ववत्।

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के ऊपर वश करने वाले रथी सारथीवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप लोग (रथं) रथ के तुल्य रमण या सुख के साधन अपने देह और आत्मा को (अर्वाक्) अपने समक्ष (नियच्छत) नियम में रक्खो। और (सोम्यं मधु) ओषधिरस से मिश्रित अन्न, या मधु के समान आत्मा या परमेश्वर के मधुर सुख को (पिबतम्) पान

करो। (अहं अवस्युः वां हुवे) मै रक्षार्थी आप दोनों को बुलाता हूं। आप दोनो (आयातम्) आवे (गतम्) जावे। आप दोनो (दाशुषे) दानशील पुरुष को नाना (रत्नानि) उत्तम रत्नादि, सुखप्रद पदार्थ (धत्तम्) प्रदान करें।

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥२३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नरा) हे उत्तम नायक और नेय जनो ! (अध्वरे) यज्ञ मे (नमो-वाके प्रस्थिते) नमःयुक्त वचन प्रारम्भ होने पर (विवक्षणस्य) विशेष रूप से वहन करने योग्य, विशेष वचन योग्य पद या ज्ञान के (पीतये) रक्षा और पान करने के लिये आप लोग (आयातम्) आवे और (गतम्) जावे। मै (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान-तृप्ति चाहता हुआ (वां हुवे) आप दोनो को बुलाता, प्रार्थना करता हू, आप (दाशुषे रत्नानि धत्तम्) दानशील, आत्मसमर्पक पुरुष को उत्तम २ पदार्थ प्रदान करे।

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥२४॥१७

भा०—हे (देवा) उत्तम विद्वान् दानशील पुरुषो ! आप दोनों, (स्वाहा-कृतस्य) उत्तम रीति से आहुति किये वा उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसित (सुतस्य) कूट, पीस, छान कर तैयार किये (अन्धसः) अन्न और जीवनप्रद ओषधि पदार्थ से (तृम्पतम्) क्षुधा की तृप्ति करो। शेष पूर्ववत्। इति सप्तदशो वर्गः॥

[३६]

श्यावाश्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्द —१, ५, ६ शक्वरी। २, ४ निचृच्छक्वरी। ३ विराट् शक्वरी। ७ विराड् जगती॥ सप्तर्च सूक्तम्॥

अ॒वि॒तासि॑ सु॒न्व॒तो वृ॒क्तब॑र्हिषः॒ पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सुजि-
न्मरुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञानों और अनेक कर्म करने हारे! राजन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! प्रभो! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले, यज्ञशील, (वृक्त-बर्हिषः) आसनार्थ कुशादि बिछाकर बैठे हुए विद्वान् जन का (अविता असि) रक्षा करने वाला है। तू (मदाय) आनन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) सोम, उत्पन्न जगत्, पुत्रवत् प्रजा शिष्यादि का पालन कर। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक! (इन्द्र) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषो के नाशक! तू (मरुत्वान्) बलवान् पुरुषों का स्वामी होकर (अप्सु-जित्) प्राप्त प्रजाओ मे सर्वातिशायी होकर (उरु ज्रयः) बड़े भारी वेग और बल को तथा (विश्वाः पृतनाः) समस्त सेनाओं को (संसेहानः) अच्छी प्रकार पराजित करता हुआ तू उस (सोम पिब) ऐश्वर्य का भोग कर (यं भागं) जिस सेवनयोग्य अंश को (ते) तेरे लिये (अधारयन्) निर्धारित कर दे।

प्राव॑ स्तो॒तारं॑ मघव॒न्नव॒ त्वां पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सु-
जिन्म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतारं प्र अव) तू स्तुति-कर्त्ता, विद्वान् उपदेष्टा की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (त्वां प्र अव) तू तृप्त हो। (पिबा सोमं० इत्यादि पूर्ववत्) त्वां। त्वं। छान्दसो दीर्घः। अथवा सोरमादेशः। विभक्तिव्यत्ययः।

ऊ॒र्जा दे॒वाँ अव॒स्योज॑सा॒ त्वां पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सुजि-
न्मरुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

भा०—(त्वां = त्वं) तू (देवान्) सुख ऐश्वर्यादि के चाहने वाले विजिगीषु, एवं विद्वान् जनों को (ऊर्जा ओजसा) अन्न और बल पराक्रम से (अवसि) रक्षा करने मे समर्थ है, अतः तू (हे शतक्रतो मदाय सोमं पिब०) इत्यादि पूर्ववत् ।

ज॒नि॒ता दि॒वो ज॑नि॒ता पृ॑थि॒व्याः पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो ।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सु॒जि-
न्म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने और सैकड़ों ज्ञानों के जानने हारे ! सहस्रो यज्ञ करने हारे ! प्रभो ! तू (दिवः जनिता) सूर्य, प्रकाश, महान् आकाश का (जनिता) उत्पादक और (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का भी उत्पादक है । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनों के पालक, दुष्टो के नाशक ! तू (मरुत्वान्) समस्त जीवों का स्वामी और (अप्सु-जित्) प्राणों, प्रकृति के परमाणुओं और समस्त लोकों मे व्यापक रहकर सबको वश करने वाला, सब से महान्, (उरुज्रयः) महान् वेग, बलस्वरूप होकर उसी (यं) जिस (ते) तेरे दिये (भागम्) सेवनीय अन्न को वे (अधारयन्) धारण करते है उसीसे तू उन (विश्वाः पृतनाः संसेहानः) समस्त जीव प्रजाओं को अच्छी प्रकार तृप्त करता हुआ (मदाय) परमानन्द लाभ कराने के लिये (सोमं पिब) समस्त जगत् का पालन करता है । सेहानः—सह मर्षणे, सह चक्यर्थे । चक तृप्तौ प्रतिघाते च । भ्वादिः ।

ज॒नि॒ताश्वा॑नां जनि॒ता गवा॑मसि॒ पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो ।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सु॒जि-
न्म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र सत्पते शतक्रतो) ऐश्वर्यवन् ! सज्जनों के पालक सैकड़ों यज्ञों कर्मों के स्वामिन् ! तू (अश्वानां जनिता, गवां जनिता असि) अश्वों

और गौओं, सूर्यों और भूमियों का भोक्ता आत्मा और इन्द्रियों का भी उत्पन्न करने वाला है। शेष पूर्ववत्।

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघो के स्वामिन् सूर्यवत् तेजस्विन्! वा अखण्ड शक्तियों के स्वामिन्! तू (अत्रीणां) तीनों दुःखो से रहित, जनो के (स्तोमं) स्तुति वचन को (महः कृधि) पूजित, पूर्ण कर। हे राजन् शक्तिशालिन्! तू (अत्रीणां) इस राष्ट्र मे विद्यमान प्रजाओ की प्रार्थना का आदर कर। शेष पूर्ववत्।

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः। प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन्॥७॥१८

भा०—(कर्माणि कृण्वतः) कर्म करनेवाले (अत्रेः) 'अत्रि' अर्थात् त्रिविध दुःखों वा बन्धनों से रहित शुद्धात्मा जन की स्तुति को (यथा अशृणोः) जिस प्रकार श्रवण करता तथा उसी प्रकार (सुन्वतः) पूजा करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान्, दृढ़, जितेन्द्रिय पुरुष के भी (स्तोमम् अशृणोः) स्तुति वचन को श्रवण करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ब्रह्माणि वर्धयन्) अन्नों, ज्ञानों और धनों की वृद्धि करता हुआ (नृ-साह्ये) मनुष्यों और नायकों को वश करने मे (त्वम् एकः इत्) तू अकेला ही (त्रसदस्युम्) दस्युओं को भय देने वाले सैन्य बल को वा दस्यु से भयभीत प्रजाजन को वा (त्रसद्-अस्युम्) भयभीत शत्रु को उखाड़ने वाले सैन्य को (प्र आविथ) उत्तम रीति से रक्षा कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३७]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडतिजगती। २—६ निचृज्जगती। ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभि-ऊतिभिः। माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (वृत्र-तूर्येषु ब्रह्म प्र अवति) मेघ के आघातो या जलों के वेगवत् प्रवाहों पर अन्नो की रक्षा करता है और (सुन्वतः) उत्पन्न जीवों की रक्षा करता है वह (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिबति) मध्याह्न मे तीव्र ताप से जल का पान करता वा जगत् की रक्षा करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) शत्रुओं को नाश करने हारे ! तू (वृत्र-तूर्येषु) शत्रुओं और विघ्नो को नाश करने के कार्यो के निमित्त (इदं ब्रह्म प्र आविथ) इस महान् ऐश्वर्य की खूब अच्छी प्रकार रक्षा कर। और (सुन्वतः प्र आविथ) सवन अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले वा तेरा अभिषेक करने वाले प्रजागण की भी उन अवसरों पर (विश्वाभिः ऊतिभिः अविथ) समस्त रक्षाकारिणी शक्तियो, सेनाओं द्वारा रक्षा किया कर । हे (अनेद्य) अनिन्दनीय ! हे प्रशस्त स्तुति योग्य ! हे (वज्रिवः) शक्ति-शालिन् ! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक ! तू (मध्यन्दिनस्य) दिन के मध्य काल में विद्यमान सूर्य के तेज के समान (सवनस्य) बल-युक्त शासन के (सोमस्य) ऐश्वर्य राष्ट्र आदि का हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! (पिब) उपभोग और पालन कर ।

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥२॥

भा०—हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिशालिन् ! मतिमन् ! ऐश्वर्य-शालिन् ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त शक्तियों से (द्रुहः पृतनाः) द्रोह करने वाले मनुष्यों को (अभि सेहानः) पराजित करके अथवा (द्रुहः अभि सेहानः) द्रोहियों को पराजित और (पृतनाः अभि सेहानः) सामान्य मनुष्य प्रजाओं को अन्नादि से तृप्त करता हुआ, हे (उग्र) बल-

वन् ! हे (अनेद्य) अनिन्द्य ! प्रशंसनीय ! हे वज्रिवः शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) दुष्ट, विघ्नकर्त्ताओं के नाशक ! तू (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिब) मध्य दिन के सूर्यवत् शासन और ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर ।

एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥३॥

भा०—हे (शचीपते) सर्वशक्तिमन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवन, जगत् ब्रह्माण्ड के बीच (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों द्वारा (एकराट्) अद्वितीय प्रकाशमान होकर, एक छत्र सम्राट् के समान (राजसि) विराजता है, विश्व के राजा के समान शासन करता है । (माध्यन्दिनस्य०) इत्यादि पूर्ववत् ।

सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥४॥

भा०—हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक ! जिस प्रकार (सस्थावाना) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो बलवान् राष्ट्रों को जिस प्रकार मध्यम राजा जुदा २ कर थामे रहता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब शक्तियों से सम्पन्न होकर (सस्थावाना) समान बल से स्थिर सूर्य पृथिवी आदि लोकों को परस्पर के तुलित बल से (एकः त्वम्) अकेला ही (यवयसि) पृथक् २ थामे रहता है । शेष पूर्ववत् ।

क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥५॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तिशालिन् ! (त्वम्) तू (क्षेमस्य च ईशिषे) क्षेम अर्थात् प्रजाओं के रक्षा करने में समर्थ है और (प्रयुज-

च ईशिषे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने और उनको प्राप्त हुए नाना ऐश्वर्यों का भी स्वामी है। शेष पूर्ववत्।

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥६॥

भा०—हे (शचीपते) तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी समस्त रक्षक शक्तियो से धनैश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये ही (अवसि) रक्षा करता है।

श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ७।१९

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यथा कर्माणि कृण्वतः तथा) नाना कर्म करने वाले (अत्रेः) विविध वन्धनों से रहित या, इस संसार या राष्ट्र मे विद्यमान मनुष्यों के समान ही (रेभतः श्यावाश्वस्य शृणु) स्तुति और उपदेश करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के वचनों को भी श्रवण किया कर। अर्थात् राजा उद्योगी पुरुषों के समान विद्वान् जितेन्द्रियों की भी सुनकर उन पर ध्यान देवे। और (नृ-सह्ये) नायक पुरुषो द्वारा विजय करने योग्य संग्राम में (क्षत्राणि वर्धयन्) धनों और वलों की वृद्धि करता हुआ (त्वम् एकः इत्) तू एक, अद्वितीय ही सर्वोपरि, (त्रसदस्युम् प्र आविथः) दुष्टो को उखाड़ देने वाले वल की खूब रक्षा कर। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३८]

श्यावाश्व ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ९ गायत्री। ३, ५, ७, १० निचृद्गायत्री। ८ विराड् गायत्री॥ दशर्चं सूक्तम्॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥१॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्ने ! ज्ञानवन् ! तुम दोनों विद्युत् और अग्नि के समान (यज्ञस्य ऋत्विजा) यज्ञ को ऋतु २ में अनुष्ठान करने वाले (वाजेषु) बलों, धनों और ज्ञानो में (सस्नी) निष्णात, शुद्ध और अन्यो को भी पवित्र और निष्णात करने वाले और (कर्मसु) कर्मों में भी (सस्नी) शुद्ध, पवित्र आचारवान् (हि स्थः) होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ का ज्ञान करो, और अन्यो को उसका ज्ञान करावो।

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी), विद्युत् और अग्नि, वा सूर्य और अग्निवत् शत्रुनाशक राजन् ! और ज्ञानवन् विद्वन् ! आप दोनों (तोशासा) शत्रुओं और अज्ञानों, दुष्टाचरणो का नाश करते हुए (रथ-यावाना) रथ, स्वयं वेगवान् रमण योग्य, वा उत्तम यान से जाने वाले, (वृत्र-हणा) बढ़ते शत्रु को दण्ड देने वाले, (अपराजिता) कभी न हारने वाले होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस प्रजाजन को भली प्रकार जानो।

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ३

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! वा शत्रुहन् ! नेतः ! (वां) आप दोनों के लिये (नरः) उत्तम नायक जन (इदं मदिरं) इस तृप्तिकारक हर्षदायक (मधु) मधुर रस, जल, अन्न, ज्ञान और बल को (अद्रिभिः) मेघ, पर्वत और शस्त्रास्त्र बलों वा पाषाणादि से (अधुक्षन्) दोहें, प्राप्त करें। (तस्य बोधतम्) आप दोनों उस ज्ञान को भी भली प्रकार जानें। (अद्रिभिः मधु) मेघों से जल और अन्न, पर्वतों से, पाषाणों से निर्झर और ओषधिरस शस्त्रों से ऐश्वर्य और बल, तथा (अद्रिभिः) अखण्ड गुरुजनों से ज्ञान का दोहन किया जाता है।

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ४

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि के तुल्य (नरा) उत्तम नायक, स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (इष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सत्संग, दान का (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक सेवन करो. आप दोनो (सध-स्तुती) एक साथ स्तुति प्राप्त कर (सुतं सोमं) उत्पन्न पुत्र को, ऐश्वर्य को और ओषध्यादि रस को भी (जुषेथां) प्रेमपूर्वक प्राप्त करो । (आ गतम्) आप दोनों आदरपूर्वक आवो ।

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी वा वायु, अग्निवत् परस्पर के सहायक ! एक दूसरे से चमकने, बढ़ने वाले (नरा) नायको, वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आओ ! (इमा सवना) ये नाना धन, ऐश्वर्य (जुषेथां) प्रेम से प्राप्त करो, (येभिः हव्यानि) जिनों से नाना उत्तम खाद्य पदार्थ भी (ऊहथुः) प्राप्त कर सकते है । (२) इसी प्रकार विद्युत् और अग्नि दोनों को नाना प्रकार के (सवना) प्रेरक यन्त्रों में लगाकर उनसे 'हव्य' ग्राह्य पदार्थ प्राप्त कर सकते और लेने देने योग्य व्यापार योग्य पदार्थों को ढो लेजा सकते है ।

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ६।२०

भा०—हे (इन्द्राग्नी नरा) अग्निवत् नायक: जनो ! आप दोनों (आ गतं) आओ । (इमां) इस (गायत्र-वर्तनि) गायत्री छन्द में विद्यमान (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति वा उपदेश को (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो । अथवा—गायत्र वर्तनि, गायत्री वा इयं पृथिवी श० । ४ । ३ । ४ । ९॥ गायत्रोऽयं भूलोकः । तां० ७ । ३ । प्राणः ।९। कौ०८।५॥ अग्नि. । श० १ । ८ । २ । १३ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥७॥

भा०—हे (जेन्यावसू) विजय करने योग्य धनों को प्राप्त करने हारे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! आप दोनों (प्रातः-यावभिः)

प्रातःकाल वा जीवन के पूर्व भाग में ही प्राप्त होने वाले (देवेभिः) विद्वान् जनों से (सोम-पीतये) उत्तम ज्ञान ग्रहण करने और बलवीर्य की रक्षा करने के लिये आप (आ गतम्) आओ ।

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ८

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (सोम पीतये) उत्तम ज्ञान के दान करने और उत्तम वीर्य की रक्षा के लिये (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) शासन करने वाले, जितेन्द्रिय विद्वान् और (अत्रीणां) त्रिविध दुःखों से रहित, तीन आश्रमों से रहित संन्यासियों के (हवम्) उत्तम उपदेश को (शृणुतम्) श्रवण करो ।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ९

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मेधिरा) विद्वान् मतिमान्, मेधावी पुरुष (वाम्) आप दोनों को अपने पास (सोम-पीतये) ज्ञान ग्रहण और वीर्य पालन के लिये (आहुवन्त) बुलाते रहे । हे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! (एवा) उसी प्रकार मैं भी (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और पुत्र प्रजादि के उपभोग और पालन के लिये बुलाता हूं ।

आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे ।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(अहं) मैं (सरस्वतीवतोः) उत्तम वेदवाणी वाले (इन्द्राग्न्योः) ऐश्वर्य और तेज को धारण करने वाले ज्ञानी स्त्री पुरुषों के (अवः) ज्ञान और रक्षा की (वृणे) याचना करता हूं, (याभ्याम्) जिनके आदरार्थ (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र वा गायत्र साम द्वारा (ऋच्यते) स्तुति की जाती है । उसी प्रकार प्रशस्त ज्ञानमयी विद्या और उत्तम स्त्री 'सरस्वती' कहाती है । उनके स्वामी ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों के ज्ञान और रक्षा को चाहूं । (याभ्या) वे गायत्री का उपदेश करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३९]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ २ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६—८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । ९ निचृज्जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै । अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविरन्तश्चरति दूत्यं नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

भा०—मैं (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी प्रभु, विद्वान्, नेता की (अस्तोषि) स्तुति करता हूं, (यजध्यै) सत्संग करने और पूजा करने के लिये भी उसी (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानी की (ईडा) वाणी द्वारा स्तुति करूं। वह (अग्निः) अग्निवत् प्रकाशक (नः) हमारे (देवान्) किरणोंवत् दिव्य गुणों, काम्य पदार्थों वा विज्ञान के इच्छुक शिष्य जनों को (अनक्तु) प्रकट करे और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करे। वह (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (विदथे) यज्ञ मे अग्नि के तुल्य (विदथे) ज्ञान लाभ के कर्म मे (उभे हि अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के समान तेजस्वी होकर (उभे अन्तः चरति) राजा प्रजा मित्र वा शत्रु दोनों वर्गों के बीच विचरता है। (समे अन्यके) अन्य समस्त शत्रुगण आप से आप (नभन्ताम्) नाश को प्राप्त हो।

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषाम् । न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तेजस्विन् ! (एषां तनूषु) इनके शरीरों या आत्माओं मे (नव्यसा वचः) अति नवीन, स्तुति वचन से (शंस) उत्तम उपदेश (निधेहि) स्थापित कर, वे विद्वान् बनें। अथवा—(नव्यसा वचः तनूषु एषां शं नियुच्छ) अपने स्तुति वचन से हमारे शरीरों पर आने वाले इनके किये प्रहारों को दूर कर और (रराव्णां) दानशीलों

के बीच जो (अरातीः) अदानशील हैं उन (विश्वाः) सबको (अर्यः) स्वामी होकर तू निकाल, दण्डित कर। और (आसुरः) मूढ़ या सर्वत्र मारामारी करने वाले हिंसक (अरातीः) शत्रु लोग भी (इतः नि युच्छन्तु) इस राष्ट्र से दूर हो जावें। और (समे अन्यके) समस्त अन्य शत्रु दुष्ट जन (नभन्ताम्) नष्ट हों।

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि। स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (घृतं न आसनि जुह्वति) जिस प्रकार अग्नि के मुख अर्थात् ज्वाला में यज्ञकर्त्ता लोग घृत की आहुति देते हैं उसी प्रकार हे शिष्य वा विद्वन्! मैं शिष्य (तुभ्यं आसनि) तेरे हितार्थ तेरे मुख में (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानयुक्त वचनों को (जुह्वे) प्रदान करता हूं तू उनको मुख में धारण कर, (सः) वह तू (प्र चिकिद्धि) अच्छी प्रकार जान, (हि त्वं) क्योंकि तू (पूर्व्यः) पूर्ण ज्ञानी, उत्तम पद योग्य वा पूर्व ब्रह्मचर्यावस्था में विद्यमान (शिवः) कल्याणकारी, सौम्य, (विवस्वतः) विविध विद्यार्थी रूप वसुओं के स्वामी गुरु आचार्य का (दूतः) ज्ञानमय संदेश को दूर तक पहुंचाने में दूत के समान ही (असि) है। इस प्रकार ज्ञान धारण करते हुए के (समे अन्यके) समस्त अन्य तुच्छ विरोधी विघ्नकारक जन (नभन्ताम्) नष्ट हों। गुरु जिस प्रकार अपना वचन शिष्य में धारण कराता या आहुतिकर्त्ता घृत को अग्नि के मुख में देता है उसी प्रकार राजादि भी विद्वान् पुरुष के मुख में अपना सुविचारित वचन स्थापित कर अन्य प्रजा वा राजान्तर के प्रति संदेशार्थ भेजें।

तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति। ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे॥४॥

भा०—(यथा यथा कृपण्यति) जिस २ प्रकार कामना या अन्न चाह

चाहता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) गृहपति, तेजस्वी स्वामी जन वैसा २ ही बल वा अन्न उसे प्रदान करता है, उसी प्रकार शिष्य भी (यथा यथा कृपण्यति) जिस २ विज्ञान की याचना करता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) अग्नि उसी २ प्रकार का विज्ञान उसे धारण करावे इसी प्रकार प्रजाजन राजा वा नायक से जैसा (वयः) बल अन्नादि चाहे उसी २ प्रकार का वह धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः) गुरु के अधीन बसने वाले शिष्यों को बल, ज्ञान, अन्नादि का दान (विश्वस्यै देवहूत्यै) समस्त प्रकार को शुभ गुणो को प्राप्त कराने के लिये (शं च योः च) शान्ति देता, दुःख दूर करता और (मयः दधे) सुख प्रदान करता है। इसी प्रकार प्रजा जिस २ बल की याचना करे तेजस्वी राजा उसी २ को स्वयं और प्रजा में भी धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः विश्वस्यै देवहूत्यै) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों की यह बल की प्राप्ति समस्त विजयेच्छुक सैनिकों और विद्वानों को वेतन भोजनादि देने के लिये होती है और उसे राजा शान्ति, दुःखनाश और सुख स्थापित करता और (अन्यके समे) और सब शत्रु गण (नभन्तां) नष्ट होते हैं।

स चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा। स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे ॥५॥२२

भा०—(सः) वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् (सहीयसा) अत्यधिक सहन करने और प्रतिपक्ष रूप बाधक विघ्न को पराजित करने वाले (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत, ज्ञानप्रद कर्म से बलवान् होकर (चिकेत) ज्ञान प्राप्त करता वा जाना जाता है। (सः) वह (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं से यज्ञाग्नि के समान दान, भिक्षान्नों से (अभि-वृतः) पुष्ट होकर (शश्वतीनां होता) नित्य विद्याओं का ग्रहण करने वाला होकर (प्रतीव्यम् इनोति च) ज्ञेय तत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार नायक भी (सहीयसा) शत्रुपराजयकारी (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत कर्म से

(चिकेत) प्रसिद्ध हो। वह (दक्षिणाभिः) अपनी बलवती शक्तियों, सेनाओं से (अभि-वृतः) घिरा हुआ (शश्वतीनां होता) बहुत सी मौल प्रजाओं और सेनाओं को स्वीकार करने और उनको वेतन भोजनादि देने वाला होकर (प्रतीत्यं इनोति) आक्रमण करने योग्य शत्रु तक पहुंचता है और इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त छोटे मोटे शत्रुगण नाश को प्राप्त होते है। इति द्वाविंशो वर्गः॥

अ॒ग्निर्जा॒ता दे॒वाना॑म॒ग्निर्वे॑द॒ मर्ता॑नामपी॒च्य॑म्। अ॒ग्निः स द्र॑वि॒णो॒दा अ॒ग्निर्द्वारा॒ व्यू॑र्णुते॒ स्वा॑हुतो॒ नवी॑यसा॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ६

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि, या विद्युत्, वा जाठराग्नि, (नवीयसा) नये से नये अन्नादि द्वारा (सु-आहुतः) अच्छी प्रकार आहुति किया जाकर, उत्तम मन्त्र द्वारा गृहीत, या अन्नादि से तृप्त होकर (देवानां जाता वेद) देव अर्थात् प्रकाशक किरणो के स्वरूपो को प्राप्त करता वा जाठराग्नि अन्नाहुति प्राप्त कर देव अर्थात् इन्द्रियो के द्वारा ग्राह्य पदार्थों को ज्ञान प्राप्त कराता है और (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्यो को छुपे, गुप्त, अन्धकार से आवृत पदार्थ भी ज्ञात करादेता है, और जाठराग्नि, मनुष्यों के गुह्य बल और सुन्दर रूप को प्रकट कर देता है, उसी प्रकार (अग्नि) अग्रणी नायक (देवानां) विजिगीषु जनों के (जाता वेद) सब जन्मादि को जाने, (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्य प्रजाओं के गुह्य रहस्यों को भी जाने। (सः अग्नि. द्रविणोदाः) वह अग्रणी नायक ऐश्वर्य का देने वाला हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष द्वारा (व्यूर्णुते) प्रजाओं और सेनाओं के व्यवहार और रण के मार्गों को खोलता और प्रकाशित करता है। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त होते है।

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॒ संव॑सुः॒ स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा। स मु॒दा काव्या॑ पु॒रु विश्वं॒ भूमे॑व पुष्यति दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नि. देवेषु सन्वसु) अग्नि समस्त सूर्यादि

तेजस्वी पदार्थों में उनको अच्छी प्रकार आच्छादित करता है वही अग्नि-तत्व (यज्ञियासु) यज्ञ योग्य प्रजाओं के बीच यज्ञाग्नि और जाठराग्नि रूप मे विद्यमान रहता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् और अग्रणी नायक भी (देवेषु) विद्वानो और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सं-वसुः) अच्छी प्रकार रहने वाला और उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी हो। (सः) वह (यज्ञियासु विक्षु) यज्ञ, परस्पर सत्संग करने वाली, यज्ञशील, प्रजाओं में (सं-वसुः) सम्यक् प्रकार से रहता, उनकी रक्षा करता हुआ, (आ) विद्यमान रहे। (सः) वह (मुदा) अति प्रसन्नतापूर्वक (पुरु काव्या) वहुत से विद्वानो के योग्य कार्यों को (पुष्यति) पुष्ट करता, उनको वृद्धि देता, और (भूम इव) भूमि के समान वा प्रभु के समान (विश्वं पुष्यति) सबका अन्नादि से पोषण करता है। वह (देवः) स्वयं तेजस्वी, दानशील, होकर (देवेषु यज्ञियः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी पुरुषों मे भी आदर सत्कार और सत्संगति के योग्य होता है। इस प्रकार भी उसके (समे अन्यके) समस्त शत्रु (नभन्ताम्) नाश को प्राप्त होते है वह अजात-शत्रु होजाता है।

यो अ॒ग्निः स॒प्तमा॑नुषः श्रि॒तो विश्वे॑षु॒ सिन्धु॑षु । तमाग॑न्म त्रि॒प॒स्त्यं म॑न्धा॒तुर्द॑स्यु॒हन्त॑मम॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥८

भा०—जिस प्रकार (अग्निः सप्त-मानुष) अग्नि तत्व जीवन रूप से मनुष्य के सातो प्राणो में विद्यमान और (विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) समस्त रक्त-नाडियों या प्राणों में भी विद्यमान रहता है, वह (त्रि-पस्त्यं) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनो स्थानो में विद्यमान रहता है वही शरीर के नाशकारी रोगादि कारणों का नाशक होता है उसी प्रकार (य. अग्नि) जो अग्नि, तेजस्वी अग्रणी, नायक राजा, (सप्त-मानुषः) सात मननशील विद्वानों के वीच स्वयं आठवां होकर (विश्वेषु सिन्धुषु) समस्त प्रजाओं के वीच (श्रितः) आश्रय करने योग्य है। और (मन्धातुः)

इस प्रकार स्वीकृत प्रजागण के (दस्युः
मुझको धारण या रक्षा करेगा हन्तमम्) नाशकारी दुष्ट पुरुषों के सर्वोपरि नाशक (यज्ञेषु पूर्व्यम्)
यज्ञों, सत्संगो और दानों मे सर्वश्रेष्ठ, पूर्ण (त्रि-पस्त्यं) त्रिभूमिक, तिमंजिले
गृह मे रहने वाले वा उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनो प्रकार की प्रजाओं को
गृहवत् बसाने वाले (तम् अग्निम्) इस अग्रणी, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष
को हम (आ गन्म) प्राप्त हों।

अ॒ग्निस्त्रीणि॑ त्रि॒धातू॒न्या क्षे॑ति वि॒दथा॑ क॒विः। स त्रीँरे॑काद॒शाँ इ॒ह यक्ष॑च्च पि॒प्रय॑च्च नो॒ विप्रो॑ दू॒तः परि॑ष्कृतो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥९

भा०—जिस प्रकार (अग्निः त्रिधातूनि आ क्षेति) अग्नि तत्व तीनो तैजस रूप से धातुओं की तीनों प्रकारों मे रहता है, और वह (त्रीन् एकादशान् यक्षत् पिप्रयच्च) ३३ (तेंतीस) पदार्थों को बल देता और तृप्त करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी पुरुष वात पित कफ के बनी तीनों कोटियों मे (आ क्षेति) अपने आप विराजता है, वह (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (विदथा) ज्ञान करता और प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। (सः) वह (इह) इस राष्ट्र मे (त्रीन् एकादशान् यक्षत्) तीनों ग्यारह (तेंतीस) अधिकारियों को सुसंगत करता और (पिप्रयत् च) पूर्ण तृप्त करता, वह (दूतः) शत्रुओं का सन्तापक (परिष्कृतः) सुसज्जित, (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नः यक्षत् पिप्रयत् च) हमे भी दे और पालन करे। इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त होवें।

त्वं नो॑ अग्न आ॒युषु॒ त्वं दे॒वेषु॑ पूर्व्य॒ वस्व॒ एक॑ इरज्यसि। त्वामापः॑ परि॒स्रुतः॒ परि॑ यन्ति॒ स्वसे॑तवो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥१०॥२३॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवेषु पूर्व्यं) सब मनुष्यों मे भी आदर रूप से विद्यमान है, उसको (परिस्रुतः स्वसेतवः आपः परि यन्ति) सब ओर से बहने वाली, स्वयं बद्ध जल धाराएं विद्युत् रूप अग्नि को प्राप्त होता

है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! राजन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे (आयुषु) सामान्य मनुष्यों और (देवेषु) विद्वानों, विजिगीषु, अर्थ की कामना युक्त जनों मे (पूर्व्यः) सर्वश्रेष्ठ है । तू (एकः) एक अद्वितीय होकर (वस्वः इरज्यसि) समस्त बसे प्रजाजन और ऐश्वर्य का स्वामी है । (स्व-सेतवः परिस्रुतः आपः) अपने ही बन्धो से बंधी सब ओर वहती जल-धाराओं के समान (आपः) आप्त प्रजाएं भी (परि-स्रुतः) सब ओर से प्राप्त होकर (स्व-सेतवः) स्वयं अपने आपको नियम मर्यादा में बांधे रखने वाली वा 'स्व' धन वेतनादि मे वा स्वजनो के सम्बन्धों से बद्ध होकर (त्वाम् परि यन्ति) तुझे प्राप्त होती है, तेरी शरण आती है । (अन्यके समे नभन्ताम्) तेरे समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त हो । इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[४०]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । २ स्वराट् शक्वरी । ५, ७, ९ जगती । ६ भुरिग्जगती । ८, १० निचृज्जगती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑ग्नी यु॒वं सु नः॒ सह॑न्ता॒ दास॑थो र॒यिम् ।
येन॑ दृ॒ह्ळा स॒मत्स्वा वी॒ळु चि॑त्साहिषी॒मह्य॒ग्निर्वने॑व॒ वात॒ इ-
न्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् वा वायुवत् बलशालिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! सेनापते ! (युवं) आप दोनों (सहन्ता) शत्रुओं को पराजय करते हुए (नः रयिम् दासथः) हमें वह ऐश्वर्य और बल प्रदान करो जिस प्रकार (अग्नि. वाते वना इव) वायु के वहते समय अग्नि बनों को भस्म कर देता है उसी प्रकार (येन) जिस ऐश्वर्य के बल से हम लोग (समत्सु) संग्रामों मे (वीडुचित्) बड़े २ बलशाली और (दृढा) दृढ, शत्रु सैन्यों को (साहिषीमहि) पराजित करते हैं

और जिससे (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब हमारे शत्रु नाश को प्राप्त हों। वायु और अग्निवत् ही इन्द्र और अग्नि परस्पर सहायक हों। अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा और अग्नि आप दोनों मिलकर 'रयिं' मूर्त्तिमान् इस देह को (दासथः) दास या भृत्यवत् संचालित करते है और समस्त विघ्न विनष्ट होते है।

नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम्। स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे॥ २॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवत् शत्रुहन्तः! हे अग्ने विद्वन्! हम (वां नहि वव्रयामहे) आप दोनों से कुछ याचना नहीं करते। (अथ) प्रत्युत (नृणां) मनुष्यों के बीच (नरम्) नायक (शविष्ठं) सब से अधिक बलशाली, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता ऐश्वर्यप्रद की (यजामहे) प्रतिष्ठा और सत्संगति करते है। (सः नः कदाचित्) वह कभी हमें (अर्वता आगमत्) अश्व, या शत्रुहन्ता सैन्यसहित, (वाज सातये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्राप्त हो और कभी (मेधसातये आगमत्) अन्न, यज्ञ और संग्रामादि के लिये प्राप्त हो। इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त हों।

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः। ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे॥ ३॥

भा०—(ता हि इन्द्राग्नी) वे दोनों इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्निवत् बलवान् और तेजस्वी विद्वान् जन (भराणां मध्यं) भरण पोषण योग्य जनों के बीच (अधि-क्षित.) अध्यक्ष होकर रहते हैं। (ता उ) वे दोनों (कवी) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (पृच्छ्यमाना) अन्यों से ज्ञान ग्रहणार्थ एवं सन्देह निवारणार्थ प्रश्न किये जाते हुए (कवित्वना) अपने

विद्वत्ता के कारण, (नरा) आप दोनों नायक (सखीयते) मित्रवदाचरण करने वाले पुरुष के लिये (धीतं) किये कर्म को (समश्नुतम्) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा। ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्यु१पस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ४

भा०—(नभाकवत्) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता जनों से युक्त (इन्द्राग्नी) उन इन्द्र, अग्नि और राजा; और नायक को तू हे विद्वन्! (यजसा गिरा) उत्तम संगतिकारक वाणी से (अभि अर्च) स्तुति कर, उनका आदर सत्कार कर। (ययोः) जिनके आश्रय पर (इयं द्यौः) यह सूर्य और (इयं महीः पृथिवी) यह बड़ी भारी पृथिवी जिस प्रकार (इदं विश्वं वसु) इस समस्त बसे जगत् और ऐश्वर्य को (बिभृतः) धारण करते है उसी प्रकार राजा, नायक दोनों के बलपर सूर्य पृथिवीवत् पुरुष स्त्री वा राजा प्रजावर्ग दोनो (इदं विश्वं वसु) इस समस्त राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को अपने पास धारण करते हैं। (अन्यके समे नभन्ताम्) और विरोधी शत्रु नष्ट हो जाते है। वायु और अग्नि दो तत्वों पर ही समस्त प्राणी जीते है। वायु और अग्नि के बल पर ही समस्त शत्रुओं को नहीं सा कर सकते है। विद्वान् उन दोनों को 'नभाक' अर्थात् शत्रुनाशक जान कर उनका उत्तम प्रयोग करें।

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत। या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥५॥

भा०—(या) जो इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्नि या सूर्य और अग्नि (सप्तबुध्नम्) सात मूलों वाले (जिह्म-बारम्) गुप्त द्वार वाले, दुष्प्राप्य (अर्णवं) सागरवत् अपार ऐश्वर्य को (अपोर्णुतः) खोल देते हैं उन (नभाकवत् इन्द्राग्निभ्याम्) नभाक अर्थात् अदृश्य रूप से विद्यमान वा बंधनकारक, आकर्षक और आघातकारक (इन्द्राग्निभ्याम्)

विद्युत् और अग्नि तत्वों से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को (इरज्यत) अपने वश करो और उनके बल से ही (इन्द्रः) सूर्य भी (ईशानः) सबका स्वामी है। उनके बल से ही (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त शत्रु नहींसे हो जावें।

अपि॑ वृश्च पुराण॒वद्व्र॒तते॑रिव गुष्पि॒तमोजो॑ दा॒सस्य॑ दम्भय।
व॒यं तद॑स्य॒ सम्भृ॑तं॒ वस्विन्द्रे॑ण॒ वि भ॑जेमहि॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥६।२४

भा०—जिस प्रकार (पुराणवत्) पुराने (व्रततेः गुष्पितम्) लता के शाखा पुञ्ज को कोई सुगमता से ही काट लेता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (दासस्य गुष्पितम् ओजः) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुष के गुप्त बल को (दम्भय) नष्ट कर। (अस्य तत् सम्भृतं वसु) उसके उस एकत्र किये धन को हम (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी राजा के द्वारा ही (विभजेमहि) विशेष प्रकार से सेवन करें। और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त शत्रु भी नष्ट हों। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

यदि॑न्द्रा॒ग्नी जना॑ इ॒मे वि॒ह्वय॑न्ते॒ तना॑ गि॒रा। अ॒स्माके॑भि॒र्नृभि॑र्व॒यं सा॑स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तो व॑नु॒याम॑ वनुष्य॒तो नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥७॥

भा०—(इमे जनाः) ये मनुष्य (तना गिरा) धन और वचन से (यत्) जिन (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सूर्य अग्निवत् तेजस्वी नायकों को (विह्वयन्ते) विशेष रूप से बुलाते हैं, (अस्माकेभिः नृभिः) अपने ही आदमियों से सहायवान् होकर (वयं) हम लोग (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाओं द्वारा युद्ध करने वाले शत्रुओं का पराजय करें और (वनुष्यतः वनुयाम) हिंसाकारियों को हम भी मारें। (अन्यके समे नभन्ताम्) हमारे अन्य समस्त शत्रु नष्ट हों।

या नु श्वे॒ताव॒वो दि॒व उ॒च्चरा॑त॒ उप॒ द्युभिः॑। इ॒न्द्रा॒ग्न्योरनु॑ व्र॒तमुहा॑ना यन्ति॒ सिन्ध॑वो॒ यान्त्सीं॑ ब॒न्धादमु॑ञ्चतां॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥८॥

भा०—(या नु) जो दोनों इन्द्र अग्नि, सूर्य और अग्नि, (श्वेतौ) श्वेत वर्ण के, तेजस्वी होकर (द्युभिः) किरणों से (दिवः उप उत् चरातः) आकाश और पृथिवी पर ऊर्ध्व मार्ग से गति करते हैं उन (इन्द्राग्न्योः अनु) सूर्य और अग्नि के अनुकरण में (व्रतम् उहानाः) उत्तम व्रतों को धारण करते हुए (सिन्धवः) नदी के समान वेग से जाने वाले वीर पुरुष व्रतबद्ध होकर (अनु यन्ति) उनके पीछे २ अनुगमन करते हैं (यान्) जिनको वे दोनो (सीम्) सब प्रकार से (बन्धात्) बन्धनों से (अमुञ्चताम्) मुक्त करें। और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त विघ्नकारी भी नष्ट हों, बांधे जावें।

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे॥९॥

भा०—हे (हरिवः इन्द्र) किरणों से युक्त ऐश्वर्यवन् सूर्यवत् तेजस्विन्! हे (सूनो) सर्वैश्वर्यवन्! सर्वोत्पादक! सर्वप्रेरक! (वस्वः) सबको बसाने वाले, (आपृचः) सबसे प्रेम करने वाले (वीरस्य) शूरवीर (हिन्वस्य) सबको बढ़ाने वाले (ते) तेरी (उप-मातयः) उपमान (उत प्रशस्तयः) और तेरे उत्तम उपदेश (पूर्वीः पूर्वीः) सदा पूर्ण और उत्तम है। (याः) जो (नः धियः साधन्त) हमारी बुद्धियों और कर्मों को अपने वश करें और उन्नत करें। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त विघ्नकारी नष्ट हों।

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे॥ १०॥

भा०—(उतो नु चित्) और (यः) जो सूर्य या विद्युत्मय इन्द्र (शुष्णस्य) शोषणकारी ताप वाले सूर्य के (ओजसा) बल पराक्रम या तेज से (आण्डानि भेदति) रोगकारी संयोगी अंशों को छिन्न भिन्न करता है, अथवा—

वह (शुष्णस्य आण्डानि) शरीर के शोषण करनेवाले यक्ष्मादि के रोगांशों को छिन्न भिन्न करता है और (स्ववंतीः अपः) शब्द, या गर्जन करने वाले मेघस्थ जनों को (जेषत्) विजय करता है (तं) उस (त्वेपं) अति तीक्ष्ण, तेजस्वी, (सत्वानम्) बलवान् (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य पुरुष को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम योजनाओं स्तुतियों से (शिशीत) तीक्ष्ण करो। उसके बलको अधिक बढ़ावो। इसी प्रकार विद्युत्वत् तीक्ष्ण, तेजस्वी, बलवान् स्तुत्य पुरुष को भी बढ़ावें जो अपने शोषणकारी बल पराक्रम से दुःखदायक परसैन्यों को नाश करे, और सुखप्रद प्रजाओं को विजय करे। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य, शत्रुगण नाश को प्राप्त हों।

अमन्ति रोगान् कुर्वन्ति इत्याण्डानि। अमेरौणादिको डः। १।११४॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्ववंतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने (शुष्णस्य) शोषक ताप के बल से (आण्डा ओहते) रोगकारी जन्तुओं को नाश करता है (भेदति) छिन्न भिन्न करता है और (स्ववंतीः अपः अजैः) गर्जना वा सुखप्रद जलों को अपने वश करता है उसी प्रकार जो पुरुष (शुष्णस्य आण्डा) शोषकवत् यक्ष्मादि रोगों, शत्रु के अण्डों वा मर्मस्थलों को भेदता, और सुखप्रद आप्त जनों को अपने गुणों से अपने वश करता है (तं) उस (सु-अध्वरं) उत्तम अहिंसनीय (सत्यं) सत्याचरण से युक्त, सज्जनों में उत्तम, (सत्वानम्) बलवान् (ऋत्वियम्) ऋतुओं के स्वामी सूर्यवत् ऋतु अर्थात् ज्ञानी सदस्यों के स्वामी पुरुष को (शिशीत) तीक्ष्ण करो, उसके बल को बढ़ाओ। (नभन्तां०) पूर्ववत्।

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम् १२।२५

भा०—(एव) इस प्रकार (पितृवत्) माता पिताओं के तुल्य, पालक पोषक, (मन्धातृवत्) ज्ञानधारक उसके समान ज्ञानप्रकाशक (अंगिरस्वत्) अग्नि वा प्राणों के समान जीवनप्रद (इन्द्राग्नीभ्यां) इन्द्र विद्युत् और अग्नि वा ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों के यह (नवीयः) अति स्तुत्य, वचन (अवाचि) उपदेश किया है। वे दोनों (त्रिधातुना शर्मणा अस्मान् पातम्) तीनों धातु के बने गृह एवं वात, पित्त, कफ़ से युक्त त्रिधातु गृह, इस देह से हमारी रक्षा करें। (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम सब ऐश्वर्यों वलों के पालक स्वामी हों। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[४१]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्। ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ स्वराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ६, १० निचृज्जगती। ९ जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे १

भा०—हे विद्वान् पुरुष! तू (अस्मै) इस (प्रभूतये) उत्तम भूति, जन्म, सामर्थ्य और यश वाले (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष और (विदुस्तरेभ्यः) अपने से अधिक जानने वाले विद्वान्, (मरुद्भ्यः) बलवान् मनुष्यों का (अर्च) आदर सत्कार कर। और उसका भी आदर करो (यः) जो (धीता) सुविचारित (पश्वः गाः) गौ आदि पशुओं के समान ही (पश्वः गाः) ज्ञान दर्शाने वाली वाणियों की (मनुष्याणां) मनुष्यों के उपकारार्थ (रक्षति) रक्षा करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त हानिकारक जन नष्ट हों।

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः। नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे २

भा०—(यः) जो (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील रक्तधाराओं के

वा गतिशील प्राणों के (उपोदये) ऊपर उठने में (सप्त-स्वसा) सात स्वयं गतिशील मुख्य प्राणों से युक्त होने से सात भगिनियों वाला (सः) वह (मध्यमः) सबके मध्य में मुख्य रूप से स्थित राजा के समान है। (तम्) उसको (समना गिरा) मान सहित वा ज्ञान सहित वाणी से और (पितॄणां च मन्मभिः) पालक उपदेष्टा गुरुओं के मनन योग्य वचनों से और (नाभाकस्य) साक्षात् द्रष्टा पुरुष की (प्रशस्तिभिः) उत्तम उपदेश वाणियों से (अर्च) अर्चना कर। राजा भी (सिन्धूनाम्) वेगवान् अश्वादि सैन्य नायकों के(उदये)उत्थान काल में (सप्त-स्वसा) सर्पणशील सेनाओं को उत्तम रीति से संचालित करने में समर्थ (मध्यमः) मध्यस्थित प्रधान पुरुषवत् है उसको (समना गिरा) समान, अनुरूप वाणी और पालकों के वचनों और (नाभाकस्य) शत्रु हिंसक रक्षक की (प्रशस्तिभिः) उत्तमाधिकार शासन वाणियों से (उप) युक्त करो। (नभन्ताम् अन्यके समे) जिससे अन्य सब द्वेष बुद्धि वाले दुर्बुद्धि पुरुष (नभन्ताम्) बुराई करने में समर्थ न रहें।

स क्षपः परि षस्वजे न्यु१स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३॥

भा०—(क्षपः परि सस्वजे) जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रियों को प्राप्त होता है उसी प्रकार (सः) वह वरुण, सर्वश्रेष्ठ पुरुष भी (क्षपः परि सस्वजे) शत्रु पक्ष को नाश करने वाली सेनाओं को सदा अपने साथ संगत रक्खे। वह (उस्रः) उत्तम पद को प्राप्त होकर (मायया) अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा विश्व को प्रभु के समान ही (विश्व नि दधे) समस्त राष्ट्र को नियम में स्थापित करे (सः) वह (दर्शतः) सबका द्रष्टा स्वामी होकर रहे। (तस्य व्रतम् अनु) उसके कर्म के अनुकूल ही रहकर (तिस्रः वेनीः) तीनों प्रकार की प्रजाएं उसे चाहती हुई (तम् अवर्धयन्) उसको बढ़ावें। इस प्रकार (समे अन्यके) उसके समस्त शत्रुगण (नभन्ताम्) नष्ट हों।

यः कुकुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः। स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४॥

भा०—(यः दर्शतः) जो दर्शनीय वा सर्वद्रष्टा स्वामी होकर (पृथिव्याम् अधि) भूमि पर (ककुभः) पार्थिव देह मे प्राणों के समान, समस्त दिशाओ वा उनमें निवासिनी विनीत प्रजाओ को (नि धारयः) नियम मे रखता है (सः) वह (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, प्रभु के (सप्त्यं) उस सर्पण योग्य, प्राप्य (पूर्व्यं पदम्) सर्वोपरि पद को (माता) बनाने वाला, माता के समान पूज्य है। (स हि) वही (गोपाः इव) रक्षक के समान (इर्यः) रक्षक, स्वामी है। उसके द्वारा (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य दुष्ट संकल्प वाले पापी पुरुष नष्ट हों।

यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या। स कविः काव्या पुरुरूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे५।२६

भा०—(यः) जो (भुवनानां धर्त्ता) समस्त लोकों को धारण करने वाला है, (यः) जो (उस्राणां) उत्तम, ऊपर के मार्ग से जाने वाले सूर्यादि के (गुह्या) बुद्धि से गम्य, (अपीच्या) अन्तर्हित, छुपे हुए (नामानि) नाम, स्वरूपों को (वेद) जानता है। (सः) वह (कविः) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, (द्यौः इव) सूर्य के समान (काव्या) विद्वान् मेधावी पुरुषों के अभ्यास करने योग्य ज्ञानों को (पुरुरूपं पुष्यति) बहुत प्रकार से पुष्ट करता है। उसके रहते हुए (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त द्वेषीजन नष्ट हो जाते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता। त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे॥६॥

भा०—(चक्रे नाभिः इव) चक्र मे नाभि के समान (यस्मिन्) जिस प्रभु में (विश्वानि काव्या) विद्वान् मेधावी पुरुषों के समस्त ज्ञान

और कर्म (श्रिता) आश्रित है, (त्रितं) तीनों लोकों में व्यापक उस परमेश्वर को आप लोग (जूती) अति शीघ्र, प्रेमपूर्वक (सपर्यत) उपासना करो। हे विद्वान् पुरुषो! (व्रजे गावः न) जिस प्रकार गोशाला मे समस्त गौवे (सं-युजे) एकत्र रहने के लिये आती है उसी प्रकार (व्रजे) परम गन्तव्य उस प्रभु मे (संयुजे) अच्छी प्रकार योग करने के लिये (गावः) समस्त वाणियो और ज्ञानेन्द्रियो को भी संयुक्त करो। और (युजे) उसी योग साधन के लिये (अश्वान् अयुक्षत) अश्वो के तुल्य कर्मेन्द्रियों और मन की वृत्तियों को भी उसी परम पद मे एकाग्र करो। इस प्रकार (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त दुष्ट सकल्प उत्पन्न नहीं होते और विशेष प्रतिपक्ष के भाव भी प्रबल नहीं होते।

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम्। परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ७

भा०—(यः) जो सर्वश्रेष्ठ प्रभु (आसु) इन समस्त दिशाओं मे और प्रजाओं मे (अत्कः) व्यापक होकर (आशये) सर्वत्र गुप्तरूप से विद्यमान है और जो (एषां विश्वा जातानि) इन समस्त लोको के समस्त पदार्थों को और (धामानि) सब स्थानों को (परि मर्मृशत्) सब प्रकार से जानता है उस (वरुणस्य पुरः) सर्वश्रेष्ठ स्वामी के समक्ष (गये) उसके शासन में (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् गण और समस्त सूर्यादि पदार्थ आत्मा या प्राण के अधीन इन्द्रियो के तुल्य (व्रतम् अनु) अधीन रहकर कार्य करते हैं। (अन्यके समे) इससे विपरीत बुद्धि वाले द्वेषीगण (नभन्तां) नष्ट होते है।

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे। स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—(सः) वह (समुद्र) समुद्र के समान गम्भीर, अपार,

समस्त आनन्दों, सुखों का दाता, (अपीच्यः) पूज्य, अप्यय होने योग्य, प्राप्य एवं हृदयों में सुगुप्त, (तुरः) अति शीघ्रकारी है। वह (द्याम् इव) आकाश में सूर्यवत् (रोहति) सबसे ऊपर प्रकाशित होता है। (यत्) जो (आसु) इन समस्त प्रजाओं वा समस्त प्राकृतिक शक्तियों में (यजुः निदधे) नाना दान और संगति, परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करता है। और वह (अर्चिना पदा) अर्चना करने योग्य, परम स्तुत्य 'पद' अर्थात् ज्ञान से (मायाः अस्तृणात्) सब कुटिल बुद्धियों का नाश करता है वह (नाकम् अरुहत्) परम सुखमय लोक को प्राप्त होता है। उसके (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब विरोधी नष्ट हो जाते हैं।

यस्य॑ श्वे॒ता वि॑चक्ष॒णा ति॒स्रो भूमी॑रधिक्षि॒तः।
त्रिरुत्त॑राणि प॒प्रतु॒र्वरु॑णस्य ध्रु॒वं सद॒: स स॑प्ता॒नामि॑रज्यति॒
नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ९ ॥

भा०—(तिस्रः भूमीः) तीनों भूमि लोकों में (अधि-क्षितः) अध्यक्षवत् निवास करने वाले (यस्य) जिसके (विचक्षणा श्वेताः) विविध पदार्थों को दर्शाने वाले उज्वल तेज, सूर्य विद्युदादि, (उत्तराणि) उनसे भी उत्कृष्ट (त्रिः) तीन लोकों को पूर्ण करते हैं उस (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु का (ध्रुवं सदः) विराजना या सत्तारूप से विद्यमान रहना (ध्रुवम्) नित्य है। (सः) वह प्रभु (सप्तानाम् इरज्यति) सातों का भी स्वामी रहता और उनको वश करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके शासन में समस्त दुष्ट पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं। (२) राजा के श्वेत, तेजस्वी वीर और अश्व हैं। उसका सर्वोपरि (सदः) आसन स्थिर है। वह (सप्तानां) सातों प्रकृतियों पर वशी होता है।

यः श्वे॒ताँ अधि॑निर्णिजश्च॒क्रे कृ॒ष्णाँ अनु॑ व्र॒ता।
स धाम॑ पू॒र्व्यं म॑मे॒ यः स्क॒म्भेन॒ वि रोद॑सी अ॒जो न द्यामधा॑रय॒न्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु, सबका स्वामी सूर्यवत् (अधिनिर्निजः) अति शुद्ध, (श्वेतान्) श्वेत किरणो को वा सूर्यादि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुकूल चलाता है, और जो (कृष्णान्) रात्रि कालो के समान अन्धकारमय या आकर्षणमय, प्रकाशशून्य पृथिवी आदि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुसार ही अपने अधीन रखता है और (यः) जो (स्कम्भेन) सबको थामने वाले महान् बल से (रोदसी वि ममे) सूर्य और भूमि को आकाश में थामता है, (अजः न द्याम् अधारयत) स्वयं अजन्मा होकर, सर्व संचालक के समान ही सूर्य या आकाश को धारण, स्थापन करता है, (सः) वह सर्वश्रेष्ठ वरुण (पूर्व्यं धाम) सबसे पूर्ण धारण सामर्थ्य या लोक वा तेज को (ममे) धारण करता है । (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके द्वारा सब पापीजन नष्ट हो जाते हैं ॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४२]

नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा । अथवा १—३ नाभाक. काण्व । ४—६ नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा ऋषयः ॥ १—३ वरुण । ४—६ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप् । ४—६ अनुष्टुप् ॥ षड्टच सूक्तम् ॥

अस्तभ्नाद्द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१॥

भा०—(असुरः) बलवान् (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों का भण्डार परमेश्वर (द्याम् अस्तभ्नात्) आकाशस्थ तेजोमय पिण्डों को थामे रहता है, वह ही (पृथिव्याः परिमाणं) पृथिवी के बड़े भारी परिमाण को (अमिमीत) मापता है, (सम्राड् विश्वा भुवना) सबका प्रकाशक परमेश्वर समस्त लोकों पर (आसीदत्) अध्यक्ष शासकवत् विराजता है । (विश्वा इत् व्रतानि) ये समस्त कार्य और नियम व्यवस्थाएं (वरुणस्य इत) उस सर्वश्रेष्ट स्वामी, सबसे वरण करने योग्य प्रभु परमेश्वर की ही हैं ।

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (वरुणं एव) उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वदुःखों के वारण करने वाले, सबसे वारण करने योग्य (बृहन्तं) महान् प्रभु की (वन्दस्व) स्तुति, वन्दना, प्रार्थना किया कर। और उसी (धीरम्) बुद्धि ज्ञान के दाता, कर्म के फलो के देने वाले, (अमृतस्य गोपाम्) अमृतमय मोक्ष के रक्षक को (नमस्य) नमस्कार किया कर। (सः) वह (नः) हमे (त्रि-वरूथं शर्म) तीनो प्रकार के कष्टों से बचाने वाले गृहवत् देह का (वि यंसत्) विविध प्रकार से प्रदान करता है। (उपस्थे) समीप विद्यमान (द्यावा-पृथिवी) सूर्य भूमि माता पिता भी (नः पातम्) हमारी रक्षा करें।

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (देव) सब सुखों के दाता सब ज्ञानों के प्रकाशक ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! तू (इमां धियं) इस ज्ञान, और कर्म का (शिक्षमाणस्य) अनुष्ठान करने और अन्यो को उपदेश देने वाले की (क्रतुं दक्ष) बुद्धि और बल को (सं शिशाधि) सम्यक् प्रकार से तीक्ष्ण कर और अच्छे मार्ग में चला। (यया) जिससे हम (विश्वा दुरिता) सब दुष्कर्मों को (अति तरेम) पार कर जावें और (सु तर्माणं नावं) सुख से पार उतार देने वाली नौकावत् वेदवाणी पर (अधि रुहेम) चढ़ें, उसका आश्रय लें।

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्य का आचरण करने और सदा सत्य ज्ञान का ही उपदेश देने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो !

(वां) आप दोनों (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (सोमपीतये) उत्तम ज्ञानरस का पान करने के लिये (धीभिः) बुद्धियों और सत्कर्मों सहित (अचुच्यवुः) प्राप्त होवें । (अन्यके समे नभन्ताम्) आप सब दुर्बुद्धि जन नष्ट होवे ।

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख पद पर स्थित एवं सदा सत्याचरण-शील जनो ! (यथा) जिस प्रकार (अत्रिः विप्रः) तीनों प्रकार के दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ओषधिरस के पान करने और वीर्य रक्षा करने का (अजोहवीत्) उपदेश करता है उस प्रकार से (अन्यके समे) समस्त अन्य दुःखदायी रोग और पापादि के संकल्प (नभन्ताम्) नष्ट हो जाते और फिर पैदा नहीं होते ।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥ २८ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो ८ । ३८ । ९ ॥ इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[४३]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३—१२, २२, २६, २८, २९, ३३ निचृद् गायत्री । १४ ककुम्मती गायत्री । ३० पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते ॥१॥

भा०—(इमे) ये (स्तोमासः) स्तुतियुक्त वेद के मन्त्र और स्तुति करने वाले विद्वान् जन (विप्रस्य) विद्वान्, मेधावी, (वेधसः)

जगत् के कर्त्ता (अस्तृत-यज्वनः) दानशील, यज्ञ कर्त्ता के नाश न करने वाले (अग्ने.) ज्ञानमय प्रभु के विषय में (गिरः ईरते) वेदवाणियां का उच्चारण करते है ।

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् २

भा०—हे (जात-वेद.) सर्वज्ञ ! सर्वैश्वर्य के स्वामिन् ! हे (विचर्षणे) (अग्ने) ज्ञानवन् ! सर्वप्रकाशक ! प्रकाशस्वरूप ! विशेष द्रष्टा ! (प्रतिहर्यते ते) प्रत्येक जीव को चाहने हारे तेरी मैं (सु-स्तुतिम् जनामि) उत्तम स्तुति प्रकट किया करूं ।

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः । दद्भिर्वनानि बप्सति ३

भा०—(दद्भिः वनानि) जिस प्रकार पशुगण दांतो से जंगलो को खाते हैं और जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं काष्ठो को मानो खा जाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (तव त्विषः) तेरी कान्तियां (तिग्माः) तीक्ष्ण होकर, (आरोकाः इव) सब ओर चमकती हुई ज्वालाओ के समान (वनानि) जलो को सूर्य किरणोवत् (वनानि) नाश करने योग्य दोषो को (बप्सति) मानो खाये डालती है, उनका नाश करती है । सब पापों को भस्म कर देती है ।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नय.) अग्नियें (हरयः) पीतवर्ण (धूम-केतवः) धूम की ध्वजाओं से युक्त होकर (वात-जूताः) वायु से प्रेरित होकर, (द्यवि) आकाश में (वृथक् = पृथक् उपयतन्ते) अलग २ प्रज्वलित होते है उसी प्रकार (अग्नयः) अग्नि के बने सूर्यादि लोक और (धूम-केतवः) धूम की ध्वजा से युक्त धूमकेतुगण, (वात-जूता) वायु वेग से प्रेरित होकर आकाश मे अलग २ घूम रहे हैं इसी प्रकार (अग्नयः) अग्निवत् स्वप्रकाश विद्वान् , (हरयः) जीवगण, (धूम-केतवः) पाप को दूर करने मे समर्थ ज्ञान से सम्पन्न होकर (वात-जूताः) प्राण वायु से

(वां) आप दोनों (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (सोमपीतये) उत्तम ज्ञानरस का पान करने के लिये (धीभिः) बुद्धियों और सत्कर्मों सहित (अचुच्यवुः) प्राप्त होवें। (अन्यके समे नभन्ताम्) आप सब दुर्बुद्धि जन नष्ट होवे।

यथा॑ वा॒मत्रि॑रश्विना गी॒र्भिर्विप्रो॒ अजो॑हवीत्।
नास॑त्या॒ सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख पद पर स्थित एवं सदा सत्याचरण-शील जनो! (यथा) जिस प्रकार (अत्रिः विप्रः) तीनों प्रकार के दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (वाम्) आप दोनो को (सोम-पीतये) ओषधिरस के पान करने और वीर्य रक्षा करने का (अजोहवीत्) उपदेश करता है उस प्रकार से (अन्यके समे) समस्त अन्य दुःखदायी रोग और पापादि के संकल्प (नभन्ताम्) नष्ट हो जाते और फिर पैदा नहीं होते।

ए॒वा वा॑मह्व ऊ॒तये॒ यथाहु॑वन्त॒ मेधि॑राः।
नास॑त्या॒ सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ६ ॥ २८ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो ८। ३८। ९ ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः। इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[४३]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६—११, २२, २६, २८, २९, ३३ निचृद् गायत्री। १४ ककुम्मती गायत्री। ३० पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

इ॒मे विप्र॑स्य वे॒धसो॒ऽग्नेरस्तृ॑तयज्वनः। गिर॒ः स्तोमा॑स ईरते ॥१॥

भा०—(इमे) ये (स्तोमासः) स्तुतियुक्त वेद के मन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले विद्वान् जन (विप्रस्य) विद्वान्, मेधावी, (वेधसः)

जगत् के कर्त्ता (अस्तृत-यज्वनः) दानशील, यज्ञ कर्त्ता के नाश न करने वाले (अग्नेः) ज्ञानमय प्रभु के विषय में (गिरः ईरते) वेदवाणियों का उच्चारण करते है ।

अस्मैं ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम् २

भा०—हे (जात-वेद.) सर्वज्ञ ! सर्वैश्वर्य के स्वामिन् ! हे (विचर्षणे) (अग्ने) ज्ञानवन् ! सर्वप्रकाशक ! प्रकाशस्वरूप! विशेष द्रष्टा ! (प्रतिहर्यते ते) प्रत्येक जीव को चाहने हारे तेरी मैं (सु-स्तुतिम् जनामि) उत्तम स्तुति प्रकट किया करूं।

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति३

भा०—(दद्भिः वनानि) जिस प्रकार पशुगण दांतो से जंगलो को खाते हैं और जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं काष्ठो को मानो खा जाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (तव त्विषः) तेरी कान्तियां (तिग्माः) तीक्ष्ण होकर, (आरोकाः इव) सब ओर चमकती हुई ज्वालाओ के समान (वनानि|) जलो को सूर्य किरणोवत् (वनानि) नाश करने योग्य दोषो को (बप्सति) मानो खाये डालती है, उनका नाश करती है। सब पापों को भस्म कर देती है ।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नयः) अग्नियें (हरयः) पीतवर्ण (धूम-केतवः) धूम की ध्वजाओ से युक्त होकर (वात-जूताः) वायु से प्रेरित होकर, (द्यवि) आकाश में (वृथक् = पृथक् उपयतन्ते) अलग २ प्रज्वलित होते है उसी प्रकार (अग्नयः) अग्नि के बने सूर्यादि लोक और (धूम-केतवः) धूम की ध्वजा से युक्त धूमकेतुगण, (वात-जूता) वायु वेग से प्रेरित होकर आकाश मे अलग २ घूम रहे हैं इसी प्रकार (अग्नय·) अग्निवत् स्वप्रकाश विद्वान् , (हरयः) जीवगण, (धूम-केतवः) पाप को दूर करने मे समर्थ ज्ञान से सम्पन्न होकर (वात-जूताः) प्राण वायु से

प्रेरित होकर (यवि) उस प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर उसके आश्रय, पृथक् २ मोक्ष प्राप्ति का यत्न करते है। 'पृथगग्नयः' इति वाजसनेयिनां पाठः।

एतेत्ये वृथगग्नयं इद्धासः समदृक्षत। उपसामिव केतवः ५।२९

भा०—(एते त्ये) ये वह (अग्नयः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश जीवगण (इद्धासः) प्रदीप्त या प्रज्वलित अग्नियों के समान, और (उपसाम्-इव केतवः) उषा, प्रभात कालों के ज्ञापक ध्वजाओं वा किरणों के समान (उषसाम्) नाना कामनाओं (केतवः) प्रकट करने वाले (वृथक्) पृथक् २ ही (सम्-अदृक्षत) अच्छी प्रकार विवेकपूर्वक दिखाई देते वा देखते हैं। पूर्व मन्त्र में बतलाया था कि इन जीवों के सबके अपने यत्न पृथक् हैं, इसमे बतलाया कि इनकी इच्छाएं भी भिन्न है। वे एक महान् आत्मा के अंश नहीं प्रत्युत सम्यग् दर्शन द्वारा भी पृथक् २ ही है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः। अग्निर्यद्रोधति क्षमि६

भा०—(अग्निः यत् क्षमि रोधति) अग्नि जब भूमि पर जाता है तब उसके (प्रयाणे रजांसि कृष्णा) जल जाने पर भूमि के धूलि भस्मादि कृष्ण वर्ण के हो जाते है, इसी प्रकार (यत्) जब (अग्नि.) ज्ञानी जीव (क्षमि) क्षमा, सहनशीलता मे वा योग की किसी भूमिपर अपने को (रोधति) निरोध करता है तब (पत्सुतः) ज्ञान मे निष्णात, (जातवेदसः) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (प्रयाणे) आगे बढ़ते हुए मार्ग मे (रजांसि) समस्त राजस वस्तुएं नाना तेजोमय लोक (कृष्णा) अति आकर्षक होते है, वे उसे मार्ग में भ्रष्ट करने वाले होते है।

धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति। पुनर्यन्तरुणीरपि॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः ओषधी. धासि कृण्वानः बप्सत्) नाना ओषधियों को अपना अन्न बना २ कर खाता है, (न वायति) शान्त नहीं होता है और (पुनः तरुणीः अपि यन्) फिर बड़ी लताओं को भी प्राप्त करता है

उसी प्रकार यह (अग्निः) अग्नि के समान स्वप्रकाश जीव भी इस देह-भूमि मे प्राप्त होकर (ओपधीः धासिं कृण्वानः) नाना अन्नादि ओपधियों को अपने धारण पोपणकारी खाद्य पदार्थ वनाता हुआ (वप्सद्) उनका भक्षण करता है और वह (न वायति) शान्त नही होता, वह नहीं मरता, जीवित रहता है, और वह (पुनः) वार २ (तरुणीः अपि यत्) स्त्र्यादि भोगों वा तरुण अर्थात् यौवनादि दशाओ को प्राप्त होता हुआ भी (न वायति) भोगों से तृप्त नही होता । उन्ही मे लिप्त होजाता है ।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥

अर्थात् उस जीव को राजस भोग प्राप्त होकर इतने अधिक 'कृष्ण' अर्थात् आकर्पक होते है कि वह उनको साधन शिथिल होने पर भी नही त्यागता ।

जि॒ह्वाभि॒रह॒ नन्न॑मद॒र्चिषा॑ जञ्जणा॒भव॑न् । अ॒ग्निर्वने॑षु रोचते ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि (जिह्वाभिः) जिह्वाओं, ज्वा-लाओ से (अह) ही (नंनमत्) लपट मारता, और (अर्चिषा) दीप्ति से (जञ्जणाभवत्) खूब प्रज्वलित होता हुआ (वनेषु रोचते) काष्ठो में चमकता है उसी प्रकार यह (अग्निः) स्वयं प्रकाश जीव, (जिह्वाभिः अह) पदार्थों को ग्रहण करने वाले इन्द्रिय रूप जिह्वाओं से ही (नंन-मत्) विपयों की ओर खूब वार २ झुकता है, और (अर्चिपा) अर्चि मार्ग से ही वार २ इस लोक मे (जंजनाभवत्) उत्पन्न होता हुआ (वनेपु) सेवनीय पदार्थों या लोकों मे, काष्ठो मे अग्निवत् , वा जलों में सूर्यवत्, सेव्य लोकों में जीव (रोचते) रुचि अनुकूल विचरता है, उनमें ही रुचि करता है ।

अ॒प्स्व॑ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे । गर्भे॒ सञ्जा॑यसे॒ पुन॑ः ॥९॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि का (सधिः अप्सु) मेघस्थ जलों में

विद्युत् रूप से स्थित है, और (सः) वह (ओषधीः अनु रुध्यते) ओषधियों को प्राप्त होता है, और (गर्भे सन् पुनः जायते) पुत्रवत् उनके भीतर छुपा रहकर भी घर्षणादि से पुनः उत्पन्न होता है। इसी प्रकार हे (अग्ने) जीव (तव सधिः) तेरी समान रूप से स्थिति (अप्सु) वीर्यों मे रहती है, (सः) वह तू (ओषधीः अनु) 'ओष' तेजोमय वीर्य को धारण करने में समर्थ माताओं को प्राप्त होकर वहां (रुध्यसे) ९ मास तक रुका रहता है, (गर्भे सन्) गर्भ मे विद्यमान रहकर पुनः (जायसे) जन्म लेकर उत्पन्न होता है।

उदग्ने तव तद्घृतादर्ची रोचत आहुतम्। निसानं जुह्वो मुखे १०।३०

भा०—जिस प्रकार अग्नि की (अर्चिः) ज्वाला या दीप्ति (जुह्वः मुखे) जुहू नाम चमस के मुखपर (निसानं) चुम्बन करती हुई (आहुतम्) आहुति प्राप्त कर (घृतात् उत् रोचते) घृत के कारण ऊपर को उठकर चमकती है उसी प्रकार हे (अग्ने) स्वप्रकाश जीवात्मा (तव तद् अर्चिः) तेरा वह प्रकाशमय बीज (जुह्वः मुखे) आदान या शुक्र ग्रहण करने वाले मातृगर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी के मुख पर (निसानं) चुम्बन या स्पर्श करता हुआ (आहुतं सत्) पुरुष द्वारा प्रदत्त होता है और उसी (घृतात्) क्षरित, तेजोमय शुक्र से (तद्वत्) तेरा वह रूप (उत् रोचते) उत्तम रीति से प्रकट होता है। इति त्रिंशो वर्गः॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये॥११॥

भा०—हम (उक्षान्नाय) वीर्यसेचन मे समर्थ अन्न खाने वाले और (वशान्नाय) यथेच्छ अन्न के भोगने वाले, (सोम-पृष्ठाय) वीर्य स्वरूप (अग्ने) अग्निवत् आकाशस्वरूप आत्मा का (स्तोमैः) वेद मन्त्रों द्वारा (विधेम) प्रतिपादन और ज्ञान करें। (२) 'उक्षा' जल सेचक, नाना लोकों को वहन करने वाले, सूर्यादि और 'वशा' सर्व वशकारिणी शक्ति का अन्नवत् उपभोग करने वाले (सोम-पृष्ठाय) सर्व

प्रेरक, परमैश्वर्यवान् (वेधसे) जगत् विधाता (अग्नये) अग्निवत् तेजोमय परमेश्वर की हम (स्तोमैः) स्तुति वचनो से (विधेम) परिचर्या और स्तुति-उपासना करे।

उत त्वा नमसा व॒यं होत॒र्वरे॑ण्यक्रतो। अग्ने॑ स॒मिद्भि॑रीमहे ॥१२॥

भा०—(उत) और हे (होतः) सब सुखो के देने वाले ! हे (वरेण्य-क्रतो) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवन् ! वा हे (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ ! हे (क्रतो) जगत्कर्त्ता ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशमय ! (त्वा) तुझ को (वय) हम (नमसा) विनय से (समिद्भिः) समिधाओ से आहवनीयाग्नि के तुल्य (समिद्भिः) उत्तम, उज्वल, दीप्तियुक्त ज्ञानों द्वारा (ईमहे) प्राप्त होते है।

उत त्वा॑ भृगु॒वच्छु॑चे मनु॒ष्वद॑ग्न आहुत। अ॒ङ्गि॒र॒स्वद्ध॑वामहे १३

भा०—(उत) और हे (शुचे) प्रकाशस्वरूप ! शुद्ध ! पापो के दहन करने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञानमय ! हे (आहुत) सर्वात्मना स्वीकृत हम लोग (भृगुवत्) पापों को दग्ध करने मे समर्थ तपस्वी जनों के समान, और (मनुष्वत्) मननशील ज्ञानी पुरुषो के समान और (अंगिरस्वत्) देह में प्राणोवत् अंगारों के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों के समान होकर (त्वा हवामहे) तुझ से प्रार्थना करते है।

त्वं ह्य॑ग्ने अ॒ग्निना॒ विप्रो॒ विप्रे॑ण॒ सन्त्स॒ता। सखा॒ सख्या॑ समि॒ध्यसे॑ १४

भा०—जिस प्रकार (अग्निना अग्निः समिध्यते) एक अग्नि से दूसरी अग्नि मिलकर और अधिक दीप्तियुक्त होता है और जिस प्रकार (विप्रः विप्रेण समिध्यते) विद्वान् पुरुष विद्वान् से मिलकर और अधिक ज्ञान का प्रकाश करता है और जिस प्रकार (सन् सता) सज्जन सज्जन से मिलकर प्रसन्न होता है, (सखा सख्या समिध्यते) स्नेही मित्र से स्नेहवान्, जन मिलकर अधिक प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप सर्वप्रकाशक प्रभो ! तू भी (अग्निना) स्वप्रकाश आत्मा द्वारा

(समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, तू (विप्रः) विविध ज्ञानों से पूर्ण है, वह तू (विप्रेण) विशेष आत्मज्ञान से पूर्ण आत्मा द्वारा ही (समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता, जाना जाता है। तू (सन्) सत् स्वरूप (सता) सत् नित्य आत्मा से ही जाना जाता है। तू (सखा) आत्मा का परम स्नेही है, तू (सख्या) अपने मित्र आत्मा द्वारा ही जाना जाता है।

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम्।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! तेजस्विन्! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे) ज्ञानादि देने वाले (विप्राय) मेधावी विद्वान् को (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों की संख्या से युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीम् इषम्) वीरों और पुत्रों से युक्त अन्न, (देहि) प्रदान कर। इसी प्रकार वह परमेश्वर इस जीव को (सहस्रिणम्) सब सुखों और बलयुक्त प्राणों से युक्त 'रयिं' अर्थात् मूर्त्तदेह और (वीरवतीम् इषम्) प्राणों वाली इच्छा शक्ति प्रदान करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत।
इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (भ्रातः) भ्रातृवत् स्नेहकारिन्, समस्त जीवों के भरण पोषण करनेहारे! हे (सहस्कृत) सर्ववशकारी बल से सम्पन्न, हे (रोहित् अश्व) रक्तवर्ण अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाले, वेगवान् सूर्यादि पिण्डों के स्वामिन्! हे (शुचि-व्रत) शुद्धव्रत! नियमकारिन्! विद्वन्! तू (मे) मेरे (इमं स्तोमं जुषस्व) इस स्तुतिवचन को प्रेम-पूर्वक स्वीकार कर।

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते।
गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (वाश्राय प्रतिहर्यते) पुकारने वाले और माता को चाहने वाले बछड़े के लाभ के लिये (गोष्ठं गाव. इव) गोशाला मे गौओ के समान (मम स्तुतः) मेरी स्तुतियां (त्वा) तुझ को (आशत) प्राप्त हो ।

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम् विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (अंगिरस्तम) प्राणो मे मुख्य प्राणवत् वा आत्मवत् ! सर्वश्रेष्ठ ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजाएं (कामाय तुभ्यं) कामना करने योग्य, कान्तिमान् तेरे लिये ही अपने को (पृथक्) पृथक् २ दलों मे (नि येमिरे) नियंत्रित करते हैं, तुझे ही प्राप्त करने के लिये उत्तम जन अपने को वर्ण आश्रमादि की व्यवस्थाओं में बांधते है ।

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।
अद्मसद्याय हिन्विरे ॥ १९ ॥

भा०—(मेधिरासः) अन्नादि के स्वामी, (मनीषिणः) मनों को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विपश्चितः) ज्ञानवान् विद्वान् लोग (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, कर्मों तथा धारण योग्य वेदवाणियों, स्तुतियों से (अद्म-सद्याय) कालाग्नि रूप से अन्नवत् खाने योग्य, समस्त विश्व मे अधिष्ठातृ-वत् विराजने और व्यापने के अर्थ (हिन्वन्ति) तेरी स्तुति करते है । (२) यज्ञ में विद्वान् चरु ग्रहणार्थ अग्नि को बढ़ाते है । गृह मे अन्न भोजनार्थ अतिथि विद्वान् को प्रार्थना करते है ।

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।
वह्निं होतारमीळते ॥ २० ॥ ३२ ॥

भा०—लोग (त्वाम् तं) उस तुझे (वाजिनम्) वलवान्, ऐश्वर्य-वान् को. हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (अज्मेषु) संग्रामों में भी

(अध्वरं) अविनाशी (वह्निं) कार्यवहन में समर्थ (होतारम्) दाता-रूप से (ईडते) स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥

भा०—हे विभो ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओं के अनुकूल, सबका स्वामी और (पुरुत्र हि) पालने योग्य इन्द्रियों में आत्मा के समान ही (सदृङ् असि) सबको समान भाव से देखने वाला तदनुरूप है। (समत्सु) संग्रामों और हर्षावसरों में भी (त्वा हवामहे) तेरी ही प्रार्थना करते हैं।

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः।
इमं नः शृणवद्धवम् ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि (घृतैः) घृतों से (वि-भ्राजते) विशेष रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार जो वह (अग्निः) तेजःस्वरूप, स्वप्रकाश प्रभु (घृतैः) तेजोमय आत्माओं से (आ-हुतः) बुलाया, पुकारा और प्रार्थित किया जाकर (वि-भ्राजते) विशेष रूप से हृदयों में प्रकाशित होता है (तम् ईडिष्व) तू उसकी ही स्तुति किया कर। क्योंकि वही (नः) हमारी (हवम् शृणवत्) उस स्तुति को श्रवण करता है।

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम्।
अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! (जात-वेदसम्) ज्ञान में निष्णात, (शृण्वन्तं) श्रवण करने वाले और (द्विषः अप घ्नन्तम्) समस्त द्वेष करने वालों और समस्त द्वेष के भावों का विनाश करने वाले (त्वा तं) उस तुझ को (वयं) हम लोग (हवा-महे) पुकारते और स्तुति-प्रार्थना और उपासना करते हैं।

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥

भा०—(विशां राजानम्) प्रजाओ के बीच राजा के तुल्य, देह मे प्रविष्ट आत्माओ के बीच प्रकाशित होने वाले (धर्मणाम्) समस्त धर्मो के (अद्भुतम् अध्यक्ष) अद्भुत अध्यक्ष, साक्षी द्रष्टा, (अग्निम्) उस तेजस्वी प्रभु की मै (ईडे) स्तुति करूं, (सः उ श्रवत्) वह ही वस्तुतः सब कुछ सुनने वाला है ।

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।
सप्तिं न वाजयामसि ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जिस प्रकार हम (विश्वायु-वेपसं मर्यं वाजयामसि) समस्त मनुष्यो को कंपाने वाले बलवान् पुरुष को अधिक बल ऐश्वर्य से युक्त करते हैं । वा (वाजिनं सप्तिं वाजयामसि) बलशाली वेग से जाने वाले अश्व को अधिक तीव्र वेग से जाने के लिये प्रेरित करते हैं उसी प्रकार हम (विश्वायु-वेपसं) समस्त मनुष्यो को चलाने वाले, (वाजिनं) ज्ञानैश्वर्यवान् बली, (हितम्) सर्वहितकारी (सप्तिं) प्रकृति के सातो विकृतियो के स्वामी, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक को (वाजयामसि) समस्त गुणों से अलकृत करते, उसकी स्तुति करते है । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा ।
अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (मृध्राणि) हिसक (द्विपः) द्वेष करने वालों को (घ्नन्) दण्डित करता और (रक्षांसि दहन्) विघ्नकारियों को दग्ध या निर्मूल करता हुआ (तिग्मेन) तीक्ष्ण तेज से (दीदिहि) प्रकाशित हो ।

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम ।
अग्ने स बोधि मे वचः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) अति तेजस्विन् ! (अग्ने) अग्रणी नायकवत् मार्गप्रकाशक ! (यं त्वा) जिस तुझ को (जनासः) मनुष्य (मनुष्वत्) ज्ञानी के समान होकर (त्वाम् इन्धते) तुझे ही प्रज्वलित करते है (सः त्वं) वह तू (मे वचः बोधि) मेरे वचन का ज्ञान कर।

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत।
तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥ २८ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार तीन प्रकार का है, (दिविजाः) आकाश में प्रकट सूर्य, (अप्सुजाः) जलो मे प्रकट वा अन्तरिक्ष मे उत्पन्न विद्युत्, और (सहस्कृतः) बल या मथन से उत्पन्न यह अग्नि, इसी प्रकार आत्मा भी तीन प्रकार से प्रकट होता है। (१) (दिविजाः) कामना रूप से प्रकट, (२) (अप्सुजाः) प्राणों मे प्रकट, (३) (सहस्कृतः) प्रतिरोधी उष्ण शीतादि को सहन करने वाले बल रूप में प्रकट। इसी प्रकार परमेश्वर के तीन गुण, (दिविजाः) परम आकाश मे सूर्यादि का उत्पादक, (अप्सुजाः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं वा जलों मे और अन्तरिक्ष में गत पदार्थों का उत्पादक, (सहस्कृत) सर्वातिशायी, सर्वव्यवस्थापक बल होकर विश्व के उत्पादक, हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मन् प्रभो! हे उक्त तीनों विशेषणों वाले ! (तं त्वा) उस तुझ को हम (गीर्भिः) नाना उत्तम वाणियों से (हवामहे) स्तुति करते है, तेरा गुण वर्णन करते है।

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक्।
धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥ २९ ॥

भा०—(अत्तवे धासिं) भोक्ता जन को जिस प्रकार अन्न देते हैं उसी प्रकार (इमे जनाः) ये उत्पन्न हुए प्राणि, या लोक और (विश्वाः सु क्षितयः) समस्त उत्तम मनुष्य (पृथक्) पृथक् २ (तुभ्यं अत्तवे व इत्)

सब चराचर को अपने मे लेने वाले तेरी ही (धासिं हिन्वन्ति) धारणा-सामर्थ्य की स्तुति करते है ।

ते घेदग्ने स्वाध्यो३ऽहा विश्वा नृचक्षसः ।
तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, (विश्वा अहा) सब दिनों, (नृ-चक्षसः) नायक प्रभु को देखने वाले और (ते घ इत्) तेरे ही (सु-आध्यः) सुख से ध्यान, उपासना करने वाले होकर हम (दुर्ग-हा) दुःख से पार करने योग्य संकटों को (तरन्तः स्याम) पार करने वाले हों ।

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ३१

भा०—हम (मन्द्रं) स्तुत्य, आनन्दप्रद (पुरु-प्रियं) बहुतों के प्रिय, इन्द्रियों को आत्मा के तुल्य प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले (पावक-शोचि-षम्) पवित्रकारक तेज वाले, (शीरं) व्यापक, (अग्नि) अग्निवत् प्रकाशक को हम (मन्द्रेभिः) हर्षयुक्त (हृद्भिः) हृदयों से (ईमहे) प्रार्थना, स्तुति करें ।

स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ॥ ३२ ॥

भा०—(सृजन् सूर्यः न) उगते हुए सूर्य के समान (विभा-वसुः) विशेष कान्ति से आच्छादन करने वाला, दीप्तिमान् होकर हे (अग्ने) प्रकाशक ! (रश्मिभिः) अपने किरणो से (शर्धन्) बलवान् होकर (सः त्वं) वह तू (तमांसि जिघ्नसे) अन्धकारों को नाश करता है, दुःखदायी दुष्टों को दण्डित करता है ।

तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति ।
त्वदग्ने वार्यं वसु ॥ ३३ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (सहस्व) सब से महान् प्रभो ! बलवन् ! (यत्) जो (ते) तेरा (वार्यं वसु) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य कभी (न उप-दस्यति) नष्ट

नहीं होता हम (तत् ते दात्रं) वह तेरा दातव्य दान हम (त्वत् ईमहे) तुझ से मांगते हैं। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[४४]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, २०—२२, २५, २६ गायत्री। २, ५, ७, ८, ११, १४—१७, २४ निचृद् गायत्री। ९, १२, १३, १८, २८, ३० विराड् गायत्री। २७ यवमध्या गायत्री। २९ ककुम्मती गायत्री। १९, २३ पादनिचृद् गायत्री॥ त्रिंशदृच सूक्तम्॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (समिधा घृतैः अग्नि) जिस प्रकार यज्ञाग्नि को समिधा और घृताहुतियों से परिचरण करते और (हव्या जुहोतन) उत्तम हव्य चरु की आहुति देते हो उसी प्रकार आप लोग (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (अग्निं) ज्ञानवान् विद्वान् की (समिधा) समित्पाणि होकर (घृतैः) ज्ञानप्रकाशों और स्नेहों के निमित्त (दुवस्यत) उसकी सेवा परिचर्या करो। (अस्मिन्) उसके निमित्त (हव्या आ जुहोतन) उत्तम २ ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना।
प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! तू (मे स्तोमं जुषस्व) मेरी स्तुति को स्वीकार कर। और (अनेन मन्मना) इस मनन करने योग्य ज्ञान से (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो। (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तों, उत्तम वचनों को तू चाह और हमें उत्तम वचनो का उपदेश कर।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे।
देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई (अग्निं दूतं पुरो धत्ते) तप्त अग्नि को आगे स्थापित करता है और अग्नि (देवान् आसादयति) प्रकाशक किरणों को प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं (पुरः) अपने समक्ष (दूतं) स्तुति योग्य (हव्य वाहम्) स्तुत्य गुणो के धारक, ज्ञानप्रकाशक गुरु और प्रभु को धारण करूं और (उप ब्रुवे) उसकी स्तुति करूं। वह (इह) इस अन्तःकरण मे (देवान् आसादयत्) शुभ गुणो, ज्ञानों को प्राप्त करावे।

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः। अग्ने शुक्रास ईरते ४

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तपस्विन् ! हे (दीदिवः) कान्तियुक्त ! हे उज्वल चरित्र, जिस प्रकार (समिधानस्य बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उत् ईरते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए अग्नि की बहुत बड़ी, २ प्रदीप्त ज्वालाएं ऊपर उठती है और जिस प्रकार सूर्य की उज्ज्वल कान्तियें ऊपर को उठती है और जिस प्रकार (शुक्रासः उत् ईरते) पृथिवीस्थ जल भी ऊपर को उठते हैं उसी प्रकार (समिधानस्य) अति तेजस्वी (ते) तेरे (बृहन्तः) प्रवृद्ध (अर्चयः) उत्तम कान्तिएं और (शुक्रासः) शुक्र अर्थात् वीर्य (उत् ईरते) ऊपर मस्तक की ओर जाते हैं।

उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत।
अग्ने हव्या जुषस्व नः॥ ५॥ ३६॥

भा—जिस प्रकार (घृताचीः जुह्व अग्निं यन्ति) घृत वाली जुहू नाम स्रुचाएं यज्ञ-काल में अग्नि को प्राप्त होती है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! हे (हर्यत) कान्तियुक्त ! उत्तम कामनावान् ! (मम) मेरी (घृताचीः) स्नेहयुक्त (जुह्वः) वाणियां (त्वा उप यन्तु) तुझे प्राप्त हों। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (नः हव्या) हमारे दिये अन्नादि दातव्य पदार्थों को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीळे स उ श्रवत्॥ ६॥

भा०—मै (मन्द्रं) सुखजनक, (होतारम्) सुखों और ज्ञानों के देने वाले, (ऋत्विजं) ऋतु २ मे यज्ञ करने वाले, (चित्र-भानुं) अद्भुत, सौम्य कान्तियुक्त (विभा-वसुम्) दीप्तियुक्त धन के स्वामी, (अग्निम् ईडे) प्रमुख तेजस्वी पुरुष की स्तुति करता हूं, उसको चाहता हूं। (सः उ श्रवत्) वह ही हमारी प्रार्थना श्रवण करे।

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम् ।
अध्वराणामभिश्रियम् ॥ ७ ॥

भा०—मैं (प्रत्नं) पुराण, नित्य, सर्वश्रेष्ठ, (होतारम्) ज्ञानों, ऐश्वर्यों के देने वाले, (ईड्यं) स्तुत्य, (जुष्टं) सेवा करने योग्य, (कवि-क्रतुम्) दूरदर्शी विद्वान् के समान ज्ञान और कर्म से युक्त, विद्वानों को भी ज्ञान देने वाले, (अध्वराणां) यज्ञों के आश्रय, देवपूजा, सत्कार आदि के सत्पात्र की स्तुति करता हूं।

जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् ।
अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अंगिरःतम) प्राणों के प्राण ! हे (अग्ने) सबके नेतः ! तू (आनुषक्) निरन्तर (हव्यानि जुषाणः) उत्तम ग्राह्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, स्तुतिवचन, अन्नादि का सेवन करता हुआ (ऋतुथा) ऋतु अनुसार (यज्ञं नय) यज्ञ को चला।

समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह ।
चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (सन्त्य) आदरसत्कार, सत्संगादि से सेवने योग्य ! हे (शुक्र-शोचे) शुद्ध कान्तियुक्त ! वीर्य की उज्ज्वल कान्ति से युक्त ब्रह्म-चारिन् ! तू (चिकित्वान्) विद्वान् होकर (सम्-इधानः) अग्निवत् देदी-प्यमान होकर (दैव्यं जनं) उत्तम विद्वान् जनों को (इह आ वह) यहां प्राप्त करा।

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।
यज्ञानां केतुमीमहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हम (विप्रम्) विद्वान् (होतारम्) ज्ञानप्रद, उत्तम उपदेष्टा, (अद्रुहं) द्रोहरहित, अहिंसापरायण, निर्द्वेष, (धूम-केतुम्) अज्ञान मोहादि के नाशक, सत् ज्ञान से युक्त, (विभा-वसुम्) विशेष कान्ति से युक्त, कान्ति से अन्यों को आच्छादित वा प्रभावित करने वाले, (यज्ञानां केतुम्) यज्ञों के जानने वाले विद्वान् वा प्रभु से हम (ईमहे) याचना करें । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः ।
भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥ ११ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! विजिगीषो ! कान्तियुक्त ! हे (अग्ने) अग्रणी ! (त्वं) तू (नः) हमें (रीषतः) हिंसक पुरुष से (नि पाहि) रक्षा कर, बचा और उसका (प्रति) मुकाबला कर । हे (सहस्कृत) बल से सम्पन्न ! तू (नः) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (भिन्धि) छिन्न भिन्न कर, उनमें भेद नीति का प्रयोग कर ।

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी वा ज्ञानी (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुष (प्रत्नेन मन्मना) अनादि ज्ञान वेद से (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपने देह, मुख आदि को सुशोभित करता हुआ (विप्रेण) विद्वान् पुरुष के संग से (ववृधे) बढ़ता है ।

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ १३ ॥

भा०—(अस्मिन् सु-अध्वरे यज्ञे) इस अविनाशी, प्रबल यज्ञ में, (पावक शोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (ऊर्जः नपातम्) बल के

उत्पादक, बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, (अग्नि) अग्रणी नायक पुरुष को (आहुवे) आदरपूर्वक बुलाऊं और प्रमुख रूप से स्वीकार करूं।

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (त्वम्) तू (मित्रमहः) मित्रों का आदर करने वाला और मित्रो से स्वयं पूजित होकर (शुक्रेण शोचिषा) उज्ज्वल कान्ति से युक्त होकर (नः) हमारे (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र और उत्तमासन पर (देवैः) विद्वान् विजय के इच्छुक पुरुषों सहित (आ सत्सि) आदरपूर्वक प्रतिष्ठित हो।

यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति।
तस्मा इद्दीदयद्वसु ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः मर्त्तः) जो मनुष्य (दमे) गृह में अथवा (तन्वः दमे) शरीर के अंगों को दमन करने के लिये (अग्नि देवं) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक, (देवं) ज्ञानी, दाता, विद्वान् और प्रभु की (सपर्यति) सेवा शुश्रूषा करता है (तस्मै इत्) उसी के लिये वह (वसु दीदयत्) ज्ञानमय धन का प्रदान करता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १६ ॥

भा०—(अयम्) यह (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (दिवः ककुत्) ज्ञान में श्रेष्ठ, आकाश मे सूर्यवत् उन्नत, (मूर्धा) शिर के समान सर्वोपरि विराजमान, (अग्निः) अग्रणी विद्वान् (अपां) आप्त पुरुषों के बीच रहकर (रेतांसि जिन्वति) वीर्यों का पालन करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे। (२) वीर पुरुष प्रजाओं के बीच धनों और बलों की वृद्धि करे। (३) सूर्य अपने तेज से अन्तरिक्ष के बलों को पूर्ण करता, और आकाशस्थ वायु को वर्षणार्थ तैयार करता है।

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव शुचयः) तेरे शुद्ध चरित्र, (शुक्राः) जलो या तेजो के समान (उत् ईरते) शुद्ध रूप से प्रकट होते हैं और (तव ज्योतींषि) तेरे तेज, (तव अर्चयः) तेरे आदरसत्कार भी अग्नि के प्रकाश में और ज्वालाओं के समान (उत् ईरते) उत्तम रीति से प्रकट होते है ।

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ १८ ॥

भा०—(हि) क्योंकि हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (स्वः पतिः) समस्त सुखों का पालक, स्वामी है और तू ही (वार्यस्य दात्रस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ दातव्य धन का भी (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुखमय शरण में रहकर (तव स्तोता स्याम्) तेरी स्तुति करने वाला होऊं ।

त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग मे चलाने वाले, ज्ञान के अभिलाषी (त्वां) तुझे चाहते है । (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझे कर्मों से प्रसन्न करते है । (नः गिरः) हमारी वाणिये भी (त्वां वर्धन्तु) तुझे ही बढ़ावे, तेरा ही गुणगान करे ।

अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा ।
अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥ २० ॥ ३९ ॥

भा०—(अदब्धस्य) विनाशरहित, (स्वधावतः) स्वयं जगत् को धारण करने वाली शक्ति से युक्त (दूतस्य) दुष्टों को संताप देने वाले,

(रेभतः) ज्ञान का उपदेश देने वाले, (अग्नेः) तुझ तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष के (सख्यं) मैत्रीभाव की हम (सदा वृणीमहे) सदा याचना करें। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

भा०—(शुचिव्रत-तमः) अत्यन्त शुद्ध पवित्र कर्मों वाला पुरुष, (विप्रः शुचिः) शुद्ध चरित्रवान्, विद्वान् (शुचिः कविः) शुद्ध चरित्रवान्, क्रान्तदर्शी, तत्व ज्ञानी पुरुष (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी (आहुतः) आहुति किये अग्नि के समान ही सत् दान प्राप्त कर (राचते) प्रकाशित होते, और सबके मन को अच्छा लगता है ।

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा ।
अग्ने सख्यस्य वोधि नः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! हे विद्वन् ! (मम) मेरे (धीतयः) उत्तम कर्म, और (मम गिरः) मेरी वाणियां (त्वा विश्वहा वर्धन्तु) तुझे सदा बढ़ावें और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्रभाव को सदा जान ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे प्रभो ! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मै तू हो जाऊं (त्वं वा घ अहम् स्याः) और तू मै बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशिषः सत्याः स्युः) तेरी कामनाए, वा तेरे विषय मे मेरी भावनाएं सत्य हो ।

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि २४

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विभा-वसुः) दीप्तियुक्त, दीप्ति से जगत् भर को आच्छादित करने हारा, (वसुः) सर्वव्यापक और

(वसु-पतिः) समस्त वसु, जीवों का पालक, (असि) है। हम भी (ते सुमतौ स्याम) तेरी शुभ मति और उत्तम ज्ञान में रहें।

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः ।
गिरो वाश्रास ईरते ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—(धृत-व्रताय समुद्राय सिन्धवः इव) जल को धारण करने वाले समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदी वेग से (ईरते) चलती है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (धृत-व्रताय) व्रतों कर्मों के धारक (ते) तेरे लिये ही (वाश्रासः गिरः) शब्दमय वाणियां (ईरते) निकलती हैं। तेरी स्तुतियां अनायास हृदय में उठती हैं। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् ।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥

भा०—मैं (युवानं) बलवान्, (विश्पतिं) प्रजाओं के पालक, (कविं) विद्वान् मेधावी, (विश्व-अदं) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाले, (पुरु-वेपसम्) नाना कर्म करने वाले, (अग्निं) तेजःस्वरूप, ज्ञान प्रकाशक प्रभु को (मन्मभिः) मन्त्रों से अलंकृत करता हूं।

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७॥

भा०—(यज्ञानां) यज्ञों के बीच (रथ्ये) रथी के समान नायक, (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्ण वशकारी साधनों से सम्पन्न, (वीडवे) बलवान्, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी प्रभु को हम (स्तोमैः इषेम) स्तुति योग्य वचनों से सदा चाहें।

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय॥२८॥

भा०—हे (सन्त्य) उपास्य ! (अग्ने) स्वप्रकाश ! (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता (ते अपि-भूतु) तेरे में अप्यय या मग्नता को प्राप्त हो, हे (पावक) पवित्र करने हारे परम पावन ! (तस्मै मृड) तू उसको सुखी कर।

(रेभतः) ज्ञान का उपदेश देने वाले, (अग्नेः) तुझ तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष के (सख्यं) मैत्रीभाव की हम (सदा वृणीमहे) सदा याचना करें। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

भा०—(शुचिव्रत-तमः) अत्यन्त शुद्ध पवित्र कर्मों वाला पुरुष, (विप्रः शुचिः) शुद्ध चरित्रवान्, विद्वान् (शुचिः कविः) शुद्ध चरित्रवान्, क्रान्तदर्शी, तत्व ज्ञानी पुरुष (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी (आहुतः) आहुति किये अग्नि के समान ही सत् दान प्राप्त कर (राचते) प्रकाशित होते, और सबके मन को अच्छा लगता है ।

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा ।
अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! हे विद्वन् ! (मम) मेरे (धीतयः) उत्तम कर्म, और (मम गिरः) मेरी वाणियां (त्वा विश्वहा वर्धन्तु) तुझे सदा बढ़ावें और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्रभाव को सदा जान ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे प्रभो ! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं (त्वं वा घ अहम् स्याः) और तू मैं बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशिषः सत्याः स्यु) तेरी कामनाएं, वा तेरे विषय में मेरी भावनाएं सत्य हों ।

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि २४

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विभा-वसु.) दीप्तियुक्त, दीप्ति से जगत् भर को आच्छादित करने हारा, (वसु.) सर्वव्यापक और

(वसु-पतिः) समस्त वसु, जीवों का पालक, (असि) है। हम भी (ते सुमतौ स्याम) तेरी शुभ मति और उत्तम ज्ञान मे रहें।

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः।
गिरो वाश्रास ईरते ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—(धृत-व्रताय समुद्राय सिन्धवः इव) जल को धारण करने वाले समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदी वेग से (ईरते) चलती है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (धृत-व्रताय) व्रतों कर्मों के धारक (ते) तेरे लिये ही (वाश्रासः गिरः) शब्दमय वाणियां (ईरते) निकलती हैं। तेरी स्तुतियां अनायास हृदय मे उठती है। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥

भा०—मै (युवानं) बलवान्, (विश्पतिं) प्रजाओ के पालक, (कवि) विद्वान् मेधावी, (विश्व-अदं) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाले, (पुरु-वेपसम्) नाना कर्म करने वाले, (अग्नि) तेजःस्वरूप, ज्ञान प्रकाशक प्रभु को (मन्मभिः) मन्त्रों से अलंकृत करता हूं।

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे। स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७॥

भा०—(यज्ञानां) यज्ञो के बीच (रथ्ये) रथी के समान नायक, (तिग्म जम्भाय) तीक्ष्ण वशकारी साधनों से सम्पन्न, (वीडवे) बलवान्, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी प्रभु को हम (स्तोमैः इषेम) स्तुति योग्य वचनों से सदा चाहे।

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य। तस्मै पावक मृळय॥२८॥

भा०—हे (सन्त्य) उपास्य! (अग्ने) स्वप्रकाश! (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता (ते अपि-भूतु) तेरे मे अप्यय या मग्नता को प्राप्त हो, हे (पावक) पवित्र करने हारे परम पावन! (तस्मै मृड) तू उसको सुखी कर।

वति ब्रुन्दो वा, भिन्दो वा, भयदो वा, भासमानो द्रवतीति वा ॥ नि०
६ । ६ । ४ ॥

प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।
यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वा प्रति) तेरे प्रति (शवसी) बलवती सेना (अवदत) कहे कि (यः) जो (ते शत्रुत्वम् आचके) तेरी शत्रुता चाहता है उससे तू (गिरौ) मेघ में विद्यमान (अप्सः न) रूपयुक्त तेजस्वी विद्युत् के समान (योधिषत्) प्रहार कर । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् ।
यद्वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत त्वं शृणु) और तू श्रवण कर, (यः ते वष्टि) जो तुझ से किसी पदार्थ की कामना करे उसे तू (तत् ववक्षि) वह पदार्थ प्रदान कर । तू (यद् वीडयासि) जिसको बलवान् करे (तत् वीडु) वह सैन्य भी बलवान्, दृढ़ हो जावे ।

यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु नाशकारी सेनापति (यत्) जब या जो (आजिं याति) युद्ध के लिये प्रयाण करता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (आजिकृत्) युद्ध करने मे कुशल, (सु- अश्वयुः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी और (रथीनाम् रथीतम.) रथवान् योद्धाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ रथी, महारथी हो ।

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह ।
भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवीर्य से सम्पन्न, शस्त्रबल के स्वामिन् ! तू (विश्वा अभि-युज) समस्त आक्रमणकुशल सेनाओं को (विश्वक्) जिस प्रकार हो उसी प्रकार सब ओर (वि सु वृह) विविध प्रका[illegible]

से और अच्छी प्रकार उद्यमन कर, उनको सुसज्जित खड़ा रख। और तू (नः) हमारे बीच (सु-श्रवस्तमः भव) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और धनैश्वर्यादिवान् हो।

अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये।
न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥

भा०—(यं धूर्तयः) जिसको हिंसक जन (न धूर्वन्ति) नाश न कर सकें वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति होकर (अस्माकं सातये) हमारे अभीष्ट लाभ के लिये (रथं पुरः सु कृणोतु) हमारे रथ सैन्य को आगे अच्छी प्रकार करे।

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने।
गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥ ४३ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हम (ते द्विषः) तेरे शत्रुओं को (अरं) खूब (परि वृज्याम) दूर करें। (गोमतः ते) भूमि, वाणी [हुकूमत] और गवादि पशु सम्पन्न जितेन्द्रिय (ते दावने) तेरे दिये अन्न, भूमि, ज्ञान, शासन, वेतनादि प्राप्त करने के लिये (ते गमेम इत्) तुझे अवश्य प्राप्त करें।

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः।
विवक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) बलवन्, शक्तिशालिन्! हम (शनैः चित् यन्तः) शनैः २ जाते हुए, (अश्वावन्तः) अश्वों वाले, (शतग्विनः) सौ २ भूमियों वा सौ २ गायों के स्वामी, वा शतवर्षजीवी, (अनेहसः) निष्पाप और (विवक्षणाः) राष्ट्र में विशेष अधिकार पद को धारण करने वाले होवें। युद्धादि में विशेष पराक्रमी लोग अवश्य बल, अधिकार और ऐश्वर्यादि चाहते हैं।

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता।
जरितृभ्यो विमंहते ॥ १२ ॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तब भी तू (नः) हमें (गो-दाः) उत्तम वाणी देने हारा होकर हमें (बोधि) ज्ञान प्रदान कर ।

आ त्वा॑ र॒म्भं न जिव्र॑यो रर॒म्भा श॑वसस्पते ।
उ॒श्मसि॑ त्वा स॒धस्थ॒ आ ॥ २० ॥ ४५ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल और ज्ञान के पालक ! (जिव्रयः रम्भं न) बूढे जिस प्रकार दण्ड का आश्रय लेते है उसी प्रकार हम (त्वा आ ररम्भ) तेरा आश्रय लेवे । (सधस्थे) सब स्थानों में हम (त्वा आ उश्मसि) तेरी ही सदा कामना करते है । इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

स्तो॒त्रमिन्द्रा॑य गायत पुरुनृ॒म्णाय॒ सत्व॑ने ।
नकि॒र्यं वृ॑ण्व॒ते यु॒धि ॥ २१ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यं) जिसको (युधि) युद्ध मे (नकिः वृण्वते) कोई रोक नहीं सकता, उस (सत्वने) बलशाली, (पुरु-नृम्णाय) बहुत धनों के स्वामी, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (स्तोत्रं गायत) स्तुति-वचन, प्रशंसा का गान करो ।

अ॒भि त्वा॑ वृषभा सु॒ते सु॒तं सृ॑जामि पी॒तये॑ ।
तृ॒म्पा व्य॑श्नुही॒ मद॑म् ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवन् ! (सुतं त्वा) अभिषिक्त (सुते) ऐश्वर्ययुक्त इस पद पर (पीतये) रक्षा करने के लिये (अभि सृजामि) तुझे नियुक्त करता हूं । तू (मदम् वि अश्नुहि) सुख आनन्द विविध प्रकार से प्राप्त कर और (तृम्प) तृप्तिकारक आनन्द का भोग कर ।

मा त्वा॑ मू॒रा अ॑वि॒ष्यवो॒ मोप॒हस्वा॑न॒ आ द॑भन् ।
मा कीं॑ ब्रह्म॒द्विषो॑ वनः ॥ २३ ॥

भा०—(अविष्यवः) हिंसाशील (मूराः) घातक लोग (त्वा मा आदभन्) तुझे नाश न करें और (मा उपहस्वानः) उपहास करें

वाले जन भी तुझे हानि न पहुंचावे। (ब्रह्म-द्विषः) वेद के, ब्राह्मण वर्ग के और तेरे धन के द्वेषी जनो का तू (माकी वनः) संग मत कर।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।
सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन्! (इह) इस राष्ट्र मे या हे विद्वन्! इस उत्तम पद पर (गो-परीणसा) भूमि या वाणी के महान् बल से (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करे। (यथा गौरः सरः) तालाव के जल को मृग जिस प्रकार यथेच्छ पीता है उसी प्रकार तू भी (गौरः) पृथ्वी पर या ज्ञान-वाणी मे रमण करता हुआ (सरः) प्रशस्त ज्ञानरूप जल का (पिब) पान कर।

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे।
ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥ ४६ ॥

भा०—(वृत्रहा) दुष्टों का नाशक सेनापति विघ्नादि का नाश करके सफल विद्वान् (परावति) दूर देश में भी (या) जिन (सना) सनातन से चले आये धनों और ज्ञानों को (नवा च) और नये ऐश्वर्यों और नये तत्वों को (चुच्युवे) प्राप्त करे (ता) उनको (संसत्सु) सभाओं, परिपदों में (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उत्तम आदर से कहो, जिससे उनका यश हो, श्रोताओं को ज्ञान प्राप्त हो। राजा और विद्वान् के श्रम, संकटों, और विघ्नों को पार करके प्राप्त नये पुराने अन्वेपणों की सभा आदि में चर्चा करते रहना चाहिये। इससे उत्साह की वृद्धि होती है। इति पट्चत्वारिंशो वर्गः ॥

आपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का हन्ता वा सत्य ज्ञान का द्रष्टा पुरुप (कद्रुवः) उपदेष्टा विद्वान् के (सुतम्) प्रकट किये ज्ञान को भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य, अन्नादि के समान (सहस्र-बाह्वे) सहस्रों वा बल-

शाली बाहुबल की वृद्धि के लिये (अपिबत्) पान करे। (अत्र) इस प्रकार उसका इस लोक मे (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमकता है।

कद्रूः—इयं पृथिवी (श० ३। ६। २। २॥)। कत्रते उपदिशति असौ कद्रूः, उपदेष्टा ब्रह्मविद्या वा। उणादिपाठे जम्वादिषु निपातितः।

स॒त्यं तत्तु॒र्वशे॑ यदौ॒ विदा॑नो अह्नवा॒य्यम्। व्या॑नट् तु॒र्वणे॒ शमि॑ २७

भा०—विद्वान् वा राजा पुरुष (तुर्वशे) चारों अर्थों को चाहने वाले यत्नवान् जन में (सत्यं) यथार्थ ज्ञान और (अह्नवाय्यं) दिन भर में करने योग्य कार्य की मात्रा को ठीक २ प्रकार से (विदानः) जानता हुआ (तुर्वणे) शीघ्र कार्य करने में कुशल पुरुष पुरुष पर (शमि) कार्य का (वि-आनट्) विभाग करे।

त॒र॒णिं वो॒ जना॑नां त्र॒दं वाज॑स्य॒ गोम॑तः। स॒मा॒नमु॒ प्र शं॑सिषम् २८

भा०—मैं (जनानां वः) आप लोगों के बीच (तरणि) संकटों से पार उतारने वाले (त्रदं) शत्रु के नाशक और (गोमतः वाजस्य) भूमि से युक्त ऐश्वर्य के दाता की भी (समानम् उ प्रशंसिषम्) समान रूप से, आदरपूर्वक प्रशंसा करता हूं।

ऋ॒भु॒क्षणं॒ न वर्त॑व उ॒क्थेषु॑ तुग्र्या॒वृध॑म्।
इन्द्रं॒ सोमे॒ सचा॑ सु॒ते ॥ २९ ॥

भा०—(सोमे) सोम, अर्थात् पुत्रवत् शासन करने योग्य पुत्र के (सुते) अभिषेक कर देने पर (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्र्यावृधम्) शत्रु की हिंसा करने वाली, बल बढ़ाने वाली, राष्ट्र का पालन करने वाली, राजा प्रजा को आश्रय देने वाली, शक्ति को बढ़ाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा को (वर्त्तवे) वरण करने के लिये (उक्थेषु) उत्तम २ वचनों में उसकी (सचा) एक साथ मिलकर प्रशंसा करें, उसका गुणानुवाद करें।

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥ ४७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी मेघ को (वि कृन्तत्) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता और (गोभ्यः निरेतवे गातुं) किरणों के निकलने के लिये मार्ग बना लेता है, उसी प्रकार (यः) जो पराक्रमी पुरुष (त्रि-शोकाय) तीनों प्रकार के तेजों को प्राप्त करने के लिये, (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वत को, (विकृन्तत्) विविध स्थानों से काटता और (गोभ्यः निरेतवे) वेगयुक्त जलधाराओ के निकलने के लिये मार्ग, भूमि तैयार करता है वही राजा श्रेष्ठ है उसी की प्रशंसा करें। इसी प्रकार परमेश्वर भी (त्रि-शोकाय) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों स्थानों मे प्रकट होने वाले जीव के लिये (योन्यं) योनि अर्थात् गृहवत् देहमय (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वतवत् पिण्ड को (विकृन्तत्) विविध प्रकार से छेदन करता और (गोभ्यः) इन्द्रियों के (निरेतवे) वाहर निकलने के लिये चक्षु नाक आदि के (गातुं) द्वार वनाता है वही आत्मा प्रभु गुण-गान करने योग्य है। अध्यात्म का इस पक्ष का स्पष्टीकरण देखो ऐतरेय उपनिषत् में इन्द्रिय-भेद प्रकरण। इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।
मा तत्करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (यत्) जिस जगत् वा देह को आत्मवत् तू (दधिषे) धारण करता है, (यत् मनस्यसि) जिसको तू मनन द्वारा संकल्प करता है और (मन्दानः) हर्षित होकर (यत् प्र इयक्षसि इत्) प्राप्त या व्याप्त होता है, (मा तत् क·) क्या तू उसको नहीं वनाता, अथवा हे प्रभो स्वामिन् ! तू (तत् मा क) उसे तू नाश मत कर। (मृडय) उस जगत् को तू सुखी कर।

द॒भ्रं चि॒द्धि त्वाव॑तः कृ॒तं शृ॒ण्वे अधि॒ क्षमि॑।
जिगा॑त्विन्द्र ते॒ मनः॑ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी का (दभ्रं चित्) थोड़ा भी (कृतं) किया कार्य (अधि क्षमि) भूमि पर (शृण्वे) प्रसिद्ध सुना जाता है (ते मनः) तेरा मन (जिगातु) आगे बढ़े ।

तवेदु॒ ताः सु॑की॒र्तयोऽस॑न्नु॒त प्रश॑स्तयः ।
यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः ॥ ३३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है (ताः सुकीर्तयः) वे नाना उत्तम कीर्त्तियां और (उत प्रशस्तयः) उत्तम प्रशंसाएं भी (तव इत्) तेरी ही है ।

मा न॒ एक॑स्मि॒न्नाग॑सि॒ मा द्वयो॑रु॒त त्रि॒षु।
व॒धीर्मा॑ शूर॒ भूरि॑षु ॥ ३४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (एकस्मिन् आगसि) एक अपराध पर (नः मा वधीः) हम प्रजाओं को पीड़ित मत कर, (मा द्वयोः) दो अपराधों पर भी हम सबको पीड़ित मत कर, (उत त्रिषु) और तीन अपराधों पर हम सब को पीड़ित मात कर (भूरिषु) बहुत अधिक अपराध होने पर भी हम सबको दण्डित मत कर, प्रत्युत जिसका अपराध हो उसी को न्यायानुसार दण्डित्त कर ।

बि॒भया॒ हि त्वाव॑त उ॒ग्राद॑भिप्रभ॒ङ्गिणः॑ ।
द॒स्माद॒हमृ॑ती॒षहः॑ ॥ ३५ ॥ ४८ ॥

भा०—(ऋति-सहः) शत्रुकृत हिंसा वा हिंसक सेनाओं को पराजित करने में समर्थ, (अभि-प्र-भङ्गिणः) आगे आये शत्रु को अच्छी प्रकार विनाश कर देने वाले, (दस्मात्) शत्रुनाशक, (उग्रात् त्वावतः) तुझ जैसे बलवान् प्रचण्ड स्वामी से, (बिभया हि) मैं सदा भय करूं ।

सब पीड़ाओं को मिटा देने से "ऋतीसह" और विश्व भर के सब संकटों को प्रलय करने मे समर्थ होने से 'अभि-प्रभङ्गी' है। इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः॥

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो।
आवृत्वद्भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥

भा०—हे (प्रभु-वसो) प्रभूत धन के स्वामिन्! प्रचुर प्रजा के स्वामिन्! मैं (सख्युः शूनम् मा आ विदे) मित्र के सुखकारक धन को न अपहरण करूं। (पुत्रस्य मा) मैं पुत्र के धन को भी अपहरण न करूं। (ते मनः) तेरा मन (आवृत्वत् भूतु) हमारी ओर आने वाला, प्रेम अनुराग से युक्त हो।

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत्।
जहा को अस्मदीषते ॥ ३७ ॥

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो! (कः सखा) कौन मित्र स्नेही (अमिथितः) विना अनादर युक्त वचन कहा जाकर ही (सखायम् अब्रवीत्) अपने मित्र को कह सकता है। (कः जहा) कौन किसको मारता है (क अस्मत् ईषते) कौन हम से विना ताड़ित हुए भयभीत होकर भागता है? जब कोई किसी का नहीं मारता तो कोई किसी से भय खा कर भी नहीं भागता और न कोई किसी पर उपालम्भ देता है।

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः। श्वघ्नीव निवता चरन् ३८

भा०—(श्वघ्नी इव) अपना द्रव्य नाश करने वाला, वा अपने आश्रित जन को मारने वाला, जिस प्रकार (निवता चरन्) लज्जा से नीचा मुख करके चलता है, हे (वृषभ) पुरुष (एवारे) आदरों से प्राप्त होने योग्य तेरे (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त होजाने पर, (आवयः) नाना रक्षक जन (भूरि असिन्वन्) बहुत बाध लेते हैं और (निवता चरन्) नम्र शिर होकर आचरण करते हैं।

आ ते एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा ।
यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥ ३९ ॥

भा०—(यत्) जो तू (ब्रह्मभ्यः) विद्वान् वेदज्ञ पुरुषों के हितार्थ (ईं ददः) यह सब देता है इसलिये (ते) तेरे (एता) इन (वचोयुजा) वाणीमात्र से लगने वाले (सुमद्-रथा) उत्तम बल युक्त रथों वाले, (हरी) अश्वों के समान उत्तम देहवान् स्त्री पुरुषों को (आगृभ्णे) तेरे अधीन करता हूं ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४० ॥

भा०—(विश्वाः द्विषः अप भिन्धि) सब शत्रुओं को छिन्न भिन्न करके दूर कर । (परि बाधः) पीड़ित कर और (मृधः जहि) हिंसकों का नाश कर । (तत् स्पार्हं वसु आ भर) वह नाना उत्तम चाहने योग्य ऐश्वर्य हमे प्राप्त करा ।

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् वसु) जो ऐश्वर्य वा ज्ञान (वीडौ) बलवान् पुरुष मे, (यत् स्थिरे) जो स्थिर शासक में, (यत् पर्शाने) जो विचारशील पुरुष में (स्पार्हं) अभिलाषा करने योग्य (पराभृतम्) विद्यमान है, तू हमे (तत् आ भर) वह प्राप्त करा ।

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४२ ॥ ४९ ॥ ३ ॥

भा—हे स्वामिन् ! (ते दत्तस्य) तेरे दिये (यस्य भूरेः) जिस बहुत से ऐश्वर्य को (विश्व-मानुषः) समस्त मनुष्य जानते और प्राप्त करते है तू वह (स्पार्हं वसु आ भर) चाहने योग्य उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

[४६]

वशोऽश्व्य ऋषिः ॥ देवताः—१—२०, २६—३१, ३३ इन्द्रः । २१—२४ पृथुश्रवसः कानीनस्य दानस्तुतिः । २५—२८, ३२ वायुः ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, १०, १५, २६ विराड् गायत्री । ३, २३ गायत्री । ४ प्रतिष्ठा गायत्री । ६, १३, ३३ निचृद् गायत्री । ३० आर्ची स्वराट् गायत्री । ३१ स्वराड् गायत्री । ५ निचृदुष्णिक् । १६ भुरिगुष्णिक् । ७, २०, २७, २८ निचृद् बृहती । ९, २६ स्वराड् बृहती । ११, १४ विराड् बृहती । २१, २५, ३२ बृहती । ८ विराडनुष्टुप् । १८ अनुष्टुप् । १९ भुरिगनुष्टुप् । १२, २२, २४ निचृत् पङ्क्ति । १७ जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरूवसो) बहुत से धनों और प्रजाओं के स्वामिन् ! हे (हरीणां प्रणेतः) मनुष्यों के उत्तम नायक ! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले ! हे (स्थातः) अधिष्ठातः ! (वयं) हम (त्वावतः स्मसि) तेरे जैसे स्वामी की प्रजा होकर रहें ।

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् ।
विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! मेघवत् उदार पुरुषों के स्वामिन् ! हम (त्वां हि) तुझ को ही (सत्यम्) सच्चा (इषां दातारम्) अन्नों और सफल इच्छाओं, कामनाओं का देने वाला, (विद्म) जानें और (त्वां रयीणां दातारं विद्म) तुझको ही समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला जानें।

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो ।
गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को

(कारवः) विद्वान् जन (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्ति) बतलाते हैं (शतम् ऊते) सैकड़ों रक्षाओं से सम्पन्न ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजाओं और कर्म समार्थ्यों से युक्त उस तुझको ही हम सच्चा अन्नदाता, अभीष्ट-प्रद और ऐश्वर्यदाता जाने ।

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥४॥

भा०—(यं) जिस मनुष्य को (मरुतः) विद्वान् लोग (यम् अर्यमा) जिसको न्यायकारी पुरुष और (मित्रः) स्नेहवान् जन (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (घ) अवश्य (सुनीथः) शुभ मार्ग में जाता है, उत्तम वाणी प्राप्त करता और उत्तम चक्षुष्मान् है । वही उत्तम यज्ञ करता है ।

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते ।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—और वह पुरुष (गोमत्) गौ आदि पशुओं से समृद्ध (अश्व-वत्) अश्वादि साधनों से युक्त, (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को (दधानः) धारण करता हुआ (आदित्य-जूतः) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान्, अखण्ड शक्ति के धारक और उपासक पुरुषों से प्रेरित (पुरु-स्पृहा राया) बहुतों से चाहने योग्य धनैश्वर्य से (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

भा०—हम (तम्) उस (रायः ईशानम्) धन के स्वामी, (शव-सानम्) बलशाली (अभीर्वम्) अभीरु, निर्भीक, किसी से भय न करने वाले (इन्द्रं) शत्रुनाशी, ऐश्वर्य वाले, सत्यदर्शी स्वामी पुरुष को प्राप्त कर उससे (दानम् ईमहे) दातव्य धन और ज्ञान की याचना करें ।

तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—(तस्मिन् हि) उसके अधीन, (विश्वाः ऊतयः) समस्त ऐसी रक्षक शक्तियां (सचा) सदा समवाय से रहती और (अभीरवः) भयरहित, अन्य से भय न करने वाली (सन्ति) है। (तम्) उस (पुरु-वसुम्) बहुत सी बसी प्रजा के अनेक धनों के स्वामी (सुतम्) अभि-षिक्त पुरुष को (सप्तयः हरयः) उसके शरणागत मनुष्य (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (आ वहन्तु) सारथि को अश्ववत् अपने ऊपर धारण करे, उसे प्रमुख बनावे। अथवा—वे उसे बहुत ऐश्वर्य प्राप्त करावें।

यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः।
य आददिः स्व१र्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) हर्ष वा प्रसन्न होने का साधन शासन है (यः वृत्रहन्तमः) जो दुष्टों का अत्यन्त नाशकारी है, (यः) जो (नृभिः) उत्तम नायक पुरुषों द्वारा (स्वः) सुख और तेज को (आ ददिः) प्राप्त करने वाला, और (यः) जो (पृतनासु) संग्रामों मे भी (दुस्तरः) शत्रुओं से पराजित न होने वाला है वह (वरेण्य.) सर्वश्रेष्ठ है।

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे॥ ९॥

भा०—हे (विश्व वार) सबसे वरण करने योग्य ! हे सब दुःखों को वारण करने वाले ! (यः) जो (दुस्तरः) कभी पराजित न होने वाला, (वाजेषु) संग्रामों वा ज्ञानों मे (श्रवाय्य.) श्रवण करने योग्य, सुप्र-सिद्ध, (तरुता अस्ति) सब शत्रुओ का हिंसक और समस्त प्रजा को पार उता-रने वाला है, (सः) वह तू हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (वसो) सब मे बसे, सबको बसाने वाले ! (नः गहि) हमारे (सवना) ऐश्वर्यों को प्राप्त हो। और हम (गोमति व्रजे) उत्तम बैलों वाले रथ के समान इस

इन्द्रियों से सम्पन्न देह में बैठकर (सवना) समस्त ऐश्वर्यों, जन्मों और नाना लोकों को (गमेम) प्राप्त करें, संसार मार्ग पर गमन करें।

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया।
वरिवस्य महामह ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (महामह) महा धनाधिपते प्रभो (यथा पुरा) पूर्व कल्पवत् तू (नः) हमें (गव्यो) गौओं (अश्वया रथया) अश्वों और रथों से (वरिवस्य) युक्त कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर! दुष्टों के नाश करने हारे प्रभो! (सत्रा) सचमुच मैं (ते राधसः अन्तं नहि विन्दामि) तेरे धनैश्वर्य के अन्त को नहीं पाता हूं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्रिव) बलशालिन्! (नः) हमें (दशस्य) प्रदान कर (नू चित्) और शीघ्र ही, (वाजेभिः) बलों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से (नः आविथ) हमारी रक्षा कर।

य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (ऋष्वः) महान् (सखा) मित्रवत् स्नेही होकर (विश्वा इत्) समस्त ज्ञानों को (श्रवयत्) गुरुवत् उपदेश करता है, (सः) वह (इत्) वही (पुरुस्तुतः) बहुतों से स्तुति किया हुआ (विश्वा जनिमा) सब उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (तं इन्द्र) उस ऐश्वर्यवान् को (विश्वे) समस्त मनुष्य (यत-स्रुच.) स्रुच्, जुहू आदि को हाथ में लिये ऋत्विजों के समान (यत-स्रुच·) इन्द्रियों को वश कर (मानुषा युगा) समस्त मनुष्योपयोगी युगों-वर्षों तक (तं) उस (इन्द्रं) प्रभु परमेश्वर की (हवन्ते) उपासना करते हैं।

स नो वाजेष्ववि॒ता पु॒रूव॑सुः पुरः स्था॒ता ।
म॒घवा॑ वृत्र॒हा भु॑वत् ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजेषु) संग्रामो, बलों मे (पुरु-वसुः) बहुत धनों और प्रजाओ का स्वामी (पुरः स्थाता) अग्र पद पर स्थिर रहने वाला, (मघवा) धनैश्वर्य का स्वामी (वृत्रहा) दुष्टों और विघ्नों का नाशकारी (भुवत्) होता है ।

अ॒भि वो॑ वी॒रमन्ध॑सो॒ मदे॑षु गाय गि॒रा म॒हा विचे॑तसम् ।
इन्द्रं॒ नाम॒ श्रुत्यं॑ शा॒किनं॒ वचो॒ यथा॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (वः मदेषु) आप लोग अपने हर्ष और (अन्धसः) अन्नादि पदार्थों के द्वारा प्राप्त आनन्द के अवसरो मे (वीरम्) वीर, (विचे-तसम्) विविध चित्तों और ज्ञानों के स्वामी, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (श्रुत्यं) श्रुति-प्रसिद्ध, वेदगम्य, (शाकिनं) शक्तिशाली प्रभु की (यथा वचः) वाणी, के अनुसार ही, (महागिरा गाय) श्रेष्ठ वाणी से स्तुति गान करो।

द॒दी रेक्ण॑स्त॒न्वे॑ द॒दिर्वसु॑ द॒दिर्वाजे॑षु पुरुहूत वा॒जिन॑म् ।
नू॒नमथ॑ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य बहु-स्तुत ! तू (तन्वे) हमारे शरीर के लिये (रेक्णः ददिः) धन देने वाला हो । (वाजेषु वसु ददिः) संग्रामों और ऐश्वर्यों के लिये नाना ऐश्वर्य देने वाला हो, (नूनम् अथ) और शीघ्र ही (वाजिनम् ददिः) अन्नादियुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

विश्वे॑षामिर॒ज्यन्तं॒ वसू॑नां सास॒ह्वांसं॑ चिद॒स्य वर्प॑सः ।
कृ॒प॒य॒तो नू॒नमत्यथ॑ ॥ १६ ॥

भा०—(अथ) और (विश्वेषां वसूनां) समस्त प्रजाजनों के (इर-ज्यन्तम्) स्वामी और (अस्य) इस (कृपयतः) सामर्थ्यवान् (वर्पसः) रूपवान् , देहधारी वा तेज को (सासह्वांसं) अपने अधीन रखने वाले तेरी स्तुति करते है ।

म॒हः सु वो॒ अर॑मिषे॒ स्तवा॑महे मी॒ळ्हुषे॑ अरङ्ग॒माय॒ जग्म॑ये ।
य॒ज्ञेभि॑र्गी॒र्भिर्वि॒श्वम॑नुषां म॒रुता॑मियक्षसि॒ गाये॑ त्वा॒ नम॑सा गि॒रा १७

भा०—हे विद्वान् लोगो ! हम लोग (वः) आप लोगों के प्रति (अरंगमाय) प्राप्त होने योग्य (जग्मये) ज्ञानवान्, सर्वत्र गत, (मीढुषे) सुखों के वर्षक उस प्रभु की (यज्ञेभिः गीर्भिः) यज्ञों और वेद-वाणियों से (स्तवामहे) स्तुति करें, उसका उपदेश करे। वह हमे और हम उस (महः) पूज्य को ही (अरम्) बहुत अधिक (सु इषे) उत्तम रीति से चाहे। हे प्रभो! तू (विश्व-मनुषां मरुतां) सब मननशील मनुष्यों को (इयक्षसि) सब कुछ देता है। (त्वा) तेरी ही मै (नमसा गिरा) विनययुक्त वाणी से (गाये) स्तुति करता हूं।

ये पा॒तय॑न्ते॒ अज्म॑भिर्गिरी॒णां स्नुभि॑रेषाम् ।
य॒ज्ञं म॑हि॒ष्वणी॑नां सु॒म्नं तु॑वि॒ष्वणी॑नां॒ प्राध्व॒रे ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (स्नुभिः) बहने वाले (अज्मभिः) जलों से (पातयन्ते) आकाश-मार्ग मे गमन करते है (एषाम्) उन (महि-स्वनीनां, तुवि-स्वनीनाम्) बड़े भारी घोर शब्दकारी, बहुत से शब्द करने वाले मेघों के (यज्ञं सुम्नं) दिये जल और सुख को (अध्वरे) अविनाशित यज्ञ के आश्रय पर प्राप्त करते है, इसी प्रकार (ये) जो शूरवीर वा महाश्वगण अपने (स्नुभिः अज्मभिः) बहते या वर्षा धारावत् निकलते बलयुक्त अश्वों से (पातयन्ते) वेग से जाते, वे शत्रु बलों को मार गिराते है, (एषां गिरीणां) इन मेघवत् या पर्वतवत् महान्, (महि-स्वनीनाम्) घोर गर्जनाकारी और (तुवि-स्वनीनां) बहुत से ध्वनि करने वाले वीरों और महाश्वों के (यज्ञं) संग लाभ और सुख को हम (अध्वरे) यज्ञ और युद्ध में (प्र) खूब प्राप्त करें।

प्र॒भ॒ङ्गं दु॑र्मती॒नामिन्द्र॑ शविष्ठा भर । र॒यिम॒स्मभ्यं॒
युज्यं॑ चोदयन्मते॒ ज्येष्ठं॑ चोदयन्मते ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (प्र-भङ्गं) नाना प्रकार के कष्टों को नाश करने वाला, (रयिम् आ भर) ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (चोदयन्-मते) सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि और वाणी वाले ! तू (प्रभङ्गं युज्यं आभर) शत्रुओं के बल तोड़ने वाले सहयोगी को प्राप्त करा वा, (युज्यं रयिम् आ भर) सहयोगी जनों के हितकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करा । हे (चोदयन्मते) प्रेरक-वाणी के स्वामिन् ! तू (ज्येष्ठं रयिम् आ भर) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य और (प्रभङ्गं ज्येष्ठं) सर्व-कष्टनाशक सर्वश्रेष्ठ पुरुष को हमे प्राप्त करा ।

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२०॥४॥

भा०—हे (सनितः) दातः ! हे (सु-सनितः) उत्तम विभक्त करने हारे ! हे (उग्र) बलवन् ! हे (चित्र) अद्भुत ! हे (चेतिष्ठ) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानिन् ! हे (सूनृत) उत्तम धनवान् , ज्ञानवान् ! हे (सम्राट्) सर्वोपरि विराजमान ! (सहुरिं) सबको पराजित करने वाले (सहन्तं) सहनशील (वाजेषु) संग्रामों में (पूर्व्यं) सबसे पूर्व विद्यमान, सर्वश्रेष्ठ, (भुज्युं) भोक्ता वा पालक तुम को (प्र-सहा) उत्कृष्ट बल से युक्त जान. तेरी शरण लेते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीते३ऽस्या व्युष्याददे ॥२१॥

भा०—(यथा चित्) जिस प्रकार (अश्व्यः वशः) अश्वों, सैन्यों वा बलवान् पुरुषों की कामना करने वाला राष्ट्र (पृथु-श्रवसि) विस्तृत ज्ञानवान् , यशस्वी (कानीते) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (अस्याः वि-उषि) इस प्रजा की विशेष कामनानुसार ही (आददे) राज्य को वश करता है, उसी प्रकार (य.) जो (अदेवः) असाधारण पुरुष भी (ईवद्)

प्राप्त हुए (पूर्तम्) पूर्ण राज्य को (आददे) ग्रहण करने मे समर्थ होता है । (सः) वह (आ एतु) हमें प्राप्त हो ।

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥

भा०—(षष्टिं सहस्रा) साठ हज़ार और (अयुता) दश सहस्र (अश्वस्य) उत्तम अश्वो के और (उष्ट्राणां शता विंशतिं) ऊंठो के २० सौ, (श्यावीनां गवां दशशता) श्याव, काले लाल रंग वाली गौओं या भूमियों के सौ, और (त्रि अरुषीणां) तीनों चमकने वाली शुभ्र रंग की (गवां दश दश सहस्रा) दस दस हज़ार गौएं (असनम्) मैं दान करूं और प्राप्त करूं ।

दर्श श्यावा ऋधद्र्यो वीतवारास आशवः ।
मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥

भा०—(दश श्यावाः) दस श्याव अर्थात् लाल काले वर्ण के (ऋधद्-रयः) अति वेग वाले (वीतवारासः) चमकते बालों वाले, (आशवः) शीघ्रगामी, (मथ्राः) शत्रुओं का मथन करने वाले, वीर (नेमिं) रथ चक्रवत् राष्ट्र को (नि वावृतुः) नियम से संचालित करें ।

दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥

भा०—(पृथु-श्रवसः) अधिक ज्ञान वा यश वाले, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, उस स्वामी के (दानासः) उत्तम दान है । वह (मंहिष्ठः) अति पूज्य दानी, (हिरण्ययं रथं ददत्) हित, रमणीय, कान्तिमय रथ प्रदान करता है, और वह (सूरिः) विद्वान् सर्वोत्पादक (अभूत्) हो, (वर्षिष्ठम्) प्रभूत, प्रचुर (श्रवः) ज्ञान, अन्नादि (अकृत) उत्पन्न करता है ।

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृम भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) वायुवत् वलशालिन् ! तू (महे तने) वड़े भारी धनैश्वर्य और (मखाय पाजसे) उत्तम पूज्य, वल प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो । (दावने ते) दानशील तेरे लिये (वयं) हम (हि) अवश्य (भूरि चकृम) बहुत कुछ करें और (दावने) ज्ञान के दाता गुरु के लिये हम (सद्यः चित् महि चकृम) आज के समान सदा ही आदर सत्कार किया करें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

यो अश्वे॑भि॒र्वह॑ते॒ वस्त॑ उ॒स्रास्त्रिः स॒प्त स॑प्तती॒नाम् ।
ए॒भिः सोमे॑भिः सोम॒सुद्भिः॑ सोमपा दा॒नाय॑ शुक्रपूतपाः ॥२६॥

भा०—(यः) जो (अश्वेभिः वहते) अश्वारोही गणों के साथ मिलकर राष्ट्र के शासनादि कार्य को अपने कन्धों लेता है, (त्रिः सप्त सप्ततीनाम्) ७० के २१ गुणा अर्थात् १४७० (उस्राः) भूमियों, गौओं या किरणोंवत् प्रजाओं को (वस्ते) अपने अधीन करता है, हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! हे (शुक्र-पूतपाः) शुद्ध पवित्र रीति से प्राप्त ऐश्वर्य के पालक सूर्यवत् तेजस्विन् ! वायुवत् शुद्ध जल के ग्रहीतः ! तू (एभिः) इन (सोमसुद्भिः) सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाले और (सोमेभिः) उत्तम विद्वान् शासकों सहित स्वयं भी (दानाय) दान देने के लिये प्रवृत्त रहता है, वह वड़ा आनन्द लाभ करता है । अत्र द्वात्रिंशत्तममन्त्रगत मदन्ति क्रियापदेन सर्वत्र सम्बन्धः ।

यो म॑ इ॒मं चि॑दु॒त्मनाम॑न्दच्चि॒त्रं दा॒वने॑ ।
अ॒र॒ट्वे अक्षे॒ नहु॑षे सु॒कृत्व॑नि सु॒कृत्त॑राय सु॒क्रतु॑ः ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो राजा (मे) मुझ प्रजा के हित के लिये, (त्मना) स्वयं ही, (इमं) इस (चित्रं) अद्भुत, नाना धन राशि के (दावने) देने के लिये (अमन्दत्) प्रसन्न होता है वह (अरट्वे = अलट्वे) वालकपन से

मुक्त, युवा, (अक्षे) व्यवहारकुशल, (सुकृत्वनि) उत्तम कार्यकुशल (नहुषे) सुप्रबद्ध मनुष्य समाज के बीच स्वयं भी (सुकृत्तराय) उत्तम कार्य करने वाले के हितार्थ (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म करने वाला होता है वह सदा (अमन्दत्) सुख पाता है।

उचथ्ये॒३॒ वपु॑षि॒ यः स्व॒राळु॒त वा॑यो घृत॒स्नाः ।
अश्वे॑षितं॒ रजे॑षितं॒ शुने॑षितं॒ प्राज्म॒ तदि॒दं नु तत् ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (उचथ्ये) वचन योग्य, स्तुति पात्र (वपुषि) भव्य, बलवान् दर्शनीय शरीर में (घृत-स्नाः) जल से वा तेज से सदा स्नान करने वाला, नित्य शुद्ध, तेजस्वी (उत स्वराड्) और स्वयं अपने तेज से वा धन से चमकने वाला, शुद्ध पवित्र कान्तिमान् हो (तत्) वह (अश्वेषितं) अश्वों से प्राप्त होने योग्य, और (रजेषितं) गर्दभों या ऊटों से वा लोक मे बसे प्रजाजनों से प्राप्त होने योग्य और (शुनेषितम्) सुख से प्राप्त होने योग्य (इदं नु तत्) यह सब नाना प्रकार के उत्तम (अज्म) अन्न, बल और ऐश्वर्य (प्र) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है।

अधं प्रि॒यमि॑षि॒राय॑ ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑सनम् ।
अश्वा॑ना॒मिन्न वृष्णा॑म् ॥ २९ ॥

भा०—मैं (इषिराय) इच्छा और प्रेरणा करने वाले विद्वान् वीर पुरुष के हितार्थ (वृष्णाम् अश्वानाम्) बलवान् घोड़ों के (इत् न) भी समान बलवान् आशुगामी, (षष्टि सहस्रा) ६० हजार (असनम्) प्रदान करूं।

गावो॒ न यू॒थमुप॑ यन्ति॒ वध्र॑य॒ उप॒ मा य॑न्ति॒ वध्र॑यः ॥ ३० ॥

भा०—(गावः न यूथम्) गौएं जिस प्रकार अपनी रक्षा के लिये यूथ को प्राप्त होती हैं, अपने यूथ में आकर अपने को सुरक्षित समझती हैं उसी प्रकार (वध्रयः) निर्वीर्य, अल्पबल, भीरु जन भी (यूथम् उपयन्ति) अपने यूथ, समूह को प्राप्त होते, समूह बनाकर रहते और

अपने गोल मे रहकर अपने को सुरक्षित समझते है वा (वध्रयः) निर्वीर्य, अल्पबल जन (मा उप यन्ति) मुझ बलवान् जन को अपना शरण जान प्राप्त होते है और रक्षा प्राप्त करते है । अथवा—(वध्रयः) शत्रुओं का वध करने वाली वीर सेनाएं संघ को प्राप्त हो और मुझ सेनापति को प्राप्त हों।

अध॒ यच्चार॑थे ग॒णे श॒तमुष्ट्राँ॒ अचि॑क्रदत् ।
अध॒ श्वित्ने॑षु विं॒श॒तिं श॒ता ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जो (चारथे गणे) विचरण करने वाले सैन्य गण के ऊपर (अध) और (उष्ट्रान् शतम्) शत्रु को संन्ताप देने वाले सौ जनों को (अचिक्रदत्) नियुक्त करता है (अध) और (श्वित्नेषु) श्वेत वर्ण के, शुद्ध चरित्र वाले वा तेजस्वी पुरुषो के अधीन (शता विंशतिं) सौ २ के २० दस्ते नियुक्त कर देता है वह शासक राज्य मे सुख भोग करता है ।

श॒तं दा॒से ब॑ल्बू॒थे विप्र॒स्तरु॑क्ष॒ आ द॑दे ।
ते ते॑ वायवि॒मे जना॒ मन्द॒न्तीन्द्र॑गोपा॒ मद॑न्ति दे॒वगो॑पाः ॥३२॥

भा०—(तरुक्षः) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सब को आश्रय देने वाला, दुःखों से तारने, पार लगाने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् राजा (वल्बूथे) बलशाली, (दासे) भृत्य जन के आधार पर ही (शतम् आददे) सैकड़ों को अपने कन्धे लेता है । (वायो) हे बलवन् ! राजन् ! (ते) तेरे वे नाना प्रकार के (इमे जनाः) वे जन (इन्द्र-गोपाः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक की रक्षा में रहते हुए (मन्दन्ति) प्रसन्न रहते है और (देव-गोपाः मदन्ति) विद्वानों की रक्षा में रहकर वे सदा सुखी रहते है ।

अध॒ स्या योष॑णा म॒ही प्र॑ती॒ची वश॑म॒श्व्यम् ।
अधि॑रुक्मा॒ वि नी॑यते ॥ ३३ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (योषणा) स्त्री (मही) बड़ी पूज्य (प्रतीची)

प्रिय के अभिमुखी होकर (अधि-रुक्मा) देह पर नाना सुवर्णादि के कान्ति-युक्त आभरणों को धारण करके (अश्व्यम् वशम्) अश्वारोही कान्तियुक्त वा कामना योग्य वर के प्रति (विनीयते) विशेष रूप से लेजाई जाती है (अध स्या) ठीक उसी प्रकार वह (मही) बड़ी भारी पृथिवी-निवा-सिनी प्रजा (प्रतीची) सन्मुख प्राप्त (अधि-रुक्मा) अधिकाधिक सुवर्ण रत्नादि से मण्डित होकर (अश्व्यम्) अश्व सैन्यादि के नायक वा राष्ट्र-पति, (वशं) सर्व वश करने मे कुशल पुरुष के अधीन (वि नीयते) विशेष रूप से प्राप्त करा दी जाती है, उसको शासन और उपभोग के लिये सौंप दी जाती है। इति षष्ठो वर्गः ॥

[४७]

त्रित आप्त्य ऋषिः ॥ १—१३ आदित्याः। १४—१८ आदित्या उषाश्च देवता. ॥ छन्दः—१ जगती । ४, ६—८, १२ निचृज्जगती । २, ३, ५, ६, १३, १६, १८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, ११, १७ स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे । यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः । सुऊतयो व ऊतयः ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ राजन् ! प्रभो ! हे (मित्र) स्नेह-वन् ! हे मृत्यु से बचाने हारे, वायुवत् प्राणवत् प्रिय ! हे (आदित्या) सूर्यकिरण वा १२ मासों के समान अदिति अर्थात् भूमि या अखण्ड शासन के हितकारी जनो ! (वः महता दाशुषे महि अवः) तुम महापुरुषों का दानशील, आत्मसमर्पक के लिये बड़ी भारी रक्षा वा कृपा रहती है। आप लोग (य) जिसको (द्रुहः अभि रक्षथ) द्रोहकारी जन से बचा लेते हो (ईम् अघ न नशत्) उसको पाप, हत्यादि प्राप्त नहीं होता। (५.

ऊतयः अनेहसः) आप लोगो की रक्षाएं निष्पाप और (वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षाएं व रक्षा साधन उत्तम रक्षासाधन होते है ।

विदा देवा अघा नामादित्यासो अपाकृतिम् । पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २

भा०—हे (देवाः आदित्यासः) सूर्य किरणवत् प्रकाश, ज्ञान के देने वाले आदित्य ब्रह्मचारियो! तेजस्वी एव पूज्यपुरुषो ! आप लोग (अघानाम् अपाकृतिम्) पापो को दूर करना (विद) जानते हो । (यथा वयः पक्षा उपरि शर्म यच्छन्ति) जिस प्रकार पक्षी बच्चों के ऊपर दोनो पांखो को गृह के समान रक्षार्थ तान लेते है उसी प्रकार (अस्मे उपरि) हमारे ऊपर (शर्म वि यच्छत) सुख शरणादि विविध प्रकार से प्रदान करो । (अनेहसः व. ऊतयः, वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगो की रक्षा पापरहित और आप लोगों की रक्षा उत्तम रक्षाएं होती है ।

व्य१स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन । विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३

भा०—(वयः पक्षा न) पक्षीगण जिस प्रकार दोनों पक्षो को अपने बच्चों पर शरणवत् प्रदान करते है उसी प्रकार आप लोग (अस्मे अधि) हमारे ऊपर (शर्म वि यन्तन) सुख, शरण विविध प्रकार से देवें । हे (विश्व-वेदस.) समस्त ज्ञानो और धनो के स्वामी जनो ! हम लोग आप लोगों से (विश्वानि वरूथ्या) समस्त गृहोचित धन धान्यादि सुख और समस्त, (वरूथ्या) दु ख वारण में समर्थ साधनों की (मनामहे) याचना करते है । उनको हम ज्ञानपूर्वक प्राप्त करें । (अनेहसो वः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः । मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥४॥

भा०—(प्र चेतस) उत्तम ज्ञान से वा चित्त से सम्पन्न जन (यस्मै) जिसको (क्षय) ऐश्वर्य और (जीवातुं च) जीवन (अरासत)

प्रदान करते हैं (इमे आदित्याः) वे सूर्य के तुल्य ज्ञानी जन (विश्वस्य मनोः घ) समस्त मनुष्यों के उपयोगी (रायः ईशते) धनों के स्वामी हो जाते हैं। (अनेहसः वः० इत्यादि) पूर्ववत्।

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः। ५।७

भा०—(यथा रथ्यः दुर्गाणि) जिस प्रकार रथ में लगे अश्व दुर्गम स्थानों से बचाते है उसी प्रकार (रथ्यः) उत्तम उपदेश युक्त जन (नः अघा परि वृणजन्) हमारे पापों को दूर करें और हमारी पापो से रक्षा करें। हम लोग (इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) ऐश्वर्यवान् प्रभु के ही शरण में, उसके ही सुख में रहें (उत) और हम (आदित्यानाम् अवसि) सूर्य रश्मियों के तुल्य तेजस्वी पुरुषों की रक्षा में (स्याम) रहें। इति सप्तमो वर्गः॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति। देवा अदभ्रमाशवो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ६॥

भा०—हे (देवाः) दानशील, (आशवः) शीघ्रगामी, (आदित्याः) सूर्य किरणवत् तेजस्वी जनो! आप लोग (यम् अदभ्रम्) जिस अनल्प गुणवान्, अधिक बलशाली, वा अहिंसनीय, जन को (अहेतन) शासन करते, संचालित करते हो वह (जनः) जन (परिह्वृता इत् अना) कुटिलता से रहित ही जीवन से (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये ज्ञान और धन को (वायति) परम्परा से प्राप्त कर सकता है। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु। यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः।७

भा०—हे (आदित्यासः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषो! आप लोग (स-प्रथः) सर्व प्रकार से महान्, सामर्थ्यवान् होकर (यस्मै उ शर्म अरा-

वम्) जिस किसी को भी सुख, शरण प्रदान करते हो, (तं) उस तक (तिग्मं चन त्यजः) तीक्ष्ण क्रोध या उसकी ओर फेंका हुआ अस्त्रादि भी (न द्रासत्) नहीं पहुंचता और (तं गुरु चन त्यजः न द्रासत्) उस पर किसी का भारी क्रोध वा दुर्वचन, बाण आदि भी कुटिल चाल से नहीं पहुंच पाता। (अनेहसः वः० इत्यादि पूर्ववत्)

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु। यूयं महो न एनसो युयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (वर्मसु युध्यन्तः इव) योद्धा लोग जिस प्रकार कवचों के भीतर सुरक्षित रहते हैं उसी प्रकार हम लोग भी (युष्मे अपि स्मसि) आप लोगों के बीच सुरक्षित रहें। (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (महः एनसः) बड़े भारी पाप, अपराध और (अर्भात् एनसः) छोटे से भी पाप से (उरुष्यत) बचाइये। शेष पूर्ववत्॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु। माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥९॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड ब्रह्मचारिणी, वा माता, जो (रेवतः) ऐश्वर्यसम्पन्न (मित्रस्य) न्यायाधीश, ब्राह्मण वर्ग, (अर्यम्णः) न्यायकारी, शत्रुनियन्ता, और (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ राजा की भी (माता) उत्पन्न करने वाली माता के तुल्य जननी, भूमि, वा प्रकृति है वह (नः ऋष्यतु) हमारी रक्षा करे और वह (अदितिः) अदीन व्रत की पालक, अखण्ड शक्ति (नः शर्म यच्छतु) हमे सुख शान्ति प्रदान करे।

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम्। त्रिधातु यद्वरूथ्यं१तद्-स्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१०॥८॥

भा०—हे (देवा.) विद्वान् एव विजय कामना वाले तेजस्वी पुरुषो ! (यत् शर्म) जो गृह, (शरणं) शत्रुओं और दु.खों का नाशक, (यत्

भद्रं) जो सुख कल्याणकारक, (यत् अनातुरम्) जो रोगों-कष्टों से रहित, बाधाओं-पीड़ाओं से शून्य, (यत् त्रिधातु) जो वात पित्त कफ के बने देह के समान स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि तीनों प्रकार की धातुओं से दृढ़, (यत् वरूथ्यम्) जो सुखप्रद, कष्टवारक और गृह होने योग्य है (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह हमें प्रदान करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

आदि॑त्या॒ अव॒ हि ख्यता॒धि कूला॑दिव॒ स्पश॑: । सु॒ती॒र्थमर्व॑तो य॒थानु॑ नो नेषथा सु॒गम॑ने॒हसो॑ व ऊ॒तय॑: सुऊ॒तयो॑ व ऊ॒तय॑: ११

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य किरणों के समान सब संसार से ग्रहण करने योग्य समाचार आदि के ले आने वाले और (स्पशः) सब पदार्थों के देखने वाले जनो ! (कूलात् इव) तट पर से जिस प्रकार द्रष्टा निष्पक्ष होकर जल स्थित पदार्थों को सावधानी से देखता है इसी प्रकार निष्पक्ष, अनुद्विग्न और दयाशील विवेकी, (यथा अर्वतः सुतीर्थम्) जिस प्रकार अश्वादि को तीर्थ या उतरने की जगह से जल में उतार दिया जाता है उसी प्रकार आप लोग भी (अर्वतः नः) शत्रुहिंसक हम को (सुगम् सुतीर्थं नु) सुगम और उत्तम तीर्थ अर्थात् परपक्ष के राजभृत्यादि को वश कर सुखमय मार्ग से (अनु नेषथाः) लेजाओ । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

ने॒ह भ॒द्रं र॑क्ष॒स्विने॒ नाव॒यै नोप॒या उ॒त । गवे॑ च भ॒द्रं धे॒नवे॑ वी॒राय॑ च श्रवस्य॒तेऽने॒हसो॑ व ऊ॒तय॑: सुऊ॒तयो॑ व ऊ॒तय॑: ॥१२॥

भा०—(इह) इस लोक में (रक्षस्विने भद्रं न) दुष्ट पुरुषों के स्वामी को सुख ऐश्वर्य आदि न हो, (न अवये उत न उपयै) और वह न दूर जा सके न समीप आ सके । वा विपरीत इसके (गवे च धेनवे भद्रं) दुधार बैल और गौ का कल्याण हो और (श्रवस्यते वीराय च भद्रं)

अन्न, बल, यश के इच्छुक वीर और ज्ञान के इच्छुक विद्वान् को सुख, कल्याण हो (अनेहसः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् । त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! (यद् दुष्कृतं आविः) जो बुरा काम प्रकट मे है और (यत् दुष्कृतं अपीच्यं अस्ति) जो बुरा काम छुपा हुआ है, (त्रिते आप्तये) तीनो विद्याओ मे निष्णात, आप्त जन के अधीन (अस्मत्) हम से (आरे दधातन) उस दुष्ट कर्म को दूर करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) । सायण प्रोक्त 'मा' पद मन्त्र मे नही है ।

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः । त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) उषाकालवत् ज्ञानप्रकाश का दोहन पूरण, एवं प्रदान करने वाली ! (विभावरि) विशेष ज्ञान प्रकाश से वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को देने वाली (यत् च गोषु) जो भी हमारी वाणियो और इन्द्रियो मे (दुःष्वप्न्यं) दुःस्वप्नो का बुरा प्रभाव हो । और (यत् च अस्मे) जो हममें बुरे स्वप्नों का दुष्परिणाम हो उसको (आप्त्याय त्रिताय) आप्त जनों के हितकारी, तीनो दुःखो से मुक्त जन के हितार्थ (परा वह) दूर कर । (अने० इत्यादि पूर्ववत्)

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः । त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१५॥९

भा०—हे (दिवः दुहितः) प्रकाशवत् ज्ञान और सद् व्यवहार के देने वाली ! उषावत् प्रकाश करने हारी प्रभु-मातः ! (वा) और (निष्कं कृणवते) स्वर्णादि मुद्रा बनाने या धारने वाले (वा स्रजं कृण्वते) अथवा माला बनाने वा धारने वाले के लिये हुआ जो (दुःष्वप्न्यं) बुरा स्वप्न वा

विकार है (सर्वं) उस सबको (त्रिते आप्त्ये) तीनों कष्टों वा एषणाओं से मुक्त विद्वान् के अधीन रहकर हम (परि दद्मसि) दूर करें। सुवर्णादि आभूषण, माला आदि बनाने वाले वा धारने वाले को देखकर चित्त में दुर्विचार आवें तो विद्वान् जन के अधीन रहकर उस विकार का नाश करें, दृढ़व्रती होकर सुवर्णादि देखकर वा अलंकृत स्रक् चन्दन वनिता आदि देखकर स्वप्न मे भी प्रलुब्ध न हो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति नवमो वर्गः ॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे। त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

भा०—(तदन्नाय) नाना प्रकार के भोज्यान्न प्राप्त करने वाले, (तद्-अपसे) नाना श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, (तं भागम् उपसेदुषे) अपने उस उत्तम २ सेव्य अंश को प्राप्त करने वाले (त्रिताय) मन, वाणी, कर्म तीनों पर वशी और (द्विताय च) भीतर और बाहर वश करने वाले पुरुष के भी (दुःस्वप्न्यं) बुरे स्वप्न के प्रभाव को हे (उषः) प्रभातवेला के समान अन्धकार के तुल्य पापों को दूर करने वाली मातः ! तू (वह) दूर कर।

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं स नयामसि। एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १७

भा०—(यथा) जिस प्रकार हम (कला सं नयामसि) काल की मात्रा को शनैः २ व्यतीत करते हैं, (यथा शफं) जिस प्रकार चरण को (सं नयामसि) समान रूप से आगे बढ़ाते हैं और (यथा ऋण) जिस प्रकार अपने पर के ऋण या पराये धन को (संनयामसि) अच्छी प्रकार ईमानदारी से चुका देते हैं, (एवा) इसी प्रकार हम लोग भी (आप्त्ये) आप्त पुरुष के अधीन रहकर वा आप्त जनों मे विद्यमान रहकर शनैः २ (दुःस्वप्न्यं सं नयामसि) दुःस्वप्नादि बुरे प्रभावों को दूर करें। (अनेहस० इत्यादि पूर्ववत्)

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्। उषो यस्माद्दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१०

भा०—हम लोग (अजैष्म) विजय प्राप्त करें, (असनाम च) दान करें, (वयं अनागसः अभूम) हम निष्पाप, निरपराध होकर रहें। हे (उषः) प्रभात वेला, के समान ज्ञान को देने और पाप को वश करने वाली मातः! (यस्मात् दुः-स्वप्न्यात् अभैष्म) हम जिस दुःस्वप्न के दुष्प्रभाव से भय करते हैं (तद् अप उच्छतु) वह दूर हो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति दशमो वर्गः॥

[४८]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, १३ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। १२, १५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ७—९ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, १०, ११, १४ त्रिष्टुप्। ५ विराड् जगती॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधा स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति॥१॥

भा०—मैं (सु मेधाः) उत्तम ज्ञान से युक्त, उत्तम बुद्धिमान्, सत्संगी होकर (स्वादोः) सुस्वादु (वयसः) अन्न का (अभक्षि) भोजन करूं। और (स्वाध्यः) उत्तम रीति से धारण करने योग्य (वरिवोवित्तरस्य) अति पूजनीय, उस धन का भी सेवन करूं, (य विश्वे देवा) जिसको सब उत्तम मनुष्य और (उत मर्त्यासः) साधारण मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) मधुर, आनन्दप्रद कहते हुए (अभि सं चरन्ति) प्राप्त होते और उपभोग करते हैं। इसी प्रकार मैं (सु मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् शिष्य, (सु-आध्यः) उत्तम अध्ययनशीलादि, (वरिवोवित्-तरस्य) उत्तम धन, आदर पूजादि लाभ करने वाले, (स्वादो. वयस.) उत्तम भोजन के भोक्ता, दीर्घायु, उस वृद्ध, प्रभु, पुरुष की सेवा करूं, जिसके प्रति सब विद्वान् जन (मधु ब्रुवन्तः) मधुर

वचन कहते हुए वा 'मधु' आनन्दप्रद, मधुर ज्ञान, प्रवचन करते हुए उसके समीप उसकी शरण आते है।

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥

भा०—हे (इन्दो) चन्द्रवत् आह्लादकारक सोम! शिष्यजन! तू (अन्त च प्र अगाः) भीतर गुरुगृह मे, माता के गर्भ मे बालक के समान आ। तू (अदितिः भवासि) अखण्डित व्रत होकर पुत्रवत् रह। तू (दैव्यस्य हरसः) देव, विद्या चाहने वाले शिष्य जनो के उचित, (हरसः) क्रोध या तीक्ष्णता को (अव-याता) विनीत होकर प्राप्त कर। तू (इन्द्रस्य) ज्ञानी, तत्वदर्शी आचार्य के (सख्यं जुषाणः) मैत्री को प्राप्त करता हुआ, (श्रौष्टी इव धुरम्) जूए के नीचे क्षिप्रगामी अश्व या बैल के समान विनीत होकर (राये अनु ऋध्याः) दानयोग्य ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये अनुगामी होकर रह, और ज्ञान से सम्पन्न हो। (२) इसी प्रकार विद्वान्, अदीन हो, भीतर आवे, मनुष्यो के क्रोधादि को दूर करे, ऐश्वर्यवानो का मित्र होकर उनका कार्य करके स्वयं भी सम्पन्न हो। (३) इसी प्रकार (इन्दुः) इस देह मे द्रुतरूप से विद्यमान वीर्य देह के भीतर रहे, अखण्ड रहे, (दैव्यस्य हरसः) इन्द्रियों के वेग को शान्त करे, आत्मा का सख्य लाभ कर ऐश्वर्य सुखादि से सम्पन्न हो।

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (सोमम् अपाम) ओषधि रस का जिस प्रकार पान करते और (अमृता अभूम) अमृत, सुखी, दीर्घायु होते है उसी प्रकार हम लोग (सोमम् अपाम) ऐश्वर्य, वीर्य और पुत्र शिष्यादि का पालन करें और 'अमृत' दीर्घायु, अमर होवें। हम लोग (ज्योति आगन्म) प्रकाश को प्राप्त हों। (देवान् अविदाम) शुभ गुणों, विद्वान्

पुरुषों, और वायु पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त करें, जानें। हे (अमृत) अमृतस्वरूप! (अरातिः) शत्रु (नूनम् अस्मान् किं कृणवत्) निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है? कुछ नहीं। और (मर्त्यस्य धूर्तिः किमु) मनुष्य का हिंसा स्वभाव भी विद्वान् ब्रह्मचारी का कुछ नहीं कर सकता।

शं नो॑ भव हृ॒द आ पी॒त इ॑न्दो पि॒तेव॑ सोम सू॒नवे॑ सु॒शेवः॑।
सखे॑व॒ सख्य॑ उरुशंस॒ धीरः॒ प्र ण॒ आयु॑र्जी॒वसे॑ सोम तारीः॥४॥

भा०—(आपीतः हृदे शम्) जिस प्रकार पान किया हुआ सोम-रस, या ओषधिरस हृदय को शान्तिदायक होता है उसी प्रकार (आपीतः) सब प्रकार से पालित, रक्षित वीर्य, पुत्र और शिष्य भी (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय को शान्तिकारक हो। हे (इन्दो) प्रेमरस से आर्द्र! ऐश्वर्य-वन्! हे (सोम) सोम! (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता के समान तू (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक हो। हे (उरुशंस) बहुत २ उत्तम उपदेश वचन करने हारे विद्वन्! बहुत स्तुतियुक्त प्रभो! बहुतसी विद्याओं के उपदेश योग्य शिष्य! (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य होकर (धीरः) बुद्धिमान् होकर (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (नः आयुः प्र तारीः) हमारी आयु की वृद्धि कर।

इ॒मे मा॑ पी॒ता य॒शस॑ उरु॒ष्यवो॒ रथं॒ न गावः॒ सम॑नाह॒ पर्व॑सु।
ते मा॑ रक्षन्तु वि॒स्रस॑श्च॒रित्रा॑दु॒त मा॒ स्रामा॑द्यवय॒न्त्विन्द॑वः॥५॥

भा०—(इमे) ये (पीताः) पान किये ओषधिरसों के तुल्य पालन किये देह में वीर्य, और राष्ट्र में विद्वान्, गृह में पुत्र, शिष्य और वीर जन (यशसः) वीर्य, बल, और कीर्त्ति से युक्त (उरुष्यवः) रक्षा की कामना करते हुए (गावः रथं न) रथ को अश्वों के समान (पर्वसु) पर्व २, पोरु २, खण्ड २ पर (सम् अनाह) सुसम्बद्ध, सुदृढ हों और राष्ट्र के खण्ड को शरीर के पोरु २ के समान सुदृढ़ करें। (ते) वे (मा) मुझे (विस्रसः चरित्रात्) शिथिल आचरण से (रक्षन्तु) बचावें। वे (इन्दवः) दयार्द्र-

जन (मा) मुझे (स्रामात् यवयन्तु) व्याधि से भी ओषधिवत् पृथक् करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

भा०—हे (सोम) अन्न ओषधि रसवत् वीर्य एवं विद्वन् ! वीर ! तू (मथितं अग्निं न) मथित अग्नि के समान (मा सं दिदीप) मुझे अच्छी प्रकार तेजस्वी कर । (प्र चक्षय) उत्तम ज्ञान का दर्शन करा । (नः वस्यसः कृणुहि) हमें उत्तम धन सम्पन्न कर । (अथ) और (ते हि मदः मन्ये) मैं स्वीकार करता हूं कि तेरा ही यह सब सुख, हर्ष है । तू (रेवान् इव) धनसम्पन्न के समान (अच्छ पुष्टिम् प्र चर) उत्तम पुष्टि प्रदान कर ।

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन्प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (राजन्) तेजस्विन् ! प्रभो ! (सुतस्य ते) अभिषिक्त हुए तेरा हम (पित्र्यस्य इव रायः) माता पिता के धन के समान (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त चित्त से (भक्षीमहि) भजन, सेवन करें । (सूर्यः वासराणि अहानि इव) जगत् को आच्छादन करने वाले दिनों को सूर्य के समान (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुओं की वृद्धि कर ।

सोम राजन्मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या३स्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥८॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तेजस्विन् ! देह में वीर्यवत् पोषक ! तू (नः मृळय) हमें सुखी कर, (स्वस्ति) हमारा कल्याण हो । हम (तव व्रत्याः स्मसि) तेरे व्रत का पालन करने वाले

हों, । (तस्य विद्धि) तू उस व्रत को जान । (दक्षः अलर्ति) बलवान् पुरुष आगे बढ़ता है (उत) और (मन्युः) ज्ञानी पुरुष भी आगे बढ़ता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) हमारा स्वामी होकर (नः) हमे (अनु-कामं) यथेच्छ होकर (मा परा दाः) मत त्याग कर । अथवा (अर्यं अनुकामं मा परादा.) शत्रु की इच्छानुसार हमे मत त्याग ।

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥९॥

भा०—हे (सोम) सर्व-शासक ! राजन् ! (त्वं) तू ही (नः तन्व.) हमारे शरीरों का (गोपाः) रक्षक है । (गात्रे-गात्रे) अंग २ मे वा प्रत्येक शरीरधारी पर तू (नृ-चक्षाः) नेता जनो को देखने वाला सर्वसाक्षी के तुल्य (नि-ससत्थ) आसन पर विराज । (वयं) हम (यत्) जब २ (ते व्रतानि प्र-मिनाम) तेरे व्रतो को नाश करे तब २ हे (देव) तेजस्विन् ! (स·) वह तू (नः) हमें (मृड) सुधार और सुखी कर और तू (सु-सखाः) हमारा उत्तम मित्र होकर हमे (वस्यः) उत्तम बना ।

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः १०।१२

भा०—(यः) जो (पीतः) ओषधि रसवत् पान पालन किया जाकर (मा न रिष्येत्) मेरा विनाश न करे, हे (हर्यश्व) उत्तम मनुष्यों को अश्ववत् सन्मार्ग मे चलाने वाले राजन् ! ऐसे (ऋदूदरेण) मृदु पेट वाले, भीतर कोमल, दयार्द्र स्वभाव वाले (सख्या सचेय) मैं मित्र से सदा संगत रहूं । (यः) जो (अयं) यह (सोमः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे) हमारे बीच (निअधायि) नियत किया जाता है, (तस्मै) उसके हितार्थ ही मैं (प्रतिरम् आयुः) सुदीर्घ आयु और (इन्द्रं ऐमि) ऐश्वर्य की याचना करूं ।

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११॥

भा०—जिस प्रकार सोम ओषधि के पान करने पर (अनिराः) बल रहित कर देने वाली वा जल अन्न न खाने देने वाली (त्याः अमीवाः) वे दुःखजनक रोगपीड़ाएं (अप अस्थुः) दूर हो जाती है उसी प्रकार राजा के अभिषेक कर देने पर समस्त दुःखदायी विपत्तियां भी (अप अस्थुः) दूर हो जाती है । (तमिषीचीः) अन्धकार ला देने वाली बाधाओं के समान बलवती सेनाएं भी उससे (निः-अत्रसन् अभैषुः) डरती और भय मानती है । वह (सोमः) सोम (विहायाः) आकाश के समान महान् होकर (अस्मान् आ अरुहत्) हम पर अध्यक्ष होकर रहे, (यत्र) जिसके आश्रय रह कर लोग (आयु प्रतिरते) अपना जीवन बढ़ा लेते है हम उसी को (अगन्म) प्राप्त हो ।

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

भा०—हे (पितरः) पालक गुरुजनो ! (यः इन्दुः) जो ऐश्वर्यवान् आर्द्र स्वभाव, ओषधि रसवत् (पीतः) पान वा पालन किया जाकर (मर्त्यः) दुःखों वा दुष्टों का नाशक होकर आत्मा के तुल्य अमृत होकर (मर्त्यान् आविवेश) देहों वा मनुष्यों मे प्रविष्ट है, (तस्मै) उस (सोमाय) सर्वप्रेरक ऐश्वर्यवान् की हम (हविषा) उत्तम अन्न वचनादि से (विधेम) परिचर्या करें । उसके (मृडीके) सुख और (सुमतौ) शुभ ज्ञान उत्तम वाणी मे हम सदा (स्याम) रहें । इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (पितृभिः) पालक

शासक जनो से (संविदानः) संमति करता हुआ, (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य और शास्य शासक दोनो वर्गों को (अनु आ ततन्थ) अपने वश करता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वयं तस्मै ते) हम उस तेरे लिये उत्तम (हविषा) अन्न वचनादि से (विधेम) सेवा करें (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम देह, प्राण, धनैश्वर्यादि के स्वामी हो ।

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४॥

भा०—हे (देवाः) ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (त्रातारः) हमारे रक्षक होकर (नः अधि वोचत) हमें सदा उपदेश करो कि जिससे (नः) हम पर (निद्रा) निन्दित कुत्सित गति, वा निद्रा, आलस्यादि (मा ईशत) अधिकार न करे (उत) और (जल्पिः मा ईशत) बकवास करने की बुरी आदत वा बकवासी पुरुष भी हम पर वश न करे । (विश्वहा) सदा, सब दिनों, (वयं) हम (सोमस्य प्रियासः) सोम, पुत्र, शिष्य, ऐश्वर्यवान् आदि के प्रिय और (सु-वीरासः) उत्तम वीर्यवान्, उत्तम पुत्रवान् और विद्वान् होकर (विदथम् आवदेम) ज्ञान का उपदेश और कथोपकथन किया करें ।

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः। त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् १५।१३।६

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! वीर्यवत् पालक पोषक ! (त्वं नः विश्वतः वयोधाः) तू हमें सब प्रकार से ज्ञान, बल, आयु धारण कराने वाला, तू (स्वर्विद्) सुखदाता, ज्ञानप्रकाशक, सर्वज्ञ, तू (नृ-चक्षाः) सबका द्रष्टा, होकर (नः आविश) हमे प्राप्त हो । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमें (सजोषाः) सप्रेम (ऊतिभिः पाहि) रक्षा साधनों

से सदा पालन कर । और तू (पश्चातात् उत वा पुरस्तात्) हमारी पीछे और आगे से भी रक्षा कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अथ वालखिल्यम्[1]

[४६]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३ विराड् बृहती । ५ भुरिग्बृहती । ७, ९ निचृद् बृहती । २ पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मघवा) उत्तम, पूज्य धन का स्वामी (पुरु-वसुः) नाना धनों जनों का स्वामी होकर (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के हितार्थ (सहस्रेण इव) सहस्रों के समान (शिक्षति) दान देता है, उस (सुराधसम्) उत्तम धनवान्, सुखपूर्वक आराधना करने योग्य, सब कर्मों के साधक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और धन का लाभ करने के लिये (अभि प्र अर्च) उत्तम रीति से अर्चना करो और उसी को (प्र वः) उत्तम रीति से वरण करो ।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

भा०—वह इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाश करने हारा (शत-अनीकः इव) सैकड़ों सेनाओं और बलों का स्वामी, सेनापति के समान (प्र

[1] सर्वानुक्रमण्या वालखिल्यसूक्तानामप्यनुक्रमणदर्शनात् मण्डलान्तर्गतत्वम् । तानि च षष्ठानुवाकान्तर्गतान्येव ॥

जिगाति) सबका विजय करता है और (दाशुषे) दानशील, करप्रद राष्ट्र के हित के लिये (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं का (धृष्णुया) अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से (हन्ति) नाश करता है, (गिरेः इव रसा) पर्वत से झरने वाले जलों के समान (अस्य पुरुभोजसः) इस बहुतों के पालक, नाना भोग्य ऐश्वर्य के स्वामी के (दत्राणि) नाना प्रकार के दान (पिन्विरे) प्रजाओं को पुष्ट करते है ।

आ त्वा॑ सु॒तास॒ इन्द॑वो॒ मदा॒ य इ॑न्द्र गिर्वणः ।
आपो॒ न व॑ज्रि॒न्नन्वो॒क्यं१॒ सरः॑ पृ॒णन्ति॑ शूर॒ राध॑से ॥ ३ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा भजन करने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मदाः) तृप्तिकारक (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, आर्द्र-हृदय (सुतासः) अभिषिक्त जन (त्वा आ पृणन्ति) तुझे हर्षजनक है हे (शूर) शूरवीर ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! वे सब (राधसे) धन को प्राप्त करने के लिये ही (ओक्यं सरः आप न) अपने आश्रयभूत सरोवर को पूर्ण करने वाले जलप्रवाहों के समान (त्वा आपृणन्ति) तुझे ही पूर्ण करते है, तुझे ही प्रसन्न करते, तेरी सेवा करते, तुझ में ही आश्रय लेते है। उसी प्रकार ये समस्त उत्पन्न सूर्यादि लोक भी उसी परमेश्वर को पूर्ण करते, उसी मे आश्रय पाते है ।

अ॒ने॒हसं॑ प्र॒तर॑णं वि॒वक्ष॑णं॒ मध्वः॒ स्वादि॑ष्ठमीं पिब ।
आ यथा॑ मन्दसा॒नः कि॒रासि॑ नः॒ प्र क्षु॒द्रेव॒ त्मना॑ धृ॒षत् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (मध्वः) मधुर अन्न और ज्ञान का (अने-हसं) निष्पाप (प्र तरणम्) दुःखों से पार उतारने वाला, (विवक्षणं) विविध वचनों से स्तुत्य, वा विविध हर्षदायक (स्वादिष्ठम्) अति स्वादु रस का (पिब) पान कर (यथा) जिस प्रकार (मन्दसानः) तृप्त होकर (क्षुद्रा इव) क्षुद्र मधु मक्खी के समान (त्मना धृषत्) स्वयं

अपने सामर्थ्य से शत्रुगण पर विजयी होकर (नः) हमे भी (प्र किरासि) नाना ऐश्वर्य यथायोग्य रूप से प्रदान कर।

आ नः स्तोमुमुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥५॥१४॥

भा०—हे (स्वधावन्) अन्नपते ! हे ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! (ते) तेरे (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (रातयः) दिये नाना दान ही (यं स्तोमम्) जिस स्तुतियोग्य पद को (धेनवः) वाणियों या गोरसों के समान (स्वदयन्ति) अधिक स्वादु, सुखद कर देते हैं तू उस (नः स्तोमम्) हमारे स्तुत्य वचन या पद को (सोतृभिः हियानः) अभिषिक्त वर्ग से प्रेरित होकर (अश्वः न) अश्व के समान (आ उप द्रवद्) प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम्।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः॥ ६ ॥

भा०—(उग्रं वीरं न) वीर के समान, उग्र, शत्रुओं के लिये भयंकर (विभूतिम्) विशेष शक्तिमान् (अक्षिता वसुम्) अक्षय धन से सम्पन्न पुरुष को हम (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (वज्रिन्) वीर्यशालिन्! (अवतः न उद्रीवः) ऊपर मुख किये कूप के समान तू भी अपने प्रजा के क्षेत्र को (सिञ्चते) सेचन करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धीतयः) नाना स्तुतियें (क्षरन्ति) तेरी ओर ही बहती है।

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह) चाहे जहां भी हो (यद् वा यज्ञे) चाहे यज्ञ में हो, (यद् वा पृथिव्याम् अधि) चाहे तू पृथिवी पर हो, हे (महे मते) महा मतिमन् ! हे (उग्र) बलवन् ! तू (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को

(उग्रेभिः आशुभिः) बलवान् , शीघ्रगामी अश्वों सहित (अतः) इस स्थान से (आ गहि) प्राप्त हों ।

आजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (ये) जो (अजिरासः) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले (हरयः) अश्व, (आशवः) शीघ्रगामी, (वाताः इव) वायु के झकोरों के समान (प्र-सक्षिणः) बलात् शत्रुओं को विजय करने वाले, हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुषः अपत्यं) मनुष्यों के समीप (परीयसे) आता है और (येभिः) जिनसे तू (स्वः-दृशे) सबको देखने के लिये (विश्वं परि ईयसे) समस्त जगत् में व्याप रहा है ।

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (यथा) जिस प्रकार भी हो तू (मेध्यातिथिं) अन्नादि से सत्कार करने योग्य अतिथिवत् पूज्य पुरुष को (प्र अवः) उत्तम रीति से तृप्त एवं प्रसन्न करता है, और (यथा) जिस प्रकार और जितने (धने) धन मे तू (नीपातिथिं) सन्मार्ग दिखाने वाले अतिथिवत् पूज्य पुरुष का (प्रावः) आदर सत्कार करता है हम भी (ते) तुझ से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एतावतः) इतने (गोमतः सुम्नस्य) गौ आदि पशुओं से समृद्ध सुखप्रद धन की (ईमहे) याचना करते है।

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥१५॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (कण्वे) मेधावी विद्वान् , (त्रसदस्यवि) दस्यु को भय देने वाले के निमित्त (यथा) जैसे (पक्थे दशव्रजे) दश मार्गयुक्त परिपक्क शरीर के निमित्त, (यथा

(गो-शर्ये) जैसे गो अर्थात् धनुष की डोरी और शर अर्थात् बाणों के चलाने में कुशल धनुर्धारी के निमित्त और (ऋजिश्वनि) अश्वों को ऋजु-मार्ग मे चलाने हारे, अश्वसाधक जितेन्द्रिय पुरुष के निमित्त तू (गोमत् हिरण्यवत्) गवादि पशुयुक्त और सुवर्णादि युक्त चल अचल धन (असनोः) न्याय, एवं पात्रापात्र विवेक से प्रदान करता है उसी प्रकार का धन हम भी तुझ से चाहते है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५०]

पुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७ निचृद् बृहती ॥ ९ विराड् बृहती । २, ४, ६, १० पङ्क्तिः । ८ निचृत् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सुन्वते) उत्तम आदर सत्कार करने वाले, (स्तुवते) स्तुतिशील पुरुष को (काम्यं वसु) कामना करने योग्य धन (सहस्रेण-इव मंहते) सहस्रों संख्या मे प्रदान करता है, उस (श्रुतं) जगत्-प्रसिद्ध (सु-राधसम्) सुख से आराधना करने योग्य, उत्तम धन-सम्पन्न (शक्रम्) शक्तिशाली परम पुरुष की (अभिष्टये) अभीष्ट कार्य के लिये (प्र सु अर्च) उत्तम रीति से पूजा, आदर सत्कार कर।

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की (शत अनीका) सैकड़ों सैन्य, सैकड़ों बल, सैकड़ों मुख, (हेतयः दुस्तराः) हनन व दण्ड देने के साधन दुस्तर, अपार, अजेय है और उस की (मही॰ समिषः) समस्त भूमियां भी उत्तम अन्न सम्पदाओं से सम्पन्न है, (यदि) ज-

(सुताः) नाना उत्पन्न पदार्थ एवं ऐश्वर्यगण (अमन्दिषुः) समस्त जीव प्रजागण को हर्षयुक्त, प्रसन्न करते है तब प्रतीत होता है कि वही (भुज्मा) सबका पालक परमेश्वर (गिरिः न) मेघ वा पर्वत के समान महान् उदार होकर (मघवत्सु) पूज्य धनवानों में (पिन्वते) ऐश्वर्य की मानो वर्षा किया करता है।

यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥३॥

भा०—(सुतासः इन्दवः) उत्पन्न हुए, ये ऐश्वर्ययुक्त, वा आर्द्र, ओषधि रसवत् आनन्दमय जीवगण, (यदि) जब (प्रियम् अमन्दिषुः) अपने प्रिय प्रभु को प्रसन्न कर लेते हैं तब हे (वसो) सबको बसाने हारे ! (दाशुषे दुघाः इव) यज्ञशील वा घास आदि देने वाले स्वामी के लिये दुधार गौवों के समान वा (सवनं) अभिषेकार्थ (आपः न) जल-धाराओं के समान उन सबको (मे उप आ धायि) मेरे लिये प्राप्त कराओ।

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों की (धीतयः) स्तुतियां और नाना कर्म (अनेहसं) पाप से मुक्त (हवमानम्) सब ऐश्वर्यों के देने वाले को उद्देश्य करके किये जाकर ही (ऊतये) तुम्हारी ही रक्षा, तृप्ति और सुख प्राप्ति के लिये (मध्वः क्षरन्ति) मधुर रसों, आनन्दयुक्त उत्तम फलों को उत्पन्न करते है। हे (वसो) सबमें बसने हारे ! सर्व-व्यापक प्रभो ! (हवमानासः) तेरी स्तुति करने वाले (इन्दवः) तेरी तरफ भक्तिप्रवाह व प्रेमरस मे द्रवित जीवगण (त्वा आ) तुझे ही अपने (स्तोत्रेषु) स्तोत्रो, स्तुति वचनों से (उप दधिरे) वर्णन करते है।

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (स्वदावन्) उत्तम अन्न वा कर्म फल के देने हारे ! (यं) जिस (ते) तेरे दिये को (गूर्त्तयः) उद्यमी, स्तुतिकर्त्ता जन उत्तम रूप से सुखपूर्वक भोगते है हे ऐश्वर्यंयन् स्वामिन् ! (तोशते) हिसाकारी शत्रु को दमन करने के लिये (इयानः) गमन करने वाले (अत्यः) अश्वारोही के समान तू (नः स्वध्वरे सोमे) हमारे उत्तम यज्ञ वा हिंसा-रहित और अहिंसित ऐश्वर्य के निमित्त (पौरे) नाना प्रजाओं के समूह की (हवं छन्दयसे) स्तुति को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर । इति षोडशो वर्गः ॥

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—हम (महः राधसः) बड़े भारी धनैश्वर्य के स्वामी (वीरम्) वीर, (उग्रं) बलवान्, (विविचिं) न्यायपूर्वक विवेक करने वाले (धन-स्पृतम्) धन से प्रजादि को पूर्ण और पालन करने वाले, (विभू-तिम्) विशेष सामर्थ्यवान्, परमेश्वर की हम सदा स्तुति करते है । हे वज्रिन्) वीर्यवन् ! तू (उद्रीव) गर्दन ऊपर उठाये पराक्रमी के समान (अवतः) जगत् की रक्षा करने हारा, (वसुत्वना) अपने बड़े ऐश्वर्य के द्वारा ही (दाशुषे पीपेथ) आत्मसमर्पक भक्त का पालन करता है ।

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह नूनं परावति) जो तू परम दूर भी है, (यद् वा पृथिव्यां) वा जो तू पृथिवी पर और (दिवि घ नूनं) सूर्य या महान् आकाश में भी सर्वत्र व्यापक है तू भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् । हे (महे-मते) महाज्ञानिन् ! तू (ऋष्वः) सब से महान् है । हे (इन्द्र)

ऐश्वर्यवन् ! (हरिभिः युजानः) विद्वान् मनुष्यों द्वारा और (ऋष्वेभिः) अपने महान् गुणों करके (युजानः) योग द्वारा चिन्तन किया जाकर हमे (नूनं) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त होता है ।

रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (हरयः) मनुष्य, जीवगण बलवान् अश्वों के समान ही (रथिरासः) रथारोही वीर वा रमण योग्य देह-धारी (अस्रिधः) अविनाशी वा अहिंसक हैं वे भी (वातस्य) वातवत् बलवान् और जीवनों के जीवन रूप तेरे ही (ओजः) बल पराक्रम को (पिप्रति) धारण करते हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुष्यः) मननशील जीव के (दस्युं) विनाश-कारी शत्रु, रोगादि को भी (नि घोषयः) नष्ट करता है और (येभिः) जिन्हों से तू (स्वः परि ईयसे) समस्त आकाशों को पूर्ण करता है।

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ९ ॥

भा०—वे (वसो) सबको बसाने हारे ! सब में बसने वाले प्रभो ! स्वामिन् ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (यथा) जिस धन से या जितने ऐश्वर्य से (कृत्व्ये धने) करने योग्य संग्राम के अवसर पर (एतश) अश्वसैन्यों को (प्राव.) अच्छी प्रकार रक्षा करता और (यथा दशव्रजे) जैसे दशों दिशाओ मे दश मार्ग वाले नगर में जितना ऐश्वर्य (वशं) वशकारी नगर के अध्यक्ष राजा (प्रावः) सन्तुष्ट करे हम (नव्यसः ते) अति स्तुति योग्य तेरे (एतावतः) इतने भारी ऐश्वर्य का (विद्याम) लाभ करें।

यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् १०।१७

भा०—हे (मघवन्) पूज्य धनसम्पन्न ! हे (अद्रिवः) शक्ति-

शालिन् ! (यथा) जितना ऐश्वर्य (कण्वे) विद्वान् जन में (अध्वरे) हिंसारहित (मेधे) पवित्र यज्ञ मे, (दीर्घ-नीथे) दीर्घ काल तक और दीर्घ मार्ग में लेजाने वाले (दमूनसि) दान्त चित्त वाले, जितेन्द्रिय पुरुष मे, (यथा) जितना ऐश्वर्य तू (गोशर्ये) धनुषबाण की शक्ति से सम्पन्न योद्धा मे (असिषासः) प्रदान करता है, उतना ही (हरि-श्रियम्) नाना अश्वों, मनुष्यों और विद्वानो को आश्रय देने वाला (गोत्रं) भूमि, इन्द्रिय गण, वाणी और गवादि पशु सम्पदा की रक्षा करने वाला धन (मयि) मुझ में भी प्राप्त करा। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[५१]

श्रुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ९ निचृद्बृहती। ५ विराड् बृहती। ७ बृहती। २ विराट् पङ्क्तिः। ४, ६, ८, १० निचृत् पङ्क्तिः॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥ १ ॥

भा०—(यथा) जितना और जिस प्रकार (सांवरणौ) उत्तम रीति से वरण करने योग्य (मनौ) प्रजा को थामने, उनको मर्यादा में स्थापित करने वाले राजा के पद पर विराज कर हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्यवन्! तू (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य, राष्ट्र का (अपिबः) भोग करता है उतना ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (नीपातिथौ) मार्गदर्शी के अतिथिवत् पूज्य पद पर और (मेध्यातिथौ) अन्न यज्ञादि से सत्कार योग्य अतिथिवत् पूज्य परिव्राजक के पद पर और (पुष्टिगौ) उतना ही पुष्टि अर्थात् पशु सम्पदायुक्त भूमि के स्वामी एवं अन्नादि से समृद्ध भूमि के स्वामी के पद पर (सचा) समवेत होकर भी भोग सकता है। अर्थात् क्षत्रिय राजा के ऐश्वर्य से परिव्राट् तथा सम्पन्न वैश्य का ऐश्वर्य भी कम नहीं है।

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥ २ ॥

भा०—(पार्षद्-वाणः) वाणी अर्थात् वेदवाणी का सेवन करने वाला विद्वान् (शयानम्) अन्धकार मे सोते के समान (जिव्रिम्) जीर्ण, वा प्रसन्न करने वाले, (उद्-हितम्) उत्तम सम्बन्ध मे बद्ध (प्रस्कण्वं) उत्तम तेजस्वी, शिष्य वर्ग को (सम् असादयत्) प्राप्त करे और (वृकः दस्यवे गवां सहस्राणि सिषासद्) हल जिस प्रकार भूमि के तोड़ने वाले किसान के लाभ के लिये सहस्रों अन्न प्रदान करता है, उसी प्रकार (त्वा उतः) तेरी रक्षा मे रहने वाला (वृकः) तेजोमय ज्ञान को प्रकट करने वाला (ऋषिः) ज्ञानदर्शी पुरुष (दस्यवे) दानशील आत्मसमर्पक शिष्य के लाभ के लिये (गवां सहस्राणि) सहस्रों वेदवाणियों को (असिषासत्) प्रदान करे । अथवा वह ऋषि (दस्यवे वृकः) दस्यु, दुष्ट जन के लिये वृक के समान भयजनक होकर (गवां सहस्राणि असिषासत्) सहस्रो भूमियों का भोग करता है ।

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥

भा०—(यः) जो (चिकिद्यः) जानने योग्य, सर्ववेद्य, (ऋषि-चोदनः) ऋषियों, साक्षात् तत्वदर्शी पुरुषों से उपदेश करने योग्य आत्मा (उक्थेभिः) नाना शास्त्र-वचनों से भी (न विन्धते) नहीं जाना जाता (तम्) उस (अरिष्यन्तं न इन्द्रम्) सर्वरक्षक के समान ऐश्वर्यवान् प्रभु को (भोजसे) रक्षा और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, (नव्यस्या मती) अति स्तुति वाणी, द्वारा (अच्छ वद) साक्षात् उपदेश कर ।

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्वि१मा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥ ४ ॥

भा०—इन्द्र विषयक उपदेश। (उत्तमे पदे) परम, उत्तम पद प
विद्यमान (यस्मै) जिस प्रभु के वर्णन करने के लिये (त्रि-धातुम्) तीनों
प्रकार से धारित (सप्त शीर्षाणम् अर्कं) सात शिरों वाले अर्चना योग्य
मन्त्रगण की (आनृचुः) स्तुति करते है, (सः तु) वही परमेश्वर (इमा
विश्वा भूतानि) इन समस्त भुवनो को (चिक्रदत्) शासन करता है
और (पौंस्यं जनिष्ट) पौरुष, बल, महती शक्ति प्रकट करता है, वेद मन्त्र
प्रभु की स्तुति करने योग्य होने से 'अर्क' है। ऋक् यजुः साम तीन रूप से धारण
करने योग्य होने से 'त्रिधातु' और सात छन्द उसके प्राण है।

अथवा—(यस्मै उत्तमे पदे) उत्तम पद, पर विद्यमान जिसके लिये
(सप्तशीर्षाणम् त्रिधातुम् आनृचु.) सात शिरों वाला, तीनों लोकों का
धारक बतलाते हैं वही इन समस्त विश्वों का शासक और शक्तिप्रकाशक
है। प्रभु के सात शिर सप्त भुवन वा सप्त विकृति है।

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥५॥१८॥

भा०—(यः) जो (नः) हम (वसूनां दाता) समस्त जीवो का
दाता, वा समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का देने वाला है (तम् इन्द्रम्
हूमहे) हम उसी ऐश्वर्यवान् की पुकार वा उसी से प्रार्थना करें। (अस्य)
उसी (नवीयसीं) अति स्तुत्य (सु-मति) उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी
को हम (विद्म) जानें और (गोमति व्रजे) इन्द्रियों रूप अश्वों से युक्त
गमन साधन रथवत् इस देह मे ही हम उसे (गमेम) प्राप्त करें, जानें
वा (गोमति व्रजे) गौओ से युक्त व्रजवत् ज्ञान वाणियो से युक्त उपग-
न्तव्य आचार्य वा गुरु के अधीन रहकर हम इस 'इन्द्र' प्रभु का ज्ञान वा
प्राप्ति करें। आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः। मनु०।

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने हारे, सबमें बसने हारे, सबको आच्छादन पालन करने हारे प्रभो ! (यस्मै दानाय शिक्षसि) जिस दानशील पुरुष को तू दान करता है (सः) वह (रायः पोषम् अश्नुते) ऐश्वर्य की वृद्धि को प्राप्त करता है। हे (गिर्वणः) वेदवाणियों से सेवने योग्य, वा वाणियों के दातः ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मघवन्) पूजित पदयुक्त ! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न अनित्य पदार्थों वाले (ते त्वा हवामहे) उस तेरी प्रार्थना करते हैं। हमें भी नाना ऐश्वर्य प्रदान कर।

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! तू (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न) हिंसक नहीं है, अथवा निर्दुग्ध गाय के समान अदानशील नहीं है। तू (दाशुषे सश्चसि) दानशील, यजमान आत्मसमर्पक के सदा साथ रहता है। (मघवन्) पूजित धन युक्त ! (देवस्य ते) दानशील तेरा (दानं) दिया धन (उप-उप इत् नु पृच्यते) बराबर प्राप्त होता है और (भूयः उत् नु) खूब अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) बलपूर्वक (शुष्णम्) मेघ के विद्युत् के समान प्रजा के शोषण करने वाले बलवान् शत्रु को (वधैः) आघातकारी शस्त्रास्त्रों से (नि घोषयन्) विनाश करता हुआ (क्रिविं) जल से कूप तडागवत् इस समस्त संसार को अपने पराक्रम से (अभि प्र ननक्षे) पूर्ण करता, व्यापता है और (यत्) जो (अमूं दिवम् प्रथयन् अस्तम्भीत्) इस पृथिवी को विस्तृत करता हुआ उस आकाश वा सूर्य को भी स्थिर करता

है, और (आत् इत्) अनन्तर वह (पार्थिवः) समस्त पृथिवियों का स्वामी स्वयं पृथिवीवत् माता होकर (जनिष्ट) समस्त स्थावर जंगम संसार को उत्पन्न करता है।

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ ९ ॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु का (विश्वः आर्यः) समस्त श्रेष्ठ (अरिः) पुरुष (दासः) सेवकवत् (शेवधि-पाः) उसी के खज़ाने की रक्षा करने वाला है। उस (अर्ये) स्वामी (रुशमे) सर्व नियन्ता, (पवीरवि) पापनिवारक राजदण्डवत् परम तप रूप वज्र के धारक प्रभु के अधीन समस्त विश्व विद्यमान है। हे प्रभो! (सः रयिः तुभ्य इत् अज्यते) यह सब मूर्त्त संसार तेरे ही गुणों के दर्शन के लिये प्रकट है। अथवा (यस्यायं विश्वः आर्यः दासः) जिसका यह समस्त श्रेष्ठ जन सेवकवत् है जिसका स्वयं अपने खजाने को बचानेवाला शत्रुतुल्य है, जो धन (अर्ये रुशमे पवीरवि) वैश्य, शस्त्रधारी क्षत्रिय मे (तिरः चित्) सुगुप्त है वह भी (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे लिये ही प्रकट प्राप्त है।

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥१०॥१९॥

भा०—(तुरण्यवः) क्षिप्रकारी, कर्मकुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (घृत-श्चुतम्) जलदाता मेघ के तुल्य उदार तेजःप्रद सूर्यवत् प्रकाश स्वरूप (मधुमन्तं) जलयुक्त समुद्रवत् अपार अन्नयुक्त पृथिवीवत् पालक (अर्कं) अर्चना करने योग्य प्रभु की (आनृचु) स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं कि (अस्मे रयिः पप्रथे) हमारा ऐश्वर्य बढ़े, (अस्मे वृष्ण्यं शव) हमारा सुखवर्षक बल बढ़े। (अस्मे सुवानासः इन्दवः) हमारे उत्पन्न होते हुए, वा उत्तम प्रजा उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य और वीर्य हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५२]

आयुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ६ विराड् बृहती । २ पादनिचृत् पङ्क्तिः । ४, ९, ८, १० निचृत् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥ १ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! (यथा) जिस प्रकार और जितना (विवस्वति मनौ) विविध प्रजाओं के स्वामी, सुव्यवस्थापक राजा के पद पर विराज कर (सुतं सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य को (अपिबः) तू उपभोग करता है, और (यथा) जिस प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्रिते) तीनों विद्याओं मे पारंगत विद्वान् के पद पर भी (छन्दः जुजोषसि) वेद वाणी का प्रेमपूर्वक सेवन करता है उसी प्रकार तू (आयौ) मनुष्यों के बीच में (सचा) वर्त्तमान रहकर भी (मादयसे) हर्ष लाभ करता और हर्ष प्रदान करता है । वह प्रभु ही राजा के राज्य और विद्वान् के ज्ञान और मनुष्य मात्र के हर्ष को पालता, स्वीकार करता और देता है ।

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (पृषध्रे) जलसेचक मेघ को धारण करने वाले (मेध्ये) उत्तम अन्न के हितकारी (सुवाने) उत्पादक (मातरिश्वनि) आकाशगामी वायु में आनन्द लाभ करता है । और (यथा) जिस प्रकार (दशशिप्रे) दशों प्राणों को मुकुटवत् धारण करने वाले वा (दशोण्ये) दश प्राण युक्त (स्यूम-रश्मौ) रश्मियों से युक्त तेजस्वी (ऋजु-नसि) सरल नासिका वाले, अभ्यासी पुरुष में (सोमं) परमानन्द रस का पान करता है ।

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः॥३॥

भा०—(यः) जो (केवला उक्था दधे) केवल उत्तम स्तुत्य वचनों को स्वीकार करता है, (यः धृषिता) जो सब दुष्टों को धर्षण करने हारा (सोमं अपिबत्) सोम रस का पान करता, उत्पन्न जगत् वा ऐश्वर्य का पुत्रवत् पालन करता है, (मित्रस्य धर्मभि) मित्रवत् सूर्य के धारणसामर्थ्यों से (विष्णुः) व्यापक वायु (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनो लोकों मे व्यापता है वही 'इन्द्र' है ।

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञा वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (यस्य) जिसके (वाजे) यज्ञ मे (स्तोमेषु) स्तुतिवचनों मे (चाकनः) अभिलाषा करता है, (गोदुहः सुदुघाम् इव) गौ दुहने वाले उत्तम दुग्धदात्री गौ को जिस प्रकार बुलाते है उसी प्रकार (वयं) हम लोग (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) धन, ज्ञान, यश, अन्नादि के इच्छुक होकर (जुहूमसि) तुझे पुकारते है, तेरी प्रार्थना करते है ।

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसु गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५॥२०॥

भा०—(यः नः दाता) जो हमे देता है, (सः न पिता) वही हमें पालन करता है । वह (महान् उग्रः) बड़ा भारी, बलवान् (ईशान-कृत्) समस्त ऐश्वर्य को बनाने वाला शासक है । वह (उग्रः) बलवान् (मघवा) उत्तम धनाढ्य होकर (पुरु-वसु अयामन्) बहुत धन प्रदान करता है और वह (गोः अश्वस्य नः प्रदातु) गौ अश्व आदि हमे देवे । इति विंशो वर्गः ॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सर्व व्यापक ! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिस दानशील को दान देता है (सः रायः पोषम् इन्वति) वह ऐश्वर्य की समृद्धि को प्राप्त करता है । हम (वसु-पतिं) सब लोको और जीवों के पालक (शत-क्रतुं) अनेक कर्मों के कर्त्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक होकर (हवामहे) स्तुति प्रार्थना करते है ।

कदा च न प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (कदाचन प्रयुच्छसि) कभी भी प्रमाद नहीं करता । (उभे जन्मनी नि पासि) इह और पर दोनों लोकों को पालन करता है । हे (तुरीय) सबसे पार ! हे (आदित्य) सब विश्व के नियन्तः ! (ते) तेरा यह (हवनं इन्द्रियम्) देने योग्य ऐश्वर्य है जो (दिवि) मोक्ष में (अमृतं) अमृतस्वरूप (आ तस्थौ) विद्यमान है । (२) इसी प्रकार जगत् आदि तीनों अवस्थाओं से अतीत आत्मा के ही इन्द्रिय विभूति हैं जो (दिवि) शिरोरूप मस्तक मे जीवित जागृत रूप मे विद्यमान है ।

यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन् इन्द्र) उत्तम पूजित धन के स्वामिन् ! दुष्टों के नाश करने और ऐश्वर्य के देने हारे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य प्रभो ! हे (शिक्षो) दानशील ! तू (यस्मै दाशुषे) जिस दानशील पुरुष को (शिक्षसि) दान करता है वह ही सम्पन्न हो जाता है । हे (वसो) सर्वस्वामिन् ! (उत) और तू (कण्ववत्) ज्ञानी के समान (अस्माकं गिरः) हमारी वाणियों को और (सु-स्तुति हवम्) उत्तम स्तुति और याचना को (श्रृणुधि) श्रवण कर ।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—(मन्म) मनन करने योग्य, ज्ञानमय (पूर्व्यं) सनातन ब्रह्म वेद का (अस्तावि) स्तवन करो और उसका (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (वोचत) उच्चारण करो । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पूर्वीः) सनातन वेदवाणियों की (अनूषत) स्तुति करो, और (स्तोतुः (मेधाः) स्तुतिकर्त्ता की वाणियों और बुद्धियां स्वयं (असृक्षत) उत्पन्न होती है ।

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः १०।२१

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर ही (रायः) समस्त ऐश्वर्यों और (बृहतीः) जगत् की बड़ी २ शक्तियों को (सम् अधूनुत) अच्छी प्रकार संचालित करता है । वही (क्षोणीः सं सूर्यम् उ सम्) समस्त पृथिवियों और सूर्य को चलाता है, (शुचयः शुक्रासः) शुद्धाचारवान्, तेजस्वी पुमान् पुरुष और (गवाशिरः सोमाः) वेदवाणी का आश्रय लेने वाले जितेन्द्रिय पुरुष (इन्द्रम् सं सम् अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार स्तुति करते, उसे प्रसन्न करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५३]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराड् बृहती । ३ प्राची स्वराड् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पंक्तिः । ८ विराट् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम, प्रशंसित धनसम्पन्न हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ऐश्वर्यप्रद ! (मघोनां उपमानं) धनवानों के आदर्श और (पू-

माणां च) मेघवत् सुखों की वृष्टि करने वाले उदार दाताओं मे (ज्येष्ठं) सबसे बड़े, सबसे उत्तम, (पूर्भित्-तमं) शत्रुओं के दृढ़ दुर्ग भेदन करने मे अति कुशल जीवों के पुर रूप देहबन्धनों को भेदन करनेवाले, (गो-विदम्) भक्त की वाणी को जानने वाले, (ईशानं) परमेश्वर से हम (रायः ईमहे) नाना ऐश्वर्यों की याचना करते है ।

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (दिवे-दिवे) दिनोदिन (वावृधानः) निरन्तर बढता हुआ (आयुम्) शरण मे आने वाले (कुत्सम्) स्तुति करने वाले और (अतिथिग्वम्) अतिथिवत् परमेश्वर के प्रति उत्तम स्तुति वाणी का प्रयोग करने वाले पुरुष को (अर्दयः) प्राप्त होता वा सन्मार्ग मे चलाता है (तं हर्यश्वं) उस तुझ मनुष्यों को अश्वों के तुल्य सन्मार्ग मे संचालन करने वाले (शत-क्रतुं त्वां) सैकडों कर्म और प्रज्ञाओं वाले तुझ प्रभु वा विद्वान् से (वाजयन्तः) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना करते हुए हम (हवामहे) याचना किया करें ।

अर्दयः—अर्द गतौ याचने च । भ्वादिः । स्वार्थे णिच् ।

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (इन्दवः) विद्वान् तेजस्वी जन (परावति) परम ब्रह्म मे (सुन्विरे) अभिषिक्त होते है और (ये) जो (अर्वावति) इस लोक मे भी (जनेषु) मनुष्यों के बीच (सुन्विरे) प्रतिष्ठा को प्राप्त होते है वे (अद्रय) मेघ के समान (नः विश्वेषां) हम सब के हितार्थ (मध्व. रसं) मधुर ज्ञान का रस ओषधि-रसवत् ही (आसिञ्चन्तु) आसेचन किया करें, प्रदान करें ।

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४॥२२॥

भा०—(यत्र) जिस दशा मे तू (सोमस्य तृम्पसि) ऐश्वर्य से तृप्त होता है, उसी दशा में तू (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषों को और द्वेष करने वाले जनों को (जहि) विनष्ट कर और (अव कृधि च) नीचा कर । (चित्ते मदिरासः) चित्त मे सुप्रसन्न (अंशवः) व्याप्त विद्यावान् (विश्वे) समस्त जन (शिष्टेषु) शिष्टो, विद्वानो के बीच मे (त्वा वसु सन्वन्तु) तुझे समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (शन्तम) अति शान्तिदायक ! हे (स्वापे) उत्तम बन्धो ! तू (मित-मेधाभिः) परस्पर सत् संगतियुक्त, (ऊतिभिः) रक्षाओं, और (शं-तमाभिः) अति कल्याणकारक, शान्तिदायक (अभिष्टिभिः) अभीष्ट सुख देने वाले उपायों सहित हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू हमारे (नेदीयः इत्) सदा अति समीप ही (आ इहि) प्राप्त हो ।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (ते) तेरे (उक्थिनः) उत्तम वेद वचनों के ज्ञाता जन (शचीभिः) उत्तम वाणियों द्वारा (ते क्रतु) तेरे यज्ञ, बुद्धि वा ज्ञान को (आनुषक्) निरन्तर (पुनते) पवित्र करते रहते हैं वह तू (प्र सु-तिर) उनको अच्छी प्रकार बढ़ा । और (प्रजासु) प्रजाओं में (आजि-तुरं) संग्राम मे शत्रुओं का नाश करने वाले (सत्पतिं) सज्जनों के पालक (विश्व-चर्षणिं) सबके द्रष्टा (आ-भगम्) सब प्रकार से भजन सेवन करने योग्य को (कृधि) अधिकारवान् कर ।

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ते) तेरी (साधिष्ठः) सबसे उत्तम साधना करने वाला है वह (अवसे) हमारी रक्षा करने वाला हो। हम (भरेषु) यज्ञो मे भी (ते स्याम) तेरे ही होकर रहे। (वयं) हम लोग (देव-हूतिभिः) विद्वान् पुरुषो द्वारा स्वीकृत (होत्राभिः) वाणियो और यज्ञ सत्क्रियाओ द्वारा (ससवांसः) तेरी स्तुति करते हुए ही (मनामहे) तेरा चिन्तन उपासना किया करे।

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ ८ ॥ २३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वो के तुल्य मनुष्यों पर वश करने हारे! (अहं हि) मै (ते ब्रह्म यामि) तेरे स्तोत्र, ज्ञान और महान् ऐश्वर्य की याचना करता हू। मैं (वाजयुः) वल की कामना करता हुआ, (सदा ऊतिभिः) सदा तेरी ही रक्षाओ और शक्तियों द्वारा (आजिं यामि) युद्धादि शत्रुगण को उखाड़ डालने वाले वल की याचना करता हूं। मै (अश्वयुः गव्युः) अश्वों और गौवों की कामना करता हुआ (मथीनां अग्रे) शत्रुओं को मथन करने वाली सेनाओं के भी अग्रभाग में (त्वाम् इत् इव) तुझे ही (सं तममे) अच्छी प्रकार स्थापित करता हूं। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[५४]

मातरिश्वा काण्व ऋषिः ॥ १, २, ५—८ इन्द्र । ३, ४ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५ निचृत् बृहती। ३ बृहती। ७ विराड् बृहती। २, ४, ६, ८ निचृत् पङ्क्तिः ॥

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कारवः) विद्वान् स्तुति कर्त्ता जन (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ते) तेरे (एतत् वीर्यं) इस महान् सर्व प्रत्यक्ष वल का (गृणन्ति) उपदेश करते है । (ते पौरासः) वे दृढ़ेन्द्रिय पुरुष (घृत-श्चुतं) तेज के देने वाले तुझ को ही (स्तोभन्तः) स्तुति करते हुए (ऊर्जम् आवन्) वल को प्राप्त करते है और (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से तुझे (नक्षन्) प्राप्त करते है ।

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (येषां) जिन के (सुतेषु) उत्पन्न किये उत्तम कर्मों वा ऐश्वर्यों पर (मन्दसे) प्रसन्न होता है वे अपने (सुकृत्यया) उत्तम कर्म-सामर्थ्य से (अवसे) रक्षा के निमित्त (इन्द्रम्) दुष्टों के नाशक उसी स्वामी को (नक्षन्त) प्राप्त करते है । हे प्रभो ! तू (यथा) जिस प्रकार (संवर्त्ते) सम्यक् दृष्टि से वर्त्तने वाले सम्यङ व्यवहारवान् पुरुष पर (अमदः) प्रसन्न होता है, और (यथा) जिस प्रकार (कृशे) तपस्या द्वारा शरीर को कृश करने वाले त्यक्तभोगी पर या निर्वल पर प्रसन्न या कृपालु होता है उसी प्रकार तू (एव अस्मे मत्स्व) हम पर भी प्रसन्न, कृपालु रह ।

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप (विश्वे) सब लोग (नः) हम से (सजोषसः) प्रीतियुक्त होकर (नः उप गन्तन) हमें प्राप्त होवें । (वसवः) रक्षक, (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले, प्राणवत् प्रिय पुरुष, (नः) हमें (अवसे) रक्षार्थ (आगमन्) प्राप्त हों । और (मरुतः) वे वलवान् पुरुष (नः हवम् शृण्वन्तु) हमारा आह्वान, हमारी पुकार सुनें ।

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४॥२४॥

भा०—(पूषा) सर्वपोषक, सूर्य (विष्णुः) व्यापक वायु, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वाणी, और (सप्त सिन्धवः) शरीरस्थ सातो गतिशील और शरीर को बांधने वाले प्राण, (आपः) जल, (वातः) वायु, (पर्वतासः) मेघगण (वनस्पतिः) वनस्पति वृक्षादि, ये सब (मे हवनं अवन्तु) मेरे यज्ञाहुति को प्राप्त हो। (पृथिवी मे हवम् शृणोतु) समस्त पृथिवी मेरे कथन या दान यज्ञादि को श्रवण करे। मेरी प्रसिद्धि हो।

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (मघवत्तम) पूज्य धन के स्वामियों में सर्वश्रेष्ठ! (यत् ते राधः) जो तेरा धन (माघोनं) धन स्वामी बनाने वाला है, तू (सधमाद्यः) सब के साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला होकर (तेन) उस धन से (नः) हमें भी (वृधे) बढ़ाने और (नः दानाय) हमें प्रदान करने के लिये (बोधि) जान, हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! तू (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्वसेवनीय है।

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥

भा०—हे (आजिपते) युद्धों के पालक! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक! हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावान्! (त्वम् इत् हि नः) तू ही हमें (वाजे आवक्षि) सग्राम में धारण कर। (देव-वीतिभिः) विद्वानों या शुभ गुणों के प्रकाश करने वाली (वीती) ज्ञानयुक्त (होत्राभिः) वाणियों से (ससवास) स्तुति करते हुए विद्वान् जन (वि शृण्विरे) विविध प्रकार से सुने जावें।

सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥७॥

भा०—(अर्ये) स्वामी के आश्रय ही (जनानाम्) मनुष्यों की सब (आशिषः सन्ति) आशाएं होती है और (इन्द्रे) उसी ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन समस्त जनो का (आयुः) जीवन है । हे (मघवन्) प्रभो ! तू (अस्मान् रक्षस्व) हमारी रक्षा कर और (अवसे) हमे तृप्त करने के लिये (पिप्युषीम्) पुष्टि और वृद्धिकारक (इषं उप धुक्षस्व) अन्न प्रदान कर ।

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८॥२५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयम्) हम (ते) तेरा (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (विधेम) वर्णन करे । हे (शत-क्रतो) सैंकडों ज्ञान विज्ञानों से सम्पन्न ! (त्वं) तू (अस्माक) हमारा ही है । तू (प्र स्कण्वाय) उत्तम विद्वान् को (महि स्थूर) बहुत बडा भारी, स्थिर (शशयं) अति प्रशंसनीय, (अह्रयं) अक्षीण, अविनाशी, (राध. नि तोशय) धन प्रदान कर । इति पञ्चविंशो वर्ग ॥

[५५]

कृशः काण्व ऋषिः ॥ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, ४ गायत्री । ३, ५ अनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) प्रजा के नाशक, दस्यु, दुष्ट पुरुष के नाश करने के लिये वृक के समान भयप्रद ! (इन्द्रस्य ते) ऐश्वर्यवान् दुष्ट हन्ता तेरे (वीर्यं भूरि इत्) बहुत अधिक बल को ही मैं (वि अख्यम्)

विशेष रूप से साक्षात् करता हूं और (ते भूरि राधः) तेरा बहुत अधिक धन हमारे सन्मुख आता है ।

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते ।
मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

भा०—(दिवि) आकाश मे (शतं) सैकडो (श्वेतासः) शुभ वर्ण के, (उक्षणः) नाना पिण्डो, ग्रहो उपग्रहो को वहन करने वाले सूर्य-गण (तारः न) तारों के समान ही (रोचन्ते) चमकते है । वह (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (दिवं न)सूर्य के समान तेजस्वी पिण्डो को भी (तस्तभुः) थाम सकते है, वह सब उसी प्रभु का महान् बल है ।

शतं वेणूञ्छत शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥

भा०—(शतं वेणून्) सौ अर्थात अनेक वीणाएं, (शतं शुनः) सौ, अर्थात् अनेक कुत्ते (शतं म्लातानि चर्माणि) सैकडो बनाये हुए चमड़े, और (शतं बल्वजस्तुका) सौ मूंज की सी गुच्छों वाली वनभूमियां और (अरुषीणां चतु.शतम्) दीप्तियुक्त चमकती कान्ति वाली भूमियों की ४ सौ सख्या । ये सब जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होती है वैसे (मे) मेरे भी हों । अर्थात् यह राजसी सैकडों बाजे, सैकडों कुत्तों के समानस्वामिभक्त प्रहरी वा सेवक, सैकडों रक्षार्थ ढालें, और सैकडों वन भूमिये, और सैकड़ों चारों ओर पके खेत ये सब ऐश्वर्यवान् वीर राजा की विभूति है वे हमे प्राप्त हो ।

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः ।
अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

भा०—हे (सु-देवा.) उत्तम कामनावान् मनुष्यो ! जीवगण ! आप लोग (काण्वायना. स्थ) विद्वान् पुरुषो के अधीन उसके आश्रय

उसके समीप जाने वाले होकर रहो। आप लोग (वयः वय. चरन्तः) एक के बाद दूसरी अवस्था को व्यतीत करते हुए, वा एक से एक, उत्तरोत्तर बल, ज्ञान, योग्यता आदि प्राप्त करते हुए, (अश्वासः न) अश्वो के समान वीरतापूर्वक (चङ्क्रमत) बराबर कदम बढ़ाते चलो।

आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः।

श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(साप्तस्य) सातों प्राणों वा सातो विकारो के स्वामी (अनूनस्य) अन्यून अर्थात् पूर्ण पुरुष का (महि श्रवः) महान् यश (चर्किरन्) सर्वत्र ही फैला रहे है। (श्यावीः पथः) राजस और तामस मार्गों को विद्वान् जन अतिक्रमण करता हुआ जीवगण (चक्षुषा न) चक्षु से भी उसकी विभूतियों को (सं नशे) अच्छी प्रकार साक्षात् करता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५६]

पृषध्रः काण्व ऋषिः ॥ १—४ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः। ५ अग्निसूर्यौ देवते ॥ छन्दः—१,३,४ विराड् गायत्री। २ गायत्री। ५ निचृत् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम्।

द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट चोर-पुरुषों के विनाश के लिये प्रकृति सिद्ध, तेजस्वी वीर पुरुष! (ते राधः) तेरे ऐश्वर्य को मैं (अह्रय प्रति अदर्शम्) प्रत्यक्ष रूप मे अविनाशी रूप से देखता हूं। (ते शवः) तेरा महान् बल भी (द्यौः न प्रथिना) महान् आकाश के समान विस्तृत है।

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः।

नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

भा०—(दस्यवे वृकः) दस्यु सत्-कर्मों के नाशकारी दुष्ट पुरुष

को नाश करने या दूर करने के लिये जिस प्रकार 'वृक' के समान कठोर स्वभाव वाला, बलवान् शस्त्रधारी पुरुष ही समर्थ होता है उसी प्रकार आत्मा की शक्तियो के नाशकारी काम, क्रोध, लोभ, मोहादि भीतरी चोर डाकुओ को नाश करनेवाला ज्ञान का प्रकाशक सूर्यवत् तेजस्वी, (पौतक्रतः) पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाला वह प्रभु (मह्यं) मुझे (नित्याद्) नित्य, सनातन ज्ञान-कोश वेद से (दशसहस्रा वय·) दस सहस्र मन्त्र रूप धन, (अमंहत) प्रदान करता है। इसी प्रकार आचार्य भी शिष्य के अज्ञान दूर करने वाला हो; और वह नित्य वेद के दस सहस्र ऋचाओं का ज्ञान प्रदान करे। वृकश्चन्द्रमा भवति, विवृतज्योतिष्को वा, विकृतज्योतिष्को वा, विक्रान्तज्योतिष्को वा। आदित्योपि वृक उच्यते यदा वृङ्क्ते। श्वापि वृक उच्यते विकर्त्तनात्। निरु० ५।४। १॥ वृको लाङ्गलो भवति विकर्त्तनात्। निरु० ६। ५। ३॥ अत्र दस्युपक्षे विकर्त्तनात् वृकः। आदित्यपक्षे विद्वत्पक्षे ईश्वरपक्षे च विकृतज्योतिष्को विक्रान्तज्योतिष्कोः यदावृङ्क्ते इति वृक। इति विवेकः।

दस्युः—दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थात् उपपदस्यन्त्यरिमनसा, उपदासयति कर्माणि।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम्। शतं दासाँ अति स्रजः॥३॥

भा०—वह प्रभु (मे) मुझ प्रजाजन को (गर्दभानां शतम्) सौ गर्दभ अनेक जाति के जीव, (ऊर्णावतीनाम् शतम्) ऊन वाली भेड़ों की जाति के सौ, अनेक पशु (शतं दासान्) सौ दास, भृत्य, कर्म-कर (अतिस्रजः) प्रदान करता है। जब भृत्यों ने भृति अर्थात् शरीरपोषण मात्र वेतन लेकर ही कार्य करना है तो उनका एक के यहां से दूसरे के यहां परिवर्त्तन हो जाना कोई असंगत नहीं है। एक राजा का एक विद्वान् की सेवा मे सैकड़ो भृत्य नियुक्त करना क्या बुरा है? जब कि उनका वेतन वैसा का वैसा और कार्य भी वैसा ही है। क्या इसी प्रकार शत्रुनाशक सेनादि के सौ २ के दस्तो का परस्पर दान-आदान नहीं होता? क्या वह बुरा है?

सवन का प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (सोमं पातम्) यज्ञ में ओषधि रसवत् देह में वीर्य का पालन और उसका ज्ञान-अर्जनादि में उपयोग किया करो ।

पुनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः) आकाश (रजस.) अन्तरिक्ष और (पृथिव्या') भूमि का (वृषभः) मेघ, सूर्य अग्निवत् वर्षण करने वाला, विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों के प्रति (पनाय्यं) स्तुत्य (कृतं) कर्त्तव्य कर्म का उपदेश करे । (ये) जो विद्वान् लोग (गविष्टौ) वेद-वाणियों के ज्ञान प्रदान के निमित्त (सहस्रं शंसा) सहस्रों मन्त्रों का उपदेश करते हैं हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (तान् सर्वान्) उन सब के (उप) पास (पिबध्यै) व्रत पालन और ज्ञान प्राप्ति के लिये (उप यातम्) प्राप्त होवो ।

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥२८॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य का परित्याग कर सत्य व्रत का ही पालन करने की प्रतिज्ञा करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यजत्रा) यज्ञशील, दानशील होकर (इमा गिरः उप यातम्) इन वेद-वाणियों को प्राप्त करो । (अयं वां भाग. निहित) यह तुम दोनों का सेवन करने योग्य मार्ग निश्चित किया गया है । (अस्मे) हमारे इस (मधुमन्तम्) मधुर ज्ञान से युक्त (सोम) उपदेश का (पिबतं) पान करो और (शचीभि.) उत्तम वाणियों, शक्तियों और सत्क्रियाओं से (दाश्वांसम्) ज्ञानदाता को उत्तम रीति से प्राप्त होवो और उसकी (प्र अवतन्) रक्षा करो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[५८]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ १ विश्वेदेवा ऋत्विजो वा । २, ३ विश्वेदेवा देवताः ॥
छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् १

भा०—(यं) जिस (यज्ञ) पूजा, अर्चना, उपासना करने योग्य परमेश्वर की (बहुधा) बहुत से प्रकारो से (कल्पयन्तः) कल्पना करते हुए, (सचेतसः) ज्ञानवान्, तत्समान चित्त होकर (ऋत्विजः) प्रति ऋतु, प्रति प्राण, ज्ञानपूर्वक यज्ञोपासना करने वाले, विद्वान्‌जन (इमं) इस उपास्य यज्ञ को (वहन्ति) हृदय मे ज्ञान और कर्मरूप से धारण करते है। (यः) जो (अनूचानः) विद्वान् , बहुश्रुत (ब्राह्मणः) ब्रह्म, वेद का ज्ञाता पुरुष (युक्तः आसीत्) इस यज्ञ वा उपासना कार्य मे नियुक्त होता है (तत्र) उसमें (यजमानस्य का स्वित् संवित्) यजमान की किस प्रकार मनोभावना, वा पारमार्थिक प्राप्ति होती है ?

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः । एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥२॥

भा०—उस उपास्य को यज्ञ द्वारा उपासना करने में यजमान की ऋत्विजों के साथ इस प्रकार की सम्यग् दृष्टि होनी चाहिये कि—जिस प्रकार (एकः एव अग्निः) एक ही अग्नि (बहुधा समिद्धः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि आदि नाना प्रकार से सदीप्त किया जाता है, और जिस प्रकार (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्वम् अनु प्रभूतः) समस्त विश्व के प्रति प्रकाश ताप देने और जगत् के गतिमान् पिण्डों को स्तम्भन करने मे पर्याप्त समर्थ होता है और जिस प्रकार (एका एव उषा) एक ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब ब्रह्माण्ड को विशेष रूप से चमका देती

है, इसी प्रकार (इदं) यह (सर्वम्) सब भी (एकं वा वि बभूव) एक ही सत् पदार्थ नाना रूप से प्रकट होता है। समस्त विश्व में वही परमात्मा, अग्निवत् स्वप्रकाश, सूर्यवत् सर्वप्रकाशक और उषा वत् सर्व जगत् का प्रवर्तक है।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अतिरिक्तं पिबध्यै ३।२९

भा०—विराट् रथ का वर्णन। (यस्य योगे) जिसके प्राप्त होने पर (चित्रा मघा अधिजज्ञे) अद्भुत ऐश्वर्य की विभूति उत्पन्न होती है (तं रिक्तम्) सर्वातिशायी, सब से बढ़ के शक्तिशाली उसका (पिबध्यै) आनन्द-रस पान करने के लिये (वां अति हुवे) आप दोनों को मैं उपदेश करता हूं। वह कैसा है। अग्नि के समान (ज्योतिष्मन्तं) ज्योतिष्मान् तेजोमय (केतुमन्तं) ज्ञानवान् (त्रिचक्रं रथं) रथ के समान तीन चक्रों वाला, (सुखं) सुखप्रद, उत्तम आकाशों, वाइन्द्रिय वा छिद्रों से युक्त, (सु-पदं) उत्तम रीति से सुखपूर्वक रहने योग्य, व सुख से जाने या गति करने वाला, (भूरि-वारम्) बहुतों से वरणीय, बहुत से कष्टों का वारक है, (तं वा हुवे) मैं उसका तुमको उपदेश करता हूं। विराट् प्रभु ईश्वर, ज्योतिस्वरूप, ज्ञानवान् है। प्रकृति के तीन गुण उसके तीन चक्र अर्थात् संसार के रचना करने के साधनवत् हैं वह आनन्दमय, सुख से प्राप्य, सहस्रों कष्टों का वारण करता है। सब से महान् होने से 'रिक्त' है। उस ब्रह्मरस का पान करने के लिये सबको मैं उपदेश करता हूं। इत्ये-कोनत्रिंशो वर्गः॥

[५९]

सुपर्ण काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ [illegible] । २, [illegible] जगती । ४, ५, ७ विराड् जगती । ६ त्रिष्टुप् । षड्ऋचं सूक्तम्

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम्।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१॥

भा०—ओषधियों में जिस प्रकार विद्युत तत्व, और रोगनिवारक जल तत्व दोनों ही पान करने वाले को बल देते और उसके रसों को पुष्ट करते है उसी प्रकार हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे वरुण, दुःखवारक सर्वश्रेष्ठ! सेनापति, राजन्! (सुतेषु) उत्पन्न ऐश्वर्यों के निमित्त (वाम्) तुम दोनो का (प्र महे) उत्तम आदर करता हूं। (इमानि) ये (वां भागधेयानि) आप दोनो के सेवनीय अंश (प्र सिस्रते) फैल रहे हैं। (यज्ञे यज्ञे ह) प्रत्येक यज्ञ मे (यत्) जो आप दोनो (यजमानाय) यजमान, यज्ञकर्त्ता को (शिक्षथः) साहाय प्रदान करते हो और (सवना भुरण्यथः) नाना उत्तम ऐश्वर्यों को पुष्ट करते हो इसलिये तुम्हारे देने योग्य अंश है।

निः षिध्वरी रोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते २

भा०—राष्ट्र मे (इन्द्रा वरुणा) सेनापति और राजा वा सभापति दोनों ही (आस्ताम्) विराजे, स्थिर आसन पर बैठें। और (ओषधीः आपः) विशेष तेज धारण करने वाली आप्त प्रजागण (निःषिध्वरीः) शत्रुओं का निषेध, परिहार करने मे समर्थ होकर (महिमानम् आशत) महान् सामर्थ्य को प्राप्त करे। (ययोः शत्रुः) जिन दोनों का का शत्रु (नकिः आत् एव ओहते) कोई भी समर्थ नहीं होता, और (या) जो दोनों (रजसः पारे अध्वनः) अन्तरिक्ष के पार के मार्ग में (सिस्रतुः) जाते है वे उत्तम आसन पर विराजे।

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे वरण करने योग्य श्रेष्ठजनो ! (वां) आप दोनों के प्रति (कृशस्य) तपस्या द्वारा कृश हुए तपस्वी जन की (सप्त वाणीः) सातों छन्दों वाली वेद-वाणियां (सत्यं) सत्य ज्ञान और (मध्वः) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान के (ऊर्मिम्) तरंग को (दुहते) दोहन था प्रदान करता है, अथवा, आप दोनो की वा आप दोनों के विषयक वाणियां तपस्वी जन को सत्य ज्ञान और आनन्द प्रदान करती है। (ताभि.) उन वाणियों से आप दोनों (शुभः पती) शुभ, कल्याण मार्ग के पालक आप दोनों उस (दाश्वांसम् अवतम्) दानशील भद्र पुरुष की रक्षा वा ज्ञान दान करते हो। जो (अदब्धः) अबाधित होकर (वान्) आप दोनो के (चितिभिः) उत्तम ज्ञानो उत्तम विचारों द्वारा (अभिपाति) रक्षा करता है।

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य । या हं वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ४।३९

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! आचार्य स्वयंवृत गुरो ! (याः) जो (वाम्) आप दोनों की, (घृत-प्रुष.) जल बिन्दु-निषेकवत् शीतल सुखदायिनी, स्नेहयुक्त, (सौम्या) सौम्य, उत्तम शिष्यों के हितकारिणी, (जीर-दानवः) जीवन प्रदान करने वाली, (सप्त-स्वसारः) सात बहनों के समान सात छन्दोमयी स्वय अनायास बाहर आने वाली, वा सुखपूर्वक अज्ञान का नाश करने वाली, (घृत श्चुत.) तेजः प्रकाश के देने वाली वाणिया है (ताभि) उन वाणियों से आप दोनों (यजमानाय) दानशील, आत्मसमर्पक जन को (ऋतस्य सदने) सत्य ज्ञान और न्याय के स्थान मे (धत्तम्) स्थापित करो और (शिक्षतम्) उत्तम शिक्षा करो।

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम्। अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवत शुभस्पती ५

भा०—(महते सौभगाय) बड़े भारी सुखप्रद ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वेषाभ्याम्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, इन्द्र और वरुण, विद्युत् और जलवत् शत्रु नाशक और दुःखवारक जनों के (सत्यं महिमानम्) सच्चे महत्व और सच्चे (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की (अवोचाम) हम स्तुति करें ॥ हे (शुभः-पती) शुभ गुणों और कर्मों के पालको ! आप दोनों (त्रिभिः सप्तेभिः) ३ × ७ = २१ तत्वों से (घृत-श्रुतः) जलप्रद, वा घृताहुति देने वाले (अस्मान्) हम लोगों का सूर्य जल, वा विद्युत् जल के समान (सु अवतम्) सदा अच्छी प्रकार रक्षा करो ।

इन्द्रा॑वरुणा यदृषिभ्यो॑ मनी॒षां वा॒चो म॒तिं श्रु॒तम॑दत्तमग्रे॑ ।
यानि॒ स्थाना॑न्यसृजन्त॒ धीरा॑ य॒ज्ञं त॑न्वा॒नास्तप॑सा॒भ्य॑पश्यम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) सत्य ज्ञान के साक्षात् दर्शन करने वाले 'इन्द्र' और गुरु, आचार्य रूप से वरण करने योग्य और पापों से निवारण करने हारे श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (यत्) जिस (मनीषाम्) ज्ञान की प्रेरणा, और (याः वाचः) जिन वाणियों और (याम् मतिम्) जिस बुद्धि और (यत् श्रुतम्) गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य जिस वेदोपदेश को (अग्रे) सबसे प्रथम (अदत्तम्) प्रदान करते हो और या जिन (स्थानानि) स्थानों, पदों या गृहादि शालाओं, आश्रमों वा लोकों को (धीराः) बुद्धिमान् लोग (यज्ञं तन्वाना·) यज्ञ का विस्तार करते हुए (असृजन्त) बनाते हैं उन सब को मैं (तपसा अभि अपश्यम्) तप द्वारा साक्षात् करूं ।

इन्द्रा॑वरुणा सौमन॒सम॑दृप्तं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम् ।
प्र॒जाम्पु॒ष्टिम्भू॒तिम॒स्मासु॑ धत्तं दीर्घा॒यु॒त्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑ ॥७॥२१

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र वरुण ! हे तत्वदर्शिन् ! हे गुरो ! आप दोनों (यजमानेषु) सत्कार, मान, दान, यज्ञ, सत्संग आदि करने वाले जनों में (अदृप्त सौमनस) दर्प या गर्व से रहित उत्तम चित्त का भाव और (अदृप्तम् राय· पोषम् धत्तम्) गर्व से रहित धनैश्वर्य की समृद्धि

धारण कराओ और आप के सत्संगी लोगों में गर्वरहित शुद्ध चित्त और धनसम्पत्ति हो। (अस्मासु) हम में (प्रजां, पुष्टिम्, भूतिम् धत्तम्) उत्तम सन्तान, उत्तम पुष्टि और उत्तम धनसमृद्धि धारण कराओ। और (नः आयुः) हमारी आयु को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये (प्र तिरतम्) बढ़ाओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

इति वालखिल्यं समाप्तम्॥ [1]

[६०]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ९, १३, १७ विराड् बृहती। ३, ५ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ निचृद् बृहती। ७, १९ बृहती। २ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। १०, १६ पादनिचृत् पंक्तिः। ४, ६, ८, १४, १८, २० निचृत् पंक्तिः। १२ पंक्तिः॥ विंशत्यृचं सूक्तम्॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे सर्वाग्रणी नायक! हे प्रकाशस्वरूप! तू (अग्निभिः) गार्हपत्यादि नाना अग्नियों सहित यज्ञाग्नि के समान वा अग्नियों सहित होता के समान तू (अग्निभिः) अन्य ज्ञानी पुरुषों तथा अग्रणी, ज्ञान-प्रकाशक तेजस्वी पुरुषों के साथ (आ याहि) प्राप्त हो। (होतारं त्वां वृणीमहे) अपने समीप प्रेम से बुलाने और ज्ञान ऐश्वर्यादि देने वाले तुझ को हम वरण करते, चाहते और तुझ से ही याचना करते हैं। (यजिष्ठं) अतिदानशील (त्वाम्) तुझ को (हविष्मती) दी हुई हवि वाली आहुति अग्नि को जैसे प्रकाशित करती है उत्तम हवि,

आह्य ज्ञानादि से युक्त (प्रयता) अच्छी प्रकार सुसंयत, सुप्रबद्ध वाणी वा नीति (बर्हिः) आसनवत् वृद्धिशील राष्ट्र, वा प्रजाजनो वा लोको पर (आसदे) शासनार्थ विराजने के लिये (आ अनक्तु) अच्छी प्रकार प्रकाशित करे, वह तेरे गुणो को दर्शावे।

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल, सैन्यादि के प्रेरक! हे (अङ्गिरः) अंग में रसवत् राष्ट्र मे बलवन्! (त्वा हि अच्छ) तुझे लक्ष्य करके ही (अध्वरे स्रुचः) यज्ञ मे स्रुचो के समान ही समस्त प्रजागण, (चरन्ति) चलते है। हम (ऊर्जः नपातं) बल, उत्तम अन्न और वृष्टि को सूर्यादि के तुल्य नष्ट न होने देने वाले वा शक्ति के पुत्रवत् उससे प्रजाओ को बांधने और उनको स्वयं प्रबद्ध करने वाले (घृत केशम्) स्निग्ध केश वाले, सुकेश, एवं प्रदीप्त तेज को केशोवत् धारण करने वाले (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञो, सत्संगो मे एवं यज्ञादि कार्यों के निमित्त, सबसे पूर्व, श्रेष्ठ, (अग्निम् ईमहे) अग्रणी, तेजस्वी ज्ञानादि के प्रकाशक पुरुष को ही हम प्राप्त हों और उससे ही (ऊर्जः ईमहे) बलो, अन्नो आदि की याचना करते है।

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी! तेजस्विन्! ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! प्रभो! स्वामिन्! तू (कविः असि) मेधावी, क्रान्तदर्शी विद्वान् हो तू (वेधाः असि) बुद्धिमान् कार्यकर्त्ता, फलों का सम्पादनकर्त्ता, जगत् का विधाता (असि) है। हे (पावक) पवित्र करने हारे! तू (यक्ष्यः) पूज्य उपास्य (होता) सब ऐश्वर्यो का दाता है। तू (मन्द्रः) स्तुति योग्य, सबको हर्ष आनन्द का देने वाला, (यजिष्ठ) सबसे बड़ा दानी (अध्व-

रेषु) यज्ञों में (मन्मभिः) उत्तम मन्त्रों द्वारा और (विप्रेभिः) विद्वानो द्वारा (ईड्यः) स्तुत्य है ।

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) बलवन् ! हे (अजस्र) अविनाशिन् ! नित्य ! तू (अद्रोघम्) द्रोहरहित मुझ को (उशतः देवान्) उत्तम कामना वा प्रीति करने वाले देव, विद्वान् पुरुषों के पास, वा मेरे प्रति उत्तम विद्यादि के इच्छुक शिष्यों, वा विद्वानों को (वीतये) ज्ञानप्रकाश करने, रक्षा करने और उत्तम अन्नादि खाने के लिये (आ वह) प्राप्त करा। हे (वसो) विद्वन् ! पितावत् सबको बसाने वाले ! तू (सु-धिता) उत्तम भाव से स्थापित (प्रयासि) उत्तम अन्नो को, भावों को (अभि गहि) प्राप्त कर । तू (हितः) स्थापित वा समाहित होकर (धीतिभि• मन्दस्व) उत्तम कर्मों और स्तुति, उपदेश प्रद वाणियो से प्रसन्न और तृप्त हो ।

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५॥३२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (त्वम् इत्) तू ही (स-प्रथाः) सब से बड़ा, (असि) है । हे (त्रातः) रक्षक ! तू ही (ऋतः) सत्यस्वरूप, न्यायशील और तू ही (कवि) भूत भविष्यादि को लांघ कर सर्वोपरि द्रष्टा है । हे (सम्-इधान) समान भाव से सदा सर्वत्र देदीप्यमान ! हे (दीदिव•) तेजस्विन् ! (वेधस) कर्त्ता, विद्वान्, (विप्रास) कर्मण्य पुरुष ! (त्वाम् आविवासन्ति) यज्ञाग्निवत् तेरी ही सेवा करते हैं । इसी से सर्वोपरि नायक का भी वर्णन किया ।

इति द्वात्रिंशो वर्ग• ॥

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन्मम सन्तु सूरय• शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (शोचिष्ठ) अति तेजस्विन्, तू (शोचा) तेज से (दीदिहि) चमका। (स्तोत्रे विशे) स्तुति करने वाली प्रजा को (मयः रास्व) सुख प्रदान कर। (देवाना महान् असि) विद्वानों के वीच और सब गुणों में, प्रकाश युक्त किरणों मे सूर्यवत् तू महान् है। राजा चाहे कि (मम शर्मन्) मेरी शरण मे, मेरे गृह मे (शत्रु-साह) शत्रुओं को पराजय करने वाले वीर पुरुष (सूरयः) विद्वान् और (सु अग्नयः) उत्तम अग्निवत् तेजस्वी नायक हों।

यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने सञ्जूर्वसि क्षमि।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥ ७ ॥

भा०—(यथा चित्) जिस प्रकार अग्नि (क्षमि) पृथिवी पर पड़े २ (वृद्धम् अतसम्) वड़े भारी लकड़ को भी जला देता है (एव) उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य वा मित्रों में महान्! (क्षमि) भूमि पर विद्यमान (वृद्धम्) वढ़े हुए उसको अवश्य (दह) जला (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही (दुर्मन्मा) दुष्ट चित्त वाला, (कः च वेनति) कोई भी यज्ञ करता, शोभा पाता है, या अपने वाजे बजाता है या आदर चाहता है। वेनति—वेनृ गतिज्ञान चिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु। अथवा वेनतिर्गतिकर्मा, कान्तिकर्मा, अर्चतिकर्मा च।

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (यविष्ठय) अतिवलशालिन्! तू (नः) हमें (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु मनुष्य और (रक्षस्विने) दुष्ट पुरुषों वाले के हित (मा रीरध) मत पीड़ित कर और तू (अघ-शंसाय मा रीरधः) पाप की शिक्षा देने वाले के अधीन मत कर। तू (अस्रेधद्भिः) अहिंसक, (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने मे समर्थ दयाशील (शिवेभिः) शान्तिकारक, कल्याणकारी, (पायुभिः) पालनकर्त्ताओं द्वारा (पाहि) पालन कर।

पाहि नो अग्न एकया पाह्यु॒त द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) अपने अधीन प्रजाओं वा शिष्यगणों को बसाने वाले प्रजापते ! हे (ऊर्जाम्पते) नाना अन्नों, बलों के पालक ! तू (नः) हमें (एकया गिरा पाहि) एक वेदवाणी से पालन कर। (उत द्वितीयया गिरा पाहि) और दूसरी वेद वाणी से भी पालन कर। (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) तीन वेद वाणियों से पालन कर। (चतसृभि· गीर्भि· पाहि) चारों वेद वाणियो से पालन कर।

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमे (विश्वस्माद् रक्षसः अराव्णः) सब प्रकार के दुष्ट और शत्रु से (पाहि) बचा। और (नः) हमें (वाजेषु) संग्रामों मे भी (प्र अव स्म) अच्छी प्रकार रक्षा कर। (देवतातये) विद्वान् वीर आदि जनों के हितार्थ (त्वाम् इत् हि नेदिष्ठं) तुझ को ही अति निकट का (आपि) बन्धु जान कर (वृधे) अपनी वृद्धि के लिये (नक्षामहे) प्राप्त होते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्ग· ॥

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यं।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानशालिन् ! हे (पावक) पवित्र करने हारे पतितपावन ! तू (नः) हमें (शस्यं) प्रशंसनीय (वयोवृधं) आयु, बल का वर्धक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ रास्व) सब ओर से प्राप्त करा। हे (उपमाते) अनुपम ! तू (न·) हमें (सुनीती) उत्तम नीति से (स्वयशस्तरम्) स्वजन, धन, कीर्त्ति को अधिक [illegible] वाला, (पुरु-स्पृह) सबको अच्छा लगने वाला धन (रास्व च) प्रदान [illegible]

येन॒ वंसा॑म॒ पृत॑नासु॒ शर्ध॑त॒स्तर॑न्तो अ॒र्य आ॒दिशः॑ ।
स त्वं नो॑ वर्ध॒ प्रय॑सो शचीवसो॒ जिन्वा॒ धियो॑ वसु॒विदः॑ ॥१२॥

भा०—(येन) जिस धन से हम (पृतनासु) संग्रामो मे (आदिशः हरन्तः) दिशा उपदिशाओ तक पार करते हुए (शर्धत.) बलात्कार करने वाले, बलशाली शत्रुओ को भी (वंसाम) नाश करें । हे (शचीवसो) शक्ति के धनी ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमे (प्रयस. वर्ध) अन्न सम्पदा और प्रयाणकारी बल से बढा । और (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य और प्रजाओ को प्राप्त कराने वाले कर्मों की वृद्धि कर ।

शिशा॑नो वृष॒भो य॑था॒ग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत् ।
ति॒ग्मा अ॒स्य॒ हनवो॒ न प्रति॒धृषे॑ सु॒जम्भः॒ सह॑सो य॒हुः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा वृषभः) जिस प्रकार बिजार साड (शृङ्गे शिशान.) सींग तीक्ष्ण करता हुआ (दविध्वत्) शिर चलाता है, और जिस प्रकार (अग्नि.) अग्नि स्वयं तीक्ष्ण होकर अपने शिखर कंपाता है उसी प्रकार (शिशान.) बलको तीक्ष्ण करता हुआ (अग्नि) तेजस्वी पुरुष, (शृङ्गे) शत्रु हनन के अस्त्र शस्त्रों को कंपावे । (अस्य) इसकी (हनवः) हनन-कारिणी सेनाएं (तिग्मा.) तीखी दाढों के समान (न प्रति-धृषे) कभी किसी से पराजित होने के लिये न हों, वह (सुजम्भः) दुष्टों को उत्तम रीति से दण्ड देने मे समर्थ (सहसः यहु.) बल सैन्य को सुसंगत करने मे समर्थ हो ।

न॒हि ते॑ अग्ने वृषभ प्रति॒धृषे॒ जम्भा॑सो॒ यद्वि॒तिष्ठ॑से ।
स त्वं नो॑ होतः॒ सुहु॑तं ह॒विष्कृ॑धि॒ वंस्वा॑ नो॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने वृषभ) तेजस्विन् ! हे बलशालिन् ! (यद्वि-तिष्ठसे) जब तू विशेष रूप से शत्रु के विजयार्थ खडा हो जाता है तब (न जम्भास) तेरी दाढ़ो के समान शत्रु को कुचल डालने वाले तेरे शस्त्रादि

सैन्यगण (नहि प्रति-धृषे) कभी हारने के लिये नहीं हो। (सः त्वं) वह तू (नः) हमारे (होतः) दातः (सुहुतं हविः कृधि) उत्तम रीति से दिये करादि को उत्तम रीति से सफल कर। (नः पुरुवार्या वंस्व) हमें बहुत से उत्तम ऐश्वर्य, शत्रुवारक साधन प्रदान कर।

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥३४॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (वनेषु मात्रोः) काष्ठों में या दो उत्पादक अरणियों में अग्नि के समान (वनेषु) सेवने योग्य ऐश्वर्यों और (मात्रोः) माता पिता रूप विद्वान् अविद्वान् प्रजाओं के बीच बालकवत् (शेषे) सुख से रह। (त्वा मर्त्तासः सम् इन्धते) तुझे शत्रुमारक वीर जन प्रदीप्त, तेजस्वी बनाते हैं। तू (हविः-कृतः) उत्तम अन्न उत्पन्न करनेवाले प्रजाजन के दिये करादि को (अतन्द्रः) अनालसी होकर (वहसि) धारण कर (आत् इत) और विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच किरणों में सूर्यवत् (राजसि) राजावत् प्रकाशित हो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम्।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (सप्त होतार.) सात अधिकाधिक बल आदि देने वाले प्रकृतिगण (सु-त्यजम्) उत्तमदाता (अह्रयम्) अक्षीण, (तं त्वा) उस तुझको (ईडते इत) चाहते और तेरी प्रतिष्ठा करते हैं। वह तू (शोचिषा) अपने तेज से और (तपसा) प्रताप से (अद्रिं) प्रबल शत्रु सैन्य को (भिनत्सि) मेघ को सूर्य के समान भेदन करता है और हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् नायक! तू (जनान् अति प्र तिष्ठ) सब जनों में बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर, सर्वोत्तमपद पर विराज।

अ॒ग्निम॒ग्निं वो॒ अध्रि॑गुं हु॒वेम॑ वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
अ॒ग्निं हि॒तप्र॑यसः शश्व॒तीष्वा होता॑रं चर्षणी॒नाम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृक्त बर्हिषः) कुशाओं के समान शत्रुगण को छिन्नभिन्न करने वाले वीर पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगो मे से (अग्निम्-अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी और (अध्रिगुम्-अधिगुम्) भूमि पर का शासक सर्वोपरि वाणी का वक्ता आज्ञापक (हुवेम) स्वीकार करे । हम (हित-प्रयसः) अन्नादि धारण करने वाले होकर (शश्वतीषु) बहुत सी प्रजाओ मे (चर्षणीनाम्) विद्वान् मनुष्यो को वृत्ति देने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही (आ हुवेम) आदरपूर्वक स्वीकार करे ।

केते॑न॒ शर्म॑न्त्सचते सुषा॒मण्य॑ग्ने॒ तुभ्यं॑ चिकि॒त्वना॑ ।
इ॒ष॒ण्यया॑ नः पुरु॒रूप॒मा भ॑र॒ वाजं॒ नेदि॑ष्ठमू॒तये॑ ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! यह प्रजाजन (चिकित्वना) उत्तम ज्ञानयुक्त विद्वान् द्वारा (केतेन) ज्ञानपूर्वक (तुभ्यम्) तेरे ही (सु-सामनि) उत्तम समान भाव से युक्त निष्पक्षपात (शर्मन्) गृहवत् (इषण्या) इच्छापूर्वक (नः) हमें हमारी रक्षा के लिये (पुरु रूप) नाना प्रकार का (नेदिष्ठं) अति समीपतम, प्राप्य (वाजं) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने॒ जरि॑तर्वि॒श्पति॑स्तेपा॒नो दे॑व र॒क्षसः॑ ।
अप्रो॑षिवान्गृ॒हप॑तिर्म॒हाँ अ॑सि दि॒वस्पा॒युर्दु॑रोण॒युः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जरितः) उत्तम उपदेश करने हारे ! हे (देव) दानशील ! तू (रक्षस) दुष्टों को (तेपानः) संतप्त, पीड़ित करता हुआ, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक है । तू (अप्रोषि-वान्) कभी प्रवास मे न जाने वाले (गृह-पतिः) गृहस्वामी के समान (दुरोणयुः) गृहवत् राष्ट्र को दुःख मे प्राप्त होने योग्य उत्तमपद को

सैन्यगण (नहि प्रति-धृषे) कभी हारने के लिये नहीं हों। (सः त्व) वह तू (नः) हमारे (होतः) दातः (सुहुतं हविः कृधि) उत्तम रीति से दिये करादि को उत्तम रीति से सफल कर। (नः पुरुवार्यं वंस्व) हमें बहुत से उत्तम ऐश्वर्य, शत्रुवारक साधन प्रदान कर।

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥३४॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (वनेषु मात्रोः) काष्ठों मे या दो उत्पादक अरणियों में अग्नि के समान (वनेषु) सेवने योग्य ऐश्वर्यों और (मात्रोः) माता पिता रूप विद्वान् अविद्वान् प्रजाओं के बीच बालकवत् (शेषे) सुख से रह। (त्वा मर्तासः सम् इन्धते) तुझे शत्रुमारक वीर जन प्रदीप्त, तेजस्वी बनाते हैं। तू (हविःष्कृत.) उत्तम अन्न उत्पन्न करनेवाले प्रजाजन के दिये करादि को (अतन्द्रः) अनालसी होकर (वहसि) धारण कर (आत् इत्) और विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच किरणों में सूर्यवत् (राजसि) राजावत् प्रकाशित हो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम्।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (सप्त होतारः) सात अधिकाधिक बल आदि देने वाले प्रकृतिगण (सु-त्यजम्) उत्तमदाता (अह्रयम्) अक्षीण, (तं त्वा) उस तुझको (ईडते इत्) चाहते और तेरी प्रतिष्ठा करते हैं। वह तू (शोचिषा) अपने तेज से और (तपसा) प्रताप से (अद्रिं) प्रबल शत्रु सैन्य को (भिनत्सि) मेघ को सूर्य के समान भेदन करता है और हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् नायक! तू (जनान् अति प्र तिष्ठ) सब जनों से बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर, सर्वोत्तमपद पर विराज।

अ॒ग्निम॒ग्निं वो॒ अध्रि॑गुं हु॒वेम॑ वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
अ॒ग्निं हि॒तप्र॑यसः शश्व॒तीष्वा होता॑रं चर्षणी॒नाम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृक्त बर्हिषः) कुशाओं के समान शत्रुगण को छिन्नभिन्न करने वाले वीर पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगो मे से (अग्निम्-अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी और (अध्रिगुम्-अधिगुम्) भूमि पर का शासक सर्वोपरि वाणी का वक्ता आज्ञापक (हुवेम) स्वीकार करे । हम (हित-प्रयसः) अन्नादि धारण करने वाले होकर (शश्वतीषु) बहुत सी प्रजाओ मे (चर्षणीनाम्) विद्वान् मनुष्यों को वृत्ति देने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही (आ हुवेम) आदरपूर्वक स्वीकार करे ।

केते॑न॒ शर्म॑न्त्सचते सु॒षाम॒ण्यग्ने॒ तुभ्यं॑ चिकि॒त्वना॑ ।
इ॒ष॒ण्यया॑ नः पुरु॒रूप॒मा भ॑र॒ वाजं॒ नेदि॑ष्ठमू॒तये॑ ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! यह प्रजाजन (चिकित्वना) उत्तम ज्ञानयुक्त विद्वान् द्वारा (केतेन) ज्ञानपूर्वक (तुभ्यम्) तेरे ही (सु-सामनि) उत्तम समान भाव से युक्त निष्पक्षपात (शर्मन्) गृहवत् (इषण्या) इच्छापूर्वक (नः) हमे हमारी रक्षा के लिये (पुरु रूपं) नाना प्रकार का (नेदिष्ठं) अति समीपतम, प्राप्य (वाज) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने॑ जरित॒र्वि॒श्पति॑स्तेपा॒नो दे॑व र॒क्षसः॑ ।
अप्रो॑षिवान्गृ॒हप॑तिर्म॒हाँ अ॑सि दि॒वस्पा॒युर्दु॑रोण॒युः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जरितः) उत्तम उपदेश करने हारे ! हे (देव) दानशील ! तू (रक्षसः) दुष्टों को (तेपानः) संतप्त, पीड़ित करता हुआ, (विश्पतिः) प्रजाओ का पालक है । तू (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास मे न जाने वाले (गृह-पतिः) गृहस्वामी के समान (दुरोणयु) गृहवत् राष्ट्र को दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तमपद की

अभिलाषा करने वाला और (दिवः महान् पायुः) ज्ञान, राजसभा, तेज, और भूमि का बड़ा पालक (असि) है।

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणी वसो मा यातुर्यातुमावताम्।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः॥ २०॥ ३५॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र के बसाने वाले राजन्! (नः) हम मे (रक्षः) नाशकारी उपद्रवी (मा आवेशीत्) न आ घुसे। (यातुमा-वताम्) पीड़ादायक दुष्ट रोगो और पुरुषो के कारण (यातुः न. मा आवेशीत्) हमसे पीड़ा, उनकी यातना भी न प्रवेश करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (अनिराम् क्षुधम्) बिना अन्न की भूख, मरी, और (रक्षस्विनः) दुष्टों को (परः गव्यूतिम्) हमसे कोसो (अप सेध) दूर कर। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

[६१]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ११, १५, निचृद् बृहती। ३, ९ विराड् बृहती। ७, १७ पादनिचृद् बृहती। १३ बृहती। २, ४, १० पङ्क्तिः। ६, १४, १६ विराट् पङ्क्तिः। ८, १२, १८ निचृत् पङ्क्तिः॥ अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥ १॥

भा०—(इन्द्रः) तत्वदर्शी पुरुष (न) हमारे (इद) इस (उभय) पक्ष विपक्ष दोनो प्रकार के (वचः) वचन को (अर्वाक्) सबके सन्मुख (शृणवत् च) सुने, (सत्राच्या धिया) सत्य के निर्धारण करने वाली विवेक बुद्धि से (सोमपीतये) राष्ट्र के पालनार्थ ही (मघवा) पूज्य पद पर स्थिर होकर (शविष्ठः) सब से अधिक बलशाली होकर (न आगमत्) हमे प्राप्त हो।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

भा०—(तं) उस (वृषभं) 'वृष' अर्थात् धर्म, राष्ट्र के उत्तम प्रबन्ध सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् (स्वराज) स्व, अपने बल से तेजस्वी, स्वयं राजा, बलशाली पुरुष को (हि ओजसे) उसके बल पराक्रम के कारण (धिषणे) पृथिवी आकाशवत् शास्य शासक वर्गों की दोनो समितियां (निष्टतक्षतुः) राजा को बनावे और हे राजन् ! सभापते ! (हि) क्योंकि (ते मनः) तेरा चित्त भी (सोम-कामं) राष्ट्रैश्वर्य तथा अभिषेक योग्य पद को चाहता है। इस कारण तू (उपमानां) सर्वोपरि उपमान योग्य प्रस्तुत पुरुषों मे (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नि षीदसि) मुख्यासन पर विराज ।

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वां हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥३॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत से प्रजाजनो को बसाने वाले ! बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन् ! इन्द्रियों मे शक्तिरूप से आत्मवत् प्रभो ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (अन्धस. सुतस्य) अन्न और ऐश्वर्य से (आ वृषस्व) सब प्रकार से प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला और बलवान् हो। हे (हरिवः) अश्वों और मनुष्यों के राजन् ! हम (त्वा) तुझ को (पृत्सु) संग्रामों मे (सासहिम्) विजयी, (अधृष्टम्) अपराजित और (दधृष्वणिम्) शत्रुओं के पराजित करने हारा (हि) ही (विद्म) जानते है ।

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (क्रत्वा) अपनी बुद्धि और

कर्म के सामर्थ्य से (यथा वशः) जिस प्रकार भी चाहता है हे (मघवन्) पूजित विभूतिसम्पन्न ! हे (अप्रामि-सत्य) सत्यरूप महा व्रत का नाश न करने हारे ! (तथा इत् असत्) वैसा ही होता है। हे (शिप्रिन्) मुकुटधारिन् ! सत्यपालक ! हे (अद्रिवः) बलशालिन् ! हम लोग (मक्षु चित् यन्तः) बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए (अवसा) ज्ञान और रक्षा, बल से (तव वाजं) तेरा ज्ञान, बल, ऐश्वर्य (सनेम) प्राप्त करें, वा तुझे अन्नादि प्रदान करें।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। योग० सू० २। ३६। अमोघाह्यस्य वाग् भवति। व्यासभाष्यम्॥ तदस्य भगवतो वाचो भवति इति वाचस्पतिः।

शग्ध्यू॒३षु श॑चीपत॒ इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑।
भगं॒ न हि त्वा॑ य॒शसं॑ वसु॒विद॒मनु॑ शूर॒ चरा॑मसि॥ ५॥ ३६॥

भा०—हे (शचीपते) सत्य वाणी और शक्ति के पालक ! हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त ज्ञानों और बलों से (सु शग्धि उ) उत्तम रीति से सब कार्य करने में समर्थ है। (भगं न) ऐश्वर्यवान् के समान ही (यशसं) यशस्वी (वसु-विदम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला जान कर (हि) ही हे (शूर) शूरवीर ! (त्वा अनु चरामसि) हम तेरे कहे अनुसार आचरण करें, तेरा अनुगमन करें। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

पौ॒रो अश्व॑स्य पुरु॒कृद्गवा॑मस्युत्सो॑ देव हिर॒ण्ययः॑।
नकि॒र्हि दानं॑ परि॒मर्धि॑षत्त्वे॒ यद्य॒द्यामि॒ तदा भ॑र॥ ६॥

भा०—हे (देव) दानशील ! हे तेजस्विन् ! हे व्यवहारज्ञ ! तू (पौरः) बहुतों का स्वामी, (अश्वस्य गवाम् पुरुकृत्) अश्वों और गौ आदि सम्पदा को बहुत संख्या में करने में समर्थ (असि) है। तू (हिरण्ययः उत्सः) सुवर्ण का उद्गमस्थान, निकास वा खान के समान है। (त्वे) तेरे (दानं) दिये ऐश्वर्य का (नकिः हि परि मर्धिषत्) कोई भी

नाश नहीं कर सकता। मै (यत् यत् यामि) जिस २ पदार्थ की भी याचना करूं तू (तत् आभर) वह २ पदार्थ मुझे प्राप्त करा।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टये उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (त्वं हि एहि) तू आवश्य आ और (चेरवे वसुत्तये) सेवा, परिचर्या करने वाले परिजन को जीवनोपयोगी वेतनादि धन प्रदान करने के लिये ही (भगं विद) ऐश्वर्य प्राप्त कर। (गविष्टये) गौ देने के लिये और (अश्वम् इष्टये) अश्व देने के लिये (उत् वावृषस्व) सर्वोत्तम दानशील हो और अधिक उदार हो।

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पूरू सहस्राणि शतानि च यूथा) अनेक सैकड़ों और सहस्रों, यूथ, गौवों और अश्वादि के (दानाय मंहसे) दान के रूप मे प्रदान कर। हम लोग (अवसे) रक्षा के निमित्त (विप्रवचसा) उत्तम वचनों को बोलते और (गायन्तः) तेरी स्तुति गान करते हुए (पुरन्दरं) शत्रु नगर को तोड़ने और अपने पुर की रक्षा करने वाले पुरुष को (इन्द्र आ चकृम) ऐश्वर्य युक्त करे।

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः।
स प्र ममन्दत्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! हे (शतक्रतो) सैंकड़ों कर्म सामर्थ्य और प्रज्ञा से सम्पन्न जन! हे (प्राचा-मन्यो) सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से ज्ञानशालिन्! हे (अहंसन) आत्मभाव, आत्मसन्मान के भाव को देनेहारे! (अविप्रः वा) चाहे अबुद्धिमान् हो और चाहे (विप्रः) विद्वान्

पुरुष भी (ते वचः अविधत्) तेरे कहे वचन के अनुसार कार्य करता वह भी (त्वाया) तेरे अधीन रहकर (प्र ममन्दत्) बहुत ही सुख, आनन्द प्राप्त कर लेता है।

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम्।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वसूयवः) धनाभिलाषी जनो! (यदि) जब २ (वसुपतिं) सब ऐश्वर्यों और जीवों के पालक, (शतक्रतुं) अनन्त ज्ञानों और कर्म सामर्थ्यों से पूर्ण, (इन्द्रं) ऐश्वर्यप्रद इस स्वामी को हम (स्तोमैः हवामहे) नाना स्तुति वचनों से प्रार्थना करें (उग्र-बाहुः) बलवान् बाहु वाला, (म्रक्ष-कृत्वा) शत्रुओं का नाशक, (पुरन्दरः) शत्रुपुरों को तोड़ने में समर्थ, (मे हवम् शृणवत्) मेरे स्तुति वचन को श्रवण कर। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥ ११ ॥

भा०—(यत् इत् नु) जब २ भी हम हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (सखायं) सब के मित्र (वृषणं) बलवान् पुरुष को (सुते) ऐश्वर्य वा शासन मार्ग पर (सचा कृणवामहै) अपने साथ लेते हैं तब २ हम (पापासः न मनामहे) पापी होकर नहीं विचार करते, और (अरायासः न) तब हम दूसरे का अधिकार न देने वाले होकर भी नहीं विचारते, (न जल्हवः) और न ज्वलन या प्रकाश से रहित होते हैं। अर्थात् परमेश्वर या स्वामी के सदा साथ रहते हुए हममें पाप प्रवृत्ति, दूसरे के अधिकार हरण और अज्ञानीपन की दशा नहीं रह सकती है। परमेश्वर के सहयोग में हम निष्पाप, ईमानदार, और ज्ञान प्रकाश से युक्त हो जाते हैं। पापी, बेईमान, और प्रकाशहीन होकर प्रभु का मनन नहीं कर सकते।

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम् ।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् इत् उ) जिसको प्रजाजन (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् बलवान् भी (नशत्) पावे, और जो (रथीतम) सब से उत्तम महारथी, (सनिता) दानशील हो और जिसको हम (भृमं चित्) भरण पोषण मे समर्थ (वेद) पावे उस (सासहिम्) शत्रुपराजयकारी, (उग्रम्) सदा दण्डधारी, (ऋणकातिम्) धनोत्पादक, (आदाभ्यम्) अहिंसनीय, अवध्य, पुरुष को हम (पृतनासु) संग्रामों के कार्यों मे (युयुज्म) नियुक्त करे। (२) इसी प्रकार हम परमेश्वर को इन २ गुण विशिष्ट रूप से (युयुज्म) योग द्वारा साक्षात् करे।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! भूमि के रक्षक ! अन्नादि दातः ! हम लोग (यत॰ भयामहे) जिस कारण से भी भय करे तू (ततः नः अभयं कृधि) हमे उस भय से रहित कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (तव) अपना (नः) हमे (तत् शग्धि) वह सामर्थ्य दे और (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी शक्तियों से (द्विषः वि जहि) शत्रुओ को दण्डित कर और (मृधः वि जहि) हिंसकों को दण्डित कर।

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्य के देने हारे ! (वयं) हम (सुतावन्त॰) उत्पन्न, अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त होकर भी (त्वा) तुझ से (हवामहे) याचना करते है, क्योंकि हे (राधसः पते) धन के पालक स्वामिन् ! (त्वं हि) तू अवश्य (विधत॰) कार्य करने वाले, सेवक के

(महः) बड़े भारी, (क्षयस्य) ऐश्वर्य और (राधसः) धन का भी बढ़ाने और देने वाला है।

इन्द्र॑ स्प॒ळुत वृ॑त्र॒हा प॑र॒स्पा नो॒ वरे॑ण्यः।

स नो॑ रक्षिषच्च॒र॒मं स म॑ध्य॒मं स प॒श्चात्पा॑तु नः पु॒रः ॥१५॥३८॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक, ऐश्वर्यों का दाता, प्रभु (स्पट्) सर्वद्रष्टा, (वृत्रहा) सब विघ्नों का नाशक (परःपाः) परम पालक और (नः वरेण्यः) हमारा सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य है। (स.) वह (नः) हममे से (चरमं) अन्तिम को, (सः मध्यमं) वह बीच के को, (सः पश्चात् पुरः नः पातु) वह हमारे पीछे और आगे से भी हमे बचा। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नः॑ प॒श्चाद॑ध॒राद्दु॑त्त॒रात्पु॒र इन्द्र॒ नि पा॑हि वि॒श्वतः॑।

आ॒रे अ॒स्मत्कृ॑णुहि॒ दैव्यं॑ भ॒यमा॒रे हे॒तीरदे॑वीः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः पश्चात् अधरात् उत्तरात् पुरः विश्वतः निपाहि) हमारे पीछे से, नीचे से, ऊपर से आगे से और सब ओर से अच्छी प्रकार रक्षा कर। (अस्मत् दैव्यं भयम् आरे कृणुहि) हम से देव, विद्वान्, विजयेच्छुक व्यवहार चतुरादि जनों से उत्पन्न होने वाला भय दूर कर और (अदेवी. हेतीः आरे कृणुहि) अविद्वान् दुष्ट जनो के शस्त्रों को भी दूर कर।

अ॒द्याद्या श्वः॑ इन्द्र॒ त्रास्व॑ प॒रे च॑ नः।

विश्वा॑ च नो जरि॒तॄन्त्स॑त्पते॒ अहा॒ दिवा॒ नक्तं॑ च रक्षिषः ॥१७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (न) हमे (अद्य अद्य) आज आज, आज कहाने वाले सब दिनों और (श्वः श्वः) कल कल, कल कहाने वाले सब दिनों मे और (परे च) परले दिनों मे भी (त्रास्व) रक्षा कर। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! तू (नः जरितॄन्) प्रार्थना स्तुति करने वाले हम लोगों को (विश्वा च अहा) सब दिनों और (दिवा

नक्तं च) दिन और रात, प्रकाश मे और अंधेरे मे भी (रक्षिपः) हमारी रक्षा कर।

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः १८॥३९॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनन्त कर्म और प्रज्ञा से युक्त स्वामिन्! (या) जो दो (ते बाहू) तेरी बाहुएं, (वज्रं नि मिमिक्षतुः) शस्त्र को धारण करती है (उभा) वे दोनो (वृषणा) बलवान् हो। (वीर्याय) वीर्य प्राप्त करने, वा वीरकर्म सम्पादन करने के लिये (शूरः) शूरवीर पुरुष, (प्र-भङ्गी) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला, (मघवा) उत्तम आदरणीय धनाढ्य, (तुवीमघः) बहुत धनसम्पन्न और (संम्मिश्लः)सब से अच्छी प्रकार मिलने जुलने वाला, सर्वप्रिय हो। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः॥

[६२]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ६, १०, ११ निचृत् पंक्तिः। २, ५ विराट् पंक्तिः। ४, १२ पंक्तिः। ७ निचृद् बृहती। ८, ९ बृहती॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति। उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ १॥

भा०—(यत् जुजोषति) जो प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है (अस्मै) उसकी (उप स्तुति प्र भरत) उत्तम स्तुति करो। (सोमिनः) वीर्य पालन करने वाले ब्रह्मचारी लोग ही (उक्थैः) उत्तम वचनों द्वारा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, तत्वदर्शी स्वामी के (माहिन वयः वर्धन्ति) बड़े भारी बल को बढा देते है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस परमेश्वर के दिये सब दान सुखकारी और कल्याणमय होते है।

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः। पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर (एकः) अकेला, अद्वितीय, (अयुजः) अन्य सहायक के विना, (असमः) अपने समान अन्य से रहित, (अयास्यः) अविनाशी, अपराजित, कभी न थकने वाला, अप्राप्य और मुख्य है। वह (नृभिः) जीवों द्वारा ही (पूर्वीः कृष्टीः) बहुत सी सनातन प्रजाओं को (प्र वावृधे) बढ़ाता है और (विश्वा जातानि) सभी उत्पन्न प्राणियों को भी इसी प्रकार (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से (इति प्र वावृधे) इसी प्रकार बढ़ाता रहता है। (इन्द्रस्य रातयः भद्रा.) ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान अति सुखकारी होते हैं।

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति। प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥

भा०—यह ईश्वर (जीर-दानुः) जीवन प्राण का देने वाला है। वह (अहितेन अर्वता चित्) विना बन्धे अश्व से, अर्थात् विना अश्व लगाये ही (सिषासति) सब को चलाता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वीर्यवन् ! (करिष्यतः) जगत् निर्माण करने वाले (तव) तेरे ये सब (वीर्याणि) नाना प्रकार के सामर्थ्य हैं। (तत् तव प्रवाच्यम्) यह सब तेरी अति उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान बड़े सुखकारी हैं।

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना। येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ याहि) आ। (ते) तेरे (ब्रह्माणि) वेदवचनों को हम (वर्धना) अपने को बढ़ाने वाला (कृणवाम) करें। उनको हम अपनी वृद्धि के लिये उपभोग करें। हे

(शविष्ठ) अनन्त बलशालिन् ! (येभिः) जिनसे तू (इह) इस लोक मे (श्रवस्यते) ज्ञान के इच्छुक जीवगण के लाभ के लिये (भद्रम् चाकनः) अति कल्याण करना चाहता है उन ही वेदों का हम अभ्यास करे। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) प्रभु के दिये दान अति सुखकारी होते है ।

धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् । तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥

भा०—(तीव्रैः सोमैः) तीव्र, बलकारक साधन से (सपर्यतः) सेवा करते हुए (नमोभिः प्रतिभूषत.) अन्नो, विनय वचनो और दुष्ट दमनकारी उपायों से अपने प्रतिपक्षी का साम्मुख्य करने वाले (धृषतः) प्रतिपक्ष का पराजय करने वाले के (मनः) मन को (चित्) भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् त्वम्) जो तू (धृषतः कृणोषि) दृढ़, सहनशील कर देता है यह तेरा ही सामर्थ्य है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्य-वान् इन्द्र, प्रभु के दान सब उत्तम सुखप्रद होते है ।

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः । जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥ ४० ॥

भा०—जिस प्रकार (मानुषः) पियासा मनुष्य (अवतान् अव चष्टे) कुओं के नीचे झांकता है, और (सोमिनः दक्षस्य जुष्ट्वी, युजं सखाय कृणुते) जल-कूप के रक्षक पुरुष को प्रेम करके उसको अपना साथी, मित्र बना लेता है उसी प्रकार (ऋचीषमः) स्तुति के अनुरूप यथार्थ गुणवान् दयाशील प्रभु (अवतान् अव चष्टे) रक्षा करने योग्य जनों को दया से देखता है और (सोमिनः दक्षस्य) बल वीर्यवान् कर्म करने में समर्थ पुरुष को (जुष्ट्वी) प्रेम करके, प्रभु उसको ही अपना (युज सखायं कृणुते) संगी, मित्र बना लेता है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) इति चत्वारिंशो वर्गः॥

**विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥**

भा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वाणी द्वारा ज्ञान के देने हारे ! (देवा.) समस्त विद्याओं की कामना करने हारे जन (ते वीर्यम् अनु, ते क्रतुम् अनु) तेरे बल और ज्ञान के अनुसार ही (अनु ददुः) स्वयं भी बल और ज्ञान को धारण करें और अन्यों को भी प्रदान करें हे (पुरु-स्तुत) बहुत जीवों के उपदेष्टः ! तू ही (विश्वस्य गोपतिः भुवः) समस्त वाणियों का पालक है। (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के स्वामिन् (देवतातये) वीरो और दानशील, उत्तम मनुष्यों के हितार्थ, (ते) तेरे (उपमं शवः) आदर्श बल की (गृणे) स्तुति करता हूं। (यत्) जिस (ओजसा) पराक्रम से तु (वृत्रम्) अज्ञान, वा बढ़ते शत्रु का (हंसि) विनाश करता है।

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

भा०—(समना-इव) समान चित्त वाली स्त्री जिस प्रकार (वपुष्यतः मानुषा युगा कृणवत्) उत्तम शरीर वाले पुरुष को जोड़ा बना देती है उसी प्रकार (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (वपुष्यतः) शरीर धारण करने की इच्छा करने वाले जीवों को (मानुषा युगा कृणवत्) मनुष्यों के (युग) जोड़े, स्त्री-पुरुष बना देता है। वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (तत् चेतनं) उस चेतन जीव को (विदे) जानता वा शरीर में प्राप्त कराता है, (अध) और इसी प्रकार (श्रुतः) वेद में गुरुजनों द्वारा श्रवण किया जाता है। (भद्रा.० इत्यादि पूर्ववत्)

उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम्।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः १०

भा०—हे (भूरि गो) बहुत भूमियो, पशुओ और वाणियों के स्वामिन्! हे (मघवन्) पूज्य, धन, ज्ञानादि सम्पन्न, प्रभो ! गुरो ! स्वामिन् ! हे (इन्द्र) वाणी के मर्म के भेदन करने हारे ! शत्रुभेदक ! भूमि-भेदक ! (ते जातम् शवः) तेरे प्रकट हुए बल और ज्ञान को लोग (भूरि उत् वावृधुः) उत्तम रीति से पुत्रवत् खूब बढ़ावे । (उत् त्वाम्) तुझे भी बढावें, अधिक बलवान्, करे । (तव क्रतुम् उत्) तेरे कर्म सामर्थ्य और ज्ञान की भी वृद्धि करें । (तव शर्मणि) तेरी शरण मे रहे । (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्संयुज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ११

भा०—हे (वृत्र-हन्) विघ्नों और शत्रुओं के नाशक ! (अहं त्वं च) मैं और तू दोनों (सनिभ्यः आ) उत्तम धनो, ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये (सं युज्याव) परस्पर मिल जावें । हे (अद्रिवः) सैन्यादि बल से सम्पन्न ! हे (शूर) दुष्टनाशक ! (अरातिवा चित्) अदानशील अधनी भी (नौ अनुमंसते) हम दोनों को मानेगा । (भद्राः० पूर्ववत्)

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् । महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥४१॥

भा०—(वयम्) हम (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (सत्यम् इत् वा स्तवाम) सत्य सत्य ही स्तुति करें । (अनृतं न) असत्य कभी न करें । (असुन्वतः) उपासना न करने वाले का (महान् वधः) बड़ा भारी नाश होता है । (सुन्वतः भूरि ज्योतींषि) उपासक को बहुत तेजोमय ज्ञान प्राप्त होते हैं । (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) ॥ इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६३]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ १—११ इन्द्रः । १२ देवा देवताः ॥ छन्द — १, ४, ७ विराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३, ६ विराड् गायत्री । ८, ९, ११ निचृद् गायत्री । १० गायत्री । १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (महानां) पूज्य, बड़ों का भी बड़ा (पूर्व्यः) पूर्व, पूज्य, (वेनः) कान्तिमान्, तेजस्वी सूर्यवत् (क्रतुभिः) उत्तम प्रज्ञाओं द्वारा (आनजे) हमे प्रेरित करता वा प्राप्त होता है (यस्य धियः) जिसकी वाणियों, मतियों और कर्मों को, (देवेषु) विद्या के इच्छुक मनुष्यों मे (पिता मनुः) पालक, शासक, मननशील विद्वान् वा राजा भी (द्वारा आनजे) प्रवेश योग्य द्वारों के समान प्रकट करे । अर्थात् ज्ञानी शास्ता विद्वान् और शासक राजा दोनों माता पिता है । वे प्रभुके दिये ज्ञानों, वेदो, यज्ञों द्वारा सबको नाना उपाय दर्शावें ।

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।
उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रयः) मेघ (सोम-पृष्ठासः) जल वर्षण-कारी होकर भी (दिवः मानं न उत् सदन्ति) सूर्य का पैमाना नहीं पाते, वा ऊपर उठकर भी सूर्य तक नहीं जा सकते उसी प्रकार (सोम-पृष्ठासः) अभिषिक्त राजा वा नायक को अपनी पीठ पर रखने वाले, तदधीन (अद्रयः) सेना के जन (दिवः मान नः उत् सदन्) तेजस्वी राजा के मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकते, वे उससे उच्च पद नहीं पा सकते । इसी प्रकार (सोम-पृष्ठासः) सोम अर्थात् सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त (अद्रय) अविनाशी, धर्म मेवस्थ योगीजन वा 'सोम', वीर्य द्वारा पुष्ट, ऊर्ध्वरेता जन (दिवः मानं)

ज्ञानमय तेजोमय प्रभु के ज्ञान, वेद को (न उत् सदन्) नही छोड़ सकते। वह प्रभु का ज्ञान (उक्था) वचन योग्य उत्तम मन्त्र (ब्रह्म च) महान् वेद (शंस्या) स्तुति करने, उपदेश देने योग्य होते है।

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु आचार्य के समान (इन्द्रः) सत्य ज्ञान को साक्षात् करने वाला, सूर्यवत् ज्ञान का प्रकाशक, प्रभु (अंगिरोभ्यः) अंगारो के तुल्य तेजस्वी एवं देह मे बलवीर्य के धारक ज्ञानी पुरुषों को (गाः अप अवृणोत्) वेद वाणियों का प्रकाश करता है। (अस्य तत्) उसके उस (पौंस्यं) परम पुरुष रूप की मैं (स्तुषे) स्तुति करूं। (२) इसी प्रकार (इन्द्रः) सूर्य या प्रभु ने सर्वत्र (अंगिरोभ्यः) जीवों, देहधारियो के लिये (गाः) भूमियों को प्रकट किया।

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ज्ञानदर्शी, ज्ञान का प्रकाशक प्रभु, (प्रत्नथा) पहले पूर्व कल्पों में भी (कवि-वृधः) विद्वानों को आचार्य-वत् बढाने वाला, (वाकस्य वक्षणिः) प्रवचन योग्य वेद को धारण-प्रवचन करने और मनुष्यों तक पहुचाने वाला हो। वही (शिवः) कल्याणकारी, सब में व्यापक (अर्कस्य होमनि) अर्चनीय वेद मन्त्र के उच्चारण वा होम काल में (अस्मत्रा अवसे) हमें ज्ञान प्रदान करने वा रक्षा करने के लिये (आ गन्तु) प्राप्त हो।

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! (यज्यवः) तेरे उपासक, यत्नशील, (अर्काः) अर्चना करने हारे जन (आत् उ नु) भी (वरस्य ते)

सबसे वरण करने, चाहने योग्य तेरे (क्रतुम् अनु) वेद ज्ञान के अनुसार (स्वाहा) उत्तम वाणी और आहुति द्वारा (गोत्रस्य) वाणियों के रक्षक तेरा ही (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (श्वात्रम्) शीघ्र ही (ते अनूषत) तेरी स्तुति करे।

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥ ४२ ॥

भा०—(अर्काः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन (यं) जिस प्रभु परमेश्वर को (अध्वरं) अहिंसक और अविनाशी, नित्य करुणा कर करके (विदुः) जानते हैं उसी (इन्द्रे) परमेश्वर में (विश्वानि वीर्याणि) समस्त वीर्य और समस्त (कृतानि) बने पदार्थ और (कर्त्वानि) करने योग्य कार्य आश्रित है। इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥

भा०—(पाञ्चजन्यया) पांचों जनों से बनी, (विशा) प्रजा (यत् इन्द्रे घोषाः असृक्षत) जिस, इन्द्र, ईश्वर वा राजा विषयक स्तुतियें करती है वही (बर्हणा) बडे भारी सामर्थ्य से जगत् को विस्तारित करता है, (सः) वही (अर्यः) स्वामी (विपः मानस्य क्षयः) विद्वान् जन की पूजा, परिचर्या का निवासस्थान होता है।

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥

भा०—(इयम् ते अनु-स्तुति) यह तेरी स्तुति तेरे ही अनुरूप है, क्योंकि तू ही (तानि पौंस्या चकृषे) वे नाना पुरुष अर्थात् शक्तिमान् के करने योग्य पौरुष या बल के कार्य करता है और तू (चक्रस्य) जगत् के इस महान् चक्र, ब्रह्माण्ड चक्र वा ज्योतिश्चक्र के (वर्त्तनि) वर्त्तन, निरन्तर

भ्रमण के कार्य को (प्र अवः) अच्छी प्रकार कराता है, उसको बराबर रथ के चक्र के तुल्य या यन्त्र के चक्र की तरह गति दे रहा है। (२) राजा नाना शौर्य करता और राजचक्र को चलाता है।

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे।
यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥

भा०—(वृष्ण. व्योदने) बरसते मेघ के द्वारा उत्पन्न अन्न पर जिस प्रकार जीव ससार-जीवन के लिये कदम बढाता है और पशुगण जौ आदि चरता है उसी प्रकार (अस्य वृष्णः) इस परम बलशाली, सब सुखों के वर्षक प्रभु के (वि-ओदने) विशेष दयार्द्र भाव से पूर्ण रसवत् सुख मे यह जीव लोक (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिये (उरु क्रमिष्ट) बहुत कदम बढाता है, और (पश्वः यव न) पशु जिस प्रकार जौ को भोजन के लिये ग्रहण करते है उसी प्रकार ये समस्त जीवगण उसी ब्रह्मरूप परम सुखद, रसस्वरूप पदार्थ को (आददे) प्राप्त करते हैं।

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः। स्याम मरुत्वतो वृधे१०

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम (दक्ष-पितरः) बल, अन्न, और प्रज्ञा के पालक होकर (अवस्यवः) अन्न और रक्षा, ज्ञानादि के इच्छुक होकर (युष्माभि) तुम लोगों के साथ ही (तत्) उस परम ज्ञानमय ब्रह्म को (दधानाः) धारण करते हुए (मरुत्वत) मरुत्वान, प्राणों वाले देह या आत्मा की (वृधे स्याम) वृद्धि मे सलग्न रहे।

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभि. शूर नोनुमः।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥

भा०—(बट्) सत्य ही, हम (ऋत्वियाय) ऋतु २ मे आने वाले (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये हे (शूर) शूरवीर ! हम (ऋक्वभि) ऋचाओं, अर्चनादि सत्कारों से (नोनुम.) स्तुति करते

है और (त्वया युजा) तुझे सहयोगी बनाकर हम (जेषाम) विजय लाभ करें।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः॥१२॥४३

भा०—(यः) जो (शंसते) उत्तम प्रशंसा करते हुए और (स्तुवते) स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये (पज्रः) बलवान् दृढ़ रूप से (धायि) सूर्यवत् स्थित है और (रुद्राः) गर्जना करने वाले (मेहना) वर्षाकारी, (पर्वतासः) मेघों के समान (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले (मेहना) मेरा इसमें कुछ स्वार्थ नहीं इस प्रकार की त्याग भावना वाले, निःसंग (पर्वतासः) पर्वतवत् अचल, प्रजापालक जन (वृत्र-हत्ये) दुष्टों के हनन करने और (भर-हूतौ) यज्ञ के आहुति वा पोषण के कार्य में योग देने के अवसर में (सजोषाः) सप्रेम होकर (देवाः) विद्वान् विजयेच्छुक जन (अस्मान्) हमें (अवन्तु) रक्षा करें। त्रिचत्वारिंशो वर्गः॥

[६४]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७, ९ निचृद् गायत्री। ३ आर्चीं स्वराड् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। २, ६, ८, १०—१२ गायत्री। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि॥१॥

भा०—(स्तोमाः) वेद के सूक्त और उत्तम स्तुति-वचन (त्वा उत मन्दन्तु) तुझे अति प्रसन्न करें। हे (अद्रिवः) बलवन्! तू (राधः कृणुष्व) ऐश्वर्य का सम्पादन कर। और (ब्रह्म-द्विषः) वेद, ईश्वर और अन्न से द्वेष करने वालों को (अव जहि) दण्डित कर।

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भा०—(पदा) पैर से (पणीन् अराधसः) यज्ञार्थ, दान पुण्यार्थ, धन वा करादि से रहित केवल, धनव्यवहारियों को (नि बाधस्व) खूब पीडित कर। (महान् असि) तू सबसे बड़ा है । (प्रति कश्चन नहि) तेरे का मुकाबले और कोई दूसरा नहीं है । राजा का कर्त्तव्य है कि सब धन-व्यवहारियों पर राजा करादि दण्ड लगावे, जो राजकर वा धर्मकर न दे उसे दण्डित करे और उसके व्यवहार में बाधा करे । अथवा जो व्यक्ति विना धन के व्यापार करे राजा उस पर दण्ड करे । वह बहुतों का धन मार कर बाद मे देवालिया होकर अन्यों को हानि करता है ।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्वम्) तू (सुतानाम्) अभिषेक प्राप्त पुरुषों का भी (ईशिषे) स्वामी है, (त्वम् असुतानां ईशिषे) तू अनभिषिक्तों का भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू सब मनुष्यों का राजा है ।

एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३घोषञ्चर्षणीनाम् ।
ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! (आ इहि) आ । (क्षयः प्र इहि) अच्छी प्रकार अपने निवासस्थान या ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो । (चर्षणीनाम्) सब प्रजाओं के बीच (दिवि) भूमि मे, वा आकाश में (आघोषन्) अपनी घोषणा करता हुआ, तू (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (आ पृणासि) पूर्ण कर ।

त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, पवन या विद्युत् (पर्वतं चित् रुजति)

मेघ को छिन्न भिन्न करता है, उसी प्रकार हे ज्ञानशालिन्! तू भी (त्य) उस (पर्वतं) नाना पोरुओं से (गिरिं) ज्ञान का उपदेश करने वाले, (शत-वन्तं सहस्रिणं) सौ और हजार अध्यायों वा सूक्तादि से युक्त वेद ज्ञान को (स्तोतृभ्यः) यथार्थ वक्ताजनों के लिये (रुरोजिथ) पृथक् २ कर व्याख्या कर।

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे।
अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (सुते) ऐश्वर्ययुक्त अभिषेचनीय पद के लिये, (त्वा) तुझे (वयम् उ) हम (दिवा नक्तम्) दिन रात (हवामहे) प्रार्थना करते हैं (अस्माकं कामम् आपृण) हमारी कामना को पूर्ण कर। इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

क्व१स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥

भा०—(स्यः) वह (वृषभः) सुखों का वर्षण करने वाला, (युवा) बलवान्, (तुविग्रीवः) दृढ, विस्तृत, बलशाली गर्दन वाला, भार उठाने में समर्थ, (अनानतः) कभी न झुकने वाला (क्व) कहां है (कः ब्रह्मा) कौन ब्रह्मवेत्ता, विद्वान् वेदज्ञ ऐसा है जो (तं सपर्यति) उसकी पूजा करता है।

कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति।
इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, वह प्रभु (कस्य स्वित् सवनं) किस की उपासना को (जुजुष्वान् अव गच्छति) प्रेम से युक्त होकर स्वीकार करता है, (कः उ स्वित्) वह कौन सा पुरुष है जो (इन्द्रं आचके) उस परमैश्वर्यप्रद को चाहता है। ऐसा कोई ही विरला है।

कं ते॑ दा॒ना अ॑सक्षत॒ वृत्र॑ह॒न्कं सु॒वीर्या॑ ।
उ॒क्थे क उ॑ स्वि॒दन्त॑मः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाश करने हारे ! (ते दाना) तेरे दिये दान (कं असक्षत) कैसे व्यक्ति को प्राप्त होते है ? (कं सुवीर्या) उत्तम बल भी किस को मिलते हैं ? (क उ स्वित्) कौन ऐसा भाग्यवान् है जो (अन्तमः) तेरे अति समीपतम है ?

अ॒यं ते॒ मानु॑षे॒ जने॒ सोम॑ः पू॒रुषु॑ सूयते ।
तस्येहि॒ प्र द्र॑वा॒ पिब॑ ॥ १० ॥

भा०—(मानुषे जने) मननशील जनो मे (ते) तेरे लिये (पुरुषु) इन्द्रियो में ज्ञान के समान (सोमः सूयते) सोम, ऐश्वर्यप्रद का अभिषेक किया जाता है, तू (प्र द्रव) उत्तम मार्ग से चल और (इहि) प्राप्त हो और (आ पिब) सब प्रकार से ओषधि रसवत् उपभोग और पालन कर ।

अ॒यं ते॑ शर्य॒णाव॑ति सु॒षोमा॑या॒मधि॑ प्रि॒यः ।
आ॒र्जी॒कीये॑ म॒दिन्त॑मः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह तेरा अभिषेक हे राजन् (आर्जीकीये) ऋजु, सरल धर्ममार्ग में वर्त्तमान (शर्यणावति) शर अर्थात् बाण धनुपादि शस्त्रास्त्र मे कुशल जनों से समृद्ध जनपद मे (सु-सोमायां) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त या उत्तम जल-अन्न से समृद्ध भूमि के ऊपर (प्रियः) अतिप्रिय और (मदिन्तमः) अतिहर्षजनक हो । *

---

* सरल समभूमि वाले प्रदेश मे उत्तम जलयुक्त शरकाण्ड वाली भूमि मे उत्पन्न सोमलता का रस अति आह्लादजनक, पौष्टिक, मनभावना होता है। यह वेद ने स्पष्ट कहा। आर्जिकीया नदी विपाशा नाम से प्रसिद्ध है ऐसा यास्क का मत है । सायण के मत से कुरुक्षेत्र के दक्षिणार्ध भाग में

तमुद्य राधसे मुहे चारुं मदाय घृष्वये ।
एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥ ४५ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ इहि) आ। (तम् चारुं) उस उत्तम वा चरण अर्थात् फल रूप मे उपभोग योग्य ऐश्वर्य पद को (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्ति के लिये और (घृष्वये मदाय) शत्रु-पराजयकारी, आनन्द लाभ के लिये (द्रव) प्राप्त हो और (आ पिब) पालन और उपभोग कर। इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६५]

प्रागाथः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९, ११, १२ निचृद् गायत्री। ३,४ गायत्री। ७,८,१० विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जो तू (प्राक्, अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः हूयसे) पूर्व पश्चिम, उत्तर वा नीचे कहीं से भी बुलाया जाय, तू (तूयम्) शीघ्र ही (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों के तुल्य व्यापक गुणों से (आ याहि) प्राप्त हो ।

यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।
यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

वह स्थान है । प्रायः जहां भी हिमवती नदियां पर्वतों से निकल कर सम भूमि भाग में आती है वहां २ वेद के बतलाये उक्त लक्षण पाये जाते है ... आदि गुणवती ओषधियां प्रचुर मात्रा मे होती है।

भा०—(यद्वा) चाहे तू (दिवः प्रस्रवणे) प्रकाश के निरुास रूप (स्वः वरे) सुख के प्राप्त कराने वाले रूप मे (यद्वा) अथवा (अन्धसः) अन्न के (समुद्रे) अपार उत्पादक, सेचक, मेघवत् सर्वजीवन प्रद के रूप मे तू (मादयसे) सब को सुखी करता है।

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे।
इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(भोजसे गाम् इव) खाद्य पदार्थ, दुग्ध आदि के प्राप्त करने के लिये गौ के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सोमस्य पीतये) ज्ञान रस के पान और ब्रह्मचर्य, ऐश्वर्यादि के पालन करने के लिये (त्वा) तुझ (महाम् उरु) बड़े ज्ञानी को (गीर्भिः) वाणियो द्वारा (हुवे) पुकारता हूं।

आ ते इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः। रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (देव) प्रकाशस्वरूप! (महिमानं विभ्रतः) महान् सामर्थ्य को धारण करने वाले (ते) तुझे और (महः विभ्रतः ते) तेज वा बड़े भारी जगत् को धारण करने वाले (रथे हरयः) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (रथे हरयः) रमण योग्य इस देह मे विद्यमान सब मनुष्य (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें।

इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत्।
एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (महान्) बड़ा, (उग्र.) बलवान्, दुष्टो को भयजनक, (ईशान कृत्) सर्वस्वामी होकर, सब जगत् पर शासन करने वाला, (गृणीषे) वर्णन किया और (स्तुषे उ) स्तुति भी किया जाता है, तू (न आ इहि) हमे प्राप्त हो और (सुत पिब) उत्पन्न जगत् का पालन कर

सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥ ४६ ॥

भा०—(वयं सुत-वन्तः) हम सुत अर्थात् उत्पन्न ज्ञान वाले, और (प्रयस्वन्तः) उत्तम अन्नादि से सम्पन्न होकर भी (त्वा हवामहे) तुझ से याचना करते है कि (नः) हमारे (इदं बर्हिः आसदे) इस हृदयासन पर विराज । (२) इसी प्रकार उत्तम ऐश्वर्य, अन्न, उद्योगादि से युक्त, प्रजाएं राजा से उत्तम (बर्हिः) राष्ट्र प्रजा के ऊपर शासनार्थ विराजने की प्रार्थना करें ।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जिस कारण से (शश्वताम् साधारणः त्वम् असि) तू बहुतों में भी साधारण, समान रूप से सबके प्रति निष्पक्षपात होकर सबको धारण पोषण करने हारा है, इसलिये (तं त्वा) उस तुझ को (वयं हवामहे) हम आदरपूर्वक बुलाते, प्रार्थना करते है ।

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (नरः) नायक लोग (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र बलों द्वारा (ते) तेरे लिये (सोम्यं मधु) ओषधि रसादि से युक्त अन्न को (अधुक्षन्) प्राप्त करते है । तू (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (तत् पिब) उसका उपभोग कर । (२) हे प्रभो! (ते सोम्यं मधु) तेरे ही जगत् के उत्पादन और संचालन करने वाले सर्वैश्वर्य युक्त (मधु) बल वा ज्ञान का गुरुओं से शिष्यवत् (नरः) उत्तम जन (अद्रिभिः) मेघों से जलवत्, अखण्ड तपों से दोहन करते है । तू (जुषाणः) प्रेमपूर्वक सेवा किया (अधुक्षन्) जाकर (तत् पिब) उसे हमें पिला, पान करा ।

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥

भा०—तू (अर्यः) सबका स्वामी है । अतः तू (विश्वान् विपश्चितः) समस्त विद्वानों को (अति ख्यः) पार करके सबसे अधिक विवेचक दृष्टि से देखता है । तू (तूयम् आ गहि) शीघ्र ही हमें प्राप्त हो । (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमे बड़ा भारी ज्ञान, यश आदि प्रदान कर ।

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।
मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (हिरण्य वीनां) हित रमणीय कान्तियों से (राजा) प्रकाशमान प्रभु, (मे) मुझे (पृषतीनां) आनन्द की वर्षणकारी वाणियों का (दाता) देने वाला परम गुरु (मघवा) उत्तम ज्ञान का धनी (मा रिषत्) दण्डित, व्यथित न करे । (२) राजा भी सुवर्ण युक्त रथ विमानादि का स्वामी, और उत्तम गौवों का दाता धनी मुझ प्रजाजन का नाश न करे ।

सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥

भा०—(पृषतीनाम् सहस्रे अधि) सहस्रों सुखवर्षक वाणियों या नाड़ियों के भी ऊपर सहस्र नाड़ियों से युक्त मूर्धा में (बृहत् पृथु) बड़े विस्तृत (चन्द्रं) आल्हादजनक (शुक्रम् हिरण्यं) हितकारी सुखप्रद कान्तियुक्त वीर्य को (आददे) धारण करूं, मैं ऊर्ध्वरेता होऊं ।

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत १२।४७

भा०—व्रत से न गिरने वाले (सहस्रेण दुर्गहस्य) हजारों से दुर्ग्राह्य, अविज्ञेय, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (मे) मेरा (श्रवः) ज्ञान (देवेषु) ज्ञान की कामना करने वाले शिष्यों में (अक्रत) प्रदान करो । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६६]

: प्रागाथ ऋषि. ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१ बृहती । ३, ५, ११, १३
ाड् बृहती । ७ पादनिचृद् बृहती । २, ८, १२ निचृत् पङ्क्तिः । ४, ६
ाट् पङ्क्तिः । १४ पादनिचृत् पङ्क्ति. । १० पङ्क्तिः । ९, १५ अनुष्टुप् ॥
पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (स-बाधः) पीड़ित होकर (ऊतये) रक्षा के लिये (तरोभिः) तारण करने वाले ज्ञानों से (वः) आप लोगों को (विदद्-वसुम्) नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले, (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् को (कारिणं भरं न) सर्वकर्त्ता सर्वपोषक पिता के समान जान कर (बृहत् गायन्तः) वेदवाणी का गान करते हुए (सुत-सोमे अध्वरे) सोम सवनयुक्त यज्ञ में, वा ज्ञानसम्पादन युक्त हिंसारहित विशुद्ध उपासना में प्रार्थना करो । मैं भी उसी को (हुवे) प्रार्थना करता हूं ।

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(यं सु-शिप्रम्) जिस उत्तम बलशाली को (दुध्राः न वरन्ते) दुर्धर अर्थात् बड़े २ बलशाली भी वारण नहीं कर सकते (न स्थिराः मुरः) स्थिर, अचल शत्रुमारक बली भी जिसको वारण नहीं कर सकते, उसके किये को नहीं बदल सकते, (यः) जो (अन्धसः मदे) अन्नवत् ज्ञान-जीवन के आनन्द में (शशमानाय) प्रशंसा करते हुए, (सुन्वते) उपासना करते हुए, (जरित्रे) स्तोता जन के हितार्थ, (आदृत्य दाता) आदर पूर्वक दान देता है, उस (उक्थ्यम्) स्तुत्य प्रभु की मैं उपा-

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (शक्रः) शक्तिशाली, (मृक्षः) अति शुद्ध (अश्व्यः) सर्वव्यापक है, (यः वा) जो (कीजः) अद्भुत, (हिरण्ययः) हित रमणीयस्वरूप, तेजोमय है (सः) वह (ऊर्वस्य) बहुत बड़े (गव्यस्य) वाणीसमूह रूप वेद के (आवृतिम्) आवरण को (अप रेजयति) दूर करता है, वही (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्, (वृत्रहा) सब दुष्टों और विघ्नों का नाश करने हारा है ।

निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार कोई (निखातं पुरु सम्भृतं वसु उद्वपति) बहुत सा एक स्थान पर गड़ा ख़ज़ाना खोद लेता है उसी प्रकार (यः) जो (वज्री) शक्तिमान्, (सु-शिप्रः) उत्तम मुख नासिका वाले वा उत्तम मुकुट वाले के समान सुरूप, सुज्ञानी, (हर्यश्वः) मनुष्यों को अश्वोंवत् सन्मार्ग पर चलाने हारा (इन्द्रः) वह प्रभु (निखातं) गाडे (पुरु सम्भृतं) इन्द्रियों वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित (वसु) ऐश्वर्य को (दाशुषे) भूमि से अन्न के समान उत्पन्न कर प्रदान करता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु है, वह (यथावशत्) जैसा चाहता है वैसे ही (क्रत्वा) अपने ज्ञान और धर्मसामर्थ्य से (करत्) जगत् का निर्माण करता है ।

यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥ ४८ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (पुरा चित्) पूर्ववत् अब भी (नृणां यद् वावन्थ)

मनुष्यों के निमित्त जो चाहता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयं) हम (तत् ते) वह तेरे लिये (यज्ञम् उक्थं वचः) यज्ञ, उत्तम वचन (तुरं संभरामसि) अति शीघ्र करें। इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः ॥

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥ ६ ॥

भा०—(पुरु-हूत) बहुतो से स्तुति किये जाने योग्य ! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! हे (द्युक्ष) कान्तिमन् ! हे (सोमपाः) जगत् वा राष्ट्र के पालक ! तू (सोमेषु) उत्पन्न जगत् के समस्त ऐश्वर्यों मे (सचा) विद्यमान है। (त्वम् इत् हि) तू ही, (ब्रह्म-कृते) स्तोता (सुन्वते) उपासक को (काम्यं वसु देष्ठः भुवः) कामना करने योग्य धन का सर्वोत्तम दाता है।

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ ७ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (इदा ह्यः) विगत दिन के समान इस समय भी (एनं वज्रिणं) इस शक्तिशाली को (अपीपेम) आप्यायित करें, प्रसन्न करे (तस्मै उ अद्य) उस ही के लिये आज (समना) समान चित्त होकर (भर) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ, और (नूनं) शीघ्र ही (श्रुते) प्रसिद्ध, श्रवण योग्य पद पर (भूषत) उसे शोभित करो। (२) प्रभु पक्ष में—उस शक्तिशाली प्रभु की हम खूब भक्ति करते है, समान चित्त होकर ध्यान करने के लिये समस्त (सुतं) उत्पन्न भावना वा कर्म फल को उसी पर न्योछावर करो और (श्रुते) श्रुति से श्रवण योग्य उसी प्रभु मे (भूषत) स्वयं निष्ठ होवो।

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥

भा०—(उरामथिः वृकः चित्) ऊन वाली भेड़ को मारने वाले

भेड़िये के समान (वारणः) शत्रु का वारण करने में समर्थ शूरवीर (अस्य वयुनेषु भूषति) इस राजा के कार्य मे समर्थ होता है। (२) प्रभु पक्ष मे—(वृकः चित् उरामथिः) हल के समान भूमि को खनने वाला, वा चन्द्र के समान रात्रि के अन्धकार का नाशक, वा वृक पशु के समान अच्छादक ज्ञान का नाशक और (वारणः) सब विघ्नो को दूर करने हारा ज्ञानी तेजस्वी पुरुष ही, (अस्य वयुनेषु) इस प्रभु के ज्ञानैश्वर्यो को प्राप्त करने मे (आ भूषति) सफल होता है। अथवा, (अस्य) इस जीव को (उरामथि. वृकः चित्) भेड़ के नाशक वा भेड़िये के समान आवरक तम के नाशक, चन्द्रवत् (वृकः) ज्योतिष्मान् (वारणः) सर्वदुःखवारक प्रभु ही उसे (वयुनेषु आ भूषति) सब ज्ञानों मे अलंकृत करता वा समर्थ बनाता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सः) वह तू (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिवचन को प्रेम से स्वीकार करता हुआ, (चित्रया धिया) ज्ञानप्रद अद्भुत बुद्धि, ज्ञान, कर्म से (आ गहि) आ, हमें प्राप्त हो।

कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु का (कत् उ पौंस्यं नु अकृतम् अस्ति) कौन सा बल का कर्म नहीं किया हुआ है, सब बल के कर्म इसी के किये है। वह (वृत्रहा) सब विघ्नों और दुष्टों का वारक और दण्ड देने हारा, वह (वृत्रहा) आवरणकारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला, उसमे भी व्यापक (जनुषः परि) जन्मशील इस चराचर जगत् के ऊपर (केन उ श्रोमतेन) भला किस श्रवणीय, वेदगम्य गुण और कर्म से (न शुश्रुवे) श्रवण नहीं किया जाता? उसके सृष्टि, स्थिति संहारादि के सभी कार्य अद्भुत और शास्त्रगम्य है।

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥१०॥४९॥

भा०—अथवा (अस्य) इसकी (मही.) बड़ी, (तविषीः) शक्तियां (कत् उ) कितनी है ? अपरिमित है । (अस्य वृत्र-घ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विक्षोभक परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिंसित, नित्य स्थायी बल वा स्वरूप (कत् उ) कितना और कैसा है ? यह नहीं कहा जा सकता है। वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् वेक नाटान्) सब महाजनों वा विवेकी (उत) और (अहः-दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले सब व्यवहारकुशलों को भी (क्रत्वा) अपने ज्ञान से (अभि) परास्त करता है, वह सर्वोपरि है ॥ वेकनाटाः—वे इति अपभ्रंशो द्विशब्दार्थे । एकं कार्षापणं ऋणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यौ नयेन दर्शयति। ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति वेकनाटाः इति सायणः। एक २ के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'वेकनाट' कहाते हैं। अथवा वेकनाटः—न ते नासिकायाः सज्ञायां टीटज्नाटज्-भ्रटजः ॥ पा० ५ । २ । ३१ ॥ इति नाटच् । वेकनाटा, वेकनासिकाः भेरु नासिकाः विकटनासिका वा । अथवा विचिर पृथग्भावे, वेकः पृथग्भाव., विनासिका, विवेकशीलनासिकाः कुशला वा वेकनाटाः छिन्ननासः,

इत्येकोनपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

व॒यं घा॑ ते॒ अपू॑र्व्येन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि वृत्रहन् ।
पु॒रू॒तमा॑सः पुरुहूत वज्रिवो भृ॒तिं न प्र भ॑रामसि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व, एवं सबसे पूर्ण ! हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित । हे (वज्रिव.) शक्तिशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वय घ पुरुतमास.) हम उत्तम जन (ते) तेरे लिये (भृति न) वेतन के समान ही करादि नित्य नियम से (प्र भरामसि) प्रदान करें । इसी प्रकार प्रभु की भक्ति भी हम नित्य ने अपने भोजन के समान ही नित्य किया करें ।

पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (तुवि-कूर्मन्) बहुत से कर्म करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे) तेरे अधीन (पूर्वीः चित् हि) पूर्ण, समृद्ध (आशसः) उत्तम स्तुतिशील प्रजाएं और (ऊतयः) रक्षक सेनाएं (हवन्ते) तेरी स्तुति करती है । तू (अर्यः) सबका स्वामी, (तिरः चित्) प्राप्त हुए (सवना गहि) ऐश्वर्य प्राप्त कर । हे (वसो) सबको बसाने हारे ! हे (शविष्ठ) अति शक्तिशालिन् ! तू (मे हवं श्रुधि) मेरे वचन, प्रार्थनादि श्रवण कर ।

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥

भा०—(वयं घ ते) हम तो तेरे ही है, (त्वे इत्) तेरे ही अधीन हम (विप्राः) विद्वान् जन हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अपि स्मसि) सदा रहे, तुझ में निमग्न हों, अप्यय अर्थात् मोक्ष प्राप्त करें । हे (पुरु-हूत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! (मघवन्) उत्तम स्वामिन् ! (त्वद् अन्यः क' चन) तेरे से दूसरा कोई और (मर्डिता नहि अस्ति) सुख देने वाला नहीं है ।

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधो३भिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥

भा०—हे (शचिष्ठ) शक्तिशालिन् ! तू (नः)हमें (अस्याः अमते) अज्ञान, दारिद्र और (क्षुधः) भूख, तृष्णा, (उत) और (अभिशस्तेः) निन्दा से (अव स्पृधि) मुक्त कर । हे (गातुवित्) मार्गवित् ! उपायज्ञ, वाणी के जानने और प्राप्त कराने हारे ! (त्वं) तू (न) हमें (तव चित्रया ऊती) तेरी अपनी आश्चर्यकारी रक्षा और (धिया) ज्ञान, कर्मशक्ति से (शिक्ष) ज्ञान प्रदान कर ।

सोम॒ इद्वः सु॒तो अ॑स्तु॒ कल॑यो॒ मा बि॑भीतन ।
अपे॒दे॒ष ध्व॒स्माय॑ति स्व॒यं घै॒षो अपा॑यति ॥ १५ ॥ ५० ॥

भा०—हे (कलयः) उक्त ज्ञानवान् कर्मशील पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (सोमः) ज्ञान और ऐश्वर्य (सुत अस्तु) सदा उत्पन्न होता रहे । आप लोग (मा विभीतन) भय मत करो । (एषः) यह ज्ञान के उदय होने पर तेज से अन्धकारवत् (अप ध्वस्मायति इत्) स्वयं नष्ट हो जाता है, (स्वयं घ एषः अपायति) वह आप ही दूर हो जाता है । इति पञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

[६७]

मत्स्यः सांमदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ऋषयः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१—३, ५, ७, ६, १३—१५, २१ निचृद् गायत्री । ४, १० विराड् गायत्री । ६, ८, ११, १२, १६—२० गायत्री ॥

त्यान्नु क्ष॒त्रियाँ॒ अव॑ आदि॒त्यान्या॑चिषामहे ।
सु॒मृ॒ळी॒काँ अ॒भिष्ट॑ये ॥ १ ॥

भा०—हम (तान्) उन (क्षत्रियान्) धनवान् और बलशाली (सुमृडीकान्) उत्तम सुखप्रद, (आदित्यान्) किरणों वा बारह मासों के समान तेजस्वी दान, कर आदि लेने वाले, विद्वानों और क्षत्रियों को (अभिष्टये) अपने अभीष्ट सुख को प्राप्त करने के लिये (अव याचिषामहे) विनय पूर्वक धन, ज्ञानादि की याचना करें ।

मि॒त्रो नो॒ अत्यं॑ह॒तिं वरु॑णः पर्ष॑द॒र्य॒मा ।
आ॒दि॒त्यासो॒ यथा॑ वि॒दुः ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही जन (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा)

शत्रुओं का नियन्ता न्यायकारी जन, और (आदित्यासः) तेजस्वी ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक जन भी (यथा विदुः) जैसे अच्छा जानें वैसे (नः) हमे (अंहतिं अतिपर्षत्) पाप से पार करें ।

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरङ्कृते ॥३॥

भा०—(तेषां आदित्यानां) उन विद्वान् तपस्वी जनों का (अरं-कृते) अत्यन्त अधिक श्रम करने वाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) स्तुत्य (वरूथम्) दुःखवारक धन (अस्ति) है ।

महिं वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (वरुण मित्र अर्यमन्) श्रेष्ठ ! स्नेहवन् ! न्यायकारिन् ! (वः महताम्) आप बड़ों का (महि अवः) ज्ञान और पालन सामर्थ्य भी बड़ा है । आप लोगों से हम (अवांसि वृणीमहे) नाना ज्ञानों, रक्षाओं की याचना करते हैं ।

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात् ।
कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥ ५१ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो ! (पुरा हथात्) मृत्यु से पहले आप लोग (नः जीवान्) हम जीवित जनों को (अभि धेतन) सदा पालन पोषण करते रहो, हे (हवन-श्रुत) आह्वान के सुनने वालो ! आप (कत् ह स्थ) कहीं भी होवो, इस व्रत का पालन करो । इत्येक-पञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः ।
तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥

भा०—हे उत्तम मनुष्यो ! (यद् वरूथम्) जो तुम लोगों का दुःखादि वारण करने योग्य धन और (यत् छर्दिः) जो गृह है वह (श्रान्ताय)

...शील तपस्वी, और (सुन्वते) उपासक भक्त जन के लिये हो। (तेन)
...तपस्वी और उपासक भक्त जन द्वारा (नः अधि वोचत) हमें उत्तम
...देश करो।

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः।
आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अहोः) हिंसक एवं पापकारी पुरुष का पाप या कष्ट भी (उरु अस्ति) बडा अधिक होता है। और (अनागसः) निरपराधी को (रत्नं उरु अस्ति) सुख भी बहुत होता है। हे (आदित्याः) अदिति अर्थात् उत्तम माता पिता के उत्तम पुत्रो ! एवं उत्तम विद्वान् व्रतधारी तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग सदा (अद्भुत एनसः) पापरहित, निरपराधी होवो।

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि।
इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥

भा०—(सेतुः) बन्धन, वा बन्धनकारी अधिकारी (नः मा सिषेत्) हमें बन्धन में न बांधे। (अयं) यह (नः) हमें (महते) बड़े उद्देश्य के लिये (परि वृणक्तु) बुरे काम से बचावे। (इन्द्रः इत् हि) इन्द्र ही (वशी श्रुतः) सबको वश करने वाला सुना जाता है, वेद में बतलाया गया है।

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः।
देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा करने के इच्छुक विद्वान् मनुष्यो ! (रिपूणां) शत्रुओं और (वृजिनाना मृचा) पापों के विनाशकारी साधन से (नः मा अभि प्र मृक्षत) हमारा नाश मत होने दो। अत्र मृक्षत इत्यपि हिंसार्थस्य मृचेरेव रूपम्।

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे। सुमृळीकामभिष्टये ॥१०॥५२॥

भा०—हे (महि) पूज्ये। हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते)

पृथिवि ! मातः ! (उत) और मैं (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखदायिनी दयावती (त्वाम्) तुझ से (अभिष्टये) अभीष्ट पूर्त्ति के लिये (उप ब्रुवे) याचना करता हूं । इति द्वापञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

पर्षि दीने गंभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः ।
माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥ ११ ॥

भा०—हे (उग्रपुत्रे) अर्थात् शत्रु को भय देने वाले पुत्रों की मातः ! तू (जिघांसतः) हनन करने की इच्छा वाले, हिंसक भाव वाले पुरुष से हमारी (दीने) दीन दशा में और (गभीरे) गृह, जंगल, अन्धकारादि में भी (पर्षि) सब प्रकार से रक्षा कर । (नः तोकस्य) हमारे सन्तान को (माकिः) और कोई भी (नः रिषत्) मार सके । इसी प्रकार राष्ट्र, भूमि (State) स्वयं स्वतन्त्र अन्य किसी देश के अधीन न हों, उसकी इतनी शक्ति हो कि इसका प्रत्येक पुत्र दीन से दीनदशा और गंभीर से गंभीर जंगल, जल, एकान्तादि में भी निर्भय हो, उस पर कोई अन्य देश वाला अंगुली तक न उठा सके ।

अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे ।
कृधि तोकाय जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे (उरु-व्रजे) दूर २ तक जाने वाली ! हे (उरूचि) बहुत वेग से जाने वाली ! तू (नः) हम (अनेहः) निरपराधों को (वि प्रसर्तवे) विविध दिशाओं में जाने के लिये हो और (तोकाय) पुत्रादि के (जीवसे) जीवन के लिये (कृधि) उपाय कर । दूर देशों तक जाने वाली वैश्य-सभा वा उनकी सस्था और गमनागमन साधनों की व्यवस्था कारिणी संस्था 'उरव्रजा' और 'उरूची' नाम से कही गई प्रतीत होती है ।

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः ।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (क्षितीनां) भूमियों मे बसी ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओं के (मूर्धानः) शिरोमणि, प्रमुख पुरुष हैं वे (अदब्धासः) अहिंसक (स्व-यशसः) धन और यश से सम्पन्न हो और (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (व्रता रक्षन्ते) व्रत, उत्तम कर्मों, नियमो और अन्नो की रक्षा करें।

ते न॑ आ॒स्नो वृका॑णा॒मादि॑त्यासो मु॒मोच॑त ।
स्ते॒नं ब॒द्धमि॑वादिते ॥ १४ ॥

भा०—(आदित्यासः) हे तेजस्वी पुरुषो ! हे (अदिते) अखण्ड शासनकारिणि ! मातृवत् पालिके ! प्रभुशक्ते ! तू (बद्धम्-इव स्तेनं) बंधे चोर के समान बन्धन में बद्ध (नः) हमे (वृकाणां आस्नः) भेड़ियों के तुल्य मुंह फाड़ कर खाने को आने वाले दुष्ट हिंसकों के मुखों से (मुमोचत) छुड़ाओ ।

अपो॒ षु ण॑ इ॒यं शरु॒रादि॑त्या॒ अप॑ दुर्म॒तिः ।
अ॒स्मदे॑त्वज॑घ्नुषी ॥ १५ ॥ ५३ ॥

भा०—हे (आदित्याः) मातृभूमि के हितकारी जनो ! हे विद्वान् तेजस्वी, अखण्ड ब्रह्मोपासक, अखण्ड व्रताचरण करने हारो ! (इयं शरुः) यह हिंसाकारी (नः अपो एतु) हम से दूर हो और (इयं दुर्मतिः) यह दुष्ट मति और दुष्ट शस्त्रादि (अजघ्नुषी) हमे पीडित न करती हुई (अस्मत् अप एतु) हम से दूर हो । इति त्रिपञ्चाशतमो वर्गः ॥

शश्व॒द्धि वः॑ सुदानव॒ आदि॑त्या ऊ॒तिभि॑र्व॒यम् ।
पु॒रा नू॒नं बु॑भु॒ज्महे॑ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दानशील, दान-आदान करने वाले तेजस्वी जनो ! (वः) आप लोगों की (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (वयं शश्वत् हि) हम निरन्तर ही (पुरा नूनं) पहले के समान (बुभुज्महे) नाना ऐश्वर्यों का भोग करें ।

शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः ।
देवाः कृणुथ जीवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्तम चित्त और उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (देवाः) दानशील ज्ञानप्रकाशक पुरुषो ! (एनसः) पाप से दूर (प्रतियन्तं) विरुद्ध दिशा मे जाने वाले, या पापो का मुकाबला करने वाले (शश्वन्तं) बहुत से जनसमाज को (जीवसे कृणुथ) दीर्घ जीवन के लिये तैयार करो ।

तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति ।
बन्धाद् बद्धमिवादिते ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के शिष्यो ! वा भूमि-माता के सत्पुत्रो ! और हे (अदिते) सूर्यवत् तेजस्वी, हे मातृवत् पूज्य ! (बद्धम् इव) बद्ध पुरुष के समान कर्मबन्धन मे बँधे पुरुष को (यत्) जो ज्ञान (मुमोचति) मुक्त कर देता है (तत्) वह (नव्यं) स्तुत्य, उपदेष्टव्य ज्ञान (सु सन्यसे) अच्छी प्रकार सेवन करने के लिये हो ।

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे ।
यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) ज्ञानवान् पुरुषो ! (अस्माकं तत् तरः न अस्ति) हमारे पास वह बल नही है, जो (अति-स्कदे) सब बन्धनों और कष्टों से पार ले चलने में समर्थ हो । (यूयम्) तुम सब (अस्मभ्यं मृटत) हमे सुखी करो ।

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः ।
पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! (विवस्वतः) विविध प्रजाओं के स्वामी राजा वा विविध किरणों वाले सूर्य की (कृत्रिमा)

शिल्पी आदि से बनाई गई वा गति से उत्पन्न (शरुः) प्राण या जीवन का नाश करने वाली (हेतिः) शस्त्रपीड़ा, वा कालगति, (नः) हमें (जरसः पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (मा वधीत्) न मारे ।

वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।
विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥ ५४ ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) विद्वान् तेजस्वी, अदीन शासक शक्ति के निर्माता जनो ! आप लोग (द्वेषः वि सु वृहत) शत्रुओं को विविध प्रकार से अच्छी प्रकार नष्ट कर दो । (अंहतिम् वि वृहत) पाप को समूल उखाड़ दो । (संहितम् वि वृहत) बन्धन को दूर करो । और (रपः विश्वक् वि वृहत) पाप को भी सब प्रकार से उखाड़ दो । इति चतुःपञ्चाशत्तमो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

[६८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ १—१३ इन्द्रः । १४—१६ ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ४, ७ विराडनुष्टुप् । १० निचृदनुष्टुप् । २, ३, १५ गायत्री । ५, ६, ८, १२, १३, १७, १६ निचृद् गायत्री । ११ विराड् गायत्री । ९, १४, १८ पादनिचृद गायत्री । १६ आर्ची स्वराड् गायत्री ॥ एकोनविंशत्यृच सूक्तम् ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! सत्यदर्शिन् ! तेजस्विन् ! (यथा) जिस प्रकार (ऊतये) सुखार्थ और रक्षार्थ (तुविकूर्मि ऋति सह

रथं वर्तयामः) बहुत तीव्र गति से चलने वाले, बहुत कार्यों में आने वाले, गमनमे समर्थ रथ को प्रयोग मे लाते है उसी प्रकार हे (शविष्ठ) अति बलशालिन्! हे (सत्-पते) सज्जनो के पालक! सत्, कारण पदार्थों के स्वामिन्! (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से सृष्ट्यादि कर्मो के कर्त्ता, (ऋति पहं) दुःखदायी हिसकों को पराजित करने वाले, (त्वा) तुझ को हम (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने के लिये (आ वर्तयामसि) पुनः २ तेरा मनन, चिन्तन और शास्त्र द्वारा आवर्त्तन करें।

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते।
आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शुष्म) बहुत बलो से सम्पन्न, प्रचुर शक्तिमन्! हे (तुविक्रतो) बहुत प्रज्ञासम्पन्न! महामते। हे (शचीवः) शक्ति, वाणी के स्वामिन्! तू (महित्वना) महान् सामर्थ्य से हे (मते) मनन करने हारे ज्ञानमय! (विश्वया आ पप्राथ) समस्त विश्व को तू ही फैलाता है।

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः।
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (हस्ता) दोनों हाथ (महिना) महान् शक्ति से युक्त होकर (महः) बड़े (ज्मायन्तं) भूमि तक व्यापने वाले (हिरण्यम्) तेजोमय (वज्रं) वीर्यवत् शस्त्र को (परि ईयतुः) वश करते है।

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (अनानतस्य) कभी न झुकने वाले (विश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों के बने (शवसः) बलवान् सैन्य के (पतिम्)

उस स्वामी को (चर्षणीनाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों के (एवैः) गमनागमनों द्वारा (हुवे) बुलाता हूं।

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीह्ळेषु यं नरः।
नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस (सदावृधं) सदा बढ़ाने वाले, को (स्वः-मीढेषु) संग्रामों में (नाना नरः) नाना नायक जन (ऊतये) रक्षा और भृति के लिये (हवन्ते) प्रमुख स्वीकार करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम्। ईशानं चिद्वसूनाम् ॥६॥

भा०—(परः-मात्रम्) सब परिमाणों से परे, अति सूक्ष्म और अनन्त, (ऋचीषमम्) ऋचा या स्तुति द्वारा सर्वत्र समान रूप से स्तुत्य (इन्द्रम् उग्रं सु राधसम्) ऐश्वर्ययुक्त बलवान् धनादि सम्पन्न (वसूनां चित् ईशानम्) प्रजा के राजा के समान समस्त जीवों और लोकों के स्वामी की मैं (हुवे) स्तुति करता हूं।

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये।
यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (नृतुः) सबका नेता, सब विश्व का संचालक और (कृष्टीनाम्) सब कृषि योग्य भूमियों के स्वामिवत् समस्त योनियों, जीवों, मनुष्यों, और प्रजाओं का (ईशे) प्रभु है, (तं-तम् इत्) निश्चय उस ही (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्य के दाता प्रभु को लक्ष्य करके (पूर्व्याम्) पूर्व की, सर्वश्रेष्ठ, (अनु स्तुतिम्) अनुरूप स्तुति को (पीतये) अपने पालन या रक्षा के लिये (चोदामि) करता हूं।

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः।
नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शवसान) बलशालिन् ! (यस्य ते) जिस तेरे (सख्यम्)

मित्रभाव को (मर्त्यः) मनुष्य (न आनंश) नहीं प्राप्त करता, उसको पूरी तरह से नहीं जान पाता, उन तेरे (शवांसि) बलों को भी (नकिः नशत्) कोई पा नहीं सकता। उनका भी पार कोई नहीं पाता। तेरी मित्रता और बल दोनों अपार और अनन्त हैं।

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम्।
जयेम पृत्सु वज्रिवः॥ ९॥

भा०—हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन्! (त्वा उतासः) तेरे से सुरक्षित और (त्वा युजा) तेरे से सहायवान् होकर हम (अप्सु सूर्ये) अन्तरिक्ष और सूर्य के समान प्रजा और सूर्यवत् राजा के अधीन रहकर (पृत्सु) संग्रामों मे (महद् धनम् जयेम) बड़ा धनलाभ विजय करें।

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम्॥ १०॥ २॥

भा०—हे (गिर्वणस्तम इन्द्र) वाणी द्वारा अतिस्तुत्य प्रभो! (यथाचित् वाजेषु) जिस प्रकार संग्रामों में तू (पुरु-माय्यं) बहुत मतिमान् और बहुतों में आज्ञापक की (आविथ) रक्षा करता है, (तं त्वा) उस तुझ को (गीर्भिः यज्ञेभि.) वाणियों और यज्ञों द्वारा (ईमहे) स्तुति करें। इति द्वितीयो वर्गः॥

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः।
यज्ञो वितन्तसाय्यः॥ ११॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरा (सख्यं स्वादु) मित्रभाव अति सुखप्रद, और (प्रणीति. स्वाद्वी) जिसकी उत्तम नीति भी अति सुख देने वाली है वह तू (यज्ञ.) उपासना योग्य और (वितन्त-साय्यः) विशेष रूप से एकाग्र चित्त से ध्यान करने योग्य है।

उरु णस्तन्वे तनं उरु क्षयाय नस्कृधि ।
उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः तन्वे) हमारे शरीर के सुखार्थ, (तने) पुत्रादि के लिये और (क्षयाय) हमारे निवास और 'क्षय' अर्थात् ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये, (नः उरु कृधि) हमारे लिये बहुत कुछ और (जीवसे उरु यन्धि) हमें जीवन के लिये बहुत कुछ प्रदान कर ।

उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (नृभ्यः उरुं) मनुष्यों के हितार्थ बहुत बड़ा (पन्थाम्) मार्ग चाहते हैं (गवे) गवादि जन्तुओं के लिये भी (उरु पन्थाम्) बहुत बड़ा मार्ग और (रथाय उरुं पन्थाम्) रथ के लिये भारी मार्ग और (देव-वीतिं) विद्वानों का उत्तम ज्ञान, प्रकाश तथा देव, दान-वान् पुरुष की नीति रक्षा, बल, कान्ति की (मनामहे) याचना करते हैं ।

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥

भा०—(द्वा-द्वा) दो दो करके (षड् नरः) छः नायक (सोमस्य हर्ष्या) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष से मानो सुप्रसन्न, (स्वादु-रातयः) सुखप्रद दानों से युक्त होकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरे पास उपस्थित होते हैं । अर्थात् 'सोम' वा वीर्य की रक्षा से उत्पन्न हर्ष, सुख, आनन्द से हृष्ट पुष्ट जोड़े जोड़े ६ नायक आंख, नाक, कान उत्तम सुस्वादु ज्ञान, बल प्रदान करते हुए मुझ आत्मा को प्राप्त हैं । दो दो के जोड़े मिलकर छः—आँखें, दो, नाकें दो, कान दो, ये उत्तम अन्न रस से पुष्ट होकर उत्तम ज्ञान देते हैं ।

ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि ।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(आश्वमेधस्य) अर्थात् अश्व, भोक्ता आत्मा के वा (आश्वमेधस्य) अश्व भोक्ता आत्मा वा अश्ववत् इन्द्रिय मन से संयुक्त (ऋक्षस्य) गतिशील, जंगम शरीर के (सूनवि) प्रेरक (इन्द्रोते) आत्मा से रक्षित इस शरीर रूप राष्ट्र मे (ऋज्रौ) ऋजु मार्ग से जाने वाले, (रोहिता हरी) अन्न आदि से पुष्ट, दो अश्वोंवत् प्राण-आपान को मै साध कर (आददे) वश करूं। (२) (आश्वमेधस्य ऋक्षस्य सूनवि इन्द्रोते ऋज्रौ रोहिता हरी आददे) अश्व मेध अर्थात् राष्ट्र का शासन करने वाले, ऋक्ष, अर्थात् पराक्रमी सैन्य के प्रेरक वा उत्पादक, राजा से सुरक्षित वा शत्रुहन्ता सैन्य बल से सुरक्षित ऋजु, धर्म मार्ग मे चलने वाले (रोहिता) वृद्धिशील, अनुरक्त, (हरी) स्त्री पुरुषों को मै राजा (आददे) अपने अधीन लेता हूं। इति तृतीयो वर्गः ॥

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे। आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥

भा०—(आतिथिग्वे) अतिथि के आदर सत्कारार्थ वाणी को विनय पूर्वक प्रयोग करने वाले, (आर्क्षे) शत्रुपर आक्रमण करने मे कुशल, (आश्वमेधे) अश्व सैन्य से शत्रुओं का संग्राम रूप यज्ञ करने वाले, वीर नायक के अधीन (सुपेशसः) उत्तम रूपवान्, (सु-अभीशून्) उत्तम लगामों से युक्त (सु-रथान्) उत्तम रथ वाले अश्वों के समान, उत्तम रूप धनादि से सम्पन्न, (सु-अभीशून्) अंगुलि वा सुअवयवो से सम्पन्न, (सुरथान्) उत्तम रथारोही, वा उत्तम देहवान् वीर, दृढ़, योद्धा पुरुषों को मै (आददे) अपने राष्ट्र में और शासन मे नियुक्त करूं।

षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः। सचा पूतक्रतौ सनम् १७

भा०—(आतिथिग्वे) पूज्य के सत्कारक, विनीत वाणी वाले (इन्द्रोते) ऐश्वर्य से युक्त, (पूत-क्रतौ) पवित्र कर्म और पवित्र ज्ञान वाले पुरुष के अधीन (वधूमत. षट् अश्वान्) 'वधू' अर्थात् शत्रु का वध करने, उनको कम्पित कर देने वाली सैन्य शक्ति से युक्त छ. अश्वसैन्य के स्वामी सेना-

पतियों को मैं (सचा) एक साथ ही (सनम्) प्राप्त करूं। (२) अध्यात्म मे- पवित्राचारवान् पावन-प्रज्ञ, सर्वोपरि वाणी के स्वामी आचार्य के अधीन रहकर मैं वहनकारिणी प्राण या चेतना शक्ति से युक्त चक्षु आदि पात्र और छठा मन इन इन्द्रिय गण को मैं शिष्य वश करूं। अथवा मैं साधक, आत्मा से रक्षित, पवित्रकर्मा, व्यापक इन्द्रिय सम्पन्न देह मे (वधूमत) देहधारक शक्ति से युक्त पांच इन्द्रिय, मन, इन छः मुख्य प्राणों को धारण करूं।

एषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋजेष्वरुषी। स्वभीशुः कशावती॥ १८॥

भा०—(एषु ऋज्रेषु) इन ऋजु, धर्म मार्ग मे चलने वाले विद्वानों के ऊपर या (वृषण्वती) बलवान् पुरुषों वा दृढ़ नायक सभापति वाली, (अरुषी) तेजस्विनी, (सु-अभीशुः) सुप्रबद्ध नियम व्यवस्था से सम्पन्न (कशावती) वाणी, वा आज्ञा की स्वामिनी राजसभा (आचेतत्) सब कुछ विचार किया करे। (२) अध्यात्म मे-(एषु) इन (ऋज्रेषु) गतिशील प्राणों पर उनमें (वृषण्वती) बलवान् मन की स्वामिनी, (अरुषी) दीप्तिमती, (सु-अभीशुः) देह की संचालक ज्ञानतन्तुओं की स्वामिनी, (कशावती) वाणी की स्वामिनी (अचेतत्) देह मे सर्वत्र चेतना को प्रकट करती है।

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः।
अवद्यमधि दीधरत्॥ १९॥ ४॥

भा०—हे (वाजबन्धवः) राष्ट्र मे ऐश्वर्य और अन्नादि वेतनों पर बंधे नियुक्त पुरुषो! (युष्मे) तुम लोगों मे से कोई भी (मर्त्यः निनित्सुः चन) निन्दा करने वाला होकर (अवद्यम् न अधि दीधरत्) निन्दनीय कार्य, दुष्ट फल को न धारण करे। अर्थात् कोई भी परस्पर की निन्दा या बुरा काम न करे। इति चतुर्थो वर्गः॥

[६९]

प्रियमेध ऋषिः ॥ देवताः—१—१०, १३—१८ इन्द्रः । ११ विश्वेदेवाः । ११, १२ वरुण. ॥ छन्दः—१, ३, १८ विराडनुष्टुप् । ७, ९, १२, १३ १५ निचृदनुष्टुप् । ८ पादनिचृदनुष्टुप् । १४ अनुष्टुप् । २ निचृदुष्णिक् । ४, ५ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ११ पंक्तिः । १६ निचृत् पंक्तिः । १७ बृहती । १८ विराड् बृहती ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

प्रप्रं वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (मन्दद्-वीराय) हृष्ट, पुष्ट, सुतृप्त वीर पुरुषों के स्वामी वा वीरों को हर्षित करने वाले, (इन्दवे) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के लिये (त्रि-स्तुभम्) मन, वाणी, कर्म तीनों से स्तुति करने योग्य, तीनों दोषों के नाशक (इषं) अन्न और सैन्य को (प्र-प्र) उत्तम प्रकार से प्रदान करो । वह (पुरन्ध्या धिया) राष्ट्र या पुर को धारण करने वाली सद्-बुद्धि से (वः) आप लोगों की (मेध-सातये) अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करने और यज्ञ वा युद्ध के निभाने के लिये (आ विवासति) सब प्रकार से सेवा करे ।

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ २ ॥

भा०—(ओदतीनां) स्तुति करती हुई (वः) आप प्रजाओं को (नदं) समृद्ध करने वाले और (योयुवतीनां) सर्वत्र मेल, सत्संग रखने वाली प्रजाओं के (नदं) आज्ञापक, (अघ्न्याना) न मारने योग्य, रक्षा करने योग्य (धेनूनाम्) अपनी पालक पोषक, गौवत् अन्नदाता और (व) आप प्रजाजनों के (पति) पालक को आप लोग चाहो । और हे राजन् ! तू भी इन (धेनूना अघ्न्यानां ओदतीना योयुवतीना) गौओं के

तुल्य अहन्तव्य, रक्षणीय, स्तुति युक्त, तुझ से मेल रखने वाली प्रजाओं की (इषुध्यसि) बराबर कामना कर, उनको हृदय से चाह ।

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ३ ॥

भा०—वे (पृश्नयः) मेघमाला के समान ऐश्वर्य का वर्षण करने वाली वा उससे स्पर्श अर्थात् सम्बन्ध रखने वाली (विशः) प्रजाएं (सूद-दोहसः) जल प्रदान करने वाले कूपों या मेघों के समान (अस्य) उसके (सोमं) अन्नवत् ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) प्राप्त कराती हैं। और (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिषु) तीनो लोको मे (रोचने) प्रकाश करने वाले सर्व-रुचिकर आकाशवत् उच्च और (देवानां जन्मनि) देव, विद्वानों के बीच नवजन्म लेने के लिये शुभ गुणों के आश्रय पद पर उसे स्थापित या प्राप्त करते है ।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—(यथा विदे) यथावत् ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये, (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक, एवं सत् अविनाशी पदार्थों के स्वामी, (सत्यस्य सूनुं) सत्य के प्रेरक, सत्य के उत्पादक, उपदेशक (गोपति) जितेन्द्रिय, वाणी के पालक, भूमि के पालक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (अभि प्र अर्च) साक्षात् स्तुति कर ।

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५॥५॥

भा०—(यत्र) जहां हम सब (अभि सं-नवामहे) ऐश्वर्यवान् की साक्षात् स्तुति करें, उस (बर्हिषि अधि) राष्ट्र, प्रजा वा उत्तमासन पर स्थित (हरयः) उत्तम विद्वान् गण (अरुषी·) उत्तम २ वाणियां (आ ससृज्रिरे) कहें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत् ६

भा०—(गावः आशिरं मधु) गौएं जिस प्रकार खाने योग्य उत्तम मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं उसी प्रकार (इन्द्राय वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के (मधु) अति मधुर (आशिरं) सर्वव्यापक स्वरूप को (गावः) वेदवाणिया (दुदुह्रे) दोहन करती है, उसी का प्रतिपादन करती है, (यत्) जो (उपह्वरे) अति समीप एकान्त देश मे (विदत्) जाना और प्राप्त किया जाता है।

उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

भा०—मैं और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी दोनों (ब्रध्नस्य) बन्धन मे बांधने वाले आश्रयभूत स्वामी के (विष्टपं = वितपं) ताप दुःखादि से रहित सुखपूर्ण (गृहम् उद् गन्वहि) गृह को उत्तम रीति से प्राप्त हों, और (मध्वः पीत्वा) मधुर पदार्थ दुग्धादि का पान या मधुपर्कादि ग्रहण करने के अनन्तर (त्रिः) मनसा, वाचा, कर्मणा (सख्युः सप्त पदे) मित्र या सखा के सातवें पद पर (सचेवहि) हम दोनों मिलकर रहें। इस प्रकार वधू वर से कहे। अथवा—(सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) मित्र सखा के ३ × ७ = २१वें पद पर दोनों मिलें।* इसी प्रकार प्रजा भी राजा की उपभोग्यवत् होकर पालनीय होने मे पत्नीवत् और राजा

* यह २१वा पद कौन सा है? इस सम्बन्ध में सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण (१।३०) का वचन उद्धृत किया है—त्रिःसप्तेत्यनेन देवलोकानामुत्तममेकविंशस्थानमुच्यते। आदित्यस्यैकविंशत्वात्। तथा च ब्राह्मणम्। द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंश इति। इसके अनुसार भी १२ मासो, पाचो ऋतुओ और तीनों लोकों मे दोनों सग रहे यह अभिप्राय निकलता है।

उसका स्वामी है, वही प्रबन्धक होने से 'ब्रध्न' है दोनों ही मधुर अन्न जल का उपभोग कर मित्रपद पर मिलें, दोनों एक दूसरे के मित्र होकर रहे। (३) इसी प्रकार परमेश्वर 'ब्रध्न' है, जीव इन्द्र प्रभु का पद तापरहित सुखमय होने से 'विष्टप' है, वहा दोनों आत्मा, ज्ञानपा नकर मिले, वे सखा होकर रहे।

द्वा सुपर्णा, सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। उपनिषत्। सखा होने के सात चरण—१ इष्, २ ऊर्ज, ३ रायस्पोष, ४. मायोभव्य, ५. प्रजा, ६. ऋतु ७. सख्यभाव। (पारस्कर गृ०)

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रिय-मेधासः) यज्ञ, अन्न, युद्ध वाणी, बुद्धि आदि के प्रिय जनो ! हे (पुत्रकाः) बहुत जनो और ज्ञानों की रक्षा करने हारे वीर पुरुषो ! आप लोग उस परमेश्वर को (अर्चत, प्र अर्चत, अर्चत) स्तुति करो, खूब स्तुति करो और स्तुति करते ही रहा करो। (उत अर्चन्तु) आप लोग अर्चना करो, उसको (धृष्णु पुरं न) शत्रु को पराजित करने मे समर्थ दृढ़ दुर्ग के समान सब का पालक जानकर उसकी (अर्चत) पूजा करो। वह स्वामी ही हमारा बड़ा भारी गढ़ है।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

भा०—(गर्गरः अव स्वराति) उत्तम उपदेष्टा अधीनों को उपदेश करता है, (गोधा) वाणी को धारण करने वाला जन भी ज्ञान को (परि सनिष्वणत्) सब ओर उपदेश करे। (पिङ्गा) उत्तम मनोहर शब्द बोलने में चतुर कविमण्डली वा वादित्रमण्डली भी (इन्द्राय) उस परमेश्वर की (उद्-यतम्) उत्तम (ब्रह्म) वेद-स्तुति का (परि चनिष्कत्) सर्वत्र वर्णन करे। (२) इसी प्रकार राजा का (गर्गरः) गडगड शब्दकारी

नगारा, मेघवत् गर्जे (गोधा) हाथ पर बंधा चर्म, जहा डोरी बराबर आकर लगती है, वह 'हस्तघ्न' भी पृथ्वीपोषक मेघवृष्टिवत् ध्वनि करे और (पिंगा) पीत वर्ण वा झन-झनाती डोरी विद्युत् के समान राजा के लिये (उद्-यतं) उत्तम रीति से विजयबद्ध (ब्रह्म) बृहत् राष्ट्र-धन की (परि चनिष्कदत्) घोषणा करे ।

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अनपस्फुरः) न बिदकने वाली (सु-दुघाः) सुख से दोहन करने योग्य (ऐन्यः) शुद्ध श्वेत वर्ण की गौएं (आपतन्ति) आ जाती है तब (इन्द्राय सोम पातवे) स्वामी के निमित्त दुग्धपान के लिये (अप-स्फुरं) उद्वेगरहित शान्त गौ को ले लिया जाता है उसी प्रकार (एन्य.) शुद्ध वर्ण की, शुद्ध चरित्र वाली प्रजाएं (यत्) जो (अनप-स्फुर·) अ-भ्रष्टमार्ग वाली उत्पथ मे न जाने वाली और (सु-दुघाः) धनादि से खूब पूर्ण, और राजा को भी धनादि से पूर्ण करने वाली हों । उनमें से भी (इन्द्राय सोमं पातवे) परमैश्वर्यवान् राजा को ऐश्वर्य उपभोग करने या राजा के ऐश्वर्य की रक्षा के लिये, (अप स्फुरं) उद्वेग, अराजकतादि से रहित, प्रजा को (गृभायत) वश करो । अथवा (अपस्फुरं) कुमार्ग मे जाने वाले को (गृभायत) पकड़ो और कैद में धर दो । इति षष्ठो वर्गः ॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ११

भा०—(इन्द्र· अपात्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष प्रजा की रक्षा करे, (अग्नि· अपात्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष भी प्रजा की रक्षा करे । (विश्वे देवाः) सब उत्तम विद्वान् जन (अमत्सत) खूब तृप्त, सन्तुष्ट होकर रहें, उनको दारिद्र्य न सतावे । (इह वरुण· इत् क्षयत्) यहां इस

राष्ट्र में वरुण, सबको वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष ही निवास करे वा (क्षयत्) वह सम्पत्ति का स्वामी हो। (तम्) उस की (आपः) आप्त प्रजाएं भी (वत्सं संशिश्वरीः इव) बछड़े को उत्तम शिशुओं वाली गौओं के समान, प्रेम से युक्त प्रजाएं, (संशिश्वरीः) शिशुवत् शरण में प्राप्त होकर (वत्सं) सबको बसाने वा रक्षा करने में समर्थ वा (वत्सं) अभिवादन योग्य पुरुष को पाकर (अभि अनूषत) उसकी साक्षात् स्तुति किया करे।

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य आचार्य! (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदं अनु) तालु के प्रति (सप्त) सातों छन्द (सिन्धवः) बहते नदधारों के समान (सुषिराम् सूर्म्यं) छिद्रवती लोह की नली में जल धारा के समान बहती है वह तू (सुदेवः असि) उत्तम ज्ञानदाता, ज्ञान का प्रकाशक है। (२) हे राजन्! तू उत्तम तेजस्वी है। (ते) तेरे (काकुदं अनु) सर्वश्रेष्ठ ककुत्वत्, सर्वोपरि पद के अनुकूल (सप्त सिन्धवः) सातों प्रकार की प्रकृतियां समुद्र के प्रति नदियों के तुल्य वा तालु के प्रति सात प्राणों के तुल्य (अनु क्षरन्ति) दिनों दिन बहती आवें, स्वभावतः तेरा अनुसरण करें।

यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (दाशुषे) दाता के लाभार्थ (सुयुक्तान्) उत्तम पदों पर नियुक्त (व्यतान्) विशेष वेगवान्, बल युक्त साधनों वाले जनों को (अफाणयत्) संचालित करता है, (तद् इत) वही (तक्वः) शत्रुहन्ता, (नेता) नायक, (वपुः) शत्रु को उखाड़ने में समर्थ है (यः) जो (उपमा) सर्वोपमान योग्य आदर्श होकर (अमुच्यत) बन्धन से मुक्त होता और अन्य को भी मुक्त करता है। इसी प्रकार वह

प्रभु उत्तम योगिजनों को उपदेश करता और (वपुः अमुच्यत) देह-बन्धन से मुक्त करता है ।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥

भा०—(इन्द्रः) सत्यदर्शी, तेजस्वी पुरुष वीर और विद्वान् (विश्वाः द्विषः अति) समस्त द्वेषो और द्वेषियो को अतिक्रमण कर, उनसे बढ़कर (शक्रः) शक्तिशाली, सर्ववशकारी होकर (अति इत् उ) अति अधिक ही (ओहते) बढ़ जाता है । जिस प्रकार (पच्यमानं ओदनं) पकते हुए चावल को कान्तियुक्त अग्नि (भिनत्) भेद देता है, उसका दाना दाना अलग कर देता है और जिस प्रकार (कनीनः) कान्ति-युक्त सूर्य (पच्यमानं ओदनं) प्रकट हुए मेघ को (भिनत्) तेज से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार गुरु से तत्वदर्शी विद्वान् (कनीन.) तेजस्वी कनिष्ठ शिष्य होकर (गिरा) वाणी द्वारा (पच्यमानं) प्रकट किये जाते हुए (ओदनं) प्रजापति के (परः) परम स्वरूप को (भिनत्) और अधिक खोले, उसको लक्ष्यवत् भेदे । पच्यमानं,—पचि विस्तारवचने ।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथं ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥

भा०—(अर्भक कुमारकः न) जिस प्रकार छोटे शरीर का भी युवराज (नवं रथ अधि तिष्ठत) नये रथ पर बैठ कर (मात्रे पित्रे) माता पिता की प्रसन्नता के लिये (विभु-क्रतुम्) बडे सामर्थ्यवान् (महिष मृग) बडे अश्वोको (पक्षत्) वश कर लेता है । उसी प्रकार राजा भी (नव रथं अधितिष्ठिन्) नये रथवत् नये रमणीय ऐश्वर्ययुक्त राज्य को अधिष्ठित होता हुआ (विभु-क्रतुम्) अधिक प्रज्ञावान् (महिष) पूज्य (मृग) शुद्ध चारित्रवान् पुरुष को (मात्रे पित्रे) माता पिता के योग्य पद के निमित्त अपने ऊपर (पक्षत्) स्वीकार करे । इसी प्रकार यह जीव भी

इस देह रूप रथ को प्राप्त कर महाप्रज्ञ एवं (महिष) बड़े ऐश्वर्य के दाता (मृगं) शुद्ध स्वरूप सर्वशोधक परम पावन प्रभु को माता पिता रूप से स्वीकार करे वह उसे 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' समझे। (२) (सः) वह आचार्य शिष्य के प्रति महाप्रज्ञ प्रभु को ही माता पिता होने योग्य महान् ऐश्वर्यप्रद सब से मृग्य, शुद्ध (पक्षत्) बतलावे। उसका विस्तार से उपदेश करे। अथवा वह शिष्य के प्रति भी (अर्भकः = अर्हकः) आदर भाव से यथा योग्य वर्तनेवाला हो। (न कुमारकः) कुत्सित रूप से उसको मारने वाला न हो। अथवा नञ्थार्थः। वह उसका योग्य आदर्त्ता और कुत्सित चेष्टाओं पर दण्ड देने और कुत्सित भावों को नाश करने वाला हो।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् १६

भा०—हे (सु-शिप्र) उत्तम मुखनासिका वा हनू वाले! हे उत्तम मुकुट धारिन्! सुशोभन रूप! हे (दम्पते) जाया के पालक गृहपते! तू (हिरण्ययम्) हितकारी रमण योग्य (रथं) रथवत् गृहस्थ रथ पर (आतिष्ठ तु) मुख्य होकर विराज। पत्नी कहती है—(अध) और हम दोनों (द्युक्षं) अति दीप्तियुक्त (सहस्र-पादं) दृढ चरण या आधार वाले (अरुषं) रोष से रहित (स्वस्ति-गाम्) कुशल, सुख-शान्तिदायक वाणी से युक्त, (अनेहसम्) पाप चेष्टा से रहित, रथवत् गृह, या उत्तम व्यवहार को (सचेवहि) धारण करें। यहां गृहपति, जाया का पति और 'दम' अर्थात् गृह का पति होने से 'दम्पति' है। और पक्षान्तर में—राजा भी राष्ट्र के दमन शासन का पालक होने से 'दम्पति' है।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार राजा के (सु-धितम्) उत्तम रीति से धारित

(अर्थं) अभिप्राय या ऐश्वर्य को (एतवे) प्राप्त करने के लिये (दावने) दान देने के लिये (आवर्तयन्ति) पुनः २ आपस मे लेते देते है । और इस प्रकार (नमस्विनः) अन्नादिवान् प्रजाजन (स्वराजम्) अर्थ धनादि से प्रकाशित धन के स्वामी राजा की (उपासते) उपासना करते है । उसी प्रकार (अस्य सुधितं अर्थं एतवे दावने) इस प्रभु के सुष्ठु धारित अभिप्राय का जानने और अन्य को उपदेशदान द्वारा जनाने के लिये भी (यत्) जो उसका (आवर्तयन्ति) पुनः अभ्यास करते है वे (घ) निश्चय से (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) अति विनीत होकर (स्वराजम् उप आसते) स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर की उपासना करते है ।

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१८॥७॥५॥

भा०—जिस प्रकार(प्रिय-मेधास' हित-प्रयसः वृक्तवर्हिषः जनाः पूर्वाम् प्रयतिं अनु आशत) अन्न के प्रियजन अपने गृह मे अन्नसंग्रह और क्षेत्र मे अन्नवपन कर वाद धान्य काट कर अपने पहले किये प्रयत्न के अनुसार ही उसका उपभोग करते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इन प्रजा जनो के जीवों में से (प्रिय-मेधासः) यज्ञ के प्रिय वा ज्ञान और सत्संग के प्रिय जन (प्रत्नस्य ओकसः अनु) अपने पुराने गृह, देह के अनुरूप, (हित-प्रयसः) उत्तम २ प्रयास करके वा उत्तम २ कर्मफल में वद्ध होकर (वृक्त-वर्हिषः) धान्यों वा कुशाओं के तुल्य अपने कर्म फलों को कृषिवत् काट कर, (पूर्वाम् प्रयतिम्अनु) पहले किये प्रयत्न के अनुरूप ही (आशत) कर्मफल, सुख दु'खादि का भोग करते है । इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[७०]

पुरुन्मा ऋषि. ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१ पादनिचृद् बृहती । ५, ७ विराड् बृहती । ३ निचृद् बृहती । ८, १० आर्ची स्वराड् बृहती । १२ आर्ची बृहती । ६, ११ बृहती । २, ६ निचृत् पङ्क्तिः । ४ पङ्क्तिः । १३ उष्णिक् । १५ निचृदुष्णिक् । १४ भुरिगनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

भा०—(यः चर्षणीनां राजा) जो सब मनुष्यों में से सूर्यवत् दीप्तिमान् (रथेभिः याता) रथों से आक्रमण या प्रयाण करने हारा, (अध्रिगुः) जिसके आगे बढ़ने को कोई न रोक सके, ऐसा सर्वोपरि नायक, (यः विश्वासां पृतनानां) जो समस्त सेनाओ का नाश करने वाला, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों को दण्ड देने वाला है मैं (गृणे) उसकी स्तुति करूं ।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरु-हन्मन्) बहुत से शत्रुओ को नाश करने मे समर्थ ! तू (अवसे) रक्षा करने के लिये (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यपद को (शुम्भ) सुशोभित कर (यस्य) जिसके (वि-धर्तरि) विशेष रूप से धारण करने वाले के अधीन (द्विता) दो स्वरूप है, एक भीम जो (हस्ताय) शत्रुओं के हनन करने के लिये (वज्रः) बलवीर्य को (प्रतिधायि) धारण करता है और दूसरा कान्त जो (महः दर्शतः) बड़ा दर्शनीय और (दिवे सूर्यः न) आकाश में सूर्यवत् जो पृथिवी पर तेज प्रदान करने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी है ।

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस को (कर्मणा) कर्म द्वारा (नकिः नशत्)कोई प्राप्त नहीं कर सकता (यः सदावृधम्) जो सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से (विश्व गूर्त्तम्) सर्व स्तुत्य (ऋभ्वसम्) महान्, (अधृष्टं) अपराजित और (धृष्णु- ओजसम्) पराजयकारी बल से सम्पन्न (चकार) करता है वही उस तक पहुचता है ।

अषा॑ह्ळमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं यस्मि॑न्म॒हीरु॑रु॒ज्रय॑: ।
सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒र्द्याव॒: क्षामो॑ अनोनवुः ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् जायमाने) जिसके प्रादुर्भाव होते हुए (उरुज्रयः) अति वेग से युक्त, (महीः) बहुत सी भूवासिनी प्रजाएं वा सेनायें, (धेनवः) वत्स के प्रति गौवों के समान स्नेहयुक्त होकर, वा वाणियां उस (अषाढं) अपराजित, (उग्रं) बलवान् (पृतनासु सासहिं) संग्रामों में विजयकारी की (सं अनोनवु) मिलकर स्तुति करती है, (द्यावः क्षामः) तेजस्वी सेनाएं वा कामनावान् प्रजाएं भी उसकी (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती है ।

यद्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥५॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते शतं द्यावः) तेरी सैकड़ों, बहुत सी तेजस्विनी सेनाएं हों, (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियें हों, हे (वज्रिन्) बलवीर्यशालिन् ! (त्वा) तुझे (सहस्रं सूर्याः) हज़ारों सूर्य भी (न अनु स्युः) तेरे बराबर नहीं, (जातं त्वा अनु रोदसी) उत्पन्न या प्रकट हुए तेरे समान दुष्टों को रुलाने वाली सेना भी (न अष्ट) तुझे नहीं व्याप सकती, तेरा स्थान नहीं पा सकती । (२) सैकड़ों सूर्य पृथिवी आदि लोक भी परमेश्वर के बराबर नहीं, न भूमि औरआकाश उसको व्याप सकते हैं । इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न्विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न्गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभि॑: ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन् ! प्रजा पर सुखों और शत्रु पर शस्त्रअस्त्रों की वर्षा करने हारे ! हे (शविष्ठ) सबसे अधिक शक्तिशालिन् ! तू (महिना शवसा) अपने महान् बल से (विश्वा) समस्त (वृष्णा) बलयुक्त कार्यों और सैन्यों को (आ पप्राथ) विस्तारित कर । और हे

(वज्रिन्) बलशालिन् ! हे (मघवन्) धनशालिन् ! (चित्राभिः ऊतिभिः) नाना अद्भुत रक्षाकारिणी क्रियाओं, सेनाओं से (गोमति व्रजे) भूमियों से युक्त कार्य या समूह में (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर।

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥

भा०—हे (दीर्घायो) आयुष्मन् ! दीर्घ जीवन वाले (अदेवः मर्त्यः) अदानशील वा दाता से रहित मनुष्य (सीम्) सब प्रकार की (इषं न आपत्) अन्न और शक्ति को नहीं प्राप्त करता। (यः) जो (एतग्वा चित्) शुद्ध श्वेत वर्ण के वा शुद्ध चरित्रयुक्त स्त्री पुरुषों को भी (एतशा युयोजते) उत्तम दो अश्वों के समान सन्मार्ग में चलाता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष (हरी युयोजते) समस्त स्त्री पुरुषों को वश करता है।

तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम्।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (गाधेषु) प्रतिष्ठा के कर्मों में (य आरणेषु) सब प्रकार के आनन्द प्रद अवसरों में (हव्य.) स्तुति करने योग्य है और जो (वाजेषु हव्यः अस्ति) संग्रामों में स्तुति करने योग्य है (तम्) उस (महः महाय्यं) महान् पूज्य (दानाय सक्षणिम्) दान प्राप्त करने के लिये प्राप्त करने योग्य, वा शत्रु के विनाशार्थ शक्तिशाली को (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' जानो।

उदु षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे।
उदु षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) माता पितावत् प्रजा को बसाने हारे ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (महे राधसे) बड़े भारी धन के लिये (न उत् सु मृशस्व उ) हमें उत्तम रीति से प्राप्त कर। हमें उन्नत कर और (मह्यै

मघत्तये) बहुत ऐश्वर्य देने के लिये (उत् उ सु) हमे उठा और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (महे श्रवसे उत्) बड़े यश के लिये हमें उठा।

त्वं न॑ इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृम्पसि।
मध्ये॑ वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं॑ शिश्नथो हथैः ॥१०॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्त ! (त्वं) तू (न) हमारे (ऋत-युः) व्यवहार ज्ञान, यज्ञादि को चाहने वाला है। तू (त्वा-निदः) अपने निन्दकों को (नितृम्पसि) विनष्ट करता है। हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (ऊर्वोः) अपनी जंघाओ पर हमे, बालक को पिता के तुल्य अथवा (ऊर्वोः) अपनी बड़ी विशाल बाहुओं के आश्रय पर (वसिष्व) वसा, और (दासं) विनाशक दुष्ट को (हथैः) शस्त्रों से (नि शिश्नथः) शिथिल कर। इति नवमो वर्गः ॥

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥

भा०—(सखा) प्रजा का मित्र (पर्वतः) पालनकारक साधनों से सम्पन्न होकर, (पर्वतः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और पर्वत के समान अचल होकर, (सु-घ्नाय) अच्छी प्रकार दण्ड देने के लिये (दस्युं) दुष्ट पुरुष को (स्वः) सुख से (अव दुधुवीत) कंपा कर गिरा दे। इसी प्रकार वह (अन्य-व्रतम्) शत्रु के समान कर्म करने वाले (अमानुषम्) मनुष्यों से भिन्न, उनके शत्रु, पशुवत् दुराचारी और निर्दय, (अयज्वानं) अदानशील, (अदेवयुम्) दाता, विद्वानों वा उत्तम गुणों को न चाहने वाले को भी (अव दुधुवीत) कंपा कर नीचे गिरा दे, उसे दण्डित करे।

त्वं न॑ इन्द्रासां हस्ते॑ शविष्ठ दावने॑।
धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (त्वं) तू (नः) हमे (दावने) देने के लिये (अस्मयुः) हमारा हितैषी होकर (आसां) इन (धानानां)

धाना अर्थात् लाजाओं के समान उज्ज्वल, एवं पुष्टिकारक गौवों और समृद्धियों को (संगृभाय) संग्रह कर। अच्छी प्रकार अपने (हस्ते संगृभाय) हाथ में, वश में रख, और (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ, हमारा स्वामी होकर तू उनको (द्विः संगृभाय) दो बार या दुगुना भी कर संग्रह कर। राजा प्रजाओं से धनादि बरावर संग्रह करे और आवश्यकता पर प्रजा के हितार्थ ही दुगुना भी ले लेवे।

सखा॑यः क्रतु॑मिच्छत क॒था रा॑धाम श॒रस्य॑ ।
उप॑स्तुतिं भो॒जः सू॒रियो॒ अह्र॑यः ॥ १३ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगणो ! आप लोग (क्रतुम् इच्छत) ज्ञान और कर्म की इच्छा करो और हम लोग (शरस्य) बाणवत् शत्रुनाशकारी वीर पुरुष या बल को (कथा) किसी प्रकार से भी (राधाम) अपने वश करें। और (यः) जो (भोजः) सबका पालक, रक्षक, भोक्ता, (सूरिः) विद्वान् (अह्रयः) अहीन, अपराजित है उसकी (उप-स्तुतिम् इच्छत) स्तुति करना चाहो।

भूरि॑भिः समह॒ ऋषि॑भिर्ब॒र्हिष्म॑द्भिः स्तविष्यसे ।
यदि॒त्थमेक॑मेक॒मिच्छर॑ व॒त्सान्प॑रा॒ दद॑ः ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन् ! हे (समह) पूज्य ! तू (बर्हिष्मद्भिः) आसनों, यज्ञों वा धन धान्यादि से सम्पन्न, (भूरिभिः) इस लोक वा प्रजा से युक्त बहुत से (ऋषिभिः) विद्वान् पुरुषों से भी तू (स्तविष्यसे) स्तुति किया जाता है। (यद्) जो तू (इत्थम्) इस प्रकार (एकम् एकम्) एक २ करके (वत्सान्) वत्सों के समान इस लोक में बसे वा स्तुतिकारी नम्रजनों को (परा ददः) युक्त करे।

क॒र्ण॒गृह्या॑ म॒घवा॑ शौरदे॒व्यो व॒त्सं न॑स्त्रि॒भ्य आन॑यत् ।
अ॒जां सू॒रिर्न धात॑वे ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(सूरिः) विद्वान् पुरुष (धातवे) दुग्धपान कराने के

लिये जिस प्रकार (अजां कर्णगृह्य) बकरी के कान पकड़ कर (वत्सं प्रति आनयत्) बछड़े के पास लाता वा बच्चे को कान पकड़ कर दूध पिलाने के लिये बकरी के पास ले जाता है उसी प्रकार (शौर-देव्यः) शूर और विजीगीषु (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् राजा (सूरिः) उत्तम विद्वान् के समान (नः) हमारे (वत्सं) राष्ट्र मे वसे प्रजाजन को और (अजां) शत्रु को उखाड़ देने वाली सेना को भी (कर्णगृह्य) कान से पकड़ कर अर्थात् कर्ण से श्रवण करने योग्य उपदेश, आज्ञा-वचन सुनाकर (त्रिभ्यः आनयत्) तीनों प्रकार के कष्टों से परे रक्खे। वा (त्रिभ्यः) तीनों प्रकार के सुखों के लिये सन्मार्ग से ले जावे। इति दशमो वर्गः ॥

[७१]

सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतर ऋषि· ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् गायत्री। २, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री। ३, ५ गायत्री। १०, १३ निचृद् बृहती। १४ विराड् बृहती। १२ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं नो॑ अग्ने म॒होभि॑: पा॒हि विश्व॑स्या॒ अरा॑तेः।
उ॒त द्वि॒षो मर्त्य॑स्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्निवत् अग्रणीनायक ! (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वस्याः अरातेः) सब प्रकार की शत्रु सेना (उत) और (द्विपः मर्त्यस्य) शत्रु मनुष्य से भी (महोभिः) बड़े धनों द्वारा (पाहि रक्षा कर।

न॒हि म॒न्युः पौरु॑षेय॒ ईशे॒ हि व॑: प्रियजात।
त्वमिद॑सि॒ क्षपा॑वान् ॥ २ ॥

भा०—हे (प्रिय-जात) उत्पन्न बालकवत् प्रजाओं को तृप्त करने हारे राजन् ! (व.) तुझ पर (पौरुषेय. मन्युः) मनुष्यों का क्रोध भी

(नहि ईशे) नहीं वश कर सकता । (त्वम् इत् क्षपावान् असि) तू ही शत्रुओं का नाश कर देने वाली भारी सेनादि का स्वामी (असि) है ।

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे ।
रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपाद्) बल को न गिरने देने हारे ! हे (भद्र-शोचे) कल्याणकारी कान्ति वा तेज से सम्पन्न ! (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों द्वारा (विश्व-वारं) सब से वरण करने योग्य (रयिं) धन (देहि) प्रदान कर ।

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (यं दाश्वांसं) जिस दानशील की (त्रायसे) रक्षा करता है (तं मर्तं) उस मनुष्य को (अरातयः) समस्त शत्रु भी (रायः) धन से (नः युवन्त) पृथक् नहीं कर सकते ।

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय ।
स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवन्, तेजस्विन् ! (मेध-सातौ) संग्राम वा यज्ञ में (त्वं) तू (धनाय हिनोपि) धन प्राप्त करने के लिये उत्साहित करता है। (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहकर (गोषु गन्ता) वाणियों मे और भूमियों पर भी वश करने वाला होता है । इत्येकादशो वर्गः ॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६॥

भा—हे (अग्ने) अग्रणीनायक ! (त्वं) तू (पुरु-वीरं) बहुत पुत्रों वा वीरों सहित (रयिं) ऐश्वर्य को (दाशुषे मर्त्ताय) दानशील मनुष्य के हितार्थ प्रदान करता है। वह तू (नः वस्यः अच्छ नय) हम भी उत्तम धन प्रदान कर ।

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्ये मर्ताय॥७॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमे (दुराध्ये मर्त्ताय) दुष्ट चिन्तक मनुष्य के और (अघायते) पापकारी, हिंसक के हाथों (मा परा दाः) मत दे, उसके हितार्थ हमें मत त्याग।

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनाम् ८

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते देवस्य रातिम्) तुझ दाता के दिये दान को (अदेवः माकिः युयोत) अदानशील व्यक्ति हम से पृथक् न करे। (त्वम् वसूनां ईशिषे) तू सब ऐश्वर्यों और मनुष्यों का स्वामी है। अर्थात् हमारे पारस्परिक लेन-देन की न्यायपूर्वक व्यवस्था कर।

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य।
सखे वसो जरितृभ्यः॥ ९॥

भा०—हे (ऊर्जः नपात्) बल को नष्ट न होने देने वाले ! हे (वसो) प्रजा को बसाने हारे ! न्यायकारिन् ! हे (सखे) स्नेहकारिन् ! मित्र ! तू (नः) हममें से (जरितृभ्यः) उत्तम स्तुतिशील विद्वान् जनों को (माहिनस्य वस्वः उपमासि) उत्तम धन, ज्ञान प्रदान कर।

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये॥१०॥१२॥

भा०—(नः गिरः) हमारी वाणियां सदा (शीर-शोचिषं) व्यापक तेज वाले, (दर्शतम्) दर्शनीय को (अच्छ यन्तु) लक्ष्य करके प्रकट हों। और (ऊतये) रक्षा के निमित्त हमारे (यज्ञासः) समस्त यज्ञ, सत्संग, आदर-सत्कार भी (नमसा) विनयपूर्वक (पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त और बहुत से प्रशंसित स्वामी को ही प्राप्त हों। इति द्वादशो वर्गः॥

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि॥११॥

भा०—(सहसः सूनुं) बल के उत्पादक वा प्रेरक, (जात-वेदसं) प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान्, (अग्निं) अग्नि, नायक को मैं (वार्याणां दानाय) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनदान करने के लिये जानूं। (यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों में भी (अमृतः) अमर (भूत्) होता है और (विक्षि) प्रजाओं में (मन्द्रतमः) अति हर्ष युक्त और (होता) ज्ञानादि का दाता होता है इस प्रकार (द्विता) उसके ये दो रूप होते हैं।

अ॒ग्निं वो॑ दे॒व॒य॒ज्यया॒ग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे।
अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से ॥ १२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के प्रति मैं (देव-यज्यया) परमेश्वर की पूजा के रूप में (अग्निं) अग्नि का उपदेश करता हूं। (प्रयति अध्वरे) यज्ञ के प्रवृत्त होने पर भी (अग्निं) अग्नि का आश्रय लो। (धीषु) सब कामों में (प्रथमम्) सर्व प्रथम (अग्निं) इस ज्ञानवान् प्रभु का स्मरण करो। (अर्वति अग्निं) वेगवान् अश्व रथादि के निमित्त भी अग्नि का प्रयोग जानो। (क्षेत्राय साधसे) क्षेत्र अर्थात् देह मे रहने वाले आत्मा की प्राप्ति या ज्ञान करने के लिये भी (अग्निम्) अग्नि को ही दृष्टान्त रूप से जानें।

अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ईशे॒ यो वार्या॑णाम्।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वार्याणाम् ईशे) जो वरण करने योग्य धनों का स्वामी है वह (अग्नि.) तेजस्वी प्रभु (सख्ये) अपने स्नेही मित्र को (इषा ददातु) अन्न दान करे। हम (वसु) सबके भीतर बसे (सन्तं) सत् स्वरूप (तनूपाम्) सब देहों के पालक (अग्निम्) अग्नि, व्यापक प्रभु को (तोके तनये शश्वत् ईमहे) पुत्र पौत्रादि के कल्याणार्थ भी सदा याचना करें।

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥१४॥

भा०—हे (पुरुमीढ) बहुत धनों के दातः ! बहुतों पर वर्षाने हारे ! तू (गाथाभिः) गान योग्य वेद वाणियो द्वारा (शीर-शोचिषम् अग्निम्) व्यापक तेज वाले अग्रणी, नायक, ज्ञानी प्रभु की ही (ईडिष्व) स्तुति कर। (राये) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (श्रुतं) बहुश्रुत विद्वान् अग्नि की (ईडिष्व) स्तुति कर और (नरः) मनुष्यगण भी उसी (अग्नि) तेजस्वी की स्तुति करते है। वह (सुदीतये छर्दिः) उत्तम तेज वाले के लिये भी दीपक के लिये गृह के समान आश्रय है।

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्यग्निं शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भवद्वस्तुर्ऋषूणाम् ॥ १५ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (न. द्वेषः दातवे) अपने द्वेष भावो को दूर करने के लिये (अग्नि गृणीमसि) सर्वव्यापक सर्वज्ञ प्रभु की उपासना करें। और (शंयोः च दातवे) शान्ति और दुःख नाश करने के लिये भी उसी (अग्नि) तेजोमय का ध्यान करे। वह (विश्वासु विक्षु) समस्त विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का आश्रय स्थान और (हव्यः भवत) स्तुत्य है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७२]

हर्यत प्रागाथ ऋषिः। अग्निर्हवींषि वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८—१०, १२, १६ गायत्री। २ पादनिचृद् गायत्री। ४—६, ११, १३—१५, १७ निचृद् गायत्री। ७, १८ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुन. । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् १

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (हविः कृणुध्वम्) हविष् ज्ञान आदि वा सम्पादन अन्न वा साधन करो (अध्वर्युः आगमत्) अध्वर, हिंसा

भाव से रहित यज्ञ का संचालक आवे। और वह (विद्वान्) विद्वान् पुरुष ही (अस्य) इस स्वाध्यायादि यज्ञ के (प्र-शासनं वनते) उत्तम शासन का पद प्राप्त करे।

नि तिग्ममभ्यं१ंशुं सीदद्धोता मनावधि।
जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥

भा०—(तिग्म अंशुं अभि) तीक्ष्ण, व्यापक ज्ञानवान् पुरुष के सम्मुख (होता) ज्ञान के ग्रहण कराने वाला पुरुष (मनौ अधि) मनन शील शिष्य के ऊपर (नि सीदत्) विराजे और वह (अस्य सख्यं जुषाणः) इसके प्रेम भाव को प्राप्त करने वाला हो।

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया।
गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥

भा०—(जने अन्तः) प्रत्येक जन, उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान् (परः) चक्षु से परे (रुद्रं) दुःख में रोने वाले वा रोगादि के नाशक, आघात पीड़ादि के प्रतिबन्धक, अतीन्द्रिय विद्युत् अग्नि या तेजोरूप आत्म-तत्व को भी (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना चाहते हैं। और (ससम्) प्रसुप्त रूप से व्यापकवत् विद्यमान (जिह्वया गृणन्ति) जिह्वा अर्थात् ज्वालावत् विद्युत् की धारा से जैसे अग्नि अर्थात् विद्युत् को ग्रहण करते उसी प्रकार जिह्वा अर्थात् वाणी द्वारा उस चेतन को ग्रहण करते, उसका ज्ञान करते और अन्यों को कराते हैं।

'सस'—स्वपनमेतन्माध्यमिकं ज्योतिरनित्यदर्शनं। नि० ५।१।३॥ वह सुप्तज्योति विद्युत् है जो कभी २ दीपती है। उसको भी उसकी जिह्वा अर्थात् लपकती धार से ही ग्रहण करते हैं, उसको एक नोक पर ले लेते हैं।

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्। दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४॥

भा०—अग्नि, विद्युत् (जामि) अति अधिक (अतीतपे) तप्त होता है और (धनुः) आकाश मे ही (वयोधाः) बल को धारण करता हुआ, (वनम् अरुहत्) जल मे रहता है, वह (दृपदं) मेघ को या शिला को भी (जिह्वया) अपनी जिह्वा, ज्वाला या धारा से ही (अवधीत्) आघात करता है और तोड़ डालता है। इसी प्रकार यह सामान्य अग्नि भी अति तप्त होकर ही (धनुः वयोधा.) अरणी की ओविली मे धनुष् या डोरी द्वारा बल पाकर काष्ठ को पकड लेता है और जिह्वा अर्थात् चिनगारी द्वारा शिला पर आघात करता है। वह पत्थर तक को फोड़ देता है। इसी प्रकार जब अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (वयोधाः) बल और अपनी पर्याप्त यौवनावस्था को धारण कर (जामि अतीतपे) खूब तप्त होता, तपस्या कर लेता है, बल धारण करता है और धनुष के बल पर (वनम् अरुहत्) सैन्य बल का सर्दार बनता, उस पर शासन करता या ऊचे आसन पर बैठता है, तब वह (जिह्वया) अपनी वाणी के बल से ही (दृपदं अवधीत्) पाषाण के समान चकनाचूर कर देने वाले पर-पक्ष के सैन्य वा क्षत्रियगण को भी (अवधीत्) नाश कर सकता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते।
वेति स्तोतव अम्व्यम् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वत्सः) बछड़ा (रुशन् चरन्) उछलता कूदता हुआ अन्य (निदातारं न विन्दते) किसी रोकने वाले को न पावे उसी प्रकार यह अग्नि, विद्युत् जब (इह) इस अन्तरिक्ष मे (रुशन्) श्वेत वर्ण मे चमकता हुआ, (चरन्) विचरता है, किसी (नि दातारं) बाधक या पकड़ लेने वाले पदार्थ को नही प्राप्त करता तबतक वह (अम्व्यम्) जल मे उत्पन्न वा जल के उत्पादक प्रकाश को (स्तोतवे) अपने वर्णन करने के लिये (वेति) प्रकट करता है वा (अम्व्यम्) शब्दमयी ध्वनि, को (वेति) प्रकट करता है। उसी प्रकार यह (वत्स) स्तुति योग्य नायक

(रुशन् चरति) तेजस्वी, शुद्ध चरित्र होकर विचरता है तब किसी बाधक को नहीं पाता, स्तुति करने के लिये (अम्ब्यम्) हर्ष ध्वनिकारी प्रजाजन को प्राप्त करता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥६॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य) इस विद्युत् रूप अग्नि को (स्वस्य अश्ववत्) रथ के घोड़े के समान (यत्) जो (महत् योजनं) बड़ा बलपूर्वक जोड़ने का कार्य है उस को (बृहत् दामा) बड़ा भारी दमन करने वाला विद्वान् पुरुष ही (ददृशे) साक्षात् करता है । उसी प्रकार इस देह-रथ मे आत्मारूप अग्नि के अश्ववत् जुड़ने को भी बड़ा दमनशील तपस्वी ही साक्षात् करता है ।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७॥

भा०—(सप्त) सात मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक का दोहन करते हैं और (द्वा पञ्च) दो पांचों को (सिन्धोः स्वरे तीर्थे अधि) सिन्धु के स्वयं प्रकाशमान तीर्थ अर्थात् मार्ग मे (उप सृजतः) प्रेरित करते है । अर्थात् अध्यात्म मे—प्राण-अपान, ये दोनों पांच ज्ञानेन्द्रियों को (सिन्धु) अर्थात् प्राण या रक्त की नाड़ी के (स्वरे तीर्थे अधि) स्वयं प्रकाशमान मार्ग मेरुदण्ड मे स्थित होकर प्रेरित करते है । वे सातों मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक आत्मा या चेतनारूप गौ या वाणी को दोहन करते है, उससे बल प्राप्त करते हैं ।

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् ।
खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत (त्रिवृता खेदया) तीन प्रकार के व्यापार वाली दीप्ति से (दशभिः) दशों दिशो से आघात कर (दिवः कोशं आच्यावयति) अन्तरिक्षस्थ कोश या मेघ से जल पातन कराता है उसी प्रकार (इन्द्रः) यह आत्मा या मुख्य प्राण (त्रि-

स्वतः कोशम्) विविध वसु, प्राणो वाले इस देहरूप अन्नमय कोश को (दिवः) अपनी कामना या व्यवहार. दीप्ति की (त्रिवृता) त्रिगुणात्मक (खेदया) रज्जु सदृश प्रेरणा से (अचुच्यवीत्) चलाता है ।

परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी। मध्वा होतारो अञ्जते ९

भा०—यह (त्रि-धातुः) वात, पित्त, कफ़ तीनों धातुओं से धारित यह देह (परि-अध्वरं) अविनाशी आत्मा के बलपर, (नवीयसी) सदा नयी, शक्ति से (जूर्णिः) सदा वेगयुक्त होकर (परि एति) सर्वत्र गति करता है और (होतारः) अन्न को ग्रहण करने वाले देहधारी उस शक्ति को (मध्वा) अन्न जल द्वारा (अञ्जते) प्राप्त करते है ।

सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनवारमक्षितम् ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार (उच्चा-चक्रम्) जिस के ऊपर चक्र लगा हो और (परिज्मानम्) चारों ओर भूमि हो और (नीचीनवारम्) नीचे पानी के द्वार हों ऐसे (अक्षितम्) अक्षय जल के भण्डार रूप (अवतम्) कूप को (नमसा) अन्न के हेतु वा (नमसा) जल से (सिञ्चन्ति) सींचते है, वा उस कूप से 'अक्षित' अन्न को सींचते है, उससे खेत की सिचाई करते है । उसी प्रकार यह देह आत्मा की रक्षा के लिये होने से 'अवत' है, उसका व्यवस्थापक यन्त्र शिर सर्वोपरि लगा है इससे वह 'उच्चाचक्र' है, चारो ओर उसकी गति होने से 'परिज्मा' है । गुदा, मूत्रादि नीचे के द्वार है, वह हृष्ट-पुष्ट 'अक्षित' है उसको लोग (नमसा) अन्न से सींचते और बढ़ाते है । 'नमः' इत्युदक नाम । इसी प्रकार अभिषेक्ता जन उच्चचक्र, रथचक्र, वा सैन्य चक्र के स्वामी, (परिज्मानं) सर्वतो बलवान् (अवत) रक्षक राजा का अभिषेक करते हैं। वह (अक्षितं) अक्षीण और शत्रुवारक सैन्य को अपने नीचे रखता है ।

अभ्यारमिदद्र॑यो निषि॑क्तं पुष्क॑रे मधु॑ । अवतस्य॑ विसर्ज॑ने ॥११॥

भा०—(पुष्करे) अन्तरिक्ष मे (अद्रयः) मेघगण (निषिक्तं) निषेचित (मधु) जल को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अवतस्य) कूप के (विसर्जने) विशेष स्थान मे जल को प्रदान करते है उसी प्रकार (पुष्करे) पुष्टि से युक्त राष्ट्र मे (नि-सिक्तम्) खूब परिवृद्ध (मधु) मधुमय ऐश्वर्य को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अद्रयः) मेघवत् बलवान् पुरुष (अवतस्य) पालक राजा के (विसर्जने) विशेष निर्माण मे प्रयत्न करें।

गाव॒ उपा॑वतावतं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ ।
उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ १२ ॥

भा०—हे (गावः) वाणियो ! वा हे पशु, भूमि आदि सम्पदा वा उनमें वसी प्रजाओ ! आप लोग (अवतं उप अवत) रक्षक के समीप उसकी शरण में आवो । (यज्ञस्य) सत्संग और आदर-सत्कार के योग्य पुरुष को ये (मही) पूज्य आकाश और भूमि वा शास्य शासक वर्ग दोनों (रप्सुदा) उत्तम यश, बल देने वाले हो । इस पालक पुरुष के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण के अलकारों से व हित रमणीय उपदेशों से सुशोभित हों ।

आ सु॒ते सि॑ञ्चत॒ श्रियं॒ रोद॑स्योरभि॒श्रिय॑म् ।
र॒सा द॑धीत वृष॒भम् ॥ १३ ॥

भा०—(रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच (अभि-श्रियं) सर्वतः कान्तिमान्, आश्रयणीय सूर्य के समान शास्य-शासक वर्गों या स्वपक्ष परपक्ष दोनों सैन्यदलों के बीच मे विशेष शोभा, लक्ष्मी के धारक या आश्रय लेने योग्य पुरुष को (सुते) अभिषेक योग्य पद या ऐश्वर्य पर (सिञ्चत) अभिषिक्त करे । (रसा) पृथिवी वा बलवती सेना (वृषभं दधीत) बलवान् पुरुष को अपने मे धारण करे । इसी प्रकार भूमि, आकाश के

वीच कान्तिमान् अग्नि को घृतों से सेचन करो, जिससे यह रसा, पृथिवी वर्षणशील मेघ को धारण कर।

ते जानत स्वमोक्यं१सं वत्सासो न मातृभिः।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥

भा०—(वत्सासः मातृभिः न) बछड़े जिस प्रकार माताओं से (मिथः नसन्त) परस्पर मिल जाते है उसी प्रकार (ते) वे भी (वत्सास) राष्ट्र मे बसने वाले प्रजागण (स्वम् ओक्यं जानते) अपने देश या स्थान के वासी को जाना करें और वे (जामिभिः) अपने बन्धु जनों के साथ (मिथः नसन्त) परस्पर मिलकर रहे, परस्पर प्रेम से मिला करें।

उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—(स्रक्वेषु बप्सतः) देहावयवों के घटक पदार्थों पर भोजन करने वाले पुरुष के जिस प्रकार वीर्यांश (दिवि धरुणं कृण्वते) मूर्धा-स्थल मे या मूलाग मे स्थिति करते है और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) आत्मा या प्राण और अग्नि के आधार पर अन्न और शक्ति निर्भर है उसी प्रकार पात्रों द्वारा घृतादि को खाते हुए अग्नि से दग्ध घृत चरु के अंश (दिवि) आकाश में जाते और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) सूर्य और अग्नि के आश्रय ही यह पृथिवी का अन्न और यह प्रकाश होता है। (२) इसी प्रकार राजा के उपभोग करते हुए ही सब जन (दिवि) भूमि पर सुख से आश्रय लेते है। इस-लिये (स्व. नम.) समस्त सुख और भूमि का बल, वा शासक बल, और सैन्यादि सब (इन्द्रे) तेजस्वी ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता और (अग्ना) अग्नि-वत् तेजस्वी नायक पर ही निर्भर है। इति षोडशो वर्गः ॥

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः।
सूर्यस्य सप्तरश्मिभिः ॥ १६ ॥

भा०—(अरिः) वेग से चलने वाला वायु जिस प्रकार (सूर्यस्य

सप्त रश्मिभिः) सूर्य के वेग से आने वाले सात किरणों द्वारा (पिप्युषीम्)
पुष्टिकारक (इषम्) अन्न और (ऊर्जं) रस को (सप्तपदीम्) सर्पणशील
चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ को (अधुक्षत्) दोहता है। इसी
प्रकार (अरिः) स्वामी, (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) तेजस्वी व्यवस्थापक
के बनाये सात मर्यादाओं द्वारा, (सप्त पदीम्) सर्पणयुक्त पदों वाली,
अर्थात् जनों से बसी भूमि से (पिप्युषीम् इषं ऊर्जं) पुष्टिकारक अन्न और पुष्ट
बल का (अधुक्षत्) दोहन करता है। प्रजा में अन्न, बल की वृद्धि करता है।

सोम॑स्य मित्रावरुणोदि॑ता सूर॒ आ द॑दे। तदातु॑रस्य भेष॒जम् १७

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, दिन और रात्रि, (उदिता
सूरे॒) सूर्य के उदय होते २ में (सोमस्य आददे) सोम, बलकारक ओषधि
रस का सेवन करूं, (तत् आतुरस्य भेषजम्) वही व्याधिपीड़ित के
सब रोगों का नाश करता है।

उ॒तो न्व॑स्य॒ यत्प॒दं ह॑र्य॒तस्य॑ निधा॒न्य॑म्।
परि॒ द्यां जि॒ह्वया॑तनत् ॥ १८ ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य) इस (हर्यतस्य) कान्तिमान् अग्नि या सूर्य का
(यत् पदं) जो पद या स्थान (नि-धान्यम्) भूमि पर विशेष धन वा
धान्य के योग्य है, उसको अग्नि ही (द्यां परि) समस्त आकाश में अपनी
(जिह्वया) ज्वालामयी जीभ से (परि तनत्) फैलाता है। इसी प्रकार
जो इस राजा का ऐश्वर्ययोग्य पद है उसको यह नायक विद्वान् अपनी
वाणी द्वारा विस्तृत कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७३]

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५,
७, ९—११, १६—१८ गायत्री । ३, ८, १२—१५ निचृद् गायत्री ।
६ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों (ऋता-यते) सत्य ज्ञान और यज्ञ, अन्नादि के इच्छुक के लिये (उद् ईराथाम्) उत्तम उपदेश करो और (रथं युञ्जाथाम्) रथ के समान ही उत्तम उप-देश करो। यज्ञरक्षार्थ रथ और सत्य ज्ञान प्राप्त्यर्थ उपदेश को प्रयोग करो। (वाम्-अवः) आपका रक्षा और ज्ञान (सत् भूतु) सत्, सत्य और (अन्ति) हमारे सदा समीप रहे। रथो रपतेः निरु०।

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥

भा०—(नि-मिषः चित् जवीयसा) पलक की झंपक से भी अधिक वेग वाले (रथेन) रथ से हे (अश्विना) अश्व चालन मे चतुर जनो! आप लोग (आ यातम्) आवो। (वाम् अवः सत् अन्तिभूतु) आप दोनों की सत् रक्षा हमें सदा प्राप्त हो।

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥३॥

भा०—(अत्रये) विविध तापों से निवृत्त होने के लिये हे (अश्विना) अश्वोंवत् इन्द्रियों के संयमी जनो! (घर्मम् हिमेन) दाह को शीतल जल से जिस प्रकार दूर किया जाता है उसी प्रकार सन्तप्त जन को शीतल वचन से (उप स्तृणीतम्) आच्छादित करो, उसका आदर सत्कार करो। (वा अन्ति अवः सद् भूतु) आप लोगों का सत् ज्ञान, व्यवहार हमे भी सदा प्राप्त हो।

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥

भा०—(कुह स्थः) आप कहीं रहो, (कुह जग्मथुः) कहीं भी जाते

हो, (कुह श्येना इव पेतथुः) कहीं भी दो श्येनों के समान वेग से, उत्तम आचार चरित्रवान् होकर गमन करो। (वाम् अन्ति सद् अवः भूतु) तुम दोनों के समीप सदा सत् ज्ञान, रक्षा बल अवश्य हो।

यद॒द्य कर्हि॒ कर्हि॑ चिच्छुश्रू॒यात॑मि॒मं हव॑म् ।

अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यत् अद्य) आज के समान (कर्हि कर्हि चित्) कभी कभी आप दोनों (इमं हवं शुश्रूयातम्) इस आह्वान या उत्तम वचन को भी श्रवण कर लिया करो। (वाम् अन्ति सत् अवः भूतु) आपके पास सदा सत्य ज्ञान, सद् व्यवहार रहे।

अ॒श्विना॑ याम॒हूत॑मा॒ नेदि॑ष्ठं या॒म्याप्य॑म् ।

अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों और मनों को भी वश करने वाले जनो! आप दोनों (याम-हूतमा) उत्तम संयम, परस्पर बन्धन को सर्वोत्तम रीति से स्वीकार करने वाले हो। आप दोनों के (नेदिष्ठं) अति समीपतम (आप्यम्) बन्धुत्व की मैं (यामि) प्रार्थना करता हूं।

अव॑न्त॒मत्र॑ये गृ॒हं कृ॑णु॒तं यु॒वम॑श्विना । अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥७॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (अत्रये) इस राष्ट्र आश्रम या गृह में रहने वाले के लिये या (अत्रये) तीनों दुःखों से निवृत होने के लिये (युवं अवन्तं गृहं कृणुतं) तुम दोनों रक्षा करने वाला घर बनाओ। (वाम् अवः सद् अन्ति भूतु) तुम दोनों के समीप उत्तम रक्षा साधन, ज्ञान, व्यवहार होवे।

वरे॑थे अ॒ग्निमा॒तपो॒ वद॑ते व॒ल्ग्वत्र॑ये । अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥८॥

भा०—आप दोनों (वल्गु वदते) उत्तम वचन बोलने वाले (अत्रये)

तीनों दुःखों से निवृत्त जन के हितार्थ (ऊतयः) सब प्रकार के संताप और अग्नि के समान कष्टदायी कारण को भी (वरेथे) दूर करो। (वाम् सत् अवः अन्ति भूतु) आपका उत्तम ज्ञान और रक्षण सदा हमें प्राप्त हो।

प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥९॥

भा०—(सप्त-वध्रिः) सातों प्राणो को शिथिल या दमन करने वाला विद्वान् (आ-शसा) उत्तम आशा से प्रेरित होकर (अग्नेः धाराम्) विद्वान् पुरुष की वाणी को (प्र अशायत) अच्छी प्रकार हृदय में धारण करे, उसी में नित्य रमण करे। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) आप दोनों की रक्षा और सत्-ज्ञान सदा हमारे समीप रहे।

इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलयुक्त प्राणापान वाले जनो! (इह आगतम्) यहा आवो। (मे इमं हवं शृणुतम्) मेरे इस आमन्त्रण को श्रवण करो। (वाम् अवः अन्ति सत् भूतु) उत्तम ज्ञान आप लोगों का हमारे समीप हो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (इदं वां पुराणवत् किम्) यह आप दोनों का पुरातन, सदातन का वेद ज्ञान किस प्रकार का है? जो (जरतोः इव) वृद्ध वा उपदेष्टा जनों के वचन के समान उपदेश किया जाता है, (अव सत् वाम् अन्ति भूतु) आप लोगों के उत्तम ज्ञान सदा समीप रहे।

समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् परस्पर संयुक्त स्त्री पुरुषो!

(वां सजात्यं समानः) आप दोनों का उत्पत्ति एक समान और (बन्धुः समान) आप दोनों का परस्पर बन्धुत्व भी एक समान हो। (वाम् अवः अन्ति सद् भूतु) तुम दोनों का परस्पर समीपतम, घनिष्ठ प्रीति, तृप्ति, परस्पर वाचन-श्रवण क्रिया, इच्छा, आलिङ्गन, दान-आदानादि सब सद् व्यवहार हों।

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त साधनों और अश्वादि के ज्ञाता जनो! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (रजांसि वि-याति) नाना लोकों को प्राप्त होता है, वही (रोदसि वि-याति) आकाश और पृथिवी पर भी विशेष रूप से जावे। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप दोनों का उत्तम गमनागमन सदा होता रहे।

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १४ ॥

भा०—आप लोग (गव्येभिः अश्व्येभिः सहस्रैः) हजारों गौओं और हजारों अश्वों से (नः आ उप गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप दोनों का उत्तम रक्षण सामर्थ्य सदा हमें प्राप्त होवे।

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम्।
अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १५ ॥

भा०—(सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्येभिः नः मा अति ख्यतम्) हमें सहस्रों, गौवों और अश्वों से वञ्चित मत करो। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप लोगों का उत्तम दान सदा हमें प्राप्त हो।

अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१६

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला की सूर्य कान्ति (ऋतवरी)

तेजस्विनी, (अरुण-प्सुः) अरुण प्रकाश वाली होती और (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है उसी प्रकार (ऋत-वरी) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली (उषाः) कमनीय कान्ति से युक्त (अरुणप्सुः) अरुण वर्ण की सुन्दर रूपवती (अभूत्) हो वह (ज्योतिः अकः) सत्य ज्ञान का प्रकाश करे।

अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव।
अन्ति षद् भूतु वामवः॥ १७॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् ज्ञानी पुरुषो! (परशुमान् इव वृक्षं) परशु वाला पुरुष जिस प्रकार वृक्ष को काटता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रवत् ज्ञान-ज्योति वाला पुरुष (सु वि-चाकशत्) प्रकाशमान हो, अज्ञान-तम को नाश करता है। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) तुम्हारा तेज सदा तुम्हारे वा हमारे समीप हो।

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा।
अन्ति षद् भूतु वामवः॥ १८॥ २०॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु के पराजयकारिन्! जिस प्रकार (कृष्णया बाधितः) रात्रि से बाधित सूर्य अन्धकार को छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार तू भी (कृष्णया) कर्षण या पीड़न करने वाली शत्रु सेना से बाधित होकर (विशा) अपनी प्रजा, शत्रु के दुर्ग में घुस जाने वाली तीक्ष्ण सेना की सहायता से (पुरं न आ रुज) दुर्ग के समान ही शत्रु को छिन्न भिन्न कर। हे (अश्विनौ) सभासेनापतियो! आप दोनो को (अवः) शत्रु हिंसन का उत्तम बल सदा आप के पास प्राप्त रहे।

अव धातुः रक्षण, गति, कान्तिः, प्रीतिः, तृप्तिः, अवगमः, प्रवेशः, श्रवणं, स्वाम्यर्थ, याचनं, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्तिः, आलिंगनं, हिंसा, आदान, भागो, वृद्धिश्चेत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तते। प्रकरणानुसारं स सोऽर्थोऽवबोध्यः। इति विंशो वर्गः॥

[७४]

गोपवन आत्रेय ऋषिः ॥ देवताः—१—१२ अग्निः । १३—१५ श्रुतर्वण आर्दर्यस्य दानस्तुतिः । छन्दः—१, १० निचृदनुष्टुप् । ४, १३—१५ विराडनुष्टुप् । ७ पादनिचृदनुष्टुप् । २, ११ गायत्री । ५, ६, ८, ९, १२ निचृद् गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वाजयन्तः) ज्ञान, बल की कामना से युक्त (पुरु-प्रियम्) आप में से बहुतों को प्रिय, (विशः-विशः अतिथिम्) समस्त प्रजाओं के अतिथि रूप (अग्नि) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष की (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा (शूषस्य) सुख प्राप्ति के लिये सेवा करें । और मैं भी (वः) आप लोगों को (दुर्यं वच स्तुषे) उत्तम वचन का उपदेश करता हूं ।

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

भा०—(हविष्मन्तः जनासः) हविष् उत्तम अन्न वाले मनुष्य जिस प्रकार (सर्पिः-आ सुतिम्) घृत से सेचन योग्य अग्नि को (प्रशस्तिभिः) उत्तम प्रशंसनीय मन्त्रों से (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते अर्थात् उस के गुणों का वर्णन करते है उसी प्रकार (यं) जिस को (मित्रं न) मित्रवत् (सर्पिः-आसुतिम्) घृतयुक्त अन्न द्वारा सत्कार के योग्य जानकर (हविष्मन्तः) अन्न आदि हाथ में लिये जन (प्रशस्तिभि) उत्तम वचनों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं, उस की तुम भी स्तुति और आदर करो ।

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

भा०—(यः) जो अग्नि (देवताति) यज्ञ में (हव्यानि दि

ऐरयत्) हव्य पदार्थों को आकाश की ओर प्रेरित करता है, उस (जात वेदसं) ऐश्वर्य युक्त वा सर्वज्ञ, (पन्यांसं) स्तुतियुक्त अग्नि का गुण वर्णन करूं, उसे व्यवहार मे लाऊं। इसी प्रकार (यः) जो विद्वान् पुरुष (उद्यता हव्यानि) उत्तम रीति से प्राप्त अन्नों और धनों को (दिवि) ज्ञान मार्ग और सत् कार्य मे लगा देता है उस (जात-वेदसं पन्यांसं) ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त, स्तुत्य, व्यवहारकुशल पुरुष को हम प्राप्त करें।

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिस के (अनीके) सैन्य बल में (बृहन्) बड़ा भारी (आर्क्षः) शत्रु को भर्जन या पीड़न करने मे समर्थ (श्रुतर्वा) प्रसिद्ध अश्वारोही जन (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है, उस (ज्येष्ठम्) सब में बड़े (आनवं) मनुष्यों के हितैषी (अग्निम्) तेजस्वी (वृत्रहन्तमं) सबसे अधिक शत्रुहन्ता पुरुष को हम (आ अगन्म) प्राप्त करें।

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम्।
घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(घृताहवनम्) तेज से देदीप्यमान अग्नि के तुल्य, वा जलों द्वारा आदर करने योग्य (ईड्यम्) स्तुति योग्य (तमांसि तिरः दर्शतं) अन्धकारों को दूर करके सत्य ज्ञान को दर्शाने वाले, (अमृतं) अमृत स्वरूप (जात-वेदसम्) ज्ञानमय प्रभु की हम उपासना करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

सबाधो यं जना इमेऽग्निं हव्येभिरीळते जुह्वानासो यतस्रुचः॥६॥

भा०—जिस प्रकार (सबाधः) ऋत्विग् लोग (अग्निम्) अग्नि को (यत-स्रुचः) जुहू आदि साध कर (जुह्वानासः हव्येभिः ईडते) आहुति देते हुए चरु आदि से चाहते है उसी प्रकार (इमे) ये (सबाधाः) पीड़ा युक्त (जनाः) मनुष्य (यत-स्रुचः) प्राणों का निग्रह करके (जुह्वानासः) आत्म समर्पण करते हुए (यम् अग्निम्) जिस तेजोमय

पापनाशक ज्योति की (हव्येभिः) स्तुत्य वचनों से (ईडते) स्तुति करते उसे उत्तम भावों से चाहते है, उसी की उपासना करनी चाहिये ।

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥

भा०—हे (मन्द्र) स्तुत्य, हर्षजनक, आनन्दघन ! हे (सु-जात) सुख-स्वरूप ! हे (सु-क्रतो) शुभ कर्म और प्रज्ञा वाले ! हे (अमूर) अमूढ़ ! अहिंसक ! हे (दस्म) दर्शनीय दुष्टदलन ! हे (अतिथे) व्यापक, अतिथिवत् पूज्य ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तेरी (इयं) यह नव्यसी) अतिस्तुत्य (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत् अधायि) हमारे में स्थिर हो ।

सा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया ।
तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! (ते) तेरी (सा) वह (शं-तमा) शान्तिदायक (चनिष्ठा) उत्तम अन्नवत् भोग्य, सुखदात्री बुद्धि (प्रिया) प्रीतिकर हो । (तया) उससे तू (सु-स्तुत.) उत्तम स्तुतियुक्त होकर (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो और हमें भी बढ़ा ।

सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥९॥

भा०—(सा) वह (द्युम्नैः द्युम्निनी) प्रकाशों से प्रकाश युक्त वाणी (वृत्र-तूर्ये) आवरणकारी अज्ञानान्धकार को नाश करने के निमित्त (बृहत् श्रव.) बड़ा भारी ज्ञान (श्रवसि) कान में (उप दधीत) धारण करावे ।

अश्वमिद् गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यम्पन्यं च कृष्टयः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (कृष्टयः) मनुष्यो ! आप लोग (पन्यम्-पन्यम्) अति- [illegible] कार्य, धन और (श्रवांसि) नाना ज्ञानों और आहार योग्य [illegible]

के समान ही (तूर्वथ) प्राप्त करो और उस को (गाम्) गौ के समान मातृतुल्य (अश्वम् इत्) अश्व के समान बलवान् (रथप्राम्) महारथी के समान प्रभावशाली, (त्वेषं) सूर्य के समान तेजस्वी (इन्द्रं न) ऐश्वर्यवान् विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (सत्पतिं) सज्जनों के पालक प्रभु की उपासना करो। इति द्वाविंशो वर्ग. ॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (पावक) पावक, पवित्र करने हारे! (यं त्वा) जिस तुझ को (गो पवनः) वाणी द्वारा अपने को पवित्र करने वाला और (गोप वनः) वाणी के पालक विद्वानो का सेवन करने वाला, पुरुष (गिरा) वाणी द्वारा (चनिष्ठत्) तेरा अन्न और वचन द्वारा सत्कार करता है। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (अगिरः) तेजस्विन्! (सः) वह तू (हवम् श्रुधि) हमारे आह्वान को श्रवण कर।

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये।
स बोधि वृत्रतूर्ये ॥ १२ ॥

भा०—(यं त्वा) जिस तुझ को (स-बाधः) बाधा या पीड़ा सहित दुःखी जन (वाज-सातये) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ईटते) स्तुति करते है। (सः) वह तू (वृत्र-तूर्ये) विघ्नादि के नाश करने के कार्य मे (बोधि) हमे ज्ञानवान् कर।

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥

भा०—(आर्क्षे) शत्रु को अपने प्रताप से भून देने वाले (श्रुत-र्वणि) प्रसिद्ध अश्व सैन्य के स्वामी (मदच्युति) शत्रु के मद को दूर करने मे समर्थ वीर पुरुषो के अधीन (स्तुकाविना) वालों की ग्रन्थि, फुन्दों वाले (चतुर्णाम्) चारो वर्णों वा चार घोड़ों के तुल्य या सेना के चारों अगों

के वीरों के (मृक्षा) अति दीप्त, चमचमाते (शीर्षा) शिर वा प्रमुख नायक जन (शर्धांसि इव) मानो उनके मुख्य बल है। अर्थात् वीरों के शिरों के वाल और मूंछ, दाढ़ी आदि वीरत्व द्योतक चिन्ह है, मानो वे ही उनके वल है, वे वालों से सिंहों के समान भयानक प्रतीत होते है। केशान् शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि। यजु० १९।१२॥ उनको (अहं) मै (हुवानः) अन्न देने वा स्वीकार करने वाला होऊं। (२) इसी प्रकार (आर्क्षे = ऋचः सनोतिइति ऋक्षः स्वार्थेऽण्) विद्वान् वेदज्ञ (श्रुतर्वणि) विश्रुत, विद्वान् शिष्यो वाले (मद-च्युति) हर्षदायक गुरु के अधीन (स्तुकाविनां) बालों के गुच्छो वाले (चतुर्णाम्) चारों वर्णों के विद्यार्थियो के (मृक्षा) छुरे से मुंडे हुए नाना (शीर्षा) शिर अर्थात् शिरों वाले अनेक शिष्य गण उन के (शर्धांसि इव) सेना या फौज के समान हों। उनको मै (हुवानः) अन्न भिक्षादि देने हारा होऊं। विद्वान् के अधीन सैंकड़ो शिष्य उसकी सेना के समान है। जैसे धौम्य के पांच सो शिष्य थे। राजा आदि उन को पालें।

'वृक्षा शीर्षा' इति सायणाभिमतः पाठः।

मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥ १४ ॥

भा०—(शविष्ठस्य) अति बलशाली, सेनापति के (चत्वारः) चार (द्रवित्नवः) वेगवान् (आशवः) शीघ्रगामी, अश्वों के सामने वेग से आक्रमण करने वाले, (सुरथासः) उत्तम महारथी लोग (तुग्र्यम् वय न) शत्रुहिंसक बलवान् पुरुष को वेगवान् अश्वों के समान (प्रयः अभि वक्षन्) श्रेष्ठ यानवत् धारण करते हैं।

सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम्।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (महेनदि) महानदी के समान बड़ा भारी शब्द करने

वाली ! हे (परुष्णि) पोरु पोरु अर्थात् छोटी २ टुकड़ियों से बनी, वा पर्व २ पर उष्ण अर्थात् शत्रु को दग्ध करने वाली, तेजस्विनी वा कुटिलगामिनी सेने ! (त्वा) तुझ को मैं (सत्यम् इत्) सत्य ही (अव देदिशम्) कहता हूँ। हे (आपः) आप्त जनो, प्राप्त प्रजाओ ! सुनो (शविष्ठात्) अति बलशाली से दूसरा कोई (मर्त्यः) मनुष्य (अश्वदातरः न ईम् अस्ति) अश्व सैन्य को अन्न वस्त्र भृति आदि देने वा पालन करने वाला नहीं है। बलिष्ठ राजा ही सब से बड़ा अश्वादि सैन्य का पालक होता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७५]

विरूप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, ९, ११ निचृद् गायत्री । २, ३, १५ विराड् गायत्री । ८ आर्ची स्वराड् गायत्री । षाडशर्चं सूक्तम् ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥

भा०—(रथीः इव अश्वान्) रथी जिस प्रकार रथ में अश्वों को जोड़ता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (देव-हूतमान् युक्ष्व) शुभ गुणों को उत्तम रीति से धारण करनेवाले विद्वान् पुरुषों को, इन्द्रियों का साधकवत्, राष्ट्र में उचित पद पर नियुक्त कर। और तू (होता) सब को भृति-वेतन आदि देने वाला (पूर्व्यः) सब में पूर्ण, सब से मुख्य होकर विराज।

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः ।
श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानदात ! दानशील ! हे तेजस्विन् ! तू (विदुस्तर) सब से उत्तम विद्वान् होकर (देवान् नः) विद्या की कामना करने वाले हम लोगों को (अच्छ वोच) अभिमुख उपदेश कर। (उत)

और (विश्वा वार्या श्रत् कृधि) समस्त वरण करने योग्य उत्तम ज्ञानों को सत्य रूप मे प्रकट कर।

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत। ऋतावा यज्ञियो भुवः॥३॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) युवतम ! सब में अधिक जवान्, बलवान् पूज्य ! हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक, उत्पादक ! हे (आहुत) सब से स्वीकृत, सब के द्वारा अपना २ अंश देकर समृद्ध किये हुए ! (त्वं ह) तू ही (ऋत-वा) सत्य न्याय का पालक और (यज्ञियः भुवः) सर्व-पूजार्ह, दान योग्य सत्पात्र हो।

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः।
मूर्धा कवी रयीणाम्॥४॥

भा०—(अयम् अग्निः) यह ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष (सहस्रिणः वाजस्य) सहस्रों संख्या से युक्त ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का और (शतिनः वाजस्य) सैकड़ों की संख्या वाले ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का (पतिः) पालक और (कविः) क्रान्तदर्शी (रयीणाम् मूर्धा) ऐश्वर्यवानों का भी शिरःस्थानीय, प्रमुख हो। सहस्रों, सैकड़ो संख्या वाला ज्ञान, वेदादि शास्त्र, जिन की ग्रन्थ गणना शत कण्डिका, सहस्र मन्त्र वा श्लोकादि से होती है। सैन्य मे भी शतपति, सहस्रपति के अधीन इतने २ सैन्य भट होते है। ऐश्वर्यों मे ग्रामों की संख्या वा स्वर्णमुद्राओं की संख्या ली जाती है।

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः।
नेदीयो यज्ञमङ्गिरः॥५॥२४॥

भा०—हे (अंगिरः) विद्वान्! तेजस्विन् (ऋभवः यथा नेमिम्) विद्वान् शिल्पी लोग जिस प्रकार चक्र के समस्त अरों के चारों ओर नेमि या लोहपरिधि को नमाते हैं उसी प्रकार तू (सहूतिभिः) समान रूप से आह्वान करने योग्य वा समान वेतनादि देने हारे शासकों से (तं यज्ञं)

उस यज्ञ, परस्पर संगत राष्ट्र को, (नेदीयः नमस्व) अति समीप २ झुका, अपने वश कर । इति चतुर्विशो वर्गः ॥

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया ।

वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥

भा०— हे (विरूप) विशेष रूपवान् ! सुमुख ! हे विशेष रुचि वाले तू (नूनम्.) अवश्य ही (तस्मै) उस (अभि-द्यवे) तेजस्वी, (वृष्णे) बलवान् पुरुष के लिये (नित्यया वाचा) नित्य निश्चित वाणी द्वारा (सु स्तुतिम् चोदस्व) उत्तम स्तुति को प्रस्तुत कर । परमेश्वर की स्तुति के लिये वेद वाणी का प्रयोग कर । अथवा षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । तू उस ज्ञानवान् , सर्व-ज्ञानवर्षक प्रभु की नित्य वाणी वेद से (सु-स्तुतिं चोदस्व) उत्तम प्रार्थना वा, उपदेश किया कर ।

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥७॥

भा०—(अस्य) इस (अपाक-चक्षसः) अनल्प दृष्टि वाले, परिपक्व बुद्धि वाले (अग्नेः) तेजस्वी ज्ञानी नायक पुरुष की (सेनया) सेना से हम (कं स्वित् उ पणिं) प्राण की शर्त्त धर कर बाजी लगाने वाले किस शत्रु को (गोषु) भूमियों के विजय के लिये (स्तरामहे) विनाश करें ।

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः ।

कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ८ ॥

भा०—(उस्राः) सूर्य की किरणो के समान उन्नत पद की ओर जाने वाले लोग (देवाना) देव, विद्वान् पुरुषों के बीच (प्र स्नातीः) अच्छी स्नान करती हुई, शुद्ध आचार से रहने वाली (नः विशः) हम प्रजाओं को (प्र-स्नातीः इव) शुद्ध पवित्र नारियों के समान (मा हासुः) परित्याग न करें । अर्थात् गृहस्थ लोग जिस प्रकार शुद्ध, स्नात, सच्चरित्रा नारियों का त्याग नहीं करते, उसी प्रकार उत्तम जन हम प्रजाओं का त्याग न करें । (अघ्न्या. कृश न) जिस प्रकार गौवें अपने निर्बल बच्चे को नहीं त्याग

करती, प्रत्युत जब तक हृष्ट पुष्ट न हो जावे उसे दूध पिलाकर पुष्ट किया करती है उसी प्रकार तेजस्वी उत्तम जन हम निर्बल प्रजाओं को भी न त्यागें।

'उस्राः'–वसन्ति सह, यद्वा उत् ऊर्ध्वं सरन्ति वा उस्राः। उत्सृजन्ति वा दुग्धं पयो वा।

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहुतिः।
ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ९ ॥

भा०—(ऊर्मिः नावं न) जलतरंग जिस प्रकार नौका का आघात करती है उस प्रकार (समस्य) समस्त (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले (परिद्वेषसः) सब प्रकार से द्वेषी पुरुष की (अंहतिः) पाप बुद्धि वा आघात पहुंचाने की दुरभिसन्धि (नः) हमें (मा वधीत्) कभी न पीड़ित करे।

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे (देव) दानशील! हे तेजस्विन्! (अग्ने) अग्निवत् शत्रु-संतापक! तू (ते ओजसे) तेरे पराक्रम के लिये (कृष्टयः) सब प्रजा के मनुष्य (नमः गृणन्ति) विनय युक्त वचन कहते हैं। तू (अमैः) सहायकों, बलों वा सैन्यों और दुःखदायी रोगों वा भटों से (अमित्रम् अर्दय) शत्रु को पीड़ित कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि ११

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः) हमें (गविष्टये) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (कुवित् रयिम्) बहुत साधन (सं वेषिषः) प्राप्त कर। तू (उरुकृत्) बहुत धन को उत्पन्न करने वाला है। तू (नः उरु (कृधि) हमारे धन और प्राप्तव्य फल को बहुत कर, उसे बढ़ा।

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा।
संवर्गं सं रयिं जय ॥ १२ ॥

भा०—(यथा भारभृत्) बोझा ढोने वाला जिस प्रकार थक कर अन्त मे अपने बोझे को दूर फेक देता है उसी प्रकार हे नायक कहीं (महाधने) इस महासंग्राम मे (नः मा परा वक्) हमें भार सा जान कर तू मत त्याग देना। अथवा (यथा भारभृत्) जिस प्रकार पालन पोषण योग्य स्त्रीपुत्र दासादि का पोषक स्वामी अपने इन पोष्य वर्ग को (महा-धने) अति सम्पन्नता में नहीं त्यागता उसी प्रकार तू भी संग्राम या अति ऐश्वर्य दशा मे हमें मत त्याग। वल्कि तू (संवर्ग) उत्तम सहयोगी गण और (रयिं) ऐश्वर्य का गुणों और पराक्रमों से (जय) विजय कर।

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना।
वर्धा नो अमवच्छवः॥ १३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक सेनापते! (इयम्) यह (दुच्छुना) दुखदायिनी सेना (अस्मत् अन्यम्) हमारे से दूसरे शत्रु को (भिय सिपक्तु) भयभीत करे। (नः अभवत्) तू हमारे बलयुक्त (शवः) सैन्य-बल को (वर्ध) बढ़ा।

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा। तं घेदग्निर्वृधावति॥१४॥

भा०—(यस्य) जिस (नमस्विनः) विनय, अन्न और शत्रु को नमाने-वाले वज्र या वीर्य से सम्पन्न (अदुर्मखस्य) अदोषयुक्त यज्ञ, वा अदुःख-दायी, अच्छिद्र, निस्त्रुटि कार्यकर्त्ता के (शमीम् जुषत्) कर्म को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत्) उसकी ही (अग्निः) वह उत्तम तेजस्वी नायक (वृधा अवति) वृद्धियुक्त सम्पदा से रक्षा करता है।

परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर। यत्राहमस्मि ताँ अव॥१५॥

भा०—(परस्याः सवतः अधि) शत्रु के सेना के उत्तम संगठनयुक्त बल के ऊपर (अवरान् अभि आतर) उनसे न्यून या उरे के हम लोगों को

सम्मुख, आगे बढ़ा, उनको विजयी कर। और (यत्र) जिनके बीच में, जिनके ऊपर (अहम् अस्मि) मैं हूं (तान् अव) उनकी रक्षा कर।

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः।

अधा ते सुम्नमीमहे ॥ १६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रतापशालिन्! (अवसः पितुः यथा) जिस प्रकार रक्षक पिता के सुख वा उत्तम धन को पुत्र चाहता है उसी प्रकार (पुरा) पूर्ववत् (अवसः) रक्षक (पितुः) पालक रूप (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (हि) हम भी (विद्म) जाने और (अध ते ईमहे) तुझ से हम याचना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[७६]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८—१२ गायत्री। ३, ४, ७ निचृद् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा।

मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥

भा०—मैं (इमं) इस (मायिनं) माया, बुद्धि कौशलों से युक्त, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (ओजसा ईशानम्) बल पराक्रम से सबके स्वामी, (मरुत्वन्तं न) प्राणवान् आत्मा के समान, वायुवद् बलशाली पुरुषों के स्वामी पुरुष को (वृञ्जसे) शत्रु के नाश के लिये (हुवे नु) आह्वान करता, प्रार्थना करता हूं।

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः।

वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

भा०—(मरुत्सखा) वायु को सहायक लेकर (इन्द्रः) सूर्य (वज्रेण शत-पर्वणा) सैकड़ों किरणों वाले तेज से (वृत्रस्य शिरः अभिनत्) मेघ के ऊपरी भाग को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अयम् इन्द्रः) यह

शत्रुनाशक वीर सेनापति (मरुत्-सखा) वीर पुरुषों का मित्र होकर, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों टुकड़ियों से बने सैन्य बल से (वृत्रस्य शिरः) बढ़ते शत्रु के शिर या मुख्य भाग को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे।

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः ३

भा०—(मरुत्सखा इन्द्रः) वायु को सहाय लेकर इन्द्र, विद्युत् वा सूर्य, जिस प्रकार (ववृधानः) अधिक प्रबल होकर (समुद्रियाः अपः सृजन्) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्षस्थ जलों को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रं) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में प्रेरित वा छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (मरुत्सखा) वीर पुरुषों और प्रजास्थ मनुष्यों का मित्र, उनसे सहायवान् होकर राजा अधिक शक्तिशाली होकर (समुद्रिया अपः) समुद्र के जलों के समान अपनी सेनाओं को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को छिन्न भिन्न करता है।

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम्। इन्द्रेण सोमपीतये॥४॥

भा०—(येन वा इन्द्रेण) जो शत्रुहन्ता (मरुत्वता) मनुष्यों का सहाय लेकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (इदं स्वः जितम्) आकाश को सूर्य के समान, इस समस्त भूलोक का विजय करता है (अयं ह) वही निश्चय से स्तुत्य है। (२) सोम जीवों के पालनार्थ प्रभु परमेश्वर इस समस्त जगत को वश करता है, वही स्तुति योग्य है।

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम्।
इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥

भा०—वायुओं के बलों से सम्पन्न सूर्यवत् प्रतापी, प्रबल मनुष्यों के स्वामी (ऋजीषिणम्) ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर औरों को चलाने वाले तथा (ऋजीषिणम्) शत्रुदल को भून डालने में समर्थ, तीक्ष्ण सैन्यबल को सञ्चालित करने वाले (ओजस्वन्तं) बल पराक्रमशील (विरप्शिनम्)

महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् की हम (गीर्भिः) वाणियों से (हवामहे) प्रार्थना करें ।

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥ २७ ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस महान् ऐश्वर्य या जगत् के पालन करने के लिये हम (प्रत्नेन) अनादिसिद्ध (मन्मना) मनन करने योग्य स्तोत्र, वेद ज्ञान से हम (मरुत्वन्तं) प्रबल मनुष्यों के स्वामी, समस्त जीवों के पालक प्रभु की (हवामहे) प्रार्थना करते हैं ।

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो ।
अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञावाले हे (पुरु-स्तुत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! हे (मीढ्वः) जगत् पर सुख की वर्षा करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (मरुत्वान्) नाना वीर पुरुषों का स्वामी, सहायक होकर (सोमं पिब) इस ऐश्वर्य वा सोम, प्रजा युक्त राष्ट्र का पालन उपभोग कर । (२) प्रभु समस्त जीवों का स्वामी वा वायुओं का स्वामी हो । इस उत्पन्न जगत् में जीवगण का पालन करे । (६) अध्यात्म मे आत्मा प्राण इन्द्रियों का स्वामी होने से मरुत्वान् है । वह शरीर में सोम, वीर्य का पालन और सुख प्राप्त करता है ।

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः ।
हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) बलवन् ! (तुभ्य इत् मरुत्वते) मनुष्यो, बलवान् पुरुषों के तुझ स्वामी के लिये ही (उक्थिनः) उत्तम वेद को धारण करने वाले (सुताः सोमासः) ऐश्वर्यादि से पुरस्कृत और उत्तम पदों पर अभिषिक्त (सोमासः) ज्ञानवान्

बलवान् पुरुष (हृदा) हृदय से (हूयन्ते) बुलाये जाते, अपनाये जाते, और नाना ऐश्वर्य देकर सत्कार किये जाते हैं।

पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

भा०—तू (मरुत्सखा) मनुष्यों और वीर पुरुषों का सखा, मित्र होकर ही (दिविष्टिषु) सब दिनों हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ओजसा) पराक्रम से (वज्र शिशानः) अपने बल वीर्य और शस्त्रबल को तीक्ष्ण करता हुआ (दिविष्टिषु) अपनी कामनाओं को प्राप्त करने के निमित्त (सुतं सोमं) उत्पन्न जगत् या ऐश्वर्य का (पिब इत्) पुत्रवत् पालन और धनवत् उपभोग कर ।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (ओजसा सह) बल पराक्रम के साथ (उत्तिष्ठन्) ऊपर उठता हुआ (चमू-सुतम्) सेनाओं द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पीत्वी) पालन करके (शिप्रे अवेपयः) जल पान करके तृप्त हुए मनुष्य के समान प्रसन्न होकर मुख नासिका वा ठोडियों को कंपा, प्रसन्न हो। अथवा (शिप्रे अवेपयः) अपनी बलयुक्त सेनाओं को संचालित कर ।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन् ! (यत्) जब तू (दस्युहा अभवः) दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा होता है तब (क्रक्षमाणं त्वा अनु) शत्रु का छेदन करते हुए तेरे साथ २ (उभे रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्ग (अनु कृपेताम्) बलवान् हो जाते हैं।

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् ।
इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—(अष्टापदी) आठ पद वाली और (नव-स्रक्तिम्) नवस्रक्ति अर्थात् स्तुत्य रचना वाली, (ऋत-स्पृशम्) ऋत, सत्य का स्पर्श अर्थात् दर्शन कराने वाली (तन्वम्) विस्तृत वा व्यापक वाणी को (अहं) मैं (इन्द्रात्) सत्यदर्शी पुरुष से (परि ममे) यथार्थ रूप से जानूं । जो कानून या शासन वाणी राजा के आठ अमात्यों से उत्पन्न होती है वह आठ पद वाली और नवस्रक्ति अर्थात् इन्द्र वा मुख्य शासक के मुख से ही वह प्रचारित होती है । वेद-विद्या के आठ विद्यास्थान आठ पद है । अष्टाविंशो वर्गः ॥

[७७]

[1] कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, ८ गायत्री ॥ २, ५, ६, ९ निचृद गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ निचृत् पङ्क्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरम् ।
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ १ ॥

भा०—(जज्ञानः) उत्पन्न या प्रकट होता हुआ (शत-क्रतुः) अनेक प्रज्ञावान् पुरुष (मातरं वि पृच्छत्) माता से बालक के समान विज्ञान-वान्, सत्यज्ञानी पुरुष वा मातृ तुल्य प्रजा से ही (इति) इस प्रकार से (वि पृच्छात्) विशेष रूप से प्रश्न किया करे कि (के उग्राः) राष्ट्र में कौन ऐसे बलवान् पुरुष है जिनसे लोग भय खाते है, और (के ह शृण्विरे) कौन ऐसे बलवान् लोग अभी तक सुने जाते है । अर्थात् देश में पहले भी ऐसे कौन २ बलवान भयकारी, त्रासदायी हो चुके हैं । राजा

[1] पुरुसुतिरिति पामादकः ।

का कर्त्तव्य है कि सबसे पहले यह प्रजा के त्रासकारी लोगों का पता लगा कर उनका नाश करे।

आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवम्।
ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥

भा०—(आत्) अनन्तर (शवसी) बलवती प्रजा (ईम् और्ण-वाभम्) उस और्णवाभ, तेजस्वी दण्डधर, राजा और (अमहीशुवम्) राष्ट्र की बाग-डोर-संभालने वाले उस शासक पुरुष के प्रति (अब्रवीत्) कहे कि हे (पुत्र) बहुत से प्रजा जनो के त्राण करने वाले राजन्! (ते) वे अमुक २ नाम वाले बहुत से हैं जो (निःतुरः सन्ति) विनाश कर देने योग्य हैं वा, उनको (निः-तुरः) अति तीव्र अश्वों को कोचवान् के समान बन्धन रज्जु और हन्टरों से दण्ड दे, वश करे।

और्णवाभः—ऊर्णां वहति इति ऊर्णवाभः। भत्वं छान्दसम्। स्वार्थिको ऽण्। अथवा ऊर्णाया वस्त्रं आहननार्थस्तोदो वा और्णं तद्वहति वा। विशेष-परिच्छदभूषितो दण्डधरो वा।

अहीशु = अभीशु। हत्वं छान्दसम्। प्रग्रहवान् उच्छृंखलानामिवाश्वानां नियन्ता।

समित्तान्वृत्रहाखिदत्खे अराँ इव खेदया।
प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥ ३ ॥

भा०—तब वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाश करने वाला वीर राजा प्रजा की अभ्यर्थना करने पर (तान्) उन दुष्ट पुरुषों को (खे) चक्र की नाभि में (अरान् इव) अरों के समान, (खेदया) रज्जु आदिवत् बन्धनकारिणी मर्यादा या ताड़ना से (खे) शून्य कारागारादि में (अखिदत्) धर कर पीड़ित करे और उनको दण्डित करके दीन बना दे, उनकी त्रासकारिणी उग्रता को दूर कर दे।

'खेदया'—खिद दैन्ये, रुधादिर्दिवादिश्च। खिद परिघातने। तुदादिः।

खिनत्ति खिद्यति दैन्यभावमापादयति आपद्यते वा स्वयं अनया सा खेदा। रज्जुः प्रग्रहः, कशा वा परिवातनसाधनं वा। खेदा कशा। खेदया रश्मिना, (ऋ० ८। ७२। ८) रज्ज्वा, (८। ७७। ३) इति सायणः।

एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतम्।
इन्द्रः सोमस्य काणुका॥ ४॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य (एकया) एक ही (प्रतिधा) प्रति-धान अर्थात् अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति से (सोमस्य) चन्द्र की (काणुका) कमनीय (त्रिशतम् सरासि) तीसों दिन रातों की किरणों को (साकम्) एक साथ ही (अपिबत्) पान कर लेता है, अपने भीतर ही ले लेता है, उसी प्रकार (काणुका इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष भी (एकया प्रतिधा) एक ही प्रतिधान, अर्थात् विग्रह-पूर्वक आक्रमण से (सोमस्य) प्रति पक्ष के ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (त्रिश-तम्) तीसों (सरांसि) धनों को (साकं अपिबत्) एक साथ ही पान कर जाता है, अथवा (सोमस्य पूर्णानि सरासि) ऐश्वर्य से पूर्ण पक्ष के तीसों रात दिन (साकम् अपिबत्) एक साथ उपभोग या पालन करे और (एकया प्रतिधा) एक समान सावधानता से प्रत्येक व्यक्ति का पालन पोषण करते हुए तीसों रात दिन एक साथ, लगातार पालन करता रहे, किसी दिन असावधान न हो।

'काणुका'—काणुका कान्तकानीति वा। क्रान्तकानि इति वा, कणे-घातः इति वा, कणेहतः कान्तिहतः। [इच्छाकृतकानि इति वा। इन्द्रः सोमस्य कान्त इति वा प्रतिघात इति यावत्] तत्रैतद् याज्ञिका वेदयन्ते त्रिंशदुक्थपात्राणि माध्यंदिने सवने एकदैवतानि तान्येतस्मिन् काले एकेन प्रतिधानेन पिबन्ति) तान्यत्र सरांस्युच्यन्ते। त्रिंशदपरपक्षस्याहोरा-त्रास्त्रिंशत् पूर्वपक्षस्य चेति नैरुक्ता। तथा एताश्चान्द्रमस्या आगामिन्य

आपो भवन्ति रश्मयस्ताः अपर पक्षे पिबन्ति यमक्षितिमक्षितयः पिबन्ति। तं पूर्वपक्ष आप्याययन्ति तथापि निगमा भवन्ति यथा देवा अंशुमाप्याययन्ति इति। निरु० अ० ५। ११॥

काणुका का अर्थ है कान्तियुक्त, दूरगत, वा कृतक, कृत्रिम, अथवा काणुका सूर्य का विशेषण है वह सोम (चन्द्र) का 'कान्त' प्रिय, या कान्तिप्रद है। अथवा कणेघात, कनी काटने अर्थ मे अर्थात् कान्ति, वा इच्छा प्रतिघात अर्थ मे 'काणुका' शब्द है। इस सम्बन्ध मे याज्ञिक बतलाते हैं कि माध्यन्दिन सवन मे तीस उक्थ पत्र एक ही देवता के निमित्त होते है उनको इस अवसर पर एक ही बार मे पीते है। वे पात्र 'सरस' कहाते है। नैरुक्तों का मत है कि कृष्णपक्ष के तीस और शुक्ल पक्ष के तीस दिन रात्रि होते है चन्द्रमा की आने वाली रश्मियो का नाम 'आपः' है। क्योंकि वे दूसरे से प्राप्त होती है। उन को कृष्ण पक्ष मे सूर्य की किरणें स्वयं अपने मे पुनः ग्रहण कर लेती है मानों पी जाती है। इसी प्रकार पूर्व शुक्लपक्ष में फिर पूर्ण कर देती है जिस प्रकार वेद वाक्य है (यथा देवा.० इत्यादि)।

अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा।
इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे॥ ५॥ २९॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जिस प्रकार (अबुध्नेषु) रोक थाम न करने वाले, बन्धनरहित (रजःसु) अन्तरिक्ष के प्रदेशों में स्थित (गन्धर्वम् अभि अतृणत्) जल को धारण करने वाले जलधर मेघ को आघात करता है तो वह (ब्रह्मभ्यः) अन्नों की (वृधे इत्) वृद्धि के लिये ही होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहनन में समर्थ राजा (अबुध्नेषु रजःसु) अप्रबद्ध, अनाश्रित, लोकों वा प्रजा जनों में विद्यमान (गन्धर्वम्) भूमि को अपने वश कर लेने वाले प्रबल शत्रु को (अभि अतृणत्) आक्रमण कर के नाश करे तो वह (ब्रह्मभ्यः

वृधे इत्) धनों, अन्नों और विद्वान् पुरुषों की ही वृद्धि के लिये होता है।
इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम्।
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जिस प्रकार (गिरिभ्यः) मेघों से (निर् अविध्यत्) जल गिराने को उन्हें खूब ताड़ित करता है, और (ओदनं) अन्न, धान्य को (पक्वम्) परिपक्व रूप में (आ धारयत्) परिपुष्ट करता है और अपने (सु-आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) चमकते प्रकाश को भी फेंकता है उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गिरिभ्यः) मेघवत् अन्यों का माल निगल जाने वाले दुष्ट पुरुषों को सुधारने और उन से सत्य निकलवाने या हड़पा हुआ माल निकलवाने के लिये (निर् अविध्यत्) उन को खूब ताड़ना दे और उनसे (पक्वम्) पक्क (ओदनम्) वचन, शपथ, (oath) (आधारयत्) धारा या पक्की जुबान के रूप में कानूनवत् करा लेवे कि फिर वे ऐसा न करेंगे। और वह (सु आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) भयकारी, उन को भेदने फोडने वाला, अपना सैन्य बल भी (आ धारयत्) सर्वत्र स्थापित करले।

'बुन्दं'—बुन्दो वा भिन्दो वा भयदो वा भासमानो द्रवतीति वा निरु० ६। ३४ ॥

शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन् ! तू (यम् युजं चकृषे) जिसको अपना सहायक बनाता है वह (तव इषु) तेरा बाण वा शस्त्रबल वा आज्ञा (शतब्रध्नः) सैकड़ों आश्रयों और बन्धन मर्यादाओं वाला और (सहस्रपर्णः) सहस्रों बलशाली, पत्रों, रथों वा पालक जनों से सम्पन्न और (एकः इत्) एक अद्वितीय, सब से अधिक उत्तम हो। (२) इसी प्रकार उस प्रभु परमेश्वर की 'इषु' महान् इच्छा, वा सङ्कल्प सैकड़ों

'व्रघ्न' अर्थात् आदित्यों और आकाशो तक फैला हुआ और सहस्रो पर्ण अर्थात् पालन शक्तियो, किरणो से युक्त सूर्यवत् सत्यमय तेज से युक्त है और एक अद्वितीय, सर्वोपरि शासन है, जिससे अनेको ब्रह्माण्ड चल रहे है ।

तेन॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र॒ नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ अत्त॑वे ।
स॒द्यो जा॒त ऋ॑भुष्ठिर ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऋभु-स्थिर) सत्य न्याय से प्रकाशित विद्वानों द्वारा स्थिर राजन् ! तू (सद्यः जातः) अति शीघ्र राजा रूप से प्रसिद्ध होकर (तेन) उस पूर्वोक्त शासनबल से (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वान् नरों और नारियों के लिये (अत्तवे) भोजनार्थ (आ भर) उत्तम अन्न प्रदान कर । तेरे उत्तम शासन मे सब नर नारी सुख से भोजन करें । (२) प्रभु समस्त सूर्यादि लोकों में व्यापक होने से 'ऋभु-स्थिर' है ।

ए॒ता च्यौ॒त्नानि॑ ते कृ॒ता वर्षि॑ष्ठानि॒ परी॑णसा ।
हृ॒दा वी॒ड्व॑धारयः ॥ ९ ॥

भा०—(एता) ये (च्योत्नानि) सब बलशाली और (वर्षिष्ठानि) सुख जलादि वर्षाने वाले, बलवान् सैन्य (ते कृता) तेरे ही बनाये है । और तू उन को (वीडु परीणसा) महान् स्थिरतापूर्वक (हृदा अधारयः) सद्-हृदय से धारण कर । इसी प्रकार ये सब गतिशील, वर्षाकारक सूर्य पवन आदि प्रभु ने बनाये है, उन को वह (हृदा) मन के संकल्प मात्र से धारण करता और चलाता है ।

विश्वेत्ता विष्णु॒राभ॑रदुरुक्र॒मस्त्वेषि॑तः ।
श॒तं म॑हि॒षान्क्षी॑रपा॒कमो॑द॒नं व॑रा॒हमिन्द्र॑ एमु॒षम् ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के ताप या प्रकाश मे प्रेरित वायु महान् आकाश मे विचरता समस्त मेघादि को ले आता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्य-वन् ! शत्रुहन् ! (त्वा इषित.) तेरे से प्रेरित होकर (उरुक्रमः) बड़ा

पराक्रमी, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत्) उन २ समस्त पदार्थों को (आ अभरत्) प्राप्त कराता है । वह (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शतं महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षीरपाकम् ओदनम्) दूधमे पके भात के समान सात्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (एमुषं) सब तरफ से ज्ञान सग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे । सूर्य भी अपरिमित बडे २ मेघ, (क्षीर-पाकं) पानी से सेचित होकर पकने वाले अन्नादि धान्य और जल को लाने वाली वायु को धारण करता है ।

तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥ ११ ॥ ३० ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरा (धनु.) धनुष, शस्त्रबल, (सु-मय) उत्तम सुखकारक, (सु-कृतं) उत्तम कर्म करने वाला, (तुवि क्षं) दूर तक बाणों के फेंकने वाला, बहुत से शत्रुओं को उखाड फेंकने वाला हो । (ते बुन्दः) तेरा तेज और शत्रु को भयप्रद बाण, (साधुः) उत्तम, लक्ष्य पर लगने हारा, (हिरण्यय.) सुवर्णमय और हित, रम्य हो । (ते बाहू) तेरी बाहुएं, शत्रुबाधक सेनाएं दोनो (रण्या) रमणीय, सुन्दर एवं रण-कुशल (सु-सस्कृते) उत्तम संस्कार से युक्त, अलंकृत और उत्तम अभ्यस्त, (ऋदुपे) वेग से शत्रु को गिराने वाले और (ऋदुवृधा चित्) पीडक जनों को वेधने, उन को काटने छाटने वाली हो । इति त्रिंशो वर्गः ॥

[७८]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३ निचृद् गायत्री । २, ६—९ विराड् गायत्री । ४, ५ गायत्री । १० बृहती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर ।
शता च शूर गोनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (न) हमे (अन्धसः) अन्न और प्राण धारण कराने वाले पदार्थ का बना (सहस्रम्) हजारो की संख्या मे, अपरिमित वा बलकारक, (पुरोडाशं) आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम खाद्य पदार्थ (आ भर) प्राप्त करा और स्वयं भी उस को धारण कर। इसी प्रकार हे (शूर) शत्रुनाशक, शूरवीर ! (गोना शता च) भूमियो, गौवों और वाणियो के सैकडो, अपरिमित हमे प्रदान कर, तू भी उनका पालन पोषण कर।

आ नो॑ भर॒ व्यञ्ज॑नं॒ गाम॒श्व॑म॒भ्यञ्ज॑नम्।
सचा॑ म॒ना हि॑र॒ण्यया॑ ॥ २ ॥

भा०—तू (नः) हमे (गाम् अश्वं) गौ, अश्व और (अभ्यञ्जनम्) शत्रु पर जाने के साधन सवारी रथ, हाथी, आदि और विशेष रूप से जाने के साधन उत्तम रथ विमान आदि वा (व्यञ्जन) विशेष चमकने वाले प्रकाश के उपाय, ज्ञान, आदि और नाना खाद्य पदार्थ, उत्तम गुण (नः) हमे (आ भर) प्राप्त करा। और (सचा) साथ ही (मना) मनन करने योग्य (हिरण्यया) हित और मनोहर वचन भी श्रवण करा।

व्यञ्जनं अभ्यञ्जनं—अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। रुधादिः।

उ॒त नः॒ कर्ण॒शोभ॑ना पु॒रूणि॑ धृष्ण॒वा भ॑र।
त्वं हि शृ॑ण्वि॒षे व॑सो ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (धृष्णो) शत्रुपराजयकारिन्। तू (नः) हमे (पुरूणि) बहुत से (कर्ण शोभना) कानों को सजाने के साधन, उत्तम वचन और कर्णकुण्डल आदि अलंकरण (नः आ भर) हमे प्राप्त करा और हमारे लिये तू धारण कर। हे (वसो) उत्तम विद्वन्! ब्रह्मचारिन् बसाने हारे! (त्वं हि शृण्विषे) तू ही हमारे वचन सुन और अपने हमे सुना।

नकी वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत ।
नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे सत्यतत्त्वदर्शिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (ते अन्यः) तुझ से दूसरा (न की वृधीक.) कोई और न बढाने हारा, (न ते सुषाः) न तुझ से दूसरा कोई उत्तम न्यायपूर्वक विभागकारी, (उत) और (न सुदाः) न उत्तम दाता है (उत) और हे (शूर) वीर ! हे अज्ञान, दुर्गुणादि के नाशक ! (त्वत् अन्यः वाघतः न) तुझ से दूसरा कोई और विद्वान् ज्ञानधारक वाग्मी भी नहीं है ।

नकीमिन्द्रो निकर्त्तवे न शक्रः परिशक्तवे ।
विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(इन्द्रः) यह ऐश्वर्यवान् वा यथार्थदर्शी प्रभु, स्वामी (नकीम् निकर्त्तवे) कभी भी अनादर और हिंसा करने योग्य नहीं। (शक्रः) यह शक्तिमान् (न परि-शक्तवे) बल द्वारा पराजय करने के भी योग्य नहीं। वह (विश्वं शृणोति) सब कुछ सुनता, (विश्वं पश्यति) सब कुछ देखता है। साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ सोऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् । उप० ॥ इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते ।
पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥

भा०—(सः अदब्धः) वह अविनाशी, किसी से न मारा जाने वाला, अदण्डनीय (मर्त्यानां) मनुष्यों के (मन्युं) क्रोध को (नि चिकीषते) तुच्छ करके जानता है और (निदः) निन्दकों को (पुरा) पहले ही (नि चिकीषते) नीचा दिखा देता है ।

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।
... सोमपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—उस (तुरस्य) शीघ्रकारी, शत्रुहिंसक (विघतः) प्रजाओं को विविध प्रकार से पालन पोषण करने वाले, जगत् के कर्त्ता, (वृत्रघ्नः) विघ्नों, दुष्टों और मेघों को नाश करने वाले और (सोम-पान्नः) जगत्, ऐश्वर्य, पुत्र शिष्यादि के पालक का (उदरम्) पेट, हृदय (क्रत्वः इत्) ज्ञान और कर्म से ही (पूर्णम्) पूर्ण रहता है।

त्वे वसूनि सङ्गता विश्वा च सोम सौभगा।

सुदात्वपरिहृवृता ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सर्व-उत्पादक प्रभो ! (त्वे) तुझ में और तेरे अधीन ही (विश्वा वसूनि विश्वा च सौभगा) समस्त ऐश्वर्य और समस्त सुखदायक कल्याणकारी धन, (सं-गता) एकत्र है। तू उनको (अपरि-हृता) अकुटिल, सुप्राप्य (सु-दातु) सुखदायक बना कर प्रदान कर।

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः। त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (मम कामः) मेरा अभिलाष (यवयुः) अन्नादि का इच्छुक (गव्युः) भूमि, वाणी, इन्द्रिय, ज्ञान रश्मि गवादि पशु आदि का इच्छुक और (हिरण्ययुः) हित, मनोहर वचन और सुवर्णादि धन का इच्छुक होकर (त्वाम् इत् एषते) तुझ ही चाहने लगता है। और मेरा अभिलाष (अश्वयुः) अश्वों को चाहता हुआ भी (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही प्राप्त करता है।

तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे।

दिनस्य वा मघवन्त्सम्भृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना १०॥३२

भा०—हे (इन्द्र) अन्नों के देने हारे। हे अन्नों के काटने हारे, हे अन्नों के धारण करने हारे ! (तव इत् आशसा) तेरी ही आज्ञा, आशा और कामना से मैं (हस्ते) हाथ में (दात्रं चन आददे) अन्न धान आदि खेती काटने का साधन वा दान करने योग्य धन ग्रहण करता हूं। हे (मघवन्) पूज्य धन के स्वामिन्! तू (दिनस्य) काटे हुए (वा) अथवा (संभृतस्य)

एकत्र किये (यवस्य) जौ अन्न की (काशिना) मुट्ठी से (पृधि) पूर्ण कर। अथवा—हे (इन्द्र) सूर्य विद्युत् मेघादि ! जलदायक शक्ते ! तेरी आज्ञा से हाथ मे यह (दात्र) दराति आदि कृषि के साधन लेता हू तू काटे वा एकत्र किये अन्न को अपने प्रकाश, दीप्ति से पूर्ण पालन, पुष्ट कर। (२) ईश्वरपक्ष मे हे प्रभो तेरा दिया तेरी आज्ञा वा उपदेश से लेता हूं। तू (काशिना) अपने ज्ञान के प्रकाश से, दिन वा प्रजा को सूर्य के समान, मुझ दीन हतोत्साह वा पोष्य सेवक को भी अपने ज्ञान प्रकाश से पूर्ण, पालन कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[७९]

कृत्नुर्भार्गव ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद् गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ४, ५, ७, ८ गायत्री। ९ निचृदनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः।
ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (कृत्नुः) जगत् का कर्त्ता, (अगृभीतः) किसी इन्द्रिय से कभी न ग्रहण करने योग्य, चक्षुरादि साधनों से अग्राह्य, अविज्ञेय, (विश्वजित्) समस्त 'विश्व' जगत् और प्राणि-संसार को अधीन रखने वाला, (उद्भित्) समस्त स्थावरों को पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न करने वाला, (सोमः इत्) सब का उत्पादक होने से 'सोम' है। वही (विप्रः) सब ज्ञानों, कर्मों का दाता, विद्वान् , मेधावी (काव्येन) वेद-ज्ञान से (ऋषिः) सब सत्य ज्ञानों को देखने हारा है। (२) इसी प्रकार राजा विद्वान् भी कर्मों का कर्त्ता, सब का विजेता, उत्तम कर्म फल का उत्पादक 'उद्भित्' शत्रुओं को उखाड़ने वाला, (सोमः) सब का सञ्चालक, सब ऐश्वर्यों का अधिपति, विद्वान् वेदद्वारा सत्य न्याय का द्रष्टा हो। शरीर में वीर्य

वा प्राण सोम है, वह कर्म का कर्त्ता, इन्द्रियजित् (उद्भित्)ऊर्ध्व मार्ग ब्रह्मरन्ध्र को भी भेदन करने मे समर्थ है।

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्।
प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो वह पूर्वोक्त सोम. ऐश्वर्यवान् (नग्नं अभि ऊर्णोति) नग्न, वस्त्ररहित को वस्त्रादि से आच्छादित करता है। (यत) जो (तुरं विश्वम्) सब रोगी जन को ओषधि रसवत् (भिषक्ति) रोग से रहित करता है वह (अन्धः ईम् प्रख्यत्) सब के प्राण-जीवन का पोषण कारक होकर इस विश्व को अच्छी प्रकार देखता और उपदेश करता है,। श्रोणः (निः भूत्) सर्वश्रोता होकर सर्वत्र समर्थ रहता है। अथवा (अन्धः प्र ख्यत्, श्रोणः निर्भूत्) अन्ध अर्थात् अचक्षु रह कर भी देखता, और पद आदि से पंगु होकर भी सर्वत्र जाता है। यह योजना ईश्वर पक्ष में ठीक है 'अपाणिपादो जवनो गृहीतः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥' उपनिषत् ॥

अथवा वह नंगे को वस्त्र पहनाता, रोगी को चंगा करता है, इसी कारण (अन्धः प्रख्यत्) यह दृष्टि-चेतनादि से रहित देह भी देखने में समर्थ होता है और यह प्राकृतिक जड़ जगत् वा देह (श्रोणः) पंगु अर्थात् शक्ति रहित होकर भी सर्वत्र जाने में समर्थ होता है। यह ईश्वर सोम या चेतन जीव की महिमा है।

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः।
उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सन्मार्ग में संचालक ! ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तनूकृद्भ्यः) राष्ट्र को क्षीण करने वाले और (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) अन्य, शत्रुओं से किये, उन से प्रेरित द्वेषों से भी (वरूथं) बचाने वाले महान् बल का (उरु यन्तासि) विशाल गृहवत् नियन्ता है।

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्।
यावीरघस्य चिद्द्वेषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) प्रजा जनों को सन्मार्ग मे चलाने हारे! हे शत्रुओं को भूनने, संतप्त करने वाले सैन्य के सञ्चालक! (त्वं) तू (तव) तेरे अपने (चित्ती) ज्ञान, बुद्धि और (दक्षैः) बलों से, (दिवः पृथिव्याः आ) आकाश और पृथिवी से आने वाले (अघस्य चित् द्वेषः यावीः) शत्रु के सव द्वेष भावों को दूर कर।

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम्।
ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—(चेद्) यदि (अर्थिनः) धन के इच्छुक वा धन के स्वामी लोग (अर्थंयन्ति) धन को प्राप्त करते है तो उन को चाहिये कि वे (ददुषः राति गच्छान्) दानशील पुरुष के दानशीलता को भी प्राप्त हों, वे दान भी किया करे। अथवा यदि वे धन पाते है तो भी वे किसी दानी के दान को ही प्राप्त करते है, इसलिये भी उन को चाहिये कि वे भी (तृष्यतः कामम् ववृज्युः) किसी पियासे अर्थार्थी की अभिलाषा को पूर्ण किया करें। उस की प्यास को बुझाया करे। इसी प्रकार विद्यार्थी यदि विद्या प्राप्त करते है किसी विद्यादाता का दिया ज्ञान ही प्राप्त करते है, उन को चाहिये वे भी अन्य की ज्ञान पिपासा का शमन करें। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत्। प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥६॥

भा०—(यत्) जो (पूर्व्यम् नष्टम्) पहले के तृप्त या नष्ट हुए को (विदत्) पाता या जान लेता है, उसे चाहिये कि वह (ईम्) उस ज्ञान को (ऋतायुम्) सत्य ज्ञान के अभिलाषी पुरुष के प्रति (ईरयत्) उपदेश करे। वह मानो, (ईम्) उसको (अतीर्णम्) अप्रदत्त (आयु.) नया जीवन (प्रतारीत्) प्रदान करता है। विद्या दान करना भी नवजीवन देने के समान है।

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवा नः सोम शं हृदे ॥७॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमे (सु-शेवः) उत्तम सुखदाता, (मृडयाकु.) दयाशील, (अदृप्त-क्रतुः) ज्ञान और कर्म पर भी गर्व न करने वाला और (अवातः) प्रचण्ड वायु के समान धक्के न लगाने वाला, होकर (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय के लिये शान्तिदायक हो।

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन्।

मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥

भा०—हे (राजन्) तेजस्विन् शासन करने हारे राजन् ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शासक ! तू (नः मा सं वीविजः) हमे मत उद्विग्न कर, न परस्पर एक दूसरे से भय करा। (मा वि बीभिषथाः) विविध प्रकार से भी भयभीत मत कर, और (त्विषा) कान्तियुक्त तीक्ष्ण शस्त्र वा तीक्ष्णता से ही (नः हार्दि मा वधीः) हमारे हृदयो पर आघात मत कर।

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥ ९॥ ३४ ॥

भा०—(यत्) जब तू (स्वे) अपने और (देवानां) मनुष्यो के (सध-स्थे) एकत्र मिलकर बैठने के लिये विचार स्थल में (दुर्मतीः) दुष्ट चित्त वालों के दुर्व्यवहारो की (अव ईक्षे) न्यायपूर्वक विवेक दृष्टि से विवेचना करे तब हे (राजन्) राजन् ! तू (द्विषः अप सेध) द्वेष के भावों और द्वेषी जनों को दूर कर और (स्रिधः अप सेध) हिंसा के भावों और हिंसकों को भी दूर कर। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[८०]

एकद्यूनाधस ऋषिः ॥ १—९ इन्द्रः। १० देवा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ३, ५, ८ निचृद् गायत्री। ४, ६, ७, ९, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

नह्य१न्यं ब॒ळाक॑रं म॑र्डि॒तारं॑ शतक्रतो । त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरमित ज्ञानवन् ! (अन्यं) तुझ से दूसरे को मैं (मर्डितारं नहि आकरम्) सुखदाता करके नहीं जानता (बळा) यह मैं सत्यपूर्वक कहता हूं । (अतः त्वं) तू (नः इन्द्र मृडय) हमे हे ऐश्वर्यवन् ! सुखी कर ।

यो नः॒ शश्व॑त्पु॒राऽवि॒थामृ॑ध्रो॒ वाज॑सातये ।
स त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (नः) हमे (शश्वत्) निरन्तर, सदा (पुरा) पूर्व भी, (अमृधः) स्वयं अन्यो की हिंसा न करने वाला और स्वयं अहिंसित होकर (वाज-सातये) ऐश्वर्य विभाग करने के लिये (नः आविथ) हमे प्राप्त होता है, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडय) हमें सुखी कर ।

किम॒ङ्ग र॑ध्र॒चोद॑नः सुन्वा॒नस्या॑वि॒तेद॑सि ।
कु॒वित्स्वि॑न्द्र णः॒ शकः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (रध्रचोदनः) अपने आराधक को सन्मार्ग पर चलाने हारा ही (किम्) क्यों बल्कि (सुन्वानस्य) उपासक का (अविता इत् असि) रक्षक ही है तू (नः कुवित् शकः) हमारा बहुत कुछ कल्याण करने मे समर्थ है ।

इन्द्र॒ प्र णो॒ रथ॑मव प॒श्चाच्चि॒त्सन्त॑मद्रिवः । पु॒रस्ता॑दे॒नं मे॑ कृधि ४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् तू (नः) हमारे (रथम् प्र अव) रमणकारक सुखप्रद रथवत् देह की अच्छी प्रकार रक्षा कर । (पश्चात् चित् सन्तम् मे एनं) पिछड़े हुए भी इस मेरे रथ को (पुरस्तात् कृधि) आगे कर । सफलता के मार्ग पर यदि मैं पिछड़ूं तो तू मुझे आगे बढ़ा ।

हन्तो॒ नु किमा॑ससे प्रथ॒मं नो॒ रथं॑ कृधि ।
उ॒प॒मं वा॑ज॒यु श्रवः॑ ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(हन्तो नु) भला अब (किम् आससे) क्यों विलम्ब करता है ? (नः रथ) हमारे रथ को (प्रथमं कृधि) सबसे मुख्य कर । और तेरा (वाजयु श्रवः) ज्ञानयुक्त श्रवणयोग्य उपदेश (न उप मं) हमारे सदा समीप रहे । अथवा हमारे बलैश्वर्य की कामना से युक्त (श्रवः) श्रव्य प्रार्थना वचन तेरे समीप है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (नः) हमारे (वाजयुं) बल, वेग, वीर्य, ऐश्वर्य से युक्त (रथं) रथवत् देह की (अव) रक्षा कर । (इत् परि ते सुकरं किम्) इससे अधिक और तेरे लिये क्या उत्तम और सुखपूर्वक करने का कार्य है ? तू (अस्मान्) हमे (जिग्युषः सु कृधि) विजयी भली प्रकार कर ।

इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् ।
इयं धीर्ऋत्वियावती ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (दृह्यस्व) दृढ़ हो, और तू (भद्रा पूः असि) सुखदायी, पुर, प्रकोट या दुर्ग के समान पालक, रक्षक है । (ते) तेरा (इयं) यह (ऋत्वियावती) काल पर फल देने वाला (धीः) कर्म भी (निष्कृतं एति) सफलता को प्राप्त होता है ।

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम् ।
अपावृक्ता अरत्नयः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! (सीम्) सब ओर से भी (अवद्ये) निन्दा योग्य बुरे कार्य मे तू हमे (मा भाग्) मत डाल । (उर्वी काष्ठा) सीमा बहुत दूर है, वहां (धनं हितम्) धन अर्थात् प्राप्तव्य पदार्थ रक्खा है । (अरत्नयः) दुःखदायी शत्रु (अपावृक्ताः) दूर हों ।

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि ।
आदित्पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

भा०—(यदा) जब तू (तुरीयं) चतुर्थ, सर्वश्रेष्ठ, (यज्ञियं) सर्वोपास्य (नाम) स्वरूप को (करः) प्रकट करता है तब हम (तत् उश्मसि) उसी परम स्वरूप की कामना करते हैं । (आत् इत्) अनन्तर ही तू (नः भतिः) हमारा पालक होकर हमें (ओहसे) अपने में ले लेता है । जाग्रत्आदि दशा से परे आत्मा का तुरीय स्वरूप है, वह अमात्र है। उसी के दर्शन से परम कल्याण है ।

अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १०।३६।८

भा०—हे (अमृताः देवाः) अमृतस्वरूप, दीर्घायु विद्वान्गण, (उत) और (याः च देवीः) जो आप लोग विदुषी नारियां हो । आप सबको (एक-द्यूः) एकमात्र, अद्वितीय प्रकाशक प्रभु ही (अमन्दीत्) आनन्दित करता है और वही (वः अवीवृधत्) आप लोगों की वृद्धि करता है । (तस्मा उ प्रशस्तं राधः कृणुत) उस की ही सर्वोत्तम आराधना किया करो और (प्रातः) प्रभात में (मक्षु) शीघ्र ही, सबसे प्रथम (धियावसुः) ज्ञान और कर्म का धनी वही प्रभु (जगम्यात्) तुम्हें प्राप्त हो, उसी की प्रथम उपासना करो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

[८१]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६, ७ निचृद् गायत्री । ४, ९ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (महा-हस्ती) बड़े हाथ वाला

है। तू (दक्षिणेन) दायें हाथ से (नः) हमे (क्षुमन्तं) कीर्त्तिजनक, अन्नादि से सम्पन्न (चित्रग्राभं) नाना प्रकार का ग्रहण करने योग्य धन (स गृभाय) संग्रह कर।

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्।
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

भा०—हम (त्वा) तुझे (अवोभिः) रक्षा, प्रीति आदि उत्तम गुणों करके (तुवि-कूर्मि) बहुत कर्म करने मे समर्थ (तुवि-देष्णं) बहुत से धन देने वाला और (तुवि-मात्रम्) बहुत धन राशि का स्वामी भी (विद्महि) जानते है।

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्।
भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर! सब दुष्टों के दलन करने हारे! (गां न भीमं) बड़े बैल के समान भयंकर (न हि देवाः न मर्त्तासः) न दानशील विद्वान् और न साधारण मनुष्य ही (दित्सन्तम् वारयन्ते) दान देने की इच्छा वाले (त्वा) तुझको रोक सकते हैं। प्रत्युत जब देना चाहे तो तेरे को रोकने वाला कोई नहीं।

एतोन्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम्।
न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥

भा०—(एत उ नु) आओ भाइयो! (वस्वः ईशानं) धन के स्वामी, (स्व-राजं) अर्थात् 'स्व' अपने ऐश्वर्य से दीप्तिमान्, धनाधिपति, (इन्द्र) प्रभु की (स्तवाम) स्तुति करें। कोई भी (राधसा) धन के कारण (नः मर्धिषत्) हमें पीडित न करे।

प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम्।
अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥ ३७ ॥

भा०—वह प्रभु ही हमे (प्र स्तोषत्) उत्तम स्तुति कराता है (उप

गासिषत्) उपासना या गान कराता है और (गीयमानं साम श्रवत्) गाये गये साम को सुनता है। वही (राधसा) धनैश्वर्य द्वारा हमे (अभि-जुगुरत्) उद्यम कराता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश ।
इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमे (दक्षिणेन आ भर) दाये हाथ से ऐश्वर्य दान कर और (सव्येन अभि प्र मृश) वायें से भी उत्साहित कर। तू (नः) हमें (वसोः मा निर्भाक्) धन से वञ्चित मत कर।

उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् ।
अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (उप क्रमस्व) उद्यम कर ! हे (धृष्णो) शत्रु-पराजयकारिन् ! तू (धृषता) शत्रु पराजय कारक बल से, (जनानां) मनुष्यों के बीच मे (अदाशूः-तरस्य वेदः) अति अधिक कंजूस के धन को (आ भर) ले ले।

इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः ।
अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः उ नु ते वाजः) जो तेरा धनैश्वर्य (सनित्वः अस्ति) दान देने योग्य है (तं) उसे तू (अस्माभिः विप्रेभिः) हम विद्वान् मेधावी पुरुषो के साथ मिलकर (सु सनुहि) उत्तम कार्य मे लगा।

सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः ।
वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥ ३८ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! (ते वाजाः) तेरे ऐश्वर्य, (विश्व-चन्द्राः) सब संसार को आह्लादित करने वाले है। वे (अस्मभ्यं सद्यो-जुवः) हमें शीघ्र ही प्राप्त हों। सब लोग (वशैः च मक्षु जरन्ते) नाना

कामनाओं से प्रेरित होकर तेरी स्तुति करते हैं। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८२]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद् गायत्री । २, ५, ६, ८ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि॥१॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! तू (प्र-भर्मणि) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त इस राष्ट्र मे या उत्तम २ पदार्थों को संग्रह करने के कार्य के निमित्त (मध्वः प्रति) मधुर, सुखकारी अन्नों को प्राप्त करने के लिये (परावतः अर्वावतः च) दूर और समीप के देशों से वा उन देशों को (आ द्रव प्र द्रव) आया और जाया कर। व्यापार से सब सुखकारी पदार्थों का आयात निर्यात किया कर।

तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः ।
पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥

भा०—(तीव्राः) वेग मे तीव्र, कर्मकुशल (सोमासः) उत्तम शासकगण, (मादयिष्णवः) प्रजा को अति प्रसन्न करनेवाले लोग (सुतासः) अभिषिक्त हों। तू (आगहि) आ और (यथा ओचिषे) जैसे भी समवाय बना सके वैसे (दधृक्) शत्रु का पराजय करके (पिब) अपने राष्ट्र का पालन कर-उसका भोग कर। अथवा—(तीव्राः) क्षुधानिवर्त्तन में तीव्र गुणकारी, तृप्तिकारक ये अन्न के पदार्थ बने है उनको तू खा, पी।

इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (इषा) अन्न से (मन्दस्व)

तृप्ति कर। क्योंकि (वराय मन्यवे) श्रेष्ठ ज्ञान के लिये यह अन्न ही (अरं) अति गुणकारी और उपयोगी है। हे ऐश्वर्यवन्! यह अन्न (ते हृदे शम्) तेरे हृदय को भी शान्ति देने वाला हो।

आ त्वंशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे।
उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अशत्रो) अजातशत्रो! शत्रुरहित! तू (आगहि) आ। (दिवः उप-मे) सूर्य की उपमा योग्य (रोचने) अति तेजस्वी, पद पर तू (उक्थानि) नाना उत्तम स्तुति-वचनों द्वारा आह्वान और स्तवन किया जाता है।

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम्।
प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अद्रिभिः सुतः गोभिः श्रीतः सोमः मदाय) जिस प्रकार पाषाण खण्डों या ऊखल आदि से निकाला और गोरसों से मिला हुआ सोमादि ओषधि रस शरीर में हर्ष सुखादिजनक, रोग-नाशक होता है, उसी प्रकार (अद्रिभिः सुतः) आकाश में मेघों द्वारा उत्पादित वा चक्की, ऊखलादि से अन्न रूप से और भूमि में (अद्रिभिः) पर्वतों द्वारा उत्पादित रत्नादि रूप से और (गोभिः श्रीतः) भूमियों या सूर्य का किरणों के विशेष गुणों से परिपक्व या मिश्रित अन्न तथा (गोभिः श्रीतः) वाणियों से से प्रशंसित ज्ञान वा किरणों से युक्त मणि आदि भी (अयम्) यह (सोमः) अन्नादि वा रत्नादि ऐश्वर्य (मदाय) अधिक आनन्द या हर्ष के लिये ही (तुभ्यं प्र हूयते) तुझे आदरपूर्वक दिया जाता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः।
वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मे हवम्) मेरी प्रार्थना वा उपदेश को भली प्रकार (सु श्रुधि) श्रवण कर। तू (अस्मे) हमारे (गोमतः

सुतस्य) गो-रस दुग्धादि से मिश्रित अन्न तथा भूमि सहित उत्पन्न ऐश्वर्य का (पीतिम्) पान, उपभोग आदि तथा (तृप्तिम्) तृप्ति को भी (वि अश्नुहि) विविध प्रकार से प्राप्त कर ।

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते चमसेषु) तेरे पात्रों मे या पात्रवत् प्रजाजनों मे (सोमः) अन्न और उत्पन्न ऐश्वर्य (आसुतः) उत्पन्न होता है और जो (ते चमूषु) तेरी सेनाओ के आश्रय पर (आ सुतः) प्राप्त होता है, (अस्य त्वम्) इसका तू (ईशिषे) स्वामी है। इसलिये तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य पालन या उपभोग कर । आध्यात्म मे सोम वीर्य 'चमसो' अर्थात् देह के प्रति सैलों या कोष्ठो मे या 'चमू' अर्थात् भोक्तृ रूप इन्द्रियो मे होता है। उसका स्वामी आत्मा है।

यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) शासन बल (अप्सु चन्द्रमाः इव) अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के समान आह्लादक और (चमूषु) सेनाओं के ऊपर उनका (सोमः) शासक, आज्ञापक के समान (ददृशे) दिखाई देता है है तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य उपभोग कर, (त्वम् अस्य ईशिषे) तू ही उसका स्वामी है। अध्यात्म मे चमू, ८ प्राण हैं। यज्ञ मे ये चमू ८ ग्रह है।

यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यम्) जिस सोम अर्थात् ऐश्वर्य को (श्येन.) बाज के समान आक्रमण करने वाला पराक्रमी सेनापति (रजांसि तिरः) समस्त शत्रु जनों को पराजित करके (अस्पृतम्) शत्रुओं से अछूते या अनुपयुक्त रूप मे ही (पदा) पदाति सैन्य द्वारा (ते आ भरत्)

तेरे लिये ले आता है (अस्य त्वम् ईशिषे) उसका तू ही स्वामी है। तू ही उसका (पिब इत्) उपभोग कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[८३]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ विश्वे देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९ गायत्री। ३ निचृद् गायत्री। ४ पादनिचृद् गायत्री। ७ आर्ची स्वराड गायत्री। ८ विराड गायत्री।

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये १

भा०—(वयम्) हम लोग (वृष्णाम्) जलों के वर्षक (देवानाम्) दीप्तिमान् किरणों के समान (वृष्णाम्) बलवान्, सुखदायक और (देवानाम्) तेजस्वी, व्यवहारकुशल और विजयेच्छुक वीरों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों के (इत्) ही (महत् अवः) बड़े भारी ज्ञान, रक्षा बल, प्रेम आदि की (अस्मभ्यम् ऊतये) हमारी अपनी रक्षा के लिये (वृणीमहे) चाहते हैं, उसे ही सबसे अच्छा मानते है।

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा।
वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य, वृत राजा वा सभापति, (मित्रः) प्रजा का स्नेही, (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायशील ये सब (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उत्तम ज्ञानसम्पन्न और (वृधासः च) बढ़ाने और दुष्टों का मूलोच्छेद करने वाले (युजः सन्तु) सहायक हों।

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ। यूयमृतस्य रथ्यः॥३॥

भा०—हे (ऋतस्य रथ्यः) महारथियोंवत् सत्य ज्ञान और न्याय के प्राप्त कराने वाले जनो! आप लोग (नः) हमें (नौभिः अपः न) नौकाओं से जलों के समान (विष्पिता) विविध रूपों से प्राप्त शत्रुओं के बलों वा कर्म-बन्धनों से (अति पर्षथ) पार करो।

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (अर्यमन्) दुष्टों के नियन्तः न्यायकारिन् ! हे (वरुण) सबसे वरणीय ! (नः वामं अस्तु) हमारा उत्तम धन हो । और (वामं शंस्यं अस्तु) हमारा धन प्रशंसनीय हो । और हम (वामं हि आवृणीमहे) उत्तम, सेवन करने योग्य धन वा सुख की ही याचना करते हैं ।

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।
नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट चित्त वालो ! हे (रिशादसः) हिंसक जनों को उखाड़ फेंकने वाले वीर जनो ! आप लोग (वामस्य) उत्तम, सेवने योग्य धन के ही (ईशानासः) स्वामी हो । हे (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा माता तुल्य भूमि के पुत्रवत् सेवक जनो ! (यत्) जो धन (अघस्य) पाप का है (न ईम् ईशानासः) आप लोग उसके स्वामी न हों । हम भी ऐसे धन की कामना नहीं करते । सदा पुण्य की कमाई हमें प्राप्त हो । इति तृतीयो वर्ग. ॥

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना ।
देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील (देवाः) नाना उत्तम कामनाओं वाले, व्यवहारकुशल पुरुषो ! (वयम् इत्) हम ही (क्षियन्तः) निवास करते हुए और (अध्वन् यान्तः) मार्ग में जाते हुए भी (वः) आप लोगों की (वृधाय) वृद्धि के लिये (हूमहे) बुलाते हैं ।

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! हे (अश्विना) उत्तम अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामियो ! हे (मरुतः) वायु-वत् बलवान्, विद्वान् पुरुषो वा व्यापारी जनो ! (सजात्यानां एषां)

समान जाति वाले इन मे से (नः) हमें भी (अपि इत्) जानो और अपने अधीन लेवो।

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या। मातुर्गर्भे भरामहे ॥८॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम कल्याणजनक दान देने वाले पुरुषो! हम लोग (मातुः गर्भे) माता के गर्भ मे रहकर जिस प्रकार (भ्रातृत्वं) भाईपन और (समान्या द्विता) समान रूप से मान आदर करने योग्य 'द्विता' अर्थात् युगल भाव को प्राप्त करते है उसी प्रकार (मातुः) ज्ञानोपदेष्टा ब्रह्म ज्ञान के दाता, विद्या जन्म द्वारा उत्पादक आचार्य और सर्वोत्पादक सर्वपोषक माता भूमि के (गर्भे) शासन, विद्या-ग्रहणकाल मे रहते हुए परस्पर के (भ्रातृत्वं) भातृत्व, और (समान्या द्विता) समानो के योग्य दो-पन या युगल भाव को (प्र भरामहे) उत्तम रीति से धारण करे।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः।
अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो! (यूयं) आप लोग (इन्द्र-ज्येष्ठाः) अन्न देने वाले, शत्रु के नाशक, ऐश्वर्यवान् और सत्य ज्ञानदर्शी को अपना ज्येष्ठ मानने वाले और (अभि-द्यवः) स्वयं तेजस्वी, (स्थ हि) अवश्य होवो। (अध चित् उत)और भी मैं (वः ब्रुवे) आप लोगो को उपदेश करू। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८४]

उशना काव्य ऋषि. ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द.—१ पादनिचृद् गायत्री। २ विराड् गायत्री। ३, ६ निचृद् गायत्री। ४, ५, ७—९ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्। अग्निं रथं न वेद्यम् १

भा०—मैं (वः) आप लोगो के प्रति और आप लोगो मे से (प्रेष्ठं) सब से अधिक, सर्वप्रिय, (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (मित्रम्

इव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रीतिकारक, (रथं न) रथ के समान (वेद्यम्) धन जन, देशान्तर प्राप्त करने के उत्तम साधन वा उपदेश वचन के समान रम्य और ज्ञानप्रद (अग्निं) अग्निवत् अग्रणी, नायक, विद्वान् पुरुष की (स्तुषे) स्तुति करता हूं। उक्त गुणों से युक्त पुरुष को नायक वा अग्नि पद के लिये प्रस्तुत करता हूं। अग्रणी नायक में इन गुणों का होना आवश्यक है कि वह सर्वप्रिय, पूज्य, सर्वस्नेही और लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ हो।

कुविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता। नि मर्त्येष्वादधुः॥२॥

भा०—(यम्) जिस के (कविम् इव प्रचेतसम्) विद्वान् मेधावी पुरुष के समान उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (देवासः) विद्वान् जन (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (द्विता नि आदधुः) दो प्रकार से स्थापित करते है। पूज्य रूप से और कार्यसञ्चालक रूप से। इसी प्रकार लोक में अग्नि को भी दो प्रकार आहित करते हैं गार्हपत्य और आवहनीव रूप से वा उसका दो कार्यों के लिये प्रभोग करते है एक ताप के लिये दूसरे प्रकाश के लिये। नायक को दो कार्यों के लिये स्थापित करते है मार्ग दर्शाने या ज्ञान देने और शासन करने के लिये।

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः।
रक्षा तोकमुत त्मना॥ ३॥

भा०—हे (यविष्ठ) युवतम, उत्तम युवा पुरुष! बलवन्! (त्वं) तू (दाशुषः) जीवन, धन, ज्ञानादि देने वाले (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालन कर और उन की (गिरः) वाणियों को (शृणुधि) आदर से श्रवण कर (तोकम्) पुत्र आदि सन्तति की (त्मना) अपने आत्म सामर्थ्य से (रक्ष) रक्षा कर।

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्।
वराय देव मन्यवे॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक ! तेजस्विन्! हे (अंगिरः) अंग अर्थात् देह में रसवत् बलशालिन्! (ऊर्जः नपात्) वीर्य से उत्पन्न, पुत्रवत् बल से उत्पन्न वा बल वीर्य का पतन या नाश न होने देने वाले ! हम लोग (वराय) वरण करने योग्य (मन्यवे) तेजस्वी, मननशील (ते) तुझ पुरुष की (उपस्तुतिम्) उपस्तुति, गुणवर्णना (कया) भला किस प्रकार की जिह्वा या वाणी से करें । तू स्वयं इतने २ गुणसम्पन्न सर्वथा वरने योग्य है ।

दाशे॑म॒ कस्य॒ मन॑सा य॒ज्ञस्य॒ सह॑सो यहो ।
कदु॑ वोच इ॒दं नमः॑ ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) शत्रुविजयी बल सामर्थ्य से स्वयं उत्पन्न हम लोग (कस्य) किस (यज्ञस्य) पूज्य, दानी, सत्संगयोग्य के (मनसा) ज्ञान वा मन से युक्त होकर (दाशेम) दान करें, अपने को सौंपें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

अधा॒ त्वं हि न॒स्करो॒ विश्वा॑ अ॒स्मभ्यं॑ सुक्षि॒तीः ।
वाज॑द्रविणसो॒ गिरः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(अध) और (त्वं ही) तू ही (नः) हम (विश्वाः सुक्षितीः) समस्त प्रजाओं को उत्तम (करः) बना, और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजद्रविणसः सुक्षितीः करः) अन्न और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाली ऐश्वर्यवती भूमियां कर । और हमारे उपकार के लिये (गिरः वाज-द्रविणसः) ज्ञानसम्पन्न वाणियों का उपदेश कर, हमें भी उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानी और उपदेष्टा बना ।

कस्य॑ नू॒नं परी॑णसो॒ धियो॑ जिन्वसि दम्पते ।
गोषा॑ता॒ यस्य॑ ते॒ गिरः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (दम्पते) गृहपते ! हे दमन, शासन, दण्ड व्यवस्थादि के पालक ! (यस्य ते) जिस तेरी (गिरः) वाणियां (गो-साता) हमें

(नरा) उत्तम पुरुषो ! (अदाभ्य छर्दिः यन्त) अहिंसक, सुखदायक गृह प्रदान करो । इति सप्तमो वर्गः ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्थास्तुवतो अश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान रस का पान करने और आनन्दकारी वीर्य की रक्षा के लिये हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! आप दोनों वर्ग (इत्था स्तुवतः) सत्य का उपदेश करने वाले विद्वान् (दाशुषः गृहम्) ज्ञानदाता गुरु के गृह को (गच्छतम्) जाओ ।

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् ब्रह्मचारी जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) आनन्दकारक, सुखजनक 'सोम' विद्या माता के गर्भ मे उत्पन्न होने वाले शिष्य रूप पुत्र के पालन और उस को ज्ञान रस पान कराने के लिये (वीडु-अंगे रथे) दृढांग रथ मे (रासभं) उत्तम ध्वनि से अलंकृत अश्व के समान (वीडु अंगे) दृढ अंगो को करने मे समर्थ (रथे) उत्तम उपदेश प्राप्त करने के योग्य आश्रम, ब्रह्मचर्य काल मे (रासभं) उत्तम उपदेश से अलंकृत आचार्य को (युंजाथाम्) नियुक्त करो ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर वेदज्ञान के पान और वीर्य के पालन करने लिये (त्रि-वन्धुरेण) तीन बन्धनों वाले, (त्रिवृता) तीन वार वटे, तीन प्रकार से अभ्यस्त (रथेन) स्थिर होकर रहने योग्य, ब्रह्मचर्य आश्रम के धर्म पालन से (आयातम्) आगे बढ़ो ।

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥ ८ ॥

दोनों, (मे हवम्) मेरे यज्ञ को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर अन्न रस पान करने के लिये (आ गच्छतम्) आइये ।

इमं मे स्तोमंमश्विनेमं मे शृणुतं हवंम् ।

मध्व. सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (मे इमं स्तोमं हवम्) मेरा यह स्तुति योग्य आह्वान वा उपदेश को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के पान के लिये (शृणुतम्) श्रवण करो ।

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों वालो ! हे (वाजिनीवसू) वल-युक्त सेना के धनी सैन्य और सेनापते ! (मध्वः सोमस्य पीतये) वलयुक्त शत्रु को कंपाने मे समर्थ 'सोम' ऐश्वर्य और वल के पालन करने के लिये (अयं) यह (कृष्णः) शत्रु को कर्षण या पीड़ित करने वाला राजा (वां हवते) तुम दोनों को अपने पास बुलाता है ।

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नर-नारियो ! आप (मध्वः सोमस्य पीतये) सुखदायक सोम, वल वीर्य के पालन करने के लिये (स्तुवत. जरितुः) उपदेश करने वाले विद्वान्, (कृष्णस्य) संशयों के उच्छेदन मे समर्थ विद्वान् के (हवं) आह्वान या वचन का (शृणुतं) श्रवण करो ।

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान रस के पान करने के लिये (स्तुवते विप्राय) उपदेश देने वाले विद्वान् को हे

ज्ञान वाणियो और भूमियों के विभाग या प्रदान करने के लिये है वह तू (कस्य परीणसः) किस महान् पुरुष के निमित्त (धियः जिन्वसि) नाना कर्म करता है वा किस के प्रति बहुत सी स्तुतियों, बुद्धियों को प्रेरित करता है ।

त मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु ।
स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—(तं) उस (सु-क्रतुं) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (आजिषु) संग्रामों मे (पुरः-यावानं) आगे प्रयाण करने हारे और (स्वेषु क्षयेषु) अपने ऐश्वर्यों वा गृहो मे भी (वाजिनम्) बल, ज्ञान और वेग से अनालसी होकर कार्य करने वाले को (मर्जयन्त) सादर अलंकृत करो ।

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः ।
अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (क्षेमेभिः) कल्याणकारी, (साधुभिः) उत्तम कार्यसाधक पुरुषों और उपायों सहित (क्षेति) रहता और ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, (यं नकिः घ्नन्ति) जिसको कोई भी मार नहीं सकते है । वह हे (अग्ने) अग्निवत् ज्ञानिन्, तेजस्विन्, प्रतापशालिन् ! तू (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् होकर (एधते) वृद्धि को प्राप्त करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥

[८५]

कृष्ण ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ९ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४, ६, ८ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचरणो से रहित, सदा सत्यभाषी हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वशी स्त्रीपुरुषो ! (युवम्) तुम

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के ग्रहण के लिये हे (नासत्या) सदा सत्य के धारण करने वाले ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो (तू) शीघ्र ही (मे गिरः युव प्रावतम्) मेरी उपदिष्ट वेदवाणियों का आप उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८६]

कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः । ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् १

भा०—हे (दस्रा) रोगादि के नाशक (उभा) आप दोनो (भिषजा) भय से बचाने वाले, प्रेमपूर्वक मिलने जुलने वाले, वा रोगों को दूर करने वाले (मयः-भुवा) सुख के देने वाले, और (उभा) दोनो (दक्षस्य वचसः) बलयुक्त कर्म समर्थ वचन के बोलने वाले (बभूवथुः) होवो । (ता वां) आप दोनों को (विश्वकः) समस्त मनुष्य (तनू-कृथे) अपने देह के रक्षा के निमित्त (हवते) बुलाते है । आप दोनों (सख्या) मित्रता से (नः) हमें (मा वि यौष्टं) पृथक् न करो, सब से प्रेम रक्खो और (नः मा मुमोचत्) हमे त्याग न करो ।

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये । ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् २

भा०—(नूनं) निश्चय ही (वि-मनाः) विपरीत चित्त वा ज्ञान वाला वा अज्ञानी मनुष्य (वां) तुम दोनो की (कथा उपस्तुवत्) कैसे गुण स्तुति कर सकता है ? (युवम्) तुम दोनो (इष्टये) इच्छा पूर्ति के लिये (धियं वस्यः ददथु.) उत्तम बुद्धि और उत्तम धन प्रदान करते हो । (ता वां) उन आप दोनों को (तनू कृथे विश्वक. हवते) अपने

देह के सुखार्थ सभी बुलाते है। तुम दोनो (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमे मित्र भाव से पृथक् मत करो और (वि मुमोचतम्) विविध दुःखों से छुडाओ वा सखित्व से हमे (मा वि मुमोचतम्) मत त्याग करो।

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे दुदथुर्वस्य इष्टये। ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥३॥

भा०—हे (पुरु-भुजा) बहुतों को पालन करने मे समर्थ पुरुषो! आप दोनों (विष्णाप्वे) व्यापक शक्तिमान् प्रभु को प्राप्त करने वाले को (इष्टये) यज्ञ के निमित्त (वस्यः) उत्तम धन और (एधतुं ददथुः स्म) वृद्धि के साधन देते रहो। (ता वां० इत्यादि पूर्ववत्)

उत त्यं वीरं धनुसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तुमवसे हवामहे। यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (त्यं वीरं) उस वीर, बलवान् और विद्यावान् (धनसा) धन के दानी और धन के प्राप्त करने मे कुशल, (ऋजीषिण) धर्ममार्ग मे सञ्चालक और शत्रुनाशक सैन्य के चालक ऐसे (दूरे चित् सन्तं) दूर देश मे रहते हुए पुरुष को भी हम (अवसे) रक्षा और ज्ञान लाभ के लिये (हवामहे) बुलावे। (यस्य) जिस की (स्वादिष्ठा सुमतिः) अति सुखदायिनी शुभ प्रज्ञा (यथा पितुः) पिता के समान हित में प्रवृत्त कराती हो, हे विद्वान् पुरुषो! (नः मा वियौष्टं) हमे अपने से पृथक् न करो (सख्या मा मुमोचतम्) अपने मित्रभाव से हमे परित्याग न करो।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे। ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य के समान तेजस्वी, (सविता) सब का प्रेरक, सब का उत्पादक प्रभु (ऋतेन) सत्य ज्ञान-मय वेद से (शम् आयते) सब को शान्ति सुख प्रदान करता है। और वह (ऋतस्य श्रृङ्गम्) तेज के अन्धकारनाशक प्रकाश के समान असत्य, अविद्या के नाशक सत्य के प्रकाश को (उर्विया पप्रथे) बहुत अधिक फैलाता है। (ऋतं) सत्य ही (महि चित् पृतन्यतः) बड़े २ वा शत्रुओं को भी (सासाह) पराजित करता है। (नः मा सख्या वि यौष्टं) हमें मित्रता से वियुक्त न करो और (मा वि मुमोचतम्) हमें भी परित्याग मत करो। इति नवमो वर्गः ॥

[८७]

कृष्णो द्युम्नी द्युम्नीको वा वासिष्ठ आगिरसः प्रियमेधो वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पंक्ति. ॥ षड्रृच सूक्तम् ॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥

भा०—(सेके क्रिविः न) संचय करने के लिये प्रचुर जल वाला कूप जिस प्रकार (द्युम्नी) उत्तम अन्नोत्पादक होता है उसी प्रकार (वां) आप दोनों का (स्तोमः) स्तुति वचन वा उपदेश (द्युम्नी) अपरिमित ज्ञान का देने वाला होता है। हे (अश्विना) विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आइये। (सः) वह (दिवि प्रियः) ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त अति पूर्ण है। हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! दोनों (मध्वः सुतस्य) मधुर ज्ञान का (इरिणे गौरौ इव) जलाशय में दो गौर नाम मृग युगल के समान (पातं) पान करो। अथवा (इरिणे) शुष्क भूमि में (गौरौ इव) सूर्य-मेघवत् मधुर जल के समान ज्ञान का पान कराओ।

पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्ववत् राष्ट्र के भीतर नियुक्त जनो के स्वामी जनो ! आप दोनो (नरा) नायक जन (बर्हिः) आसनवत् इस राष्ट्र प्रजाजन के ऊपर (आ सीदतम्) अध्यक्षवत् विराजो और (मधुमन्तं) बलयुक्त (घर्मं) तेज और रस का मधुयुक्त ओषधि-रसवत् पान, उपभोग और संरक्षण करो । (मनुषः दुरोणे) मनुष्य के आश्रय रूप गृह के समान उत्तम रक्षा स्थानवत् (मनुषः दुरोणे) सर्वसाधारण मनुष्य के लिये दुष्प्राप्य राजपद पर (मन्दसाना) अति हर्ष लाभ करते हुए (ता) वे आप दोनो (वेदसा) धन के द्वारा (वयः) राष्ट्र के बल, जीवन और अन्न समृद्धि की (निपातम्) रक्षा करो । इसी प्रकार प्रत्येक गृह में स्त्री पुरुष आसन पर बैठे, मधुर रस युक्त अन्न, ओषधि रस पान करें । सुप्रसन्न होकर धन और ज्ञान से जीवन की रक्षा करें ।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम नायको ! उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (प्रिय-मेधाः) अन्न, सत्संग, यज्ञ, युद्ध आदि के प्रिय जन (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की प्रीतियों तथा रक्षा-साधनों सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को प्रेम से आह्वान करते है । (ता) वे दोनों आप, (वृक्त-बर्हिषः) कुशाओं के समान अन्य संशयों, और शत्रु जन वा मानसिक दुर्विचार काम, क्रोधादि रिपुओ को उच्छेद करने वाले के (वर्त्तिः) गृह पर (उप यातम्) उपस्थित होवो, और (दिविष्टिषु) प्रति प्रातःकाल के अवसरों मे वा (दिवः) उत्तम कामनाओं की पूर्त्ति के लिये (यज्ञं) देव-पूजन और यज्ञ सत्सगादि को (उप जुष्टं) नित्य सेवन करो ।

पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत्।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (सुमत् बर्हिः सीदतम्) उत्तम आसन और प्रजा जन पर अध्यक्षवत् विराजो। और (मधुमन्तं सोमं पिबतम्) मधुर आनन्द युक्त ऐश्वर्य का अन्नवत् उपभोग करो। (ता) वे आप दोनो (वावृधाना) सदा वृद्धि प्राप्त करते हुए (दिवः सु-स्तुतिं) ज्ञान के उत्तम उपदेश, कीर्त्ति को (इरिणं गौरौ इव) जलाशय को मृगयुगल के समान (उप गन्तम्) प्राप्त होवो।

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) शीघ्र गमन करने वाले अश्वो और इन्द्रियों के स्वामी, नायक जनो ! आप दोनों (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, पूर्ण वा जलादि से सिक्त अभिषेचित रूप वाले (अश्वेभिः) अश्वों और विद्यावान् पुरुषों सहित (नूनं आयातम्) अवश्य आवो। आप दोनों (दस्रा) बाह्य अन्तःशत्रुओं के नाशक (हिरण्य-वर्त्तनी) सुवर्ण के रथ वाले वा हित-रमणीय मार्ग के अवलम्बक (शुभः-पती) उत्तम शोभा वा कल्याण के पालक, (ऋत-वृधा) सत्य ज्ञान के वर्धक और सत्य के बल से बढ़ने वाले आप दोनों (सोमम् पातम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो।

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! हे अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (वां हि विपन्यवः) हम स्तुतिकर्त्ता और विविध व्यवहार-कुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य और ज्ञान के प्रदान और प्राप्ति के लिये (वा हि हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं। (ता) वे आप दोनों (वल्गू) कुशल आचरण वाले, (दस्रा) दुष्ट

कर्मों के नाशक (पुरु दंससा) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाले हो कर (धिया) कर्म और ज्ञान के बल से (श्रुष्टी आगतम्) शीघ्र ही उद्देश्य को प्राप्त होवो । इति दशमो वर्गः ॥

[८८]

नोधा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद बृहती । २, ४ पंक्तिः । ६ विराट् पक्तिः ॥ षड्टृच सूक्तम् ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभिवत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (अन्धसः) अन्नवत् उपभोग्य (वसोः) राष्ट्र में बसे प्रजा जन और (वसोः) धन राशि से (मन्दानम्) अति हर्षित (तं) उस (दस्मम्) शत्रुनाशक और (ऋति-सहं) शत्रुओं के पराजयकारी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति की हम लोग (स्वसरेषु) स्वय वा सुख से बीतने वाले दिनों मे, गोष्ठो मे (अभिवत्सं न धेनवः) बच्छे के प्रति गौओं के समान (स्वसरेषु) सब दिनों (गीर्भिः नवामहे) वाणियों से स्तुति करें ।

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (द्युक्षं) दीप्ति युक्त (सु-दानुं) उत्तम दानशील, (तविषीभि. आवृतं) नाना सेनाओं से घिरे (गिरि न) मेघ के समान (पुरु-भोजसं) बहुतो के पालक, स्वामी से (क्षुमन्तं) अन्नादि से युक्त (शतिनं सहस्रिणं) सौ हजार-आदि से युक्त, (गोमन्तं वाजं) भूमि, पशु धनों आदि से समृद्ध ऐश्वर्य की याचना करें और प्राप्त भी करें ।

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

भा०—(बृहन्त) बडे २ (वीडव.) बलशाली, (अद्रय.) मेघों

वा पर्वतों के समान बाधक जन भी (त्वा न वरन्ते) तुझे निवारण नहीं करते। (यत्) जो तू (मावते स्तुवते) मुझ सदृश स्तुति करने वालों को (वसु दित्ससि) धन देना चाहता है (ते तत् न किः आमिनाति) तेरे उस संकल्प का कोई भी नाश नहीं कर सकता।

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४ ॥

भा०—(यम्) जिस (त्वा) तुझ को (अर्क) स्तोता वा तेरे गुण बतलाने वाला वेदमन्त्र (ऊतये आववर्तति) रक्षा के लिये अपने अभिमुख करता है, (यं गोतमाः अजीजनन्) जिस को वेदवाणियें वा उत्तम विद्वान् वाणी द्वारा प्रकट करते है वह तू (क्रत्वा) कर्म-सामर्थ्य और ज्ञानसामर्थ्य, (शवसा) बल (उत दंसना) और कर्म और (मज्मना) आज्ञापक प्रभाव या गर्जना से (विश्वा जातानि अभि) सब पदार्थों के प्रति (योद्धा असि) शत्रुओ से लड़ने हारा उन पर प्रहार करने, पछाड़ने मे समर्थ है। अथवा, (क्रत्वा, शवसा दंसना यः अद्धा असि) ज्ञान, बल, कर्म, से जो सत्य है और जो (विश्वा जाता अभि मज्मना) समस्त पदार्थों को अपने बल से धारता है।

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ओजसा) बल पराक्रम से (दिवः अन्तेभ्यः परि) आकाश और पृथिवी के परले छोरों तक भी (प्र रिरिक्षे हि) सब से अधिक बलशाली है। तू (पार्थिवम् रजः अनु स्वधां ववक्षिथ) पृथिवी लोक पर जलवत् जीवन तत्त्व को प्राप्त कराता है, तू महान् है और (न त्वा विव्याच) तुझे कोई व्याप नहीं सकता।

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ६ ॥ ११॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (दशस्यसि) दान करता है उस (तं) तेरे (मघस्य) उत्तम धन का (परिष्टिः) बाधक (नकिः) कोई नहीं है। तू (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, ज्ञान-प्रदान करने मे (मंहिष्ठः) अति पूज्य दानी, और (चोदिता) सन्मार्ग मे प्रेरक है। तू (अस्माकं उचथस्य बोधि) हमारे वचन, स्तुति को जान। इत्येकादशो वर्गः ॥

[८९]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ बृहती। ३ निचृद् बृहती। २ पादनिचृत् पंक्तिः। ४ विराट् पंक्तिः। ५ विराडनुष्टुप्। ६ निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

भा०—हे (मरुतः) परिमित भाषण करने वाले, विद्वान् पुरुष ! (येन) जिससे (ऋत-वृधः) सत्य के बढ़ाने वाले, (देवाय) प्रकाश-स्वरूप, सर्व ऐश्वर्यप्रद प्रभु को जानने के लिये (देवं जागृवि ज्योतिः अजनयन्) प्रकाशक, सदा जागृत, कभी न बुझने वाली ज्ञानज्योति को प्रकट कर लेते है उस (वृत्र-हन्तमम्) विघ्न बाधा, रूप, अन्तःकरण के आवरक को नाश करने वाले (बृहत्) बड़े उत्तम बृहत नाम स्तोम का (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (गायत) गान करो। अथवा (इन्द्राय वृत्र-हन्तमम् बृहत् गायत) उस प्रभु के सर्व विघ्न-बाधक इस महान् तेजोमय स्वरूप का गान करो।

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥

भा०—(अशस्तिहा इन्द्रः) अपकीर्त्तियों और स्तुत्यादि से रहितों का नाशक वह ऐश्वर्यवान्, (अभिशस्ती अप अधमत्) आक्रामक हिंसकों के

आक्रमणों को परे कर देता है, उनको संतप्त करता है, (अथ) और वह (द्युम्नी अभवत्) यशस्वी, ऐश्वर्यवान् होजाता है। हे (बृहद्-भानो) महान् तेजस्विन्! हे (मरुद्-गण) बलवान् गणों के स्वामिन्! (देवाः) विजयेच्छुक, दानशील जन (ते सख्याय येमिरे) तेरे सख्यभाव प्राप्त करने के लिये अपने को नियम में बांधते हैं।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) बलवान् शत्रुहन्ता एवं परिमितभाषी जनो! आप लोग (बृहते इन्द्राय) बड़े २ ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ब्रह्म अर्चत) महान् सामर्थ्य की स्तुति करो। वह (वृत्रहा) दुष्टों का हन्ता (शत-क्रतुः) अपरमित ज्ञानी, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों पर्वों से युक्त वज्र, बल, सैन्य वा ज्ञान से (वृत्रं) दुष्ट शत्रु और अज्ञान का (हनति) नाश करता है। 'वज्र'—अज्ञान का वर्जन करने से ज्ञान वज्र है।

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (धृषन्-मनः) शत्रुओं को पराजय करने वाले मन और अन्त:शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ मन वा ज्ञान वाले जन! (ते) तेरा (बृहत् श्रवः असत्) बड़ा भारी यश और ज्ञान हो। तू उस ज्ञान वा यश को (धृषता) बाह्य और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने वाले बल से (अभि प्र भर) धारण कर। (मातरः) माताओं के समान, सर्वप्रिय (आपः) आप्तजन (वि अर्षन्तु) मेघ से जल धाराओं के समान विविध प्रकार से प्राप्त हों। और तू (वृत्रं हनः) दुष्ट का नाश कर और (स्व जय) सबका विजय कर। हे ज्ञानिन्! तू अन्धकार रूप अज्ञान का नाश करके परम सुख पर विजय प्राप्त कर।

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मघवन्) तेजोमय ! ऐश्वर्यवन् ! हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व विद्यमान ! (यत्) जो तू (वृत्र-हत्याय) बढते शत्रुवत् अज्ञान के नाश करने के लिये (अभि प्र जायथाः) समर्थ होता है, (तत्) वह तू (पृथिवीम् अप्रथयः) पृथिवी को विस्तृत करता है, (उत) और (द्याम् अस्तभ्नाः) आकाश वा सूर्य को दृढ वा स्थिर करता है। उसी प्रकार परमेश्वर जब प्रकृति के सलिलमय, तमोमय परमाणु रूप को आघात करता है उससे ही यह भूमि बनती और सूर्य आदि लोक भी उसी के बल से स्थिर है।

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥

भा०—तब ही हे प्रभो ! (ते यज्ञः अजायत) तेरा महान् यज्ञ होता है (तत् ते अर्कः) वही तेरा महान् स्तुति योग्य ज्ञान है। (उत हस्कृतिः) वही तेरा ब्राह्म दिनवत् हर्ष का विलास है। (तत्) वह तू (विश्वम् अभि भूः असि) समस्त विश्व का उत्पादक है (यत् जातं यत् जन्त्वम्) जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होगा उस सबका उत्पादक तू ही है।

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (आमासु) कच्ची, मृदु भूमियों में (पक्वं) परिपाक योग्य, तेज, वीर्य को (ऐरयः) प्रदान करता है, और (दिवि) आकाश में (सूर्यं आरोहयः) सूर्य को स्थापित करता है। (गिर्वणसे) वाणी से सेवने योग्य उस प्रभु के (जुष्ट) प्रिय (बृहत्) बड़े भारी (घर्मं) तेज को (सामन्) सामस्तुति द्वारा (सु-वृक्तिभिः)

और उत्तम स्तुतियों द्वारा (घर्म न) सूर्य प्रकाशवत् (तपत) तपो; उसका सेवन कर तपश्चर्या करो। तपश्चर्या से उसके तेज को धारण करो॥ इति द्वादशो वर्गः॥

[९०]

नृमेधपुरुमेधावृषी॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती। ३ विराड् बृहती। ५ पादनिचृद् बृहती। २, ४ पादनिचृत् पङ्क्तिः। ६ निचृत् पङ्क्तिः॥ षड्‌ऋचं सूक्तम्॥

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः॥१॥

भा०—(हव्यः इन्द्रः) सबसे पुकारने, संकटों के समय बुलाने योग्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमारे (विश्वासु समत्सु) समस्त संग्रामों में (आ भूषतु) सदा सज्ज रहे। वह (वृत्र-हा) बढ़ते शत्रु का नाशक, (परम-ज्याः) बड़ी प्रबल डोरी वाला, बड़े २ शत्रुओं का बड़ा नाशक और (ऋचीषमः) यथार्थ गुण-स्तुति के अनुरूप होकर वह (सवनानि) समस्त ऐश्वर्यों और (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को भी (उप भूषतु) प्राप्त हो। (२) परमेश्वर सब आनन्दावसरों में हमें समर्थ करे, हमारे यज्ञादि उपासना कालों में वह विघ्न-हर्त्ता सदा स्मरण रहे।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः॥२॥

भा०—(त्वं) तू (राधसां प्रथमः दाता) समस्त ऐश्वर्यों का प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट दाता है, तू (सत्यः) सत्यस्वरूप, (ईशान-कृत्) सबका स्वामी, जगत् का कर्त्ता है। तू सब बड़े राजा, धनाधिपों का भी बनाने वाला है। (तुवि-द्युम्नस्य) बहुत से धनों, ऐश्वर्यों से सम्पन्न (महः शवसः पुत्रस्य) बड़े भारी बल के कारण बहुतों की रक्षा करने में समर्थ तेरे ही

(युज्या) सहयोगो, मित्रताओं और सहायताओ की (वृणीमहे) याचना करते है।

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे लिये (अनतिद्भुता) यथार्थ गुणानुरूप (ब्रह्मा) धन और स्तुतिवचन वा अन्नादि सत्कार (क्रियन्ते) किये जावे। हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय ! वाणियों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (हर्यश्व) अश्वोंवत् मनुष्यो के स्वामिन् ! हम (या ते) तेरे लिये या जिन भी (योजना) उचित गुण भोगो की (अमन्महि) चिन्तना करते है तू (इमा जुषस्व) इन सबको स्वीकार कर।

त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अनानतः) किसी से भी नहीं झुकता, (त्वं हि सत्यः) तू ही सत्य स्वरूप है। तू (भूरि-वृत्रा) वहुत से विघ्नों और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो को (नि-ऋञ्जसे) अपने वश करने में समर्थ है। हे (शविष्ठ) अति वलशालिन् ! हे (वज्र हस्त) हाथ में वल, वीर्य और खड्ग धारण करने हारे ! (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील को (रयिम् अर्वाञ्च कृधि) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओ के हन्तः ! हे ऐश्वर्यप्रद ! (त्वं यशाः असि) तू यशस्वी है। हे (शवसः पते) वलो के पालक ! (त्वं ऋजीषी असि) तू सत्य मार्ग में सवको चलाने हारा और शत्रु को पीडित करने वाले सैन्यादि का शासक है। (त्वं) तू (अप्रतीनि) वे-मुक़ावले के (वृत्राणि)

मेघस्थ जलोंवत् अति प्रबल दुष्टों और शत्रुओं को भी (एकः इत्) अकेला ही (हंसि) दण्डित करता है, और तू (चर्षणीधृता) समस्त मनुष्यों को धारण करने वाले बल से (अनुत्ता) अपराजित शत्रुओं को भी पराजित करता है।

तमु॑ त्वा नू॒नम॑सुर॒ प्रचे॑तसं॒ राधो॑ भा॒गमि॑वेमहे।
म॒हीव॒ कृत्तिः॑ शर॒णा त॑ इन्द्र॒ प्र ते॑ सु॒म्ना नो॑ अश्नवन् ॥६॥१३॥

भा०—हे (असुर) प्राण, जीवन के देने वाले! हे बलशालिन्! (प्र-चेतसं) उत्कृष्ट चित्त वाले (त्वा) तुझ से (भागम् इव राधः ईमहे) अपने पिता से प्राप्तव्य भाग के समान ही हम धन की याचना करते हैं। (ते) तेरा (कृत्तिः) श्रमपूर्वक काट कर संग्रह करने योग्य खेती (ते शरणा) तेरी शरणदायिनी सम्पदा (मही इव) यह बड़ी भारी भूमि है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते सुम्ना नः प्राश्नवन्) तेरे दिये नाना सुख हमें खूब प्राप्त हों। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९१]

अपालात्रेयी ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। २ पंक्तिः। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ अनुष्टुप्। ५, ६ विराडनुष्टुप्। ७ पाद-निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

क॒न्या॒३॒॑वार॑वाय॒ती सोम॒मपि॑ स्रु॒ताऽवि॑दत्।
अस्तं॒ भर॑न्त्यब्रवी॒दिन्द्रा॑य सुनवै त्वा श॒क्राय॑ सुनवै त्वा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (स्रुता) बहती (अवयती) नीचे की ओर जाती (वाः) जल धारा (सोमम् अपि विदत्) ओषधि वर्ग को प्राप्त होती है उसी प्रकार (वाः) वरण करने वाली वरवर्णिनी, (अवयती कन्या) समझती बूझती हुई कन्या (सोमम्) पुनो-त्पादन मे समर्थ वीर्यवान् विद्याव्रत स्नातक पुरुष को (स्रुता) उस के प्रति प्रेमाकृष्ट होकर (अपि विदत्) पति रूप से प्राप्त करे।

उस से विवाह करे । वह (अस्तं भरन्ती) गृह-आश्रम को भरण या धारण करती हुई (अब्रवीत्) कहे कि मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् , तेजस्वी स्वामी होने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा आदर करती हूं, अथवा तुझे ही पुत्र रूप से उत्पन्न करने के लिये (त्वा) तुझे वरण करती हू । इसी प्रकार (शक्राय) शक्तिशाली स्वामी प्राप्त करने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा सवन, पूजन करती हू ।

असौ य एषि वीरको गृहङ्गृहं वि चाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ॥२॥

भा०—(असौ) वह दूर देश का (यः) जो (वीरकः) वीर्य युक्त पुरुष (एषि) प्राप्त होता है वह तू (गृहं-गृहं) प्रत्येक गृह को (विचाकशत्) प्रकाशित करता है । हे विद्वन् ! तू (इमं) इस (जम्भ-सुतं) जन्म से ही दीप्तियुक्त वा जाया, स्त्री और उसके भरणकर्त्ता पति दोनों से उत्पन्न (धानावन्तं) आधान संस्कार से युक्त (करम्भिणम्) क्रिया-कुशल, शौर्ययुक्त और (अपूपवन्तं) गृह से दूर और गुरु आचार्य आदि के समीप जाने वाले (उक्थिनं) उत्तम बालक का (पिब) पालन कर ।

करोतेरम्बच् प्रत्ययः (उणा०)

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष (त्वा आ चिकित्सामः) हम तुझे जानना चाहते हैं । (त्वा चन न अधि इमसि) हम तुझे अभी नहीं पहचान रहे हैं । हे (इन्दो) गुरु के समीप से नवागत सौम्य ! ऐश्वर्यवन् तेजस्विन् युवक ! तू (शनैः इव शनकैः इव) शनैः शनैः (इन्द्राय) स्वामी या पति पद प्राप्त करने के लिये अधिक आगे बढ, परिचित हो ।

जिस प्रकार बालक को आचार्य मातावत् अपने गर्भ में रखता और स्वीकार करता है उसी प्रकार प्रथम माता भी 'इन्दु या सोम' अर्थात् द्रुत

वीर्य को अपने गर्भ में धारण करती है। वह भी 'इन्द्र' अर्थात् अपने पति के ही निमित्त उसे धारण करती है। वह भी गर्भाशय में शनैः शनैः परिस्रवण करता कमल तक पहुंचता है। यह आशय भी मन्त्र में उपमित रूप में निहित है। इसी मन्त्र पर शाट्यायन ब्राह्मण का वचन है—"सोमपीथ इह वा अस्य भवति य एवं विद्वान् स्त्रियमुपजिघ्रतीति।"

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सङ्गमामहै ॥ ४ ॥

भा०—वह पुरुष जो विवाह करना चाहता है (कुवित् शकत्) स्वयं भी बहुत समर्थ हो, हमें भी बहुत समर्थ करे वह स्वयं भी (कुवित् करत्) बहुत से कार्य करने में समर्थ हो। और वह (नः) हमें (कुवित्) बहुत प्रकार से (वस्यसः करत्) उत्तम धनादि ऐश्वर्य से सम्पन्न करे। (कुवित्) बहुतसी (पतिद्विषः) बन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करती हुई हम स्त्रियां (यतीः) घरों से पृथक् होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, अन्न देने में समर्थ पुरुष से ही (संगमामहै) संगत, सम्बद्ध हो जाती हैं इसलिये स्त्रियों के साथ विवाह करने वाले को चाहिये कि वह अपनी पत्नी को अधिक समर्थ करे, स्वयं भी श्रमशील हो, स्त्रियों को उत्तम वस्त्र-आभूषणादि से भी सन्तुष्ट करे जिससे वह अपने पालक जन की निर्धनता से खिन्न होकर द्रव्यवानों के प्रलोभन में न जावें।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। मनु० अ० ३। श्लो० ५५, ५६, ५९॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् पुरुष ! स्वामिन् (इमानि) ये (त्रीणि) तीनो पदार्थ (वि-तपा) संताप से रहित या अपक्क हो, (तानि) उन तीनों को तू (वि रोहय) विशेष रूप से उन्नत एवं वृद्धियुक्त, सफल होने दे, (१) (ततस्य शिर.) पिता के शिर को ऊंचा कर । अर्थात् विवाह करने वाले को प्रथम अपने वा कन्या के माता पिता के शिर पर के भार को कम करना, उस की चिन्ता को दूर करने का यत्न करना चाहिये जिस से वह कन्या को ले वा देकर भी पश्चात्ताप न करे।(२)(उर्वराम् वि रोहय)जिस प्रकार 'इन्द्र', सूर्य या मेघ उर्वरा भूमि पर बरस कर उसे अन्नादि से सम्पन्न करता है इसी प्रकार विवाहित युवक को चाहिये कि उर्वरा कन्या के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे । (३) (आत् इदं मे उप-उदरे) और यह जो मुझ कन्या के उदर या पेट के समीप अंग या पेट मे स्थित बीज गर्भ रूप से विद्यमान हो । हे (इन्द्र) वपन योग्य भूमि रूप स्त्री के गर्भ में इरा अर्थात् अन्नवत् बीज आधान करने हारे पुरुष ! तू उस को भी (वि रोहय) विशेष रूप से पुष्ट कर, सन्तान को पोषित कर, उस को अधवीच में नष्ट न होने दे ।

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥

भा०—(असौ च) और वह (या) जो (नः) हम मे से (उर्वरा) उत्तम अन्न उत्पादक भूमिवत् सन्तान उत्पादक नारी हो उस को (रोमशा कृधि) पूर्ण यौवनचिह्नों से युक्त होने दे । (मम) और मेरे (इमां तन्वं) इस शरीर को (रोमशा) रोमाञ्चित, पुलकित, पूर्ण वा पुष्टांग युक्त (कृधि) कर । (अथो) और (ततस्य) पिता का (यत् शिरः) जो शिर इस समय चिन्ताग्रस्त, उदास है उस का (रोमशं कृधि) रोमाञ्चित, पुलकित, चिन्तारहित कर ।

अथवा (ततस्य शिरः) सन्तानोत्पादक वर के शिर अर्थात् मुख को भी (रोमशं कृधि) मूछ दाढ़ी वाला वा पूर्णायु होने दे। विवाहेच्छुक पुरुष भी युवा हो। स्त्री भी युवती और उर्वरा हो।

खे रथ॑स्य॒ खेऽन॑सः॒ खे यु॒गस्य॑ शतक्रतो।
अ॒पा॒लामि॑न्द्र॒ त्रिष्पू॒त्व्य॑कृणोः॒ सूर्य॑त्वचम् ॥ ७ ॥ १४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अपरित ज्ञान और कर्म सामर्थ्य वाले ! तू (रथस्य खे) रथ के अवकाश में, फिर (अनसः खे) शकट के अवकाश में और (युगस्य खे) युग नामक यान के मध्य मे इस प्रकार क्रम से (अपालां) अप्राप्तपति, कुमारी कन्या को (त्रिः पूत्वी) तीन प्रकार से लाकर (सूर्यत्वचम् अकृणोः) सूर्य के समान उज्ज्वल रंग-बिरंगे वस्त्रों से आच्छादित कर।

सूक्त-समीक्षा

इस सूक्त में कई समस्याएं है—(मन्त्र १ म०) 'अपाला' वह कन्या है जिसको पालक पति नहीं मिला इस प्रकार प्रत्येक कुमारी कन्या 'अपाला' है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी युवा 'सोम' है। इसका स्पष्टीकरण अथर्व वेद में का० १-सू० ११ में देखो। 'सुता' वह कन्या है जो रजस्वला होकर स्नान कर लेती है। अथवा गुरुगृह मे स्नातिका हो। इसी प्रकार 'सोम' शब्द वीर्यवान् पुरुष वा विद्या और व्रत द्वारा स्नातक दोनो अर्थों को कहता है।

'विदत्'—कन्या जब पति को प्राप्त करती है वह 'पति का वेदन' करती है। 'विदत्' पद उसी प्रकार के विवाह द्वारा पति के वेदन को बतलाता है। (अस्तं) 'अस्त' गृह-आश्रम का वाचक है। उसको धारण करती कन्या पुरुष का सवन करे, आदर करे। क्यो ? उसको अपना स्वामी और अपना परम शक्तिमान् रक्षक बनाने के लिये। अर्थात् 'इन्द्र' और 'शक्र' ये दोनों 'पति' के पद की योग्यता को बतलाते हैं।

(मं० २) उसी पुरुष को 'वीरक' कहा है। वही गृह २ को उज्ज्वल करता हुआ प्राप्त होता है। अर्थात् वही पुत्र होकर कुलदीपकवत् प्राप्त होता है। आगे कन्या पति को उसका कर्त्तव्य बतलाती है कि वह दोनों से उत्पन्न पुत्र का पालन करे।

'जम्भ-सुतं'—जाया च पतिश्च जम्पती। जायतेऽस्यां, जनयति इति वा जाया, विभर्त्ति इति भः उभौ जम्भौ। ताभ्यामुत्पन्नो जम्भसुतः तं। (धानवन्तं) धानम् आधानं, गर्भाधानसंस्कारवन्तं। स्वयं विधिवद् आहितम्। 'करम्भिणं'—करस्वः, करम्भः। करोते रम्भच् प्रत्ययः। क्रियावान् कर्मकुशलः। (अपूपवन्तं) अप दूरे आचार्यगृहे उपवन्तं उपवीतवन्तं। मध्यमपदलोपः। 'उक्थिनं'—उक्थो वेदो गुरूपदेशो वा तद्वन्तम्।

(मं० ३) पहले दोनों अपरिचित होते है वे दोनों परिचय प्राप्त करें। शनैः २ कन्या का पुरुष और पुरुष का कन्या परिचय प्राप्त करे फिर वे पति-पत्नी होने योग्य है। 'इन्दुः'—नव स्नातक कन्या के पति प्रेमार्द्र हो तो उस दशा मे वह 'इन्दु' है, ऐश्वर्यवान् होने से भी 'इन्दु' है। परिचित होकर वाद में वह उसका पति अर्थात् 'इन्द्र' होने के लिये आवे।

(मन्त्र ४) विवाहेच्छुक वर शक्तिमान् क्रियाकुशल हो, जो वधू को भी पर्याप्त वस्त्रालंकार दे सके। जिस की शक्ति, कमाई और धन-सम्पदा से आकृष्ट होकर कन्या अपने पालक माता पिता का मोह छोड़ 'इन्द्र' अर्थात् पति से संगत हो, उसी से दिल मिलाकर रहे।

(पति-द्विपः)—यहां पति शब्द लौकिक पति का वाचक नहीं, प्रत्युत सामान्य पालक (Gardian) का वाचक है। वह सब बन्धु बान्धवों के प्रेम या मोह को त्याग कर भी पति के साथ हो लेती है। ऐसी दशा मे यदि माता पितादि बाधक होते है तो वह उनके प्रति प्रेम त्याग देती है और वर के साथ ही प्रेम बांधती है। वही 'अप्रीति' यहां 'द्विप' पद

का वास्तविक अर्थ है। 'द्विष् अप्रीतौ' द्विष् का अर्थ अप्रीति है। परन्तु वैर अर्थ में द्वेष पद रूढ़ हो गया है।

(मन्त्र ५) विष्टपा = वि-तपा। तप रहित या संतापरहित। तपरहित अपरिपक्व 'ततस्य शिरः' यहां 'तत' वा 'तात' शब्द प्रिय अर्थ में भी है। इसी से। 'पिता' 'पुत्र' दोनों के लिये भी प्रयुक्त होता रहा है। अथवा तनोति सन्ततिम् इति ततः। जो सन्तान उत्पन्न करे वह 'तत' है। इससे यहां प्रियपति का वाचक होकर वरने योग्य पुरुष के लिये कहा है। शिर शब्द मुख के लिये उपलक्षण है, उस का मूंछरहित मुख न होवे, विवाहेच्छुक के प्रति कन्या की तरफ से यह १ म शर्त्त है कि वह सम्बन्ध करने के पूर्व अपने मुख पर बाल आने दे, वेद में 'खलति' आदि शब्द नहीं है, अतः पिता का गंजा शिर अर्थ करना असंगत है। २सरी शर्त्त है 'उर्वरा' कन्या जिसमे अभी गर्भ ग्रहण की शक्ति नहीं आई है, उसे उस योग्य अर्थात् 'उर्वरा' होने दे। (उर्वरा = उरु वरा विशालवराङ्गदेशा। नितम्बिनीत्यर्थः) अर्थात् स्त्री का नितम्ब भाग अच्छा पुष्ट हो। ३सरी शर्त्त है वधू के उदर के समीप के भाग मे भी यौवन चिन्हरूप रोम (Pubes) उत्पन्न हो जावें। अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री की यौवन दशा को 'Puberty' कहा जाता है। उन रोमों से ही यौवन की दशा को वतलाने का प्रकार वेद से लिया है।

अथवा—विवाह मे वंधने वाली समझदार कन्या वर से तीन याचना करे, तीनों बातें 'विष्टप' दुःखरहित हों। (१) (ततस्य शिरः) पिता का शिर संताप रहित हो, कन्या के विवाह के कारण पिता का शिर ऋणादि से ग्रस्त न हो, वह चिन्तातुर न हो, वहुत ऋणादि ग्रस्त होने या आर्थिक आघात लगने को भी 'सिर गंजा होना' चांद पर जूते लगना आदि भावों से कहा जाता है। वह आशय वाद के कथाकारों ने व्यङ्ग मे ले लिया प्रतीत होता है। (२) 'उर्वरा' यदि पिता की भूमि उर्वरा नहीं

अर्थात् उस के गोत्र मे कोई पुत्र नहीं तो अभ्रातृमती कन्या के पेट से उत्पन्न नाती ही उस के वंश का चलाने वाला हो। (मनु का पुत्र-पुत्रिका-विधान) (३) 'मे उपोदरे' मेरे उदर के पास गर्भाशय मे रहे पुत्र का विशेष पालन करना पति का कर्त्तव्य हो अर्थात् जो कन्या का हाथ पकडे उसे उसके गर्भस्थ सन्तान को पालना होगा, कन्या के माता पिता को नहीं। ऐसा बन्धन न हो तो बाद मे पुरुषों मे विलासिता और बढ़े। विवाहित स्त्रियां कष्ट मे पड़ जावें और गर्भहत्याएं खूब हो। जहां ऐसा धार्मिक या नैतिक बन्धन नहीं वहां गर्भपात बहुत होते है।

(मन्त्र ६) ५ वे मन्त्र में कही बातो को ही पुनः कहा है, वे अत्यन्त आवश्यक होने से उन पर वल दिया गया है।

(मन्त्र ७) 'रथस्य खे', 'अनसः खे', 'युगस्य खे'—यहां रथ, अनस, और युग ये तीन प्रकार के यानो के नाम है। वेगवान् यान रथ है, शकट या बैलगाड़ी अनस् है और इन के साहचर्य में युग भी अवश्य कोई रथ है। पाणिनि ने भी 'युग्यं च पत्रे' रथ या वाहनार्थ में युग्य पद निपातन से साधा है। कदाचित् जिस में स्त्री पुरुष की जोड़ी ही बैठ सके वह रथ 'युग' कहाता हो। 'ख' का अर्थ छिद्र यहां नहीं। यहां 'ख' का अर्थ अवकाश भाग है। प्रथम पितृगृह से विदा होते समय कन्या रथ में चढे, फिर लम्बा रास्ता बैलगाड़ी में और पति-गृह के समीप आकर स्वागत पूर्वक तीसरे यान 'युग' में चढ़े। इस स्वागत के अवसर पर वधू को रंगा हुआ उज्ज्वल वस्त्र पहन कर ही बैठना होता था, इस प्रकार यान द्वारा वधू का आगमन इन्द्र द्वारा कुमारी कन्या का त्रि-पवन करना है।

अथवा—पुरुष स्त्री की तीन प्रकार की परीक्षा ले, तीनों मे शुचि पवित्र अर्थात् निर्दोष हो तो ग्रहण करे। 'रथस्य खे' रमण योग्य इन्द्रिय के छिद्र, वे पवित्र हों उन में रोग न हो गुह्यांगों के रोग सिफिलिस, सुजाक, प्रमेह, प्रदर सोमरोगादि न हो, (२) 'अनस ख'

अन प्राणधारणे धातुः । प्राण-ग्रहण के छिद्र नाक, मुंह, फेफड़ा, उन में पीनस रोग, मुखपाक, वैरस्य और भ्रष्ट रोग की फुन्सियां और फेफड़ों में राजयक्ष्मा आदि न हो, (३) 'युगस्य खे' शरीर मे जो युग अर्थात् जोड़ा जोड़ा इन्द्रिय है उन के छिद्रों मे दोष, जैसे नाक दो हैं, उन में गन्धादि न होना या दुर्गन्ध होना या छोटी बड़ी टेढ़ी नाक न होना, आंखे दो है उन की विकृति न हो, काणी या छोटी, बड़ी, न हो, मुख के जवाड़े, हाथ पैर आदि विकृत लंगड़े लूले न हों । इस प्रकार तीनों मे कन्या को पवित्र, शुचि जानकर वह पुरुष उसको सूर्य के समान उज्ज्वल, चमचमाते वस्त्र देता है मानो उज्ज्वल त्वचा अर्थात् आच्छादन वाला करता है ।

'अपाला' अत्रिसुता कहाती है। उसका तात्पर्य यह है कि स्मृतियों में आत्रेयी पद रजस्वलार्थ मे रूढ़ है। वस्तुतः 'अत्रि' ही आत्रेयी है। स्वार्थ मे तद्धित है । जो प्रथम रजस्वला होकर जिस के वर प्राप्त्यर्थ तीन वर्ष व्यतीत न हुए हों वह 'अत्रि' है 'नवयौवना' रजोधर्म युक्त ।

[९२]

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् २, ४, ८—१२, २२, २५—२७, ३० निचृद् गायत्री । ३, ७, ३१, ३३ पादनिचृद् गायत्री । ५ आर्ची स्वराड् गायत्री । ६, १३—१५, २८ विराड् गायत्री । १६—२१, २३, २४, २९, ३२ गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—आप लोग (व) आप के (अन्धसः पान्तम्) खाद्य पदार्थों के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो । और (विश्व-साहं) सब को जीतने वाले, (शत क्रतुं) सैकड़ों

र्मों वाले, (चर्षणीनां) मनुष्यों के बीच (मंहिष्ठं) सब से अधिक ज्ञानी पुरुष की (अभि प्रगायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो।

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं सनश्रुतम्।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (पुरु-हूतं) बहुतो से पुकारने योग्य, बहुतों से स्वीकृत (पुरु-स्तुतं) बहुतो से प्रस्तुत, प्रशंसित (गाथान्यं) गुण गान करने योग्य, वा 'गाथा' वेदवाणी मे प्रसिद्ध, (सन-श्रुतम्) सनातन काल से श्रवण योग्य, वा सनातन ज्ञान वेद का बहुश्रुत विद्वान् वा सन अर्थात् दान के कारण प्रसिद्ध पुरुष को (इन्द्रः इति ब्रवीतन) 'इन्द्र' इस प्रकार कहो उसका नाम 'इन्द्र' रक्खो।

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ३

भा०—(इन्द्रः इत्) वह परम ऐश्वर्यवान् ही (नः महानां) बड़े पूज्य गुणों का और (वाजानां) ऐश्वर्यों वा, ज्ञानों का (दाता) देनें वाला, और (महान् नृतुः) बड़ा भारी नेता, संञ्चालक है वह (अभिज्ञु) उत्तम ज्ञानसम्पन्न होकर (नः आ यमत्) हमे सद् व्यवस्था मे रक्खे। अथवा वह (अभिज्ञु) आगे गोडे किये, विनीत हमे प्राप्त हो।

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥

भा०—(शिप्री) मुकुट धारण करने हारा, मुख नासिकादि मे सुन्दर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सु-दक्षस्य) उत्तम ज्ञान और बल से युक्त (प्र-होषिण.) उत्तम रीति से बलादि देने वाले, (यवाशिर.) यवादि अन्नो से मिलाकर पकाये, (इन्दो.) दीप्ति-तेजोदायक (अन्धस.) स्वादु अन्न को (अपात्) पान करे और उसकी रक्षा करे। इसी प्रकार वह (सु दक्षस्य) उत्तम बलशाली (प्र-होषिणः) उत्तम दानी (इन्दोः)

आर्द्र हृदय, दयालु (यवाशिरः) शत्रुनाशक जनों के प्रमुख (अन्धसः) अन्नादि के भोक्ता, जन को (अपाद्-उ) वह ऐश्वर्यवान् पालन करे ।

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य अन्नादि के पान और पालन या रक्षा के निमित्त आप (तम् इन्द्रम् अभि प्रार्चत) उसी ऐश्वर्यवान् की स्तुति करो, (तत् इत् हि अस्य वर्धनम्) वह ही उस को बढ़ाने वाला है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा। विश्वाभि भुवना भुवत् ६

भा०—(मदानां देवस्य) हर्ष, तृप्ति और सुख के देने वाले (अस्य) इस उत्तम अन्न, प्रजा जन व जगत् का (पीत्वा) पान, उपभोग और पालन करके (देवः) वह तेजस्वी पुरुष स्वामी (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा भुवना अभि भुवत्) समस्त लोको को अपने वश करता है ।

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ७

भा०—हे विद्वन् ! (त्यम् उ) उस ही (सत्रासाहं) समवाय और सत्य के बल से सब को पराजित करने वाले (विश्वासु गीर्षु) समस्त वाणियो वा विद्याओं में (आयतम्) प्रसिद्ध, कुशल, व्यापक पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान-प्राप्ति आदि के निमित्त (वः आच्यावयसि) आप लोगों को प्राप्त करो ।

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(युध्म) युद्धकुशल दुष्टो को ताडने हारे, (सन्तम्) सत्-स्वरूप, (अनर्वाणं) अद्वितीय, (सोमपाम्) जगत् के पालक, (अनप-च्युतम्) अविनाशी, ध्रुव, स्थिर, अपने स्वरूप या स्थान से च्युत न होने वाले, (अवार्य-क्रतुम्) अन्यों से न हटाये जाने योग्य, दृढ पराक्रम वाले,

वा भकाव्य युक्तिमान् (नरम्) सर्व नायक पुरुष को हे विद्वन् ! तू प्राप्त करा।

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम।
अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (ऋचीषम) यथार्थ गुण स्तुति वाले ! तू (नः) हमे (पुरु रायः शिक्ष) बहुत धन प्रदान कर। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (पार्ये धने) पालन योग्य धन, वा शत्रुओ के धन के निमित्त वा संग्राम मे (अव) रक्षा कर, वहां तक पहुंचा।

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया।
इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अतः) इसी कारण (नः) हमें तू (शत-वाजया सहस्र-वाजया) सैकड़ों, सहस्रो बल, ज्ञान, अन्न वेगादि से युक्त (इषा) इच्छा शक्ति, प्रेरणा और अन्न, सेनादि के साथ (उप-आ याहि) प्राप्त हो। इति षोडशो वर्गः ॥

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! अन्यों को शक्ति देने हारे ! हम (धीवत.) कर्म और ज्ञानवान् पुरुष के (धियः) कर्मों और ज्ञानों को (अयाम) प्राप्त करें। हे (गो-दरे) गौ भूमि के विदारण-कार्य में कुशल कृषि करने वाले ! हे (गो-दरे) वाणी के मर्मों को खोल २ कर बतलाने हारे, वा भूमि या वाणी के धारक ! हे (वज्रिव.) बलशालिन् शस्त्रधर ! हम (अर्वद्भिः) अश्वों, वीर सैनिको द्वारा (पृत्सु जयेम) संग्रामों में विजय लाभ करें।

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा। उक्थेषु रणयामसि १२

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म वाले ! (वयम् उ) हम (त्वा) तुझे (उक्थेषु) उत्तम वचनों से (यवसेषु गावः न) भुस आदि के निमित्त गौ के समान (त्वा रणयामः) तुझे प्रसन्न करते हैं।

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो।
अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥ १३ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवन् ! अमित शक्तिशालिन् ! हे (वज्रिन्) बल वीर्यवन् ! शस्त्रबल के स्वामिन् ! हम (विश्वा हि) समस्त (मर्त्यत्वना) मनुष्योचित (अनुकामा) कामनाओं और (आशसः) आशाओं को (अगन्म) प्राप्त करें।

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन्कामकातयः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥

भा०—(शवसः पुत्र) बल के द्वारा बहुतों के रक्षक ! (काम-कातयः) अपने नाना अभिलाषाओं को कहने वाले लोग (त्वे सु अवृत्रन्) तेरे अधीन सुख से रहते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वाम् न अति-रिच्यते) तुझ से कोई बढ़कर नहीं है।

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा।
धियाविड्ढि पुरन्ध्या ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन् ! उत्तम प्रबन्धक ! (सः) वह तू (सनिष्ठया) उत्तम विभाजक, दानशील, (घोरया) शत्रु को भय देने वाली, (द्रवित्न्वा) वेग से जाने वाली (पुरन्ध्या) बहुतों की पालक (धिया) बुद्धि और क्रिया वा नीति से (नः अविड्ढि) हमारा पालन कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः।
तेन नूनं मदे मदेः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्व-

र्यवन्! (नूनं) निश्चय ही (ते) तेरा (यः) जो (द्युम्नि-तमः) अति यशो-जनक (मदः) हर्ष है (तेन) उस से (मदे) सब को तृप्त प्रसन्न हर्षित करने में तू (मदेः) स्वयं हर्षित हो।

यस्ते॑ चि॒त्रश्र॑वस्तमो॒ य इ॑न्द्र वृत्र॒हन्त॑मः।
य ओ॑जो॒दात॑मो॒ मदः॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरा (चित्र-श्रवस्तमः) आश्चर्यकारक श्रवण करने योग्य अद्भुत और (यः वृत्रहन्तमः) शत्रुओं को खूब दण्डित करने वाला और (यः ओजो-दातमः) पराक्रम को देने वाला (मदः) आनन्द वा हर्ष है तू उससे हमें भी सुखी कर।

वि॒द्मा हि यस्ते॑ अद्रिव॒स्त्वाद॑त्तः सत्य सोमपाः।
विश्वा॑सु दस्म कृ॒ष्टिषु॑ ॥ १८ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार जनों और पाषाणवत् शत्रुनाशक जनों के स्वामिन्! हे (सत्य) न्यायनिष्ठ! हे (दस्म) शत्रुनाशन! हे (सोमपाः) प्रजावत् ऐश्वर्य के पालक! भोक्ता! अन्नोषधि के पान करनेहारे! (य. त्वादत्तः) जो तेरे द्वारा दिया हुआ (विश्वासु कृष्टिषु) समस्त मनुष्यों मे ऐश्वर्य है हम (ते विद्महि) अवश्य उसे तेरा ही जाने।

इन्द्रा॑य॒ मद्व॑ने सु॒तं परि॑ ष्टोभन्तु नो॒ गिरः॑।
अ॒र्कम॑र्चन्तु का॒रवः॑ ॥ १९ ॥

भा०—(मद्वने) हर्ष से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये (न गिरः सुतं परि स्तोभन्तु) हमारी वाणी उसके ऐश्वर्य की स्तुति करे। और (कारवः) विद्वान् वाग्मी लोग (अर्कम् अर्चन्तु) उस पूज्य जन की अर्चना करें।

यस्मि॒न्विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॒ रण॑न्ति स॒प्त सं॒सदः॑।
इन्द्रं॑ सु॒ते ह॑वामहे ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—(यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय (विश्वाः श्रिय. रणन्ति)

सब सम्पदायें वा आश्रित प्रजाएं शोभा पाती और सुख प्राप्त करती है और जिसके अधीन (सप्त संसदः) साथ बैठने वाले सात सचिव (रणन्ति) उसको उत्तम ज्ञानोपदेश करते है उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को (सुते) अभिषेक युक्त राज्य पर आह्वान करते है। अध्यात्म मे (सप्त संसदः) सात प्राणगण । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१॥

भा०—(त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों मे (चेतनं यज्ञम्) सबको चेतना देने वाले पूज्य पुरुष को (देवासः अत्नत) विद्वान् गण, आत्मा को इन्द्रियों के समान प्राप्त करते है, (तम् इत् नः गिरः वर्धन्तु) उसको ही हमारी वाणियां बढ़ाती है, उसी का गुण गान करती है ।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥

भा०—(समुद्रम् इव सिन्धवः) नदियां जिस प्रकार समुद्र में प्रवेश करती है उसी प्रकार (इन्दवः त्वा आविशन्तु) समस्त ऐश्वर्य और विद्वान् जीवगण प्रभो ! तुझमे प्रवेश करे । हे (इन्द्र न त्वाम् अति रिच्यते) ऐश्वर्यवन् ! तुझसे कोई बढ़ कर नहीं है ।

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तेरे (जठरेषु) उदरों में, तेरे अधीन है, हे (जागृवे) जागरणशील ! हे (वृषन्) बलशालिन् ! तू उस (सोमस्य भक्षं) महान् ऐश्वर्य के सेवनीय अंश को (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (विव्यक्थ) व्याप्त है ।

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृत्र हन्) पाप के नाशक ! हे (इन्द्र) शत्रुदन्त !

(सोमः) ऐश्वर्य (ते कुक्षये अरं भवतु) तेरे कोश के लिये बहुत हो। (इन्दवः धामभ्यः अरं भवन्तु) ऐश्वर्य और वेगवान् सैन्य गण तेरे तेजों की वृद्धि के लिये बहुत हों।

अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥

भा०—(श्रुत-कक्षः) श्रुत, वेद को अवगाहन करने वाला, वा कक्षा अर्थात् वेदवाणी का श्रवण करने वाला विद्वान् जन, (अश्वाय गवे धाम्ने) उसके अश्व, गौ और तेज की (अरं अरं गायति) खूब खूब स्तुति करता है अर्थात् उस प्रभु का बल, वाणी और तेज बहुत है।

अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि।
अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥ १९ ॥

भा०—(नः सुतेषु सोमेषु) हमारे उत्पन्न ऐश्वर्यों के आधार पर तू ही (अरं भूषसि हि ष्म) बहुत पर्याप्त समर्थ हो। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! (ते दावने अरम्) तुझ दाता के लिये भी ऐश्वर्य बहुत अधिक प्राप्त हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः।
अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥

भा०—(पराकात्तात् चित्) दूर से भी दूर से हे (अद्रिवः) शक्तिमन्! (नः गिरः त्वां नक्षन्त) हमारी वाणियां तुझ तक पहुचती है। (वयम् ते अरं गमाम) हम तुझ से बहुत कुछ प्राप्त करें।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥ २८ ॥

भा०—तू (वीर-युः एव हि असि) वीरों को चाहने वाला है। हे (शूर) शूरवीर! (उत त्वं स्थिरः एव हि असि) और तू स्थिर ही है। (ते मन एव राध्यं) तुझे मन को भी वश करना चाहिये।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥

भा०—हे (तुवी-मघ) बहुत धन के स्वामिन् ! (रातिः एव) तेरा दान ही (विश्वेभिः धातृभिः धायि) सब पोषक जन धारण करते है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अधचित् मे सचा) और तू ही मेरा सहायक है ।

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥

भा०—हे (वाजानां पते) ज्ञानो, ऐश्वर्यों, बलों, और सेनाओ के पालक ! हे ज्ञानों के पालक ! (ब्रह्मा इव) चतुर्वेदवित् ब्राह्मण विद्वान् यज्ञ के ब्रह्मा के समान तू (तन्द्रयुः मो सु भुवः) आलस्य से युक्त मत हो । तू (गोमतः सुतस्य) गो दुग्ध से युक्त अन्नादि से (मत्स्व) तृप्त हो ।

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (नः) हमे (आदिशः) आदेष्टा शासक और (सूरः) विचरणशील तेजस्वी लोग (अक्तुषु) रात्रिकाल में (मा आयमन्) मत बांधें । (त्वा युजा) तुझ सहायक से हम (तत् वनेम) उन दुष्ट जनो का नाश करे ।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥

भा०—(त्वया इत् युजा) तुझ सहायक से ही (वयं) हम (स्पृधः) स्पर्धा करने वालों का (प्रति ब्रुवीमहि) प्रति वचन वा उत्तर दे सकें । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वम् अस्माकम्) तू हमारा है और हम (तव स्मसि) तेरे है ।

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् ।
सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कारवः) स्तुतिकर्त्ता (सखायः) मित्रगण (त्वायवः) तुझे ही चाहते हुए, और (त्वाम् इत् हि अनु नो नुवतः) तुझे ही प्रतिदिन स्तुति करते हुए (चरान्) व्रताचरण करें। इति विंशो वर्गः॥

[९३]

सुकक्ष ऋषिः॥ १—३३ इन्द्रः। ३४ इन्द्र ऋभवश्च देवताः॥ छन्दः—१, २४, ३३ विराड् गायत्री। २—४, १०, ११, १३, १५, १६, १८, २१, २३, २७—३१ निचृद् गायत्री। ५—९, १२, १४, १७, २०, २२, २५, २६, ३२, ३४ गायत्री। १९ पादनिचृद् गायत्री॥

उद्घेद॒भि श्रु॒ताम॑घं वृष॒भं नर्या॑पसम्। अस्ता॑रमेषि सूर्य॥ १॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (श्रुत-मघं) उत्तम धन में प्रसिद्ध, (वृषभं) बलवान् (नर्यापसं) मनुष्यों के हितकारी कार्य करने वाले, (अस्तारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेकने वाले मनुष्य को तू (घ इत् उत् एषि) प्राप्त होकर अवश्य उदय को प्राप्त हो।

नव॒ यो न॑व॒तिं पुरो॑ बि॒भेद॑ बा॒ह्वोज॑सा। अहिं॑ च वृत्र॒हाव॑धीत् २

भा०—(यः) जो (बाह्वोजसा) बाहु के पराक्रम से (नव-नवति) ९९ (पुरः) प्रकोटों को (विभेद) तोड़ने मे समर्थ है वह (वृत्र-हा) शत्रुनाशक राजा (अहि च अवधीत्) सूर्य को मेघ के समान सन्मुख आये शत्रु को नाश करे।

स न॒ इन्द्रः॑ शि॒वः सखाश्वा॑व॒द्गोम॒द्यव॑मत्।
उ॒रुधा॑रेव दोहते॥ ३॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शिवः) कल्याणकारक, सब में व्यापक, सब सुखों का दाता, (सखा) सब का मित्रवत् प्रिय (अश्वावत् गोमत्, यवमत्,) अश्व, गौ, और यव से सम्पन्न (उरु-धारा इव) बहुतों की पोषक भूमि, वा बहुत धारा वाली गौ के समान,

वा बड़ी। विशाल वेद वाणी के समान (दोहते) हमें सुख ज्ञानादि प्रदान करे।

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ अ॒भि सू॑र्य। सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑॥ ४॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! (अद्य यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी को भी लक्ष्य कर तू आज वा कभी उठ खड़े होने में समर्थ है वह जब चाहे, तू किसी भी पदार्थ को उत्तम रीति से प्राप्त कर सकता है। (तत् सर्वं ते वशे) वह सब कुछ तेरे ही वश में है।

यद्वा॑ प्रवृद्ध सत्पते॒ न म॑रा इति॒ मन्य॑से।
उ॒तो तत्स॒त्यमित्तव॑॥ ५॥ २१॥

भा०—हे (सत्-पते) सज्जनों एवं सत् अर्थात् नित्य पदार्थों के पालक स्वामिन्! हे (प्रवृद्ध) महान्! (यद् वा न मरै इति मन्यसे) जो तू समझता है कि मैं कभी नहीं मर सकता सो (तत्) वह समझना (तव सत्यम् इत्) तेरा सत्य ही है। तू अविनाशी, अमृत, अजर, नित्य आत्मा है। इत्येकविंशो वर्गः॥

ये सोमा॑सः परा॒वति॒ ये अ॑र्वा॒वति॑ सुन्वि॒रे।
सर्वाँ॒स्ताँ इ॑न्द्र गच्छसि॥ ६॥

भा०—(ये) जो (परावति) दूर देश में और ये (अर्वावति) समीप देश में भी (सोमासः) अन्न, ओषधि वर्ग, रत्नादि ऐश्वर्य (सुन्विरे) उत्पन्न हों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सब को प्राप्त कर (२) पास और दूर के सब उत्पन्न बालकों को आचार्य पढ़ावे। (३) पास दूर सब जीव वा लोकगण प्रभु को प्राप्त हैं।

तमिन्द्रं॑ वाजयामसि म॒हे वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे।
स वृषा॑ वृष॒भो भु॑वत्॥ ७॥

भा०—(तम् इन्द्रम्) उस शत्रुहन्ता, सूर्यवत् तेजस्वी को हम (वृत्राय हन्तवे) बड़े भारी, बढ़ते शत्रु वा वा[illegible] नाश करने के

लिये (वाजयामसि) अधिक बलवान् करते हैं। (सः वृषाः) वह बलवान् पुरुष ही (वृषभः भुवत्) सब सुखों, ऐश्वर्यों का दाता सर्वश्रेष्ठ है।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, तेजस्वी पुरुष (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमशाली होकर ही (दामने कृतः) सब को भृति-वृत्ति देने और प्रजा को दमन करने के कार्य पर नियुक्त होता है। (सः मदे हितः) वही सब को हर्षित करने के लिये स्थापित है, वह (द्युम्नी) यशस्वी, वह (लोकी) कीर्त्तिवान्, (सः सोम्यः) वह सोम अर्थात् अन्न, जल, ऐश्वर्यादि से सत्कार करने योग्य है।

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥

भा०—(वज्रः न) शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण (गिरा सम्भृतः) वाणी द्वारा अच्छी प्रकार धारित, एवं (स-बलः) बलशाली, (अनपच्युत.) शत्रुओं से अपराजित, (अस्तृतः) अबाधित, (ऋक्षः) महान् (ववक्ष) समस्त ऐश्वर्य पद को धारण करता है। (२) प्रभु (अनपच्युतः) अप्राप्य, अवाङ्मनसगोचर है। वह (ववक्ष) समस्त जगत् को धारण कर रहा है।

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः ।
त्वञ्च मघवन्वशः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय ! हे विद्वन् ! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, वा हमें उपदेश करता हुआ हे विद्वन् ! (नः) हमारे लिये (दुर्गे) दुर्गम स्थान में भी (सुग कृधि) सुगम मार्ग कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं च न. वशः) और तू सदा हमे प्रेम से चाह और हमें अपने वश मे रख। इति द्वाविंशो वर्ग. ॥

यस्य॑ ते॒ नू चि॑दा॒दिशं॒ न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ।
न दे॒वो नाध्रि॑गु॒र्जनः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (आदिशं) आदेश को और (स्वराज्यम्) तेरे अपने राज्य को (नूचित्) भी (न मिनन्ति) कोई भंग नहीं करते । (न देवः) न सूर्यवत् तेजस्वी और (न अध्रगुः जनः) न वे रोक जाने वाला, पराक्रमी ही तेरे आदेश को भंग करता है ।

अधा॑ ते॒ अप्र॑तिष्कुतं दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः । उ॒भे सु॑शिप्र॒ रोद॑सी १२

भा०—(अध) और हे (सुशिप्र) उत्तम बलशालिन् तेजस्विन् ! (उभे रोदसी) दोनों सूर्य पृथ्वीवत् , प्रबल निर्बल वा स्व, पर सेनाएं, (देवीः) विजयेच्छुक होकर भी (ते) तेरे (अप्रतिष्कुतं) अनुपम, (शुष्मं) बल की (सपर्यतः) सेवा, आदर करती है । (२) उस परमेश्वर के बल की यह आकाश और पृथिवी दोनों सेवा करती है ।

त्वमे॒तद॑धारयः कृ॒ष्णासु॒ रोहि॑णीषु च । परु॑ष्णीषु॒ रुश॒त्पयः॑ १३

भा०—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु च) और रक्त वर्ण की (परुष्णीषु) गौओ में (त्वम् एतत् रुशत् पयः अधारयः) तू ही इस चमकते दूध को धारण कराता है । अथवा—हे प्रभो ! तू (कृष्णासु) कृषि करने योग्य भूमियों मे (रुशत् पयः) चमकता लहलाता अन्न, (रोहिणीषु) उगने वाली ओषधि में तेजोयुक्त तीक्ष्ण रस और (परुष्णीषु) कुटिलगामिनी नदियों मे जल वा, पर्व २ पर उष्ण देह की नाड़ियों द्वारा उज्ज्वल रुधिर को तू ही वृष्टि द्वारा सूर्यवत् धारण कराता है ।

वि यद॒हेरध॑ त्वि॒षो विश्वे॑ दे॒वासो॒ अक्र॑मुः ।
वि॒दन्मृ॒गस्य॒ ताँ अमः॑ ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और (यद्) जब (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, तेजस्वी लोग (अहेः त्विषः) मेघ की विद्युत् कान्तियों वा (अहेः त्विष) सूर्य की कान्तियों के सदृश (अहेः त्विषः) आगे बढ़ते वीर के तेजों को

(अक्रमुः) प्राप्त करते हैं अब (तान्) उनको (मृगस्य) सिंह के समान वीर वा अति शुद्ध तेजस्वी प्रभु का (अमः) बल (विदत्) प्राप्त होता है।

आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम्।
अजातशत्रुरस्तृतः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(आत् उ) अनन्तर ही वह (मे निवरः) मुझ प्रजागण के समस्त कष्टों का निवारण करने वाला, (भुवत्) होता है। वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक वीर, मेघों के छेदक भेदक विद्युत् वा सूर्य के समान (पौंस्यम् अदिष्ट) बल पराक्रम को करता है। (अजात-शत्रुः अस्तृतः) तब उस का कोई शत्रु नहीं रहता और फिर वह विनष्ट नहीं होता। (२) प्रभु परमेश्वर सब कष्टों का निवारक, दुष्टनाशक है, वह हमें बल दे। उस का कोई शत्रु नहीं, वह अविनाशी है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमम्प्र शर्धं चर्षणीनाम्।
आ शुषे राधसे महे ॥ १६ ॥

भा०—(वः) आप लोगों में से आपके (वृत्र-हन्तमम्) सब विघ्नों के नाशक (चर्षणीनां) मनुष्यों में (श्रुतं) प्रसिद्ध (शर्धं) बलवान् पुरुष को (शुषे) शत्रुओं के शोषण और (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्त करने के लिये (प्र आ) अच्छी प्रकार प्राप्त करो।

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत।
यत्सोमेसोम आभवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (पुरु-नामन्) बहुत से नामों वाले! बहुतों को नमाने हारे! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति करने योग्य! (यत्) जो तू (सोमे सोमे) प्रत्येक 'सोम', ऐश्वर्य प्रत्येक जीव और प्रत्येक बल पर (आभवः) सामर्थ्यवान् है उस तुझे हम (अया) इस (गव्यया धिया

च) वाणी से युक्त क्रिया द्वारा तेरी सेवा करते हैं। अर्थात् जैसी तेरी आज्ञा हो वा जैसी हमारी वाणी हो तदनुसार हम कार्य पूरा करें।

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥

भा०—(वृत्र-हा) शत्रुओं और विघ्नों का नाशक (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष (नः) हमारे बीच (बोधित्-मनाः) ज्ञान से युक्त चित्त वाला, और (भूरि-आसुतिः) बहुत से अन्नों का स्वामी (इत् अस्तु) हो। वह (नः आशिषम्) हमारी कामना और प्रार्थना को (शृणोतु) श्रवण करे।

कया त्वन्न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन् ! तू (नः कया ऊत्या) हमें किस प्रकार की रक्षण नीति से (प्र मन्दसे) पालन करके अधिक हर्षित होता है ? और (कया) किस नीति से (स्तोतृभ्यः आ भर) विद्वानों का सुख प्राप्त कराता है ?

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत्।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(नियुत्वान्) अश्व सैन्यों का स्वामी, (वृषभः) बलवान् (वृत्र-हा) शत्रुहन्ता, (वृषा) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, (कस्य सुते) किस के ऐश्वर्य पर (सचा) और किस के सहयोग मे (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के प्राप्ति और रक्षा के कार्य मे (रणत्) रण करे और आनन्द लाभ करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम्।
प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥

भा०—(त्व नः) तू हमें (मन्दसानः) अति हर्षित होकर (सह-

स्त्रिणं रयिम्) सहस्रों का धन (अभि सु) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक (प्रयन्ता) प्रदान करने हारा हो और तू (दाशुषे) दानशील के हित को भी (अभि सु बोधि) अच्छी प्रकार जान ।

पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये ।
अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥

भा०—(अपां जग्मिः) जिस प्रकार समुद्र मे समस्त नदी, जल-धाराएं आकर मिलती है, वह जलधाराओं के प्राप्त होने का एकमात्र आधार है और जिस प्रकार वह समुद्र ही (नि-चुम्पुणः) जलों को अपने भीतर लेकर ही पूर्ण होता है, उसी प्रकार राजा भी (अपां जग्मिः) सब आप्त प्रजाओं का शरण जाने योग्य और (निचुम्पणः) समुद्रवत् उन से ही करादि लेकर तृप्त या पूर्ण होने वाला है । हे राजन् ! (पत्नीवन्तः) पालनकारिणी शक्ति या नीति से वा पत्नीयुक्त वाले गृहस्थ जन और (सुताः) अभिषिक्त वा पुत्रवत् प्रजा रूप (इमे) ये (उशन्तः) धनादि कामनावान् जन, (वीतये) रक्षा प्राप्त करने के लिये (यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं । (२) इसी प्रकार परमेश्वर समुद्रवत् (अपां जग्मिः) समस्त जीवों का एकमात्र प्राप्तव्य है, वह पूर्ण है, वह सब विश्व को अपने भीतर लेकर भी पूर्ण है । ये उत्पन्न जीव उस पालक शक्ति से युक्त होकर भी सुख कामना से युक्त होकर रक्षार्थ भगवान् की शरण जाते हैं ।

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे ।
अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥

भा०—(ओजसा) वल पराक्रम और शौर्य से (अव-भृथम्) पूर्ण (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष को (अध्वरे) हिंसारहित प्रजा पालन के कार्य में (इष्टाः) एकत्र संगत होकर (होत्राः) अधिकार देने वाले (वृधासः) उस के पद, वलादि के बढ़ाने वाले सहयोगी जन ही (अच्छ) सब के समक्ष (असृक्षत) इसे अपना प्रभु बनाते है ।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र मे (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द लाभ करने वाले, उस के हर्ष में हर्षित, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले, तेजस्वी (हरी) अश्वों के तुल्य अग्रगामी स्त्री पुरुष वा दो नेता जन (हितम् प्रयः) हितकारक गन्तव्य मार्ग की ओर (अभि वोढाम्) ले जावें ।

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (विभावसो) विशेष दीप्ति से युक्त ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (इमे सुताः सोमाः) ये उत्पन्न प्रजा जन और ऐश्वर्यवान् शासकगण (तुभ्यम्) तेरे ही हितार्थ हैं और (बर्हिः) यह बृहत् राष्ट्र वा उत्तम आसन भी (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (स्तीर्णम्) विस्तृत है । तू (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इन्द्रम् आ वह) ऐश्वर्य को प्राप्त करा, उन को प्रदान कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥

भा०—(दाशुषे ते) दानशील तेरा ही (दक्ष) तेज, बल, प्रताप और ज्ञानसामर्थ्य (आ) सब ओर है । वह इन्द्र, ऐश्वर्यवान् (रोचना रत्ना विदधत्) रुचिकर, तेजोयुक्त नाना उत्तम रत्न, धन, ऐश्वर्य (स्तोतृभ्य.) विद्वानों को विशेष रूप से देता वा उनके लिये स्वयं धारण कराता है । आप लोग हे विद्वानो ! उसी (इन्द्रम् अर्चत) ऐश्वर्यवान् पुरुष की स्तुति करो ।

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो ।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बल और ज्ञान से सम्पन्न स्वामिन् !

मैं (ते) तेरे लिये (विश्वा उक्था) समस्त स्तुति वचन और समस्त (इन्द्रियम्) राजादि से सेवनीय ऐश्वर्य (आदधामि) रखता हू तुझे ही समापत करता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतृभ्यः मृडय) विद्वान् स्तोता, गुण प्रशंसकों को सुखी कर।

भ॒द्रम्भ॑द्रं न॒ आ भ॒रेष॒मूर्जं॑ शतक्रतो। यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः २८

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, वह तू हे (शत क्रतो) अपरिमित बलशालिन्! (नः भद्रं भद्रम्) हमें अतिसुखकारक, (इषम् ऊर्जम्) अन्न और रस, वल, आदि (आ भर) प्राप्त करा।

स नो॒ विश्वा॒न्या भ॑र सुवि॒तानि॑ शतक्रतो।
यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत् नः मृडयासि) जो तू हमें सुखी करता है। हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! (सः) वह तू (विश्वानि सुवितानि) समस्त प्रकार के सुखजनक पुण्य पदार्थ वा साधन (आ भर) प्राप्त करा। 'सुवितानि' सुख प्राप्ति के साधन, उत्तम आचरण, इस के विपरीत 'दुरितानि' दुःखदायी बुरे काम, २९, ३० मन्त्रों के साथ "विश्वानि देव सवित०" इस मन्त्र की तुलना करो।

त्वामि॑द्वृत्रहन्तम सु॒ताव॑न्तो हवामहे।
यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(यत्) जो तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडयासि) हमे सुखी करता है, हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार दण्ड देने हारे! (सुतावन्तः) ऐश्वर्यवान् हम लोग। (त्वाम् इत् हवामहे) तुझे ही रक्षार्थ प्रार्थना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तं या॒हि म॑दानाम्पते।
उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मदानां पते) हर्षजनक और तृप्तिजनक, ऐश्वर्यों और अन्नों के पालक स्वामिन् ! तू (हरिभिः) विद्वान् प्रजास्थ मनुष्यों के द्वारा (नः) हमारे बीच (सुतं उप याहि) अभिषेक या ऐश्वर्य पद को प्राप्त हो और (नः हरिभिः सुतम् उप याहि) हमारे जनो के साहाय्य से ही उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कर ।

द्विता यो वृ॑त्रहन्त॑मो वि॒द इन्द्रः॑ श॒तक्र॑तुः ।
उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तम् ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा (वृत्रहन्तमः) दुष्ट पुरुषों को अति अधिक दण्ड देने और विनाश करने हारा, और (शत-क्रतुः) अपरिमित बलशाली इस प्रकार (द्विता) दो प्रकार का जाना जाता है, वह (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्य गणों सहित (नः सुतम्) हमारे ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (उप) प्राप्त हो।

त्वं हि वृ॑त्रहन्नेषां पा॒ता सोमा॑ना॒मसि॑ ।
उप॑ नो॒ हरि॑भिः सु॒तम् ॥ ६३ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! (त्वं हि) तू निश्चय करके (एषां) इन (सोमानां पाता असि) ऐश्वर्यों और प्रजा जनों का पालक है । तू (नः सुतं हरिभिः उप याहि) हमारे इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को विद्वान् जनों और वीर पुरुषों सहित प्राप्त हो ।

इन्द्र॑ इ॒षे द॑दातु न ऋभु॒क्षण॑मृ॒भुं र॒यिम् ।
वा॒जी द॑दातु वा॒जिन॑म् ॥ ३४ ॥ २७ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति (नः) हमें (इषे) अन्न और बल सेना आदि प्राप्त करने के लिये (ऋभुक्षणं) सत्य ज्ञान से चमकने और 'ऋभु' उत्तम शिल्पी जनों को बसाने वाले महान् (ऋभुं) ज्ञान, सत्यादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (न. ददातु) हमें दे । (वाजी) वह बलवान्, वेगवान् पुरुष (नः) हमें (वाजिनम्)

बलवान् सैन्य, और अश्वादि सैन्य (ददातु) प्रदान करे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[९४]

विन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८ विराड् गायत्री। ३, ५, ७, ९ गायत्री। ४, ६, १०—१२ निचृद् गायत्री ॥

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्। युक्ता वह्नी रथानाम् १

भा०—जब (रथानाम्) वेग से जाने वाले, बलवान् रथादि सैन्यों वा महारथी जनों के (वह्नी युक्ता) घोड़े वा बैल, युद्धरथ वा अन्न करादि-संग्रहार्थ युद्धार्थ जुत जाते है, तब (मघोनां मरुताम्) ऐश्वर्यवान् मनुष्यों की (माता) माता के समान पूज्य (श्रवस्युः) श्रवस्यु, अर्थात् अन्न वल और कीर्त्ति-प्रद होकर पृथिवी (गौः धयति) गौ के समान सब को अन्न प्रदान करती है।

यस्यां देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते।
सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्याः) जिस की (उपस्थे) गोद में, (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (व्रता धारयन्ते) नाना कर्म, व्रत और नाना अन्न भी धारण करते, प्राप्त करते है, उसी के आश्रय पर (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र दोनों ही (दृशे) प्रकाश द्वारा दर्शन कराने के लिये, उस के समीप विद्यमान रहते हैं।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः।
मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वे कारवः) सब कर्मकुशल (मरुत·) बलवान् मनुष्य एवं व्यापारी जन, (सोम पीतये) स्वय भी अन्नवत् ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, (सदा) सदैव (तत् न· सु अर्यः) वह हमारा उत्तम

पूज्य स्वामी है। इस प्रकार (आ गृणन्ति) कहते और उस की स्तुति करते है।

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह ऐश्वर्य उत्पन्न है, (अस्य मरुतः पिबन्ति) इस का बलवान् पुरुष और प्रजागण उपभोग करते है और (उत अस्य स्वराजः) इस का स्वयं दीप्तियुक्त तेजस्वी लोग उपभोग करते है और (अश्विना) जितेन्द्रिय लोग इस का उपभोग करते हैं। (२) यह अभिषिक्त जन पुत्रवत् सोम है इस का बलवान् तेजस्वी और माता पिता, स्त्री पुरुष आदि सब (पिबन्ति) पालन करे।

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥

भा०—(तना पूतस्य) विस्तृत ऐश्वर्य वा यज्ञ से पवित्र, (त्रि-सधस्थस्य) तीनों स्थानों पर विराजमान (जावतः) जाया के तुल्य प्रजा या भूमि से युक्त राष्ट्र का (मित्रः) स्नेही जन, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता और (वरुण.) संकटनिवारक जन (पिबन्ति) उपभोग और पालन करते है।

उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य गोमतः सुतस्य) इस भूमि से युक्त, ऐश्वर्य के साथ (जोषम्) प्रेम करके (इन्द्र.) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (प्रातः) प्रातःकाल मे (होता इव) आहुति दाता विद्वान् के समान (मत्सति) बड़ा आनन्द अनुभव करता है।

कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः।
अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥

भा०—(सूरयः आप इव तिरः) सूर्य की किरणें जिस प्रकार मेघस्थ जलों को छिन्न भिन्न कर फिर चमकते है उसी प्रकार (पूत-दक्षसः) पवित्र ज्ञान और कर्म वाले, (स्रिधः) दुष्ट हिंसक अन्तःशत्रु सैन्यों को (तिरः) दूर करके, (सूरयः) विद्वान् तेजस्वी जन (कत् अत्विपन्त) कितना चमकते हैं और (कत् अर्पन्ति) कितना और कैसे आगे बढ़ते है यह दर्शनीय है।

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे।
त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥

भा०—(त्मना च) अपने आत्मसामर्थ्य से (दस्म-वर्चसाम्) दर्शनीय और शत्रुनाशक तेज वाले, (महानां देवानां) पूज्य विद्वानों और (वः) आप विजिगीषु जनों के (अवः) रक्षा वा प्रीति को मैं (कत् वृणे) किस प्रकार प्राप्त करू, यह बतलाइये।

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः।
मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो बलवान् मनुष्य (सोम पीतये) ऐश्वर्य के पालन और प्राप्ति के लिये (दिवः) आकाश या भूमि के (विश्वा) समस्त (पार्थिवानि रोचना) पृथिवी पर विद्यमान रुचिकर-पदार्थों को (पप्रथन्) विस्तारित करते है--

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य की रक्षा के लिये मैं (पूत-दक्षसः) पवित्र कर्म वाले, आचारवान् (मरुतः) बलवान् (त्यान्) उन पुरुषों को (दिवः) उन की इच्छाओं के अनुसार (हुवे) स्वीकार करता हू।

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो वीर पुरुष (रोदसी तस्तभुः) आकाश पृथिवी के समान स्वपक्ष और परपक्ष वा स्त्री-पुरुष, शास्य-शासक दोनों वर्गों को (वितस्तभुः) विशेष रूप से थामते या वश करते हैं। उन को मैं (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के पालन के लिये बुलाता और स्वीकार करता हूं।

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥ २९ ॥

भा०—और (अस्य सोमस्य पीतये) इस राज्य-ऐश्वर्य के पालन के लिये मैं (त्यं नु) उस (गिरिष्ठां) वाणी मे स्थित वा कुशल (वृषणं) ज्ञानादि की वर्षा करने वाले वा बलवान् (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह को (हुवे) बुलाता हूं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

(९५)

तिरश्ची ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६, ७ विराडनुष्टुप्। ५, ९ अनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप् ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने बच्चे को लक्ष्य कर (सम् अनूषत) अच्छी प्रकार उस की गुणस्तुति किया करती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणियों को स्वीकार और वाणियों द्वारा स्तवन करने हारे! (गिरः) उत्तम विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन (त्वा अभि सम् अनूषत) तुझे लक्ष्यकर तेरी ही स्तुति करते हैं। (रथीः इव) रथवान् क्षिप्रगामी पुरुष के समान (सुतेषु) ऐश्वर्यों वा अन्नादि के प्राप्त्यर्थ (त्वा) तेरी ओर ही (गिरः) सब विद्वान् एवं सब वाणियां (आ अस्थुः) आ रही हैं।

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्व१स्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! हे हमारी वाणियो को हर्षपूर्वक स्वीकार करनेवाले ! (शुक्राः सुतासः) शुद्ध, कान्तियुक्त, तेजस्वी, पदाभिषिक्त जन (त्वा आ अचुच्यवुः) तुझे सब ओर से प्राप्त हों । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे योग्य (विश्वासु हितम्) समस्त प्रजाओं मे नियत भाग है । तू (अस्य अन्धसः) उस खाने योग्य पदार्थ का (पिबतु) उपभोग कर ।

पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से, (शश्वतीनां विशाम्) बहुत सी प्रजाओं का (पतिः असि) पालक, स्वामी है । तू (मदाय) सुख, तृप्ति और आनन्द के लिये (श्येनाभृतं सुतं) श्येन के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले वा प्रशंसनीय आचार चरित्रवान् पुरुषों से प्राप्त किये हुए धन वा प्रदत्त सुखजनक, (सोमं) ज्ञान वा ऐश्वर्य को (पिब) प्राप्त कर ।

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यः त्वा) जो तेरी (सपर्यति) सेवा करता है उस (तिरश्च्याः) समीप प्राप्त शरणागत की (हवं श्रुधि) पुकार को तू सुन । और तू (महान् असि) महान् है । तू (सु-वीर्यस्य) उत्तम बलयुक्त (गोमतः) गवादि सम्पन्न, भूमि आदि वाले (रायः) धन को हमे (पूर्धि) पूर्ण कर ।

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (यः) जो (ते) तेरी (नवीयसी) अति स्तुतियोग्य, (मन्द्राम्) हर्षजनक (गिरम् अजीजनत्) वाणी को प्रकट करता है और जो तेरे लिये (चिकित्वित्-मनसं) विद्वानों के मनन करने योग्य, (प्रत्नां) अति पुरानी, और (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाली (धियं) वेदमयी वाणी वा विद्या वा यज्ञ कर्म को करता है, तू उसको उत्तम बल, भूमि आदि से युक्त धन प्रदान कर ।

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के स्वामी को (गिरः ववृधुः) सब वाणियां बढ़ाती हैं हम भी (तम् उ स्तवाम) उसकी स्तुति करें । (अस्य पुरूणि) उसके बहुत से (पौंस्या) बलों, ऐश्वर्यों को (सिसासन्तः) प्राप्त करना चाहते हुए (वनामहे) हम उसका भजन करते हैं ।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥ ७ ॥

भा०—(एतो नु) हे विद्वान् जनो ! आओ । हम लोग (शुद्धेन) शुद्ध, (साम्ना) सामवेद गायन द्वारा (शुद्ध) शुद्ध (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें । (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वासं) शुद्ध वचनों से वढने वाले उसको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्ध कामना वाला, शुद्ध हृदय होकर ही (ममत्तु) प्रसन्न करें ।

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (नः) हमे (शुद्ध) शुद्ध स्वरूप (आ गहि) प्राप्त हो । और तू (शुद्धाभिः ऊतिभिः) शुद्ध ज्ञानवाणियों, रक्षाओं और प्रीतियों से (शुद्ध) शुद्धरूप से ही प्राप्त हो । तू (शुद्धः) शुद्ध रूप ही (रयिम्) बल, वीर्य और ऐश्वर्य को

धारण कर और तू (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (सोम्यः) ऐश्वर्यवान् होकर (ममद्धि) आनन्द युक्त हो।

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! तू (शुद्धः हि) सदा शुद्ध रूप (नः रयिं सिसाससि) हमे ऐश्वर्य देना चाहता है। (दाशुषे रत्नानि) दानशील प्रजा जन को नाना सुखजनक पदार्थ प्रदान करता है। और (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) शुद्ध पवित्र, निष्पक्षपात होकर ही विघ्नों और दुष्टों को दण्डित करता और (शुद्धः वाजं सिसाससि) शुद्ध चित्त होकर ही ज्ञान, रत्न, वीर्य और ऐश्वर्य का भोग कर और अन्यों को प्रदान करता है।

इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९६]

तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुत ऋषिः ॥ देवताः—१—१४, १६—२१ इन्द्रः। १४ मरुतः। १५ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१, २, ५, १३, १४ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, ९, १२ त्रिष्टुप्। १५ ३, ६, ७, १०, ११, १६ विराट् त्रिष्टुप्। ४, १७ पङ्क्तिः। २० निचृत् पङ्क्तिः। १८, १९ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २१ विराट् पङ्क्तिः ॥ एकविंशत्यृच सूक्तम् ॥

अस्मा उपास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः॥१

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के लिये (उपासः) नाना कामनायुक्त प्रजाएं (यामम् आतिरन्त) नियम व्यवस्था वा मर्यादा का पालन करती है और वे ही (ऊर्म्याः) उत्साहित और उत्कण्ठित होकर (नक्तम्) रात्रिकाल मे (सुवाचः) उत्तम वाणियां बोलती है। (अस्मै) अथवा इस के शासन मे रहकर कमनीय कन्याएं (याम विवाह करती और (नक्तं सुवाचः आतिरन्त) रात्रि मे वे अपने पतियों के प्रति

उत्तम वाणी बोलती है। (अस्मै) इसी के प्रेम मे (मातरः) माताओ के समान (सप्त आपः) सर्पणशील, शरण मे प्राप्त प्रजाएं (तस्थुः) सदा आज्ञापालनार्थ खड़ी रहती है और इसी के शासन मे (सिन्धवः) बड़े २ महानद (नृभ्यः तराय) मनुष्यों के पार उतारने के लिये (सुपारा) सुखपूर्वक पार जाने योग्य होते है । राजा के राज्य की महिमा देखो महाभारत शान्तिपर्व मे भीष्म का उपदेश । सूर्यवत् प्रभु के शासन में उषा रात्रि आदि सब नियमित रूप में आती जाती है । नदिया चलती और महानद भी अलंघ्य नहीं रहते ।

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥

भा०—(विथुरेण चित् अस्त्रा) व्यथादायी आघातकारी और इतस्ततः प्रक्षेप या सञ्चालन मे समर्थ शक्ति द्वारा (अतिविद्धा) खूब पीड़ित या ताड़ित होकर (सप्त त्रिः) इकीसो तत्व (गिरीणाम्) भस्मवत् एक दूसरे को निगल जाने वाले, इधर उधर वा पर्वत मेघादिवत् भारी और (सानु) स्वरूप (संहिता) एकत्र संबद्ध हो जाते है । (तत्) उनको (न देवः) न कोई अन्य तेजस्वी तत्व (न मर्त्यः) न जीव ही (तुतुर्यात्) इस प्रकार कर सकता है, (यानि) जिन को (प्रवृद्धः) बड़ा, शक्तिशाली और (वृषभः) बलवान् प्रभु (चकार) कर लेता है । (२) इसी प्रकार अकेला प्रबल राजा २१ सौ राजाओं को प्रबल सैन्य से पराजित करता है, ऐसा अन्य कोई नहीं कर पाता ।

इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार राजा या सेनापति का (आयसः वज्रः) लोह का खड्ग होता है और (निमिश्लः) खूब कठोर होता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) उस महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु का (वज्रः) बल (आयसः)

सर्वत्र ब्रह्माण्डों मे यत्न अर्थात् सूर्यादि को भ्रमण कराने मे समर्थ (निमिश्लः)
और खूब सम्बद्ध होता है, और (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के
(बाह्वोः) बाहुओं मे उसके शासन मे भी (भूयिष्ठम् ओजः) बड़ा भारी बल
पराक्रम है। (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शीर्षन्) शिर मे भी
(क्रतवः) अनेक ज्ञान (निरेके) सब से बढकर विद्यमान है। और
(आसन्) मुख मे विद्यमान वाणियो को भी सुनने के लिये (उपाके)
अति समीप बहुत से जन (ईषन्त) प्राप्त होते है। इसी प्रकार राजा की
बाहुओ मे खड्ग रूप, बल, शिरःस्थानीय अनेक विद्वान् जन और मुख
मे श्रवणीय आज्ञाएं हो।

मन्ये॑ त्वा य॒ज्ञियं॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मन्ये॑ त्वा॒ च्यव॑नम॒च्युता॑नाम्।
मन्ये॑ त्वा॒ सत्व॑नामिन्द्र के॒तुं मन्ये॑ त्वा वृ॒ष॒भं च॑र्षणी॒नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं
मन्ये) दानियो में दानी, पूज्यों मे पूज्य, सत्संग योग्यों मे सर्वश्रेष्ठ करके
जानता हू। और (अच्युतानां च्यवनम्) स्वयं गतिरहित जड़ पदार्थों
को चलाने वाला जानता हूं। (सत्वनां केतुं मन्ये) बलशालियो में
ध्वजा के समान वा सत्वयुक्त चित्त वाले जीवों मे ज्ञानप्रद, और (चर्ष-
णीना वृषभं त्वा मन्ये) मनुष्यों मे सर्वश्रेष्ठ मैं तुझे जानता हूं।

आ यद्वज्रं॒ बा॒ह्वोरि॑न्द्र॒ धत्से॑ मद॒च्युत॒मह॑ये॒ हन्त॒वा उ॑। प्र पर्व॑ता॒
अन॑वन्त॒ प्र गाव॒: प्र ब्र॒ह्माणो॑ अ॒भिन॒क्षन्त॒ इन्द्र॑म् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन् ! तू (बाह्वोः)
बाहुओं में (अहये) अभिमुख आये शत्रु को (हन्तवा) नाश करने के
लिये (मदच्युतं वज्रं) शत्रुओं के मद को दूर करने वाले प्रजा के (मद-
च्युतं) हर्ष प्रापक बल वीर्य को (धत्से) धारण करता है तब (पर्वताः)
मेघवत् पालन शक्ति से युक्त शासक जन, और (गावः) भूमिवासी
समस्त प्रजाएं (प्र अनवन्त) खूब हर्ष ध्वनि करते है। और (अभि-

नक्षन्तः ब्रह्माणः) प्राप्त होते हुए विद्वान् जन (इन्द्रम् प्र अनवन्त) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता की स्तुति करते है । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥

भा०—(तम् उ स्तवाम) उसी की स्तुति करें (यः इमा) जो इन (अस्मात्) उससे (अवराणि) पीछे (विश्वा जातानि) उत्पन्न, समस्त पदार्थों को जजान उत्पन्न करता है हम लोग (इन्द्रेण) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के साथ (मित्रं दिधिषेम) मित्र भाव रक्खे । (नमोभिः गीर्भिः) नमस्कार युक्त विनीत वचनों से हम उस (वृषभं) सब सुखो के देने वाले को (उपो विशेम) प्राप्त होवे, उसकी उपासना करें ।

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः विश्वे देवाः सखायः अजहुः) बढ़ते शत्रु के श्वासमात्र से भी भय खाते हुए सब मित्र मनुष्य भी राजा को छोड़ देते हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! (विश्वे देवाः) समस्त जीवगण, (सखायः) तेरे मित्र समान आख्या वाले आत्मा होकर भी (वृत्रस्य) आवरणकारी देह के (श्वसथात् ईषमाणाः) श्वास-प्रश्वास द्वारा गति करते हुए (त्वा अजहु) तुझे भूल जाते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते मरुद्भिः सख्यम् अस्तु) जीवगण से तेरा सदा सख्य, मित्रभाव रहे । (अथ) और तू (इमा विश्वाः पृतनाः जयासि) इन सब प्रजाओं को अपने वश कर ।

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥८॥

भा०—(त्रिः षष्टिः मरुतः) ६३ प्रकार के मनुष्य गण और देह में प्राण गण (ववृधानाः) बढ़ते हुए (उस्राः इव) सूर्य की किरणों वा गौवों के समान (राशयः) संघ होकर (यज्ञियासः) आदर पाने योग्य

है। वे हम (त्वा उप इमः) तुझे प्राप्त होते है। (नः भाग-धेयं कृधि) हमारा भी भाग नियत कर। हम (ते शुष्मं) तेरे शोषक बल को (ऐना हविषा) इस प्रकार के अन्नादि, कर और उपाय से (विधेम) बनावें। त्रिःषष्टि गणों का परि-संख्यान यजुर्वेद अ० २२ मे देखो।

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीपिन्॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तिग्मम् आयुधम्) शत्रु पर प्रहार करने के तीक्ष्ण साधन, (मरुताम् अनीकम्) वीर पुरुषों की सेना रूप (ते वज्रं) तेरे महान् बलको (कः प्रति दधर्ष) कौन पराजित कर सकता है। (असुराः) बड़े बलशाली लोग भी (अनायुधासः) आयुधो से रहित और (अदेवाः) अतेजस्वी हो, (तान्) उन को हे (ऋजीपिन्) शत्रुभर्जक सेनाओं के स्वामिन्! तू (अप वप) दूर ही खण्डित कर डाल।

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत्॥१०॥३३॥

भा०—(महे उग्राय) बड़े बलवान् (तवसे) शक्तिशाली, (शिव-तमाय) अतिसुखदायक (पश्वः च शिवतमाय) समस्त पशु तक का कल्याण करने वाले (गिर्वाहसे) वाणियों और स्तुतियों को स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (अङ्ग) हे विद्वन्! तू (सुवृक्तिं प्रेरय) उत्तम स्तुति कर। हे विद्वन्! तू उसी के लिये (पूर्वीः गिरः धेहि) पूर्व की नित्य वाणियों को धारण कर। वही (तन्वे) हमारे शरीर और वृहत् राष्ट्र के लिये (कुवित् वेदत्) वहुत सुखैश्वर्य प्रदान करता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत्॥१॥

भा०—(उक्थ-वाहसे विभ्वे) उत्तम स्तुति-वचनों को स्वीकार करने वाले विभु, महान् उस परमेश्वर के लिये (मनीषां) अपने चित्त, बुद्धि को प्रेरित कर। हे प्रभो ! तू (द्रुणा न नदीनाम्) नदियों के पार नौका के समान हमे (पारम् ईरय) पार ले चल। हे विद्वन् ! (जुष्टतरस्य श्रुतस्य) अति सेवनीय श्रवण योग्य ज्ञान को (तन्वि) अपने पुत्र में धनवत् (निस्पृश) प्रदान कर। वह प्रभु (अङ्ग) हे मनुष्य ! (कुवित् वेदत्) बहुत कुछ प्रदान करता है।

तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥१२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् एवं ऐश्वर्य का देने वाला स्वामी (यत् जुजोषत्) जिस को प्रेम करे तू (तत् विविड्ढि) उसी पदार्थ को प्राप्त करा। तू उस की (सु-स्तुतिं स्तुहि) उत्तम स्तुति कर। (नमसा) अति विनय से (विवास) उस की सेवा कर। हे (जरितः) विद्वन् ! स्तुतिकर्त्ता ! तू (उप भूष) सदा उस के समीप रह। और (मा रुवण्यः) कभी रो मत, गुनगुना मत। तू अपनी (वाच) स्पष्ट वाणी को (श्रावय) उसे सुना दे और (अङ्ग कुविद् वेदत्) हे मनुष्य वह तुझे बहुत २ ऐश्वर्य देने वाला है।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३॥

भा०—(द्रप्सः) वेग से प्रयाण करने में समर्थ, (कृष्णः) प्रजा को कर्षण करने वाला, (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र सैन्यों सहित (अंशुमतीम्) अन्न वाली भूमि पर (अतिष्ठत्) स्थिर हो तो भी (शच्या धमन्तम्) अपनी शक्ति से प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट शत्रु को (इन्द्र) ऐश्वर्य युक्त उत्तम राजा (शच्या आवत्) अपनी शक्ति से आक्रमण करे और वध करे और (नृमणा) मनुष्यों के हित

में चित्त देकर वह (स्नेहितीः) हिंसक सेनाओं को (अप अधत्त) दूर करे। अध्यात्म में (सहस्रैः दशभिः) बलवान् दश प्राणो से युक्त होकर (कृष्णः) कर्त्ता जीव (द्रप्सः) देह से देहान्तर में जाने वाला होकर (अंशुमतीम्) सूक्ष्म प्राणो से युक्त लिंग देह को धारण करता हुआ वह (इयान.) देह से देहान्तर मे जाता है। और (शच्या धमन्तम् तम् इन्द्रः आवत्) वाणी से प्रार्थना करने वाले जीव की परमेश्वर रक्षा करता है। उस की (स्नेहितीः) नाशकारिणी दुर्वासनाओ वा मोहमयी दुष्ट वृत्तियों को वह (अप अधत्त) दूर कर देता है।

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ १४

भा०—सेनापति सैन्यगण से कहे—मैं (अंशुमत्याः नद्यः) कर देने वाली, समृद्ध प्रजा के (उप-ह्वरे) समीप में (विपुणे चरन्तं) विस्तृत मैदान में विचरते (द्रप्सम्) द्रुतगामी शत्रु को (अपश्यम्) देखता हूं, और इसी प्रकार (अवतस्थिवांसम्) आसन पर बैठे हुए (कृष्णम्) प्रजा के पीड़क जन को (नभः) आकाश मे मेघवत् व्यापक जानता हूं। हे (वृषण) बलवान् पुरुषो ! मैं (इष्यामि) चाहता हूं कि (वः) आप लोग (आजौ युध्यत) संग्राम मे शत्रु से युद्ध करो, मारो। अध्यात्म मे पूर्वोक्त अंशुमती नदी लिङ्ग-देह उसके भीतर 'द्रप्स' अर्थात् द्रुत वेग से जाने वाला जीवात्मा (विपुणे चरन्तम्) सब तरफ जाने में समर्थ होता है। जब वह स्थिर होता है तब (नभः न कृष्णम्) आकाशवत् वा वायु-वत् निष्प्रभ वा आदित्यवत् तेज स्वरूप होता है। हे (वृषणः) बलशाली साधक जनो ! आप लोग (आजौ) उस को प्राप्त करने के लिये (युध्य-त) बाधक कारणों से अवश्य संग्राम करो।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तितिविषाणः।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे १५।३४

भा०—(द्रप्सः) वेग से जाने वाला शत्रु (अंशुमत्याः उपस्थे) समृद्ध प्रजा के समीप, (तित्विषाणः) अति तेजस्वी होकर (तन्वं अधारयत्) विस्तृत शक्ति को धारण करता है, उस समय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (युजा बृहस्पतिना) सहायक, बड़ी सेना के पालक सेनापति के सहाय से, (अदेवीः) अकरप्रद, (अभि आचरन्तीः) विपरीत आक्रमण करने वाली (विशः) प्रजाओ को (ससहे) पराजित करे। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

त्वं ह॒ त्यत्स॒प्तभ्यो॒ जाय॑मानोऽश॒त्रुभ्यो॑ अभवः॒ शत्रु॑रिन्द्र ।
गू॒ळ्हे द्यावा॑पृथि॒वी अन्व॑विन्दो विभु॒मद्भ्यो॒ भुव॑नेभ्यो॒ रणं॑ धाः॥१६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्यत् त्वं) वह तू (जायमानः) प्रकट होकर ही (अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः) शत्रुरहित स्वयं विचरने वालो का (शत्रुः अभवः) नाश करने मे समर्थ हो। (गूढे द्यावापृथिवी) संवृत, सुरक्षित, आकाश पृथिवीवत् शासक-शास्य दोनो को (अनु अविन्दः) अपने अनुकूल करके वश कर। और (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः) बड़े ऐश्वर्य से युक्त देशों को प्राप्त करने के लिये (रणं धाः) रण कर। (२) अध्यात्म मे इन्द्र आत्मा, सप्त प्राणों का शासन करने वाला विभाजक है, वह सुगुप्त द्यौ पृथिवी, प्रभु प्रकृति का ज्ञान करे, और महान् सुखमय लोको का (रणं) सुख भी प्राप्त करे।

त्वं ह॒ त्यद॑प्रतिमा॒नमोजो॒ वज्रे॑ण वज्रिन्धृषि॒तो ज॑घन्थ ।
त्वं शुष्ण॒स्याव॑ाति॒रो वध॑त्रै॒स्त्वं गा इ॑न्द्र॒ शच्येद॑विन्दः ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन्! (त्वं ह) तू ही (वज्रेण) अपने शस्त्रबल से (धृषितः) शत्रु को पराजय करने मे समर्थ हो कर (अप्रतिमानम् यत् ओजः) उस निरुपम शत्रु के बल को (जघन्थ) विनाश कर अथवा (हन्तिर्गत्यर्थः। त्यत् अप्रतिमानम् ओजः जघन्थ) तु निरुपम, सर्वोपरि पराक्रम को प्राप्त कर। (त्वं) तू (वधत्रैः) वध करने के

साधनों से (शुष्णस्य अवातिरः) प्रजा के शोषक दुष्ट का नाश कर। और (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (शच्या इत्) शक्ति और आज्ञा के बल से ही (गाः अविन्दः) सब भूमियों को अपने अधीन कर।

त्वं ह॒ त्यद्वृ॑षभ चर्षणी॒नाङ्घ॒नो वृ॒त्राणां॑ तवि॒षो ब॑भूथ।
त्वं सिन्धूँ॑रसृजस्तस्तभा॒नान् त्वम॒पो अ॑जयो दा॒सप॑त्नीः ॥१८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे (चर्षणीनां वृषभ) प्रजा वा लोकद्रष्टाओं के बीच में सर्वश्रेष्ठ! (त्वं ह) तू अवश्य (तविषः) बलवान् हो कर (वृत्राणां) दुष्टों और विघ्नों का (घनः) दण्ड देने और नाश करने वाला (अभवः) हो। और (त्वं) तू (तस्तभानान्) शत्रु का नाश करने वाले (सिन्धून्) वेग से जाने वाले वीरों और तट आदि के नाशक महानदों को भी (असृजः) सञ्चालित कर। और (त्वम्) तू (दास-पत्नीः) प्रजा के नाशक शत्रु के आधिपत्य में विद्यमान (अपः) भूमियों सेनाओं और प्रजाओं को भी (अजयः) जीत।

स सु॒क्रतु॒ रणि॑ता यः सु॒तेष्वनु॑त्तमन्यु॒र्यो अहे॑व रे॒वान्।
य एक॒ इन्नर्यपां॑सि॒ कर्ता॒ स वृ॒त्रहा प्रती॒दन्यमा॑हुः ॥ १९ ॥

भा०—(सः सुक्रतुः) वह उत्तम ज्ञान और कर्म सामर्थ्यवान् है। (यः) जो (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यादि अभिषेक कर्मों में (रणिता) रमने हारा और रणकुशल है। (यः) जो (अहा इव रेवान्) दिन वा सूर्य के समान तेज और बल से युक्त, धनाधिपति, और (अनुत्त मन्यु.) अप्रतिहत, अपराजित बल वाला, (यः एक इत्) जो अकेला ही (नरि अपांसि कर्त्ता) नायक पद पर रह कर भी नाना कर्मों को करने हारा है (सः) वह (वृत्रहा) शत्रु और विघ्नों का नाशक पुरुष हो, उस को ही (अन्य प्रति इत् आहुः) शत्रु के प्रति प्रबल करके जानते और कहते हैं।

स वृ॒त्र॒हेन्द्र॑श्चर्षणी॒धृत्तं सु॑ष्टु॒त्या हव्यं॑ हुवेम ।
स प्रा॑वि॒ता म॒घवा॑ नोऽधिव॒क्ता स वाज॑स्य श्रव॒स्य॑स्य॒ दा॒ता २०

भा०—(सः वृत्रहा) वह दुष्टनाशक पुरुष ही (चर्षणीधृत्) मनुष्यों को धारण करता है। (तं हव्यम्) उस स्तुत्य पुरुष को हम (सु-स्तुत्या) उत्तम गुण स्तवन द्वारा (हुवेम) प्राप्त करें। (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः प्राविता) हमारा उत्तम रक्षक हो और (सः) वह (नः अधिवक्ता) हमारा अध्यक्ष, शासक और (सः वाजस्य श्रवस्यस्य दाता) कीर्त्ति, अन्नादिप्रद, ऐश्वर्य बल, और ज्ञान का दाता है।

स वृ॑त्र॒हेन्द्र॑ ऋभु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ बभूव । कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः ॥ २१ ॥ ३५ ॥

भा०—(सः) वह (वृत्र-हा) दुष्टों और विघ्नों का नाशक, (ऋभु-क्षाः) बल और गुणों से महान्, वा सत्य से दीप्तियुक्त, विद्वान्, तेजस्वी, शिल्पी आदि जन को आश्रय देने वाला, (जज्ञानः) प्रकट होकर (सद्यः हव्यः बभूव) शीघ्र ही स्तुत्य, उपादेय हो जाता है। वह (पुरूणि नर्या अपांसि कृण्वन्) नायक योग्य वा प्रजाजन के हितार्थ बहुत से कर्मों को करता हुआ (पीतः सोमः न) पान वा पालन योग्य सोम रस, ऐश्वर्य वा पुत्रादि के समान ही (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों के लिये स्तुत्य हो जाता है।

इस सूक्त में परमेश्वर के सृष्टि रचनाविषयक निदर्शन आत्मा का शरीरग्रहण, रचना और वशीकरण, योग साधनादि का भी निर्देश है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[९७]

रेभः काश्यप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् बृहती । ३, ६, ९, १२ निचृद् बृहती । ४, ५, ८ बृहती । २ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । १० भुरिग्जगती । १३ अतिजगती । १४ ककुम्मती जगती । १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

या इ॑न्द्र भुज॒ आभ॑रः॒ स्व॑र्वाँ॒ असु॑रेभ्यः ।
स्तो॒तार॒मिन्म॑घवन्नस्य वर्धय॒ ये च॒ त्वे वृ॒क्तब॑र्हिषः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्वर्वान्) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषो का स्वामी होकर (असुरेभ्यः) प्राण वाले जीवो के हितार्थ (याः भुजः आभर) जिन योग्य पदार्थों को प्रदान करता है, (अस्य) इस धन से तू (स्तोतारम् इत्) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् को ही हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (वर्धय) बढ़ा और उन को भी बढा (ये च त्व) जो तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) उत्तम आसन बिछाते है या तेरे अधीन रहकर शत्रु को कुश-तृणवत् छेदन करते है ।

यमि॑न्द्र दधि॒षे त्वमश्वं॒ गां भा॒गमव्य॑यम् ।
यज॑माने सुन्व॒ति दक्षि॑णावति॒ तस्मि॒न् तं धे॑हि॒ मा प॒णौ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (यम् अश्वम्) जिस अश्व को, (गां) भूमि व पशु को और (अव्ययं भागम्) अक्षय सैन्य को (दधिषे) धारण करता है, (तं) उस के (सुन्वति) यज्ञ करने वाले और (दक्षिणावति) दान दक्षिणा देने वाले (तस्मिन् यजमाने धेहि) उस यजमान के निमित्त धर । (मा पणौ) धन के व्यवहारी के निमित्त मत दे । राजा विद्वान् याज्ञिको, यज्ञशील जनो को भूमि अश्व, गा आदि की सहायता करे और केवल धन बटोरने वालों को दान न दे ।

य इ॑न्द्र॒ सस्त्य॑व्र॒तो॑ऽनु॒ष्वाप॒मदे॑वयुः ।
स्वैः ष एवै॑र्मुमुर॒त्पोष्यं॑ र॒यिं स॑नु॒तर्धे॑हि॒ तं तत॑ः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) दुष्टों को दण्ड देने हारे ! (यः अव्रत) जो कर्महीन, व्रतहीन होकर (सस्ति) आलस्य में सोता है और जो (अनु-स्वापं) निद्रा आलस्य के साथ २ (अदेवयुः) अपनी इन्द्रियों को वश मे नहीं रखता वा विद्वानों, शुभ गुणों को नहीं चाहता, (सः) वह (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (पोष्यं रयिं मुमुरत्) पोषण योग्य

जन और ऐश्वर्य का नाश करता है। (ततः) उस से हे ऐश्वर्यप्रद ! तू (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (सनुतः धेहि) कार्य और फल से वञ्चित कर।

यच्छ॑क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृत्रहन् ।
अत॑स्त्वा गी॒र्भिर्द्यु॒गदि॑न्द्र के॒शिभि॑ः सु॒तावाँ॒ आ वि॑वासति ॥४॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु के नाशक ! (यत्) जो तू (परावति) दूर और (अर्वावति) समीप देश मे भी (असि) होता है तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (अतः) इस अपने स्थान से ही, (सुत-वान्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त होकर तेरा प्रतिनिधि (द्युगत् केशिभिः) भूमि पर जाने वाले अश्वों और तेजस्वी पुरुषों द्वारा (त्वा आ विवासति) तेरी ही परिचर्या करता है।

यद्वासि॑ रोच॒ने दि॒वः स॑मु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑ ।
यत्पार्थि॑वे॒ सद॑ने वृत्रहन्तम॒ यद॒न्तरि॑क्ष॒ आ ग॑हि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(यद् वा) तू चाहे (दिवः रोचने) भूमि के किसी अति रुचिकर देश मे भी (असि) हो, चाहे तू (समुद्रस्य अधि विष्टपि) वा समुद्र के किसी निस्ताप प्रदेश में भी हो, चाहे तू (यत् पार्थिवे सदने) या पृथिवी के किसी गृह में वा (यत् अन्तरिक्षे) वा अन्तरिक्ष मे भी हो तो भी हे (वृत्रहन्तम) विघ्नों के नाशक स्वामिन् ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो। (२) परमेश्वर सूर्य, समुद्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि मे सर्वत्र व्यापक है। वह हमे सर्वत्र प्राप्त हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

स न॒ः सोमे॑षु सोमपाः सु॒तेषु॑ शवसस्पते ।
मा॒दय॑स्व॒ राध॑सा सू॒नृता॑व॒तेन्द्र॑ रा॒या परी॑णसा ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (शवसः पते) बल के पालक ! हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! तू (सोमेषु सुतेषु) ऐश्वर्यों के उत्पन्न होने पर (नः) हमें (सूनृतावता) अन्न और उत्तम वचन से युक्त

(राधसः) दान योग्य धन से और (परीणसा) बहुत से (राया) ऐश्वर्य से (मादयस्व) प्रसन्न, सुखी, तृप्त कर ।

मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्यः ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमे (मा परा वृणक्) मत परित्याग कर । तू (नः सधमाद्यः भवः) हमारे साथ आनन्द युक्त हो । (त्वं नः ऊती) तू ही हमारी रक्षा है । (त्वम् इत् नः आप्यं) तू ही हमारा बन्धु है । अर्थात् तू ही हमारा रक्षक, तू ही हमारा बन्धु है । अतः हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् विभो ! तू (नः मा परा वृणक्) हमे मत छोड़ ।

अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मधु पीतये) मधुर अन्नादि के उपभोग के लिये (अस्मे सुते) हमारे द्वारा अभिषिक्त पद पर तू (नि सद) विराज । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जरित्रे) स्तोता विद्वान् उपदेष्टा के हितार्थ (अस्मे सुते सचा) हमारे ऐश्वर्य पर स्थिर रहकर (महत् अवः कृधि) बड़ी भारी रक्षा कर ।

न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! (त्वा देवासः न आशत) तुझे विद्वान् गण वा इन्द्रिय गण भी नहीं पा सकते । और (न मर्त्यासः) न साधारण मनुष्य, मरणशील प्राणी ही तुझे पा सकते है । तू (शवसा) बल से (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों को भी (अभिभूः असि) वश किये है । इसलिये भी (त्वा देवासः न आशत) तुझे दिव्य पदार्थ सूर्यादि, एवं विद्वान् और नाना कामना करने हारे जन भी नहीं पा सकते ।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् १०।२७

भा०—(विश्वाः पृतनाः) समस्त मनुष्य, (अभि भूतरं नरं) शत्रु को खूब पराजय करने वाले नायक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (सजूः) परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर (राजसे जजनुः) राज्य करने के लिये प्रधान पद पर स्थापित करते है और वे (क्रत्वा वरिष्ठं) ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ (आ मुरिम्) शत्रुओं के नाश करने वाले, (उग्रम्) भयंकर, (ओजिष्ठं) अति पराक्रमी, (तरस्विनं) बलवान्, वेगवान्, (तवसं) शक्तिशाली, पुरुष को (इन्द्रम् जजनुः) सूर्यवत् तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् राजा रूप से नियुक्त करे। इति सप्तविंशो वर्गः॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः॥ ११॥

भा०—(रेभासः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, उपदेष्टा जन (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (स्वः-पतिम्) सब सुखों के स्वामी की (ईम्) सब ओर से, सब प्रकार से (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति, प्रार्थना करे और (यत् ईं वृधे सम् अस्वरन्) जब वे इसको अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना करें तब वह (ऊतिभिः) अपने रक्षा साधनों और (ओजसा) बल पराक्रम से (धृत-व्रतः) व्रतों, कर्मों और नियमों को धारण करने वाला हो और उन को (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार शासन करे। (२) परमेश्वर अपनी शक्तियों से जगत् के सब नियमों को धारता है, सब अपनी वृद्धि और जगत् के पालनार्थ उस की स्तुति करें।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः॥ १२॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् पुरुष (नेमिम्) शत्रुओं के नमाने वाले

बलवान् (मेषं) समस्त सुखो के दाता, राजा को (चक्षसा) दर्शन कर (अभि-स्वरा) उत्तम स्वर से (नमन्ति) उस का आदर करते है। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग भी (सु-दीतयः) उत्तम दीप्ति युक्त (अद्रुहः) द्रोह, परस्पर द्वेष, कलह से रहित और (कर्णे तरस्विनः) करने योग्य कर्त्तव्य कर्म मे शीघ्रता करने वाले, अनालसी होकर (ऋक्भिः) उत्तम ऋचाओं से उस स्वामी की (सं) मिलकर स्तुति करो।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि। मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥

भा०—मैं (तम्) इस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (मघवानम्) उत्तम धनों के स्वामी (उग्रम्) बलवान्, (सत्रा शवांसि) सच्चे बलों को (दधानम्) धारण करने वाले (अप्रतिष्कुतं) जिस के किये को कोई मेट न सके, जिस के बल को कोई रोकने वाला नहीं उस को (जोहवीमि) बुलाता हूं, उसी से प्रार्थना करूं। वही (मंहिष्ठः) सब से बड़ा दानी (यज्ञियः च) और पूज्य है। वह (गीर्भिः आववर्त्तत्) उत्तम वाणियों से शासन करता है। वह (वज्री) बलवान्, वीर्यवान्, शक्तिमान् स्वामी, (राये) ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (विश्वा) सब प्रकार के (सुपथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) करे।

त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै। त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) सब से अधिक शक्तिमान् ! हे (शक्र) शक्ति के देने हारे ! तू (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (पुरः नाशयध्यै चिकित्) शत्रुओं नगरियों, गढियों को विनाश करना भली प्रकार जान। हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! (विश्वानि भुवना

द्यावा पृथिवी च) समस्त भुवन, सूर्य और पृथिवी सब (त्वद् भीषा रेजेते) तेरे भय से चल रहे हैं।

तन्म॑ ऋतमि॑न्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि॑।
कदा न॑ इन्द्र राय आ द॑शस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्य॑स्य राजन्
॥ १५ ॥ ३८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (तत् ऋतम्) वह सत्य ज्ञान (मे पातु) मेरी रक्षा करे। हे (चित्र) पूज्य ! हे अद्भुत गुण कर्म स्वभाव ! हे (वज्रिन्) बलवन् ! (अपः न) जलों के समान तू (भूरि दुरिता अति पर्षि) बहुत से दुःखों और पापों से पारकर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (विश्वप्स्न्यस्य) सब प्रकार के (स्पृहयाय्यस्य) चाहने योग्य (रायः) धन का हे (राजन्) तेजस्विन् ! तू (नः कदा आ दशस्ये) हमें कब प्रदान करेगा। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[९८]

नृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ उष्णिक् । २, ६ ककुम्मती उष्णिक् । ३, ७, ८, १०—१२ विराडुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ९ निचृदुष्णिक् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑य साम॑ गायत विप्रा॑य बृहते बृहत् ।
धर्मकृते॑ विपश्चिते॑ पनस्यवे॑ ॥ १ ॥

भा०—(बृहते) महान् (विप्राय) मेधावी, (धर्म-कृते) समस्त धर्मों के धारण करने वाले, प्रबन्धों को करने वाले, (विपश्चिते) विद्वान्,

(पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले, वा वाणी और सद्-व्यवहारों के पालक (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त (बृहत् साम) बृहत् साम का (गायत) गान करो।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (अभिभूः असि) सर्वत्र विद्यमान है (त्वम् सूर्यम् अरोचयः) तू सूर्य को प्रकाशित करता है। तू (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का बनाने वाला, और (विश्व-देवः) सब देवों का देव, सब का दाता, सब का प्रकाशक और (महान् असि) सब से बड़ा है।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

भा०—तू (ज्योतिषा) तेज से (स्वः विभ्राजन्) समस्त विश्व को प्रकाशित करता हुआ (दिवः) सूर्य और आकाशस्थ समस्त प्रकाशमान पिण्डों को भी (रोचनं) तेज (आगच्छः) प्राप्त कराता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (देवाः) सब देदीप्यमान लोक और सब विद्वान् हे (इन्द्र) देदीप्यमान! (ते सख्याय) तेरे मित्र भाव के लिये (येमिरे) अपने को नियम बन्धन में बांधते हैं, तेरी आज्ञा का पालन करते हैं।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः प्रियः) हमारा प्रिय, (सत्रा-जित्) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (अगोह्यः) अगोप्य, सर्वत्र प्रकाशित, (गिरिः) मेघ वा पर्वत के समान (विश्वतः पृथुः) सब से बड़ा (दिवः पतिः) सूर्यादि तेजस्वी जगत् का और हमारी कामनाओं का भी स्वामी, पालक है। तू (नः आ गधि) हमें प्राप्त हो।

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सत्य) सत्यस्वरूप ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनो पर (अभि बभूथ) वश करता है । तू (सुन्वतः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला, (दिवः पतिः) कामनाओं और तेजों का स्वामी है ।

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(त्वं) तू अवश्य (शश्वतीनां पुराम्) बहुत सी, अनादि काल से बनी (पुराम्) नगरियों का (दर्त्ता असि) तोड़ने हारा है । तू (दस्योः हन्ता) दुष्टों को दण्ड देने वाला और (मनोः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला और उसका (दिवः पतिः) कामनाओं का पालक, वा (दिवः पतिः) भूमि और आकाशादि का भी पालक है । इति प्रथमो वर्गः॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥ ७ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा उपास्य ! स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अध हि) और हम (त्वा उप) तेरे ही समीप रह कर (महः कामान्) बड़ी २ अभिलाषाओं को (ससृज्महे) पूर्ण करें (उदा इव यन्तः उदभिः) जिस प्रकार नदी समुद्रादि से जाते हुए यात्री जल से ही अपनी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं उसी प्रकार तुझ से उन्नत होकर हम तेरे द्वारा ही सब अभिलाषाएं पूर्ण कर लिया करें ।

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (वाः न) जल जिस प्रकार

(गव्याभिः) नदियों द्वारा समुद्र को बढ़ाते है उसी प्रकार हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्य और स्तुतिवचन (दिवे दिवे) प्रति दिन (वावृध्वांसं) बढ़ते हुए (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते है।

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥

भा०—(इषिरस्य) बड़ी इच्छा वाले राजा के (उरुयुगे) बड़े जुए वाले, (उरौ रथे) बड़े रथ मे जिस प्रकार विद्वान् जन (इन्द्र-वाहा) ऐश्वर्य प्राप्ति कराने वाले, (वचोयुजा) वाणी मात्र से जुडने वाले (हरी युञ्जन्ति) दो अश्वो को नियुक्त करते है उसी प्रकार (गाथया) गान करने योग्य स्तुति और गाथा अर्थात् वेद वाणी द्वारा (इषिरस्य) सब के सञ्चालक, प्रवर्त्तक उस के (उरौ) विशाल (उरु-युगे रथे) महान् योजनावान् रमणीय रूप में विद्वान् जन, (वचः-युजा) वाणीमात्र से उस मे योग देने वाले (इन्द्र-वाहा) इन्द्र आत्मा को धारण करने वाले (हरी) स्त्री पुरुषों को वा (हरी) गतिमान् आत्मा और मन को (युञ्जन्ति) योग द्वारा समाहित करते है।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! हे (विचर्षणे) समस्त विश्व को देखने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं न. ओजः नृम्णं आ भर) तू हमे बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्रदान कर। और (पृतना सहं वीरं आभर) संग्राम विजयी वीर को प्राप्त करा।

त्व हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥

भा०— हे (वसो) सब के पिता, सबको बसाने हारे, सब में व्यापक! हे (शत क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्मो वाले! (त्वं हि न. पिता) तू

निश्चय से हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता होती है। (अध) इसी कारण हम (ते सुम्नम् ईमहे) तेरे से सुख की याचना करते हैं।

त्वां शुंष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥ २ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (शतक्रतो) अपरिमित कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रेमपूर्वक बुलाये गये ! (वाजयन्तं त्वां) बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान की कामना करने वाले तुझ से मैं प्रार्थना करता हूं, (सः) वह तु (नः सुवीर्यम् रास्व) हमें उत्तम बल, वीर्य प्रदान कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[९९]

नृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् बृहती ॥ २ बृहती। ३, ७ निचृद् बृहती। ५ पादनिचृद् बृहती। ४,६,८ पांक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन् ! (भूर्णयः) प्रजाओं के उत्तम पालनकर्त्ता (नरः) नायक जन (इदा ह्यः) अब तब, पूर्ववत् अब और आगे भी, (त्वाम् अपीप्यन्) तुझे ही बढ़ावें। (सः) वह (स्तोमवाह-साम्) स्तुति धारण करने वालों की प्रार्थना को (इह श्रुधि) इस अवसर में श्रवण कर और (स्वसरम् उप आ गहि) गृहवत् राष्ट्र को तू प्राप्त हो। (२) परमेश्वर, सबकी प्रार्थना श्रवण करता है और (स्वसरम्) अपने से व्याप्त विश्व को प्राप्त है।

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! (त्वे) तेरे अधीन, तेरे आश्रय (वेधसः आ भूषन्ति) विद्वान् कर्त्ता जन सब ओर से आकर रहते है, (तत् ईमहे) इसी से हम भी तेरी याचना करते है। हे (सुशिप्र) सुमुख! हे सौम्य ! तू (मत्स्व) आनन्द लाभ कर और सबको सुखी कर। हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तवन करने योग्य ! (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यों मे (तव) तेरे (उक्थ्या उपमानि) प्र॰स॰ीय, उपमा योग्य, (श्रवांसि) यश और श्रवणयोग्य ज्ञान और कर्म है।

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजास्थ जनो ! (आयन्तः) आश्रय लेते हुए आप लोग आश्रित जनों के समान ही (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (भक्षत) सेवन करो, वा परस्पर विभक्त कर लिया करो। और (जाते) उत्पन्न और (जनमाने) आगे उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य में भी हम लोग (ओजसा) अपने बल पराक्रम के द्वारा (भागं) अपने प्राप्य अंश को (प्रति दीधिम) प्रत्येक व्यक्ति अपना २ ग्रहण करें।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम् । यजु० अ० ४० ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (अनर्श-रातिम्) निष्पाप, सात्विक, पवित्र दान देने वाले, (वसु-दाम्) ऐश्वर्य के दाता प्रभु की (उप स्तुहि) उपासना और प्रार्थना किया कर। क्योंकि (इन्द्रस्य रातय) ऐश्वर्यवान् के सब दान (भद्रा) सुखदायक और कल्याणकारक है। (स:) वह (विधतः अस्य) परिचर्या करने वाले इस भक्त के (कामं न रोषति) अभिलाषा

को नष्ट नहीं करता, प्रत्युत (दानाय मनः चोदयन्) दान देने के लिये ही मन वा उत्तम ज्ञान की प्रेरणा किया करता है।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों की (विश्वाः स्पृधः) सब स्पर्धालु पर-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करने में समर्थ होता है। तू (अशस्ति-हा) निन्दकों का नाशक, (जनिता) सबका पितावत् जनक (विश्वतूः असि) सब शत्रुवर्ग का नाशक वा समस्त विश्व का चालक है। (त्वं) तू (तरुष्यतः) हिंसक, पीड़कों को (तूर्य) विनष्ट कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥

भा०—(मातरा शिशुं न) माता पिता जिस प्रकार शिशु के समीप प्रेमपूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार (ते) तेरे (तुरयन्त शुष्मम् अनु) दुष्टनाशक एवं संचालक बल के पीछे २ आकृष्ट होकर (क्षोणी) आकाश-भूमि गत सब पदार्थ उसके पीछे चलते हैं। (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धाकारी अहंकारी भी (श्नथयन्त) शिथिल हो जाते हैं (यद् इन्द्र) जब तू हे शत्रुनाशक! (वृत्रं) दुष्ट, बाधक को (तूर्वसि) नाश करने को तैयार होता है।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (अजरम्) अविनाशी (प्र-हेतारं) सबके प्रेरक, शत्रुओं के नाशक, और (अप्र-हितम्) स्वयं किसी से प्रेरित न होने वाले, (आशुम्) वेगवान्, व्यापक, (जेतारं) सर्वविजे

(हेतारं) दुष्टो के नाशक, (रथि-तमम्) रथ वालों में सर्वोत्तम, विश्व-मात्र में महारथी के तुल्य, (अतूर्तम्) अहिंसित, अबाधित, (तुग्र्य-वृधम्) दुष्टों के नाश करने की शक्ति को बढ़ाने वाले, परमेश्वर को आप लोग (ऊती) अति प्रेमपूर्वक (इतः) आगे करो ।

इ॒ष्कर्ता॑रमनिष्कृ॒तं सह॑स्कृतं श॒तमू॑तिं श॒तक्र॑तुम् ।
स॒मा॒नमिन्द्र॒मव॑से हवामहे॒ वस॑वानं वसू॒जुव॑म् ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—(इष्कर्त्तारम्) सबके संचालक, (अनिष्कृतं) अन्यों से अप्रेरित, (सहस्कृतम्) सब बलो के उत्पादक, (शतम्-ऊतिं) अपरिमित रक्षा साधनों से युक्त (शत-क्रतुम्) अपरिमित प्रज्ञावाले, (समानं) सबके प्रति समान, (वसवानं) सबको आच्छादित करने वाले, (वसू-जुवम्) सब जीवों, ऐश्वर्यों और लोको के प्रेरक, दाता, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को हम (अवसे) अपनी रक्षार्थ (हवामहे) प्रार्थना किया करे । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१००]

नेमो भार्गवः । ४, ५ इन्द्र ऋषिः ॥ देवताः—१—९, १२ इन्द्रः । १०, ११ वाक् ॥ छन्दः—१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, १२ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृज्जगती । ७, ८ अनुष्टुप् । ९ निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं त॑ एमि त॒न्वा॑ पु॒रस्ता॒द्विश्वे॑ दे॒वा अ॒भि मा॑ यन्ति प॒श्चात् ।
य॒दा मह्यं॒ दीध॑रो भा॒गमि॒न्द्रादिन्मया॑ कृणवो वी॒र्या॑णि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते पुरस्तात्) तेरे आगे (अयं) यह मैं (तन्वा एमि) अपने देहसहित आता हूं । और इसी प्रकार (मा पश्चात्) मेरे पीछे (विश्वे देवाः) समस्त कामनावान् जीवगण, मुझ इन्द्रादि के समान (त्वा पुरस्तात् अभियन्ति), तेरे समक्ष आते हैं । तू

को नष्ट नहीं करता, प्रत्युत (दानाय मनः चोदयन्) दान देने के लिये ही मन वा उत्तम ज्ञान की प्रेरणा किया करता है।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ ५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों की (विश्वाः स्पृधः) सब स्पर्धालु पर-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करने में समर्थ होता है। तू (अशस्ति-हा) निन्दकों का नाशक, (जनिता) सबका पितावत् जनक (विश्वतूः असि) सब शत्रुवर्ग का नाशक वा समस्त विश्व का चालक है। (त्वं) तू (तरुष्यतः) हिंसक, पीड़कों को (तूर्य) विनष्ट कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥ ६॥

भा०—(मातरा शिशुं न) माता पिता जिस प्रकार शिशु के समीप प्रेमपूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार (ते) तेरे (तुरयन्तं शुष्मम् अनु) दुष्टनाशक एवं संचालक बल के पीछे २ आकृष्ट होकर (क्षोणी) आकाश-भूमि गत सब पदार्थ उसके पीछे चलते हैं। (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धाकारी अहंकारी भी (श्नथयन्त) शिथिल हो जाते हैं (यद् इन्द्र) जब तू हे शत्रुनाशक! (वृत्रं) दुष्ट, बाधक को (तूर्वसि) नाश करने को तैयार होता है।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम्॥ ७॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (अजरम्) अविनाशी (प्र-हेतारं) सबके प्रेरक, शत्रुओं के नाशक, और (अप्र-हितम्) स्वयं किसी से भी प्रेरित न होने वाले, (आशुम्) वेगवान्, व्यापक, (जेतारं) सर्वविजयी,

(हेतारं) दुष्टों के नाशक, (रथि-तमम्) रथ वालों में सर्वोत्तम, विश्व-मात्र में महारथी के तुल्य, (अनूर्तम) अहिंसित, अबाधित, (तुग्र-वृधम्) दुष्टों के नाश करने की शक्ति को बढ़ाने वाले, परमेश्वर को आप लोग (ऊती) अति प्रेमपूर्वक (इनः) आगे करो ।

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम् ।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—(इष्कर्तारम्) सबके संचालक, (अनिष्कृतं) अन्यों से अप्रेरित, (सहस्कृतम्) सब बलों के उत्पादक, (शतम्-ऊतिं) अपरिमित रक्षा साधनों से युक्त (शत-क्रतुम्) अपरिमित प्रज्ञावाले, (समानं) सबके प्रति समान, (वसवानं) सबको आच्छादित करने वाले, (वसू-जुवम्) सब जीवों, ऐश्वर्यों और लोकों के प्रेरक, दाता, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को हम (अवसे) अपनी रक्षार्थ (हवामहे) प्रार्थना किया करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१००]

नेमो भार्गवः । ४, ५ इन्द्र ऋषिः ॥ देवताः—१—६, १२ इन्द्रः । १०, ११ वाक् ॥ छन्दः—१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, १२ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृज्जगती । ७, ८ अनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते पुरस्तात्) तेरे आगे (अयं) यह मैं (तन्वा ऐमि) अपने देहसहित आता हूं । और इसी प्रकार (मा पश्चात्) मेरे पीछे (विश्वे देवाः) समस्त कामनावान् जीवगण, मुझ इन्द्रादि के समान (त्वा पुरस्तात् अभियन्ति), तेरे समक्ष आते हैं । तू

(यदा) जब (मह्यं भागम् दीधरः) मेरे लिये सेवन करने योग्य अंश कर्मफल वा ग्राह्य विषय को रखता है, बनाता है, (आत् इत्) अनन्तर ही (मया) मुझ द्वारा (वीर्याणि कृणवः) नाना बलयुक्त कार्य करता है। जिस प्रकार स्वामी अधीनस्थ भृत्य जन के लिये उसका वेतनादि अंश प्रथम नियत कर देता है और उससे बड़े २, भारी काम भी करा लेता है उसी प्रकार परमेश्वर की व्यवस्था में भी सुकृतों के नाना उत्तम फल प्राप्त होने नियत हैं। उनको लक्ष्य कर जीव द्वारा नाना आश्चर्यजनक कर्म होते हैं।

दधा॑मि ते॒ मधु॑नो भ॒क्षमग्रे॑ हि॒तस्ते॑ भा॒गः सु॒तो अ॑स्तु॒ सोमः॑।
अस॑श्च॒ त्वं द॑क्षिण॒तः सखा॒ मेऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे दिये (मधुनः भक्षम्) मधुर अन्न के भोग्य फल को मैं (अग्रे दधामि) सदा अपने आगे लक्ष्य रूप से रखता हूं। और (ते भागः) तेरा भाग (सुतः सोमः ते हितः अस्तु) यह उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे ही अर्पण हो। और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणतः सखा असः) दायें ओर, सबसे बड़ा, प्रबल सखा, हो (अथ) तो तू और मैं दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जंघनाव) विनाश करें।

'च' अत्र चण् इति णित. प्रयोगश्चेदर्थे वर्त्तते। 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविच्चे च्चेणकच्चिदयत्रयुक्तम्' इति तिङो निघाताभावः॥ ईश्वर ही सबसे बड़ा सहायक है, उसके बिना विघ्नों का नाश असम्भव है।

प्र सु स्तोमं॑ भरत वाज॒यन्त॒ इन्द्रा॑य स॒त्यं यदि॑ स॒त्यमस्ति॑।
नेन्द्रो॑ अ॒स्तीति॒ नेम॑ उ त्व आह॒ क ईं॑ ददर्श॒ कम॒भि ष्ट॑वाम॥३॥

भा०—हे मनुष्यो! (वाजयन्तः) ज्ञान, ऐश्वर्य, और बल की कामना करते हुए आप लोग अब (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् की उपासनार्थ (स्तोम प्र सु भरत) स्तुतियों का अच्छी प्रकार प्रयोग करो। (यदि सत्य)

यदि संदेह है कि वह सत्य है तो जानो वह (सत्यम् अस्ति) अवश्य सत्य है। क्यों कि (उ त्वः नेम.) कोई २ मनुष्य (न इन्द्रः अस्ति इति आह) ऐश्वर्यवान् विघ्ननाशक प्रभु नहीं है ऐसा भी कहता है। (क. ईं ददर्श) उसको कौन देखता है? फिर हम (कम् अभि स्तवाम) किसकी स्तुति करें?

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥

भा०—इस प्रकार संदिग्ध हृदय वाले स्तोताजन के प्रति साक्षात् प्रभु का वचन सन्देह निवृत्यर्थ इस प्रकार है—हे (जरित.) स्तुतिकर्त्तः! (अयम् अस्मि) मैं यह हूं। (पश्य मा इह) मुझे तू यहां इस जगत् में इस रूप में देख। मैं (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (विश्वा जातानि अभि अस्मि) समस्त पदार्थों को अपने वश किये हूं। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्र दिशः) उत्तम कोटि के दिखाने वा उपदेश करने वाले शास्ता गुरुजन (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढ़ाते, मेरी ही महिमा का विस्तार करते हैं। मैं ही (आदर्दिरः) सबको छिन्न भिन्न करने वाला हूं। (भुवना) समस्त उत्पन्न लोकों को भी (दर्दरीमि) प्रलय रूप से परमाणु २, छिन्न भिन्न करता हूं। जब तक जीव अर्थात् देह का नायक 'नेम' देह के सुखों में मग्न रहता है तब वह प्रभु को भूल जाता है। पर जब वह संकट या दु.खदशा में अपनी चलती नहीं देखता और बन्धु बान्धवों और अपने २ देह का भी नाश होता देखता है तब वह प्रभु की महती सत्ता को अनुभव करता है।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥

भा०—(हर्यतस्य) इस अति सुन्दर (ऋतस्य) गतिमान् सत् कारणरूप प्रकृति रूप तत्व के (पृष्ठे) पीठ पर (आसीनं) विराजे हुए (एकम्) एक अद्वितीय (मा) मुझे (वेनाः) चाहने वाले विद्वान् जन (मा अरुहन्) मुझ तक पहुचते हैं, तब (मनः) उन

(यदा) जब (मह्यं भागम् दीधरः) मेरे लिये सेवन करने योग्य अंश कर्मफल वा ग्राह्य विषय को रखता है, बनाता है, (आत् इत्) अनन्तर ही (मया) मुझ द्वारा (वीर्याणि कृणवः) नाना बलयुक्त कार्य करता है। जिस प्रकार स्वामी अधीनस्थ भृत्य जन के लिये उसका वेतनादि अंश प्रथम नियत कर देता है और उससे बड़े २, भारी काम भी करा लेता है उसी प्रकार परमेश्वर की व्यवस्था मे भी सुकृतों के नाना उत्तम फल प्राप्त होने नियत हैं। उनको लक्ष्य कर जीव द्वारा नाना आश्चर्यजनक कर्म होते है।

दधा॑मि ते॒ मधु॑नो भ॒क्षमग्रे॑ हि॒तस्ते॑ भा॒गः सु॒तो अ॑स्तु॒ सोमः॑।
अस॑श्च॒ त्वं द॑क्षिण॒तः सखा॒ मेऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे दिये (मधुनः भक्षम्) मधुर अन्न के भोग्य फल को मै (अग्रे दधामि) सदा अपने आगे लक्ष्य रूप से रखता हूं। और (ते भागः) तेरा भाग (सुतः सोमः ते हितः अस्तु) यह उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे ही अर्पण हो। और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणतः सखा असः) दायें ओर, सबसे बड़ा, प्रबल सखा, हो (अथ) तो तू और मै दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जंघनाव) विनाश करे।

'च' अत्र चण् इति णित. प्रयोगश्चेदर्थे वर्त्तते। 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेणकच्चिद्यत्रयुक्तम्' इति तिङो निघाताभावः॥ ईश्वर ही सबसे बड़ा सहायक है, उसके विना विघ्नों का नाश असम्भव है।

प्र सु स्तोमं॑ भरत वाज॒यन्त॒ इन्द्रा॑य स॒त्यं यदि॑ स॒त्यमस्ति॑।
नेन्द्रो॑ अ॒स्तीति॒ नेम॑ उ त्व आह॒ क ईं॑ ददर्श॒ कम॒भि ष्ट॑वाम॥३॥

भा०—हे मनुष्यो! (वाजयन्तः) ज्ञान, ऐश्वर्य, और बल की कामना करते हुए आप लोग अब (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् की उपासनार्थ (स्तोम प्र सु भरत) स्तुतियों का अच्छी प्रकार प्रयोग करो। (यदि सत्य)

यदि संदेह है कि वह सत्य है तो जानो वह (सत्यम् अस्ति) अवश्य सत्य है। क्यो कि (उ त्वः नेमः) कोई २ मनुष्य (न इन्द्रः अस्ति इति आह) ऐश्वर्यवान् विघ्ननाशक प्रभु नहीं है ऐसा भी कहता है। (कः ईं ददर्श) उसको कौन देखता है? फिर हम (कम् अभि स्तवाम) किसकी स्तुति करें ?

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥

भा०—इस प्रकार संदिग्ध हृदय वाले स्तोताजन के प्रति साक्षात् प्रभु का वचन सन्देह निवृत्यर्थ इस प्रकार है—हे (जरित.) स्तुतिकर्त्तः! (अयम् अस्मि) मैं यह हू। (पश्य मा इह) मुझे तू यहां इस जगत् में इस रूप मे देख। मै (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (विश्वा जातानि अभि अस्मि) समस्त पदार्थों को अपने वश किये हूं। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्र दिशः) उत्तम कोटि के दिखाने वा उपदेश करने वाले शास्ता गुरुजन (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढ़ाते, मेरी ही महिमा का विस्तार करते है। मैं ही (आदर्दिरः) सबको छिन्न भिन्न करने वाला हू। (भुवना) समस्त उत्पन्न लोकों को भी (दर्दरीमि) प्रलय रूप से परमाणु २, छिन्न भिन्न करता हू। जब तक जीव अर्थात् देह का नायक 'नेम' देह के सुखों मे मग्न रहता है तब वह प्रभु को भूल जाता है। पर जब वह संकट या दु.खदशा मे अपनी चलती नहीं देखता और बन्धु बान्धवों और अपने २ देह का भी नाश होता देखता है तब वह प्रभु की महती सत्ता को अनुभव करता है।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥

भा०—(हर्यतस्य) इस अति सुन्दर (ऋतस्य) गतिमान् सत् कारणरूप प्रकृति रूप तत्त्व के (पृष्ठे) पीठ पर (आसीनं) विराजे हुए (एकम्) एक अद्वितीय (मा) मुझे (वेना.) चाहने वाले विद्वान् जन (मा अरुहन्) मुझ तक पहुचते हैं, तब (मनः) उन

का मननशील अन्तःकरण ही (में हृदे आ प्रति अवोचत्) मेरे हृदय को प्राप्त करने के लिये आदरपूर्वक मेरे प्रति कहता है या मुझ हृदयस्थ सुहृद् के लिये वचन-प्रतिवचन किया करता है और वे (सखायः) मेरे मित्र होकर (अन्तः शिशुम्) भीतर अन्तःकरण मे व्यापक मुझ को लक्ष्य करके (अचिक्रदन्) स्तुति किया करते हैं ।

अथवा—वे (शिशु-मन्तः सखायः मे अचिक्रदन्) भीतर सुतवत् विद्यमान् मुझ व्यापक से युक्त होकर मुझे पुकारा करते हैं । जैसे कोई गोद में बच्चा लेकर उसी से घण्टों विनोद से बात किया करते हैं ठीक उसी प्रकार प्रभु को हृदय में सूक्ष्म रूप से विद्यमान अनुभव करके भक्त उसी के प्रति नाना वचन-प्रतिवचन कहा करते है ।

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थं मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥६।४।६

भा०—हे (मघवन्) पूजित धनयुक्त ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे तेजःस्वरूप ! सर्वद्रष्ट· ! (सवनेषु) उपासना, स्तुति आदि के अव· सरों में, या (सवनेषु) निर्माण किये लोको मे, (या) जो (प्र-वाच्या) उत्तम रूप से वर्णन करने योग्य (ता) उन नाना (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकर्थ) करता है और उन को तु (सुन्वते) अपने उपासक के लिये (अप अवृणोः) स्पष्ट खोल देता है । और (यत्) जो (पारावतम्)परम रक्षा-स्थान, मोक्षमय लोक का (वसु) परमैश्वर्य (पुरु-सम्भृतम्) बहुत एकत्र है उस को भी (ऋषि-बन्धवे शरभाय) जगत्द्रष्टा के बन्धुस्वरूप एव उस को प्राप्त होने वाले भक्त के सुखार्थ (अप अवृणोः) खोल देता है ।

प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत् ।
नि षीं वृत्रस्य मर्माणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७॥

भा०—हे विद्वान् उपासक जीवो ! (नूनं) तुम अवश्य निश्चयपूर्वक बहुत शीघ्र (प्र पृथक् धावत) उत्तम मार्ग पर पृथक्, स्वतन्त्र होकर चलो

और अपने आप को खूब स्वच्छ करो। (यः) जो परमेश्वर (इत) इस जगत् में (वः) आप लोगों को (न अवावरीत्) नहीं रोकता वह ही (सीम्) सब प्रकार से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (वृत्रस्य) तुम्हें रोकने वाले, विघ्नकारी अज्ञान के (मर्मणि) मर्म पर या मूल भाग पर (वज्रम्) ज्ञान रूप वज्र को (नि अपीपतत्) गिराता है और उसका नाश करता है।

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

भा०—(मनोजवा) मन के वेग वाला वा उत्तम ज्ञान, संकल्प के वेग से युक्त (अयमानः) आगे बढ़ता हुआ आत्मा (आयसीम्) लोहे की बनी (पुरम्) प्रकोट के समान प्राणों से बनी इस पञ्चकोशमय देह-पुरी को (अतरत्) पार कर जाता है। ज्ञान के बल से ज्ञानी देहबन्धन से मुक्त हो जाता है। वह (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानी आत्मा (दिवं गत्वाय) तेजःस्वरूप प्रभु को प्राप्त होकर (वज्रिणे सोमम्) सर्वशक्तिमान् प्रभु के सर्वप्रेरक बल, आनन्द को (आभरत्) प्राप्त करता है। 'वज्रिणे' इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी।

समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (वज्रः) विद्युत् रूप बल, (उद्ना अभीवृतः) जल से आवृत, जल मे छिपा, (समुद्रे अन्तः शेते) समुद्र के भीतर व्याप रहा है (अस्मै बलिम्) उस बलशाली विद्युत् के बल को (संयतः) अच्छी प्रकार नियमित (प्रस्रवणा) बहती जल-धाराएं (पुरः भरन्ति) पूर्व ही धारण किये रहती है। इसी प्रकार (वज्रः) अज्ञान का निवारक ज्ञान का प्रकाश और बल (उद्ना) उत्तम रीति से (अभि-वृत) सर्वत्र विद्यमान (अन्तः समुद्रे) समुद्रवत् व्यापक, आनन्दमय प्रभु में

(शयते) व्यापक है। (पुरःप्रस्रवणाः) आगे उत्तम रीति से जाने वाले, विनीत जन (सं-यतः) संयम से रहते हुए, (अस्मै) उस प्रभु के (बलिम्) बलयुक्त ज्ञान को (भरन्ति) धारण करते हैं।

यद्वाग्वद॑न्त्यविचेत॒नानि॒ राष्ट्री॑ दे॒वानां॑ निष॒साद॑ म॒न्द्रा।
चत॑स्र॒ ऊर्ज॑ दुदुहे॒ पयां॑सि॒ क्व॑ स्विदस्याः पर॒मं ज॑गाम ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (वाक्) वाणी (राष्ट्री) तेजस्विनी प्रभुशक्ति के समान (मन्द्रा) अति सुखप्रद, सबको प्रसन्न करने वाली, (देवाना) विद्वानों और सब भूतों के बीच में (अविचेतनानि) अविज्ञेय, निगूढ़ तत्वों को (वदन्ती) कहती या प्रकाश करती हुई (देवानां मध्ये नि-स-साद) विद्वानों के बीच विराजती है। वह (चतस्र) चारों दिशाओं, चारों आश्रमों, चारों वर्णों की प्रजाओं के प्रति (पयांसि) मेघस्थ विद्युत् जैसे जलों को प्रदान करती है वैसे ही नाना ज्ञानों को (दुदुहे) प्रदान करती है, और (ऊर्जं दुदुहे) जैसे भूमि अन्न को उत्पन्न करती है वैसे वह भी बल को पूर्ण करती है। (अस्याः) इस वेदमयी वाणी का (परमं) परम रूप (क्व स्वित् जगाम) कहां विद्यमान है यह नहीं ज्ञात होता।

दे॒वीं वाच॑मजनयन्त दे॒वास्तां वि॒श्वरू॑पाः प॒शवो॑ वदन्ति।
सा नो॑ म॒न्द्रेष॒मूर्जं॒ दुहा॑ना धे॒नुर्वाग॒स्मानुप॒ सुष्टु॒तैतु॑ ॥ ११ ॥

भा०—(देवम्) अर्थों का प्रकाश करने वाली (वाचम्) वाणी को (देवाः) विद्वान् जन (अजनयन्त) प्रकट करते हैं और (ता) उसको (विश्व-रूपाः) सब प्रकार के (पशव) ज्ञानद्रष्टा जीवगण, (वदन्ति) व्यक्त और अव्यक्त रूप से बोलते हैं। (सा) वह (मन्द्रा) सुख दायिनी (धेनुः) गौ के समान (इषम् ऊर्जं दुहाना) मध्यम लोक अन्तरिक्ष में मेघस्थ विद्युत् के तुल्य अन्न, जलवत्, प्रेरणा और सम्पदा प्रदान करती हुई (वाक्) वाणी (सु स्तुता) उत्तम रीति से उपदेश की जाकर (अस्मान् आ एतु) हमें प्राप्त हो।

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः १२।५

भा०—हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन् ! (सखे) मित्र ! तू (वितरं विक्रमस्व) खूब वायु के समान विक्रम कर । हे (द्यौः) पृथिवी के मूर्धन्य राजसभे ! (वज्राय विष्कभे) वज्र, शस्त्र-बल, सैन्यादि के विशेष रूप से छावनी बनाकर बैठने के लिये (लोकं देहि) स्थान प्रदान कर । हम दोनो मिलकर (वृत्रं हनाव) बढ़ते शत्रु का मेघ को वायु विद्युत्वत् नाश करे । और (सिन्धून् रिणचाव) मेघस्थ जलो के तुल्य शत्रु को वा अपने ही तीव्रगामी सैन्य पंक्तियो को स्वतन्त्र रूप से जाने दें । वे (इन्द्रस्य प्रसवे) सेनापति के शासन मे (विसृष्टाः) विशेषरूप से गति करते हुए (यन्तु) जावे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०१]

जमदग्निर्भार्गव ऋषिः ।। देवताः—१—५ मित्रावरुणौ । ५, ६ आदित्या. । ७, ८ अश्विनौ । ९, १० वायुः । ११, १२ सूर्यः । १३ उषाः सूर्यप्रभा वा । १४ पवमानः । १५, १६ गौः ॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती । ६, ७, ९, ११ विराड् बृहती । १२ भुरिग्बृहती । १० स्वराड् बृहती । ५ आर्ची स्वराड् बृहती । १३ आर्षी बृहती । २, ४, ८ पङ्क्तिः । ३ गायत्री । १४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । १५ त्रिष्टुप् । १६ विराट् त्रिष्टुप् ।। षोडशर्चं सूक्तम् ॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (नूनं) शीघ्र ही (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों को (अभिष्टये) अभिमत फल प्राप्त करने और (हव्य-दातये) उत्तम अन्न ग्रहण के लिये (आचक्रे) अपने अनुकूल कर लेता है, (स. मर्त्यः) वह मनुष्य (देव-तातये) इन्द्रिय गण को

वश करने के लिये (ऋधक् इत्था) सचमुच इस प्रकार से (शशमे) शम की साधना करता है ।

इसी प्रकार जो व्यक्ति यज्ञ द्वारा मित्र, वायु और वरुण, जल इन को अपने अनुकूल कर स्वास्थ्यप्रद और अन्नप्रद कर लेता है (देव-तातये) सब मनुष्यों के लिये जगत् में शान्ति उत्पन्न करता है, वह उत्तम कृषि से अन्न भी उत्पन्न कर लेता है ।

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

भा०—वे दोनों मित्र और वरुण, (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) अति बलशाली, प्रचुर वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त (उरु-चक्षसा) विशाल दर्शन वाले (नरा) उत्तम दो नायकों के तुल्य (राजाना) तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) बहुश्रुत है । (ता) वे दोनों (बाहुता न) दो बाहुओं के समान (दंसना) नाना कर्म (रथर्यतः) करते है । उसी प्रकार वायु और मेघ दोनों मित्र और वरुण हैं। वे (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) दोनों प्रचुर वर्षा लाने वाले बल और जल से युक्त, (ऊरु-चक्षसा) बहुत रूपो मे दीखने वाले, (नरा) उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले (राजाना) विद्युद् आदि से प्रदीप्त (दीर्घश्रुत्तमा) दूर से ही गर्जन रूप मे सुनाई देने वाले है, वे मानो (बाहुता न) प्रजापति की दो बाहुओं के समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य की किरणों के साथ (दंसना रथर्यत.) बहुत से कर्म करते है । उन दोनो से वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और ऋतु परिवर्त्तन आदि होते है ।

राष्ट्र मे वे दोनों अधिकारी न्याय-शासन और सैन्य-विभाग है । वे सूर्यवत् तेजस्वी राजा के रश्मिरूप मर्यादा, कानूनों वा प्रणिधियों, गुप्त-चरो के द्वारा वा तेजस्वी आदि गुणो से बहुत से कार्य सम्पादन करते है ।

सूर्य रश्मियों की प्रणिधियों से तुल्यता—

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः ।

अदृष्टमभवत् किञ्चित् व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥ ४८ ॥

रश्मियों की गुणों से उपमा जैसे—

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंऽशवः ।
गुणास्तस्य विपक्षेपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ॥ ७५ ॥

(रघु० १७)

प्र यो वां मित्रावरुणा जिरो दूतो अद्रवत् ।
अयःशीर्षा मदेरघुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) मित्र अर्थात् दिनवत् प्रजा के प्राणो के रक्षक और अर्थात् रात्रिवत् सब को सुख देने वाले राजा शासकादि जनो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (अजिरः) वेग से जाने वाला, (दूतः) दूत (प्र।अद्रवत्) देश देशान्तर जाता हो वह (अयः-शीर्षा) लोहे के शिर वाला, दृढ़ विचार और (मदे रघुः) हर्षादि से प्रफुल्लगति हो । शिर लोहे का हो अर्थात् उस के विचार दृढ़ और रहस्यों के छिपाने में कठोर हो । अथवा-(अयः ते शीर्षा) उस के शिर पर स्वर्णीय मुकुट या पद का चिन्ह आदि हो ।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥४॥

भा०—(यः) जो (संपृच्छे न रमते) अच्छी प्रकार प्रश्न पूछने पर भी प्रसन्नतापूर्वक उत्तर नहीं देता, (न पुन. हवीतये रमते) न बुलाने पर ही प्रसन्न होता है और (न सं-वादाय रमते) न परस्पर संवाद के लिये ही हर्षपूर्वक अनुमति देता है, (तस्मात् सम्-ऋतेः) उस शत्रु के साथ सग्राम से (नः अद्य उरुष्यतम्) हमारी आज रक्षा करो और (बाहु-भ्या न. उरुष्यतम्) उस के बाहुओं से हमें बचाओ ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं१ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥५ ॥६॥

भा०—हे (ऋत-वसो) सत्य के धनी ! तू (मित्राय) स्नेही जन, (अर्यम्णे) शत्रुओं के नियन्ता और (वरुणे) श्रेष्ठ जन के लिये (सच-थ्यम्) सेवायोग्य, आदरणीय, मेल मिलाप के और (वरूथ्यम्) दुःख-वारक तथा (छन्द्यं) चित्तवृत्ति के अनुकूल (वचः) वचन का (प्र) प्रयोग कर। और हे (मनुष्यो) आप लोग (राजसु) राजा, तेजस्वी जनों में उक्त प्रकार के (स्तोत्रं) स्तुति वचन का (गायत) गान करो।

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम्।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥

भा०—(ते) वे (अरुणं) तेजस्वी, अमित वीर्यवान्, (जेन्यं) विजयशील (वसु) सब को सुखपूर्वक बसाने वाले, (तिसृणां) तीनों लोकों के एक अद्वितीय सूर्य के समान उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं के बीच (एकं) एक अद्वितीय (पुत्रं) बहुतों के रक्षक को (हिन्विरे) बढ़ावें। (ते) वे (अमृताः) कभी नाश न होने वाले, (अदब्धाः) किसी से भी न मारे जाकर (मर्त्यानां धामानि) मनुष्यों के सब स्थानों का (अभि चक्षते) निरीक्षण करते हैं।

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख, असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (मे) मेरे (उद्यता) उपस्थित (द्युमत् तमानि) ज्ञानप्रकाश से युक्त (कर्त्वा) कार्य रूप से करने योग्य (वचांसि) वचनों को (आयातम्) प्राप्त करो। और (उभा सजोषसा) दोनों प्रेम से युक्त होकर (हव्यानि वीतये प्रति यातम्) उत्तम अन्न खाने के लिये लौट जाया करो। विद्वानों के उत्तम २ व्याख्यानादि सुनने के लिये स्त्री पुरुष वा शिष्य शिष्या जन विद्वानों के पास आया करें और भोजनार्थ पुनः घरों या आश्रमों पर चले जाया करें।

रातिं यद्वांमरुक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, बल आदि से युक्त कृषि सैन्यादि कार्यों से धनी सम्पन्न जनो ! (युवाभ्याम्) तुम दोनो के हम (अरक्षसं) दुष्ट पुरुषों से रहित (रातिम्) अविघ्नित दान राशि की (वाम् हवामहे) आप दोनों से याचना करते है । आप दोनों (नरा) उत्तम नर नारी, (जमदग्निना वृणाना) प्रज्वलित अग्नि वाले विद्वान् आचार्य द्वारा उपदेश युक्त होकर (प्राची होत्रां) प्राक्तनी, प्रकृष्ट ज्ञान और आदर से युक्त वेद वाणी को (प्र तिरन्तौ) बढ़ाते हुए (इतं) आओ ।

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो३यं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमारे (दिवि स्पृशं) मनःकामनागन, वा ज्ञान सम्बन्धी, (यज्ञं) परस्पर के सत्संग को (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (आ याहि) प्राप्त हो । (अय) यह मैं (पवित्रे उपरि श्रीणान.) पवित्र व्रत पर आश्रय लेता हुआ (शुक्रः) शुद्ध आचारवान् होकर (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण में स्थान प्राप्त करूं । वा (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण को बाधता हू ।

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् १०।७

भा०—हे (नियुत्वः) नियुक्त शिष्यो के स्वामिन् गुरो ! (अध्वर्यु) अपने अविनाश या रक्षा की कामना करता हुआ शिष्य (रजिष्ठैः) अति तेजस्वी (पथिभिः) सन्मार्गों से (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (प्रति वेति) तुझे प्राप्त होता है ।

तू (नः) हम में से (उभयस्य) दोनों की (पिब) पालना कर । (शुचिं) शुद्ध, व्रतचारी और (गवाशिरं सोमम्) गौ, वाणी के ऊपर विद्याभ्यासी दोनों प्रकार के शिष्यों की पालना कर । (२) इसी प्रकार (अध्वर्युः) अहिंसा व्रत का इच्छुक जन अन्नों को भोग करने के लिये उत्तम २ मार्गों से जीवन व्यतीत करे । वह शुद्ध अन्नादि, वनस्पति और (गवाशिरम्) गौ आदि के दुग्ध और भूमिस्थ कन्द आदि फल का भोग करे इस प्रकार वनस्थ का धर्म पालन करे । इति सप्तमो वर्गः ॥

बण्म॒हाँ अ॑सि सूर्य॒ बळा॑दित्य म॒हाँ अ॑सि ।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ अ॑सि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त जगत् के उत्पादक, सूर्यवत् प्रकाशक और सञ्चालक ! तू (बट् महान् असि) सचमुच महान् है । हे (आदित्य) सब को अपने वश में लेने हारे । तू (बट् महान् असि) सचमुच महान् है । (ते महः सतः) तुझ महान् सत्स्वरूप का (महिमा पनस्यते) बड़ा भारी महान् सामर्थ्य वर्णन किया जाता है । हे (देव) सब सुखों के दातः ! तू (अद्धा महान् असि) सचमुच महान् है ।

बट् सू॑र्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ अ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ अ॑सि ।
म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्यः॑ पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (सूर्यवत्) तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक सूर्य ! परमेश्वर ! तू (बट्) सत्य ही (श्रवसा महान् असि) अपने ज्ञान, और यश से महान् है । हे (देव) प्रकाशस्वरूप तू (सत्रा) सत्य के बल से (महान् असि) महान् है । तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (असुर्यः) प्राणों मे रमण करने वाले जीवों का हितकारी, बलवानों में सब से बड़ा बलशाली, (पुरोहितः) सब के समक्ष साक्षिवत् विराजमान है । तू (विभु) सर्वव्यापक, (अदाभ्यम्) कभी नाश न होने वाला (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है ।

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्यन्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

भा०—(इयं) यह (या) जो (नीची) नीचे की ओर मुख किये, विनयशील कन्या के समान नीचे की ओर झुकी, (आकणी) स्तुति से युक्त, वा अर्क, मन्त्रादि को जानने वाली अर्किणी, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) सूर्य की कान्ति के समान उज्ज्वल (कृता) उत्तम अलंकारो से सुसज्जित, (चित्रा इव) अद्भुत रूप वाली के समान (दशसु बाहुषु) दशों दिशाओ मे (बाहुषु) बाहुओ के बल पर (आयती) विस्तृत राजशक्ति है वह (प्रति अदर्शि) सब को उत्तम रीति से दीखे ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

भा०—(तिस्रः प्रजाः) तीनों प्रकार की प्रजाएं (अति-आयम्) सब को अतिक्रमण करके विराजमान प्रभु को ही (ईयुः) प्राप्त होती है। अथवा—तीन प्रजाएं (अत्यायम् ईयुः) अतिक्रमण कर गति करती है जैसे—पक्षी गण, भूमि को छोड़कर आकाश से विचरते है वे तीन प्रकार के है, जैसे—गव, वगध और चेरपाद । और (अन्याः) दूसरी प्रजाएं (अर्कम् अभितः) सूर्यवत् अन्न का आश्रय लेकर (विविश्रे) स्थित है ! (भुवनेषु अन्त.) लोक में (बृहत् पवमानः) बड़ा भारी परम पावन, प्रभु (तस्थौ) विराजता है, वह ही (हरितः अविवेश) सब दिशाओं मे वायुवत् व्यापक है ।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥

भा०—(रुद्राणां माता) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों को दूध

पिलाकर पुष्ट करने वाली, रोगों को नाश करने वाले घृत, दुग्ध आदि पदार्थों की उत्पन्न करने वाली माता यह गौ है; और वीरों की उत्पादक और रोग नाशक ओषधियों की उत्पादक जननी यह गौ भूमि है, दुष्ट दलनकारी वीरों और प्राण युक्त जीवों की माता यह कन्यारूप मातृ शक्ति गौ है। वह (वसूनां दुहिता) राष्ट्र में वा जगत् मे वसे समस्त जीवों को सब सुखों की देने वाली, (आदित्यानां स्वसा) दान-आदान करने वाले व्यापारी वैश्य जनों की (सु-असा) सर्व सुखदात्री, भगिनी के समान है और (अमृतस्य नाभिः) अमृत दीर्घ जीवन को देने वाली, मानो आश्रय है। मैं (चिकितुषे) इन समस्त तथ्यों को जानने वाले को (नु प्रवोचं) अवश्य यह बलपूर्वक कहता हूं कि ऐसी (अनागां गाम्) अपराध रहित गौ को और (अदितिम्) भूमिवत् माता-पितावत्, पुत्र पुत्रिवत् गौ का (मा वधिष्ट) कभी हनन मत करा। वेद की यह ऐसी प्रबल अहिंसा प्रतिपादक अपील है जिस को सुनकर घोर हिंसक भी गौ पर उठाये हाथ को खींच ले।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेता ॥१६॥ ८॥

भा०—(वच:-विदम्) वचन, परिभाषण, परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली, (वाचम् उदीरयन्तीम्) वाणी को उन्नत करने वाली, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त कर्मों सहित (उपतिष्ठमानाम्) उपस्थित होती हुई (देवेभ्यः मा परि एयुषीम्) विद्वान् जनों से मुझ को प्राप्त होने वाली (देवीं गाम्) ज्ञान का प्रकाश देने वाली, ज्ञानमयी 'गौ' वाणी को (दभ्र-चेताः) अल्प चित्त वाला, अल्पज्ञानी (मर्त्यः) मनुष्य (परि आ अवृक्त) परित्याग किया करता है। और विशाल चित्त वाला बहुज्ञ पुरुष उस वेदवाणी का आश्रय लेता और ज्ञानरस का दोहन किया करता है। अथवा—(देवेभ्यः एयुषीं गां मा परि आ-अवृक्त) सब मनुष्यों के हितार्थ प्राप्त गौ को मत मारो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[१०२]

प्रयोगो भार्गवोऽग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ। तयोर्वान्यतर ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३—५, ८, ९, १४, १५, २०—२२ निचृद् गायत्री। २, ६, १२, १३, १६ गायत्री। ७, ११, १७, १९ विराड् गायत्री। १०, १८ पादनिचृद् गायत्री॥

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे। कविर्गृहपतिर्युवा॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक! हे (देव) दानशील! (दाशुषे) देने वाले को (त्वम्) तू (बृहत् वयः) बहुत बड़ी आयु, प्रचुर अन्न और बहुत सा ज्ञान (दधासि) प्रदान करता है। तू (कविः) क्रान्तदर्शी, (गृहपतिः) गृह का स्वामी और (युवा) बलवान् है।

स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा। चिकिद्विभानवा वह २

भा०—हे (विभानो) विशेष कान्तियुक्त! तू (चिकित्) ज्ञानवान् है। (नः) हमे (अनया इडा) इस स्तुति वा उत्तम इच्छा, (दुवस्युवा) परिचर्या, सेवा-शुश्रूषा के (सह) साथ २ (देवान् आ वह) शुभ गुणों और दानी, ज्ञानी, उत्तम विद्वान् जनो को हमें प्राप्त करा।

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य।
अभि ष्मो वाजसातये॥ ३॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अति बलशालिन्! (त्वया युजा स्वित्) तुझ सहयोगी के साथ ही (वयम्) हम (वाजसातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि प्राप्त करने के लिये (अभि स्मः) सबको वश करें। (२) अग्नि, सूर्य द्वारा 'वाज' अर्थात् अन्न प्राप्त होता है, अग्नि विद्युत् द्वारा बल, वेग और ऐश्वर्य भी प्राप्त होते है।

औ॒र्व॒भृ॒गु॒वच्छुचि॑मप्नवान॒वदा हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥४॥

भा०—(समुद्र-वाससम्) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाले (औवं-भृगुवत्) भूमि के भीतर सब पदार्थों को भर्जन करने वा परिपाक करने वाले तेज से युक्त और (शुचिम्) शुद्ध, पवित्र (अप्नवानवत्) जल के जाल से युक्त (अग्निम्) अग्नि के तुल्य बलवान् मैं भी (समुद्र-वाससम्) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभुरूप (अग्निं) अग्नि, ज्ञानमय तेजस्वी को (औवं-भृगुवत्) भूमि के समस्त पदार्थों को संतप्त करने और परिपाक करने के सामर्थ्य से युक्त सूर्यवत् (शुचिम्) शुद्ध-पवित्र और (अप्नवानवत्) सुख प्राप्त करने के समस्त साधनों वाले सामर्थ्य से युक्त उस प्रभु को (आ हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं। उसी की प्रार्थना करता हूं।

'अप्नवानवत्'—अप्न इति रूप नाम, अपत्यनाम, पदनाम च । आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । अप्नः । अपः । आपः । उणादि० ॥ आप्यते सुखं येन तत् अप्नः, अपत्यं सुकर्म वा ।

अथवा—(१) अग्नि कैसा है (औवं-भृगुवत्) भूमि के समान अर्थात् जो उसमे पड़ता निमग्न हो जाता है इसी प्रकार प्रभु और विद्वान् भी है जो उसके पास हो वह उसमे ही निमग्न होता है ।

(२) (अप्नवानवत्) अग्नि कैसा ? रूप जाल से युक्त, तेजोरूप, विद्वान् । गृहपति कैसा ? अपत्य पुत्र, शिष्यादि गण से युक्त, सुखद वा सुकर्मो से युक्त। पुण्यवान् प्रभु कैसा ? सुखप्रद ऐश्वर्यों से युक्त, वा जीवादि पुत्रों से युक्त ।

हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्यं॒ सहः॑ ।
अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(समुद्र-वाससम् अग्निम्) समुद्र के गर्भ मे विद्यमान

आग (वातस्वनः पर्जन्य-क्रन्द्यं) जिस प्रकार प्रचण्ड वात वा शब्दकारी मेघ के समान गर्जन करने वाला होता है उसी प्रकार (समुद्र-वाससम्) महान् आकाश में व्यापक, (वात-स्वनं) प्राण, वायु आदि द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने वाले (कविं) क्रान्तदर्शी, (पर्जन्य-क्रन्द्यं) सब मेघों को भी गर्जन कराने वाले विद्युत् के समान वा सबका उत्पादक पिता कहाने योग्य, सब रसों और बलों का आश्रय कहाने योग्य (सहः) सब कुछ सहने वाले, सब के वशयिता, (कविं) विद्वान् क्रान्तदर्शी अन्त-र्यामी प्रभु को (हुवे) स्मरण करता हूं ।

(पर्जन्य-क्रन्द्यं) पर्जन्यः जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम् । निरुक्त० ॥ विद्वान्, वक्ता भी वात और मेघ के समान गंभीर ध्वनि वाले वा मेघ के समान भोजनादि से तृप्तिदायक, शत्रुओं के जेता कहाने योग्य हो । इति नवमो वर्गः ॥

आ सुवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ६

भा०—(सवितुः सवं यथा) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य का प्रकाश करने वाले और (भगस्य इव भुजिं) ऐश्वर्य के भोक्ता या पालक राजा के समान तेजस्वी, (समुद्र-वाससं अग्निं) वड़वानल के समान विशाल आकाश में व्यापक वा जगत् भर को समुद्रवत आच्छादित करने वाले (अग्निम्) तेजोमय परमेश्वर की (हुवे) स्तुति करता हूं । इसी प्रकार राजा वा विद्वान् 'समुद्रवासाः' अर्थात् समुद्र के समान प्रजाओं का आच्छादित करने वाला रक्षक होता है ।

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ ७ ॥

भा०—(वः वृधन्तम्) आप सब मनुष्यों को बढ़ाने वाले, (अध्व-राणा) यज्ञों, अविनाशी पदार्थों के बीच में (पुरु-तमम्) सबसे बड़े पालक पोषक, (अग्निं) प्रकाशस्वरूप को मैं (हुवे) पुकारता हूं (नप्त्रे)

सबको अपने साथ प्रेम से बांधने वाले और (सहस्वते) बलवान् प्रभु को प्राप्त करने के लिये मैं (अच्छ हुवे) साक्षात् उस की स्तुति करता हूं।

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव आभुवत्) बढ़ई जिस प्रकार छील छालकर बनाने योग्य पदार्थों को बनाने मे समर्थ होता है उसी प्रकार (अयं) यह प्रभु भी (त्वष्टा) सब जगत् का बनाने वाला, तेजस्वी (नः आभुवत्) हमे भी बनाता है। (अस्य यशस्वतः क्रत्वा) इसी बल, कीर्त्ति वाले प्रभु के ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से हम भी बलयुक्त, ज्ञानवान् यशस्वी हों।

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (देवेषु) सब भूतों के बीच में (श्रियः अभि पत्यते) समस्त शोभाओ, कान्तियो को धारण करता है उसी प्रकार यह (अग्निः) ज्ञानी, नायक, स्वामी, प्रभु (विश्वाः श्रियः) समस्त आश्रय लेने वालों का (अभि पत्यते) साक्षात् पालक होता है, और (देवेषु) सब दिव्य पदार्थों वा दाताओ मे भी सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् होता है। वह (वाजैः) बलो, ज्ञानो, अन्नों, और ऐश्वर्यों सहित (उप गमत्) हमे प्राप्त हो।

विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् ।
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(विश्वेषाम् होतॄणाम्) सब दाताओं मे से (यशस्तम) सबसे अधिक यशस्वी, (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, सबसे पूर्ण, प्रभु की, (इह यज्ञेषु) यहां यज्ञों, सत्संगों मे (स्तुहि) स्तुति कर। इति दशमो वर्गः ॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा। दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ११

भा०—(यः) जो (दीर्घश्रुत्-तमः) दीर्घ काल तक गुरु-मुखों से खूब श्रवण करने योग्य, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, प्रशंसनीय, (दमेषु) सब घरों में दीपक के समान, (आ दीदाय) सर्वत्र प्रकाशमान है, सब भुवनों में प्रकाश करता है, उस (शीरं) सर्वव्यापक (पावक-शोचिषं) अग्नि के समान पवित्रकारक ज्योति वाले प्रभु की यज्ञादि मे स्तुति कर।

तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम्।
मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (विप्र) बुद्धिमान् मनुष्य! तू (तम्) उस (अर्वन्तम्) अश्व के समान (सानसिम्) जीवन मार्ग के परम सुखदायक, (शुष्मिणम्) उत्तम बलों से युक्त, (मित्रं) मित्र के समान (यातयत्-जनम्) समस्त मनुष्यों को प्रेम से प्रयत्न, उद्योग कराने वाले प्रभु की (गृणीहि) स्तुति कर।

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥

भा०——(हविष्कृतः) हवि, चरु आदि देने वाले यज्ञशील पुरुष की (गिरः) वाणियां (त्वा देदिशतीः) तेरा वर्णन करती हुई (जामयः) बन्धु भगिनियों के समान (वायोः अनीके) वायु के समीप अग्निवत्, प्राणों के बल पर (त्वा अस्थिरन्) तुझको हृदय में स्थिर भाव से जागृत कर देती है। भगवत्-स्तुतियां ही परमेश्वर के भाव को हृदय में दृढ़ करती है।

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंन्दिनम्।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥

भा—जिस प्रकार अग्नि तत्व के लिये (त्रिधातु बर्हि·) तीनों प्रकार

के लोक आश्रय है, उसी प्रकार (त्रिधातु) तीनों प्रकार के (अवृतं) क्रिया रहित (बर्हिः) लोक (असंदिनम्) असम्बद्ध होकर (यस्य) जिसके आश्रय पर क्रियावान् और सम्बद्ध हैं और जिसमें (आपः चित्) समस्त प्रकृति आदि पदार्थ और जीवगण, प्रजावत् (पदं नि दध) स्थिति प्राप्त करते हैं उसको तू हृदय में स्थान दे ।

पदं देवस्य मीह्ळुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(मीढुषः देवस्य) सब सुखों के वर्षक, सब सुखों के दाता, सब ज्ञानों और लोकों के प्रकाशक प्रभु का (पदं) स्वरूप (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) किसी से न पराजित होने वाली रक्षाकारिणी सेनाओं से राजा के पद के समान, अधर्षणीय शक्तियों से युक्त है । वह स्वयं भी (सूर्यः इव) सूर्य के समान (भद्रा) कल्याणकारक (उपदृक्) समीप स्थित देखने वाली चक्षु के समान सर्व ज्ञान का प्रकाशक है । इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (घृतस्य धीतिभिः) तेज की धारण शक्तियें (देवान्) किरणों को धारण करता और (तेपानः) तपता है और जिस प्रकार घृत की आहुतियों से अग्नि (देवान्) सुगन्ध दान आदि गुणों को धारण करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (देव) ज्ञान आदि के दातः ! (तेपान.) तप करता हुआ तू (शोचिषा) तेज से (घृतस्य धीतिभिः) ज्ञान की वाणियों द्वारा (देवान्) ज्ञान के इच्छुक शिष्य जनों के प्रति (आ वक्षि) ज्ञान करा प्रवचन कर और (यक्षि च) उनको ज्ञान का दान दे, उनसे सत्संग कर ।

तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः।
हव्यवाहममर्त्यम्॥ १७॥

भा०—(तं त्वा) उस तुझ को (मातरः देवासः) विद्वान् जन माता के तुल्य (कवि अजनन्त) कविवत् क्रन्तदर्शी रूप से प्रकट करते है। और (हव्यवाहं) ग्राह्य ज्ञान-वचनों को धारण करने वाले (अमर्त्यम्) अमरणशील तुझ को वे (मातरः अजनन्त) माता के समान उत्पन्न करते हैं।

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूत वरेण्यम्।
हव्यवाहं निषेदिरे॥ १८॥

भा०—हे (कवे) दीर्घदर्शन, उपदेष्टा! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (प्रचेतसं) उत्तम ज्ञान वाले, (दूतं) उत्तम ज्ञान देने वाले (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (हव्यवाह) उत्तम वचन श्रवण करने वाले (त्वा) तुझ को आदर-पूर्वक निषेदिरे आसन पर बैठाते है।

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति।
अथैतादृग्भरामि ते॥ १९॥

भा०—(मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे पास मे, कभी न मारने योग्य अघ्न्या गौ भी नहीं, और (न) नहीं (स्वधितिः) कुल्हाडी काष्ठ (वनन्वति) काटती है, तो भी (एतादृग्) ऐसा (ते) तेरे निमित्त (भरामि) लाया हूं। तू इसे ही स्वीकार कर। अर्थात् हे पूज्यवर! न तो मेरे पास दुग्ध देने वाली यज्ञ करने को गौ है, न काष्ठों को काटने की कुल्हाडी है, मैं यज्ञ के स्थूल साधन उपस्थित नहीं कर सकता तो भी भगवन्! भावनामय यज्ञ के साधन उपस्थित है यह चितिशक्ति अविनाशिनी होने से 'अघ्न्या' और यही 'स्व' आत्म रूप से धारण करने योग्य 'स्वधिति' है। यही तेरे प्रति उपहार रूप मे देता हू। इसी से तू प्रसन्न हो।

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २० ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (यत्) जो हम (कानि कानिचित्) कई २ प्रकार के (दारूणि) नाना काष्ठ (आदध्मसि) आधान करते हैं हे (यविष्ठ्य) सर्वशक्तिमन् ! तू (ता) उन २ को (जुषस्व) स्वीकार कर । जैसे अग्नि परशु से काटी हुई, छोटी २ समिधाओं को सुगमता से जला देता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत आत्माओं को सहज ही ज्ञानवान् कर देता है, परन्तु यहां उसके पास सभी प्रकार के ('दारु' = धारु अर्थात् वत्स) बालक आवेंगे उनको विद्वान् गुरु प्रेमपूर्वक स्वीकार कर विद्या से उज्ज्वल करे ।

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥ २१ ॥

भा०—(यद् उपजिह्विका अत्ति) जिस को दीमक खा जाती है और (यद् वम्रः अति सर्पति) जिसको वल्मीक लग जाता है वह काष्ठ भी अग्नि मे पड़कर (घृतम् अस्तु) चमकने लगने लगता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! (यत्) जिस बालक को (उपजिह्विका) जीभ की चञ्चल प्रकृति (अत्ति) लग जाती है और (यद् वम्रः) वमनशील होकर जो पढ़े ग्रन्थ भूल जाय, ऐसा विद्यार्थी (अतिसर्पति) बहुत अवारा घूमता है (तत् सर्वं) वह सब भी (ते) तेरे समीप आकर तेरे लिये (घृतम् अस्तु) घृत के समान ज्ञान दीप्ति का साधन हो जाता है । (२) अथवा—हे प्रभो ! जो भी (उप-जिह्विका) वाणी प्राप्त कर लेती है, और जो (वम्रः) मन में आये ज्ञान को उगल देने वाला, अन्यों को उपदेष्टा जन तेरे पास आ जाता है वह सब तेरी ज्ञानदीप्ति वा स्नेह का पात्र हो ।

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ २२ ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निम् इन्धानः मर्त्यः) अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ मनुष्य (मनसा धियं सचेत) मन से वा ज्ञान से (धियं) बुद्धि वा कर्म को युक्त करे । इसी प्रकार मनुष्य (विवस्वभिः) विद्वानों द्वारा भी (अग्निम् इधे) उस ज्ञानवान् प्रभु को अपने हृदय मे प्रज्वलित करे । इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०३]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ १—१३ अग्नि । १४ अग्निर्मरुतश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३, १३, विराड् बृहती । २ निचृद् बृहती । ४ बृहती । ६ आर्ची स्वराड् बृहती । ७, ६ स्वराड् बृहती । ६ पङ्क्तिः । ११ निचृत् पङ्क्तिः । १० आर्ची भुरिग् गायत्री । ८ निचृदुष्णिक् । १२ विराडुष्णिक् ॥

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ १ ॥

भा०—(गातुवित्-तमः) मार्ग, वाणी, ज्ञान आदि को जानने और अन्यों को जनाने हारा, भूमि को सूर्यवत् वेद वाणी का भली प्रकार प्रकाशित करने वाला प्रभु, गुरु (अदर्शि) सब को दर्शन करने योग्य है । (यस्मिन्) जिस के आश्रय या अधीन रहकर सब (व्रतानि आदधु) व्रतों को धारण करते है । (आर्यस्य वर्धनम्) श्रेष्ठ जनों को बढ़ाने वाले (जातम्) सब को प्रकट, विदित, प्रसिद्ध (अग्निम्) पूज्य, तेजस्वी, ज्ञाता, ज्ञापक प्रभु, सर्व गुरु को (नः गिरः उपो सु नक्षन्त) हमारी स्तुति वाणियां अच्छी प्रकार प्राप्त हों ।

प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥

भा०—(दैव॰-दास॰ = दिव॰ दासः) तेज वा प्रकाश देने वाले सूर्य की

(अग्निः) अग्नि (देवान्) अपने किरणों वा प्रकाशों को (मातरं पृथिवीं अनु) सब जननी माता पृथिवी की (अच्छ) ओर (मज्मना न प्र वावृते) मानो बड़े बल से भेजता है, और (पृथिवीं मातरम् अनु) उत्पादक माता भूमि के रचनादि के अनुसार (वि वावृते) उस मे विविध कार्य करता है। वह पत्रों को हरा, पुष्पों का नाना रंगों का, जड़ों को स्थूल दृढ़ इत्यादि जंगम स्थावरादि संसार को अद्भुत प्रकार से परिणत करता, नाना ऋतु आदि को प्रवृत्त कराता है। वह स्वयं (नाकस्य सानवि) आकाश के उच्च भाग पर (तस्थौ) स्थिर रहता है। उसी प्रकार वह सर्वज्ञ प्रभु भी (नाकस्य सानवि) सुख आनन्दमय दशा मे स्थिर है, तो भी मातृवत् जननी विस्तृत प्रकृति को बहुत भारी बल से नहीं चलाता प्रत्युत बड़े अनायास ही उस में (प्र वावृते) प्रथम स्पन्द उत्पन्न करता है और (अनु वि वावृते) अनन्तर उसी प्रकृति को विविध रूपों मे बनाकर जगत् रूप से बदल देता है। यही उसका वास्तविक 'विवर्त्त' है। 'न कि नवीन-वेदान्तसम्मत ब्रह्म का ही विकार। वह अग्नि परमेश्वर 'दैवोदास' है (दिवः सूर्यादयो दासा इव यस्य) समस्त सूर्य आदि लोक उस के दास के समान है।

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ३ ॥

भा०—(चर्कृत्यानि कृण्वतः यस्मात्) अपने अवश्य कर्त्तव्य, सर्ग, स्थिति, प्रलय वा मृत्यु आदि नाना कर्मों के सम्पादन करते हुए जिस से (कृष्टयः) समस्त मनुष्य मानो अपने देह में कर्म बीज की कृषि करते और कर्मफल का संचय और उपभोग करते हुए समस्त जीव गण (रेजन्ते) भ्रमपूर्वक कांपते और सञ्चालित होते है मानो उस (मेधसातौ इव) पवित्र अन्नवत् अवश्य प्राप्य फल प्राप्त करने के काल मे (सहस्र-सा) एक सत् बीज का सहस्रों गुणा फल देने वाले (अग्नि) उस परम ज्ञानी

पूज्य प्रभु की (धीभिः सपर्यत) उत्तम कर्मों और ज्ञानो, स्तुतियो से शुश्रूषा किया करो।

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सब जगत् के रक्षक, आच्छादक, सब मे बसने वाले सर्वव्यापक ! (यं) जिस को तू (राये निनीषसि) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग से ले जाता है, और (यः मर्त्तः ते दाशत्) जो देहधारी मरणशील जीव अपने को तुझे सौंप देता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! सब के अग्रनायक ! मार्गप्रकाशक ज्योतिर्मय ! (सः) वह (त्मना) अपने आप, (उक्थ-शंसिनम्) उत्तम वेद वचनो के वक्ता (सहस्र-पोषिणं) सहस्रों के पोषक (वीरं) वीर पुत्र, एवं विविध विद्योपदेष्टा, तुम को (धत्ते) अपने हृदय से धारण करता है ।

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वही पुरुष जो अपने आप को तुझ पर वार देता है, (दृढे चित्) दृढ़ शत्रु पर भी वाजं (अर्वता) अपने वल से (अभि वाजं) संग्राम में (तृणत्ति) शत्रु का नाश करता है, (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश, ऐश्वर्य अन्न, ज्ञान धारण करता है। हे (पुरु-वसो) वहुत से धन के स्वामिन् ! (त्वं देवत्रा) तुझ परम दानी के आश्रय हम भी (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त उत्तम २ धन प्राप्त करें।

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वा वसु दयते) समस्त जीव गणों को

रक्षा करता है, जो समस्त प्राणिसमूह पर दया कृपा करता, और उन को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (होता) सब से बड़ा दानी, (जनाना आनन्दः) उत्पन्न जनों को आनन्द देने वाला है। (अस्मै अग्नये) उस ज्ञानमय, पूज्य के लिये (मधोः पात्रा न प्रथमानि) अन्न जल या मधुर पदार्थ से पूर्ण पात्रों के समान सर्वश्रेष्ठ (स्तोमाः प्रयन्ति) उत्तम स्तुति, मन्त्र बड़े आदर पूर्वक हृदय से बाहर आते हैं।

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(रथ्यम् अश्वम्) रथ योग्य उत्तम अश्व के समान देह के भोक्ता आत्मा को (सुदानवः) उत्तम दानशील, (देवयवः) देव, प्रभु के उपासक, परमेश्वर को चाहने वाले लोग (मर्मृज्यन्ते) सदा स्वच्छ करते रहते है, उस को अपने हृदय मे चमकाते रहते है। हे (विश्पते) समस्त प्रजाओ के पालक! (हे दस्म) दर्शनीय! दरिद्रादि कष्टों के काटने हारे! (उभे तोके तनये) दोनों, पुत्र पौत्रादि के पालनार्थ (मघोनां राधः पर्षि) धनवानों का धन प्रदान कर।

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ ८ ॥

भा०—हे (उप-स्तुतासः) उपासक स्तुतिकर्त्ता जनो! आप लोग (मंहिष्ठाय) अति दानशील, (बृहते) महान् (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेजःस्वरूप (अग्नये) ज्ञानवान् सर्वपूज्य सर्वव्यापक (ऋताव्ने) सत्य ज्ञानमय प्रभु की (प्र गायत) उत्तम स्तुति करो।

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥

भा०—(मघवा) पूजित ऐश्वर्य युक्त, (द्युम्नी) तेजस्वी, प्रभु (आहुत) आदरपूर्वक प्रार्थित और (समिद्धः) हृदय मे सुप्रकाशित होकर (वीरवत् यश आ वंसते) पुत्रोसे युक्त अन्न, यश आदि सब प्रकार से प्रदान करता है। (अस्य कुवित् सुमतिः) इस की बहुत उत्तम मति (नवीयसी) उत्तम उपदेशदात्री, (वाजेभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (नः अच्छ आगमत्) हमे भली प्रकार प्राप्त हो।

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम्।
अग्निं रथानां यमम् ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (आसाव) आदरपूर्वक स्तुति करने हारे, अग्नि आदि के उत्पन्न करने मे समर्थ ज्ञानवन्! तू (प्रियाणां प्रेष्ठम्) प्रियों में सर्व प्रिय, (अतिथिम्) सब से ऊपर विद्यमान, सर्वपूज्य, (रथानाम् यमम्) रथों के नियामक विद्युत् के समान सब देहो मे वा सूर्यादि लोकों के नियन्ता (अग्नि) तेजस्वी संञ्चालक आत्मा की (स्तुहि) स्तुति, उपदेश कर।

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥

भा०—(य) जो (यज्ञियः) पूजने योग्य स्वामी, (उदिता) उन्नत और (निदिता) निन्दित अच्छे और बुरे सब का (वेदिता) ज्ञान कराने वाला होकर, (वसु आववर्तति) नाना ऐश्वर्य सर्वत्र प्रदान करता है, वा प्राणि जन को चलाता है। (धिया) ज्ञानपूर्वक, धर्मानुसार (वाजं सिषासत) ऐश्वर्य, ज्ञान वल वेगादि को सब मे विभक्त करने वाले (यस्य) जिस के (ऊर्मय) शासन (प्रवणे उर्मयः न) नीचे की ओर जाते हुए वृहत् जल व रगों के (दुस्तराः) अपार हैं, उसका उल्लेख नहीं किया जा सकता।

मा नो॑ हृणीतामति॑थि॒र्वसु॑र॒ग्निः पु॑रुप्रश॒स्त ए॒षः ।
यः सु॒होता॑ स्वध्व॒रः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (सु-होता) सुख देने वाला, उत्तम दानी, (सु अध्वरः) उत्तम मार्गप्रद, हिंसा से रहित दयालु है, वह (अतिथिः) सर्वोपरि पूज्य (वसुः) सब में बसा, (अग्निः) ज्ञानी, सर्वप्रकाशक, सन्मार्ग में प्रवर्त्तक है (एषः) वह (पुरु-प्रशस्तः) बहुत ही स्तुति करने योग्य सर्वश्रेष्ठ है ।

मोते रि॑ष॒न्ये अच्छो॑क्तिभि॒र्वसो॒ऽग्ने केभि॑श्चि॒देवैः ।
की॒रिश्चि॒द्धि त्वमी॑ट्टे दू॒त्या॑य रा॒तह॑व्यः स्वध्व॒रः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वसो) सब में बसे ! सब को बसाने हारे ! (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशक ! (ये) जो (अच्छोक्तिभिः) उत्तम वचनों और (केभिः-चित् एवैः) किसी प्रकार के भी उत्तम साधनों से (त्वाम्) तेरी उपासना करते है (ते मो रिषन्) वे कभी पीड़ित नही होते । (कीरिः चित् हि) उत्तम स्तुति करने हारा ही (दूत्याय) तेरे स्तुति कर्म के लिये (रात-हव्यः सु अध्वरः) अन्नादि चरु देता और उत्तम यज्ञ करता हुआ (त्वाम् ईडे) तेरी उपासना किया करता है ।

आग्ने॑ याहि म॒रुत्स॑खा रु॒द्रेभिः॒ सोम॑पीतये ।
सोभ॑र्या॒ उप॑ सुष्टु॒तिं मा॒दय॑स्व॒ स्व॑र्णरे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! सर्वपूज्य ! तू (मरुत्सखा) विद्वान् जनों का मित्र होकर (रुद्रेभिः) दुष्टों को रुलाने वाले और समस्त प्रजाओं के दुःखों को दूर करने वाले, वायु जलादि पदार्थों द्वारा (सोम-पीतये) उत्तम आनन्द रस, अन्न, ऐश्वर्यादि कर्म फलों का उपभोग पानादि कराने वा उत्पन्न जगत् का पालन करने के लिये (आ याहि) तू हमे प्राप्त

हो और (सोभर्याः) उत्तम पूजा-अर्चना करने वाले जन की (स्वः-नरे) सब के नायक तुझ मे प्रयुक्त (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को श्रवण कर। (उप मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हो, सब को प्रसन्न कर।

प्रसीद देवेश जगन्निवास। गीता॥

इति पञ्चदशो वर्गः॥ इत्यष्टमे मण्डले दशमोऽनुवाकः॥

॥ इति प्रागाथमष्टमं मण्डलं समाप्तम्॥

इति श्री-विद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थ-विरुदोपशोभित-श्रीपण्डित जयदेवशर्मणा विरचिते ऋग्वेदाऽऽलोकभाष्येऽष्टमं मण्डलं समाप्तम्॥

